Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AVISHKAR 1991 Feb-Sep

G. K. V.
HARDWAR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079.404

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कार

जनभाषा में रुचिकर विज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति

वरी 1991

3 रुपए

1991
FEB-SEP.
079404
0.79404

बृहस्पति की महायात्रा पर गैलीलियो

आण्विक जीवविज्ञान: अतीत, वर्तमान और भविष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमण्ड के तीन महत्त्वपूर्ण शब्दकोश

EDITORS:
Dr. Giriraj Sharan Aggarwal
Dr. Baljit Singh

DIAMOND
HINDI ENGLISH DICTIONARY
डायमण्ड
हिन्दी अंग्रेजी
कोश

पृष्ठ : 1000, रु. 80/-
मध्यम आकार : रु. 40/-

EDITORS:
Dr. Baljit Singh
Dr Giriraj Sharan Aggarwal

DIAMOND
ENGLISH HINDI DICTIONARY
डायमण्ड
अंग्रेजी हिन्दी
कोश

पृष्ठ : 1600, रु. 120/-
मध्यम आकार : रु. 60/-

सम्पादक :
डा. गिरिराजशरण अग्रवाल
डा. बलजीत सिंह

डायमण्ड
हिन्दी शब्दकोश

पृष्ठ : 1000, रु. 80/-
मध्यम आकार : रु. 40/-

अर्थात् 'शब्दों का प्रामाणिक भंडार

अनुवाद के लिए सर्वथा उपयुक्त।

अर्थ व्याख्यात्मक न होकर मूल शब्द के पर्याय रूप में उपलब्ध।

बहुअर्थी शब्दों की प्रायः सभी अर्थ-छायाओं को देने का प्रयास।

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्साशास्त्र, विधि व न्याय, कला, वाणिज्य शासन एवं प्रतिदिन के व्यवहार की प्रामाणिक शब्दावली का महत्त्वपूर्ण कोश ग्रंथ।

मुहावरों और लोकोक्तियों का विशिष्ट संग्रह।

देशभर में सभी बुक स्टालों, पुस्तक विक्रेताओं पर उपलब्ध अथवा हमें लिखें

डायमंड कामिक्स प्रा. लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राविष्कारक . . .

ग्रापका ग्राविष्कार
एक बालक के समान है,
जिसे चाहिए
सुरक्षा ग्रौर सहारा

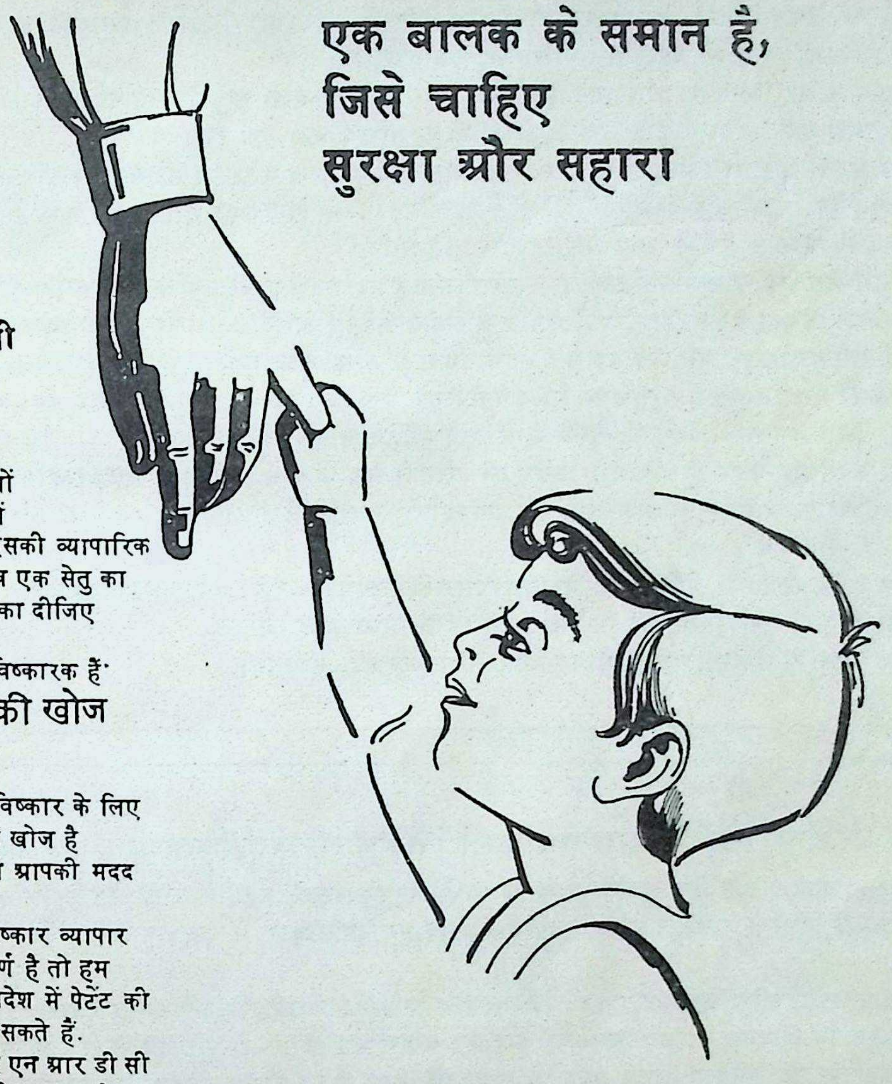

आइए
एन आर डी सी
के साथ बढ़िए

हमें अपने
विचारों ग्रौर उद्यमों
उद्यमों व परिणामों
ग्राविष्कार ग्रौर इसकी व्यापारिक
उपयोगिता के बीच एक सेतु का
काम करने का मौका दीजिए

यदि ग्राप एक ग्राविष्कारक हैं
और अवसर की खोज
में हैं,
या फिर ग्रपने ग्राविष्कार के लिए
ग्रापको बाजार की खोज है
तो एन ग्रार डी सी ग्रापकी मदद
कर सकता है.
यदि ग्रापका ग्राविष्कार व्यापार
की संभावना से पूर्ण है तो हम
इसे भारत ग्रौर विदेश में पेटेंट की
सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं.
ग्रापका ग्राविष्कार एन ग्रार डी सी
का पुरस्कार भी जीत सकता है,
जो साल में दो बार, सराहनीय
ग्राविष्कारों के लिए दिया जाता है.
एन ग्रार डी सी ग्रापके ग्राविष्कार
पर ग्राधारित पायलट संयंत्रों/
प्रोटोटाइपों के विकास के लिए
वित्तीय सहायता भी दे सकता है.
हम ग्रापके ग्राविष्कार के
व्यापारीकरण के लिए उद्यमी की
पहचान-कर सकते हैं.

देर न कीजिए ग्राज ही लिखिए !

एन आर डी सी
NRDC

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र
कैलाश कालोनी एक्स्टेंशन
नई दिल्ली-110048
फोन. : 6419945, 6432121, 6432627
टेलीग्राम : ग्रनुसंधान विकास
टेलेक्स–031-71358

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों से निवेदन

1. 'आविष्कार' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किए या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक का पूरा नाम, पता व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी आविष्कार/विकास/अनुसंधान या खोज कार्य के सार्वजनिक रुचि के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकता है.

4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रस्तुत अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में जहां कहीं रासायनिक तत्वों का उल्लेख आता है वहां उनके उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए जो आज रसायन विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय हो चुके हैं जैसे तांबे के लिए कॉपर और जस्ते के लिए जिंक, सीसे के लिए लेड और आक्सीजन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि. तांबा व सीसा शब्द कोष्ठक में दिए जा सकते हैं.

7. मापों को संक्षिप्त रूप में न लिखकर पूरे रूप में लिखें. जैसे कि० ग्रा० के लिए किलोग्राम, मि० मी० के लिए मिलीमीटर. इससे समझने में आसानी होगी. सभी माप मीट्रिक प्रणाली में दिए जाएं.

8. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि—हो तो अच्छा है.

9. लेख वरिष्ठ संपादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

10. 'आविष्कार' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.

विज्ञान प्रदर्शनी/मेलों में भाग लेने वाली शिक्षण संस्थाएं/विद्यार्थी कृपया ध्यान दें

राष्ट्रीय, राज्य, जिला और क्षेत्रीय स्तरों पर आयोजित विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विज्ञान प्रदर्शनियों/मेलों में पुरस्कृत मॉडलों, युक्तियों आदि पर 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए विचारार्थ प्रलेख आमंत्रित हैं.

प्रलेख पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थी द्वारा स्वयं लिखा होना चाहिए और संबद्ध शिक्षण संस्था के प्राचार्य/प्रधानाचार्य द्वारा अग्रसारित किया जाना चाहिए. साथ में 'पुरस्कार प्रमाण पत्र' की फोटो प्रति भी भेजी जानी चाहिए.

प्रलेख में पुरस्कृत मॉडल, युक्ति आदि को बनाने की संपूर्ण जानकारी का तरतीबवार विवरण होना चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए कि उक्त माडल, युक्ति आदि को बनाने का विचार विद्यार्थी के मस्तिष्क में कैसे उपजा और उसे बनाने के लिए विद्यार्थी ने तकनीकी जानकारी कैसे जुटाई.

प्रलेख की दो प्रतियां भेजें जो कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप की गई हों अथवा साफ-साफ लिखी हों. चित्र सफेद ड्राइंग कागज पर साफ-साफ बने होने चाहिएं. चित्रों की भी दो प्रतियां भेजें.

जिस लिफाफे में प्रलेख भेजा जाए उसके बाईं ओर मोटे अक्षरों में 'विज्ञान प्रदर्शनी/मेले में पुरस्कृत मॉडल' लिखें.

जिन प्रलेखों को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाएगा उनकी सूचना संबद्ध शिक्षण संस्था/विद्यार्थी को उपयुक्त समय पर कार्यालय द्वारा स्वयं भेज दी जाएगी. अस्वीकृत रचनाओं के बारे में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा.

प्रलेख वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन.आर.डी.सी.
NRDC

आविष्कार

फरवरी 1991 वर्ष 21 अंक 2

प्रबंध निदेशक
एन० के० शर्मा
प्रमुख (आई० पी० पी० एवं ई०)
एम० पी० भटनागर

वरिष्ठ सम्पादक
डी० एन० भटनागर

सम्पादन सहायक
राघवेन्द्र कुमार शर्मा
आर० के० अन्यवाल

उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन

मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा

व्यवसायिक चित्रकार
के० के० थपलियाल

वरिष्ठ चित्रकार
नबनीता भौमिक

विज्ञापन प्रतिनिधि
रमा रानी त्रिपाठी

■'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरुरी है.

एक प्रति : 3 रुपए
बार्षिक मूल्य : 30 रुपए

फोन : 6418615, 6417821, 6419929,
6419945, 6419947, 6432580 टेलेक्स : 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'

इस अंक में

73 आण्विक जीव-विज्ञान : अतीत, वर्तमान और भविष्य
—फ्रांसिस क्रि

77 'गैलीलियो' बनेगा बृहस्पति का कृत्रिम उपग्रह
—प्रमोद प

80 काशी के जल-स्रोत; सर्वेक्षण और प्रदूषण
—डा० गिरीशचन्द्र चौ

83 पुरा भूचुम्बकत्व द्वारा काल—निर्धारण
—डा० विजय कुमार उपाध्

52 अपनी बात

53 आपकी प्रतिक्रयाएं

56 व्योम विहार

60 आविष्कार मंच : इलेक्ट्रोनिक कलाई घड़ी के सेल को दोबारा उपयोग में लाना. ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयोगी मिट्टी का फ्रिज. वाहन कम ईंधन से अधिक दूरी वै तय करें. टेप रिकार्डर पर मीडियम वेव रेडियो की आवाज.

62 समाचारिकी : टूथपेस्ट का फ्लोराइड. एलर्जी पर अनुसंधान. विटामिन 'ए' से मृत दर में कमी नहीं. नई कूड़ा व्यवस्थापन प्रौद्योगिकी. वैज्ञानिक भी जान रहे हैं चींटि की भाषा. कैंसर के विरुद्ध एक और दवा. सौर ऊर्जा में कितनी ऊर्जा. भूजल स्रोत पर देश का पहला एटलस.

65 विज्ञान के विविधि आयाम : सराहनीय आविष्कारों के लिए एन आर डी सी के गणतंत्र दिवस (1991) पुरस्कार. जनसंख्या का समीकरण. सवाल यह है कि सां लें या नहीं. खेतों की मेड़ पर कंप्यूटर. लैड विषाक्तता के कुप्रभाव.

86 विज्ञान साहित्य चर्चा : हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता. धान-चावल संसाधन. नया प्रकाशन.

89 क्या और कैसे ? चन्द्रमा पर क्या है ? क्या होता यदि चन्द्रमा न होता ? पूर्ण चन् कभी-कभी पीला क्यों दिखलाई देता है ?

92 खेल खेल में विज्ञान : आलू करे जेनरेटर का काम.

93 कम्प्यूटरित विज्ञान-प्रतिभा प्रतियोगिता-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आविष्कार संवर्धन और विकास

☐ किसी भी देश की वैज्ञानिक प्रतिभा केवल उसकी राष्ट्रीय प्रयोगशाला या अन्य ऐसे ही निजी या सार्वजनिक संस्थानों में सीमित नहीं होती. वह देश की आबादी में अन्यत्र भी बहुलता से पाई जाती है.

अनेक ऐसे वैज्ञानिकों के नाम गिनाए जा सकते हैं जो जीवन के प्रारंभिक काल में साधारण दैनिकचर्या में लगे रहकर गोपनीयता का जीवन बिताते रहे और फिर किसी अवसर पर उनमें छिपे वैज्ञानिक व्यक्तित्व का यकायक इस प्रकार प्रस्फुटन हुआ कि वे राष्ट्र के ही नहीं अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिकों के मंच पर प्रतिष्ठित हो गए. उनके योगदान को दुनिया भर में सराहा गया और उनके आविष्कारों के लाभ हर समाज को मिले.

सृजनशील प्रतिभाओं की किसी भी समाज में कभी भी कमी नहीं रही, किन्तु हमारा इतिहास गवाह है कि हमारे समाज ने ऐसी प्रतिभाओं को उपयुक्त प्रोत्साहन देने में हमेशा अनुदारता बरती. अनेक ऐसे उदाहरण हैं जब कुछ समाजों ने व्यक्ति की सृजनशीलता को दंडित भी किया. वह दौर अब लगभग बीत चुका है. यह बात अब स्वीकृति पा चुकी है कि व्यक्ति की आविष्कारशीलता ही समाज को भौतिक सुख समृद्धि की राह पर आगे चलाती है इसीलिए आज उभरती प्रतिभाओं की सृजनशीलता को बढ़ावा देने के अनेक कार्यक्रम दुनिया के हर देश में चलाए जा रहे हैं.

'नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन' भी देश में आविष्कारशीलता को प्रोत्साहित करने का एक कार्यक्रम सन् 1973 से चला रहा है. इससे पूर्व यह कार्य आविष्कार संर्वधन मंडल की जिम्मेदारी था जिसने सन् 1960 से 1972 तक यह कार्य किया. कारपोरेशन वर्ष में दो बार गणतंत्र दिवस और स्वतंत्रता दिवस पर सराहनीय आविष्कारों के लिए आविष्कारकों को 50,000 रुपए तक की धनराशि के नकद पुरस्कार और प्रमाण पत्र देता है. आविष्कारों के कार्यकारी माडल बनाने और पेटेंट कराने के लिए वित्तीय सहायता भी आविष्कारकों को दी जाती है. इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य देश में मौजूद आविष्कारशील प्रतिभा की आविष्कारशीलता को प्रोत्साहित करना है. इस बार गणतंत्र दिवस के अवसर पर पुरस्कृत आविष्कारों का ब्यौरा आप इसी अंक में आगे पढ़ेंगे.

आज देश को विकास की विकट समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है. खाड़ी युद्ध ने अभूतपूर्व ऊर्जा संकट खड़ा कर दिया है जिससे हमारा आर्थिक ढांचा चरमरा रहा है. इस चुनौती का सामना करने में हमारी आविष्कारशीलता महत्वपूर्ण हो सकती है. आविष्कारक कोई भी हो सकता है. जरूरी नहीं कि इसके लिए किसी प्रयोगशाला में ही कार्य किया जाए. नए रचनात्मक विचारों के सहारे जो भी काम आप कर रहे हैं उसे कम समय में कम श्रम से करने के अच्छे से अच्छे तरीके का विकास आप स्वयं अपने कार्यस्थल पर ही कर सकते हैं. चाहे काम मरम्मत करने का हो, कार्यालय में फाइलों का या कारखाने में उत्पादन का, सुधार की गुंजाइश हर जगह है. कुछ लोग इन सुधारों को आविष्कारों की श्रेणी में न रखकर नवाचारों (इनोवेशन) की श्रेणी में रखना चाहेंगे पर उससे मतलब नहीं. हर आविष्कार और हर नवाचार समाज को कुछ हद तक आगे अवश्य बढ़ाता है और इसीलिए महत्वपूर्ण है और इसका संर्वधन आवश्यक है. 'नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन' का आविष्कार संर्वधन कार्यक्रम स्वतंत्र आविष्कारकों के सराहनीय आविष्कारों को प्रतिष्ठित करने की दिशा में प्रयत्नशील है.

ऐसे बहुत से छोटे-छोटे सुधार जो हमारी स्थानीय समस्याओं को सुलझाने में सहायक तो होते हैं, परन्तु पुरस्कार प्राप्त करने के स्तर पर नहीं होते उन्हें हम समाज के व्यापक लाभ के लिए दूसरों तक पहुंचा सकते हैं. इससे जहां अन्य लोग उनका लाभ उठा सकते हैं वे स्वयं भी ऐसे सुधार करने के लिए प्रेरित हो सकते हैं. आपके द्वारा आज विकसित कोई छोटा विचार कल के किसी बड़े आविष्कार की पृष्ठभूमि भी बन सकता है. पत्रिका का 'आविष्कार मंच' स्तंभ ऐसे ही विचारों के विनिमय की सुविधा उपलब्ध करता है.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी प्रतिक्रियाएं

□ **स्त्रियों पर एड्स की गहराती छाया :** मैं पिछले चार वर्षों से 'आविष्कार' का पाठक हूं. इस पत्रिका ने राष्ट्रभाषा में जन सामान्य के बीच विज्ञान की जानकारी पहुंचाने का भरसक प्रयास किया है जो प्रशंसनीय है.

दिसम्बर 1990 के अंक को एक नजर में पढ़ने का प्रयास किया. एड्स दिवस पर आपने एड्स पर इतनी ढेर सारी सामग्री छाप कर भरपूर देश सेवा की है. यह अंक आज के परिप्रेक्ष्य में, जब लोग सामाजिक सीमाएं लांघ कर प्रायः गलत रास्तों पर चल कर भी अपने को उन्मुक्त विचारधारा वाला एवं आधुनिक मानते हैं, हमारे समाज के हित में है. आशा है लोग इस पत्रिका को पढ़ कर अपने विवाहित जीवन की सीमा को लांघने का प्रयास नहीं करेगें. नहीं तो इस भयानक रोग की विकरालता अमेरिका एवं अफ्रीकी देशों सदृश्य गंभीर से गंभीरतर और गंभीरतम होगा. जब आज हमारे गांवों में नमक-चीनी -पानी के सस्ते एवं सुलभ घोल के अभाव में बच्चे मर रहे हैं तब हम केवल अनुमान लगा सकते हैं कि एड्स जैसे भयानक एवं लाइलाज रोग के गांव तक पहुंच जाने की भयंकरता कितनी डरावनी होगी. इस रोग की भयंकरता से बचना हमारे समाज एवं सरकार के हाथों में है. सरकार को चाहिए कि एच०आइ०वी० पाजिटिव वेश्याओं ही नहीं अन्य रोगियों पर भी कड़ी निगरानी रखे. वेश्याओं को पेंशन देकर काले व्यवसाय से दूर रखें. सभी रक्त बैंकों को परीक्षण मशीन मुफ्त उपलब्ध कराएं अथवा अनिवार्य कर दें. केवल कानून बना लेना ही काफी नहीं होगा उसे अमल में भी लाना आवश्यक है. विश्व के देशों को विशेषकर विकसित देशों को जो अपनी शक्ति का रौब गरीब देशों पर दिखाते हैं, अधिक से अधिक धन एड्स के अनुसंधान पर लगाना चाहिए जिससे मानव इस भयानक राक्षस पर काबू पा सके. **[मनोज कुमार बोस, ए०एन०डी०एच०, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी] .**

□ मेरे विचार में विज्ञान के छात्रों एवं विज्ञान में रूचि लेने वाले सभी लोगों के लिए हिन्दी माध्यम में 'आविष्कार' से बढ़कर न तो कोई पत्रिका है और न ही भविष्य में होगी. 'एड्स एवं कैंसर' जैसे मानवता के दुश्मनों के जन्म लेने के कारणों एवं उनकी विकरालता का वर्णन, जिस स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित ढंग से नवंबर 1990 एवं दिसंबर 1990 के अंकों में किया गया है, उससे ऐसा लगता है कि इन रोगों के प्रति आम आदमी में जागरूकता पैदा करने हेतु इन लेखों को विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययन करने वाले छात्रों के पाठ्यक्रम में लगा देना चाहिए. अन्य लेख भी उच्च स्तरीय एवं ज्ञानवर्धक हैं. 'आविष्कार मंच' के कारण पत्रिका का इंतजार विशेष रहता है. 'ट्रांजिस्टर एल-सी-आर सर्किट में अनुनाद के कारण बजते हैं' ऐसा कैसे होता है? कृपया इस सन्दर्भ में कोई लेख देने का कष्ट करें. **[तीर्थराज प्रजापत, गजनेर रोड, चौखुंटी गली, सुख निवास, बीकानेर, राजस्थान—334001] .**

□ आविष्कार का नाम सार्थक है. यह पत्रिका नई जानकारियां प्राप्त करने का एक मात्र साधन है. मुझे दिसंबर 1990 के अंक से ऐसी जानकारियां मिली कि स्वयं ही मैं आपको पत्र लिखने में बाध्य हो गई. वैसे यह पत्रिका कई वर्षों से मेरे यहां लगातार आ रही है किन्तु इसे पढ़ने का मन ही नहीं होता था. लगता था कि विज्ञान जैसे कठिन विषय को मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता. परन्तु इस अंक को पढ़कर मेरी यह धारणा छिन्न-भिन्न हो गई. अब मैने निश्चय किया है कि पत्रिका के हर अंक को पढ़ा करूगी.

इस अंक में डा० विजय कुमार श्रीवास्तव के 'स्त्रियों पर एड्स की गहराती छाया' और डा० अचल गर्ग के 'कैंसर : असाध्यता का सिमटता दायरा' शीर्षक लेख रुचिकर लगे.

वैसे तो पूरी पत्रिका रुचिकर है, परन्तु इसमें महिलाओं के लिए कोई विशेष स्तंभ नहीं है. मेरा सुझाव है कि आप एक ऐसा स्तंभ शुरू करें जिसमें महिलाओं के लिए उपयोगी वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध हो. **[रिहाना खान, कोट कलां, पिहानी, हरदोई, उत्तर प्रदेश—241406] .**

□ 'स्त्रियों पर एड्स की गहराती छाया' दिसंबर 1990 के अंक में पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ. इस अंक में एड्स रोग की जानकारी का विस्तार से वर्णन किया गया है, साथ ही स्वयं सेवा संगठनों को आगाह भी किया गया है. **[डा० धर्मेन्द्र कुमार, डी०एच० एम०एस० (आनर्स) सिपारा, पटना-20] .**

□ मैं 'आविष्कार' का ढ़ाई साल से पाठक हूं. मैंने इतनी पत्रिकाएं पढ़ी लेकिन 'आविष्कार पत्रिका' में जो है और किसी में नहीं. वाकई यह एक बेमिसाल पत्रिका है. दिसबंर 1990 अंक पढ़ा. इसमें 'स्त्रियों पर एड्स की गहराती छाया', 'ऐसे लड़ेगें विषाणुओं से हम', 'कैंसरः असाध्यता का सिमटता दायरा', 'जैवीय पदार्थों से काल-निर्धारण', 'बाक्स कैमरे से अधिक चित्र कैसे खीचें' आदि सभी लेख सराहनीय थे. सिर्फ एक कमी खली 'हम सुझाएं आप बनाएं' कालम की. इस कालम को आप हर महीने दीजिए **[तहसीन आलम राज, 'राजमैन्शन', बी-14/75, सुभाष मौहल्ला, नार्थ घोन्डा, दिल्ली-110053].**

□ शीर्षक लेख बहुत रोचक लगा. इसमें 'एड्स' जैसे भयानक रोग के विषय में अच्छी जानकारी मिली. **[कुंवर सिंह आवनीश, ई/3183 आवास विकास कालोनी, राजा जी पुरम, लखनऊ 226019; राजेश कुमार, इंडियन असताल के निकट, क्वाटर नं० एच/41 बीरपुर, जिला-सहरसा, बिहार, 854340; शोयेब खां, कतरासगढ़, धनबाद, बिहार, 828113; अनिल कुमार पाण्डेय, धनेजां, बबुरी, वाराणसी, उ०प्र०; राजीव, सुपुत्र श्री डी०एन० प्रसाद, राजेन्द्र पुरी कलमबाग रोड, मुजफ्फरपुर, बिहार-842006; धीरेन्द्र कुमार सिंह, संजय सिंह, बर्धेड़ा, पुरुषोत्तमपुर, मिर्जापुर] .**

□ **जैवीय पदार्थों से काल निर्धारणः** दिसबंर 1990 के अंक में 'जैवीय पदार्थों से काल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर. गुप्ता कृत लाभदायक पुस्तकें

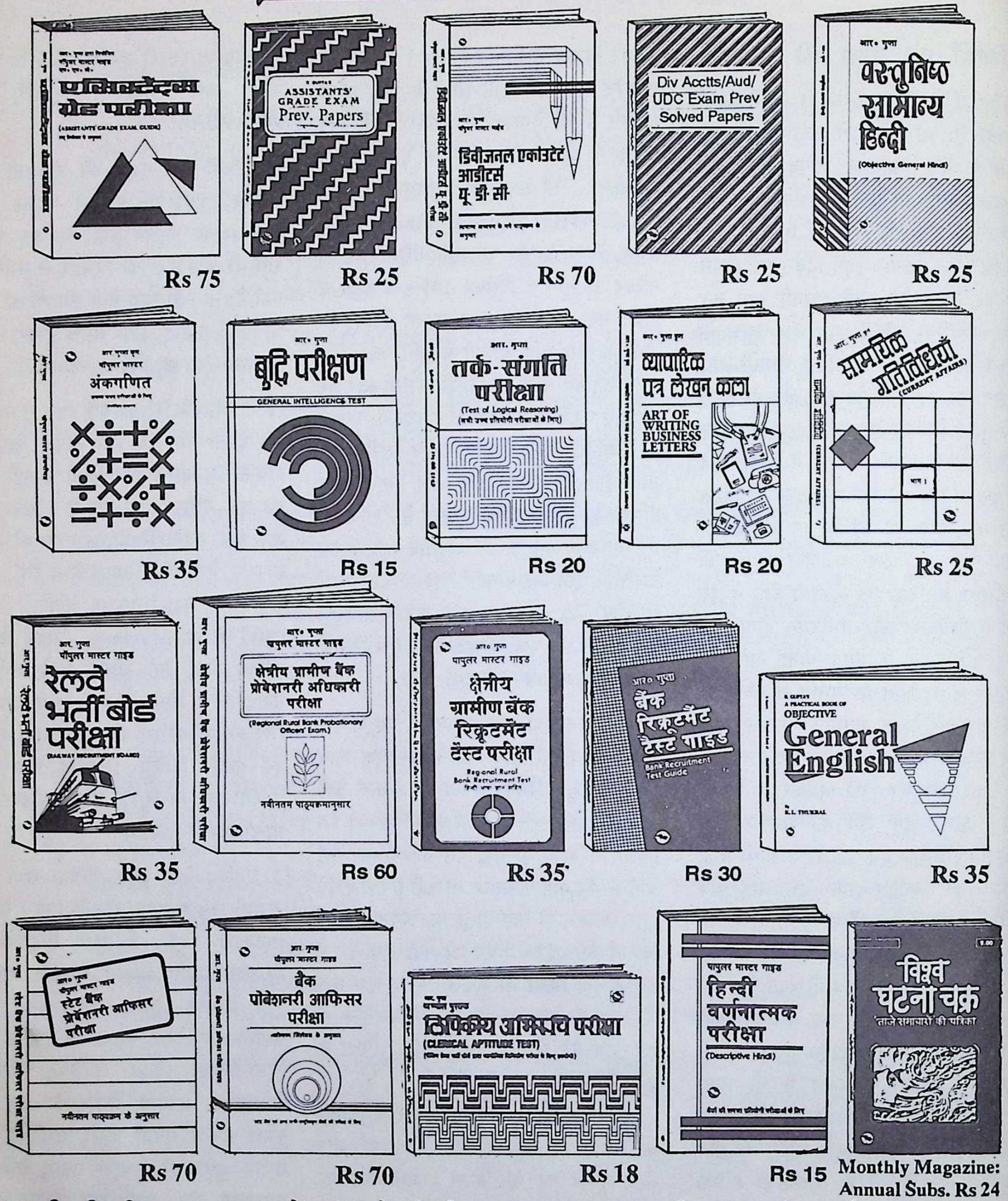

वी पी पी द्वारा पुस्तकें मंगाने के लिए 15 रु. का अग्रिम मनीआर्डर भेजें :

रमेश पब्लिशिंग हाउस 4457, नई सड़क, दिल्ली-6

'विश्व घटना चक्र' की नमूना प्रति मंगाने के लिए कृपया 3 रु. का मनीआर्डर भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्धारण' लेख बहुत ज्ञानवर्धक रहा. 'आविष्कार मंच' के अंतर्गत 'प्रिज्म के बिना इन्द्रधनुष बनाना', 'सस्ता तरल साबुन', 'बिना चोक के फ्यूज लाइट जलाएं' प्रयोग काफी सरल व उपयोगी रहे. पत्रिका की लोकप्रियता को देखते हुए पत्रिका को पाक्षिक बनाएं. कृपया 'बिना बिजली से चलने वाले रेडियो' व 'हेडफोन बनाने की सस्ती व सरल विधि' बताएं. तथा 'अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिएं' में जीव विज्ञान से संबंधित प्रश्नों को अधिक शामिल करें. **[राजेश कुमार यादव, और मुकेश कुमार यादव, सिरोंधा, इस्माइलपुर, बुलंदशहर-203025]** .

□ प्रिज्म के बिना इन्द्रधनुष बनाना:

मैं 'आविष्कार' का नया पाठक हूं. मुझे यह पत्रिका काफी ज्ञानवर्धक व रोचक लगती है. हमारे घर में सभी को इसका बेसब्री से इंतजार रहता है. दिसबंर 1990 के अंक से मैंने 'प्रिज्म के बिना इन्द्रधनुष' बनाया. लेख 'मैजलन शुक्र की टोह में' बढ़कर प्रसन्नता हुई. 'व्योमविहार' बहुत अच्छा लगता है. **[अनुज शर्मा सुपुत्र श्री सोमदत शर्मा, 23/375 बजीर पुर, आगरा-3]** .

□ स्वचालित विद्युत लैम्प:

'आविष्कार' के जून 1988 के अंक में प्रकाशित स्वचालित विद्युत लैम्प का मैंने एक अन्य उपयोग मामूली परिवर्तन के साथ ढूंढा है.

पहले यह रात होते ही बल्ब जल जाने वाला तथा प्रातः होते ही बल्ब बुझ जाने वाला परिपथ था. परंतु, मामूली परिवर्तन के साथ यह मार्निंग अलार्म व नाइट लैम्प दोनों अर्थात 'टू इन वन' बन जाता है.

अगर इस परिपथ में हम थ्री पिन वाला रिले लगा दें तो टू इन वन परिपथ तैयार हो जाएगा. इसके लिए हमें एक ए सी घंटी (बजर) व एक बल्ब की आवश्यकता होगी.

रिले में दो पांइट जो एक ओर हों वह तो पूर्वानुसार परिपथ से जुड़ जाएंगें तथा जो तीन पांइट होंगे उनमें से एक कहलाता है नार्मली क्लोज्ड (सामान्यतः बंद) तथा नार्मली ओपिन पिन (सामान्यतः खुला सिरा). इसे हम कुछ

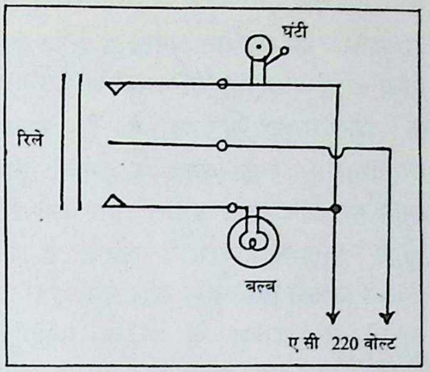

चित्र में दर्शाए अनुसार जोड़ेगें. इस परिवर्तन की खूबी यह है कि रात होते ही बल्ब स्वयं जल जाएगा तथा प्रातः होते ही जैसे ही बंद होगा तुरंत घंटी बजकर आपको गहरी नींद से जगाएगी. सुबह को आपको घंटी बंद करनी होगी अन्यथा यह तब तक बजती रहेगी जब तक कि शाम को बल्ब नहीं जल जाता. **[अरुण कांत जिंदल 'राजीव जे०' ए/8/653 आदर्श नगर, मोदीनगर दिल्ली रोड, उत्तर प्रदेश]** .

□ व्योमविहार:

'आविष्कार' का 'व्योमविहार' स्तंभ खास कर प्रशंसनीय है. इसके अन्तर्गत तारों और ग्रहों की जो जानकारी दी जाती है वह इस पत्रिका को छोड़कर मैंने अन्यत्र नहीं देखी. जब से यह स्तंभ चालू हुआ है मैं ग्रहों को पहचानने लगा हूं. मुझे अंतरिक्ष विज्ञान में काफी दिलचस्पी है और मैं इसे चाव से पढ़ता हूं.

इसमें 'हम सुझाएं आप बनाएं' स्तंभ के अन्तर्गत मुझे काफी दिनों से मीडियम वेव रेडियो ट्रांसमिटर के परिपथ का इन्तजार है जिसका रेंज अधिकतम 500 मीटर हो. **[सुधीर कुमार साह, सीताकुण्ड, हसनपुर, दरियापुर, मुगेंर, बिहार-811201]** .

□ जनवरी 1991 के अंक में 'आविष्कार मंच', 'समाचारिकी' तथा 'व्योमविहार' इत्यादि अत्यन्त ज्ञानवर्धक लगे. इस पत्रिका को पढ़कर मैं स्वयं अपने आप को आविष्कारक समझने लगता हूं. इसमें प्रकाशित नियमों को पढ़कर मैंने अपने घर का नक्शा ही बदल लिया है. अनुमान है कि अन्य पाठकगण भी इसी तरह लाभन्वित हुए होगें. **[सुरेन्द्र नाथ वर्मा, देवराई, कनकपुर, (पिण्डरा) वाराणसी-221206]**

□ कृपया 'व्योमविहार' का सम्पूर्ण आनन्द लेने के लिए पर्याप्त क्षमता के टेलिस्कोप को बनाने के बारे में बताएं. मैं एवं मेरे मित्र चाहते हैं कि आप लगभग 5 किलोमीटर क्षमता का मीडियम वेव ट्रांसमीटर बनाने की विधि भी प्रकाशित करें एवं कभी-कभी पत्रिका के माध्यम से प्रतियोगिताएं भी आयोजित किया करें. **[अरिसूक्ष्म यादव, 3 एफ आई तलवंडी, कोटा राजस्थान-324005]** .

—आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अपने पाठकों के आग्रह पर हम शीघ्र ही 'टेलिस्कोप' कैसे बनाएं लेख प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं ताकि हमारे पाठक 'व्योमविहार' स्तंभ से और भी लाभान्वित हो सकें.

—वरिष्ठ संपादक

□ पत्रिका के 'आपकी प्रतिक्रियाएं' स्तंभ में प्रकाशन के लिए हमें अपने पाठकों से हर रोज ढ़ेर सारे पत्र मिलते रहते हैं. इनमें से अधिकांश हमारा उत्साह बढ़ाते हैं तो कुछ हमारा ध्यान हमारी कमियों की ओर दिलाते हैं. ये सभी पत्र हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है और हम इनका स्वागत करते हैं. सच मानिए आपकी ये प्रतिक्रियाएं ही हमें पत्रिका में निरंतर सुधार लाने के लिए दिशा निर्देश देती हैं. इनमें से कुछ प्रतिनिधि पत्रों को हम हर महीने 'आपकी प्रतिक्रियाएं' स्तंभ में शामिल कर लेते हैं. चाहते हुए भी सभी पत्रों को इस स्तंभ में छाप पाना संभव नहीं. अतः वे मित्र जिनके पत्र इस स्तंभ में अभी तक छपे नहीं हैं, निराश होकर हमें पत्र लिखना बंद न करें. हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि पाठकों के पत्र हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और सभी पत्र अपना कुछ न कुछ योगदान अवश्य देते हैं चाहे ये न छपें. रचनात्मक टिप्पणियों और विचारों की हमें विशेष प्रतीक्षा रहती है.अतः आप जो भी महसूस करें हमें अवश्य लिखें.

—वरिष्ठ संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ बोकिया

आविष्कार के इस स्तंभ में हम आपका परिचय नए तारामंडलों से कराते हैं. आप केवल निर्देशों का पालन करते जाएं, आपके सामने खुलता जाएगा तारों, ग्रहों और नक्षत्रों का अनोखा संसार. आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है.

□ सर्वप्रथम उषाकाश के ग्रह. बुध को दस फरवरी तक उषाकाश में धनु-मकर के क्षेत्र में देखा जा सकेगा. सूर्य के अत्यन्त समीप स्थित होने के कारण यह उसके बाद दिखाई नहीं देगा, दूसरा ग्रह है शनि जो 4 फरवरी को उषाकाश में उदय होगा, यह आजकल मकर राशि के क्षेत्र में आ गया है. इन दोनों ग्रहों को उषाकाश में सूर्योदय से एक घंटा पूर्व (मास के मध्य में शनि तथा मास के आरंभ में बुध) आकाश में ढूंढना आरंभ करें.

संध्याकाश का प्रमुख आकर्षण है शुक्र ग्रह जो इस मास कुम्भ तथा मीन राशियों के सामने भ्रमण कर रहा है. मास के अन्त में मीन राशि में आ जाने के कारण यह हमारे मानचित्र की परिधि के अंदर (पश्चिमी क्षितिज पर) आ जाएगा, उस अवस्था में इसकी स्थिति प्रदर्शित की गई है.

मंगल तथा बृहस्पति ग्रह संध्याकाश में क्रमशः वृष तथा कर्क राशियों में स्थित हैं, मास मध्य के लिए इनकी स्थिति मानचित्र में प्रदर्शित हैं.

चन्द्रमा की कलाएं

कृष्ण पक्ष अष्टमी 6 फरवरी, अमावस्या 14 फरवरी, शुक्ल पक्ष अष्टमी 22 फरवरी तथा पूर्णिमा 28 फरवरी को हैं.

आइए एक दृष्टि फरवरी मा[illegible] के संध्याकाश पर डालें तथा तारों की वि[illegible]धता, रंग और प्रकृति के बारे में थोड़ा बहुत जानने का प्रयास करें.

आकाश का सर्वाधिक चमकीला प्रतीत होने वाला तारा व्याध (या सिरियस) है जो इस मास के दक्षिण-मध्य आकाश में है. इसका कान्तिमान -1.4 है. चमक के क्रम में दूसरे स्थान पर आने वाला अगस्त्य (या कैनोपस) भी इस मास के आकाश में उपस्थित है, वह एकदम दक्षिणी क्षितिज के ऊपर चमक रहा है. सारणी में आकाश के पच्चीस सर्वाधिक चमकीले तारों का विवरण दिया गया है, पहले स्तंभ में तारे का भारतीय नाम, दूसरे में पाश्चात्य नाम, तीसरे में वर्णक्रण श्रेणी, चौथे में आभासी कान्तिमान, पांचवें में दूरी (प्रकाश वर्ष में) तथा छठे में परमकान्तिमान दिया गया है.

सारणी में चमक के क्रम में छठे स्थान पर स्थित तारा भी इस मास के संध्याकाश को सुशोभित किए हुए है, उसका नाम है ब्रह्महृदय (या कैपेला). यही नहीं इस तालिका के 7, 8, 11, 13, 18, 21, 23 तथा 25 वें क्रम के तारे भी इस मास के संध्याकाश में हैं, उन्हें पहचानने का प्रयत्न कीजिए.

सारणी में कुछ तारों के भारतीय नामों पर '*' चिन्ह लगाया गया है. दरअसल यहां भारतीय नाम उपलब्ध न होने (नाम रखे न जाने) के कारण पाश्चात्य नाम ही लिख दिए गए हैं. वर्णक्रण श्रेणी की विस्तृत चर्चा हम किसी अन्य अवसर पर सविस्तार करेंगे. इस समय इतना जानना पर्याप्त होगा कि अंग्रेजी अक्षरों 'ओ', 'बी', 'ए', 'एफ', 'जी', 'के', 'एम', 'आर', 'एन' तथा 'एस' से व्यक्त होने वाली वर्णक्रम श्रेणी उस तारे के सतह के प्रभावी तापमान तथा वर्णक्रम की प्रकृति बतलाती है. ये अक्षर यहां तापमान के घटते क्रम के द्योतक हैं. उदाहरण के लिए 'ओ' तारों का तापमान सर्वाधिक होता है, लगभग 50 हजार अंश परम तथा 'एम' और उसके बाद के तारों का सबसे कम, लगभग 3600 अंश परम. 'एम', 'आर', 'एन' तथा 'एस' तारों को लगभग समान तापमान का होने के बावजूद अलग-अलग श्रेणियां उनके वर्णक्रम (या सैक्ट्रम) में विभेद के कारण दी गई हैं.

घटते तापक्रम के अतिरिक्त यह श्रेणी तारे के रंग में बढ़ती हुई लालिमा की भी द्योतक है. सूर्य की वर्णक्रम श्रेणी 'जी' है, यह पीले रंग का तारा है तथा इसकी सतह का औसत तापमान (प्रभावी तापमान) 5730 अंश परम है. वर्णक्रम श्रेणी में सूक्ष्म विभाजन करने के लिए 'ओ', 'बी' इत्यादि अक्षरों के सामने शून्य से नौ तक की संख्याओं का उपयोग किया जाता है, इस सूक्ष्मता की दृष्टि से सूर्य की वर्णक्रण श्रेणी 'जी' 2 आती है.

इसी स्तंभ में हमने आगे प्रथम, द्वितीय,......पंचम-पांच अलग वर्ग दिए हैं, ये पांच वर्ग 'कान्ति वर्ग' कहे जाते हैं. प्रथम से पंचम की ओर कान्ति में गिरावट आती है. प्रथम वर्ग में सर्वाधिक चमक वाले तारे महादानव तारे (सुपरजायण्ट स्टार्स) आते हैं. प्रथम वर्ग को प्रायः दो उपवर्गों 'ए' और 'बी' में विभक्त किया जाता है. 'ए' उपवर्ग में अधिक कान्ति तथा 'बी' उपवर्ग में अपेक्षाकृत कम कान्ति वाले तारे होते हैं. द्वितीय वर्ग चमकीले दानवाकार तारों का है. तीसरे में सामान्य रूप से चमकीले दानवाकार तारे आते हैं. चौथा वर्ग उपदानव (सबजायण्ट) तारों का है. पंचम वर्ग में आते हैं मूल-श्रेणी (या मेन सीक्वेंस) के वे ढेर सारे तारे जो आकाश में सर्वाधिक हैं. अक्षर 'पी' तारे के वर्णक्रम में मौजूद किसी असामान्यता (पिक्यूलिएरिटी) की ओर संकेत करता है.

सारणी में अगले स्तंभ में **आभासी कान्तिमान** दिए हैं, यानी कान्तिमान पैमाने में दी गई ये संख्याएं यह बताती हैं कि पृथ्वी से देखने पर कोई तारा कितना चमकीला दिखाई पड़ता है. हम एक बार 'व्योमविहार' में कान्तिमान पैमाने की चर्चा कर चुके हैं परंतु इस स्तंभ से बाद में जुड़े व्योमविहारियों के लिए कुछ प्रमुख तथ्यों का हम यहां उल्लेख कर रहे हैं.

अधिक चमक वाले तारों के कान्तिमान कम तथा कम चमक वालों के अधिक होते हैं. इस ऋणात्मक चिन्ह के अलावा कान्तिमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

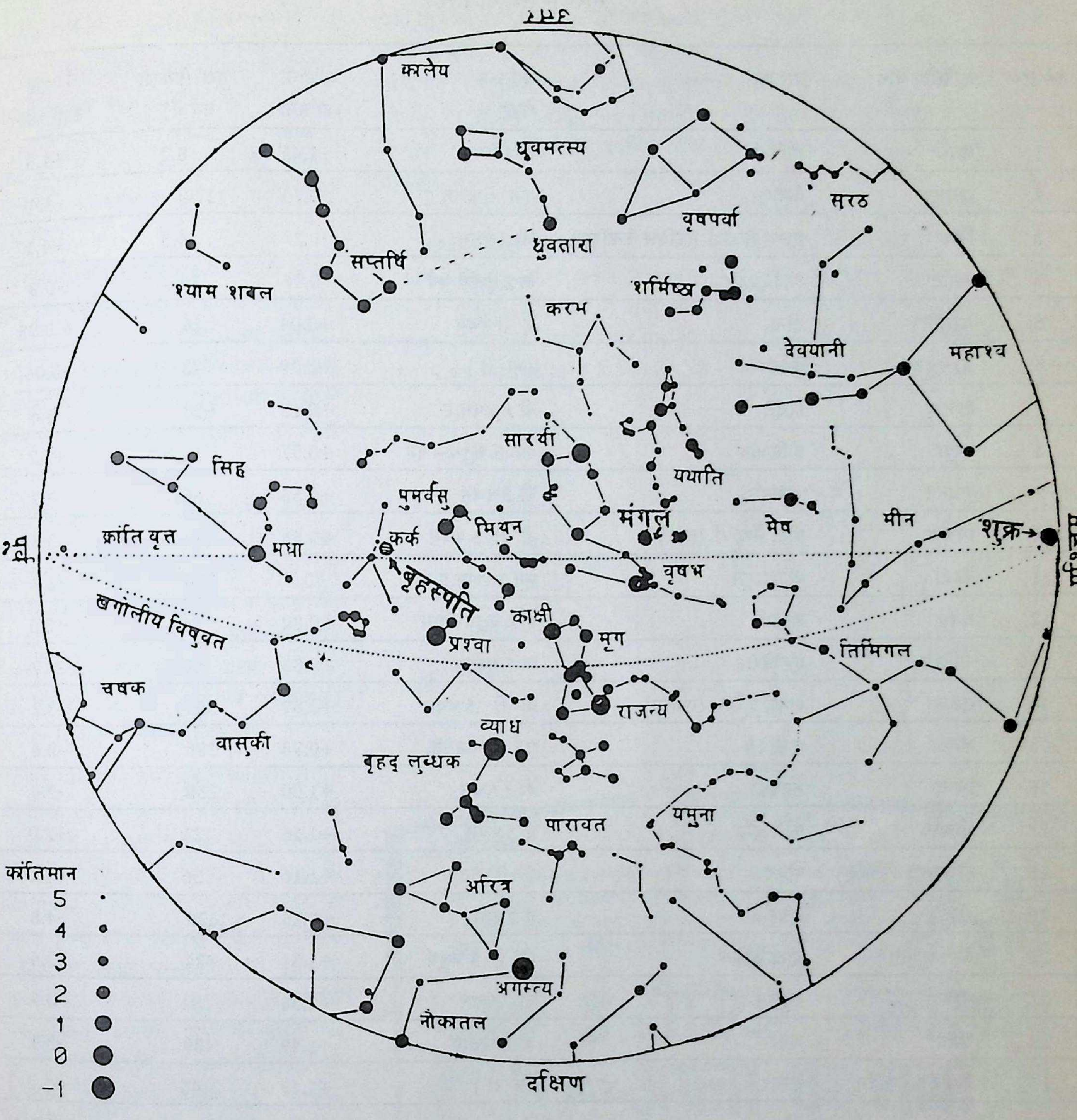

पैमाना लघुगुणकीय (लौगेरिद्मिक) है, यानी इसमें कान्ति के अनुपातों को दो संख्याओं के अंतर से प्रकट किया जाता है. यदि कान्तिमानों में अंतर एक का हो तो वह कान्ति में 2.512 का अनुपात दर्शाता है. यदि सूत्र रूप में लिखना हो और यदि दो तारों के कान्तिमान क्रमशः क 1 तथा क 2 हों और उनकी कान्तियां क्रमशः ल 1 तथा ल 2 हों तो इनमें परस्पर संबंध इस प्रकार का होगा :

क1–क2= –2.5 लघु (ल1/ल2)

(चूँकि 2.5= $\frac{1}{0.4}$= 1/लघु (2.512) अतः उपरोक्त सूत्र को इस तरह भी व्यक्त किया जा सकता है, जैसे :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी- तेजस्वी तारे

क्र० सं०	भारतीय नाम	पाश्चात्य नाम	वर्ण क्रम श्रेणी	आभासी कान्तिमान	दूरी (प्रकाश वर्ष में)	परम कान्तिमान
1	व्याघ	सिरियस	ए-1 पंचम	-1.43	8.7	+1.5
2	अगस्त्य	कैनोपस	एफ θ प्रथम ए	-0.73	1174	-4.4
3	मित्र	एल्फा सैन्टॉरी (रिमिल कैन्टॉरस)	जी 2 पंचम	-0.27	4.3	+4.1
4	स्वाति	आर्कट्यरस	के 2 तृतीय वर्ष	-0.06	36	-0.3
5	अभिजित	वीगा	ए θ पंचम	+0.04	26	+ 0.05
6	ब्रह्महृदय	कैपेला	(जी θ)	+0.09	42	-0.06
7	राजन्य	रिगल	बी 8 प्रथम ए	+0.15	900	-6.4
8	प्रश्वा	प्रोसिऑन	एफ 5 चतुर्थ-पंचम	+0.37	11.3	+2.7
9	अग्रनद	एशर्नार	बी 3 पंचम	+0.53	85	-2.7
10	मित्रक	बीटा सैण्टॉरी (हडर)	बी θ .5 पंचम	+0.66	456	-3.3
11	काशी	बीटलज्यूस	एम 2 प्रथम ए बी	+0.7	310	-2.9
12	श्रवण	अल्टेयर	ए 7 चतुर्थ-पंचम	+0.80	16.6	+2.3
13	रोहिणी	एल्डेबेरान	के 5 तृतीय	+0.85	68	-0.7
14	एक्रक्स *	एल्फ़ा क्रूसिस (एक्रक्स)	बी θ .5 पंचम	+0.87	359	-3.2
15	ज्येष्ठा	एण्टेरिज़	एम 1 प्रथम बी	+0.98	326	-2.6
16	चित्रा	साइका	बी 1 पंचम	+1.00	258	-2.4
17	मीनास्य	फोमैल्हॉट	ए 3 पंचम	+1.16	22	+2.0
18	पोलक्स* (पुनर्वसु)	पोलक्स	के θ तृतीय	+1.16	36	+1.0
19	हंस	डैनेब	ए 2 प्रथम ए	+1.26	1826	-4.8
20	वीटा क्रूसिस*	बीटा क्रूसिस	बी θ .5 चतुर्थ	+1.31	424	-3.5
21	मघा	रैगुलस	बी 7 पंचम	+1.36	84	-0.7
22	अढर*	अढर	बी 2 द्वितीय	+1.49	489	-3.1
23	कैस्टर* (पुनर्वसु)	कैस्टर	(ए θ)	+1.59	46	+1.0
24	मूल	शौला	बी 2 चतुर्थ	+1.62	274	-1.3
25	बैलाट्रिक्स*	बैलाट्रिक्स	बी 2 तृतीय	+1.64	359	-1.3

*इनके भारतीय नाम सम्भवतः नहीं दिए गए, अतः पाश्चात्य नाम ही यहां दिए जा रहे हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

$(\text{ल } 1/\text{ल } 2) = 10^{-0.4(\text{क } 1 - \text{क } 2)}$ अथवा
$(\text{ल } 1/\text{ल } 2) = (2.512)^{-(\text{क } 1 - \text{क } 2)}$

ऊपर दिए अंतिम सूत्र में यदि कांतिमानों का अंतर एक के बराबर हो, यानी -(क 1– क 2) = 1 (यानी क 2– क 1 = 1) तो ल 1 और ल 2 में 2.512 का अनुपात होगा अर्थात पहले तारे की चमक दूसरे तारे से लगभग ढाई गुना होगी.

कृपया ध्यान रहे कि पहले तारे की अपेक्षा दूसरे का **कान्तिमान अधिक** होगा. यदि क 2–क1=5 हो तो ल1/ल2=100 अर्थात कान्तिमान पैमाने को इस प्रकार बनाया गया है कि कान्ति में 100 का अनुपात कान्तिमानों में पांच के अंतर के बराबर होता है. ($2.512^5 = 100$).

यदि अब आप सारणी के आभासी कान्तिमान वाले स्तंभ पर दृष्टि डालें तो आप पाएंगे कि सर्वाधिक चमकीले तारे व्याध (या सिरियस) का आभासी कान्तिमान -1.43 है, केवल पहले चार तारों के कान्तिमान ऋणात्मक हैं. ज्यों-ज्यों इस सारणी में चमक घटती जा रही है तारों के कान्तिमान अधिकाधिक धनात्मक होते जा रहे हैं.

पर यदि कोई तारा बहुत चमकीला प्रतीत होता हो तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह वास्तव में निश्चित रूप से बहुत चमकीला होगा. सच तो यह है कि यदि दो तारों की वास्तविक चमक (नैज कान्ति) समान हो परन्तु दूसरा तारा पहले तारे से दो गुना दूरी पर हो तो उसकी चमक पहले की तुलना में एक चौथाई रह जाएगी (दूरी के व्युत्क्रमानुपात का नियम). इसलिए तारों की कान्ति की तुलना करने के लिए आवश्यक है कि पहले कान्तियों को किसी मानक दूरी के लिए परिवर्तित कर लिया जाए. इस काम के लिए दस पारसैक की दूरी को मानक माना गया. एक पारसैक 3.26 प्रकाश वर्ष के बराबर होता है. एक प्रकाश वर्ष वस्तुतः प्रकाश द्वारा एक वर्ष की अवधि में तय की जाने वाली दूरी को कहते हैं जो 9.46×10^{12} किलोमीटर (तेरह अंकों की संख्या) के बराबर होता है. यदि किसी तारे का कान्तिमान 'क' हो तथा उसकी पृथ्वी से दूरी 'द' हो तो तारे का परम कान्तिमान 'ख' (यानी वह कान्तिमान जो उस तारे का दस पारसैक की दूरी पर स्थित होने पर होता) नीचे दिए संबंध से प्रदर्शित किया जाता है :

$$\text{ख} = \text{म} + 5 \times \text{लघु } (10/\text{द})$$

सारणी के पांचवें तथा छठे स्तंभ में हमने तारों की दूरियां प्रकाश वर्ष में तथा उनके परम कान्तिमान दिए हैं. सारणी पर एक दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्याध जो हमें आकाश के सर्वाधिक चमकीले तारे के रूप में दिखाई देता है वास्तव में सर्वाधिक चमकीला नहीं है. यदि हम केवल इन्हीं पच्चीस तारों की बात करें तो इनमें सर्वाधिक चमकीला राजन्य तारा है जिसका परम कान्तिमान −6.4 है. इसके और व्याध के कान्तिमानों का अन्तर 1.5−(−6.4)= 1.5+6.4 = 7.9 हुआ, अतः राजन्य व्याध से $(2.512)^{7.9} = 1446$ गुना चमकीला है.

तारों की नैत्र कान्ति (जो परम कान्तिमान से प्रदर्शित होती है) को समझ कर ही हम तारों की कान्तियों की विविधता को सही परिप्रेक्ष्य में जान सकते है. □

हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन का एकमात्र कोर्स

यदि आप

अपने घर को कम खर्च में सजाना चाहते है. कमरों में सही प्रकार की फर्नीचर सैटिंग चाहते है. परदों, दीवारों व फर्नीचर में सही तालमेल चाहते है. हर कमरे में बहुपयोगी अलमारियां चाहते है. सही प्रकार की योजनाओं की जानकारी चाहते है. तो हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन सीखिए.

घर बैठे सीखिए

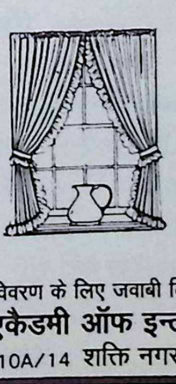

इन्टीरियर डेकोरेशन और अपना घर सजाइये

गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें.
सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें.
आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं.
कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान
कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं.

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें AID
एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली- 110 007

AID/30

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलेक्ट्रोनीय कलाई घड़ी के सेल को दोबारा उपयोग में लाना

☐ प्रचलित इलेक्ट्रोनीय कलाई घड़ियां जिस बटन जितने छोटे सेल से चलती हैं उन्हें चुक जाने के बाद फेंक दिया जाता है. इन्हें कुछ हद तक दोबारा इस्तेमाल किया जा सकता है. मैंने देखा है कि दोबारा उपयोग किए जाने योग्य बनाया गया ऐसा सेल छह माह या उससे अधिक समय तक काम दे सकता है.

इसके लिए चुक गए सेल के ऊपर और नीचे की सतह को पहले हल्का-सा रेगमार लगा कर साफ करके पोंछ लिया जाता है. इसके बाद सेल के ऊपरले स्टील वाले भाग को 6 वोल्ट की बैटरी के धनात्मक सिरे से और नीचे वाले भाग को ऋणात्मक सिरे से स्पर्श कराया जाता है. स्पर्श का समय हर हालत में 35 सेकंड से कम होना चाहिए, नहीं तो सेल में विस्फोट हो जाएगा. ऐसा करने से यह सेल दोबारा चार्ज हो जाता है और इसे फिर से इस्तेमाल में लाया जा सकता है.

माखन लाल सोनी
मुकाम-निमनवाड़ा
पोस्ट-खेड़ी कोर्ट
जिला-बैतूल (म० प्र०)

वाहन कम ईंधन से अधिक दूरी कैसे तय करें ?

ऊर्जा संकट के इस समय में जब तेल की हर बूंद से अधिक से अधिक दूरी तय करने की बात कही जा रही है यदि हम कुछ बातों का ध्यान रखें तो काफी ईंधन की बचत कर सकते हैं. उदाहरण के लिए 35-40 किलोमीटर प्रति घंटा की अनुकूलतम रफ्तार पर वाहन चलाएं. इससे आपका यात्रा समय कुछ अधिक नहीं बढ़ेगा. अचानक गाड़ी को चलाने और 'रोकने व एकदम दौड़ाने' से ईंधन बरबाद होता है. अनुसंधानों से पता चला है कि बहुत तेज गति से वाहन चलाने पर ईंधन की खपत में 50 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है.

इंजन की जांच कराते रहें : बड़ी संख्या में वाहनों के परीक्षण से पता चला है कि नियमित जांच कराते रहने से 6 प्रतिशत ईंधन की बचत होती है. यदि आपका इंजन अधिक धुआं देता है तो तुरंत इसकी जांच कराएं.

ब्रेक का इस्तेमाल कम करें : एक अच्छा वाहन चालक पहले ही अनुमान लगा लेता है कि उसे कितनी दूरी पर रुकना होगा और उसी के अनुसार गाड़ी रोकता है. झटके से ब्रेक लगाने पर बहुत सी उपयोगी ऊर्जा बेकार चली जाती है.

क्लच का सही इस्तेमाल करें : बार-बार क्लच का उपयोग करने पर ऊर्जा नष्ट होती है.

एयर-फिल्टर की नियमित सफाई कराएं: इंजन की सफाई न करने पर उसमें घिसावट जल्दी आती है और पेट्रोल अधिक खर्च होता है निकास नलिका और साइलेंसर अवरुद्ध होने पर इंजन पर दबाव पड़ता है जिससे ज्यादा पेट्रोल खर्च होता है.

टायर की हवा जांचते रहें : टायरों में हवा कम होने पर उनका रोलिंग प्रतिरोध बढ़ जाता है जिससे इंजन पर जोर पड़ता है. पेट्रोल की खपत बढ़ जाती है. परीक्षणों से पता चला है कि टायरों में आवश्यकता से 25 प्रतिशत हवा कम होने पर ईंधन की खपत में 5 प्रतिशत अधिक वृद्धि होती है और उसकी कार्यक्षमता भी 25 प्रतिशत कम हो जाती है.

तेल को रिसने से रोकें : तेल की टंकी की प्रतिदिन जांच करें. आपको जानकर आश्चर्य होगा कि एक सेकंड में एक बूंद पेट्रोल रिसने का अर्थ होगा वर्ष में 2000 लीटर पेट्रोल का रिसाव.

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयोगी मिट्टी का फ्रिज

☐ मैंने अपने गांव के बहुत से लोगों से मिट्टी का यह फ्रिज बनवाया है. यह सफलतापूर्वक काम कर रहा है और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए बहुत उपयोगी है. मैं यहां इसके बनाने का तरीका दे रहा हूं :

सबसे पहले मिट्टी के पकाए गए तीन बेलनाकार बर्तन 'अ', 'आ', और 'ई' लेते हैं जो चित्रानुसार समान ऊंचाई के होते हैं, लेकिन चौड़ाई में अलग-अलग होते हैं और एक के अन्दर एक करके फिट हो सकते हैं. सबसे चौड़े बर्तन 'अ' में नीचे के हिस्से में प्लास्टिक का एक नल 'न' कोलतार की सहायता से लगा दिया जाता है. बर्तन 'अ' में छेद बर्तन को पकाने से पहले कर लिया जाता है. बर्तन 'आ' को 'अ' में चित्रानुसार तीन गुटकों के आधार पर रखते हैं. दोनों बर्तनों के बीच वाले खाली स्थान में पानी भर देते हैं.

अब बर्तन 'आ' के पेंदें में थोड़ा बालू रख कर बर्तन 'इ' को उसमें रख देते हैं. अब किनारे के खाली स्थान में सावधानी से बालू भर देते हैं तथा उसमें भी कभी-कभी पानी डालते रहते हैं.

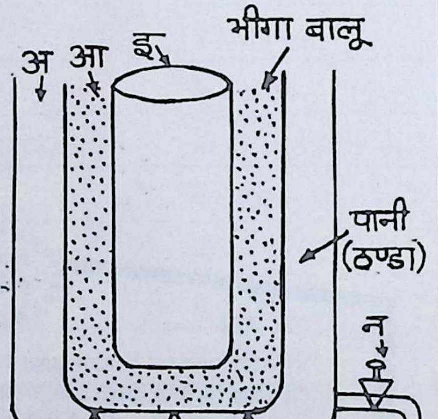

मिट्टी के बर्तनों का फ्रिज

बर्तन 'इ' आपका फ्रिज है. इसके अन्दर ताप से बचाने के लिए, आप मनचाहा सामान रख सकते हैं. इसके अन्दर सामान रख कर मिट्टी के ही बर्तन से ढक दें. समय-समय पर बीच का पानी बदल दिया करें.

सुनील कुमार
तेलहाडा टाडपर
नालन्दा (बिहार).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो मिनट से अधिक समय के लिए रुकना हो तो इंजन को बंद कर दें : रेलवे क्रोसिंग, क्रांस-रोड सिग्नल आदि पर जहां अधिक समय लगता है इंजन को बंद कर देना चाहिए.

सही लुब्रिकेंट इस्तेमाल करें : विनिर्माताओं द्वारा बताए गए अनुपात में सही श्रेणी का तेल पेट्रोल में मिलाएं.

उपर्युक्त सुझावों को हमने स्वयं इस्तेमाल करके देखा है. हमने 3 फरवरी, 1991 को नई दिल्ली के अशोक होटल में 'एसोसिएशन फार मोटर रेसिंग स्पोर्ट्स (ए आर एम एस) पुणे द्वारा आयोजित 'स्ट्रेच-देट-लीटर मोबाइक प्रतियोगिता' में भाग लिया था. प्रत्येक मोबाइक सवार को 200 मिलीलीटर पेट्रोल देकर अधिकतम दूरी तय करने के लिए कहा गया. हमने अपनी मोटर साइकिलों से क्रमशः 20.4 और 17.4 किलोमीटर अर्थात् औसत 102 किलोमीटर प्रति लीटर तथा 86 किलोमीटर प्रति लीटर की दूरी तय की. यह वाहनों की देख भाल और उसे चलाने की निपुणता तथा 35 किलोमीटर प्रतिघंटा की स्थिर गति के कारण संभव हो सका. आयोजकों ने हम दोनों को 500-500 रुपए नकद, मोमेंटो, पदक तथा उपहार प्रदान किए.

रवि ठाकुर और एम०एस० मलिक
एन आर डी सी
नई दिल्ली-110048

टेप रिकार्डर पर मीडियम वेव रेडियो की आवाज

मैंने कुछ सस्ते टेपरिकार्डर केवल कैसेट प्लेकर का उपयोग करने के दौरान यह पाया है कि जब टेपरिकार्डर बिजली से जल रहा हो उस समय यदि टेपरिकार्डर में कैसेट को बिना लगाए उसके 'प्ले' बटन को दबाया जाए और टेपरिकार्डर की मोटर को 'अर्थ' कर दिया जाए तो टेपरिकार्डर पर निकटवर्ती मीडियम वेंव के स्टेशन की आवाज सुनाई देने लगती है. किन्तु कुछ सेटों में इन प्रयोग के दौरान आवाज कुछ धीमी होती है.

इस प्रकार साधारण कैसेट प्लेयर में बिना कुछ खास फेर बदल किए उसे मीडियम रेडियो रिसीवर के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता हैं पर ऐसा क्यों होता है? यदि किसी पाठक को इस संबंध में और जानकारी हो तो वह कृपया 'आविष्कार मंच' के माध्यम से हमें यह जानकारी देने का कष्ट करें.

सुभाष चन्द्र पाण्डेय
एस०डी० मान्टेसरी स्कूल के निकट,
पो० खरिका लखनऊ-226002 (उ० प्र०).

पुस्तकालय 079505 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

'आविष्कार मंच' में आपका भी स्वागत है

क्या आपके मन में कोई आविष्कार कौंध रहा है?...या आपको अपने किसी नए विचार को साकार करने अथवा पूर्ण रुप देने में किसी अन्य के दिमागी सहयोग की जरुरत है? कोई प्रौद्योगिक/तकनीकी जानकारी आपने विकसित की है जिसे आप दूसरों को देना चाहते हैं?...अथवा आप 'आविष्कार' के पाठक वर्ग से ऐसी ही कोई जानकारी चाहते हैं या अपनी तकनीकी उलझन सुलझवाने की अपेक्षा रखते हैं?...तो आइए 'आविष्कार मंच' में आपका स्वागत है.

इस स्तंभ के माध्यम से हम अपने पाठकों को एक ऐसा मंच प्रदान करते हैं जहां वे अपने द्वारा विकसित नए आविष्कारों, नई युक्तियों, नए विचारों और प्रस्तावों को और अधिक विकसित करने के उद्देश्य से उन्हें पत्रिका के व्यापक आविष्कारक पाठक समुदाय के समक्ष रख कर उनके विचारों और सुझावों का लाभ उठा सकते हैं. इस मंच के माध्यम से आप अन्य प्रबुद्ध लोगों को अपने आविष्कार से परिचित भी करा सकते हैं.

इस स्तंभ में प्रकाशित रचनाओं में वर्णित आविष्कार/विचार आदि के लिए आपके पास कोई सुधार/सुझाव हो तो उसे भी आप 'आविष्कार मंच' में भेज सकते हैं.

प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले प्रलेख संक्षिप्त होने चाहिएं. रेखाचित्र सफेद ड्राइंग कागज पर काली स्याही से साफ-साफ बने हों. प्रलेख और रेखाचित्र की दो-दो प्रतियां भेजें. यह स्तंभ क्योंकि वास्तव में पाठकों के बीच वार्तालाप का माध्यम है, अतः इस स्तंभ में प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक देने का प्रावधान नहीं है.

—वरिष्ठ सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टूथपेस्ट का फ्लोराइड

'खोलो, दबाओं और ब्रश पर लगाओ', '... का छोटा पैकेट', '... आप ने इसे आजमा कर देखा है,' '... के हैं तीन कमाल', '... की आई बहार' आदि जैसे विज्ञापनों की आजकल संचार माध्यमों में बाढ़-सी आ गई है. विकसित देशों के साथ-साथ विकासशील देशों में भी फ्लोराइड युक्त टूथपेस्ट पर लोग विशेष ध्यान देने लगे हैं. फ्लोराइड आज अरबों डालर के व्यापार का साधन बन गया है.

लेकिन वैज्ञानिकों में फ्लोराइड के उपयोग पर काफी विवाद है. हमारे यहां डेन्टल एसोसिएशन आफ इंडिया का मानना है कि फ्लोराइड का उपयोग पूरे विश्व में दांतों को सड़ने से बचाने के लिए किया जा रहा है. वे इसके पक्ष में विश्व संगठन की रिर्पोट प्रस्तुत करते हैं लेकिन वालेन्टरी आर्गेनाइजेशन इन इन्टरेस्ट आफ कंज्यूमर एजुकेशन (बाइस) ने इस वक्तव्य को तथ्यों से दूर बताया है.

पिछले दिनों केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग ने एक आदेश जारी कर टूथपेस्ट में 1000 भाग प्रति दस लाख भाग (पी पी एम) से ज्यादा फ्लोराइड इस्तेमाल करने पर रोक लगा दी है. अब टूथपेस्ट पर यह नोट लिखना भी जरूरी है कि सात वर्ष से कम उम्र के बच्चों को फ्लोराइड वाला टूथपेस्ट इस्तेमाल नहीं करना चाहिए.

वाइस के एक सदस्य प्रोफेसर पी० के० घोष के अनुसार हम हर रोज पानी, भोजन, नमक और चाय के द्वारा काफी मात्रा में फ्लोराइड लेते हैं जो कि पहले से ही उपभोग की वांछित सीमा से ज्यादा है. भारत के 25 राज्यों में से 13 राज्यों में 'फ्लोराइड टाक्सिसटी' और 'फ्लोरोसिस' जैसी दांतों की बीमारियां बड़े पैमाने पर पाई जाती हैं.

प्रोफेसर घोष के अनुसार फ्लोराइड की ज्यादा मात्रा से कैल्शियम की कमी हो सकती है जिससे उच्च रक्तचाप हो सकता है और पुरुषों में कोलेस्ट्रोल की मात्रा में कमी आ सकती है. खासतौर पर बच्चों को ज्यादा फ्लोराइड के इस्तेमाल से फ्लोरोसिस बहुत जल्दी हो जाता है.

भारत की लगभग 88 प्रतिशत जनता आज भी नीम व कोयले के बारीक पाउडर जैसे परम्परागत मंजनों का उपयोग करती है. ऐसे में टूथपेस्ट उद्योग के फलने-फूलने के बहुत अवसर हैं. आज यह उद्योग विज्ञापन पर ही सालाना लगभग 20 करोड़ रुपए खर्च कर रहा है. वैज्ञानिक वैसे फ्लोराइड के बेतहर उपयोग के लिए सक्रिय हैं. हमें इसका उपयोग आंख मीचकर नहीं सोच समझ कर करना चाहिए.

एलर्जी पर अनुसंधान

एलर्जी स्वयं में कोई गंभीर बीमारी न होते हुए भी मनुष्य को कष्ट देने वाली एक ऐसी लाक्षणिक शारीरिक प्रवृत्ति है जिससे वह सदैव परेशान रहता है. एलर्जी क्या है? तथा यह क्यों होती है, इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों की राय अलग-अलग है परन्तु एलर्जी एक ऐसी स्थिति है जिससे शारीरिक कष्ट होता है. इस पर वैज्ञानिक एक मत हैं. अब इसे फैशननुमा शिकायत कह कर और अधिक नहीं टाला जा सकता. एलर्जी के संबंध में विश्वव्यापी खोज जारी है. जर्मनी की हालत तो यह है कि वहां प्रत्यके चार व्यक्तियों में से एक व्यक्ति एलर्जी से पीड़ित है.

औद्योगिकीकरण के साथ—साथ प्रदूषण की निरंतर वृद्धि ने अनेक रोगों को जन्म दिया है. इनमें से एलर्जी भी एक है. यह वातावरण, खान-पान, रहन-सहन आदि किसी भी कारण से हमारे शरीर को प्रभावित करती है. जब शरीर की प्रतिरोधक शक्ति इन बाह्य कारणों का प्रतिरोध नहीं कर पाती तो किसी न किसी

विटामिन 'ए' से मृत्यु दर में कमी नहीं

हैदराबाद के राष्ट्रीय पोषण संस्थान (एन आई एन) में किए गए एक अनुसंधान अध्ययन से पता चला है कि विटामिन 'ए' बच्चों में मृत्यु को रोकने में सहायक नहीं होता जैसा कि दवा बनाने वाली कई कम्पनियों का दावा है.

संस्थान के पूर्व अध्यक्ष डा०सी० गोपालन ने कहा है कि तीसरी दुनिया के देशों में दवा बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियां लोगों को भ्रमित कर विटामिन 'ए' युक्त दवाएं बेच रही है.

भारत विटामिन 'ए' युक्त दवाएं अंधापन रोकने के उद्देश्य से आयात करता है. एन आई एन के निदेशक डा० विनोदनी रेड्डी का कहना है कि उनके संस्थान में किए गए अनुसंधान अध्ययन से जो परिणाम उभर कर सामने आए हैं, उसके अनुसार इस दावे में कोई औचित्य नहीं रह जाता कि विटामिन 'ए' बच्चों में मृत्यु दर घटाने में जरा सा भी सहायक होता है. हां विटामिन 'ए' अंधापन रोकने में बहुत कारगर साबित हुआ है.

राष्ट्रीय पोषण संस्थान की ओर से आंध्र प्रदेश के लालडेंगा जिले में 18 हजार बच्चों पर विटामिन 'ए' के प्रभावों पर अध्ययन किए गए. डा० रेड्डी का कहना है कि बच्चों को आवश्यक विटामिन 'ए' सामान्य भोजन से प्राप्त हो जाता है. इसलिए विटामिन 'ए' की टेबलेट या दवा लेने की कोई आवश्यकता नहीं होती.

राष्ट्रीय पोषण संस्थान ने आंध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय के बागवानी विभाग के साथ मिलकर 'न्यूट्रिशन गार्डेन' नाम से एक प्रोजेक्ट शुरु किया है. संस्थान के पिछवाड़े के एक बाग में एक मॉडल के बतौर कई विटामिन 'ए' युक्त सब्जियां उगाई गई हैं. 'न्यूट्रिशन गार्डेन' का काम नरसापुर, आदिलाबाद और अनंतपुर में शुरू किया गया है. पपीता और पालक न्यूट्रिशन गार्डेन के लिए चुनी गई 20 फल सब्जियों में शामिल हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में उसके लक्षण प्रकट होने लगते हैं, यही एलर्जी है.

ब्रिटेन के वैज्ञानिकों को पिछले दिनों एलर्जी को समझने में एक बड़ी सफलता मिली. यह प्रयोग सूअर के बच्चों पर किया गया. इससे मनुष्यों में होने वाली एलर्जी के बारे में कुछ नए तथ्य सामने आए. सूअर के बच्चों को दूध छुड़ा कर उन पर एक अध्ययन किया गया. उनका सामान्यतः 12 से 16 सप्ताह के बजाए लगभग तीन सप्ताह बाद ही दूध छुड़ा दिया गया. इन बच्चों में जो परिवर्तन देखे गए वे ठीक वैसे ही थे जो उन लोगों में होते हैं. जिन्हें दूध से एलर्जी होती है. इसके बाद सूअर के उन बच्चों को कम प्रोटीन युक्त भोजन के साथ उनकी खुराक में कई परिवर्तन किए गए. इससे उनकी सेहत तो सुधरी ही साथ ही एंटीबायोटिक्स की भी कम जरूरत पड़ी.

लगभग बीस प्रतिशत लोग अपने जीवनकाल में कभी न कभी एलर्जी से पीड़ित होते है. प्रोफेसर जोहोसरिंगां तथा अन्सर्ड आगस्त स्टेमान का कहना है कि दो व्यक्ति यदि एक साथ रहते हैं तो बहुत सम्भव है कि एक दूसरे के कारण उन्हें परस्पर एलर्जी हो जाए. मानसिक क्रोध करने वाले मरीजों से उनके बच्चों को एलर्जी हो सकती है. बायफ्रेण्ड से गर्लफ्रैण्ड को और कर्मचारी को साहब से भी एलर्जी हो सकती है. एलर्जी के कारण अर्थ व्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है. एलर्जी से ग्रस्त व्यक्ति गंभीर रूप से बीमार न होते हुए भी कार्य कर पाने में कठिनाई महसूस करता है. उसकी क्षमता घट जाती है, अतः इससे होने वाली क्षति अभी अपरिचित ही है.

नई कूड़ा व्यवस्थापन प्रौद्योगिकी

ब्रिटेन की समुद्री पर्यावरण प्रबंध से जुड़ी एक संस्था ओ०ई०एम० ने कूड़ा-करकट को ठिकाने लगाने के लिए एक नई प्रौद्योगिकी का विकास किया है. इसमें प्रदूषित मिट्टी को ऐसे कांच में बदल दिया जाता है जो किसी भी चीज से क्रिया नहीं करेगा. इसके द्वारा हवा और पानी के छीजन भी नष्ट किए जा सकते हैं.

ब्रिटेन में ओ०ई०एम० छीजन इकट्ठा करने वाली एक बहुत बड़ी कम्पनी है. इसका कहना है कि अमेरिका में 'जियोसेफ' कम्पनी द्वारा उपयोग में लाई जा रही प्रणाली से उसकी प्रस्तावित प्रणाली काफी सस्ती है. अमेरिकी प्रणाली में प्रति टन 150 पाउण्ड खर्च आता है जब कि इस नई प्रणाली में प्रति टन सिर्फ 50 पाउण्ट खर्च आने का अनुमान है. नई प्रणाली में गैस से जलने वाली भट्टी के अंदर गर्म प्लाज्मा तैयार किया जाता है. भट्टी में से गुजरने वाला छीजन कांच के टुकड़ों में बदल जाता है. कांच के इन टुकड़ों का इमारतों और सड़कों की भराई में इस्तेमाल किया जा सकता है.

कूड़े को फिर से उपयोग-चक्र में कैसे लाया जाए इसका सबसे अच्छा उदाहरण भारत की सड़कों और गलियों में कचरा बीनने वाली स्त्री और बच्चे हैं. कागज व प्लास्टिक की वस्तुओं को हमारे यहां कई बार उपयोग में लाया जाता है जब कि अमेरिका व यूरोप में इसके दुबारा उपयोग की आवश्यकता अब महसूस की जाने लगी है. सच तो यह है कि विकासशील तथा विकसित देशों में यह बात बड़ी तेजी से गले उतर रही है कि कूड़े की खदानें, सोने की खदानों से कम नहीं हैं. इस लिए कूड़े के व्यवस्थापन की समस्याओं को गंभीरता से लिया जाने लगा है.

वैज्ञानिक भी जान रहे हैं चींटियों की भाषा

भाषा और जंतुओं की बात आने पर हम सहज ही कह देते हैं कि खग की भाषा खग ही जाने. लेकिन मनुष्य शुरु से ही पशु-पक्षियों की भाषा जानने की कोशिश करता रहा है. चींटियों के भाषा-कोष के संदेशों को भी वैज्ञानिक समझने की कोशिश कर रहे हैं.

चींटियों पर हुए नए वैज्ञानिक अनुसंधानों से पता चला है कि सामूहिक प्राणी होने के कारण ये सभी कार्यों को आपस में बांट लेती हैं. प्रत्येक चींटी को अपने समुदाय के लिए कुछ न कुछ कार्य करना होता है. कुछ चींटियां भोजन की तलाश में दूर-दूर तक भटकती हैं. उन्हें जो भी खाद्य पदार्थ मिलता है उसे वे अपने घर लाती हैं और सब चींटियां मिल कर खाती हैं.

कई बार देखने में आता है कि मीठे पदार्थ बिखरे और चींटियां आ जमीं. वस्तुतः चींटियों में से एक तरल पदार्थ (फेरोमोन) निकलता है जो उड़कर 100 फुट दूरी तक अपना असर दिखाता है. अलग-अलग झुंडों में अक्सर एक विशेष गंध होती है. खतरे की सूचना देने के लिए भी फेरोमोन काम आता है. इनके एक समुदाय में पांच लाख चींटियां हो सकती हैं.

कैंसर के विरुद्ध एक और दवा

हाल के कुछ नए अनुसंधानों से आशा बंधी है कि आने वाले दिनों में कैंसर का इलाज भी अन्य सामान्य बीमारियों की तरह हो सकेगा. सन् 1947 में भारत में प्रति दस हजार व्यक्तियों में से आठ कैंसर से पीड़ित थे. आज यह संख्या बढ़कर 12 पहुंच गई है. इस सदी के अंत तक इसमें दो से लेकर तीन गुना वृद्धि हो सकती है. भारत में कैंसर होने के समय लोगों की औसत आयु 45.9 वर्ष पाई गई है. अमेरिका और यूरोप में यह 55.7 वर्ष है जबकि अफ्रीका में 35.9 वर्ष. अमेरिका व यूरोप में लोगों का खान-पान बेहतर होने के कारण वहां कैंसर छोटी उम्र में छेड़ छाड़ नहीं कर पाता.

भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के फैलो प्रो० पी० एन० श्रीवास्तव के अनुसार विकिरण जीव विज्ञान कैंसर के इलाज में बहुत महत्वपूर्ण है. कैंसर वस्तुतः कोशिकाओं की संख्या में अचानक होने वाली अनियमित वृद्धि का परिणाम है. इलाज के लिए कैंसर ग्रस्त कोशिकाओं को समाप्त करना होता है. इसके लिए अब विकिरण का उपयोग किया जा रहा है. लेकिन विकिरण से स्वस्थ से स्वस्थ कोशिकाओं को भी नुकसान पहुंच सकता है. डा० श्रीवास्तव के अनुसार एक ऐसी दवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकसित की गई है जिसके इंजेक्शन लगाने पर वह स्वस्थ व कैंसरग्रस्त दोनों प्रकार की कोशिकाओं में पहुंच तो जाती है लेकिन स्वस्थ कोशिकाओं से दो ही दिन बाद अपने आप अलग हो जाती है. इससे कैंसर के इलाज में बहुत सहायता मिलेगी.

पिछले दिनों भारत में 'इंडियन सोसायटी आफ आंकोलाजी' ने कैंसर के इलाज, रोकथाम और नियंत्रण को लेकर एक सेमिनार का आयोजन किया था जिसमें देश-विदेश के कई प्रतिष्ठित चिकित्सक शामिल हुए थे. कैंसर के इलाज में उपयोगी नई दवा के विकास की सूचना इसी संगोष्ठी में दी गई थी.

भूजल स्रोतों पर देश का पहला एटलस

भारतीय वैज्ञानिकों ने उपग्रह से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर भूजल स्रोतों का पहला स्वदेशी एटलस तैयार किया है. इसमें भूमिगत जल स्रोतों का जिलावार विस्तृत विवरण दिया गया है.

भारतीय भूजल 'आकृतिक मानचित्र' नामक इस एटलस को अहमदाबाद के अंतरिक्ष उपयोग केंद्र के वैज्ञानिकों ने तैयार किया है. यह एटलस 18 खंडों में है और इसे तैयार करने में विभिन्न संगठनों द्वारा उपलब्ध कराए गए दूरसंवेदी (उपग्रह से प्राप्त) आंकड़ों का उपयोग किया गया है. ये आंकड़े मुख्य रूप से तिरूअनंतपुरम स्थित भूविज्ञान अध्ययन केंद्र तथा राष्ट्रीय सुदूर संवेदन एजेंसी ने उपलब्ध कराए हैं.

अंतरिक्ष उपयोग केंद्र के वैज्ञानिकों ने पूरे देश को जिलावार मानचित्र बनाने के लिए एक अनुपात ढ़ाई लाख के पैमाने का उपयोग किया है. वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही है कि वे पेयजल समस्या से ग्रस्त गांवों से 1.6 किलोमीटर के दायरे में भूजल स्रोत का पता लगाने का तरीका खोजने में सफल रहे हैं. गुजरात, राजस्थान, बिहार, जम्मू व कश्मीर, मध्य प्रदेश और हरियाणा के जनस्वास्थ्य अभियंता विभागों के अनुरोध पर हजारों मानचित्र तैयार किए गए हैं. इनमें वे क्षेत्र दिखाए गए हैं जहां भूमिगत जल स्रोत उपलब्ध हैं.

भूमिगत जल स्रोतों का पता लगाने में ये मानचित्र काफी सफल रहे हैं. इनके आधार पर जिन राज्यों में बोरिंग की गई उनमें से 90 प्रतिशत में भूजल उपलब्ध हुआ. राष्ट्रीय पेयजल मिशन ने हर ग्रामीण को प्रतिदिन 40 लीटर पेयजल उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया है. साथ ही उसका लक्ष्य यह भी है कि पेयजल स्रोत गांव से डेढ़ किलोमीटर के दायरे में हो. रेगिस्तानी इलाकों में मवेशियों के लिए 30 लीटर अतिरिक्त पेयजल रोज उपलब्ध कराने का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया है.

किसी स्थान विशेष पर भूजल की उपलब्धता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है. भारत में तीन प्रकार की भूमि में भूजल स्रोत हो सकते हैं. पहला क्षेत्र मुख्यतः सिंधु-गंगा का मैदान है, जो बालू और कंकड़-पत्थर युक्त मिट्टी से बना है. यह कुल क्षेत्रफल का 30 प्रतिशत है. दूसरे प्रकार का क्षेत्र मुख्य रूप से बालू-पत्थर वाला है. यह मात्र 5 प्रतिशत है. तीसरी ठोस भूमि है जिसमें रवादार चट्टानें जैसे ग्रेनाइट, शिस्ट, बेसाल्ट, नीस आदि तथा परतदार चट्टानें हैं. यह कुल भू-भाग का 65 प्रतिशत है.

देश में बढ़ते पेयजल संकट को दूर करने में शायद इस एटलस से कुछ मदद मिल सके. आज छोटे शहरों की बात तो दूर, राज्यों की राजधानी से लेकर देश की राजधानी तक पेयजल संकट का सामना कर रही है.

सौर ऊर्जा में कितनी ऊर्जा?

पेट्रोलियम की कमी को देखते हुए दुनिया भर में ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर काफी तेजी से अनुसंधान हो रहा है और वैज्ञानिकों का सबसे अधिक ध्यान सौर ऊर्जा पर ही गया है. हमारे देश में भी सौर ऊर्जा के बेहतर उपयोग पर खोज कार्य चल रहा है.

नागपुर विश्वविद्यालय के भौतिक वैज्ञानिक डा० बी० टी० देशमुख का कहना है कि अगली शताब्दी में विश्व को 30 अरब मेगा यूनिट (एक मेगा यूनिट = 10 लाख यूनिट) ऊर्जा की जरूरत पड़ेगी, लेकिन हमारे पास जीवाश्म ईंधन (तेल, कोयला, गैस) का ज्ञात भंडार 15 अरब मेगा यूनिट से अधिक नहीं है.

उनके अनुसार ईसा पश्चात अभी तक 2.4 अरब मेगा यूनिट ऊर्जा की खपत की गई है और इसमें भी आधी ऊर्जा पिछले सौ सालों के दौरान काम में लाई गई. एक 100 वाट के बल्व को 10 घंटे तक जलाने पर एक यूनिट ऊर्जा की खपत होती है. डा० देशमुख का मानना है कि हम अभूतपूर्व ऊर्जा संकट की ओर तेजी से बढ़ते जा रहे हैं. जो भी ऊर्जा उपलब्ध है उसका मितव्ययी बन कर उपयोग करने तथा खपत को कम करने वाली प्रौद्योगिकियां तेजी से खोजना आवश्यक हैं.

सौर ऊर्जा का उपयोग सीधे भी किया जा सकता है और गोबर गैस के रूप में भी. पूरे विश्व में एक वर्ष में पारंपरिक ईंधन की खपत से जो ऊर्जा मिलती है, वह पृथ्वी को सूर्य से लगभग आधा घंटे में ही प्राप्त हो जाती है. सूर्य ऊर्जा प्राप्ति के लिए या तो उसे तापीय ऊर्जा में बदलना पड़ता है या फोटो-वोल्टिक सेलों के माध्यम से विद्युत ऊर्जा में. लेकिन सौर ऊर्जा के उपयोग को व्यापक बनाने के लिए वैज्ञानिकों को उसकी ऊंची लागत को कम करना होगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सराहनीय आविष्कारों के लिए एन आर डी सी के गणतंत्र दिवस (1991) पुरस्कार

☐ नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन ने अपने आविष्कार संवर्धन कार्यक्रम के अंतर्गत नवाचारी आविष्कारों के लिए वर्ष 1991 के गणतंत्र दिवस पुरस्कारों की घोषणा की है.

पुरस्कार प्रदाय समिति ने राष्ट्रीय महत्व के मुख्य क्षेत्रों में हुए विकास कार्यों और आविष्कारों को मान्यता दी है जैसे फेज्ड ऐरे रडारों के लिए **फेराइट फेज शिफ्टर** प्रौद्योगिकी, प्रेक्षेपक छोड़ने के बाद उसके उड़ान मार्ग के पर्यवेक्षण तथा मानीटरन के लिए **गाइडस्कोप और स्वचालित** वाहनों और मोटर-रहित विद्युत चुम्बकीय विलोड़क (स्टरर) को बंद करने पर निकलने वाली कार्बन मोनोक्साइड गैस को कम करने की युक्ति.

इस अवसर पर सात आविष्कारों के लिए 2.15 लाख रुपए की नकद पुरस्कार राशि तथा एक योग्यता प्रमाणपत्र प्रदान किया जाएगा.

फेराइट फेज शिफ्टर प्रौद्योगिकी का विकासः (क) नॉन रेसिप्रोकल टोराइडल फेज शिफ्टर और (ख) रेसिप्रोकल डुएल मोड फेज शिफ्टर

डा० (सुश्री) भारती भट्ट, डा० शिबन के० कौल सेंटर फॉर एप्लाइड रिसर्च इन इलेक्ट्रोनिक्स, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली और सर्वश्री एन० आर० नायर तथा एस० ए० जलील, सेंट्रल इलेक्ट्रोनिक्स लि०, साहिबाबाद को फेज्ड ऐरे रडार में प्रयुक्त किए जाने वाले **फेराइट फेज शिफ्टर** के विकास के लिए 50,000 रुपए की राशि का संयुक्त पुरस्कार प्रदान किया गया है. एक फेज्ड ऐरे के लिए कई हजार फेज शिफ्टरों की आवश्यकता होती है जिनमें से प्रत्येक विकिरणीय तत्वों के लिए होता है. फेज शिफ्टर का कार्य कम से कम समय में रेडिएटिड बीन की जड़त्वरहित स्कैनिंग को संभव बनाना है ताकि रडार विभिन्न प्रकार के कार्य आराम से कर सके. जैसे श्री डाइमेंशनल स्कैनिंक, बहुत से लक्ष्यों का एक साथ पता लगाना और ट्रैकिंग तथा मिसाइल गाइडेंस आदि.

वाइड फील्ड यूनिट मैग्नीफिकेशन टेलिस्कोप (गाइड स्कोप)

डा० के० एस० बलायन, हरियाणा स्टेट इलेक्ट्रोनिक्स डिवेलपमेंट कारपोरेशन लि०, चंडीगढ़, डा० जगपाल सिंह, सर्वश्री एन० के० जैन, अजय शंकर, अनूप कुमार समुई, इंस्ट्रुमेंट्स डिजाइन एंड डिवेलपमेंट एंड फेसिलिटीज सेंटर, अम्बाला को संयुक्त रूप से 40,000 रुपए का **गाइडस्कोप के विकास** के लिए दिया गया है. इस उपकरण को छोड़ी गई मिसाइल के, प्रथम दो किलोमीटर की दूरी तक अवलोकन तथा किसी रडार द्वारा उसका पता चलने से पूर्व उसके उड्डयन मार्ग के सरल व शीघ्र पर्यवेक्षण के लिए उपयोग किया जाता है. इस युक्ति से अब यह संभव हो गया है कि किसी प्रक्षेपास्त्र के सैद्धान्तिक प्रक्षेप पथ की उसकी वास्तविक प्रक्षेप-पथ से तुलना की जा सकती है.

विद्युत चुम्बकीय विलोडक

प्रोफेसर डी० वी० एस० जैन, श्री जोगिन्द्र सिंह, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ को विद्युत चुम्बकीय स्टरर (मोटर रहित) के विकास के लिए 30,000 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया गया है. यह युक्ति चुम्बकीय क्षेत्र के घूर्णन-सिद्धान्त पर आधारित है और घूर्णन 90° पर रखे चार विद्युत चुम्बकों के स्विचन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है. चुम्बकीय क्षेत्र की गति और शक्ति विलयन की विस्कासिता और घनत्व के अनुसार इलेक्ट्रोनिक सर्किट द्वारा भिन्न-भिन्न होती है और विलयन वाले बर्तन में टेफ्लान की परत वाला स्टर-बार (विलोडक) रखा होता है. जो चुम्बकीय क्षेत्र

चित्र-2. वाइड फील्ड यूनिट मैग्नीफिकेशन टेलिस्कोप (गाइड स्कोप).

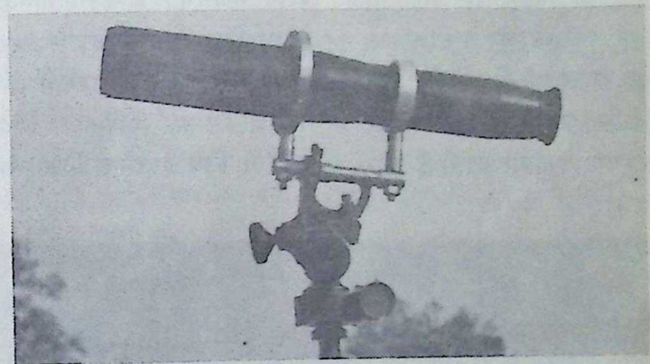

चित्र-1 C-बैंड डुएल मोड फेज़ शिफ्टर.

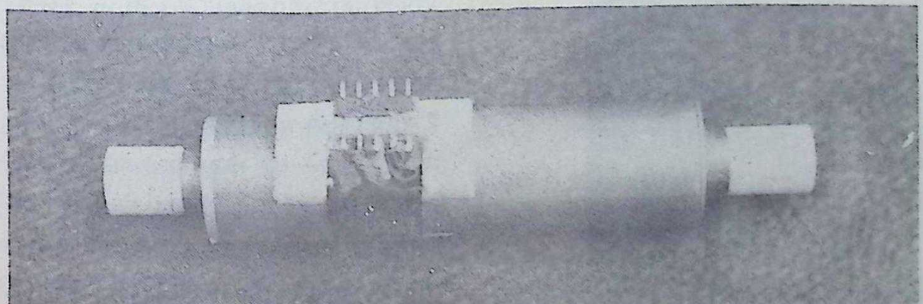

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

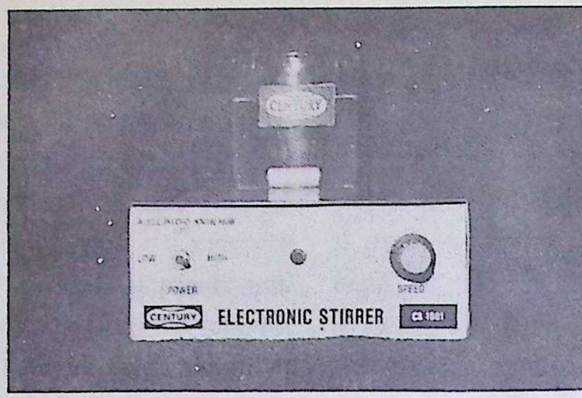

चित्र-3. विद्युत चुंबकीय विलोड़क

के अनुरुप घूमता है और परिणामस्वरुप विलोड़न कार्य संभव हो पाता है.

स्वचालित इंजन को बंद करने पर निकलने वाली कार्बन मोनोक्साइड (Co) गैस को कम करने की युक्ति

डा० वेंकटसुब्बैया पांडुरंगा, श्री एल० विजय सेल्वारंगन, श्रीरयूदु राम कृष्ण, मै० एंफील्ड इण्डिया लि०, मद्रास को संयुक्त रूप 30,000 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया गया है. इन्होंने एक ऐसी युक्त का विकास किया है जो मोटर साइकिल की निष्कासित पाइप में लगी बैटरी से चलने वाले ब्लोअर से अतिरिक्त स्वच्छ वायु अन्दर लेकर कार्बन मोनोक्साइड को कार्बन डाइआक्साइड में परिवर्तित कर देती है जिससे प्रदूषण में कमी आती है और एक्जास्ट (निर्वातन) में एकत्र ऊष्मा दहन कार्य आरंभ करती है.

माइक्रो प्रोसेसर पर आधारित मोबाइल मेटालाइजिंग उपस्कर

डा० मोहम्मद घौज, सर्वश्री के० ए० दुर्गा प्रसाद, ए० आर० प्रभु, वी० जयरमण, पी० जोशी, भारत हैवी इलेक्ट्रीकल्स लि०, कारपोरेट (आर एण्ड डी), हैदराबाद को संयुक्त रूप से 30,000 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया गया है. इन वैज्ञानिकों ने एक ऐसे मेटेलाइजिंग (धातुक्षेपण) उपस्कर का विकास किया है जिसे बड़े टर्बोजनित्रों के रोटर शाफट में अक्षीय छिद्रों (एक्सिएल होल्स) के विद्युत लेपन के लिए इस्तेमाल किया जाता है. रोटर शाफट को संयोजित करने के बाद जब यह क्षैतिज स्थिति में हो उस समय स्थल पर ही कार्य किया जा सकता है. इस युक्ति में माइक्रोप्रोसेसर (सूक्ष्म संसाधित्र) आधारित होने के कारण मानवीय त्रुटि रहित है, परिणामस्वरुप सिल्वर लेपन (प्लेटिंग) दोषरहित होती है.

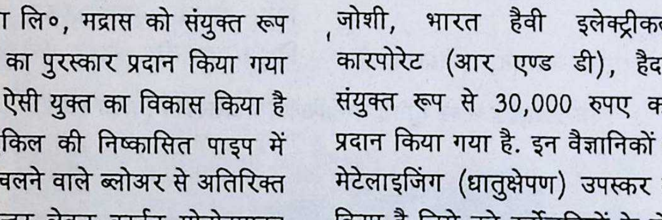

चित्र-4. माइक्रो-प्रोसेसर आधारित मोबाइल मेटालाइजिंग उपस्कर का मॉडल.

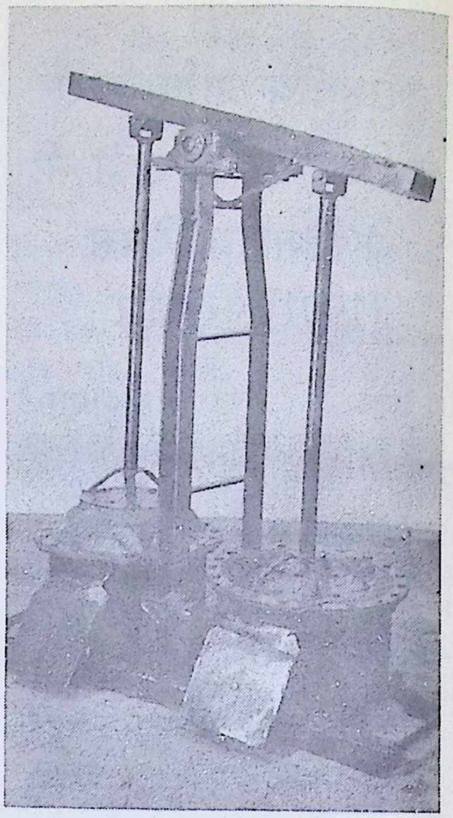

चित्र-5. हस्त-चालित बाबा पम्प.

ट्रैक्टरों के लिए स्पार्क अरेस्टर्स

श्री चिंतोले राम यत्री, जिला झांसी को ट्रैक्टरों के लिए स्पार्क अरेस्टर का निर्माण एवं विकास करने हेतु 20,000 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया गया है. जब इस युक्ति को किसी ट्रैक्टर के निष्कासित पाइप के साथ जोड़ा जाता है तो गेहूं में से भूसी निकालते समय गेहूं के ढेर में आग लगने की संभावनाओं को कम कर देती है. एग्जास्ट गैसों के साथ निकलने वाली चिन्गारियां स्पार्क अरेस्टर से होकर निकलती है जिसमें एक वाटर जैकेट लगी होती है और इस प्रकार चिन्गारी रहित एग्जास्ट गैसे वायर मेश के माध्यम से बाहर निकलती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्त-चालित बाबा पम्प

सर्वश्री सुरेश नन्दन सहाय और रमेश नन्दन सहाय, स्टैण्डर्ड, आयरन इंडस्ट्री, पटना को ग्रामोपयोग के लिए हस्तचालित वाटर लिफ्टिंग पम्प विकसित करने के लिए संयुक्त रुप से 15,000 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया गया है. पम्प का निर्माण सरल है तथा उन ग्रामीण क्षेत्रों के लिए बहुत उपयोगी है जहां पानी का स्तर ऊंचा है.

ऑप्टिकल सोलर रिफ्लेक्टर

सर्वश्री एच० नारायणमूर्ति, एच० भोजराज, आर० पलानीसैमी, थर्मल डिवीजन, आई एस आर ओ सेटेलाइट सेंटर, बंगलौर और डा० टी० जी० के० मूर्ति, डा० सी० एल० नगेन्द्र, आई एस आर ओ सेटेलाइट सेंटर, बंगलौर श्री वी० पी० उन्नीकृष्ण, थर्मल डिवीजन, आई एस आर ओ सेटेलाइट सेंटर, बंगलौर को आप्टीकल सोलर रिफ्लेक्टर्स का निर्माण करने के लिए संयुक्त रूप से योग्यता प्रमाण पत्र प्रदान किया गया है. इस ऑप्टिकल सोलर रिफ्लेक्टर को अन्तरिक्ष यान के अन्दर निम्न सौर परावर्तकता और उच्च अर्धगोल उत्सर्जकता विलेप के संयोजन से उत्पन्न ऊष्मा को समाप्त होने से रोकने के लिए इस्तेमाल किया जाता है. □

जनसंख्या का समीकरण

□ डा० महमूद अहमद पठान

□ वाशिंगटन स्थित 'वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट' की चेतावनी कि भारत की जनसंख्या आने वाले चालीस वर्षों में दुगनी और शायद उससे भी अधिक हो जाएगी चिंता का विषय है.

वैज्ञानिकों के अनुसार इन चालीस वर्षों में भूमि का कटाव, जंगलों का सफाया, ओजोन का पलायन, वायु का प्रदूषण और अम्ल वर्षा जैसी गंभीर समस्याओं से भी अधिक निराशाजनक स्थिति जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि पैदा कर सकती है. वास्तव में जनसंख्या का गणित सरल है. उसके अनुसार सन् 2030 में ही दुनिया की आबादी 800 करोड़ हो जाएगी तथा भारत की जनसंख्या लगभग 178 करोड़.

'स्टेट आफ द वर्ल्ड' की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार भारत के अलावा इथियोपिआ, नाइजीरिया तथा अन्य कई देश जनसंख्या की अधिकता के शिकार होंगे. यदि आक्रांत देशों ने समय पर सही कदम नहीं उठाए तो इक्कीसवीं सदी में इन देशों को खाद्य, मकान, ईंधन और ऊर्जा की कमी के साथ साथ भूमि के विघटन, प्राकृतिक प्रदूषण, महामारी तथा हर जगह भीड़-भाड़ जैसी समस्याओं का भी सामना करना पड़ सकता है.

सन् 1986 में दुनिया की आबादी 490 करोड़ थी और लगभग उसका छठा भाग भारत की जनसंख्या थी. लेकिन दुनिया की आबादी 1.6 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है और भारत की 2.2 प्रतिशत की दर से. ऐसा नहीं है कि हर देश की जनसंख्या बढ़ रही हो. कुछ देश या उनके प्रांत ऐसे भी हैं जहां जनसंख्या घट रही है. पनामा की जनसंख्या 1970 में 14,64,000 थी जो 1980 में घट कर 12,60,000 रह गई. इसी प्रकार दस वर्ष के अंतराल में सिनसिनाती की जनसंख्या 453,000 से घट कर 385,000 रह गई. इस दर से 1990 में वहां की जनसंख्या 327,208 आंकी गई है. अनुमान है कि 80 वर्षों में वहां केवल एक व्यक्ति रह जाएगा.

योरोप तथा रूस की जनसंख्या वृद्धि की दर प्रतिवर्ष 1 प्रतिशत तथा अमेरिका की 0.9 प्रतिशत है. अमेरिका में अलास्का स्टेट की दर 2.8 प्रतिशत तथा मध्य अमेरिका की 3.5 प्रतिशत है. अमेरिका के ही 3, 097, 600 वर्ग गज भू-क्षेत्र वाले वर्जिन द्वीप में दुनिया की अधिकतम वार्षिक वृद्धि 9.6 प्रतिशत भी पाई जाती है. सन् 1970 में वहां की जनसंख्या केवल 75,150 थी. सन् 1992 में इस द्वीप की जनसंख्या दुगनी हो जाएगी. गणितज्ञों के अनुसार जनसंख्या गति विज्ञान द्वारा आंकी गई रूस की 1959 की जनसंख्या 2090 लाख बढ़ कर 1999 में 3120 लाख तथा उसके 38 वर्ष बाद केवल एक प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि से ही दुगनी होने जा रही है.

उपयुक्त नियंत्रण के अभाव में ऐसी अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि केवल समाज में तनाव या विध्वंस ही नहीं बढ़ाएगी, बल्कि जीविका पोषण और संभरण के मूल आधार पर भी हर तरफ से दबाव डालेगी. रहन सहन के मापदंड और गिर जाएंगे तथा सामाजिक, आर्थिक प्रगति पर बाधाजनक प्रभाव बढ़ाएगें. हर प्रकार के प्रभावी प्रयत्न जो प्रकृति के अमानवोचित अतिक्रमण पर अंकुश लगाने के लिए प्रयुक्त किए जाएंगे, वे जनवृद्धि पर रोकथाम लगाए विना व्यर्थ साबित होंगे. वर्तमान जनसंख्या वृद्धि की दर से भारत की जनसंख्या आने वाली शताब्दी के शुरू होते ही 100 करोड़ तक पहुंच जाएगी तथा उसके केवल 35 वर्ष के बाद ही चीन की जनसंख्या की सीमा रेखा को पार कर जाएगी.

यहां यह स्पष्ट किया जाना उपयुक्त होगा कि जनसंख्या घातीय वृद्धि दर से बढ़ती है. सामान्य वृद्धि दर और घातीय वृद्धि दर में बहुत अंतर है. इसे समझने के लिए घातीय वृद्धि दर का एक उदाहरण लेना होगा. एक कागज की शीट को दो भागों में बांटिए, फिर चार भागों में और पुनः आठ भागों में. इसी प्रकार शीट को बांट कर एक के ऊपर एक रखते जाइए. इस तरह केवल 25 बार ऐसा करने से इस कागज का एक पुलिंदा तैयार हो जाएगा जिसकी मोटाई कई किलोमीटर होगी. कागज की मोटाई की इस वृद्धि को हम घातीय वृद्धि कहेंगे.

जनसंख्या का मूलभूत माडल जो कि एक अवकल समीकरण पर आधारित है जीवाणु संवर्ध (कल्चर) या मिश्रित ब्याज में पैसे की बढ़ोत्तरी जैसे माडल से मेल खाता है. सामान्यतया जनसंख्या वृद्धि की दर जनसंख्या के अनुपात में बढ़ती है. जिस प्रकार सामान्य ब्याज में धन की वृद्धि मिश्रित ब्याज में धन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धि से बहुत कम होती है या हम कह सकते हैं कि साधारणतया सामान्य ब्याज में केवल वृद्धि तो मिश्रित ब्याज में घातीय वृद्धि मूलधन पर होती है, उसी प्रकार जनसंख्या में भी साधारण वृद्धि नहीं घातीय वृद्धि होती है. इसी से आश्चर्य नहीं कि परिस्थिति विज्ञान के जानकारो के लिए जनसंख्या वृद्धि की दर व्याकुलता का कारण और इक्कीसवीं सदी के लिए एक चुनौती बनी हुई है.

इस बात पर जरा गौर करें कि आज भारत दुनिया के गरीब देशों के क्रम में इक्कीसवें स्थान पर है. 1950 से 1989 तक भारत की प्रति व्यक्ति आमदनी दुगनी भी नहीं हो सकी. इसमें केवल 91 प्रतिशत वृद्धि हो पाई है. हम विश्व की जनसंख्या के 15.5 प्रतिशत हैं, जब कि हमारी आमदनी विश्व की आमदनी का केवल 1.5 प्रतिशत है. 1950 में हमारी औसत आमदनी थाइलैंड तथा दक्षिण कोरिया से अधिक थी. आज थाइलैंड की आमदनी हम से तीन गुनी तथा दक्षिण कोरिया की आठ गुनी अधिक है.

अमेरिका के उच्च माध्यमिक विद्यालयों तथा कालेजों में गणित की अधिकतर पाठ्य पुस्तकों में भारत की जनसंख्या पर प्रश्न दिए हुए हैं. यह प्रश्न वहां के छात्रों को हास्यापद लगने के साथ ही कौतुहल में भी डाल देते हैं. उदाहरण के लिए एक प्रश्न वहां की पुस्तकों से दिया जा रहा है. भारत की जनसंख्या 1974 में 574,220,000 तथा 1984 में 746,388,000 थी, यदि वार्षिक वृद्धि की दर इसी प्रकार स्थिर ली जाए तो 1994 में क्या जनसंख्या होगी? (उत्तर - 970,117,017) यह जनसंख्या कब दुगनी हो जाएगी? (उत्तर - वर्ष 2010 में) इस प्रश्न को पढ़ कर वहां के विद्यार्थी अचम्भे में रह जाते हैं.

क्या ही अच्छा हो कि हम भी अपने देश से संबंधित इस तरह के प्रश्न गणित की अपनी पुस्तकों में सम्मिलित करलें ताकि आने वाली पीढ़ी समय रहते सतर्क हो जाए और सही परिप्रेक्ष्य में इसे एक वास्तविक समस्या समझ कर इसका हल खोजे. जनसंख्या विस्फोट में कितना कम समय लगता है यह इस बात से स्पष्ट है कि यदि एक शहर की जनसंख्या 1980 में केवल 60,000 हो तो दो प्रतिशत प्रति वर्ष की घातीय वृद्धि से वर्ष 2000 में ही दुगनी हो जाएगी.

जनसंख्या का गणित प्रायः अवकल समीकरण के एक महत्वपूर्ण सूत्र की सहायता से हल किया जाता है. इस सूत्र से न केवल पुरातन जनसंख्या के प्रश्नों का उत्तर मिलता है बल्कि आने वाले वर्षों में क्या जनसंख्या होगी इसका भी उत्तर मिलता है. यह वही सूत्र है जिसकी सहायता से हम विभिन्न विषयों के प्रश्न भी हल कर सकते हैं. उदाहरणार्थ, यदि आज हमें यह ज्ञात करना है कि मिस्र में प्राप्त एक पुराना परिरक्षित शव (ममी) कितने वर्ष पहले का है तो हम इसी सूत्र की सहायता लेंगे. यदि शव में कार्बन-14 का कार्बन-12 से अनुपात वातावरण में पाए गए अनुपात का आधा है तो इस सूत्र के अनुसार मिस्री व्यक्ति की मौत 5600 साल पहले हुई होगी. इस तरह के प्रश्नों के अलावा किसी पुराकालीन शहर की जनसंख्या या गुफाओं, कन्दराओं के काल का हिसाब, पुरातत्व विभाग की किसी अमूल्य कला वस्तु का सही निर्माण काल, जीवाणु संवर्ध, पर्वत शिखरों पर हवां का दबाव, सितारों की चमक शक्ति, कारखानों का शोर, रेडियो धर्मिता का अपक्षय या मुद्रा स्फीति आकलन, आयुर्विज्ञान से संबंधित शरीर में ट्रेसर डाई को 'इंजेक्ट' कराने का प्रभाव, दुर्गन्ध बहिर्वाह का माप आदि कई प्रश्नों के हल भी इसी सूत्र से ज्ञात किए जाते हैं. पृथ्वी की उत्पत्ति, जीवन का उदय, जीवाश्मों के परीक्षण से सापेक्ष काल इकाइयों का निर्धारण, रेडियो धर्मित बेरीलियम डेटिंग तथा कार्बन-14 डेटिंग में भी इस सूत्र का बहुत योगदान रहा है.

भौतिक शास्त्रियों के सामने एक महत्वपूर्ण और गंभीर समस्या यह है कि ब्रह्माण्ड में पहला द्रव्य कैसे बना. इस पर कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि शून्य में एक धमाका हुआ और उससे द्रव्य उत्पन्न हुआ. इस धमाके का क्या कारण है? इस समस्या का संतोषजनक समाधान अभी प्राप्त नहीं हो सका है. आश्चर्य की बात यह है कि ब्रह्माण्ड से संबंधित कई गुत्थियों का रहस्य अवकल तथा समाकल गणित द्वारा सिद्ध किया गया है.

जनंसख्या के समीकरण में भी हम अवकल तथा समाकल गणित का ही उपयोग करते हैं. भास्कराचार्य द्वितीय ने किसी फलन की तात्कालिक गति (अर्थात चर के अत्यल्प परिवर्तन का फलन के परिवर्तन से संबंध) की चर्चा की है और उदाहरण के रूप में ज्या का अवकलन कोज्या होता है यह बतलाया है.मइससे सिद्ध होता है कि अवकल गणित के आधारभूत सिद्धान्तों को वे भली प्रकार जान चुके थे जबकि उसे जन्म देने का श्रेय कई सदियों बाद के वैज्ञानिक न्यूटन एवं लाइबनिज को दिया जाता है. □

सवाल यह है कि सांस लें या नहीं

□ राजीव गुप्ता

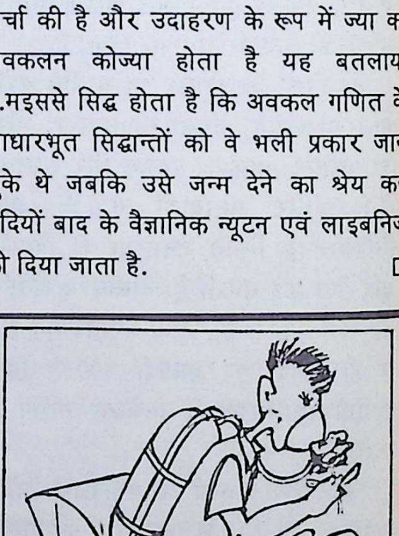

□ इस धरती की कुल आबादी का पांचवां हिस्सा यानी लगभग एक अरब लोग ऐसे स्थानों में रहते हैं जहां की हवा सांस लेने योग्य नहीं है. अकेले अमेरिका में ही एक लाख बीस हजार लोगों की मौत वायु-प्रदूषण के कारण होती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिकी पर्यावरण संरक्षण एजेंसी के अनुसार वायु-प्रदूषण केवल एक उपद्रव मात्र न होकर अब औद्योगीकरण से पैदा होने वाला गंभीर खतरा बन गया है.

वायु-प्रदूषण अब केवल विकसित देशों या महानगरों तक ही सीमित नहीं रह गया है. सारी भू-भौतिक सीमाओं को पार करते हुए अब यह बीमारी दूरस्थ और भीतरी ग्रामीण इलाकों तक में प्रवेश कर गई है. बंबई में सांस लेना अब रोज दस सिगरेटें पीने के बराबर घातक हो गया है. वाशिंगटन स्थित पर्यावरण संस्था 'वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट' द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार हंगरी में होने वाली हर 17 में से एक मौत वायु-प्रदूषण के कारण होती है. वृहत्तर-एथेंस में उन दिनों मौतों की संख्या छः गुणा बढ़ जाती है जब हवा सबसे ज्यादा प्रदूषित होती है. इसी प्रदूषण के कारण कलकत्ता के 60 प्रतिशत लोग श्वास संबंधी बीमारियों से पीड़ित हैं. बंबई के अति औद्योगीकृत इलाके चेंबूर में लगा एक पोस्टर कहता है—''वायु प्रदूषण बच्चों तथा अन्य जीवधारियों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है''

वायु-प्रदूषण के लिए सबसे ज्यादा उत्तरदाई हैं कारखाने, वाहन तथा खाना बनाने के चूल्हे. कोयला जलाने से निकलने वाले सल्फर डाइआक्साइड के कारण खांसी, सर्दी, दमा तथा ब्रोंकाइटिस जैसी बीमारियां होती हैं. धुएं में मौजूद सूक्ष्म कण विषाक्त धातुओं को श्वास के साथ फेफड़ों के भीतर तक ले जाते हैं.

देश के जिन 48 ताप-ऊर्जा संयंत्रों का सन् 1984 में अधिकृत सर्वेक्षण किया गया उनमें से 31 ने कोई प्रदूषण-नियंत्रण उपाय नहीं किए थे तथा केवल छः संयंत्रों के प्रदूषण-नियंत्रण उपकरण ठीक से काम कर रहे थे. इलेक्ट्रोस्टेटिक प्रेसिपिटेटर नामक इन उपकरणों के कीमत चूंकि एक से तीन करोड़ रुपए तक होती है उन्हें नहीं लगाया गया. जहां वे लगाए भी गए हैं, वहां उनका ठीक से रख-रखाव नहीं होता और नतीजा यह कि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है. पंजाब के भटिंडा में इन्हीं उपकरणों के बिगड़ जाने से पूरा शहर हमेशा धुएं से ढका रहता है तथा उड़ने वाली गर्द आसपास के इलाके के हजारों एकड़ क्षेत्र की फसलों को नुकसान पहुंचा रही है. 'इंडिया टुडे' के अनुसार पिछले कुछ बरसों में इस इलाके में नाक, आंख तथा श्वास संबंधी बीमारियां भी लगातार बढ़ रही हैं.

मोटर-वाहनों द्वारा भारी प्रदूषण फैलने के बावजूद भारत इस सदी के अंत तक प्रति वर्ष दो लाख कारें बनाने की योजना बना रहा है. प्रतिवर्ष साढ़े तीन लाख दुपहिया वाहन बनाने की अनुमति भी दे दी गई है. कारों की अपेक्षा दुपहिया तथा तिपहिया वाहनों के कारण प्रदूषण दुगना होता है क्योंकि उनके दो-स्ट्रोक वाले इंजन केवल 25 प्रतिशत ईंधन का ही उपयोग कर पाते हैं, शेष वातावरण में वैसा का वैसा उगल दिया जाता है. सीधा-सा नियम है कि आप जितने कम ईंधन का उपयोग करते हैं, प्रदूषण उतना ही ज्यादा फैलाते हैं. अतः ऑटो-प्रदूषण को नियंत्रित करने का तरीका यही है कि वाहन के नियमित रख-रखाव के साथ ही पश्चिम के देशों की तरह भारत में भी उत्प्रेरक कन्वर्टरों का उपयोग शुरु कर दिया जाए.

वाहनों से होने वाले प्रदूषण के हिसाब से दिल्ली भारत का सबसे ज्यादा प्रदूषित शहर है. दिल्ली की गर्द और धुएं का 34 प्रतिशत वाहनों से निकला धुआं ही है. पिछले एक दशक के दौरान दिल्ली के प्रदूषण-स्तर में 75 प्रतिशत की वृद्धि हुई है. वाहनों के उत्सर्जकों में कार्बन मोनोक्साइड, सीसा, ओजोन, बेंजीन तथा टालुईन जैसे घातक प्रदूषक रहते हैं. दिल्ली की हवा में प्रतिदिन लगभग 400 किलोग्राम सीसा घुलता है और उसका सबसे ज्यादा शिकार यातायात पुलिस होती है. इससे मानसिक अवरुध्दता तो आती ही है वह प्रजनन, तंत्रिका तथा चलन प्रणालियों को भी प्रभावित करती है. यह शंका भी की जाती है कि इससे बच्चों की सीखने की क्षमता भी घट जाती है.

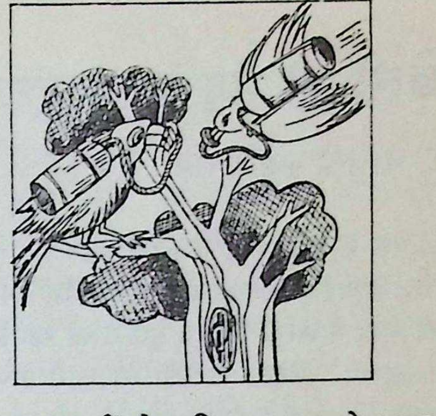

कहना नहीं होगा कि खाना पकाते समय ग्रामीण महिलाएं लकड़ी का जो धुआं सांस द्वारा खींचती हैं उससे उन्हें होने वाले नुकसान का ठीक से अध्ययन नहीं किया गया है. घरेलू अंगीठियों तथा चूल्हों से निकलने वाले एक टन कणों के संपर्क में आने वाले इंसानों को जो नुकसान पहुंचता है वह कोयले से चलने वाले बिजलीघरों से निकलने वाले एक टन कणों से 500 गुना ज्यादा होता है. गुजरात में किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि खाना बनाते हुए महिलाएं सांस के जरिए वातावरण में तैरते जो कण खींच लेती हैं वह अनुमत मात्रा से 40 गुनी ज्यादा या तीन घंटे में बीस पैकेट सिगरेट पीने के बराबर होती है. लकड़ी के धुएं से कुपोषित तथा रक्तल्पता की शिकार स्त्रियों को विशेष नुकसान होता है क्योंकि धुएं में मौजूद कार्बन मोनोक्साइड उनके रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा घटा देता है. भारत में एक चौथाई से ज्यादा स्त्रियां उनकी प्रजनन आयु के दौरान रक्तल्पता की शिकार रहती हैं.

वायु-प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए उद्योगों, मोटर-वाहनों तथा लकड़ी-कोयले के चूल्हों पर तीन तरफा हमला बोलना होगा. भविष्य के संकट को टालने के लिए ताप-ऊर्जा संयंत्रों के लिए इलेक्ट्रोसेटिक प्रेसिपिटेटर तथा परम्परागत फिल्टर वाहनों के लिए नियमित मरम्मत रख-रखाव तथा उत्प्रेरक कन्वर्टरों सहित धुंआ-रहित चूल्हों के प्रचार की मिली-जुली रणनीति अपनानी होगी.

प्रदूषण के खिलाफ इस जंग में ऊर्जा-बचत सबसे प्रभावी हथियार साबित हो सकता है क्योंकि बीमारी से उसे होने ही न देना कहीं अच्छा है. **(सप्रेस/ऊर्जा एवं पर्यावरण समूह)** □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेतों की मेड़ पर कंप्यूटर

□ राजेन्द्र कुमार राय

□ देश के कृषि कार्य में अच्छी उपज लेने के लिए सिंचाई के तरीकों को अब नई प्रौद्योगिकी की मदद से काफी तेजी से सुधारा जा रहा है. फसल और मिट्टी की सही जानकारी प्राप्त करने के बाद कंप्यूटर की मदद से सही समय पर 'सिंचाई' करना संभव हो रहा है. खेती में सही जरुरतों का पता लग जाने से जल, ऊर्जा, धन तथा समय की बचत होती है. आज इस क्षेत्र में जिस तेजी से आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग बढ़ रहा है उसकी बदौलत इलेक्ट्रोनिक साधनों की मदद से नियंत्रित सिंचाई शीघ्र ही गए जमाने की बात हो जाएगी.

दुनिया भर में जल का सबसे अधिक उपयोग कृषि कार्यों में होता है. विकासशील देशों में कृषि में जल के उपयोग का औसत काफी अधिक है. अतः कम लागत की जल-वितरण प्रणाली के विकास पर अनुसंधान बहुत महत्वपूर्ण हो गया है. वैज्ञानिकों के एक दल ने एक ऐसी कंप्यूटर प्रणाली विकसित की है जो उन खेतों में सिंचाई के पंपों को अपने आप बंद कर देती है जो कुछ समय बिना पानी के रह सकते हैं. यह प्रणाली अमेरिका के कृषि अनुसंधान विभाग के दो वैज्ञानिकों, डेल एफ० हीनमैन और हेरॉल्ड आर ड्यूक, ने एक ऐसे कंप्यूटर-प्रोग्राम के आधार पर विकसित की है जो वहां के मैदानी इलाकों में 'सिंचाई की समय सारणी' निर्धारित करने के लिए तैयार किए गए हैं.

घटी दरों पर बिजली प्राप्त करने के लिए अमेरिका के किसान अपनी सिंचाई की समय-सारणी को इस तरह आयोजित करते हैं कि वे उस समय जब बिजली की खपत सबसे ज्यादा हो रही होती है बिजली न प्राप्त कर के बाद में उस समय प्राप्त करते हैं जब उसकी खपत अन्य कार्यों के लिए कम हो रही हो. विद्युत विभाग इन किसानों को संकेत देता है और वे थोड़ी देर के लिए बिजली लेना बंद कर देते हैं. 'व्यस्त अवधि' निकल जाने के बाद वे पुनः सिंचाई शुरु करते हैं.

इस नई प्रणाली में एक कंप्यूटर विद्युत प्रदाय विभागों से बिजली बंद करने के सारे संकेतों को पकड़ लेता है और हर 15 मिनट पर उनकी सूचना छिड़काव करने वाले यंत्रों को देता रहता है. यह कंप्यूटर किसानों को मौसम संबंधी यह जानकारी भी देता है कि हवा की गति, तापमान, आर्द्रता तथा सूर्य विकिरण क्या रहेगा ? यह कंप्यूटर यह बताने में भी सक्षम है कि किस खेत में क्या उगाया जा रहा है. मिट्टी किस प्रकार की है तथा कितना पानी दिया जा चुका है. यह अपने आप उन खेतों का चयन कर लेता है जिन्हें पानी की कम या अधिक आवश्यकता है. किस फसल को किस क्रम से सिंचित किया जाना चाहिए तथा उससे कुल उत्पादन में कितना लाभ होता है यह भी कंप्यूटर ही तय करता है. इनमें एक विशेष बात यह है कि भले ही पंप कई घंटे से बंद पड़े हों, उस खाली वक्त में भी कंप्यूटर मौसम केंद्रों से फसलों की आवश्यकताओं के बारे में जानकारी एकत्र करता रहता है.

कंप्यूटर की मदद से अमेरिका का एक औसत किसान प्रतिदिन तीन घंटे का समय और 90 किलोमीटर की यात्रा की बचत कर लेता है. यदि उसके खेत में 15 छिड़काव-यंत्र हैं जो 900 हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई करते हैं, और सबसे दूर का छिड़काव यंत्र कंप्यूटर कंट्रोल सेंटर से 5 किलोग्राम़ की दूरी पर है तो पहले इन छिड़काव यंत्रों को चेक करने के लिए किसान को 4-5 बार वहां जाना पड़ता था. अब उसे सिर्फ एक चेतावनी देने वाली 'लाइट' से गड़बड़ी का पता चल जाता है. कंप्यूटर के पर्दे पर दिखाई दे जाता है कि कहां क्या हो रहा है ? इस प्रणाली से फसल कटाई पर भी दूर से ही नजर रखी जा सकती है.

पौधों को जब पानी की आवश्यकता होती है, तो वे कुछ संकेत देते हैं. ये संकेत कौन से हैं यह जानकारी तो कृषि वैज्ञानिकों को काफी पहले से है. लेकिन इस जानकारी से लाभ उठाने वाले परिष्कृत उपकरण हाल में ही बनाए जा सके हैं. अब पानी के लिए तरसते पौधों की गुहार सुनने में कंप्यूटर सक्षम हैं. पौधों के पानी की कमी से उत्पन्न दबाव की स्थिति में पहुंचते ही कंप्यूटर द्वारा पानी की गति बढ़ा दी जाती है. इससे दो लाभ होते हैं : एक तो पौधे की बढ़वार अधिक होती है, दूसरे पानी की बचत भी होती है, क्योंकि पानी तभी खेतों में डाला जाता है जब पौधों की मांग होती है. पौधे को पानी की कितनी जरुरत है इसका पता लगाने वाले यंत्र को 'पोरोमीटर' कहा जाता है. इसे पौधों की पत्तियों से बांध दिया जाता है तथा उन्हें एक ऐसे संवेदनशील इलेक्ट्रोनिक उपकरण से जोड़ दिया जाता है जो पौधों को हो रही पानी की तंगी को 34 विभिन्न तरीकों से नाप सकता है. एक और तार पोरोमीटर से प्राप्त जानकारी को प्रत्येक हर दस मिनट में एक कंप्यूटर टर्मिनल को प्रेषित कर देता है. कंप्यूटर वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किए गए 'प्रोग्रामों' की मदद से इस जानकारी का विश्लेषण कर, यदि पानी की आवश्यकता है तो सिंचाई की जाती है.

सिंचाई को नियंत्रित करने वाली दो विधियां आजकल अमेरिका में व्यावसायिक तौर पर काम कर रही हैं, ये हैं—टपकने वाली (ड्रिप) और छिड़काव वाली. अब एक नई प्रणाली 'टच-टोन टेलीमीट्री' को भी काम में लाया जा रहा है. इस प्रणाली में समय, प्रोग्रामिंग तथा नियंत्रण कार्य, सब एक ही बहुमुखी केंद्रीय 'नियंत्रक' द्वारा होता है. दूरी पर स्थित खेतों में केंद्रों में लगी सर्किट-व्यवस्था होती है जो केंद्रीय-नियंत्रक के आदेशों को

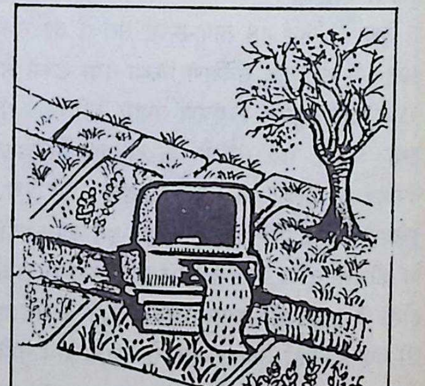

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विकोडीकृत कोड को) समझ करके पंपों के वाल्वों को चालू करने में सक्षम होती है. केंद्रीय नियंत्रक कंप्यूटर का डिजाइन पेचीदा है क्योंकि उसी के द्वारा एक पूरा सिंचाई संयंत्र संचालित होता है. इस प्रणाली के मुख्य नियंत्रक को इस तरह संचालित किया जा सकता है कि वह सिंचाई की तारीख व अवधि का हिसाब केंद्रवार रख सके. भूमि, मिट्टी, फसल तथा मौसम संबंधी जानकारी, पानी की पूर्ति की सीमाएं तथा सिंचाई कार्यक्रम संबंधी जानकारी भी कंप्यूटर में संग्रहीत की जा सकती है. इसके लिए काफी कम बिजली की आवश्यकता होती है और वह बैटरी, सौर ऊर्जा या पवन ऊर्जा किसी से भी चल सकता है.

भारत में उपयोग

भारतीय ग्रामीण-कथाओं में, ठंड के मौसम में सिंचाई करने की दिक्कतों का लंबा-चौड़ा जिक्र मिलता है. इसके अलावा सिंचाई पंपों की शिकायत भी मिलती है. लेकिन अब खेत की मेड़ पर बैठे कंप्यूटर फसलों की प्यास बुझाने के लिए तैयार हैं. कंप्यूटर अब स्वंय चला सकते हैं, ठंडी ठिठुरती रात में पानी के पंप.

हमारे देश में पानी की मुख्य मांग सिंचाई के ही लिए है. सन् 1974 में देश में जितना पानी इस्तेमाल हुआ, उसका 82 प्रतिशत सिंचाई में गया. जल विशेषज्ञों का अनुमान है कि अगर 2025 तक घरेलू और औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुसार पूरा और पर्याप्त प्रबंध होता है, तो कुल पानी का 73 प्रतिशत सिंचाई में जाएगा. देश पर आए जल संकट को देखते हुए सिंचाई के तरीके में सुधार के प्रयास करने चाहिए. सिंचाई में इस्तेमाल होने वाले जल की मात्रा में यदि कुछ प्रतिशत की भी बचत इससे की जा सके तो घरेलू व औद्योगिक क्षेत्र में जल की आवश्यकता पूरी हो सकती है. इस नई प्रणाली की उपयोगिता भारत जैसे विकासशील देश में बहुत अधिक है. □

लैड विषाक्तता के कुप्रभाव

□ सुभाष लखेड़ा

□ आज से लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व 'द जर्नल ऑफ आकुपेशनल मेडीसिन' में कैलिफोर्निया के एक वैज्ञानिक एस० सी० गिलफिलन का एक शोध पत्र प्रकाशित हुआ था. इस शोध पत्र में व्यक्त विचारों के अनुसार जिन कारणों से रोमन साम्राज्य का पतन हुआ उनमें सीसा विषाक्तता यानी लैड टॉक्सिसिटी संभवतः एक प्रमुख कारण रहा होगा.

उपलब्ध प्रमाणों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि तत्कालीन रोम निवासी अपने दैनिक जीवन में लैड का बहुत अधिक उपयोग करते थे. वे जो शराब पीते थे, उसमें लैड की मात्रा अधिक होती थी. उनके द्वारा उपयोग किए जाने वाले बर्तनों में भी लैड होता था. पुरातत्वीय खोजों के दौरान किए गएं अस्थि विश्लेषणों के परिणामों से भी यही पता चला है कि उस काल के रोमन नागरिकों के शरीर में लैड का स्तर अपनी घातक सीमा से अधिक था. वस्तुत लैड हमारे शरीर के लिए एक जहरीला पदार्थ है. आज से दो हजार वर्ष पूर्व का मनुष्य भी इसके जहरीले प्रभावों से परिचित था, किन्तु इस जानकारी के बावजूद वह इसकी विषाक्तता का शिकार बनता रहा हैं.

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विशेषकर पिछले सौ वर्षों के दौरान हमारे पर्यावरण में अन्य कई हानिकारक पदार्थों के साथ-साथ लैड की मात्रा बढ़ती गई है. पांच हजार वर्ष पूर्व खोजी गई इस धातु में कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनके कारण कई औद्योगिक उत्पादों में इसका उपयोग किया जाने लगा. फलस्वरूप, हमारे पर्यावरण में लैड की मात्रा तेजी से बढ़ने लगी. खाद्य पदार्थों के डिब्बों और विभिन्न इलेक्ट्रोनिक उपकरणों को सोल्डर करने में, स्टोरेज बैटरियों में, पैट्रोल में, रंगाई छपाई में, विभिन्न तरह के बर्तन बनाने में, भवनों को ध्वनिरोधक बनाने में, पानी के जहाजों व वायुयानों में,अन्तरमहाद्वीपीय संचार प्रणाली में उपयोग होने वाले केबिलों में, गोला-बारूद बनाने में और यहां तक कि पर्दों पर लटकाने तथा मछली पकड़ने के जालों पर लगाई जाने वाली वजनदार गोटियां बनाने तक में लैड का व्यापक उपयोग होने लगा. पेंट बनाने में तो लैड का उपयोग इतना अधिक हुआ है कि हमारे घर, दफ्तर एवं मनोरंजन स्थल सभी इसकी चपेट में आ गए.

यद्यपि लैड हमारे शरीर के लिए हानिकारक है और इसका हमारी शारीरिक क्रियाओं में कहीं कोई उपयोग नहीं है, यह अल्प मात्रा में सभी के शरीर में होता है. दरअसल, हम अपनी सभी सावधानियों के बावजूद इससे कभी भी पूरी तरह से नहीं बच सकते क्योंकि यह पृथ्वी पर पाया जाने वाला एक प्राकृतिक घटक है. पृथ्वी पर मनुष्य के उद्भव से पूर्व की चट्टानों के नमूनों में इसकी मात्रा 13 माइक्रोग्राम प्रति ग्राम पाई गई है. वैसे भी सभी तरह की मिट्टी में सामान्यतः इसकी मात्रा लगभग इतनी ही होती है. औद्योगिक कारणों से किसी स्थान विशेष पर इसकी मात्रा सामान्य से अधिक हो सकती है.

चूंकि लैड प्रकृति में मौजूद है, इसकी अल्प मात्रा आहार के साथ हमारे शरीर में पहुंचती रहती है. एक वयस्क व्यक्ति अपने आहार के साथ प्रतिदिन लगभग 0.3 मिलिग्राम लैड ग्रहण करता है. शुक्र है कि शरीर में पहुंचने वाले इस लैड का 90 प्रतिशत भाग मल के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है. शेष 10 प्रतिशत भाग आंत्र पथ से अवशोषित होकर रक्त में पहुंचता है. यहां से इस लैड का कुछ भाग मूत्र के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है और शेष हमारी हड्डियों में जमा हो जाता है. हड्डियों में मौजूद फॉस्फेट के साथ यह अघुलनशील लैड फॉस्फेट बनाता है. आहार के अलावा सांस में ली गई हवा के माध्यम से भी लैड हमारे शरीर में पहुंचता है. सामान्य वातावरण में इस मार्ग से शरीर में लगभग 5 से लेकर 50 माइक्रोग्राम लैड प्रतिदिन पहुंचता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. लैड से प्रदूषित वातावरण में यह मात्रा अधिक भी हो सकती है.

सामान्य मनुष्यों के सम्पूर्ण रक्त के नमूनों में लैड की मात्रा 5 से लेकर 23 माइक्रोग्राम तक होती है. यदि यह मात्रा 40 से 60 माइक्रोग्राम तक पहुंच जाए तो भी मनुष्य इसे बर्दाश्त कर सकता है. रक्त में लैड की मात्रा 60 माइक्रोग्राम से अधिक हो जाने पर मनुष्य पर इसके विषाक्त प्रभाव दिखाई देने लगते हैं.

मूत्र परीक्षण से भी शरीर में लैड की स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता है. यदि कोई व्यक्ति मूत्र के साथ प्रतिदिन 120 माइक्रोग्राम से अधिक लैड उत्सर्जित करने लगता है तो ऐसे व्यक्ति को लैड के सम्पर्क से बचाना बेहद जरूरी हो जाता है.

वास्तव में हमारा शरीर कितना लैड ग्रहण करता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम कहां रहते हैं और क्या खाते हैं? ऐसे लोग जो औद्योगिक नगरों की व्यस्त सड़कों के किनारे स्थित वर्षों पहले पेन्ट किए हुए पुराने मकानों में रहते हैं और डिब्बाबंद खाद्य सामग्री का अधिक उपयोग करते हैं, लैड विषाक्तता का सर्वाधिक खतरा मोल लेते हैं. वे प्रतिदिन 0.5 मिलिग्राम तक लैड ग्रहण कर सकते हैं. ताजा खाना खाने वाले तथा कस्बों या गांवों में रहने वाले लोग लैड के कम सम्पर्क में आते हैं और प्रतिदिन मात्र 0.1 मिलिग्राम लैड ग्रहण करते हैं.

जहां तक लैड विषाक्तता के कारण शारीरिक और मानसिक हानि का प्रश्न है इसकी चपेट में आया मनुष्य अरक्तता का शिकार बन जाता है. जब हमारे रक्त में लैड की मात्रा सामान्य से अधिक हो जाती है तो वह शरीर में हीमोग्लोबिन के निर्माण में बाधा पहुंचाने लगता है. यह अधिवृक्क एवं पीयूषिका ग्रन्थि को हानि पहुंचाता है तथा शरीर की आयोडीन ग्रहण करने की क्षमता घटाता है. लैड हमारे मस्तिष्क, अस्थिमज्जा, गुर्दों एवं जठर आंत्र पथ को भी हानि पहुंचाता है. लैड विषाक्तता के प्रारम्भिक लक्षणों में भूख न लगना, कब्ज, सिरदर्द, थकावट, घबराहट, चिड़चिड़ापन, नींद में गड़बड़ी, अप-सामान्य व्यवहार आदि शामिल हैं. इसकी अधिक विषाक्तता के लक्षणों में नियमित वमन, चेतना में विसंगति, उदर शूल, गति विभ्रम, शरीर का अचानक अकड़ना एवं बेहोशी शामिल है. ऐसी स्थिति में मनुष्य मौत के मुंह में भी पहुंच सकता है.

लैड विषाक्तता का सर्वाधिक कुप्रभाव बच्चों पर पड़ता है. इससे आक्रांत बच्चों में मस्तिष्क विकृतियां पैदा हो जाती हैं. ऐसे बच्चे मानसिक दृष्टि से मन्द भी हो सकते हैं.

पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं पर लैड का अधिक कुप्रभाव होता है. इसके अधिक सम्पर्क में आने वाली महिलाओं की प्रजनन क्षमता में गिरावट, गर्भपात में वृद्धि तथा अस्वस्थ शिशुओं को जन्म देने की प्रवृत्ति अधिक होती है. उनके गर्भस्थ शिशु के अपरिपक्व तंत्रिका तंत्र पर भी इसका बहुत अधिक कुप्रभाव पड़ता है.

लैड विषाक्तता का सर्वाधिक खतरा छोटे बच्चों को रहता है. वयस्क व्यक्तियों की अपेक्षा छोटे बच्चों में लैड का अवशोषण अधिक होता है. एक वर्ष से तीन वर्ष की उम्र तक के बच्चों के शरीर में लैड पहुंचने की संभावना सर्वाधिक होती है क्योंकि इस उम्र में वे अपने हाथ आई प्रत्येक सामग्री को निगलने का प्रयत्न करते हैं. दरवाजों और खिड़कियों से उखड़े रोगन की पपड़ी, जमीन पर गिरे खाद्य पदार्थों अथवा खिलौनों पर लगी धूल, अखबारों तथा मैगजीनों के टुकड़े तथा प्रत्येक ऐसा पदार्थ जिसमें लैड मौजूद हो जब इस उम्र के बच्चों के हाथ लगता है तो वे उसे निगल कर अपने शरीर में लैड पहुंचा देते हैं. इसके अलावा यदि इन बच्चों के आसपास का पर्यावरण पैट्रोल के धुएं से प्रदूषित हो तो सांस द्वारा भी उनके शरीर में काफी लैड पहुंचता रहता है. वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि गन्दी बस्तियों में रहने वाले एवं कुपोषण के शिकार बच्चों में लैड विषाक्तता की संभावना अधिक रहती है. आहार में कैल्शियम, लौह एवं कुछ अन्य पोषाहारों की कमी तथा असंतृप्त वसा की अधिकता के कारण छोटी आंत से रक्त में अधिक लैड पहुंचने लगता है. आहार में मौजूद फॉस्फेट इसे रक्त में पहुंचने से रोकता है.

चूंकि लैड के शरीर में अपसामान्य मात्रा में पहुंचने के कुछ समय बाद ही धीरे-धीरे इसकी विषाक्तता के लक्षण प्रकट होते हैं अतः अभिभावक प्रारम्भ में इन लक्षणों के वास्तविक कारण को नहीं समझ पाते. जब स्थिति अधिक बिगड़ जाती है तब कहीं अभिभावकों व चिकित्सकों का ध्यान इस ओर जाता है.

बहरहाल, यह आवश्यक नहीं है कि लैड विषाक्तता के कारण बच्चा गंभीर रूप से बीमार हो. अधिकांश बच्चों को लैड विषाक्तता चुपके-चुपके मानसिक दृष्टि से मन्द और शारीरिक दृष्टि से कमजोर बनाती रहती है जिसके कारण वे आने वाला जीवन सहज ढंग से नहीं जी पाते.

कुल मिलाकर, हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम अनावश्यक रूप से न अपने आपको और न अपने बच्चों को लैड के सम्पर्क में आने दें. घर में यदि कोई ऐसा पदार्थ या रसायन है जिसमें लैड है तो उसे सुरक्षित स्थान पर रखें. लैड उद्योग से जुड़े व्यक्तियों को हमेशा सतर्क रहना चाहिए. वे अपने वस्त्रों के साथ अपने घर में लैड कण ले जा सकते हैं. जिन पदार्थों में लैड के यौगिकों की मिलावट की संभावना हो, उन्हें खरीदते समय चौकसी बरतना भी आवश्यक है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आण्विक जीवविज्ञान : अतीत, वर्तमान और भविष्य

□ मूलः फ्रांसिस क्रिक □ रूपान्तरः कृष्णप्रकाश त्रिपाठी

अमेरिकी जीववैज्ञानिक फ्रांसिस क्रिक ने जेम्स वाटसन के साथ मिलकर डी एन ए की द्विक कुंडली संरचना स्पष्ट की थी. इसके लिए दोनों वैज्ञानिकों को 1962 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था. प्रस्तुत लेख हैदराबाद स्थित कोशिकीय एवं आण्विक जीवविज्ञान केंद्र को राष्ट्र को समर्पित किए जाने के शुभावसर पर फ्रांसिस क्रिक द्वारा किए गए भाषण पर आधारित है.

□ आण्विक जीवविज्ञान का संबंध बहुत बड़े अणुओं से है. ऐसा ही एक परिवार है न्यूक्लीय अम्लों का परिवार-डी एन ए– और इसका सहयोगी परिवार–आर एन ए-हमारे अधिकांश पाठक जिस एक और परिवार से परिचित होंगे वह है प्रोटीन परिवार.

आण्विक जीवविज्ञान में यह अध्ययन किया जाता है कि जीन किसके बने होते हैं? वे अपना प्रतिरूप कैसे बनाते हैं? वे कैसे नियंत्रित होते हैं और किस तरह कार्य करते हैं? जीन क्या हैं? यह कोशिका के लिए एक तरह का निर्देश होता है जो इसे बताता है कि क्या करना है. यह जीन उन रासायनिक पदार्थों से बना होता है जो डी एन ए परिवार के होते हैं. कुछ लघु विषाणुओं में जीन आर एन ए से बने होते हैं. इस शताब्दी के प्रारंभ में यह माना जाता था कि जीन प्रोटीनों से बने होते हैं लेकिन अब इस धारणा को सत्य नहीं माना जाता.

बोलचाल के शब्दों में जीन कितना बड़ा होता है? वस्तुतः हमें प्राप्त आनुवंशिक विरासत में से आधी पिता से मिलती है और वह भी एक वीर्य के छोटे से सिर में निहित रहती है. यह सिर आकार में केवल कुछ ही माइक्रोन (1 माइक्रोन=10^{-3} मिलीमीटर) के बराबर होता है. आम भाषा में यह सुई की नोक से भी छोटा होता है. लेकिन इस छोटे से सिर के भीतर निर्देशों का एक ऐसा संक्षिप्त तथा जटिल समुच्चय होता है जो एक समूचे मानव का निर्माण कर सकता है. स्पष्ट है कि ये निर्देश बहुत ही सूक्ष्म पैमाने पर लिखे होने चाहिएं तथा निर्देशों के अक्षर आवश्यक रूप से अत्यंत लघु होने चाहिएं.

कुछ चर्चा डी एन ए की भी. यह एक लंबा अणु होता है जिसकी एक सी मेखला होती है. इस मेखला में निश्चित अंतरालों पर एक छोटी सी पार्श्व श्रृंखला होती है जिसे हम अक्षर कह सकते हैं. ये अक्षर चार प्रकार के होते हैं. इनकी तुलना मोर्स कोड से की जा सकती है जिसमें केवल दो ही अक्षर होते हैं-एक बिन्दु (डॉट) और एक निर्देश (डैश). आनुवंशिक भाषा में चार अक्षर होते हैं. इन अक्षरों को हम उनके रासायनिक सूत्र के रूप में जानते हैं. इनके लगभग 10 या 20 परमाणु होते हैं. निर्देशों के एक समुच्चय में कितने अक्षर होने चाहिएं, यह तो विचाराधीन जीव पर निर्भर करता है. लघु विषाणु के लिए संदेश की लंबाई लगभग 5000 अक्षर की होती है और मनुष्य की आंतों में पाए जाने वाले जीवाणु एशरीकिया कोलाई के लिए अक्षरों की लंबाई 50 लाख अक्षर होती है. मनुष्य के वीर्य के सिर में 30 अरब अक्षर होते हैं. ये निर्देश पिन के सिर जितने छोटे क्षेत्र में निहित रहते हैं.

जीन अपने प्रतिरूप कैसे बनाते हैं? हमारे शरीर की हर कोशिका में जीनों का एक पूर्ण समुच्चय होता है. जब कोई कोशिका विभाजित होती है तो एक समुच्चय दोनों परवर्ती कोशिकाओं में से प्रत्येक को दिया जाता है. यथासंभव ये समुच्चय मूल समुच्चय के प्रतिरूप अवश्य होने चाहिएं. ऐसा अनुमान पहली बार हम लोग 1953 में लगा पाए थे जब एक्स-किरण व रासायनिक साक्ष्यों के आधार पर द्विक कुंडली सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया था. इसमें विशेष बात यही है कि कुंडली (द्विक) दोहरी (डबल) होती है. इसमें दो श्रृंखलाएं होती हैं और प्रत्येक श्रृंखला एक दूसरे की पूरक होती है.

अब मोर्स कोड पर लौट कर किसी संदेश के बारे में सोचा जाए. इसे बिन्दुओं और निर्देश के रूप में लिखा जाता है. उदाहरण के लि किसी संदेश की एक पंक्ति ले लीजिए. अब इ के नीचे एक पूरक संदेश लिखिए. मूल संदेश व निर्देश के लिए एक बिन्दु लगाया जाता है औ जहां भी बिन्दु होते हैं वहां पर निर्देश लिख दे है. इस तरह यह पूरक संदेश मूल संदेश द्वा पूरी तरह से व्याख्यायित हो जाता है और दोन संदेश एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं. यदि ए में कोई बिन्दु होता तो दूसरे में निर्देश रहता उस स्पष्ट क्रम को बनाए रखने के लिए ये दोन श्रृंखलाएं मूल संदेश तथा उसके पूरक संदेश व अलग-अलग कर देती हैं. तब हम दोनों अ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ासानी से पूरक संदेश में बिन्दु के लिए निर्देश ार निर्देश के लिए बिन्दु लगा देते हैं. इस रह हम संदेशों के दो जोड़ों से अपना काम माप्त कर सकते हैं. ये जोड़े आपस में एक से होंगे. डी एन ए प्रतिरूपण में भी निश्चित प से यही होता है सिवाए इस बात के कि समें चार अक्षर होते हैं और उन्हें आपस में क दूसरे का पूरक होना चाहिए. वास्तविक क्रिया अपेक्षाकृत अधिक जटिल होती है किन यह ठीक वैसी ही है. इससे हमें यह मझने में मदद मिल जाती है कि जीन किससे ने होते हैं और मोटे तौर पर वे अपना तिरूपण कैसे करते हैं. लेकिन जीन करता या है? कोशिका में निर्देशक की तरह बैठे हने से कोई काम नहीं चलता; इसे कोशिका ो गतिविधियों को निर्देशित करना होता है.

जीन कई काम करते हैं. इनमें सबसे अधिक हत्वपूर्ण काम जिसे अधिकांश जीन करते हैं, ह है प्रोटीनों के लिए कोड (विशेष चिन्ह) नाना.प्रत्येक जीन एक विशेष प्रोटीन को कोड ारता है; अधिक स्पष्टता से कहा जाए तो ोटीन के किसी भाग को ही.

प्रोटीन वास्तव में कोशिकाओं के कार्यकारी त्र ही होते हैं. यही वे अणु हैं जो कार्य करते . ये अंगों, ऊतकों, मांसपेशिओं तथा ऐसे ही नेक भागों के निर्माण में सहायता करते हैं. ये ोशिकाओं की झिल्लियों में मार्ग बनाते हैं. ाकिन उनमें से अधिकांश एंजाइम बनाते हैं जो ोशिका के रासायनिक कार्य को सम्पन्न करने ाले उत्प्रेरक होते है. एक विशेष एंजाइम एक ा अधिक विशेष अभिक्रिया को उत्प्रेरित ारता है और यह या तो दो छोटे रसायनों को ापस में जोड़ देता है या फिर उन्हें लग-अलग कर देता है.

प्रत्येक एंजाइम एक पृथक कार्य ही करता . परिवार के रूप में वे विविध होते हैं जो कई ार्य कर सकते हैं. क्रियाकलाप में वे यथार्थ या बहुत सूक्ष्म होते हैं. इसलिए प्राकृतिक रूप यह जानना रोचक ही है कि वे किससे बने ते हैं. कोई प्रोटीन या उसका बड़ा भाग एक म्बे अणु का बना होता है जो नियमित अंतरालों पर छोटे-छोटे पार्श्व समूहों से बना होता है. लेकिन इस स्थिति में 20 तरह के पार्श्व समूह होते हैं यानी 20 तरह के छोटे रसायन या रासायनिक अणु जिनके सूत्रों से हम भलीभांति परिचित हैं. प्रोटीन का कार्य प्रोटीन भाषा के उन 20 अक्षरों की वास्तविक व्यवस्था पर निर्भर करता है. जीन का कार्य प्रोटीनों को उचित क्रम में व्यवस्थित हो जाने के लिए निर्देश देना ही है.

प्रोटीनों को लंबी बड़ी श्रृंखलाएं बनाने के लिए आपस में उचित क्रम में मिलाकर रखा जाता है. तब कोटर (कैविटी) बनाने वाली पार्श्य श्रृंखलाओं तथा प्रोटीन द्वारा निर्देशित विशेष अभिक्रिया सम्पन्न करने वाले रसायनों की आपसी संक्रिया से यह श्रृंखला अपने ऊपर मुड़ जाती है. प्रोटीने कैसे बनती हैं? इस बारे में इतना कहना पर्याप्त है कि ये कोशिका के जटिल जैवरासायनिक कारखाने में बनती हैं. स्वयं ये कारखाने भी प्रोटीनों के ही बने होते हैं. प्रत्येक कोशिका उन जीनों की एक कार्यकारी प्रति प्राप्त करती है जो किसी विशेष कोशिका में सक्रिय होते हैं. यह निर्देशात्मक टेप कारखाने में प्रविष्ट करा दिया जाता है जो किसी विशिष्ट जीन के लिए विशेष प्रोटीन को निर्देशित करता है.

इस तरह हमारे पास दो भाषाएं हो गईं-न्यूक्लीय अम्लों वाले जीनों की 4 अक्षरों वाली भाषा और प्रोटीनों की 20 अक्षरों वाली भाषा. प्राकृतिक रूप से एक शब्दकोश भी होना चाहिए जिसे कोशिका इस्तेमाल कर सके-एक रासायनिक शब्दकोश जो इन दोनों भाषाओं का अनुवाद कर सके. ठीक इसी तरह जैसे कि मोर्स कोड में बिन्दुओं और निर्देशों की भाषा से हमारी अपनी भाषा में अनुवाद के लिए छोटा से शब्दकोश होता है. इसी शब्दकोश को हम आनुवंशिक कोड कहते हैं. यह एक छोटी सी तालिका होती है जो संबंध के बारे में बताती है. इसकी जानकारी 1966 में हो गई थी. आनुवंशिक कोड सभी जीवों—विषाणु, जीवाणु, पशुओं, पादपों और मनुष्यों में लगभग एक-सा ही होता है. कुछ स्थितियों में इस कोड में थोड़ी भिन्नताएं भी पाई जाती हैं लेकिन ये भिन्नताएं अपेक्षाकृत लघु ही होती हैं.

अतीत की चर्चा इतनी ही. सन् 1977 के आसपास तीन बड़ी क्रांतिकारी खोजें हुईं. पहली थी-कई लाख अक्षरों की लम्बाई वाले डी एन ए के अणुओं को कुछ सैकड़ों या हजारों के टुकड़ों में काट पाने की क्षमता और इन टुकड़ों को प्रकृति में प्राप्त जीवों से किसी अन्य वांछित जीव में प्रवेश करने की क्षमता का विकास. दूसरी खोज थी इन टुकड़ों को एक क्रम में रख पाने की क्षमता का विकास. 1966 में हमें अक्षरों की जानकारी हो गई थी लेकिन न्यूक्लीय अम्ल की भाषा में किसी भी संदेश को पढ़ पाने की स्थितियों में हम नहीं थे. आज हमारे पास ऐसी तकनीकें हैं कि डी एन ए के किसी टुकड़े के दिए रहने पर हम बहुत जल्दी तथा कम खर्च में चार अक्षरों के अनुक्रम में इस संदेश को पढ़ सकते हैं. देखने में यह सब नीरस और कष्टसाध्य लगता है लेकिन यह एक स्पष्ट अनुक्रम है जिसे प्रायोगिक रूप से निर्धारित किया जाता है. अनुक्रम की लंबाई 100 लाख या 200 लाख अक्षरों के बीच ही होनी चाहिए.

तीसरी खोज एक ऐसी तकनीक से संबंधित है जिसे 'मोनोक्लोनल एंटीबाडी' कहा जाता है. इसके विकास में वैज्ञानिकों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ा. उदाहरण के लिए यदि हम किसी कोशिका में डी एन ए के किसी टुकड़े को खोजना चाहें तो हमें इसकी कितनी प्रतियां मिलेगी? उत्तर में यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक कोशिका में केवल दो अणु होते हैं. रासायनिक दृष्टिकोण से यह कुछ भी नहीं है. लेकिन स्थिति इससे भी अधिक खराब है, क्योंकि यहां हमारे पास विभिन्न गुणसूत्रों में वितरित 3 अरब बेस युग्म हैं और हम एक जीन की औसत लम्बाई के बराबर 3000 बेस युग्मों की लम्बाई के एक टुकड़े की तलाश कर रहे हैं. यानी हम एक ऐसी चीज की तलाश कर रहे हैं जो उपस्थित डी एन ए का केवल सौ लाखवां हिस्सा है. एक तरह से हम सौ लाख अवांछित वस्तुओं में प्रायोगिक रूप से कुछ भी नहीं तलाश कर रहे हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम दृष्टि में तो यह पूरी तरह असंभव लगता है लेकिन ऐसा किया जा चुका है. इसके लिए हम मानक विधियों का उपयोग करते हैं जिनका विकास पहले ही किया जा चुका है. हम लोग क्रोमैटोग्राफी, इलेक्ट्रोफॉरेसिस और इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी का उपयोग करते थे. अब तो रेडियो-धर्मी समस्थानिकों की भी सहायता मिल जाती है.

इनके अलावा हम तीन बड़ी तकनीकों का भी उपयोग करते हैं. तीनों तकनीकों को मिलाने पर बनी तकनीक पुनर्संयोजी डी एन ए तकनीक कहलाती है. सबसे पहले हम डी एन ए या आर एन ए के किसी टुकड़े का उपयोग दूसरे टुकड़े को पहचानने में कर सकते हैं बशर्ते इसमें पूरक क्रम पाया जाता हो. यदि न्यूक्लीय अम्ल के कुछ अणुओं में पूरक क्रम पाया जाता हो और इन्हें आपस में मिलाया जा सके तो वे एक दूसरे को टटोलने लगेगें और अंततः एक दूसरे का जोड़ीदार पा जाएंगे. यदि इनके क्रम पूरक नहीं हैं तो वे अलग-अलग बने रहेगें. यह बहुत ही शक्तिशाली तकनीक है जिसके द्वारा न्यूक्लीय अम्ल के एक टुकड़े (बिट) का उपयोग उस बड़े टुकड़े को पहचानने में किया जा सकता है जिसके अन्दर छोटे टुकड़े का पूरक टुकड़ा रहता हो.

दूसरी तकनीक का उपयोग अत्यंत सुग्राही/परिष्कृत रासायनिक संक्रियाओं/अभिक्रियाओं में किया जाता है. प्राथमिक रसायन विज्ञान के प्रयोगों में हम एक परखनली लेते हैं, उसमें पदार्थ डालते हैं, उन्हें आपस में मिलाते हैं और गर्म करते हैं. इस प्रक्रिया में पदार्थ बहुत अच्छी तरह से कार्य नहीं करते और कुछ ऐसे उत्पाद भी मिल जाते हैं जिन्हें हम नहीं चाहते. पुनर्संयोजी तकनीक इससे भिन्न होती है. इस तकनीक में हम प्रकृति प्रदत्त विधियों (एंजाइमों) का उपयोग करते है. इंजाइम किसी भी कोशिका से लिया जा सकता है, उनका निष्कर्षण करके शोधन किया जाता है और तब ये वांछित कार्य कर सकते हैं. ऐसे एंजाइमों की एक पूरी श्रृंखला ही होती है जिसका उपयोग डी एन ए को काटने, उन्हें आपस में जोड़ने, खींचकर बढ़ाने तथा अन्य कई उन कामों में होता है जो हम पुनर्संयोजी डी एन ए से लेना चाहते हैं. इन विधियों से हम अपने डी एन ए का एक टुकड़ा लेकर पसंदीदा जीन का पता लगा लेते हैं.

तीसरी तकनीक है जीवाणु कोशिका-हम इसकी वृद्धि करते हैं ताकि 2, 4,8 कोशिकाएं यहां तक कि लाखों और हजारों लाखों कोशिकाएं हो जाएं. इस तरह हमें वांछित डी एन ए की हजारों लाखों प्रतियां मिल जाती हैं. इन कोशिकाओं को तोड़ा जा सकता है और मनपंसद टुकड़ों को निष्कर्षित किया जा सकता है.

ये तकनीकें शक्तिशाली होने के साथ ही बहुत महत्वपूर्ण भी हैं. इतने सारे वैज्ञानिक इन पर अनुसंधान कर रहे हैं कि नई तकनीकों व उनके अनुप्रयोगों की चर्चा हर कुछ महीनों में ही सुनाई पड़ने लगती है. अब हम डी एन ए के अपेक्षाकृत अधिक लम्बे टुकड़ों पर अनुसंधान कर सकते हैं. अधिक तेजी से इसका अनुक्रम बना सकते हैं तथा अन्य कई तकनीकों का उपयोग कर सकते हैं. विकास के साथ ही इन तकनीकों का अनुप्रयोग हो रहा है और यह अनुप्रयोग बढ़ता ही जा रहा है.

इस विषय का भविष्य बहुत अच्छा है. अपने आप से पूछना चाहिए कि हम अभी इन तकनीकों का क्या कर रहे हैं और भविष्य में क्या करना चाहिए. सबसे पहले अनुप्रयोगों की चर्चा की जाए. अब हम मानवीय प्रोटीनें बना सकते हैं जैसे मनुष्यों से इन्सुलिन जीन लेकर, इसे सूक्ष्मजीवों में रखकर, अभिवृद्धि कर और शोधन कर. इसी तरह के कई अन्य पदार्थ जैसे अभिवृद्धिकारी हार्मोन भी अब हम बना सकते हैं.

ये तकनीकें चिकित्सा विज्ञान की कई वर्तमान समस्याओं को सुलझाने में हमारी मदद कर रही हैं. इन्हीं की सहायता से हमें कैंसर की प्रकृति को समझने में आसानी हुई है. अभी तक विस्तृत जानकारी नहीं मिल सकी है क्योंकि जहां एक ओर कैंसर की कार्यप्रणाली कोशिकाओं की अभिवृद्धि के नियंत्रण का क्षय करती है वही दूसरी ओर कोशिकाओं के एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलने की भी. हमें इस बारे में थोड़ी जानकारी ही मिली है क्योकि जटिल कार्यप्रणाली है, और इसे पूरी त समझ पाने में कुछ और समय लगेगा.

आशा है कि ये नई तकनीकें कैंसर उपचार में हमारी मदद करेंगी और कम कम उष्णकटिबंधीय देशों में होने वा बीमारियों को समझने में उपयोगी सिद्ध हो इस बारे में अनुसंधान प्रारंभ हो चुके विरासत में मिले ज्ञान से हम इनके बारे जानते हैं. लेकिन गड़बड़ी कहां हो रही कौन से जीन गड़बड़ कर रहे हैं, इस जानकारी नहीं है. आजकल हमारा ध्यान दोषपूर्ण जीनों पर केन्द्रित है. लगभग प्रत्ये चिकित्सीय समस्या ऐसी लगती है मानो तकनीकों से हल हो जाएगी.

कृषि में इन तकनीकों के उपयोग शुभारंभ पहले से ही दिखाई पड़ रहा है. सोचते हैं कि पालतू पशुओं की नस्लों सुधारा जा सकता है. हम पौधों में भी सुध करना चाहते हैं. जिन पौधों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण नहीं होता उनमें नाइट्रोजन स्थिर करण कराने में समर्थ हो सकते हैं. क नियंत्रण जैसी समस्याओं के लिए जीनों हेराफेरी की जा सकती है.

मूलभूत विज्ञान की बात करें तो पशु पादप कार्यिकी में ऐसी कई समस्याएं हैं जि अभी हम पूरी तरह नहीं समझते और जिन पता लगाने में इन तकनीकों का उपयोग हो ऐसे दो बड़े क्षेत्र है जहां ये तकनीके ब महत्वपूर्ण सावित होंगी. इनमें पहला विकासात्मक जीवविज्ञान का क्षेत्र भ्रूणविज्ञान

कोई भ्रूण किस तरह हाथ जैसी संरच बनाता है ताकि सभी हड्डियां, नाड़ि अंगुलियों के नाखून आदि उचित स्थान पर उचित आकार के होते हैं और उचित ढंग कार्य करते है. हमें यह जानने की जरूरत कि जीन किस तरह कार्य करना प्रारंभ अ समाप्त करते है. हमारे शरीर की प्रत्ये कोशिका में जीनों का एक पूर्ण समुच्चय हो है. उदाहरण के लिए नाड़ी की कोशिका में ए विशेष प्रकार की जीन रहती है और ना कोशिका के लिए विशेष जीनों का समुच्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...र्य प्रारंभ करता है. मांसपेशी की कोशिकाओं ...एक अलग किस्म का समुच्चय पाया जाता है ...पि कुछ जीन लगभग हर कोशिका में कार्य ...ते है. इस संदर्भ में हमें लघु जीवों के बारे में ... जानकारी मिली है और वृहत् जीवों के ... में जानने का शुभांरभ हो रहा है. जीनों के ...त्रण की पूरी प्रक्रिया का ज्ञान अभी तक ... हो सका है. इस क्षेत्रों में भी शुरुआत हो ... है लेकिन अभी यह छोटे प्राणियों जैसे कि ...ों की मक्खी ड्रोसोफिला तक ही पहुंच ... है.

...हमें यह भी जानने की आवश्यकता है कि ...री कोशिकाओं या किन्हीं भी कोशिकाओं ...अंदर क्या घटित हुआ क्योंकि कोशिकाएं ...टल जैविक संरचनाएं होती हैं. इनमें कुछ ...र छोटी-छोटी संरचनाएं होती हैं; अणु एक ...न से दूसरे स्थान पर जुड़े रहते हैं. ये ...शिकाएं प्रायः विचित्र आकृतियां ग्रहण कर ...ी हैं जैसा कि नाड़ी की कोशिकाएं करती हैं. ...कासात्मक जीवविज्ञान को समझने के लिए ... यह सब समझने की जरूरत हैं. कोशिकाओं ...होने वाली संक्रियाओं को भी जानना है, जो ...क दूसरे को भेजे जाने वाले संकेतों के रूप में ...ती हैं. ये संक्रियाएं या तो हार्मोनों की तरह ...ी दूरियों पर होती हैं या न्यूरोट्रांसमिटर की ...रह छोटी दूरियों पर (न्यूरोट्रांसमिटर एक ...रॉन से दूसरे तक संदेश भेजते हैं).

... दूसरा बड़ा क्षेत्र है मस्तिष्क का अध्ययन ...नी तंत्रिकाजीवविज्ञान. यहां भी हम आण्विक ...कोशिकीय स्तर पर इन तकनीकों की मदद ... आशा करते हैं. हमें केवल अपने मस्तिष्क ... अणुओं को ही नहीं समझना है बल्कि ...पेक्षाकृत व्यापक स्तर पर इनका संबंध ...ोविज्ञान से जोड़ना है.

... इन आण्विक तकनीकों का महत्व यही है ... वे हमें समस्याओं के समाधान में सहायता ...ी है और प्रायः इस योग्य बनाती है कि हम ...श्चित रूप से किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत की ...ष्टि या उसका खंडन कर सकें. उदाहरण के ...ए स्मरण शक्ति/स्मृति कैसे बनी रहती है या ...स तरह हम वस्तुओं को देखते हैं.

बहरहाल इन दोनों क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण भिन्नताएं हैं. भ्रूणविज्ञान में हमारे पास अधिकांश मूलभूत विचार हैं. संयोग से तंत्रिकाजीवविज्ञान हमारे शेष शरीर से अधिक जटिल है और इस क्षेत्र में हमारे पास मौलिक विचार भी नहीं हैं. अभी हम यह नहीं जानते कि मस्तिष्क के बारे में वैज्ञानिक के रूप में कैसे सोचा जाए. इनके अध्ययन की विधियां विशेष रूप से उच्च स्तर पर अभी भी बहुत कठिन है. अतएव मेरी धारणा है कि भ्रूणविज्ञान बहुत तेजी से उन्नति करेगा और इस शताब्दी के अंत तक यह लंबा रास्ता तय कर लेगा जबकि तंत्रिकाजीवविज्ञान में धीरे-धीरे प्रगति होगी. इसमें अभी कई और महत्वपूर्ण खोजों की जरूरत है.

आजकल एक परियोजना की बहुत चर्चा है. इसके अंतर्गत किसी मनुष्य की सम्पूर्ण आनुवंशिक जानकारी (जिसे जेनोम कहते हैं) का चित्रण व अनुक्रमण (मैपिंग एंड सीक्वेंसिंग) किया जाना है. चित्रण से हमारा तात्पर्य है कि एक गुणसूत्र को अपनी विधियों (एंजाइमों) से काटते हैं एक परिभाषित विस्तार में. इस तरह सभी गुणसूत्रों को काट लेते हैं और इन सभी टुकडों को एक क्रम में रखते हैं चूंकि गुणसूत्र डी एन ए की एक लंबी श्रृंखला ही होती है इसलिए हम जान जाते हैं कि डी एन ए का प्रत्येक टुकड़ा उस गुणसूत्र पर कहां स्थित है, और इसी तरह सभी गुणसूत्रों पर ये टुकड़े कहां स्थित हैं. हम केवल यह ही नहीं जानना चाहेंगे कि ये टुकड़े कहां स्थित हैं बल्कि इनका अनुक्रम भी जानना चाहेंगे. अब तक 3 अरब बेस युग्म ज्ञात हैं इसलिए काम आसान नहीं है. वर्तमान तकनीक से इसमें बहुत समय लगेगा और खर्च भी बहुत आएगा. परिणामस्वरूप, आगामी कुछ वर्षों में नई सस्ती व तीव्रतर तकनीकों के विकास की आशा रहेगी.

संभवतः चित्रण पहले किया जाएगा और महत्वपूर्ण अनुक्रमों पर ध्यान केंद्रित रहेगा. अंततः इसे हम पूरी तरह जानना चाहेंगे. एक बात विरोधाभास से युक्त लगती है. हम जानते है कि जीनों में अनुक्रम की 'उच्च विशिष्टता' केवल 5-10 प्रतिशत या पूरे के केवल कुछ भाग के बराबर होती है. इसका लगभग 90 प्रतिशत गायब लगता है. संभवतः इनका कुछ कम 'विशिष्ट कार्य' होता है. एक संभावना यह भी है कि ये परजीवी हैं. निश्चित रूप से हम सभी इस विचार से सहमत हैं कि किसी शरीर में परजीवी हो सकते हैं, लेकिन अभी इस विचार से अवगत नहीं हैं कि हमारे अंदर आण्विक परजीवी हो सकते हैं जो हमारे गुणसूत्रों में रहते हैं. इसकी सच्चाई की परीक्षा होनी है. लेकिन चित्रण व अनुक्रमण में जो भी घटित होगा उसका प्रभाव सभी विषयों- मूलभूत व अनुप्रयुक्त दोनों पर अवश्य पड़ेगा. विश्व के कई भागों में ऐसे प्रयास हो रहे हैं.

देखने-सुनने में यह बहुत आसान लग सकता है लेकिन ऐसा नहीं है. पृष्ठभूमि के ज्ञान के साथ ही अपना ज्ञान दिनाप्त (अप-टु-डेट) रखना पड़ेगा, क्योंकि यह क्षेत्र बहुत तेजी से उन्नति कर रहा है. इन तकनीकों पर अच्छी तरह अनुसंधान करने के लिए हमें इन पर विशेषज्ञता हासिल करनी पड़ेगी. इसके लिए प्रशिक्षित व कुशल शोधकर्त्ताओं की आवश्यकता होगी.

अंत में नैतिक समस्याओं का कठिन मामला भी. ये सभी नई शक्तिशाली तकनीकें कठिनाइयां व समस्याएं पैदा करेंगी. हमें केवल अतीत के अनुसंधानों की ओर देखना है. टेलीविजन व कम्प्यूटरों की तुलना में शायद कोई कारों के बारे में कुछ भी न कहना चाहे क्योंकि ये प्रत्येक वर्ष कई लोगों को दुर्घटना कर मार डालती हैं. इसलिए खतरों को तुलना में फायदों को महत्व देना होगा. पुनर्संयोजी डी एन ए तथा जैवप्रौद्योगिकी भी इसके अपवाद नहीं हैं. इसलिए हमें खतरों के बारे में बहुत शांतिपूर्वक सोचना चाहिए.

इनमें से कुछ पर विचार कर लिया जाए. पहला खतरा है दुर्घटनावश नई बीमारियां पैदा हो जाने का. यह खतरा अब बहुत कम ही

(शेष पृष्ठ 85 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 079404

'गैलीलियो' बनेगा बृहस्पति का कृत्रिम उपग्रह

□ प्रमोद पाण्डे

अपने निकटतम पड़ौसी चन्द्रमा पर सफलतापूर्वक उतर कर वापिस आ जाने के बाद से ही मनुष्य अन्य ग्रहों तक पहुंचने का हौसला जुटाने में लगा है. उसके द्वारा पिछले वर्ष भेजे गए खोजी अंतरिक्ष यान गैलीलियो ने बृहस्पति की महायात्रा पर कदम बढ़ा लिए हैं और उसकी रोमांचक यात्रा अब सही तौर पर प्रारंभ हो गई कही जा सकती है. गैलीलियो से क्या हैं वैज्ञानिकों की आशाएं और अपेक्षाएं ?

पृथ्वी से बृहस्पति की यात्रा पर निकले मानव-रहित अंतरिक्ष यान 'गैलीलियो' ने अपनी महायात्रा का एक और चरण सकुशल पूरा कर लिया. पिछली 8 दिसम्बर को यह अन्तरिक्ष यान पृथ्वी की सतह से लगभग 3500 किलोमीटर की दूरी से गुजरा और अपनी गति बढ़ाता हुआ यात्रा के अगले चरण में प्रवेश कर गया. यात्रा के इस चरण में यान का कैमरा पूरी तरह सक्रिय रहा. चन्द्रमा पृथ्वी के पास आते ही इसने अंतरिक्ष से पृथ्वी और उसके उपग्रह के चित्र लिए. इस चित्रों में चन्द्रमा के प्रति पृष्ठ (दूसरी ओर) के ऐसे भी क्षेत्र हैं जिन्हें पहली बार देखा गया.

विश्व प्रसिद्ध खगोल वैज्ञानिक गैलीलियो के नाम पर गैलीलियो नाम से विभूषित यह महत्वाकांक्षी अन्तरिक्ष यान 18 अक्टूबर 1989 को अमेरिकी अन्तरिक्ष शट्ल 'एटलाण्टिस' में रखकर प्रक्षेपित किया गया था. हालांकि अनेक आधुनिक परिष्कृत उपकरणों से सुसज्जित इस यान ने लगभग एक वर्ष से अधिक समय की यात्रा निर्बाधित रूप से सम्पन्न कर ली है, परन्तु इससे जड़े वैज्ञानिक तथा इंजीनियर अब भी संशय और उत्साह की मिली जुली स्थिति में है. सभी के सामने एक बड़ा प्रश्नचिन्ह हैं–क्या 'गैलीलियो' अभियान अपने पूरे पांच वर्ष के जटिल यात्रा मार्ग को पूरा कर बृहस्पति (गुरु जुपीटर) ग्रह पर पहुंचकर अपना उद्देश्य पूरा कर पायेगा?

वैसे इस यान को सीधे रास्ते से गुरु की ओर प्रक्षेपित करके इसके यात्रा समय को बहुत कम किया जा सकता था. परन्तु मूल्यवान ईंधन की बचत के लिए इसके यात्रा-पथ का निर्धारण कुछ इस तरह किया गया था कि यह शुक्र और पृथ्वी के नजदीक से गुजरकर उनके गुरुत्वीय खिंचाव से अपनी गति उत्तरोत्तर बढ़ाता हुआ अपनी मंजिल तक पहुंच जाए. इस विशेष पथ को 'वीगा' नाम दिया गया है जो 'वीनस अर्थ अर्थ ग्रेविटी एसिस्ट' शब्दों के प्रथमाक्षरों को जोड़कर बनाया गया है.

यात्रा कार्यक्रम

कार्यक्रमानुसार अंतरिक्ष शट्ल 'एटलाण्टिस' के पृथ्वी की निर्धारित कक्षा में पहुंचने के बाद ही चालक मण्डल ने 'गैलीलियो' को शट्ल के माल कक्ष (कारगो बे) से अलग कर इसे अंतरिक्ष में मुक्त कर दिया. इस प्रक्रिया के बाद यान में लगे कम्प्यूटरों ने इसके दो चरणों को फायर किया, 2,76,000 न्यूटन बल के तुल्य इस धक्के ने गैलीलियो को अपनी निर्धारित कक्षा में स्थापित कर दिया.

गत वर्ष 9 फरवरी को आशानुरुप यह यान शुक्र ग्रह के अम्लीय बादलों से 19,400 किलोमीटर की दूरी से गुजरा. शुक्र से हुई इस मुठभेड़ का दोहरा लाभ उठाया गया. शुक्र के गुरुत्वीय खिंचाव से इसकी गति लगभग 8500 किलोमीटर प्रतिघंटा बढ़ गई. इस दौरान महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रेक्षण भी लिए विशेषकर ग्रह के अंधेरे गोलार्द्ध (जहां रात क्षेत्र में. शुक्र के बादलों से होने वाले ता उत्सर्जन के आंकड़े, इसके वातावरण में नि वायु प्रवाह (डीप विंड्स) की जानकारी प्र करने में सहायक होंगे. यान में लगे एक वि अवरक्त वर्णक्रममापी द्वारा जुटाए गए प्रेक्ष से ग्रह के वातावरण में उपस्थित विभिन्न के अनुपात निर्धारित करने में आसानी हो क्या शुक्र में कभी तरल जल उपस्थित था यदि था तो उसका क्या हुआ? तथा आज ग्रह इतना शुष्क क्यों हो गया? प्राप्त आंव के विस्तृत विश्लेषण से ऐसे कुछ महत्व प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने के प्रयास भी हो रहे हैं

शुक्र से हुई इस 'भेंट' के दौरान त्रुटिपूर्ण कम्प्यूटर आदेशों के कारण लगभग घंटे तक यान के कैमरे का शटर आधे मिनट अन्तराल से खुलता बंद होता रहा. परन्तु स रहते इस त्रुटि का निराकरण कर लिया और शुक्र के कुछ सुन्दर चित्र उतारे गए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा का अगला चरण भी जोखिम भरा शुक्र से हुई भेंट के आठ दिन बाद यह यान नी कक्षा में सूर्य के निकटतम पहुंचा. इस य सूर्य से इसकी दूरी मात्र साढ़े दस करोड़ लोमीटर थी. सूर्य के इतने निकट इस यान प्रचण्ड सौर ऊर्जा का सामना करना पड़ा. मा की प्रचण्डता से यान के संवेदी उपकरणों बचाने के लिए सूर्य से निकटता की इस धि में इसका छातानुमा मुख्य एण्टिना बन्द तथा इसका मुख सूर्य-पृथ्वी के विपरीत शा में रखा गया. अतिरिक्त सुरक्षा के लिए में ऊष्म प्रतिरक्षक (हीट शील्ड) भी ाए गए हैं.

इसके लगभग दस महीने बाद पिछले म्बर माह के दूसरे सप्ताह 'गैलीलियो' यान अपनी यात्रा का एक और चरण पूरा किया. चरण में यान पृथ्वी के धरातल से मात्र 00 किलोमीटर की दूरी से गुजरा. पृथ्वी के त्वीय खिंचाव से यान की गति बढ़ी, साथ इसकी कक्षा में परिवर्तन लाया गया. अब लीलियो' एक बड़ी कक्षा में आगे बढ़ रहा है. अपने मार्ग के निकट से गुजरने वाले कुछ ग्रहों (एस्टेरायड्स) के चित्र उतारकर ी पर भेजेगा. इस वर्ष के अन्त में दिसम्बर 91 में यान के नोदकों को एक बार फिर लू कर गतिवृद्धि की जाएगी. इसके बाद की ा में यह एक बार फिर धरती के निकट एगा और इस बार सतह से इसकी दूरी होगी ल तीन सौ किलोमीटर. अपनी धरती से लीलियो' की इस अंतिम 'मुठभेड़' से यान गति में और इजाफा होगा और इसकी ा अब अपनी अंतिम मंजिल गुरु की ओर से जाएगी जहां यह सन् 1995 के अन्त तक वेगा.

अध्ययन किसलिए?

हालांकि हमारा सौर परिवार विविधताओं भरा है व सभी ग्रह एक दूसरे से भिन्न है, तु स्थूल रूप से समानताओं के आधार पर को दो श्रेणियों में बांटा गया है. पहली ी में हैं—बुध, शुक्र, पृथ्वी और मंगल जैसे धरातल वाले ग्रह, जबकि विशालकाय य ग्रह यह गुरु, शनि, यूरेनस और नेप्च्यून दूसरी श्रेणी में रखे गए है. इन दोनों श्रेणियों की मूलभूत विषमताओं का कारण है सौरमण्डल के जन्म के समय की परिस्थितियां.

अध्ययनों के आधार पर यह माना जाता है कि सौरमण्डल का जन्म धूल और गैस के एक विशाल बादल 'सौर—नीहारिका' (सोलर नेबुला) के सिकुड़ने से हुआ. इस संकुंचन के फलस्वरूप बादल के मध्य में ताप और दाब की ऐसी अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न हुईं जिनसे नाभिकीय संगलन अभिक्रिया आरंभ हुई और हमारे सूर्य का जन्म हुआ. सूर्य की गर्मी से, बादल में उपस्थित वाष्पशील पदार्थ व हाइड्रोजन, हीलियम जैसे हल्के पदार्थ बाहर की ओर विस्थापित होने लगे. बचे हुए भारी व ठोस पदार्थ कणों के सम्मिलन से, बुध,शुक्र,मंगल और पृथ्वी जैसे ठोस ग्रहों का निर्माण हुआ. इन ग्रहों की कक्षा से दूर उपस्थित पदार्थ कणों ने मिलकर ठोस क्रोड (कोर) तो बनाई परंतु इसके बाद ही इस क्रोड ने अपने चारों ओर उपस्थित हाइड्रोजन तथा हीलियम जैसे आद्य पदार्थ के भंडार को खींचकर आवरण के रूप में लपेट लिया. यही आद्य पदार्थ गुरु जैसे ग्रहों में सुरक्षित है. इसीलिए वैज्ञानिकों को विश्वास है कि गुरु के वायुमंडल के विस्तृत अध्ययन से सौरमण्डल के जन्म के, अनेक अनबूझे रहस्य संभवतः स्पष्ट हो सकें. 'गैलीलियो' अभियान का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है इसके वायुमण्डल का अध्ययन.

मिनी सौर परिवार

सौरमण्डल के इस विशालतम ग्रह गुरु का कम से कम 16 ज्ञात उपग्रहों का अपना परिवार है. महान वैज्ञानिक गैलीलियो द्वारा सबसे पहले खोजे गए चार उपग्रह इस परिवार में सबसे बड़े हैं. इन सभी के आमाप हमारे अपने चन्द्रमा से बड़े हैं और गुरु का सबसे बड़ा उपग्रह गैनीमीड, बुध ग्रह से भी बड़ा है.

चारों गैलीलियाई उपग्रहों में सबसे बाहरी 'कैलिस्टो' की सतह गड्ढों से पटी है. उपग्रह की बर्फ़ीली सतह में बने ये गड्ढे संभवतः साढ़े तीन अरब वर्ष पहले हुए भंयकर उल्कापात का परिणाम हैं.

विशाल गैनीमीड भी कम अनोखा नहीं. इसकी सतह कहीं तो गड्ढों से भरी है तो कहीं भीतरी परतों के खिसकाव ने इनके गडढे भरे धरातल को परिवर्तित कर दिया है. 'योरोपा' की सतह लगभग सौ किलोमीटर मोटी बर्फ की परत से ढकी है. परंतु इन सबमें सबसे अनोखा और रहस्यमय है गुरु का छोटा भीतरी गैलीलियाई उपग्रह 'आइओ'. पूरे सौरमण्डल में संभवतः सबसे अधिक सक्रिय ज्वालामुखी यहीं पर हैं. गुरु और योरोपा के मध्य का यह चन्द्रमा इन दोनों पिण्डों के गुरुत्व बलों के कारण खिंचता सिकुड़ता रहता है और इसके कारण ही इसके भीतर उत्पन्न ज्वार ऊष्मा ही शायद इसे इतना अधिक सक्रिय बनाती है. यही नहीं इस उपग्रह के सम्बन्ध में प्राप्त अनेक सूचनाएं वैज्ञानिकों को उलझन में डाले हुए हैं. 'गैलीलियो' अपनी इस यात्रा में इन सभी उपग्रहों की खोज खबर लेगा तथा 'आइओ' की सतह से मात्र एक हजार किलोमीटर दूर से गुजरकर इसके चित्र उतारेगा.

चुम्बकमण्डल

गुरु का चुम्बकीय क्षेत्र सौरमण्डल के सभी ग्रहों में सबसे अधिक शक्तिशाली है. इसके चुम्बकमण्डल का फैलाव शनि ग्रह की कक्षा तक आंका गया है. शक्तिशाली चुम्बकीय क्षेत्र इस बात की पुष्टि करता है कि गुरु के भीतर भीषण दाब के कारण हाइड्रोजन धातु जैसे सुचालक गुण दिखाती है. ग्रह के तीव्र घूर्णन के कारण इसमें विद्युत धारा का प्रवाह होने लगता है और यही विद्युतधारा इसका शक्तिशाली चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करती है. अतः चुम्बकीय क्षेत्र के अध्ययन से ग्रह की आन्तरिक संरचना तथा हलचल को समझने में मदद मिलती है. 'गैलीलियो' के प्रेक्षण कार्यक्रम में गुरु के चुम्बकमण्डल की सूक्ष्मता से जांच पड़ताल को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है.

वैज्ञानिक उपकरण

अभियान 'गैलीलियो' अब तक भेजे गए सभी अन्तरिक्ष यानों के मुकाबले नवीनतम व परिष्कृत तकनीक से सुसज्जित है. इसका एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नए किस्म का द्वि-घूर्णी यान है. इसका एक भाग तीन चक्कर प्रति मिनट की दर से घूमेगा जबकि दूसरा भाग स्थिर रहेगा. घूमने वाला भाग इसमें स्थित क्षेत्र तथा कण संवेदक यंत्र को चारों दिशाओं में प्रेक्षण लेने में सहायक होगा जबकि स्थिर भाग कैमरे तथा अन्य सुदूर संवेदन उपकरणों को एक स्थिर प्लेटफार्म प्रदान करेगा.

'गैलीलियों' में सुसज्जित वैज्ञानिक उपकरणों में एक महत्वपूर्ण उपकरण है—चार्ज कपल डिवाइस जो एक अति आधुनिक किस्म का संवेदनशील टेलीविजन कैमरा है. 'वौएजर' यान के कैमरे के मुकाबले इसकी संवेदनशीलता सौ गुना अधिक है. जहां 'वौएजर' के कैमरे की औसत पृष्ठ विभेदन क्षमता एक किलोमीटर की रही वहीं गैलीलियो के इस विशेष सी०सी०डी० कैमरे से गुरु के उपग्रहों के चित्रों में, औसत रुप से 20 से 50 मीटर का पृष्ठ विभेदन (सर्फेस रेजोल्यूशन) रहेगा. इसके अतिरिक्त इसमें ले जाए गए अवरक्त तथा पराबैंगनी सेक्ट्रोमीटर से गुरु के वायुमण्डल तथा उपग्रहों की जांच-पड़ताल कहीं अधिक सूक्ष्मता से की जा सकेगी. एक चुम्बकत्वमापी से इसके चुम्बक मंडल का अध्ययन तथा चुम्बकीय क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों का आकलन भी किया जा सकेगा. प्रोटोन, इलेक्ट्रो तथा अन्य उच्च ऊर्जा कणों का संसूचन इसमें लगा ऊर्जा कण संसूचक करेगा. कुछ अन्य उपयोगी उपकरणों की सहायता से ग्रह तथा इसके उपग्रहों के निकट के धूल कणों की गति व आवेश की नाप जोख भी की जाएगी.

इन उपकरणों के संचालन के लिए ऊर्जा का प्रबन्ध इसमें लगे रेडियो आइसोटोप ताप वैद्युत जनित्र करेगें जो आरम्भ में लगभग 570 वॉट ऊर्जा का उत्पादन करेंगे, बाद में इनकी क्षमता धीरे-धीरे कम हो जाएगी. ताप संवेदनशील उपकरणों को निर्धारित ताप पर बनाए रखने के लिए इसमें 101, एक वॉट के रेडियो आइसोटोप हीटर भी लगाए गए हैं.

सभी प्रणालियों के नियन्त्रण तथा समन्वय का कार्य इसमें रखे 19 माइक्रोप्रोसेसरों को सौपा गया है. ये सभी पृथ्वी नियन्त्रण केन्द्र से आदेश प्राप्त करेगें. समय-समय पर आवश्यकतानुसार कम्प्यूटर कार्यक्रम को संशोधित और परिवर्तित भी किया जा सकेगा. सभी संवेदनशील इलेक्ट्रोनिक अवयवों को गुरु के प्रचण्ड ऊर्जा क्षेत्र से बचाना भी आवश्यक है क्योंकि ग्रह के निकट के उच्च ऊर्जा आवेशित कण यान के कम्प्यूटर मेमोरी सेल को हानि पहुंचा सकते हैं. इसीलिए इन अवयवों को कठोरीकृत या परिर'क्षित किया गया है.

पृथ्वी से यान के बीच की संचार व्यवस्था को मुस्तैदी से कायम रखने के लिए इसमें 4.8 मीटर व्यास का एक विशाल हाई गेन एण्टिना लगाया गया है जो तब तक बन्द रहेगा जब तक यान सूर्य से दूर, पर्याप्त ठण्डे क्षेत्र में न आ जाए. इसी कारण 'गैलीलियों' की शुक्र ग्रह से 'भेंट' के दौरान इसमें लगे अपेक्षाकृत छोटे व मंद गति वाले संचार एण्टिना का उपयोग किया जा सका.

अवरोहण यान व प्रेक्षण

'गैलीलियों' का एक अति उपयोगी और महत्वपूर्ण भाग है, इसके स्थिर भाग में आयोजित अवरोहण यान जो इसके वायुमण्डल में उतरने वाला पहला अन्वेषी यान होगा. इसके दो मुख्य भाग हैं—मन्दक मॉड्यूल तथा अवरोहण मॉड्यूल. मन्दक मॉड्यूल में ऊष्म परिरक्षक मौजूद हैं जो गुरु के सफन वातावरण में प्रवेश करते समय घर्षण से उत्पन्न गर्मी से इसकी रक्षा करेगा.

अवतरण मॉड्यूल में ग्रह के वातावरण का अध्ययन करने के लिए छः विशिष्ट उपकरण रखे गए हैं. जिनकी मदद से वातावरण के ताप, घनत्व, दाब, रासायनिक संघटन तथा हाइड्रोजन, हीलियम के अनुपात की सूचना ली जाएगी. इसके साथ ही मेघ कणों और वायुमण्डल तड़ित व ऊर्जा कणों का अध्ययन भी किया जाएगा.

लगभग पूरे पांच वर्ष की यात्रा पूरी करने के बाद यह गुरु ग्रह के नजदीक पहुंचेगा. गुरु के निकट आने के लगभग पांच माह पूर्व इसे अंतिम रूप से सही पथ में नियोजित किया जाएगा. सही स्थिति में आ जाने के बाद 'गैलीलियों' का खोजी यान (प्रोब) मुख्य यान से अलग होगा और एक विशेष रूप से निर्धारित कोण से गुरु की वातावरण की ओर बढ़ेगा ताकि वायुगतिक बल (इलेक्ट्रोडायनेमिक फोर्स) इसे हानि न पहुंचाए और यह सुरक्षित कप से गहराई तक उतर सके.

खोजी यान के अलग होने के तीन दिन बाद मुख्य परिक्रमा यान (आर्बिटर) के इंजन को चालू करके इसका पथ निर्धारण इस तरह से होगा कि यह अवतरण यान के ठीक ऊपर आ जाए. नवम्बर 1995 में खोजी यान गुरु के सघन वातावरण में प्रवेश करेगा और इस समय इसकी गति होगी 48 किलोमीटर प्रति सेकण्ड. ग्रह के घूर्णण दिशा के समान दिशा में प्रवेश करने के कारण यूं तो यान की सापेक्ष गति कम होगी परंतु फिर भी घर्षण के कारण काफी ऊष्मा उत्पन्न होगी. वायुमण्डल में प्रवेश के लगभग बीस सेकण्ड के छोटे से अन्तराल में ही यान के आसपास का तापमान करीब 8300° सेल्सियस तक पहुंच जाएगा. लगभग दो मिनट बाद इसमें लगा पैराशूट खुलेगा और इसकी अवरोहण गति इस कारण कम हो जाएगी.

अवतरण के साथ ही महत्वपूर्ण प्रेक्षणों का सिलसिला शुरू होगा और संदेश अवतरण यान से परिक्रमारत यान तक पहुंचेंगे. परिक्रमारत यान इसे पृथ्वी तक प्रेषित करेगा. प्रवेश के एक घंटे बाद यान गुरु के घने मेघों के बीच आ जाएगा और उत्तरोत्तर बढ़ते दाब और ताप के कारण रेडियो संकेतों में व्यवधान आने लगेगा. इसके बावजूद परिक्रमारत यान संदेशों क़ो इस समय के पन्द्रह मिनट बाद तक सुनने का प्रयत्न करेगा.

इस कार्य के सम्पादन के तुरंत बाद ऑरबिटर के इंजनों को चालू करके गुरु की परिक्रमा कक्षा में लाया जाएगा और आगे के महीनों में यह गुरु के एक कृत्रिम उपग्रह के रूप में स्थापित हो जाएगा. इस निर्धारित कक्षा में आते ही अध्ययन का एक लंबा सिलसिला शुरू

(शेष पृष्ठ 88 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी के जल-स्रोत सर्वेक्षण और प्रदूषण

□ डा० गिरीशचन्द्र चौधरी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मार्च 1989 में 'विज्ञान की नई दिशाएं' विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसमें अनेक वैज्ञानिकों ने भाग लिया और अपने निबंध पढ़े. इस अवसर पर प्रस्तुत आठ चुने हुए निबंध 'आविष्कार' के अलग-अलग अंकों में लेखों के रुप में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के सौजन्य से प्रकाशित किए जा रहे हैं. प्रस्तुत लेख इस कड़ी का पांचवां लेख है. इस लेख में काशी के जल-स्रोतों विशेषकर कूप तथा जलाशयों, जिन्हे गंगा जितना ही पवित्र माना जाता है, के महत्व का एवं प्रदूषण की समस्याओं का लघुचित्रण किया गया है. वस्तुतः मानवीय कार्यकलापों का विशेष हाथ प्रदूषण समस्या को बढ़ाने में पाया जा रहा है.

□ वाराणसी में बुलानाले की सड़क पर मोटर दुर्घटना का कोई समाचार आज भले ही एक सामान्य घटना हो गई हो, परन्तु आज से 150 वर्ष पूर्व ऐसा समाचार अवश्य ही आश्चर्यचकित करने वाला होता. कारण, आज जिस स्थान पर पक्की सड़क है और आज जो नगर का एक मुख्य मार्ग है, वहां उस समय एक विकट और विशाल नाला था, इतना विशाल कि उसका नाम ही था 'विपुलनाला'. यही आगे चल कर बुलानाला हो गया.

यों तो काशी क्षेत्र का विस्तार यदि पुराने माप के अनुसार निश्चित किया जाए तो उसके लिए शर्त यह होगी कि मंदागिन के आगे मध्यमेश्वर को केंद्र-बिन्दु मानकर वहां एक खूंटे में इतनी लंबी रस्सी बांध दी जाए जो देहली विनायक अर्थात भटौली गांव तक पहुंच सके. वहां से गोलाई में घूमते हुए पुनः वहां पहुंच जाने पर जितना भूमिखण्ड उस गोलार्ध के अंतर्गत आए, उतनी भूमि काशी क्षेत्र के अंदर मानी जाती है. परंतु प्रस्तुत प्रसंग में हमें काशी क्षेत्र के उतने ही अंश से मतलब है जिस पर वर्तमान नगर बसा हुआ है.

वर्तमान नगर की एक सीमा राजघाट स्टेशन है तो दूसरी सीमा अस्सी. इन सीमाओं के भीतर बसे नगर को देखकर कोई नहीं कह सकता कि यही स्थान कभी जलाशयों से इतना अधिक भरा हुआ था कि यहां समुद्र को छोड़कर अन्य जितने भी प्रकार के जलाशय सम्भव हो सकते हैं, अर्थात सरिता, सरोवर, वापी, कूप, नाले और कुण्ड सभी प्रचुर संख्या में थे. इसीलिए आज भी यह अष्टकूप, नौबावलियों का नगर कहा जाता है. बावलियां तो काल-समुद्र में विलीन हो चुकी हैं, परंतु आठों कूप अब भी वर्तमान हैं, जिनके नाम हैं—वृद्धकाल कूप, काल कूप, चन्द्र कूप, कलश कूप. धर्मकूप, शुक्र कूप, गोवर्ण कूप और कर्दम कूप. वृद्धकाल कूप का नाम धन्वन्तरि कूप भी है, जो मृत्युंजय के मंदिर के ठीक बगल में स्थित है. कहा जाता है कि इस कूप में धन्वन्तरि ने अपनी सभी औषधियां डाल दी थीं. काल कूप दंडपाणि की गली में है और चन्द्र कूप सिद्धेश्वरी पर है. कलश कूप, धर्मकूप और शुक्रकूप क्रमशः काश्मीरीमल की हवेली, मीरघाट और कालिकागली मुहल्लों में हैं. गोकर्ण कूप का पुराना पता वैलू की गली है परन्तु वैलू की गली भी आजकल कोदई की चौकी कहलाती है.

कर्दम कूप वर्तमान नगर के बाहर पंचक्रोशी यात्रा के प्रथम पड़ाव कंदवा नामक गांव में है. इसी स्थान पर वह मंदिर भी है जो काशी का प्राचीनतम मंदिर कहा जा सकता है. कारण, काशी में आज जितने मंदिर हैं वे तीन सौ साल के अंदर के ही हैं. पुराने मंदिर तो मध्यकाल में तोड़ दिए गए थे और उनमें से उक्त मंदिर ही शायद आक्रामकों के रास्ते में न पड़ने के कारण बचा रहा है.

इन आठ शास्त्रीय कूपों के अतिरिक्त काशी में और दो कूप विख्यात हैं, जिनमें से एक है नागकुआं और दूसरा है सोरा कुआं. कहते हैं कि नागकुआं पर महर्षि पंतजलि ने शास्त्रार्थ किया था.

वापियों में दो वापियों के नाम मिलते हैं—ज्येष्ठावापी और ज्ञानवापी. ज्येष्ठावापी भूतभैरव पर थी जो अन्य वापियों के साथ लुप्त हो गई. ज्ञानवापी अत्यंत संकुचित रुप में अब भी विश्वनाथ मंदिर और आलमगीरी मस्जिद के बीच मौजूद है. बौलियाबाग नामक स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी कभी कोई विशाल वापी-'बावली' थी. हो सकता है, वह भी नौ प्रसिद्ध वापियों के ही अंतर्गत रही हो.

जहां तक सरिताओं का सवाल है, यहां गंगा और वरुणा नामक नदियां अब भी प्रवाहित हैं. अस्सी का नाला भी मौजूद ही है. पंचगंगा घाट तो पांच नदियों का संगम-स्थल कहा जाता है, जिनमें गंगा तो प्रत्यक्ष है और सोते से निकलने वाला पानी किरणा नदी का चिन्ह माना जाता है. शेष यमुना, सरस्वती और धूतपापा नामक नदियां वहां गुप्त बताई जाती हैं.

प्राचीनकाल में अर्थात् जिस काल की चर्चा हम कर रहे हैं, गंगा पार कर राजघाट आने वाला व्यक्ति जब वर्तमान नगर की ओर बढ़ता था तो उसे सर्वप्रथम मत्स्योदरी तीर्थ नामक बहुत बड़ा तालाब मिलता था. वहां ओंकारेश्वर महादेव के दर्शन का विधान था. मत्स्योदरी तीर्थ मछोदरी तालाब के नाम से लघु रुप में अब भी मौजूद है.

मत्स्योदरी से आगे बढ़ने पर पश्चिम की ओर मन्दाकिनी तीर्थ मिलता था जिसका विस्तार एक और टाउनहाल तक था और दूसरी ओर मध्यमेश्वर महादेव के दर्शन की व्यवस्था थी.

प्राचीनकाल में यह नियम-सा था कि जहां मन्दिर हों, वहां जलाशय भी अवश्य रहे ताकि जलाशय में मार्जन कर लेने के बाद ही भक्त मंदिर में जाएं. इसी नियम के अनुसार बड़ा-गणेश के मंदिर की बगल में भी एक तालाब था, जो कालान्तर में सूख और सिमट जाने के कारण गणेश गढ़ही कहलाता था. सन् 1911 तक नगरपालिका के कागजपत्र में उस स्थान का नाम गणेश गढ़ही ही लिखा हुआ है. गणेश गढ़ही के सर्वथा सूख जाने पर उसी स्थान पर हरिश्चन्द्र कालेज की वर्तमान इमारत निर्मित हुई है.

काशी के कुंड और तालाब
(सन् 1822; जे० प्रिंसेप्स के अनुसार)

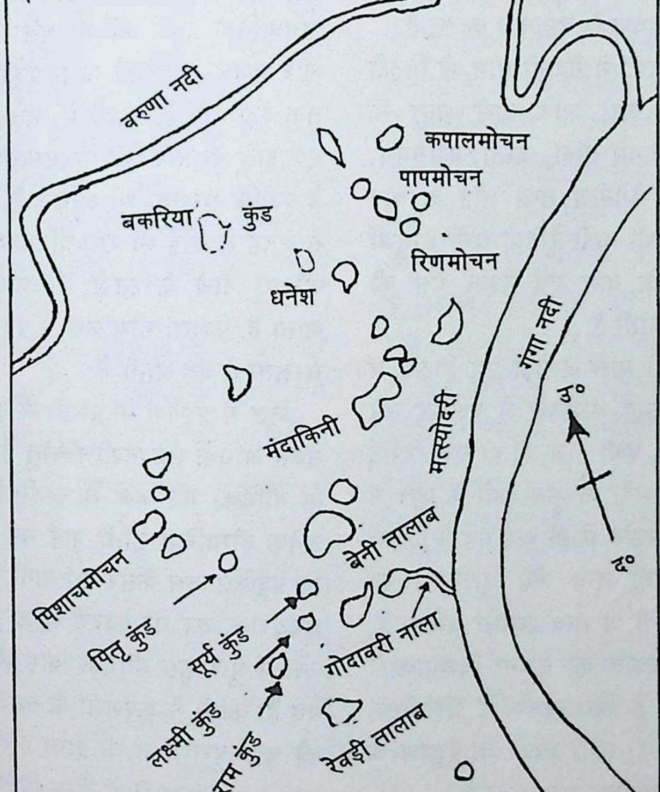

हरिश्चन्द्र कालेज के उत्तर पश्चिम में ईश्वरगंगी तालाब है और कालेज के ठीक दक्षिण में जहां सप्तसागर नामक मुहल्ला है पहले बहुत लंबे- चौड़े सात तालाब थे. बहुत बड़े तालाब को सागर या सगरा कहा जाता है. प्राचीन काल में जो नगर व्यापारिक मार्ग में पड़ते थे वहां सगरा जैसी कोई चीज अवश्य होती थी. कारण सार्थवाह के लिए यह आवश्यक होता था कि वह सगरा में विष्णु की स्वर्ण-मूर्ति विसर्जित करने के बाद ही यात्रा के लिए आगे बढ़े.

सप्तसागर के एक पार्श्व में विपुल नाला (बुलानाला) था जिसके आगे नौक थाने के सामने मुरदे जलाए जाते थे और उनकी हड्डियां अस्थिक्षेप तड़ाग गें छोड़ी जाती थीं. अस्थिक्षेप तड़ाग अब नहीं रह गया है और उसके ऊपर हड़हा नामक मुहल्ला बस गया है. दूसरी ओर गंगा के किनारे 'ब्रह्म हृद' नामक जलाशय था, जो बाद में नाला बन गया और उसी स्थान पर ब्रह्मनाल नामक मुहल्ला बस गया.

गोदौलिया नामक विख्यात सड़क पर कभी गोदावरी तीर्थ था. वह तीर्थ वर्तमान मारवाड़ी अस्पताल के ठीक नीचे था. पुराने लोगों से सुना है कि उक्त तीर्थ की सीढ़ियां उस अस्पताल के नीचे ज्यों की त्यों मौजूद हैं. गोदोलिया में पूरब डेढ़सी का पुल नामक स्थान स्वयं बताता है कि कभी वहां कोई नाला अवश्य था जिस पर पुल बना हुआ था. अब न नाला है और न वह पुल, परंतु नाम अब भी जीवित है. इसी स्थान पर दक्षिण की ओर अगस्तकुण्ड नामक मुहल्ला है कुण्ड आजकल के सुशील सिनेमा के बगल में कहीं था.

गोदौलिया से रामापुरा की ओर बढ़ने पर कुण्डों की भरमार-सी है जैसे, रामकुण्ड लक्ष्मीकुंड, सूर्यकुंड. ये तीनों कुंड अब भी परंतु इन्हीं के पास एक विशाल पुष्करिणी भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ी जो पट गई और उस पर मिश्र पोखरा नामक मुहल्ला बस गया. इसके भी आगे सिगरा मुहल्ला है, जिसका नाम ही बतलाता है कि वहां कभी कोई सागर जैसा विशाल तालाब था. नगर के दक्षिणी भाग में भी लोलाक कुंड और कुरुक्षेत्र जैसे जलाशय आज भी विद्यमान हैं.

इस प्रकार आज का नगर जो सड़कों और टेढ़ी-मेढ़ी गलियों का नगर है, कभी जलाशयों का नगर था और तभी उसका 'अष्ट कूप नौ बावली का नगर' नाम सार्थक था. वर्तमान काल में नगर की सड़कों ने अपना रुख बदल लिया है. यह नगर बसने पर यहां की सभी सड़कें पश्चिम से पूरब गंगा की ओर जाती थीं. परंतु अब वे उत्तर से दक्षिण जाती हैं. मैदागिन से गोदौलिया की ओर जाते समय जहां कहीं दाहिने हाथ की ओर गली दिखाई पड़ती है वहां ठीक बाएं हाथ की ओर भी गली अवश्य रहती है. इससे सष्ट प्रतीत होता है कि कभी ये गलियां परस्पर मिली हुई थीं, और किसी समय उन गलियों के पार्श्ववर्ती मकानों को तोड़कर वर्तमान सीधी सड़क निकाली गई है. नगर का रुप प्रतिदिन बदलता जा रहा है. सम्भवतः अगली शताब्दी वाराणसी नगर का दर्शन किसी दूसरे रुप में करेगी.

प्रदूषण

उपर्युक्त जलस्रोतों की प्राचीनता एवं अक्षुण्ण श्रद्धा से लोकप्रिय उपयोग से बरबस ही हमारा ध्यान इनकी प्रदूषण की स्थिति पर जाता है. धार्मिक श्रद्धा अथवा अंधविश्वास की भावनाओं से ओतप्रोत काशी की हजारों की संख्या में जनता इनके जल का पान-स्नान नित्य करती है. अतः इन स्रोतों के जल पर प्रदूषण एवं पर्यावरण की दृष्टि डालनी पड़ेगी. यह भली प्रकार ज्ञात है कि इनके उपयोग की प्राचीनता पर्यावरण के प्रदूषण की संभावनाओं को बढ़ा देती है. नदियों के मैदानी भाग की मिट्टी में स्थित कूपों-जलाशयों का प्रदूषण तो एक स्वाभाविक सी बात होती है. कारण इन स्रोतों का प्रदूषण से सुलभ लगाव है. इस संबंध में एक बात बड़ी मार्के की है कि प्रदूषण एक स्थल से स्वाभाविक रुप से ही दूसरे स्थल पर भी प्राप्त हो यह आवश्यक नहीं. आज पर्यावरण प्रदूषण पर दृष्टि संसार के प्रत्येक देशों में लगी है. यहां तक कि चीन, जो अब तक प्रदूषण को बुर्जुआ लोगों की उपज बताता था, आज अपने साम्यवादी ढांचे में भी भयंकर रुप से प्रदूषण की समस्या से ग्रसित है. वह देश इसे पूंजीवाद की गंदी देन मानता था. आज अपने तेज विकास एवं उन्नति से प्रदूषण की समस्या से व्यथित हो गया है. अतः काशी के जल स्रोत, विशेषकर कूप क्यों अछूते रह सकेंगे.

जहां तक काशी के कूपों में जल प्रदूषण का प्रश्न है, हमें उसके कारणों के विचार के साथ सोचना पड़ेगा. प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोत प्रकृति के अंग, जैसे वायुमंडल के विभिन्न अवयव तथा भौमिकीय स्थितियां हैं. परंतु मानवीय कारण अनेक हैं. खेतों में डाले जाने वाले उर्वरक, कूड़ा कर्कट, खलिहान, जानवरों के बाड़े, गांवों के गोबर एवं विष्ठा तथा कल-कारखाने प्रदूषण के मानवीय कारण हैं.

प्राकृतिक कारणों में मैदानी भाग की मिट्टी एवं जलोढ़ में पाए जाने वाले धातु के अवसादकण हैं जिनमें तांबा, जस्ता, क्रोमियम, लेड, कैडमियम मैंगेनीज तथा लौह के कण मुख्य होते हैं. कभी कभी रेडियो-धर्मी धातुओं जैसे यूरेनियम के कण एवं रेडोन गैस की उपस्थिति भी मिलती है.

उपर्युक्त कणों वाले जलोढ़ों एवं मिट्टी में धातु के ये अवसाद भौमजल में घुलकर उसे प्रदूषित करते हैं. अभी हाल की ही एक रिपोर्ट के अनुसार वाराणसी के कुछ कूपों के जल में रेडियोधर्मी गैस रेडोन मिली पाई गई है जिससे उनके रेडियो-धर्मी तत्व जैसे यूरेनियम का उसमें पता चला है. ये तत्व अत्यंत अलभ्य हैं, एवं इनकी उपस्थिति की सूचना विस्मयकारी भी है. ज्ञातव्य है कि काशी के जलस्रोतों, विशेषकर कूपों में, सभी प्रकार के प्रदूषण के स्रोतों का समागम होता पाया गया है.

हाल की एक सूचना के अनुसार वाराणसी नगर में 16 ऐसे कूप पाए गए हैं जिनमें नाइट्रेट की अधिकता निरापद मात्रा (45 मिलीग्राम प्रति लीटर) से अधिक 200 मिली ग्राम प्रति लीटर से भी अधिक पाई गई. साथ ही दो प्राचीन कूपों के जल में यूरेनियम की उपस्थिति सामान्यतः पाई जाने वाली राशि से भी अधिक पाई गई. इसके अलावा मैंगेनीज एवं सीसा की मात्रा कुछ नलकूपों के जल में भी, आवश्यकता से अधिक प्राप्त हुई है. खेती, बागवानी एवं जानवरों के बाड़े वाले स्थलों पर नाइट्रेट की मात्रा अधिक पाई गई है. यहां तक कि पक्षियों, जैसे कबूतर की बीट भी नाइट्रेट की मात्रा बढ़ाने वाली पाई गई है. जल में नाइट्रेट को बढ़ाने में उर्वरकों का, विशेषकर नाइट्रेटों का हाथ होता है जो खेतों में सिंचाई हेतु डाले जल से मिलकर भूतल में भौम जल के भंडार में सतह से रिस कर पहुंच जाता है. सतह से जल का यह रिसाव गंगा के मैदान में पाए जाने वाला कंकड़ एवं बलुआ पत्थर के गोलाश्मों से युक्त पंक के स्तरों से होकर आसानी से बालू के जलयुक्त स्वरों तक पहुंचने में सफल हो जाता है. फलतः यह सतह में अपने साथ अनेक रासायनिक द्रव्यों को भी घुला कर लाता है और भूजल में इनकी मात्रा प्रदूषण की स्थिति तक बढ़ा देती है. काशी में, सतह के नीचे पंक एवं बालू के स्तरों की पारगम्यता बहुत अच्छी है क्योंकि संरघ्रता भी अधिक है. इन्ही कारणों से सतह से कोई भी रासायनिक यौगिक अथवा जीवाणु नीचे के स्तरों में आसानी से पहुंच जाता है. फलतः भौम जल में प्रदूषण की मात्रा सरलता से बढ़ जाती है.

जल में प्रदूषण के प्रभाव में हमारा स्वास्थ्य सबसे अधिक संवेदनशील वस्तु है. भांति-भांति के यौगिकों की जल में उपस्थिति के कारण अनेक बीमारियां होती पाईं गईं हैं. यहां तक कि प्रदूषित जल कैंसर एवं पानी के भारीपन से हृदयरोग, का भी कारण सिद्ध हुआ है. परंतु जल में घुले कुछ यौगिक स्वास्थ्यवर्धक भी पाए गए हैं. काशी में कूपजलों के स्वास्थ्यवर्धक गुणों की चर्चा पुराणों में भी प्राप्त होती है. वर्तमान युग में गत शताब्दी में जेम्स प्रिंसेप ने काशी के मृत्युंजय एवं बड़ी गैबी कूप जलों का महत्व स्वास्थ्य की दृष्टि से, वैज्ञानिक रुप से सिद्ध

(शेष पृष्ठ 92 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूवैज्ञानिक घड़ियां-4

पुरा भूचुम्बकत्व द्वारा काल-निर्धारण

डा० विजय कुमार उपाध्याय

पुरा भूचुम्बकत्व का अर्थ है–प्राचीन काल में पृथ्वी की चुम्बकीयता. अध्ययनों से पता चला है कि पृथ्वी एक चुम्बक की तरह व्यवहार करती है. इसके दो भौगोलिक ध्रुवों के अतिरिक्त दो चुम्बकीय ध्रुव भी हैं. उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव की स्थिति आज 75° 5′ उत्तरी अक्षांश तथा 96° 46′ पश्चिमी देशान्तर पर है जबकि दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुव 72· 40′ दक्षिणी अक्षांश तथा 152° 30′ पूर्वी देशान्तर पर है.

अध्ययनों से यह भी पता चला है कि पृथ्वी के चुम्बकीय ध्रुवों की स्थिति में भूवैज्ञानिक काल के दौरान समय-समय पर परिवर्तन आते रहे हैं. इस तथ्य की जानकारी चट्टानों में उपस्थित चुम्बकीय खनिजों की सजावट की दिशा से मिलती है. ज्वालामुखीय लावा में जब खनिजों का रवाकरण होता है तो ठोस बनने के बाद चुम्बकीय खनिजों के ध्रुव पृथ्वी की चुम्बकीय ध्रुव-दिशा के अनुरुप सज जाते हैं. यदि भूचुम्बक के ध्रुवों की दिशा सदा एक रहती तो ज्वालामुखीय चट्टानों में उपस्थित चुम्बकीय खनिजों के ध्रुवों की दिशा भी सदैव एक ही रहती है. परंतु अध्ययनों से पता चला है कि भिन्न-भिन्न काल में निर्मित ज्वालामुखीय चट्टानों में उपस्थित चुम्बकीय खनिजों के ध्रुवों की सजावट भिन्न-भिन्न दिशाओं में है.

इस जानकारी से भूवैज्ञानिकों के हाथ में एक ऐसी तरकीब आ गई जिसकी सहायता से किसी चट्टान की आयु निर्धारित की जा सकती है. भूचुम्बकत्व का महत्व चट्टानों के काल-निर्धारण में तो है ही इसके अतिरिक्त यह पृथ्वी को ब्रह्माण्ड किरणों के घातक प्रभाव से भी सुरक्षा प्रदान करता है. पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति तथा विकास में भी इसकी काफी बड़ी भूमिका है. पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का विस्तार भूसतह से 63 हजार से 82 हजार किलोमीटर की ऊंचाई तक पाया गया है.

ज्वालामुखीय चट्टानों में उपस्थित चुम्बकीय खनिजों के ध्रुवों की सजावट की स्थिति तथा उन चट्टानों की आयु के बीच आपसी संबंध स्थापित कर भूवैज्ञानिकों ने भूचुम्बकत्व ध्रुवीयता समय पैमाना विकसित किया है. इस पैमाने का महत्व आज भूविज्ञान के कई क्षेत्रों में है. इसका उपयोग मुख्यतः समुद्री चुम्बकीय विसंगतियों के विश्लेषण में किया जाता है जिसका संबंध समुद्र तली[illegible] चट्टानों से है. साथ ही साथ स्थलीय क्षेत्र [illegible] उपस्थित चट्टानों के काल-निर्धारण में [illegible] इसकी प्रमुख भूमिका है.

ज्वालामुखीय चट्टानों में उपस्थि[illegible] चुम्बकीय खनिजों के ध्रुवों की स्थिति [illegible] दिशाओं का अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी में [illegible] प्रारम्भ हो गया था. परंतु सन् 1906 ई० [illegible] बी० ब्रंचेज नामक वैज्ञानिक ने पहली बार इ[illegible] संबंध में कुछ आंकड़े प्रस्तुत किए जिनसे प[illegible] चला कि कुछ ज्वालामुखीय चट्टानों [illegible] उपस्थित खनिजों के चुम्बकीय ध्रुवों की दि[illegible] पृथ्वी के वर्तमान भूचुंबकत्व के असमानान्[illegible] (ऐंटी पैरलल) है. इस खोज से वैज्ञानिक इ[illegible] निष्कर्ष पर पहुंचे कि भूतकाल में भूचुम्बक [illegible] ध्रुवों की स्थिति की दिशा में अवश्य [illegible] परिवर्तन हुआ है. ई० मरकैंटन नाम[illegible] भूवैज्ञानिक ने सन् 1926 ई० में स्पिट्सब[illegible] ग्रीनलैंड, आइसलैंड तथा आस्ट्रेलिया से प्र[illegible] विभिन्न शैल नमूनों के विश्लेषण से पाया [illegible] कुछ शैलों की ध्रुवीयता की दिशा वर्तम[illegible] भूचुम्बकत्व की ध्रुवीयता की दिशा के ठी[illegible] विपरीत है, जबकि कुछ अन्य शैलों [illegible] ध्रुवीयता की दिशा वर्तमान भूचुम्बकत्व [illegible] ध्रुवीयता की दिशा के समान है. जाप[illegible] भूवैज्ञानिक एम० माटुयामा ने सन् 1929 [illegible] में कोरिया तथा जापान के कुछ शैलों [illegible] विश्लेषण किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचा [illegible] चतुर्थ महाकल्प (क्वार्टरनरी एरा) अ[illegible]

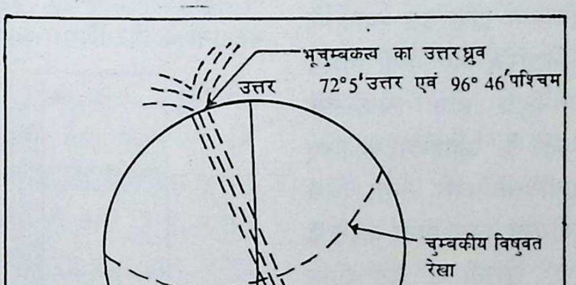

चित्र-1. पृथ्वी का भौगोलिक ध्रुव एवं चुम्बकीय ध्रुव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न से लगभग 10 लाख वर्ष से 20 लाख वर्ष की चट्टानों में चुम्बकीय ध्रुवीयता आज तुलना में ठीक विपरीत थी, जबकि हाल में र्मित चट्टानों में ध्रुवीयता आज के म्बकत्व की ध्रुवीयता के समान थी.

मरकैंटन तथा अन्य वैज्ञानिकों के पर्यवेक्षणों यह पता चलता है कि अलग-अलग काल में लामुखीय लावा के रवाकरण द्वारा निर्मित जों की चुम्बकीय ध्रुवीयता की दिशा में भिन्नता है. यदि यह बात सही है तो ज्ञानिक काल के किसी एक विशेष यान्तराल में निर्मित सभी ज्वालामुखीय टानों की चुम्बकीय ध्रुवीयता की दिशा भी ही होनी चाहिए. इस तथ्य की पुष्टि के ए यह आवश्यक था कि पृथ्वी के विभिन्न ों में पाए जाने वाले उन सभी ज्वालामुखीय ों की ठीक-ठीक आयु ज्ञात की जाए की चुम्बकीय ध्रुवीयता की दिशा मालूम सन् 1960 के दशक में नई ज्वालामुखीय ट्टानों के आयु-निर्धारण के लिए पोटाशियम र्गन समस्थानिक विधि का उपयोग होने लगा ा इस विधि द्वारा शैलों की सही-सही आयु ाई जाने लगी.

सन् 1959 ई० में एम० जी० रुटेन नामक ानिक ने रोम के निकट प्राप्त ज्वालामुखीय ों का आयु-निर्धारण किया तथा साथ ही धित शैलों की चुम्बकीय ध्रुवीयता की ाओं का भी अच्छी तरह अध्ययन किया. अध्ययन के फलस्वरूप वह इस निष्कर्ष पर चा कि वर्तमान सामान्य चुंबकीय ध्रुवीयता समयान्तराल आज से लगभग 4.7 लाख पूर्व आरंभ हुआ था जबकि इसके ठीक ले का सामान्य चुम्बकीय ध्रुवीयता यान्तराल लगभग 24 लाख वर्ष का था. सन् 63 ई० से 1966 ई० के बीच अनेक लामुखीय शैल नमूनों का आयु-निर्धारण ाशियम आर्गन विधि द्वारा किया गया. साथ उन शैलों का चुम्बकीय ध्रुवीयता दिशाओं भी अध्ययन किया गया. इन अध्ययनों से न निष्कर्ष भी उपर्युक्त निष्कर्षों से मिलते इस प्रकार अब तक अनेक भूवैज्ञानिकों ने कीय ध्रुवीयता दिशा तथा उन शैलों की निर्धारित आयु के आधार पर गत 40 लाख वर्षों के लिए चुंबकीय ध्रुवीयता काल पैमाना विकसित किया. उपर्युक्त सभी अध्ययनों में पारम्परिक पोटाशियम आर्गन विधि ही काल-निर्धारण के लिए उपयोग में लाई गई तथा संबंधित ज्वालामुखीय शैलों की चुम्बकीय ध्रुवीयता की दिशा निर्धारित की गई. इसके अतिरिक्त गहरे समुद्र की तलहटी से प्राप्त ड्रिल कोर तथा समुद्री चुम्बकीय विसंगतियों से संबंधित आंकड़ों का उपयोग किया गया. सन् 1967 ई० में कौक्स तथा डलरिंपुल ने सर्वप्रथम सांख्यिकीय विधियों का उपयोग कर चुम्बकीय ध्रुवीयता समयान्तराल सीमाओं को स्पष्ट रुप से मालूम करने का प्रयत्न किया.

अभी तक किए गए अध्ययनों से पांच ऐसे कालों का पता लगाया जा चुका है जिनके दौरान ज्वालामुखीय चट्टानों में उपस्थित चुम्बकीय खनिजों की ध्रुवीयता-दिशा में परिवर्तन दिखाई पड़े हैं. इन विभिन्न चुम्बकीय ध्रुवीयता के कालों को उनके अध्ययनकर्त्ता वैज्ञानिकों के नाम से पुकारा जाने लगा. इन पांच कालों के नाम हैं: (1) बुन्हेस काल, (2) माटुयामा काल, (3) गाउस काल, (4) गिलबर्ट काल, तथा (5) पांचवा काल.

ज्वालामुखीय चट्टानों में उपस्थित चुम्बकीय खनिजों की ध्रुवीयता दिशा में एक विशेष स्थिति में अकस्मात् परिवर्तन पाया जाता है. इस स्थान को चुम्बकीय ध्रुवीयता काल सीमा कहा जाता है. पोटाशियम-आर्गन विधि तथा अन्य विधियों द्वारा इस स्थान के चट्टानों का काल-निर्धारण कर किसी विशेष चुंबकीय ध्रुवीयता काल सीमा ठीक-ठीक मालूम की जा सकती है. उदाहरण के लिए प्रथम चुम्बकीय ध्रुवीयता काल सीमा जिसे ब्रुन्हेस-माटुयामा ध्रुवीयता काल सीमा कहते हैं लगभग 7 लाख वर्ष पुरानी है. यह सीमा आजकल गहरे समुद्र के अवसादी चट्टानों के आयु-निर्धारण के लिए एक आधार मानी जा रही है. उनकी तुलनात्मक स्थिति को देखकर साथ ही साथ तुलनात्मक स्थिति के आधार पर उन स्थलीय चट्टानों की आयु का भी अनुमान लगाया जा सकता है जिनमें चुम्बकीय खनिज उपस्थित नहीं है.

इसी प्रकार दूसरी चुम्बकीय ध्रुवीयता सीमा जिसे माटुयामा तथा गाउस काल के मध्य की सीमा कहते हैं लगभग 22 से 25 लाख वर्ष पुरानी आंकी गई है. यह अनुमान डलरिंपुल नामक भूवैज्ञानिक द्वारा सन् 1972 ई० में लगाया गया. कुछ समय पूर्व कौक्स नामक भूवैज्ञानिक ने इसी सीमा की ठीक-ठीक आयु 24.3 लाख वर्ष बताई. तीसरी चुम्बकीय ध्रुवीयता काल सीमा की आयु जिसे गाउस-गिलबर्ट ध्रुवीयता सीमा भी कहते हैं 33.2 लाख वर्ष आंकी गई है.

इस आयु का निर्धारण कौक्स नामक भूवैज्ञानिक ने सन् 1969 ई० में किया तथा पुनः सन् 1972 ई० में डलरिंपुल नामक भूवैज्ञानिक द्वारा इसकी पुष्टि की गई. चौथी चुम्बकीय ध्रुवीयता काल सीमा जो गिलबर्ट ध्रुवीयता तथा पांचवीं ध्रुवीयता काल के मध्य की सीमा कही जाती है लगभग 53 लाख वर्ष पुरानी है. इस सीमा का आयु-निर्धारण औपडाइक नामक भूवैज्ञानिक द्वारा किया गया. परंतु हाल में मैकडॉगल नामक भूवैज्ञानिक द्वारा किए गए अध्ययन से पता चला है कि गिलबर्ट तथा पांचवी ध्रुवीयता कालों के मध्य की सीमा लगभग 53 लाख वर्ष पुरानी है.

ऊपर दिए गए वर्णन से स्पष्ट है कि चुम्बकीय ध्रुवीयता काल पैमाने में 53 लाख वर्ष तक पुराने चट्टानों को शामिल किया गया है. यह काल पैमाना भूपृष्ठीय ज्वालामुखीय चट्टानों के पोटाशियम-आर्गन विधि द्वारा काल

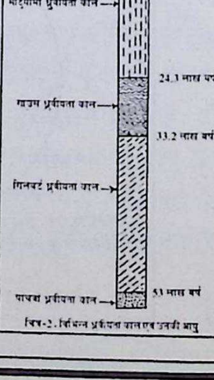

चित्र-2. विभिन्न ध्रुवीयता काल एवं उनकी आयु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्धारण तथा चुम्बकीय ध्रुवीयता पर पूरी तरह आधारित है. परंतु चुम्बकीय ध्रुवीयता की आयु का आकलन गहरे समुद्र से प्राप्त ड्रिल कोर के विश्लेषण से भी संभव है. काल पैमाना पोटाशियम-आर्गन आंकड़ों पर निर्भर है जिसमें आलड्रिच तथा बेथेरिल द्वारा सन् 1958 ई० में प्रस्तावित पोटाशियम-40 के क्षय-नियतांक का उपयोग किया जाता है.

सन् 1969 ई० में बैकिंसेल तथा गेल नामक दो भूवैज्ञानिकों ने पोटाशियम-40 के क्षय से संबंधित तभी आंकड़ों की जांच की तथा उन लोगों ने एक पुनरीक्षित क्षय नियतांक के आंकड़े प्रस्तावित किए जिनके द्वारा गणना करने पर अधिक शुद्ध आयुमान प्राप्त किया जा सकता है. परंतु, आज भी अधिकांश वैज्ञानिक आलड्रिच तथा बेथेरिल द्वारा प्रस्तावित क्षय-नियतांक का उपयोग कर रहे हैं. इसकी वजह यह है कि बेकिंसेल तथा गेल द्वारा प्रस्तावित क्षय नियतांक का उपयोग करने पर गणना द्वारा निकाली गई आयु के मान में सिर्फ 2.6 प्रतिशत का अंतर आता है. जबकि इससे कई तरह के भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि वैज्ञानिक साहित्य में अधिकांश स्थानों पर आलड्रिच तथा बेथेरिल के नियतांक का ही उल्लेख किया गया है. हाल में अंतरराष्ट्रीय स्तर विज्ञान आयोग के भूकालक्रमिकी (जिओक्रोनोलौजी) संबंधी उपसमिति ने अपने प्रस्ताव में अनुशंसा की है कि भविष्य में चुम्बकीय ध्रुवीयता संबंधी चट्टानों के काल-निर्धारण में सिर्फ पोटाशियम-40 के क्षय-नियतांक का ही उपयोग नहीं किया जाए वरन् दूसरे तत्वों के क्षय नियतांक का भी उपयोग किया जाए यदि वैसा संभव हो.

सन् 1968 ई० में हाइर्जलर ने उस समय ज्ञात गत 35 लाख वर्ष तक के ध्रुवीयता समय पैमाने के आधार पर 7.9 करोड़ वर्ष पूर्व तक के अनुमानित ध्रुवीयता समय पैमाने का प्रस्ताव किया. इस अनुमान का आधार समुद्री चुम्बकीय विसंगतियों का विश्लेषण था. इस प्रकार हाइर्जलर द्वारा प्रस्तावित समय पैमाने की सहायता से पहले की तुलना में 20 गुना अधिक समय तक की चुम्बकीय ध्रुवीयता की दिशा तथा समय का तादात्म्य स्थापित कि[illegible] जा सकता है. परंतु इस प्रकार एक्स्ट्रापोलेश[illegible] द्वारा अधिक समय की चुम्बकीय ध्रुवीयत[illegible] काल-निर्धारण में कुछ अशुद्धियों की संभावन[illegible] बनी रहती है. यही कारण है कि हाइर्जल[illegible] द्वारा प्रस्तावित एक्स्ट्रापोलेशन विधि [illegible] उपयुक्तता की जांच कई वैज्ञानिकों ने कर[illegible] का प्रयत्न किया. इसके लिए सन् 1974 ई० [illegible] ओपडाइक, थीयर तथा हैमंड आदि वैज्ञानिक[illegible] ने गहरे समुद्र से प्राप्त चट्टानों के पुराचुंबकत[illegible] तथा माइक्रोपेलिओंटोलौजिकल आंकड़ों [illegible] तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न किया. परं[illegible] इस दिशा में कई प्रकार की कठिनाइयां थी.

चट्टानों में प्राप्त पुराचुम्बकत्व [illegible] ध्रुवीयता दिशा को मालूम कर अन्य वै[illegible] चट्टानों से तुलना की जा सकती है जिनक[illegible] आयु ज्ञात है तथा उसी के अनुसार उस चट्टा[illegible] की आयु का अनुमान लगाया जा सकता ह[illegible] बीसवीं शताब्दी के छठे दशक से पुरा चुम्बकत[illegible] एक अति उपयोगी भूवैज्ञानिक घड़ी के रूप [illegible] उपयोग में आने लगा है. (क्रमश[illegible]

(पृष्ठ 76 का शेषांश)

प्रतीत होता है. इसका प्रमुख कारण यह है कि जिस जैविक संरचना को हम अपनी प्रयोगशाला में उगाते आ रहे हैं वह वर्षों तक वहां उगने से क्षीण हो गई है और जंगली वातावरण में शायद ही जीवित रह पाए. अधिक क्षीण बनाने के लिए अतिरिक्त विधियों का उपयोग किया जा सकता है यद्यपि वे हमारे काम के लिए पर्याप्त हैं.

इसके बाद आती है पादपों व पशुओं को बदलने की समस्या. क्या ऐसा करने का हमें अधिकार है? स्मरणीय है कि ऐसा हम पालतू पशुओं के साथ पहले से ही कर रहे हैं. पालतू पशु जंगली पशुओं की तरह नहीं होते. हमारे कुछ पालतू पशु तो केवल उनके जीवित अवशेष मात्र लगते हैं. कुत्तों की विभिन्न नस्लों को देखने पर ऐसा ही लगता है. कोई चिन्ता नहीं करता कि कुत्तों की विभिन्न नस्लों को रखना क्या नैतिक रूप से उचित है? मुझे नहीं लगता कि यह बहुत गंभीर मामला है यदि हम पशुओं की कुशलता की बात अपने दिमाग में रखें तो.

मामले की तह तक पहुंच कर हम पूछ सकते हैं, ''इन तकनीकों को मानव शरीर पर उपयोग करने पर हम क्या करेंगे?'' दोनों ही स्थितियों में बहुत भिन्नता है. यदि किसी की चिकित्सीय दशा ऐसी है कि उसके बारे में एकदम आखिर में ही सोचा जा सकता है तो तत्क्षण कुछ नहीं किया जा सकता. किसी तरह उसके जीनों को बदलकर या कुछ और जीन जोड़कर उसकी सहायता की आशा कर सकते हैं. कम से कम उसकी सहमति जान सकते हैं कि क्या वह ऐसा चाहता है. अपनी जानकारी के अनुसार खतरों को बता सकते हैं. जब तक हम इसे सावधानी से सोच-विचार कर करेंगे, इसे स्वीकार किया जाएगा.

लेकिन सोचिए यदि हमें इसका लोभ हो गया कि जीवाणु श्रृंखला को ही बदल दि[illegible] जाए ताकि आगामी पीढ़ी प्रभावित हो जा[illegible] और उसके बाद की कई पीढ़ियां भी तो क[illegible] होगा. यह सब अभी क्षितिज पर नहीं आया [illegible] तकनीकें अभी भी बहुत कठिन हैं, हमारे पा[illegible] अभी हैं भी नहीं. बहुत अच्छी तरह से का[illegible] करने लायक हो जाने तक हम उनका उपयो[illegible] नहीं करना चाहते हैं. यहीं एक समस्या [illegible] खड़ी होती है कि हम उन लोगों की सहम[illegible] नहीं पा सकते जो बदले जा रहे हैं. इसी कार[illegible] मैं सोचता हूं कि समाज इस समस्या को बन[illegible] रखे जब तक कि हम अपने समाज को बेह[illegible] व स्पष्टतर ढंग से समझ नहीं लेते.

यह एक तरह से पूरे जीवविज्ञान में आ[illegible] चूल व विस्फोटक परिवर्तन की शुरुआत [illegible] मात्र यहां वर्णित विषयों में ही नहीं ब[illegible] पारिस्थितिविज्ञान, विकास विज्ञान व [illegible] विषयों में भी क्रातिकारी परिवर्तन होंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेन्दी विज्ञान त्रकारिता

□ सुभाष लखेड़ा

र्चित पुस्तकः हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता; लेखक : मनोज कुमार पटैरिया; काशक : तक्षशिला प्रकाशन; 23/4762 ंसारी रोड, दरिया गंज, नई देल्ली-110002; पृष्ठ 256; मूल्य : सजिल्द 00 रुपए.

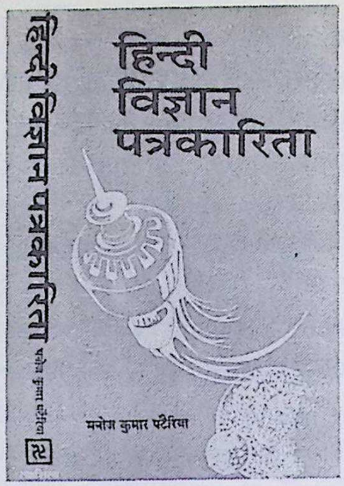

□ विज्ञान पत्रकारिता पर हिन्दी में पुस्तक लेखने का यह पहला प्रयास है और यही इस ुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है. लेखक के ब्दों में, 'पाठकों की सुविधा के लिए' इस ुस्तक की विषयवस्तु को पांच भागों एवं च्चीस अध्यायों में बांटा गया है.

प्रथम भाग 'परिचय और पृष्ठभूमि' में हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का परिचय, संक्षिप्त तिहास, वर्तमान और भविष्य के साथ ही त्रीय भाषाओं में विज्ञान पत्रकारिता पर भी क अध्याय का समावेश किया गया है. द्वितीय ाग 'विविध आयाम' में हिन्दी विज्ञान त्रकारिता के विभिन्न स्वरुपों यथा लोकप्रिय हेन्दी विज्ञान पत्रिकाएं, शोध पत्रिकाएं, शोध ेख, सारांश सेवा और चयनिकाएं, वैज्ञानिक ृह पत्रिकाएं, वैज्ञानिक विश्वकोश, निदेशिकाएं, मोनोग्राफ और अन्त में वैज्ञानिक ब्दावली एवं शब्दकोशों पर प्रकाश डाला या है.

शिल्प एवं प्रविधि नामक तीसरे भाग में वेज्ञान रिपोर्टिंग और विज्ञान लेखन, विज्ञान ंपादन, पुनर्लेखन, अद्यतन और अन्तिम ाण्डुलिपि वैज्ञानिक चित्र, छायांकन और कला था वैज्ञानिक साहित्य का हिन्दी अनुवाद ामक चार अध्यायों में लेखक ने विज्ञान त्रकार बनने की तकनीक और इसके लिए किए जाने वाले कार्यों एवं अपनाए जाने वाले रीकों पर सामग्री दी है. चौथे भाग के छः ध्यायों में विज्ञान लेखन के लिए अपनाए जाने ाली हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं की विस्तार से चर्चा की गई है और इन विधाओं के इतिहास एवं वर्तमान में इनकी उपयोगिता का वर्णन करने के साथ-साथ इन्हें सरस, रोचक एवं जनोपयोगी बनाने हेतु सुझाव भी दिए गए हैं. पुस्तक के पांचवे भाग को 'संपूरक' विषय शीर्षक के अन्तर्गत पांच अध्यायों में बांटा गया है. इसके प्रथम अध्याय 'विविध विज्ञान पत्रकारिता' में प्रयोगशालाओं द्वारा प्रकाशित की जाने वाली वार्षिक रिपोर्ट से लेकर वीडियो विज्ञान पत्रिका के विषय तक में चर्चा की गई है. आकाशवाणी, दूरदर्शन और फिल्म विज्ञान पत्रकारिता, पुस्तकालय और संदर्भ पत्रकारिता, वैज्ञानिक जनसंपर्क आदि के विषय में भी इस अध्याय में जानकारी दी गई है. इसी भाग में विज्ञान पत्रकारिता में प्रशिक्षण, रोजगार की संभावनाएं तथा इस क्षेत्र में जुड़े पुरस्कारों के विषय में अद्यतन जानकारी दी गई है. इस भाग के चौथे अध्याय में पत्रकारिता कानूनों, पत्रकारों को उपलब्ध सुविधाओं एवं विभिन्न विज्ञान पत्रकार संगठनों से संबंधित सामग्री दी गई है. इस भाग के अंतिम अध्याय में लेखक ने विषय को समेटते हुए हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के प्रगति के मार्ग मे आने वाली बाधाओं की चर्चा करते हुए अपने अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर कुछ ऐसे उपाय सुझाएं हैं जिनसे हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता को और अधिक उपयोगी एवं मजबूत आधार पर खड़ा किया जा सकता है.

पुस्तक के अंत में छः परिशिष्ट दिए गए हैं. इन परिशिष्टों में जिज्ञासु पाठकों की जानकारी हेतु हिन्दी विज्ञान पत्रिकाओं के विभिन्न क्षेत्रों में हुए प्रथम प्रयासों, प्रमुख हिन्दी विज्ञान पत्रकाओं, सामान्य विज्ञान की कुछ अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं और विज्ञान के प्रचार-प्रसार में लगी विभिन्न संस्थाओं के साथ-साथ हिन्दी विज्ञान लेखकों की सूची दी गई है. इसके पश्चात संदर्भ सूची एवं अनुक्रमणिका हैं जिनका पाठक आवश्यकता अनुसार उपयोग कर सकते हैं. चूंकि इस विषय पर हिन्दी में अब तक कोई पुस्तक नहीं लिखी गई थी, अतः लेखक के प्रयास को सराहनीय कहा जा सकता है पुस्तक के प्राक्कथन में डा० जी० पी० फोंडके, निदेशक, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही यह आशा प्रकट की है कि इस पुस्तक का सर्वत्र स्वागत होगा.

बहरहाल, लेखक ने इस पुस्तक में केवल हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के उद्भव एवं विकास, इनकी प्रविधि एवं शिल्प, इसके विभिन्न पक्षों एवं विधाओं के विषय में ही जानकारी नहीं दी है बल्कि विज्ञान लेखन के विभिन्न क्षेत्रों में जो कुछ हो रहा है उसकी समीक्षा एवं आलोचना करने का प्रयास भी किया है. पुस्तक की प्रस्तावना में लेखक संभवतया पाठकों से तादात्म्य स्थापित करने की दृष्टि से अपने विषय में कुछ अधिक लिखने को विवश हो गए लगते हैं. इतना ही नहीं, उन्होंने इसी प्रस्तावना में विषयान्तर होते हुए भी अंग्रेजी को बनाए रखने की वकालत भी की है.

लोकप्रिय हिन्दी विज्ञान पत्रिकाओं के विषय में लिखते समय लेखक ने 'विज्ञान' एवं 'वैज्ञानिक' के बीच 'विज्ञानपुरी' नामक पत्रिका को जबरदस्ती ठूंस कर मान न मान मैं तेरा मेहमान वाली स्थिति पैदा की है. 'अपना बच्चा सबसे प्यारा' वाली यह स्थिति पुस्तक में विभिन्न स्थानों पर देखने को मिलती है. इस पुस्तक में कई स्तरों पर वर्तमान विज्ञान लेखकों एवं संपादकों पर अप्रत्यक्ष रुप से बड़े तीखे प्रहार किए गए हैं. पृष्ठ 42 पर लेखक ने विज्ञानपुरी के संपादक के तथाकथित शब्दों को दोहराते हुए सरकारी क्षेत्र में सेवारत कुछ विज्ञान लेखकों को 'घुसपैठिए' कहा है और हिन्दी विज्ञान पत्रिका की पिछड़ी हुई स्थिति का सारा दोष उनके मत्थे मढ़ दिया है, जबकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी पुस्तक में पृष्ठ 207 पर लेखक ने कहा है, 'हिन्दी में विज्ञान लेखक तो गिने-चुने ही हैं, अतः इस अल्पसंख्यक बिरादरी को एक दूसरे की आलोचना या कटाक्ष करने के बजाए, मिल बैठकर सहयोगी की भावना से कार्य करना चाहिए.

लेखक ने पुस्तक में जहां कहीं हिन्दी विज्ञान पत्रिकारिता की किसी कमी की तरफ संकेत किया है उस संकेत को बजाए स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करने के न जाने क्यों रहस्य का आवरण ओढ़ा दिया है, उदाहरणार्थ, पुस्तक के पृष्ठ 43 पर लेखक ने लिखा है कि सन् 1985 से लेकर सन् 1989 तक वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् से निकलने वाली पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' की स्थिति बहुत खराब हो गई थी लेकिन लेखक ने यह नहीं बताया कि उनके इस आकलन का आधार क्या है और यदि स्थिति वास्तव में खराब हुई थी तो क्यों? इसी संदर्भ में आगे लिखते हुए उन्होंने डा० जी० पी० फोंडके के विषय में जो शब्द लिखे हैं उनसे यद्यपि मैं असहमत नहीं हूं तदापि उनसे लेखक में उगते सूरज को प्रणाम करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है.

चूंकि यह पुस्तक हिन्दी विज्ञान लेखकों के लिए एक संदर्भ ग्रन्थ के रुप में लिखी गई है अतः इस पुस्तक में कुछ प्रतिष्ठित लेखकों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर भी कुछ सामग्री दी जानी चाहिए थी. इसी प्रकार समय-समय पर विभिन्न विज्ञान लेखकों द्वारा हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के संदर्भ में प्रकट किए गए विचारों का समावेश किया जाना भी लाभप्रद होता. पुस्तक को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे लेखक ने इसके कुछ अध्याय अपने विचारों को अंतिम एवं निर्णायक मान कर लिखे हैं. जब लेखक को हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता एवं पत्रकार को परिभाषित करने तक के लिए जी० एफ० मोट, डा० ए० जान नाइट एवं न्यूयार्क टाइम्स के विज्ञान लेखक एडवर्ड एडसन के कथनों का सहारा लेना पड़ा तो हिन्दी विज्ञान लेखकों को मौलिक लेख न लिख पाने के लिए दोष देना कहा तक उचित है?

इस पुस्तक में कही गई इन बातों में परस्पर बड़ा विरोधाभास है उदाहरणार्थ, दूसरी पीढ़ी के लेखकों के विषय में लेखक का यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता कि उनमें उत्साह एवं लगन की कमी है जबकि कृतज्ञता ज्ञापन एवं पुस्तक में कई स्थानों पर अन्यत्र लेखक ने इसी पीढ़ी के लोगों को सराहा है. उत्साह एवं लगन का संबंध लेखकों की विषय विशेष के प्रति निष्ठा या प्यार से नहीं अपितु उन वास्तविकताओं से है जो आज के मनुष्य के जीवन-प्रवाह को गहराई से प्रभावित करते हैं. दूसरी पीढ़ी के विज्ञान लेखकों को कोरी आत्मतुष्टि के सिवाए और क्या मिला इसका उत्तर जाने बिना कुछ भी कहने का कोई अर्थ नहीं है.

बहरहाल, किसी के द्वारा किए गए कार्य में त्रुटियां ढूंढना तो आसान है परंतु उस कार्य के शतांश को भी स्वयं कर पाना दुष्कर होता है. वर्तमान में हिन्दी विज्ञान लेखन से जुड़े सभी व्यक्ति भी पटैरिया की इस पुस्तक की आवश्यकता एवं उपयोगिता को समझते हैं. फर्क सिर्फ सोच का है. दरअसल, हिन्दी विज्ञान लेखक आज भी कई तरह की सुविधाओं से वंचित हैं. चूंकि उन्हें कहीं से भी कोई प्रश्रय एवं दिशा नहीं मिलती, अतः इसका अस[र] उनकी सृजनशीलता पर पड़ता है. श्री पटैरिय[ा] का यह कहना कि "आज सक्षम विज्ञान पत्रकारों के लिए सरकारी तथा निजी क्षेत्रों मे[ं] विज्ञान पत्रकारिता में रोजगार के द्वार खुले हैं आज लगभग हर संचार माध्यम में विज्ञान पत्रकार की आवश्यकता है...." यथार्थ में कह[ां] तक सही है, इस तथ्य से विज्ञान लेखन से जुड़े सभी पीढ़ियों के लेखक पूरी तरह परिचित हैं. लेखक स्वयं भी विज्ञान पत्रकारिता में आने वाले व्यक्तियों की त्रासदी को समझते हैं और इसी पुस्तक में लेखक ने पृष्ठ 230 से लेकर 233 तक इस संबंध में अपने विचार भी व्यक्त किए हैं.

कुल मिलाकर, 'हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता' में लेखक ने परिश्रम से जो सामग्री जुटाई है उससे इस क्षेत्र में आने वाले प्रत्येक युवा को कुछ न कुछ लाभ मिलेगा. पुस्तक की कीमत देखकर माथे को रुमाल से पोंछना पड़ता है —और यही हिन्दी विज्ञान लेखकों ए[वं] राजभाषा प्रेमियों का सबसे कमजोर पक्ष है.

धान-चावल संसाधन

चर्चित पुस्तकः धान चावल संसाधन; लेखक : डा० राजेन्द्र प्रकाश काचरु, कृष्ण मोहन सहाय, कैलाश चन्द भारद्वाज, डा० त्रिवेणी प्रसाद ओझा; प्रकाशक : खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली-110001, पृष्ठ 255+vi; मूल्य : 75 रुपए; उपलब्धि : केंद्रीय कृषि इंजीनियरी संस्थान, नवीबाग, भोपाल.

☐ धान के उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है. चावल देश की 80 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या का मुख्य आहार है. यद्यपि देश में धान का उत्पादन अधिक मात्रा में होता है, परन्तु यह मात्रा चावल आहारियों की मांग के अनुसार पर्याप्त नहीं है.

चावल खाने वालों के लिए उपयुक्त मात्रा में चावल उपलब्ध कराने के लिए दो उपाय अपनाए जा सकते हैं. धान के अन्तर्गत यदि अधिक क्षेत्र लाया जाए तो कुल उत्पादन मे[ं] वृद्धि होगी और चावल अधिक मात्रा मे[ं] उपलब्ध होगा. दूसरा उपाय है कि धान-चावल संसाधन प्रक्रियाओं के समय में कम से कम हानि हो जिससे कुल मात्रा की उपलब्धि मे[ं] बढ़ोत्तरी होगी. धान-चावल की सम्पूर्ण संसाधन प्रक्रियाओं में अनुमानतः 7 से 26 प्रतिशत त[क] की हानि पाई गई है. संसाधन प्रक्रियाओं मे[ं] विभिन्न इकाइयां होती हैं, अतएव संसाधन के वर्तमान आधुनिक प्रणालियों तथा भण्डारण के मिलाप से न केवल धान की उत्पादकता मे[ं] बढ़ोत्तरी होगी अपितु गुणवत्ता भी बढ़ेगी.

संसाधन प्रक्रियाओं के महत्व को सम[झ] रखते हुए यह आवश्यक है कि इनक[ी] जानकारी से जनसाधारण परिचित ए[वं] लाभान्वित हो सके. इसी संदर्भ में इस नवी[न] पुस्तक का लेखन सरल हिन्दी भाषा में किय[ा] गया है. इस पुस्तक में वैज्ञानिक सिद्धान्तों संसाधन प्रक्रियाओं की वर्तमान स्थिति त[था] विभिन्न संसाधन इकाइयों में शोध कार्यों [के] योगदान का उल्लेख किया गया है. पुस्तक क[े]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11 अध्यायों में संसाधित प्रक्रियाओं के अनुसार इकाइबद्ध किया गया है. इन अध्यायों में धान-चावल की संरचना एवं पौष्टिक गुणों से लेकर कटाई/गहाई, सफाई/छटाई, सुखाई, भण्डारण, उसना प्रक्रिया, निष्पीडन तथा प्रति उत्पादों के उपयोग सम्बन्धित नवीन जानकारियों का समावेश किया गया है. इसके अतिरिक्त संसाधनों के उपकरण के भारतीय मानक, अनुसंधान एवं विकास संस्थानों, उपस्करों के निर्माणकर्ता/विक्रेता तथा चावल मिल आधुनिकीकरण सम्बन्धित सरकारी नीति की भी जानकारी प्रदान की गई है.

यह पुस्तक समस्त धान/चावल संसाधन एवं उपयोगकर्ताओं, चावल मिल मालिकों, अनुसंधान एवं विकास संस्थानों, कृषि व्यावसायिक विद्यालयों, प्रादेशिक/केन्द्रीय मंत्रालय/विभाग, ग्रामीण विकास संस्थाओं तथा प्रशिक्षण संस्थाओं के लिए उपयोगी एवं सहायक सिद्ध होगी. यह पुस्तक उन पाठकों के लिए भी सहायक सिद्ध होगी जो धान-चावल संसाधन के क्षेत्र में अपना ज्ञानवर्धन करना चाहते हैं. □

नया प्रकाशन

खेती, स्वास्थ्य, प्रदूषण, उपयुक्त प्रौद्योगिकी और विकास की प्रक्रिया में स्वैच्छिक संस्थाओं के सफल प्रयासों की जानकारी देश के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसारित करने के उद्देश्य से नई दिल्ली के ऊर्जा पर्यावरण समूह ने इस मासिक भित्ति पत्र का नियमित प्रकाशन प्रारंभ किया है. सरल भाषा में बहुलता से चित्रित यह भित्ति पत्र स्वैच्छिक संस्थाओं, ग्राम पंचायतों, ग्राम विकास एजेंसियों के ही लिए नहीं बल्कि शिक्षकों और नव साक्षरों के लिए भी अद्यतन जानकारी का उपयोगी स्रोत सिद्ध होगा. 'आसपास' का वार्षिक शुल्क 36 रुपए है जिसे ऊर्जा पर्यावरण समूह, पोस्ट बैग नं० 4, नई दिल्ली-110066 को मनीआर्डर अथवा डिमांड ड्राफ्ट द्वारा भेज कर यह भित्ति पत्र मंगाया जा सकता है.

(पृष्ठ 79 का शेषांश)

होगा. बाईस महीनों की लंबी समयावधि में ग्यारह बार इसकी कक्षा में परिवर्तन किया जाएगा जिसे यह गुरु और इसके चार गैलीलियाई उपग्रहों के पास से गुजरकर सूक्ष्मता से इनकी जांच पड़ताल कर सके.

अपेक्षाएं

इस पूरे अभियान से वैज्ञानिकों को बड़ी आशाएं और अपेक्षाएं हैं. गुरु के उपग्रहों के निकट से लिए गए चित्रों से इनके पृष्ठीय लक्षणों का विस्तृत अवलोकन हो सकेगा. उपग्रह 'योरोपा' के संबंध में अभी हमें अधिक जानकारियां नहीं हैं. अतः 'योरोपा' के विस्तृत अध्ययन के कार्यक्रम हैं. इन अध्ययनों से उपग्रह के पृष्ठीय लक्षणों की जानकारियों के अतिरिक्त उपस्थित पृष्ठीय बर्फ की तह की मोटाई का आकलन भी किया जाएगा. वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि शायद योरोपा में बर्फीले ज्वालामुखी जैसे कई आश्चर्यजनक तथ्य भी सामने आ जाएं. इसके अतिरिक्त योरोपा से हुई यह 'मुठभेड़' इसमें तरल जल की उपस्थिति ज्ञात करने का एक उचित अवसर प्रदान करेगी. प्रत्येक उपग्रह के निकट से गुजरते समय यान के यात्रा-पथ के सूक्ष्म अध्ययन से इन उपग्रहों की आन्तरिक संरचना और भारात्मक प्रकृति संबंधी मॉडल बनाने में मदद मिलेगी.

स्वयं गुरु ग्रह के वायुमंडल के अध्ययन अंतरिक्ष यानों द्वारा भी आज तक केवल सुदूर संवेदन द्वारा हुए है. यह पहला अभियान है जो गुरु के वायुमण्डल में गहराई तक पैठकर सीधे अन्वेषण कर, सूचनाएं देगा. इस अध्ययन से वायुमंडलीय संघटन के अतिरिक्त उपस्थित गैस परतों की मोटाई ज्ञात हो सकेगी. इसका दूसरा महत्वपूर्ण अपेक्षित प्रयास होगा वायुमण्डल में उपस्थित जल वाष्प का परिमाण ज्ञात करना. इससे ग्रहों के जन्म संबंधी 'सौर नीहारिका' मॉडल पर नई जानकारी मिलेगी. गुरु का वायुमण्डल हलचल भरा है. इसके वायुमण्डलीय अध्ययन से इसकी हलचल की परिचालन शक्ति की स्रोत संबंधी जानकारी भी स्पष्ट हो सकेगी. अध्ययनों के आधार पर तैयार किए सैद्धान्तिक मॉडल इंगित करते हैं कि गुरु के वायुमण्डल में कार्बनक अणु मौजूद हैं. कार्बनक अणु जीवन के विकास की एक कड़ी माने जाते हैं. 'गैलीलियो' द्वारा किए गए अध्ययनों से इस बात की पुष्टि होगी कि क्या गुरु पर जीवन की आरम्भिक कड़ियों के ये तत्व उपस्थित हैं?

इन सभी अपेक्षित परिणामों के अतिरिक्त ढेर सारे अन्य अध्ययन होगें. इन सभी अध्ययनों की जानकारी कुछ पृष्ठों में समहित कर पाना संभव नहीं है. यदि यह अभियान पूरी तरह सफल रहा तो इसके द्वारा भेजी गई सूचनाएं गुरु को एक नए रूप में हमारे सामने रखेगी. अनेक पहेलियों के हल निकल आने के साथ ही शायद कुछ ऐसे रहस्य भी सामने आ जाएं जो अनबूझ पहेली बनकर रह जाएं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमा पर क्या है ?

□ श्याम लाल धीमान

□ चन्द्रमा पृथ्वी का एकमात्र प्राकृतिक उपग्रह है. यह पृथ्वी के सापेक्ष काफी छोटा है. इसका द्रव्यमान पृथ्वी के सापेक्ष 1/81 गुना कम है और 7×10^{22} किलोग्राम के तुल्य है. इसका औसत व्यास 3476 किलोमीटर और पृथ्वी से दूरी 3,84,000 किलोमीटर है. चन्द्रमा पृथ्वी का एक चक्कर $27\frac{1}{3}$ दिन में लगाता है और इतने ही दिन में अपने अक्ष पर भी एक चक्कर पूरा कर लेता है यानी चन्द्रमा का घूर्णन काल और परिक्रमण काल बराबर है. यही कारण है कि हम पृथ्वी से चन्द्रमा का केवल एक ही अर्द्धभाग देख पाते हैं. चन्द्रमा पर गुरुत्व जनित त्वरण का मान 1.63 मी/सेकंड है.

किसी भी खगोलीय पिंड पर गैसों का अस्तित्व उस पिंड पर पलायन वेग तथा साथ ही उसके ताप पर निर्भर करता है. पलायन वेग पिंड के द्रव्यमान के साथ-साथ उसकी त्रिज्या पर भी निर्भर करता है और चूंकि पलायन वेग, गुरुत्वाकर्षण नियतांक और पिंड के दुगने द्रव्यमान को उसकी त्रिज्या से भाग देने पर प्राप्त व्यंजक का वर्गमूल होता है, अतः चन्द्रमा पर पलायन वेग 2.38 किलोमीटर प्रति सेकंड होता है. चूंकि किसी ताप पर गैस के अणुओं का वेग गैस के अणुभार के वर्गमूल के व्युत्क्रमानुपाती होता है, अतः हाइड्रोजन के अणुओं का किसी दिए गए ताप पर वेग सबसे अधिक होगा. चन्द्रमा के अधिकतम ताप पर हाइड्रोजन अणुओं का वेग 2.38 किलोमीटर प्रति सेकंड के वेग से अधिक हो जाता है. अन्य गैसों के अणु भी चन्द्रमा के अधिकतम संभवः ताप पर नहीं टिक सकते. इसी कारण चन्द्रमा पर वायुमंडल नहीं है.

वायुमंडल न होने से चन्द्रमा पर किसी प्रकार की वनसपति नहीं पाई जाती. अनुमान है कि किसी समय चन्द्रमा पर समुद्र के रुप में पानी रहा हो. यह पानी कालान्तर में चन्द्रमा के निर्वात में उबलता रहा. वाष्पन में पानी के अणु चन्द्रमा को छोड़कर अन्यत्र चले गए. इस प्रकार, चन्द्रमा पर केवल रेत के टीले, गड्ढे आदि ही रह गए.

चन्द्रमा पर गहरी और चमकीली पट्टियां दिखाई देती हैं. जो भाग ऊंचे हैं वे चमकीले दिखाई देंगे. इन ऊंचे भागों में चन्द्रमा के पठार और पर्वत हैं. ऊंचाई के कारण ये अधिक प्रकाश परावर्तित कर पृथ्वी पर पहुंचाते हैं. नीची भूमि जिस पर कभी समुद्र समझे गए, कम प्रकाश परावर्तित करते हैं. अतः ऐसे भाग काली पट्टियां बनाते हैं. चन्द्रमा पर उल्का पत्थरों की भी बरसात होती रहती है. ये पत्थर वहां बड़े-बड़े गड्ढे बना देते हैं. इन गड्ढों का आकार एवं प्रकार अलग-अलग है. सतह ऊबड़-खाबड़ है. जैसे किसी ने चारों ओर ढेले-पत्थर फेंककर थोड़ा बहुत सपाट कर दिया हो और ऊपर से धूसर-मटमैली धूल की परत बिछा दी हो.

चन्द्रमा पर धूल में से पत्थर निकले हुए हैं. बड़े-बड़े गड्ढे, जिन्हें क्रेटर कहा जाता है, टीलों की गोल श्रृंखलाओं से घिरे होते हैं. बड़े क्रेटर की तली गोल और सपाट होती है. ये क्रेटर ऐसे लगते हैं जैसे बड़े स्टेडियम हों. चन्द्रमा पर काफी संख्या में ऐसे पहाड़ हैं जो 6000 मीटर तक ऊंचे हैं. इनमें सबसे ऊंचे पहाड़ को लिवनिज नाम दिया गया है. यह चन्द्रमा के दक्षिणी ध्रुव के पास हैं. इसकी ऊंचाई 10,660 मीटर है जो हिमालय की एवरेस्ट चोटी से भी ऊंचा है.

चन्द्रमा पर वायुमंडल न होने के कारण न तो शाम ही होती है और न सुबह. पृथ्वी की तरह उगता या छिपता सूर्य लाल नहीं होता. वहां उसका सदैव एक ही रुप होता है. वहां सूर्य की किरणों में घातक पराबैंगनी किरणें होती हैं, क्योंकि पृथ्वी के वायुमंडल में उपस्थित ओजोन की पर्त की तरह वहां कोई पर्त नहीं है जो पराबैंगनी किरणों को रोक सके.

चन्द्रमा का एक दिन पृथ्वी के 15 दिनों के बराबर होता है. चन्द्रमा का एक भाग तो 15 दिनों तक तपता रहता है, जबकि दूसरा अर्द्धभाग, जहां उस समय रात होती है, 15 दिनों तक विकिरण द्वारा ठंडा होता रहता है. यही कारण है कि चन्द्रमा पर दिन में ताप 110 डिग्री सेल्सियस तथा रात में -180 डिग्री सेल्सियस तक कम हो जाता है. इस प्रकार, चन्द्रमा पर दिन में इतनी गर्मी हो जाती है कि चाहें तो बिना सौर चूल्हे के खाना बना लें. रात को भयंकर शीत पड़ती है. चन्द्रमा पर अंतरिक्ष सूट पहनकर ही उतरा जा सकता है. यह सूट सूर्य की पराबैंगनी किरणों से अंतरिक्ष यात्रियों की रक्षा करता है. यह अधिक ताप से भी उनकी रक्षा करता है.

चन्द्रमा पर वायुमंडल न होने से वहां ध्वनि का संचरण नहीं हो सकता, क्योंकि ध्वनि के संचरण के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है. वहां बंदूक की गोली की आवाज भी नहीं सुनाई देगी. वहां रेडियो तरंगों से या फिर इशारों से ही बातचीत की जा सकती है. इसी कारण चन्द्रमा पर घोर निस्तब्धता है.

चन्द्रमा पर वायु न होने के कारण वहां से आकाश भी पृथ्वी जैसा नीला नहीं दिखाई देता. पृथ्वी से आकाश के नीला दिखाई देने का कारण वायु के अणुओं द्वारा प्रकाश रंगों का प्रकीर्णन है. वायु की अनुपस्थिति में प्रकाश का बिखराव नहीं होता. अतः चन्द्रमा पर सूर्य की दिशा को छोड़कर, अन्य दिशाओं में आकाश काला दिखाई देता है. वहां दिन में भी आकाश की काली पृष्ठ भूमि में तारों का अवलोकन किया जा सकता है. सूर्य के अलावा चन्द्रमा के काले आकाश में हमारी पृथ्वी भी दिखाई देती है—नीले रंग की—जिस पर सफेद-सा कुछ पुता हुआ हो. यह पृथ्वी के बादल हैं.

पृथ्वी ग्रहण

जिस प्रकार, पृथ्वी पर चन्द्र और सूर्य ग्रहण देखे जाते हैं चन्द्रमा पर पृथ्वी और सूर्य ग्रहण देखे जा सकते हैं. पृथ्वी ग्रहण तब होगा जब सूर्य और पृथ्वी के बीच चन्द्रमा आ जाएगा. इसमें चन्द्रमा की परछाईं पृथ्वी पर पड़ेगी जिससे पृथ्वी पर पड़ी परछाई वाला भाग अप्रकाशित दिखाई देगा और पृथ्वी ग्रहण होगा. इसी समय पृथ्वीवासी सूर्य ग्रहण देखेंगे. इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपरीत यदि पृथ्वी चन्द्रमा और सूर्य के बीच में आ जाए तो चन्द्रमा के तल से सूर्य पृथ्वी की ओट में दिखाई नहीं पड़ेगा और सूर्यग्रहण होगा. पृथ्वी पर यह स्थिति चन्द्र ग्रहण की होगी.

चन्द्रमा से देखने पर पृथ्वी स्थिर दिखाई देती है. ऐसा इसलिए है क्योंकि चन्द्रमा का सदैव एक ही पक्ष पृथ्वी की ओर रहता है. चूंकि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी के एक ही ओर पड़ता है, इसलिए पृथ्वी हंसिए जैसी दिखाई देती है. आकाश में सूर्य पृथ्वी के जितना पास आता है, उतना ही यह हंसिया पतला होता जाता है. जब सूर्य पृथ्वी के पास से गुजरता है तो वह रुपहले छल्ले जैसी दिखाई पड़ती है. चन्द्रमा के आकाश में सूर्य बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है.

चूंकि चन्द्रमा पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी के सापेक्ष छठा अंश ही होती है इसी कारण चन्द्रमा पर वस्तुओं के भार में अप्रत्याशित कमी आ जाती है. चन्द्रमा पर इतना हल्कापन आ जाता है कि आसानी से बड़े-बड़े गड्ढे फांदे जा सकते हैं. 12-13 मीटर चौड़े गड्ढे तो यहां कोई भी मनुष्य फांद सकता है.

संयुक्त राज्य अमेरिका का एल० ब्रिटग यहां 12 मीटर से भी ऊंचा कूद सकता है. सोवियत संघ का भारोतोलक ए० क्रपाटी जो 1988 सियोल ओलम्पिक का 90 किलोग्राम वर्ग में स्वर्ण पदक विजेता है यदि चन्द्रमा पर भार उठाता तो झटके में 1550 किलोग्राम तक भार उठा सकता था. इसी प्रकार, चन्द्रमा पर लगभग आधा किलोमीटर तक डिस्कस फेंका जा सकता है. सच तो यह है कि चन्द्रमा पर मनुष्य दानव जैसे कार्य कर सकता है.

चन्द्रमा पर वस्तुएं धीरे गति करती हैं. यदि चन्द्रमा पर किसी पिंड को 100 मीटर प्रति सेकंड के वेग से ऊपर की ओर ऊर्ध्वाधर प्रक्षिप्त किया जाए तो उसे चन्द्रमा के तल तक वापस पहुंचने में काफी देर लगेगी, लगभग 2 मिनट से भी अधिक देर तक इन्तजार करना पड़ेगा. चन्द्र तल पर यदि मनुष्य दो मीटर की ऊंचाई से गिरता है तो उसका तल पर पहुंचने का वेग 2.5 मीटर प्रति सेकंड होगा और इतनी ऊंचाई तय करने में उसे 1.5 सेकंड लगेंगे जबकि इतनी ही ऊंचाई से पृथ्वी पर गिरने पर वेग 6.2 मीटर प्रति सेकंड तथा समय केवल 0.6 सेकंड लगेगा. इस प्रकार, चन्द्रमा पर फेंके गए पिंड धीरे गिरते हैं. यही कारण है कि चन्द्रमा पर गिरने से चोट नहीं लगती.

परन्तु चन्द्रमा पर हल्केपन के कारण कुछ दुविधाएं भी उत्पन्न हो जाती हैं. हल्के मनुष्य के पैर मिट्टी से कम सटे होते हैं. इस प्रकार पैर ऐसे फिसलते हैं जैसे बर्फ पर. विज्ञान की भाषा में कहें तो इसके कारण प्रतिक्रिया बल कम उत्पन्न होता है जिससे यह बाधा उपस्थित हो जाती है. पृथ्वी पर भी यदि प्रतिक्रिया बल न हो तो चाहे जितना घर्षण बल हो, हम चल नहीं सकते. चन्द्रमा पर चलते समय भी और रुकते समय भी बाधा उपस्थित होती है. शुरु में छोटे-छोटे कदमों से चलना पड़ता है और यदि एक बार चल दिए तो एक दम रुकना संभव नहीं होता और हम आगे निकल जाते हैं. रुकने के लिए धीरे-धीरे गति कम करनी पड़ती है.

चन्द्रमा के मेर क्षेत्र में पाई जाने वाली मिट्टी पृथ्वी पर पाई जाने वाली ज्वालामुखी चट्टानों की तरह बेसाल्टी लावा है. परंतु अन्य समानता होते हुए भी यह आश्चर्य की बात है कि चन्द्र तल पर टिटेनियम धातु का प्रतिशत पृथ्वी के सापेक्ष अधिक है. पृथ्वी पर केवल एक प्रतिशत टिटेनियम मिलता है जबकि चांद की चट्टानों में यह 10 प्रतिशत है. चन्द्रमा पर एक अज्ञात धातु भी मिली है—आर्मलकोलाइट. इसका नाम अंतरिक्ष यात्रियों—आर्मस्ट्रांग, आल्ड्रिन और कालिन्स के नाम पर रखा गया है. सोडियम, पोटेशियम, क्लोरीन, जर्मेनियम, सीसा और पारा आदि पदार्थ जो पृथ्वी पर बहुतायत में मिलते हैं चन्द्रमा पर कतई नहीं मिलते.

चन्द्रमा का कोई चुम्बकीय क्षेत्र नहीं है. चन्द्रमा पर भूकम्प के झटके भी आते हैं जिनका रिख्टर स्केल पर परिमाण दो और हल्के से हल्का झटका 1.5 रिकार्ड किया गया. कुछ भूकम्प तो उल्का पत्थरों के गिरने के कारण उत्पन्न होते हैं और कुछ चन्द्रमा के गड्ढों की अन्दरुनी दलानों के खिसकने के कारण होते हैं.

क्या होता यदि चन्द्रमा न होता ?

□ श्याम लाल धीमान

□ चन्द्रमा पृथ्वी का एकमात्र प्राकृतिक उपग्रह है. इसका अपनी अक्ष पर घूर्णन काल उतना ही होता है, जितना पृथ्वी के चारों ओर इसका परिक्रमण काल होता है. इसी कारण इसका हमें एक ही पक्ष दिखाई पड़ता है. चन्द्रमा पर वायु नहीं है. यहां जल विहीन रेगिस्तान हैं. यहां की चट्टानें पृथ्वी की चट्टानों की तरह ही हैं. चट्टानों की आयु भी पृथ्वी की आयु से मेल खाती है और लगभग 4.5 अरब वर्ष है. चन्द्रमा पृथ्वी के क्रिया-कलापों पर विभिन्न प्रभाव डालता है. चन्द्रमा की अनुपस्थिति में निश्चय ही पृथ्वी पर जीवन दूसरी प्रकार से विकसित होता. आइए विचार करें कि यदि चन्द्रमा न होता तो क्या होता.

माना जाता है कि पृथ्वी का अपनी धुरी पर आरंभिक घूर्णन काल केवल 4-5 घंटे के बराबर था. बाद में सूर्य व चन्द्रमा के कारण यह अवधि बढ़ती गई और अब यह अवधि 24 घंटे है. यदि चन्द्रमा न होता तो यह अवधि केवल सूर्य के कारण ही मन्थर होती और आज दिन की अवधि केवल 11-12 घंटे के बराबर ही हो पाती. ऐसा इसलिए है कि क्योंकि सूर्य का पृथ्वी पर चन्द्रमा के सापेक्ष कम प्रभाव पड़ता है. इस प्रकार, चन्द्रमा की अनुपस्थिति में 11-12 घंटे के दिन हुआ करते.

पृथ्वी पर दीर्घ ज्वार चन्द्रमा और सूर्य दोनों के संयुक्त प्रभाव से आते हैं. इसी प्रकार, लघु ज्वार तब आते हैं जब सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी पर लंब कोण अंतरित करते हैं. चन्द्रमा की अनुपस्थिति में न तो दीर्घ ज्वार ही आते और न ही लघु ज्वार. तब ज्वार एक ही तरह के आया करते और उनकी ऊंचाई काफी कम होती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण नियम की जांच चन्द्रमा सम्बन्धी आंकड़ों की सहायता से ही की थी. इसका कारण चन्द्रमा की पृथ्वी से समीपता थी. यदि चन्द्रमा न होता तो शायद इस नियम के सत्यापित होने में देर लगती और इस प्रकार विज्ञान का विकास कम हो पाता.

चन्द्रमा की अनुपस्थिति में रात्रियां अमावस्या की तरह अन्धकारमय हुआ करतीं. आरंभ में सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि खगोलीय पिंडों का ही ज्ञान था. इसलिए सप्ताह के दिन इन्हीं खगोलीय पिंडों के नाम पर रख दिए गए. चन्द्रमा की अनुपस्थिति में छः दिन ही रह जाते. शुरु में चन्द्रमा की गति के कारण वर्ष में 12 चन्द्र मास निर्धारित किए गए थे. इस प्रकार, वर्ष की अवधि को ज्ञात करने में चन्द्रमा की अहं भूमिका रही. इसके बिना वर्ष की अवधि का पता करने में कठिनाई होती और तब शायद वर्ष में 12 महीने भी न होते.

भूस्थिर कक्षा पृथ्वी की सतह से 36,000 किलोमीटर की ऊंचाई पर स्थित है. यह कक्षा संचार उपग्रहों के लिए उपयोगी होती है क्योंकि इस कक्षा में उपग्रह पृथ्वी के सापेक्ष स्थिर होते हैं. चन्द्रमा की अनुपस्थिति में इस कक्षा की ऊंचाई 20 हजार किलोमीटर के लगभग होती. इस प्रकार, उपग्रहों को लगभग 16 हजार किलोमीटर कम ऊंचाई पर प्रक्षेपित किया जाता. इससे ईंधन की भी बचत होती.

पिंड का प्रारम्भिक ताप उसे मिलने वाली ऊष्मा के समानुपाती होता है अर्थात पिंड को जितनी ऊष्मा दी जाती है उसका ताप उतना ही बढ़ता है. चूंकि खगोलीय पिंड घूर्णन करते हैं, अतः उनके पृष्ठ का ताप सूर्य से मिलने वाली ऊष्मा के पहले तो बढ़ता है फिर घटता जाता है. यदि घूर्णन काल बढ़ जाए तो सौर विकिरण से ताप कम बढ़ पाएगा. इस प्रकार, चन्द्रमा की अनुपस्थिति में दिन का ताप वर्तमान में औसत ताप से काफी कम होता. चन्द्रमा पर एक दिन पृथ्वी के 15 दिन के बराबर होता है और उसका एक पक्ष लगातार 15 दिन तक सूर्य के सामने रहता है. इसीलिए उसकी सतह का ताप 110 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है. इस प्रकार निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 10-12 घंटे के दिन का ताप वर्तमान की अपेक्षा (24 घंटे के दिन के सापेक्ष) काफी कम रहता परन्तु ध्रुवों पर ताप में खास अंतर नहीं आ पाता. अतः दो स्थानों के बीच तापान्तर वर्तमान की अपेक्षा कम होने से हवाएं धीरे-धीरे बहा करतीं.

वैज्ञानिकों को चन्द्रमा के अध्ययन से अनेक ऐसी जानकारियां मिलीं, जिनके अभाव में अन्य खगोलीय पिंडों का अध्ययन असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होता. चन्द्रमा की उपस्थिति से ही चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण संभव है. सूर्य और चन्द्रमा के बीच में पृथ्वी के आ जाने से चन्द्र ग्रहण होता है और सूर्य और पृथ्वी के बीच चन्द्रमा के आ जाने पर सूर्य ग्रहण होता है. सू ग्रहण की सहायता से ही इस बात का प चला कि प्रकाश किरणें जब किसी खगोली पिंड के समीप से गुजरती हैं तो थोड़ा सा पि की ओर विचलित हो जाती हैं. ब्लेक होल समीप तो यह विचलन अत्यधिक हो जाता इसी से हमें पिंडों के समीप आकाश की वक्र का पता चलता है.

चन्द्रमा की अनुपस्थिति में ध्रुवों पर व का भार भूमध्य रेखा पर के भार की अपे वर्तमान के सापेक्ष काफी अधिक होता. उ समय भूमध्य रेखा पर एक किलोग्राम की व का भार ध्रुवों पर 15 ग्राम अधिक होता.

पूर्ण चन्द्र कभी-कभी पीला क्यों दिखलाई देता है?

□ वीरेन्द्र शर्मा

□ यूं चांद और चांदनी दोनों ही अपनी धवलता व दूधियेपन के लिए मशहूर हैं लेकिन कभी-कभी पृथ्वी से देखने पर ऐसा लगता है कि चांद पर किसी रंगरेज ने पीला रंग चढ़ा दिया हो. पीताभ दिखाई देता है चांद, पूनों का चांद.

वास्तव में चांदनी (फीकी हो या गाढ़ी) सूरज का ही प्रकाश है जो चांद की ऊबड़ खाबड़ सतह, कोटरों व खाइयों से टकराकर लौटता भी है, और प्रकीर्णन के बाद हर ओर बिखर भी जाता है. चांद की सतह छोटी-बड़ी उल्काओं से पटी पड़ी है, मूसलाधार उल्का-वृष्टि होती है चांद पर. उल्काओं से टकराकर सौर प्रकाश परावर्तित भी होता है प्रकीर्णित भी.

पृथ्वी के परिमंडल (आसपास की हवा) में मौजूद वायु के (विभिन्न गैसीय अणुओं) के वास्तविक अणुओं से टकराकर भी प्रकाश प्रकीर्णित हो जाता है.

उगते सूरज व डूबते सूरज की लालिमा पीताभ होने के पीछे भी प्रकाश के प्रकीर्णन ही हाथ होता है. आकाश लाल तभी दिखल देता है जब प्रकाश की लाल तरंग स्थूलक धूल कणों से टकराकर पूर्णतया बिखर जा है, प्रकीर्णित हो जाती है.

चांद के पीलेपन के पीछे भी आंशिक रुप प्रकीर्णन का हाथ है. चांदनी पृथ्वी के निव वायु अणुओं से टकराकर इधर-उधर छिट जाती है. पीली तरंग का प्रकीर्णन सर्वाधि होता है (दुग्ध-धवल चांदनी में सातों तरं लाल से नीली तक मौजूद हैं श्वेत प्रकाश तरह).

इसमें संदेह नहीं कि चन्द्र सतह पर गि वाला सौर प्रकाश स्वयं सतरंगी होता है लेकि सौर प्रकाश की तीव्रता सौर-स्पैक्ट्रम हरित-पीताभ हिस्से में ज्यादा है यानी हरा लिए हुए पीत कणों (फोटोनों) का बाहुल्य सौर प्रकाश में जिसमें लाल से लेकर नी (बैंजनी) तक सात आकार के कण मौजूद लाल कण सबसे बड़ा है तो नीला आकार सबसे छोटा. लाल तरंग दीर्घकाय है तो नी लघुकाय.

इसमें शक नहीं कि यदि सौर सतह तापमान वर्तमान छः हजार केल्विन से ज्य

(शेष पृष्ठ 92

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ालू करे जेनरेटर
ा काम

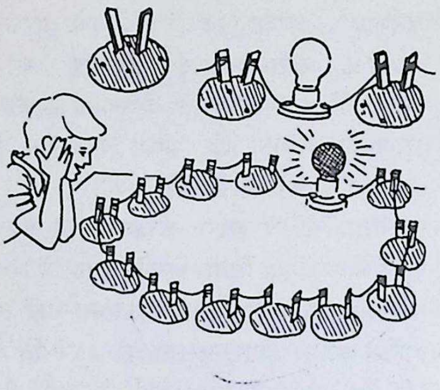

हले ये सामान बटोरिए

जिंक की 12 छोटी-छोटी पत्तियां, 12 ही त्तियां पीतल की, तांबें का तार, 12 आलू, .5 वोल्ट का एक टार्च-बल्ब, 24 पेपर क्लिपें.

र ये तैयारी कीजिए

सामान की लिस्ट देखकर आप को सबसे यादा परेशानी तो जिंक की पत्तियां पढ़ कर ई होगी कि ये कहां से मिलेंगी? परन्तु रेशान होने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि र्च के पुराने सेल तो आपको कहीं न कहीं से ल ही जाएगें. इन सेलों के अंदर भरे मसाले र कार्बन की छड़ को निकाल डालिए और स तरह बचे हुए धातु के खोल को साफ कर जिए. यह खोल जिंक का ही बना होता है से आप आसानी से किसी पुरानी कैंची की दद से काट सकते हैं.

पीतल की पत्तियों के लिए भी घर में बेकार ड़ी कोई ऐसी चीज ढूंढ़ने की कोशिश कीजिए समें से काटकर ये पत्तियां बनाई जा सकें. घर पर कुछ न मिले तो आसपास की किसी दुकान से कोशिश कीजिए और वहां भी सफलता न मिले तो फिर पीतल की जगह तांबे से भी काम चलाया जा सकता है. ये आकार में लगभग 5 सेंटीमीटर लंबी व 1 सेंटीमीटर चौड़ी हों तो बहुत उपयुक्त रहेंगी.

अब आपको करना यह है कि अपने सामान के पिटारे से सारे आलू निकालकर हर आलू में एक जिंक और एक पीतल की पत्ती घुसाते जाइए. हां, इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि दोनों पत्तियों के बीच की दूरी एक सेंटीमीटर के आसपास ही रहे.

अब शुरू कीजिए अपना खेल

पत्तियां लगाने के बाद इन सारे आलुओं को तांबे के तार की सहायता से श्रृंखलाबद्ध तरीके से जोड़ दीजिए. श्रृंखला में जोड़ने का अर्थ है तांबे के तार द्वारा एक आलू की जिंक वाली पत्ती को दूसरे आलू की पीतल वाली पत्ती से जोड़ना.

इस तरह पूरा चक्कर घूम जाने पर पहले आलू की पीतल वाली पत्ती से जुड़ा तांबे के तार का दूसरा सिरा बचा रहेगा और बच जाएगा अंतिम आलू की जिंक वाली पत्ती से जुड़ा तांबे के तार का दूसरा सिरा. इन दोनों स्वतंत्र सिरों को टार्च के बल्ब से जोड़ दीजिए और बस समझ लीजिए कि आपका आलूवाला जेनरेटर चालू हो गया.

आलुओं में धंसी पत्तियों पर बंधे तारों का कनेक्शन कहीं ढीला न रह जाए इसके लिए हर जोड़ पर पेपर-क्लिप लगा देना सुरक्षा और सफलता की दृष्टि से उपयुक्त रहेगा.

थोड़ी देर के बाद तारों से जुड़ा बैटरी बल्ब रोशनी देने लगेगा और चाहे यह रोशनी कितने की कम समय दे पाए परन्तु आपको यह विश्वास तो हो ही जाएगा कि बिजली आलू जैसे रोजमर्रा की सब्जी से भी बन सकती है.

—आइवर यूशिएल

(ृष्ठ 91 का शेषांश)

ता तब सौर स्पेक्ट्रम में नीले रंग की तीव्रता पेक्षतया ज्यादा व लाल की और भी कम ती और यदि सौर सतह वर्तमान की तुलना अपेक्षतया ठंडी होती तब लाल रंग की व्रता और ज्यादा होती व नीला-बैंजनी रंग करीबन गायब ही होता क्योंकि इसकी व्रता न्यूनतर होती. जैसे-जैसे किसी पिंड का पमान बढ़ता जाता है उसका रंग क्रमशः ल से नारंगी, पीला, हरा और बैंजनी होता ता जाता है.

पूर्णिमा के चांद की पीताम्बरी आभा के े प्रकाश के अनियमित (डिफ्यूज्ड) परावर्तन के अलावा प्रकीर्णन का भी हाथ है. पृथ्वी की सतह के निकट मौजूद हवा के अणु भी प्रकाश का प्रकीर्णन करते हैं. कुल मिलाकर पूर्ण चन्द्र का पीला दिखलाई देने के पीछे प्रकाश के परावर्तन व प्रकीर्णन का मिला जुला लेकिन पेचीला हाथ है.

गौर तलब यह भी है कि हमारी आंख पीले रंग के प्रति अत्यधिक संवेदी तथा बैंजनी रंग के प्रति असंवेदी है. इसीलिए सैट्रममापी से सम्बद्ध कार्यों में बैंजनी के बजाए प्रकाश के नीले रंग (तरंग दैर्घ्य) पर ही गौर किया जाता है जबकि फोटो प्लेट नीले-बैंजनी रंग के प्रति अधिक संवेदी है. □

(पृष्ठ 82 का शेषांश)

कर, प्रकाशित किया था. आज भी परम्परा से ज्ञात काशी के जोगीबीर, कंकड़हाबीर, औघड़नाथ की तकिया ऐसे स्वास्थ्यवर्धक जलों वाले कूपों पर सुबह ही जल प्रेमियों की भीड़ पानी पीते दिखाई देती है. साथ ही आज भी फिटकरी से निर्मली का उपयोग काशीवासी, जल शोधक के रुप में करते आ रहे हैं.

विज्ञान की नई दिशाएं खोजने में भौमजल का स्रोत एवं प्रदूषण की खोज तथा निराकरण अत्यंत आवश्यक मुद्दा है, क्योंकि मानवजाति का अस्तित्व तो जल पर ही निर्भर है, जिस ओर विज्ञान की प्रगति आदिकाल से प्रवृत्त है.

(डा॰ चौधरी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के भौतिकी विभाग से संबद्ध है.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेडिकल कॉलेज में प्रवेश ?

बहुत आसान है !

यदि आप प्रवेश-परीक्षा की तैयारी

TOCAB **Computer-aided STAM' 91**

(Short Term Assignment Module)

के द्वारा करें ।

- **यह है** — सरल अँग्रेजी भाषा में सक्षिप्त-अवधि (लगभग 2 माह) का विशेष पत्राचार-कोर्स ।
- **इसमे है** — 3400 से भी अधिक Multiple Choice Questions (MCQs), वस्तुनिष्ठ प्रश्न ।
- **इसकी विशेषता है** — आपके उत्तरो की TOCAB के अत्याधुनिक कम्प्यूटर द्वारा जाँच—जिसमें है आपकी गलतियों की विवेचना के साथ-साथ, सही उत्तर की व्याख्या ।
- **यह आपको तैयार करता है** — CBSE के All India Pre- Medical/ Pre-Dental Test 1991 (जिसके द्वारा विभिन्न मेडिकल कॉलेजो की 15% सीट भरी जाती है) तथा अन्य प्रादेशिक प्रवेश-परीक्षाओं के लिए ।

■ विवरण के लिए, आज ही लिखें :

TOCAB, 2324 (AW), हडसन लाइन
गुरू तेग बहादुर नगर, दिल्ली - 110009
दूरभाष : 721 20 26

इन्जीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश ?

बहुत आसान है !

यदि आप प्रवेश-परीक्षा की तैयारी

TOCAB **Computer-aided STAM' 91**

(Short Term Assignment Module)

के द्वारा करें ।

- **यह है** — सरल अँग्रेजी भाषा में सक्षिप्त-अवधि (लगभग 2 माह) का विशेष पत्राचार-कोर्स ।
- **इसमे है** — 2500 से भी अधिक Multiple Choice Questions (MCQs), तथा अन्य वस्तुनिष्ठ प्रश्न और Numerical Problems for Competitions!
- **इसकी विशेषता है** — आपके उत्तरो की TOCAB के अत्याधुनिक कम्प्यूटर द्वारा जाँच—जिसमें है आपकी गलतियों की विवेचना के साथ-साथ, सही उत्तर की व्याख्या ।
- **यह आपको तैयार करता है** — IIT-JEE, Roorkee (Screening Test तथा Main Tests दोनो के लिये) DCE/DIT, UPSEE, BIT Ranchi AMU, PCET तथा अन्य प्रादेशिक प्रवेश-परीक्षाओं के लिए ।

■ विवरण के लिए, आज ही लिखें :

TOCAB, 2324 (AW), हडसन लाइन
गुरू तेग बहादुर नगर, दिल्ली - 110009
दूरभाष : 721 20 26

"अच्छा !
अब हिन्दी में भी . . . !!"

TOCAB
की नई प्रस्तुती

Computer-aided Teleteaching Course

For
ENGINEERING/MEDICAL ENTRANCE TESTS 1991

अब हिन्दी माध्यम में भी

2 अक्तूबर, 1990 से प्रारंभ

निःशुल्क **SAMPLE TEST EXERCISE**

अथवा

Prospectus के लिए

(पाँच रुपये के डाक टिकट सहित) तुरन्त लिखें

टॉकैब टेलीटीचिंग इन्सटीट्यूट
2324, (AW) हडसन लाइन्स,
श्री गुरु तेग बहादुर नगर, दिल्ली-110 009
दूरभाष : 721 20 26

A division of "TOP CAREER BUILDERS PVT. LTD."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसायन विज्ञान : अधिकतम अंक=20

प्रतियोगिता में भाग लेने के नियमः

इस प्रतियोगिता में इंटरमीडिएट तथा बी०एससी० के वे सभी छात्र भाग ले सकते हैं, जो टॉकिब दूरशिक्षण के विद्यार्थी नहीं हैं.

इस प्रतियोगिता में 10 बहुविकल्पी प्रश्न दिए गए हैं जो प्रायः इंजीनियरिंग/ मेडिकल प्रवेश परीक्षाओं में पूछे जाते हैं.

प्रत्येक सही उत्तर के लिए आपको 2 अंक मिलेंगे किन्तु प्रत्येक गलत उत्तर के लिए 1 अंक काट लिया जाएगा.

सत्रह या सत्रह से अधिक अंक प्राप्त करने वाली प्रथम प्रविष्टि को पुरस्कार स्वरुप 100 रुपए मूल्य की कैरियर-पुस्तकें प्रदान की जाएंगी.

आपके उत्तरों (प्रविष्टि) की जांच टॉकिब कम्प्यूटर द्वारा की जाएगी, जो कि न केवल आपके प्राप्तांक बताएगा; वरन् यह भी बताएगा कि आपके उत्तर के गलत अथवा सही होने का क्या कारण है. एक सप्ताह के अंदर आपको अपनी प्रविष्टि का कम्प्यूटर परीक्षण-परिणाम प्राप्त हो जाएगा.

प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए कोई प्रवेश-शुल्क नहीं है. अपना उत्तर–पृष्ठ अपने विद्यालय/कालेज से प्रमाणित कराके और पांच रुपए पचास पैसे का टिकट लिफाफे के अंदर रखकर निम्न पते पर भेजेः

टॉकिब कम्प्यूटर सेन्टर, 2324
हडसन लाइन, गुरू तेग बहादुर नगर
दिल्ली–110009

आपके सूचनार्थ इस प्रतियोगिता के सही उत्तर तथा पुरस्कार विजेताओं के नाम इसी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएंगे.

निर्देशः

नेम्नलिखित प्रश्नों में प्रत्येक के लिए दिए गए चार वेकल्प–उत्तरों में से सही उत्तर चुनिए. अपने उत्तर–पृष्ठ में अपना उत्तर (a, b, c) अथवा a) संबंधित प्रश्न के सामने लिखिए.

(1) एक कार 10 किलोमीटर प्रति घंटे की दर से चलकर प्रति किलोमीटर 0.15 किलोग्राम Co गैस निकालती है. कार के प्रति किलोमीटर चलने पर Co के कितने मोल प्राप्त होगें ?
(अ) 5.4×10^{-3} मोल, (आ) 5.4 मोल, (इ) 9.4 मोल, (ई) 12.5 मोल

(2) जल के एक अणु में दो-तिहाई हाइड्रोजन के परमाणु हैं. भार के हिसाब से एक जल अणु में हाइड्रोजन के दो परमाणुओं की प्रतिशतता क्या होगी ?
(अ) 5.6 प्रतिशत, (आ) 11.2 प्रतिशत, (इ) 22.4 प्रतिशत, (ई) 33.3 प्रतिशत

(3) निम्न में से कौन सा कथन, किसी तत्व M के समस्थानिक (आइसोटोप) के सम्बन्ध में असत्य है ?
(i) Z तत्व की द्रव्यमान संख्या (मास नम्बर) हैं
(ii) A तत्व की द्रव्यमान संख्या है
(iii) Z (न्यूक्लियस) पर स्थित धन आवेशों की संख्या है
(iv) A नाभिक में उपस्थित प्रोटॉन और न्यूट्रॉन की संख्या का योग है
(अ) (i) और (iii), (आ) (i), (इ) (ii), और (iv) (ई) (iii)

(4) किसी शुद्ध गैस का 27° सें० और 380 टॉर दाब पर आयतन 492 घन सेंटीमीटर है इस गैस में मोलों की संख्या क्या होगी ?
(अ) 0.010, (आ) 1/9, (इ) 7.6, (ई) 10

(5) समान ताप और दाब पर, निम्न में से किस गैस की प्रति मोल औसत गतिज ऊर्जा अधिकतम होगी ?
(अ) H_2, (आ) CH_4, (इ) SF_6, (ई) सभी की समान

(6) तत्वों और आर्वत तालिका के सम्बन्ध में निम्न में से कौन सा कथन असत्य है ?
(अ) आधुनिक आवर्ती नियम इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि तत्वों के गुण उनके परमाणु संख्याओं के आर्वत फलन (पीरियडिक फंक्शन) होते हैं; (आ) अधिकतर धात्विक तत्व आर्वत तालिका के P-ब्लाक में स्थित है (इ) हाइड्रोजन को एक से अधिक वर्गों में रखा जा सकता है; (ई) एक आर्वत में बांए से दांए जाने पर धात्विक गुण घटता जाता है

(7) निम्न में से कौन-सा तत्व दर्शाए गए तत्वों के समूह से सम्बन्धित नहीं है ?
(अ) रुबीडियम-क्षार धातु (अल्कलीमेटल)
(आ) स्ट्रान्सियम-क्षारिय मृदा धातु (अल्केलाइन अर्थ मेटल)
(इ) जेनॉन-उत्कृष्ट गैस (नोबल गैसज)
(ई) इरीडियन-आंतरिक संक्रमण तत्व (इनर ट्रांजिशनल एलिमेंट्स)

(8) निम्न में से कौन-सा कथन, आयोडीन तत्व (Z=53) के सम्बन्ध में असत्य है ?
(अ) आयोडीन की परमाणु संहति टेलूरियम (Z=52) की परमाणु सहंति से अधिक है
(आ) आयोडीन आर्वत तालिका के पांचवे आर्वत में स्थित है
(इ) आयोडीन और क्लोरीन (Z=17) के रासायनिक गुण समान है
(ई) आयोडीन ब्रोमीन की तुलना में कम विद्युत ऋणात्मक (इलेक्ट्रोनेगोरिव) है

(9) निम्न में से किस वैज्ञानिक ने नाभिक के अन्दर न्यूट्रॉन के उपस्थित होने की खोज सन 1932 में की थी ?
(अ) जेम्स चाडविक, (आ) गोल्डस्टीन, (इ) जे० जे० थामसन, (ई) रदरफोर्ड

(10) लाइमन श्रेणी प्राप्त होती है, जब इलेक्ट्रॉन जाता है ऊर्जा स्तर
(अ) 3, 4, 5 आदि से निम्न ऊर्जा स्तर 2 में
(आ) 2, 3, 4, 5 आदि से निम्न स्तर ऊर्जा स्तर 1 में
(इ) 4, 5, 6 आदि से निम्न ऊर्जा स्तर 3 में
(ई) 6, 7 आदि से निम्न ऊर्जा स्तर 5 में

उत्तर-पृष्ठ

टॉकिब कोड TE-ICR
1. ( ), 2. ( ), 3. ( )
4. ( ), 5. ( ), 6. ( ),
7. ( )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SOMETHING MISSING?

You really can't afford to miss!

If you aren't receiving everyissue of Latest PROJECT Information India's fastest growing magazine on projects, technologies, finance & management , then you are missing vital facts & valuable information which you can't afford to miss.

Act Immediately! Subscribe Now!!

- Only subscribers receive EVERY copy of **Latest PROJECT Information** by post at their door-step.
- Only subscribers have quick and consistent information at hand about technologies, projects, management, finance, business law, international trade, the industry leaders and the important trends in the **national** and **international** market place.

If staying abreast of new technology in every area of industry is **important** to you and the future of your company, you should not miss any issue of **Latest PROJECT Information.**

Fill up this coupon and send it to us with cheque, money order, demand draft or postal order for Rs. 85.00 / 160.00* favouring ***Dominique Data Links (P) Ltd.*** and we will rush you the copies of **Latest PROJECT Information** for one/two years (packing & forwarding included).

YES

I/We don't want to miss vital facts and valuable information. Please enroll my/our subscription for ONE/TWO YEAR (S) and rush me the copies of **Latest PROJECT Information** by post. I /we enclose a cheque / money order / demand draft / postal order for **Rs. 85.00 / 160.00** * towards my/our subscription charges.

Name____________________
Company____________________
Department or Position ____________________
Address____________________
Street____________________
Station ____________________ PIN __________

Signature____________________ Date__________

Please fill clearly (BLOCK LETTERS) and send coupon to:
Circulation Manager
Latest PROJECT Information
27, South Patel Nagar, (UCO Bank Bldg.) New Delhi-110 008.
Phones : 583705, 5735995

*** Please add Rs. 10/- on an outside Delhi Cheque. All payments favouring: Dominique Data Links (P) Limited**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOLDEN GOA

Exciting Package Tour Only Rs. 799/- Per Head
On Twin Sharing Basis For 4 Days-3 Nights

INCLUDING

* Return Bus Ticket To Goa & Back By Luxury Bus From Bombay
* 2 Full Days' Sightseeing Tours of North & South Goa
* Continental Breakfast
* River Cruise With Folk Dances

For Advance Reservations, Please Contact :

HOTEL AZAVEDO'S

(NEAR CALANGUTE BEACH, CALANGUTE, GOA)

CORRESPONDENCE ONLY TO BOMBAY OFFICE :

203, Gulab, P. D'Mello Road, Bombay-400 001
Ph : Off : 2615321, 2619849, 6403834

FREE **FREE** **FREE**

Sales/Purchase Classified Advertisements
Published Free in
Colour & Chemicals Weekly

Yearly Subscription Rs. 300/-

Contact :

COLOUR & CHEMICALS WEEKLY

203, Gulab, 237 P. D'Mello Road, Bombay-400001
Tel : 2615321, 2619849

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमंत्रित हैं

एन आर डी सी द्वारा ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यावहारिक विचार

एन आर डी सी ग्रामीण प्रौद्योगिकी प्रदर्शन-प्रशिक्षण एवम् प्रतिकृति केन्द्रों/प्रदर्शनियों आदि के माध्यम से ग्रामोन्मुखी प्रौद्योगिकियां प्रसारित करती है.

यदि आपके पास कोई ऐसी नई योजना/विचार है जो ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने में उपयोगी हो सकती है अथवा जिसे उनके अनुरूप परिवर्तित किया जा सकता है तो एन आर डी सी आएं.

आपकी उक्त योजना से सफल उत्पाद बनाने पर कारपोरेशन आपको ब्याज मुक्त विकासात्मक ऋण/अनुदान दे सकती है.

अपने नए विचारों को कारपोरेशन के माध्यम से कार्यान्वित करें

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22, जमरूदपुर कम्यूनिटी सेंटर
कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110 048

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

''भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय
नई दिल्ली में पंजीकृत, पंजीकरण संख्या : आर०एन० 21740/71''

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास और संवर्धन की
त्रैमासिक पत्रिका

"ग्राम शिल्प"

यदि आप गांव में रहते हैं
गांवों के विकास से सम्बन्धित कार्य में लगे हैं
या गांवों की समस्या का हल
विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से करना चाहते हैं
और गांवों में विज्ञान और प्रौद्योगिक जानकारी का
प्रसार करने में रुचि रखते हैं

तो "ग्राम शिल्प" आपकी पत्रिका है

ग्रामीण प्रौद्योगिकी पर नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन की त्रैमासिक पत्रिका 'ग्राम शिल्प' का वार्षिक मूल्य 3 रुपए और एक प्रति का मूल्य 1 रुपया है. ग्राहक बनने के लिए मूल्य मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट द्वारा निम्न पते पर भेजें. विज्ञापन की दरों के लिए लिखें :

प्रबन्ध निदेशक
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
(भारत सरकार का उपक्रम)
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्सटेन्शन
नई दिल्ली-110048

एजेन्टों के लिए आकर्षक कमीशन

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, नई दिल्ली के लिए श्री डी०एन० भटनागर द्वारा सम्पादित और प्रकाशित
तथा तारा आर्ट प्रिंटर्स, बी-4, हंस भवन, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

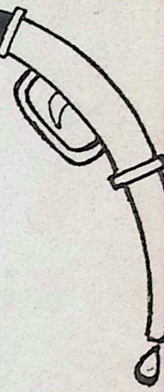

अब पैट्रोल कीमती है लेकिन आप इस पर अपना ख़र्च कम कर सकते हैं.

इन प्रमाणित उपायों पर अमल कीजिए.

क्लच का प्रयोग समझदारी से कीजिए

क्लच का प्रयोग सिर्फ गियर बदलते समय ही कीजिए. क्लच को दबाए रखने से क्लच प्लेट की लाईनिंग जल्दी घिसती है, शक्ति में कमी आती है और ईंधन की खपत में वृद्धि होती है.

फ़िल्टर हमेशा साफ़ रखिए

साफ़ फिल्टर इंज़न को धूल से बचाता है, जिससे इंजन ज़्यादा समय तक चलता है और पैट्रोल की खपत में कमी आती है.

इंजन हमेशा ट्यून्ड रखिए

यदि आपके वाहन की शक्ति में कमी आ रही हो या वह धुँआ ज़्यादा फेंक रहा हो तो उसे तुरन्त चैक करवाईये. इंजन ट्यून न होने पर ईंधन की खपत में वृद्धि होने के साथ वायु प्रदूषण भी होता है.

सही तेल का प्रयोग कीजिए

हमेशा सही श्रेणी का तेल ही प्रयोग कीजिए जो आपके वाहन के लिए उपयुक्त हो. जब तेल बदलें तो उस समय अपने वाहन-निर्माता द्वारा निर्दिष्ट श्रेणी का ही तेल प्रयोग करें.

टायरों में हवा का सही दबाव रखें

टायरों में हवा का सही दबाव होना ज़रूरी है. टायरों में हवा कम होने से 25% ईंधन की बर्बादी होती है.

PCRA

पैट्रोलियम कन्ज़र्वेशन
रिसर्च एसोसिएशन
पो. ऑ. बॉक्स नं. 572, नई दिल्ली-110001.

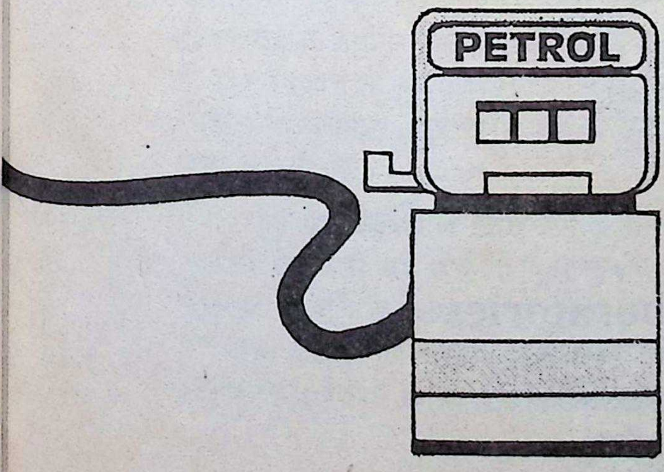

कृपया मुझे निम्न पर मुफ़्त पुस्तिका भेजिए

- ☐ अपनी कार को समझिए
- ☐ डीज़ल बचाएं
- ☐ 2, 3 व्हीलर
- ☐ पेट्रोल बचाने के उपाय

नाम : ______________________

पता : ______________________

____

____

राज्य ______________ पिन ______________

U/TP/09/DDRH

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

INVITES

APPLICATIONS FROM TESTING AND CALIBRATION LABORATORIES
FOR THEIR ACCREDITATION
UNDER THE PROGRAMME ON NATIONAL COORDINATION OF
TESTING AND CALIBRATION FACILITIES (NCTCF)

ORGANISATIONS (GOVERNMENT OR PRIVATE) WHICH UNDER-TAKES TESTING/CALIBRATION EITHER FOR ITS OWN PURPOSE OR FOR OTHERS ARE ELIGIBLE TO SEEK ACCREDITION.

FOR DETAILS, PLEASE WRITE TO :

Testing Laboratories

Adviser
Engineering and Technology
Department of Science & Technolgy
New Mehrauli Road,
New Delhi-110 016

Calibration Laboratories

Director
National Physical Laboratory
Dr. K.S. Krishnan Road
New Delhi-110 012

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान का कल्याणकारी उपयोग किसका दायित्व?

□ मानव सभ्यता का प्रसार आज जिस रूप में हम देख रहे हैं वह विज्ञान की उपलब्धियों के बिना संभव न था. यह सच है कि वैज्ञानिक विचारों के प्रसार ने आज मनुष्य के सारे सोच के तरीके को पूरी तरह बदल डाला है. अपने समय के सभी संघर्षों और आकांक्षाओं में हमें विज्ञान की निरंतर और बढ़ती भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है.

खाड़ी युद्ध में उच्च प्रौद्योगिकी ने जो भूमिका की वह हमारी आंखों के सामने है. मनुष्य आज भी परमाणु बम या रासायनिक अस्त्रों द्वारा संहार के साए में जिन्दा है, फिर भी उसने इस उम्मीद का पल्ला नहीं छोड़ा है कि वह कभी खेती, चिकित्सा और औद्योगिक क्षेत्रों में किए जा रहे नित नए वैज्ञानिक अनुसंधानों के भरपूर उपयोग द्वारा अपनी जीवन शैली को पूरी तरह परिवर्तित कर सकेगा, समृद्ध कर सकेगा और सचमुच में मनुष्य के योग्य एक सम्मानजनक जीवन जी सकेगा.

घटनाक्रम की प्रगति के साथ- साथ हमारे सामने विज्ञान की अनेक समस्याएं आज उपस्थित हैं. इनमें समाज में विज्ञान का उपयुक्त उपयोग. विज्ञान का सैन्यीकरण, विज्ञान का राज्यों से संबंध, वैज्ञानिक अनुसंधानों की गोपनीयता,विज्ञान की स्वतंत्रता, शिक्षा और आम संस्कृति में विज्ञान का स्थान आदि प्रमुख हैं. इन समस्याओं को कैसे सुलझाया जाए ताकि मानवता के कल्याण के लिए विज्ञान का उपयोग करने का मार्ग प्रशस्त हो सके? सच तो यह है कि विज्ञान के उपयोग के मार्ग को मानव संस्कृति के सामान्य भंडार से उपलब्ध सिद्धांतों और व्यवहारों से निर्देशित होना है. इसके लिए विज्ञान के समाज के साथ संबंधों की गहरी समझ जरूरी है.

वैज्ञानिक अनुसंधानों के जरिए विज्ञान का निरंतर विकास हो रहा है. यह विकास पहले की तरह धीरे-धीरे और चुपचाप नहीं बल्कि बहुत तेजी से हो रहा है. परिणाम, हमारे जीवन के सभी पक्ष हमारे अपने जीवन काल में ही तेजी से परिवर्तित होते जा रहे हैं.

कुछ लोग यह सोच सकते हैं कि क्योंकि विज्ञान हमारे जीवन को अधिक से अधिक प्रभावित करता जा रहा है, इसका अर्थ यह है कि स्वयं वैज्ञानिक ही सभ्यता के विकास की प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं, और परिणामस्वरूप हमारे समय की बुराइयों और दुर्घटनाओं के लिए अधिकांशतः उत्तरदायी हैं. किन्तु जो विज्ञान से जुड़े हैं भलीभांति समझते हैं कि यह विश्वास सच्चाई से कितना दूर है. वैज्ञानिकों की उपलब्धियों का किस प्रकार उपयोग किया जाता है यह वैज्ञानिकों के हाथ में नहीं है. सौभाग्यवश हमारे समय के अधिकांश वैज्ञानिक विज्ञान को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने लगे हैं और विज्ञान के कल्याणकारी उपयोग की सम्भावनाओं के प्रति चैतन्य हैं. उनकी यही चैतन्यता विज्ञान के उपयोग और दुरुपयोग में वैज्ञानिकों को असहाय खिलौनों की तरह उपयोग किए जाने से बचा सकती है.

एक ऐसे विश्व में जिसमें दु:ख,तकलीफें और आतंक दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं, औसत आदमी जिन्दगी की जरूरतें पूरी करने के प्रयास में टूट रहा है वहां विज्ञान को उसकी कल्याणकारी भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करने का दायित्व सीधे-सीधे हमारे समाज पर है इसीलिए जरूरी है कि हम सब विज्ञान को जाने, उसकी बातों को गहराई से समझें. तभी हम यह समझ सकेंगे कि विज्ञान के प्रयास किस दिशा में अधिक सार्थक होंगे.

डी० एन० भटनागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन.आर.डी.सी
NRDC

आविष्कार

मार्च 1991

वर्ष 21, अंक 3

प्रबंध निदेशक
एन०के० शर्मा

प्रमुख (आई०पी०पी० एवं इ०)
एम०पी० भटनागर

वरिष्ठ सम्पादक
डी०एन० भटनागर

सम्पादन सहायक
राघवेंद्र कुमार शर्मा
आर०के० अन्थवाल

उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन

मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा

व्यावसायिक चित्रकार
के०के० थपलियाल

वरिष्ठ चित्रकार
नबनीता भौमिक

विज्ञापन प्रतिनिधि
रमा रानी त्रिपाठी

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■ लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरूरी है.

एक प्रति : 3 रुपए
वार्षिक मूल्य : 30 रुपए

फोन: 6432580, 6419929, 6419945, 6419947, 6418615 टेलेक्स: 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'

इस अंक में

122 प्रग्रहण मत्स्यकी
—डा० अरुण गोपाल झिंगरन एवं डा० हेम चन्द्र जोशी

128 विज्ञान-दर्शन का विज्ञानेतर अनुशासनों पर प्रभाव-1
—डा० चन्द्रमोहन भंडारी

134 खगोलीय पिण्डों से काल-निर्धारण
—डा० विजय कुमार उपाध्याय

100 अपनी बात

101 आपकी प्रतिक्रियाएं

104 व्योमविहार

108 **आविष्कार मंच** : एक सस्ता इन्टरकॉम जिसे आप भी बना सकते हैं. रिक्शा के पहिए में सुधार.

109 **समाचारिकी** : नए किस्म के बल्ब : ज्यादा चलेंगे, कम बिजली खर्चेंगे. अब अतिसूक्ष्म जीव ऊर्जा उपलब्ध कराएंगे. सैनिक तैयारियां बनाम ढाई लाख बच्चों की मौत. कृत्रिम फेरोमोन से बढ़ेगा शहद उत्पादन. एन आर डी सी के उप-प्रबंधक को एस आइ एस. फेलोशिप. मौसम का पूर्वानुमान लगाइए अब व्हेल की मदद से. प्रौद्योगिकी हस्तांतरण पेटेंट और सूचना प्रणालियों के प्रबंध पर प्रशिक्षण कार्यक्रम. रक्त कैंसर के जिम्मेदार जीन की पहचान.

112 **विज्ञान के विविध आयाम** : पोषण के लिए रोटी और चावल ही नहीं दाल भी जरूरी. वायुमंडलीय कार्बन प्रदूषण और कार्बन टैक्स. घास-फूस और भूसी से चलने वाला स्टरलिंग इंजन. प्रदूषण-रहित कीट नियंत्रण. वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए पशु-बलि : क्या कोई विकल्प है?

138 **क्या और कैसे?** : क्या होता है कृत्रिम रबड़?

140 **खेल-खेल में विज्ञान** : वायु करे, इंजन का काम. हाथ की गर्मी, पंख घुमाए.

141 अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी प्रतिक्रियाएं

□ **ऊर्जा संकट और समाधान:** खाड़ी युद्ध के कारण पूरे विश्व में इस समय गम्भीर ऊर्जा संकट उत्पन्न हो गया है. आंकड़ों के अनुसार 'विश्व की ऊर्जा सम्पदा' में से तेल 34 वर्ष में, कोयला 11 वर्ष में, पेट्रोलियम 20 वर्ष में तथा प्राकृतिक गैस 40 वर्ष में समाप्त हो जाएंगे. भारत जैसे बड़ी जनसंख्या वाले देश में समस्त ऊर्जा स्रोत 65 वर्ष में समाप्त हो जाएंगे.

ऐसे में हमें ऊर्जा संकट की संभावनाओं को देखते हुए इनके समाधान हेतु ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर ध्यान देना होगा. इनसे हम बहुत हद तक ऊर्जा संकट को दूर कर सकते हैं. ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों के रूप में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा तथा समुद्र से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग किया जा सकता है.

भारत के लिए सौर ऊर्जा वैकल्पिक ऊर्जा के सभी स्रोतों में प्रमुख है. कर्क रेखा पर स्थित होने के कारण भारत को प्राप्त होने वाली सौर ऊर्जा की मात्रा लगभग 1000 किलोवाट है जो हमारे अन्य सभी स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा से लगभग एक लाख गुना अधिक है. अमेरिका और रूस में जहां भारत की अपेक्षा कम सौर ऊर्जा उपलब्ध है वहां का सफलतापूर्वक उपयोग प्रारम्भ हो गया है, परन्तु भारत में सौर ऊर्जा की अत्यधिक सम्भावनाओं के बावजूद अभी तक कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है.

भारत में पवन ऊर्जा की भी अपार सम्भावनाएं हैं, और सिंचाई आदि कार्यों में पवन चक्कियों का सफलतापूर्वक उपयोग सम्भव है. ग्राम्यांचलों में ऊर्जा का असीम स्रोत्र गोबर है. यह सर्वसुलभ होने के साथ ही मितव्ययी साधन है. अनुमान है कि देश में लगभग 12 हजार टन गोबर प्राप्त होता है. विशेषज्ञों के अनुसार यदि एक टन गोबर को कंडे (उपले) के रूप में जलाया जाए तो 58,750 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है जबकि उतने ही गोबर की गैस से 1,14,000 किलो कैलोरी ऊर्जा मिलती है. इसके अतिरिक्त गोबर गैस की सार्थकता विद्युत उत्पादन के लिए भी है. प्रकाश व सिंचाई के अलावा इससे बिजली से चलने वाली मशीनों को भी चलाया जा सकता है. गैस संयंत्र के

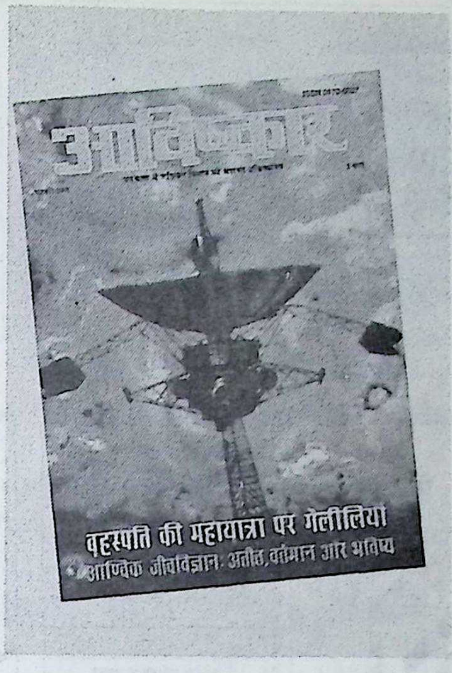

स्लरी उत्तम किस्म की उपजाऊ खाद होती है. पशुओं का मूत्र गोबर में मिलाकर ऊर्जा शक्ति में वृद्धि की जा सकती है. भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर के अन्वेषकों का मत है कि इस विधि से गोबर के 75 प्रतिशत भाग का उपयोग करके दो टन गोबर से 250 लाख लीटर मिट्टी के तेल की बचत की जा सकती है.

इनके अतिरिक्त समुद्र से कम से कम आठ तरीकों से ऊर्जा प्राप्त हो सकती है: (1) समुद्र की लहरों का उपयोग करके, (2) समुद्र के ज्वार को उपयोग करके, (3) समुद्र के ताप ऊर्जा विनिमय द्वारा, (4) समुद्र की धाराओं से, (5) समुद्र की हवाओं से, (6) लवणता के तत्वों के उपयोग से, (7) समुद्र के भूतांप से, (8) समुद्र के शैवाल आदि के उपयोग से तीन ओर समुद्र से घिरे हुए भारत के लिए यह ऊर्जा का अत्यन्त कारगर स्रोत सिद्ध हो सकता है.

हमारे आस-पास ऊर्जा का विपुल भंडार बिखरा हुआ है. इसका दोहन किया जाना चाहिए. तभी हम अपने देश की अधिकांश समस्याएं सुलझा पाएंगे. **[अनिल कुमार सिंह 'झंझानिल' धनेजा, वाराणसी].**

□ **यांत्रिक इंजीनियरी पर सामग्री दें:** मैं 'आविष्कार' का लगभग पांच वर्षों से पाठक हूं. मैंने पत्रिका की रूप सज्जा व पाठ्य सामग्री के उतार-चढ़ाव को देखा है. सस्ती होने के बावजूद यह सभी पाठकों के लिए ज्ञानवर्द्धक है. बाजार में इसे देखते ही पढ़ने की इच्छा होने लगती है और जबरन लेनी पड़ती है. मुझे 'आवष्किार मंच', 'क्या और कैसे', 'अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए' आदि स्तम्भ बहुत बढ़िया लगते हैं. आज आवश्यकता है इसे और अधिक रूचिकर बनाने की ताकि जनसाधारण भी रूचि ले सके.

इसमें यांत्रिक इंजीनियरी से संबंधित सामग्री और वैज्ञानिक कथाएं भी दिया करें. महान आविष्कारकों के चित्र सहित उनके आविष्कारों की कहानियां भी प्रकाशित करें. **[अजय कुमार श्रीवास्तव 'चंचल' द्वितीय वर्ष, मैकेनिकल इंजीनियर, के० एल० पालिटेक्निक रूड़की-हरिद्वार-247667 (उत्तर प्रदेश)].**

□ **आविष्कार मंच के पाठकों की समस्याएं और उनका निवारण:** मैं 'आविष्कार' का काफी लंबे अरसे से नियमित पाठक हूं. वर्तमान में हिंदी में विज्ञान की इतनी उच्चस्तरीय पत्रिका दूसरी नहीं है. इस पत्रिका ने मेरे पत्रों को जून 1990 तथा अक्तूबर 1990 के अंकों से प्रकाशित करके मुझे सम्मान दिया है. इनसे संबंधित पाठकों के लगभग 1500 पत्र आ चुके हैं. पाठकों के प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत हैं:

अक्तूबर 1990 में प्रकाशित 'सस्ता तरल साबुन' सैकड़ों पाठकों ने बनाया है. कुछ पूर्णतः सफल रहे तथा कुछ की शिकायत रही कि इसका गाढ़ापन नीचे बैठ जाता है. इसका कारण है यूरिया की कमी तथा आपका इसे आधा से कम घंटे हिलाना. तैयार घोल को आप आधा घंटे से कम न चलाएं तथा फिर भी आपका साबुन बैठता है (अवक्षेप रूप में) तो आप उसमें 150 ग्राम यूरिया और डालें.

कुछ पाठक इस साबुन में महक डालना चाहते हैं. आप जिस दुकान से सामान खरीदकर लाएं हैं वहीं से आपको इसमें डालने के लिए मनचाही सुगंध मिल जाएगी. आपको अपने साबुन में मात्र 3 बूंद सुगंध ही डालनी है. कृपया पत्र में छपे शब्द स्वरी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर. गुप्ता कृत लाभदायक पुस्तकें

वी पी पी द्वारा पुस्तकें मंगाने के लिए 15 रु. का अग्रिम मनीआर्डर भेजें :

रमेश पब्लिशिंग हाउस 4457, नई सड़क, दिल्ली-6

'विश्व घटना चक्र' की नमूना प्रति मंगाने के लिए कृपया 3 रु. का मनीआर्डर भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगह स्लरी पढ़ें.

जून 1990 के अंक में प्रकाशित पत्र में ट्रांसमिटर संशोधन तथा मल्टी मीटर बनाने की विधि दी गई है. मल्टी मीटर बनाने के लिए बहुत से पाठकों को सर्किट की आवश्यकता है. उन्हें मैं सूचित कर दूं 'आविष्कार' की ओर से पुराने लेखों (हम सुझाएं आप बनाएं) की फोटो कापी उपलब्ध कराने की एक लाभदायक योजनी निकली है. आप मार्च 1987 के 'हम सुझाएं आप बनाएं' की फोटो कापी मंगा सकते हैं. बहुत से पाठक ट्रांसमिटर संशोधन को विस्तृत रूप से जानना चाहते हैं. उनकी सूचना के लिए अनूप कर्णवाल द्वारा सुझाए गए संशोधन इस प्रकार है:

33 किलोओहम के प्रतिरोध की जगह 68 किलोओहम का प्रतिरोध तथा 220 किलोओहम के प्रतिरोध की जगह 470 किलोओहम का प्रतिरोध लगाएं तथा मीडियम वेव कौएल के स्थान पर शार्ट वेव कौएल लगाएं और परिपथ में 6 वोल्ट के स्थान पर 9 वोल्ट दें. **[अरुण कान्त जिंदल 'राजीव', आदर्श नगर भाग-3, एम० एन० आर० गाजियाबाद-201204 (दिल्ली रोड)].**

□ **समय के अंतरराष्ट्रीय तालमेल की कहानी**: 'आविष्कार' के जनवरी 1991 अंक में प्रकाशित आवरण लेख ''समय के अंतरराष्ट्रीय तालमेल की कहानी'' अनेक जिज्ञासाओं को पूर्णतया तुष्ट करने में सफल रहा. कृपया 'प्रश्न मंच' स्तम्भ भी प्रारंभ करें जिससे हमें अपनी जिज्ञासाओं की निवृत्ति के लिए अन्य पत्रिकाओं की ओर न भटकना पड़े. **[वेदप्रकाश यादव द्वारा श्री चन्द्रकान्त यादव, चांदी तारा, वाराणसी; नीरज कुमार द्वारा विनय कुमार सिन्हा, स्टेट बैंक आफ इंडिया, कृषि विकास शाखा, हसनपुर रोड, समस्तीपुर (बिहार) 848101].**

□ **गैस की लालटेन में सुधार** 'आविष्कार' के अक्तूबर 1990 अंक में 'आविष्कार मंच' स्तम्भ में पंकज अग्रवाल का 'गैस की लालटेन में सुधार' का एक तरीका प्रकाशित किया गया था. मुझे उस तरीके से संतोषजनक परिणाम नहीं मिलें.

'आविष्कार' का यह अंक आपको कैसा लगा? किस लेख विशेष ने आपको प्रभावित किया? किस अंक में आपको क्या अखरा? 'आविष्कार' से आपको क्या अपेक्षाएं हैं—ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में यदि आपके सुझाव मिलते रहें तो 'आविष्कार' को आपकी आशा-अपेक्षाओं के अनुरूप ढालते रहने में हमें मदद मिलेगी. आपकी रचनात्मक टिप्पणियों और विचारों का स्वागत है.

—वरिष्ठ सम्पादक

मैंने इसमें एक अन्य सुधार किया है, जिससे गैस की लालटेन में रोशनी भी बढ़ी है तथा आवाज कम हुई है.

मेरे अनुसार ''अगर छिद्रित पाइप के छिद्रों में, दो आमने-सामने के कोई भी छिद्र छोड़कर, बाकी पर विजली वाली टेप चिपका दी जाए तो रोशनी में बढ़ोत्तरी होती है.

इस विधि में दो आमने-सामने के छिद्र छोड़ने चाहिए न कि दो लगातार बराबर वाले छिद्र. **[अनुज कुमार सिंघल, सुपुत्र श्री रमेश चन्द्र, 365/2, पट्टी मेहर, मौ. काहरान, बड़ौत (मेरठ) (उत्तर प्रदेश) -250611].**

□ **व्योमविहार**: 'आविष्कार' के अक्तूबर 1990 तथा नवंबर 1990 के अंक हमें काफी रोचक तथा ज्ञानवर्धक लगे.

'व्योमविहार' में विभिन्न तारों के बारे में पढ़कर काफी जानकारी मिली. 'आविष्कार मंच' में 'लकड़ी का फ्रिज बनाने की विधि' हम ग्रामीणों के लिए वरदान-सा है.

'कैंसर की उत्पत्ति' के संबंध में काफी विस्तृत तथा गहन जानकारी देकर आपने आविष्कार पत्रिका के मनोबल को बढ़ाया है.

मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि आप 'एड्स' रोग के बारे में हमें विस्तृत जानकारी दें. तथा इसी प्रकार नए-नए खतरनाक रोगों के बारे में विस्तृत जानकारी देकर हम नेपाल वासियों का मार्गदर्शन करें. **[रूपा गांगुली, बीरगंज नेपाल].**

—यह प्रसन्नता की बात है कि 'आविष्कार' पत्रिका अब नेपाल में भी लोकप्रिय होती जा रही है. हमें वहां से पाठकों के इस आशय के पत्र लगातार मिल रहे हैं. एड्स पर काफी सामग्री ''आविष्कार'' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित की जा चुकी है इनकी फोटो प्रतिलिपियां प्राप्त की जा सकती हैं.

—वरिष्ठ संपादक

□ दिसम्बर 1990 के अंक में वैसे तो सभी लेख अपने आप में परिपूर्ण थे. परन्तु मुझे सबसे अच्छा व ज्ञानवर्द्धक 'व्योमविहार', 'मैजलन-शुक्र की टोह में', 'आविष्कार मंच', 'समाचारिकी' तथा 'विज्ञान के विविध आयाम' लगे.

मैं आशा करती हूं कि 'आविष्कार' इसी प्रकार के और इससे भी अच्छे लेख हम तक पहुंचाता रहेगा. **[चौधरी रजनी ठाकुर, लखावटी कालेज, लखावटी, बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश; हरीश वशिष्ठ, शोध छात्र, मानव-विज्ञान विभाग, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्री नगर (गढ़वाल) -246174].**

विज्ञापन का उत्तम माध्यम आविष्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ बोकिया

आविष्कार के इस स्तंभ में हम आपका परिचय नए तारामंडलों से कराते हैं. आप केवल निर्देशों का पालन करते जाएं, आपके सामने खुलता जाएगा तारों, ग्रहों और नक्षत्रों का अनोखा संसार. आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है.

□ इस मास का संध्याकाश मृग, वृष, सारथी, बृहल्लुब्धक, सिंह और सप्तर्षि जैसे आकर्षक तारामंडलों के अतिरिक्त चार ग्रहों बुध, शुक्र, मंगल तथा बृहस्पति से सुसज्जित है.

बुध और शुक्र की मानचित्र में दिखाई स्थिति मास अन्त की है जबकि हमेशा की तरह शेष ग्रहों की स्थितियां मास मध्य के लिए हैं. बुध ग्रह इस मास कुम्भ तथा मीन राशियों के सामने गतिमान है तथा मार्च 12 के बाद संध्याकाश में दिखाई देना आरंभ होगा. मार्च 27 को यह इस दौर में संध्याकाश में सूर्य से सर्वाधिक कोणीय दूरी पर (लगभग 19 अंश) पश्चिमी क्षितिज पर होगा. बुध ग्रह को खोज निकालना सूर्य से इसके सामीप्य के कारण किंचित दुष्कर होता है. इस मास इसकी चमक लगभग व्याध तारे जितनी होगी फिर भी संध्या की लालिमा में सूर्यास्त के तुरंत बाद इसे खोज लेना जरा चुनौतीपूर्ण कार्य है.

तेजस्वी शुक्र का कान्तिमान -4 के आसपास है, यह मीन और मेष राशियों के क्षेत्र में स्थित है, और आजकल संध्याकाश का सर्वाधिक चमकीला पिंड है (यदि हम चन्द्रमा की उपेक्षा कर दें). इसके बाद चमक के घटते क्रम में दूसरा पिंड है बृहस्पति ग्रह जो कर्क राशि में स्थित है तथा मध्याकाश में सुशोभित है.

बृहस्पति और शुक्र के बीच के आकाशीय क्षेत्र में आप अपनी विशिष्ट पहचान (लाल रंग) वाला मंगल ग्रह पाएंगें जिसकी चमक इन दोनों ग्रहों से बहुत कम है (इस मास मध्य में कान्तिमान +0.8 के लगभग). मंगल ग्रह वृष राशि के क्षेत्र में स्थित है.

चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं कृष्ण पक्ष अष्टमी दिनांक 8, अमावस्या दिनांक 16, शुक्ल पक्ष अष्टमी दिनांक 23 तथा पूर्णिमा 30 मार्च को है. अपने आकाश मार्ग पर चलता हुआ चन्द्रमा दिनांक 7 मार्च को ज्येष्ठा तारे के बहुत समीप से गुजरेगा. ज्येष्ठा तब चन्द्रमा से मात्र 0.8 अंश दक्षिण में होगा. इस मास ज्येष्ठा अर्धरात्रि के बाद पूर्व क्षितिज पर उदय होता देखा जा सकता है.

हमारी पृथ्वी इस मास 21 मार्च को बसन्त विषुव बिन्दु (स्प्रिंग इक्वीनॉक्स) से गुजरेगी. अतः उक्त दिनांक को दिवस तथा रात्रि की अवधि समान होगी और उसके बाद उत्तरी गोलार्ध में दिवस की लंबाई बढ़नी आरंभ होगी और रात्रि की अवधि घटती जाएगी.

इस मास हम ग्रहों की चर्चा की श्रृंखला में गुरु ग्रह को ले रहे हैं जो हमारे सान्ध्य मध्याकाश में स्थित है. गुरु को बृहस्पति अथवा जुपीटर भी कहा जाता है. गुरु वास्तव में गुरु है. इसका यह नाम अत्यन्त सटीक है. यह सभी ग्रहों में आकार में सबसे बड़ा है और इसकी संहति भी सर्वाधिक है. गुरु के आयतन में 1300 पृथ्वियां समा सकती हैं, परन्तु इसकी संहति पृथ्वी की केवल 318 गुना है. इसका अर्थ है गुरु का घनत्व बहुत कम है. गुरु का औसत घनत्व मात्र 1.31 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है, यानी पानी से यह थोड़ा ही अधिक भारी है. बुध, शुक्र, पृथ्वी और मंगल की तरह गुरु पर कोई ठोस धरातल नहीं है. यह दैत्याकार गैसीय ग्रह है. शनि, यूरेनस तथा नैप्च्यून की संरचना भी इसी प्रकार की है.

यदि सौर मंडल में सूर्य को छोड़ दें तो उसकी शेष संहति का लगभग 70 प्रतिशत गुरु में समाहित है.

सूर्य और चन्द्र की यदि गिनती न करें तो शुक्र के बाद गुरु ग्रह आकाश का दूसरा तेजस्वी पिंड है. दूरबीन से देखने पर गुरु ग्रह एक अण्डाकार-गोल चकती जैसा दिखता है, हल्की-पीली आभा लिए हुए. उस चकती पर गुरु के वातावरण की नारंगी-लाल प[...] भी दूरबीन से नजर आती हैं. साथ ही इसके 17 चन्द्रमाओं में से चार चन्द्रमाओं को भी देख सकते हैं और कु[...] के अन्तर से प्रेक्षण लेने पर वे चन्द्रमा ग[...] सापेक्ष स्थिति बदलते प्रतीत होते हैं.

अपनी दूरबीन का आविष्कार कर[...] बाद जब सन् 1609 में गैलीलियो गैलि[...] उसे गुरु ग्रह की ओर उन्मुख किय[...] गैलीलियो को गुरु के ये चार बड़े च[...] उसकी परिक्रमा करते दिखाई दिए थे. य[...] गैलीलियो से लगभग 95 वर्ष पूर्व पोलैण्डवासी पादरी निकोलस कोपरनि[...] ने यह बात बता दी थी कि सौर मंडल के[...] में सूर्य है न कि पृथ्वी. परन्तु तत्का[...] विचारक इस बात को स्वीकार नहीं क[...] रहे थे. लगभग एक शताब्दी बाद गैली[...] के उस प्रेक्षण ने (गैलीलियो स[...] कोपरनिकस की विचारधारा के समर्थ[...] एक प्रमाण प्रदान किया कि ब्रह्माण्ड[...] प्रत्येक वस्तु पृथ्वी की परिक्रमा नहीं क[...] है. गुरु ग्रह के परिक्रमारत चन्द्रमा[...] भूकेन्द्रित-सौर-मंडल की मान्यता को ध[...] करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा[...]

गुरु के वातावरण की पट्टियों में उ[...] वातावरण की हलचलों की छाप दिखाई[...] है. गुरु के वातावरण का सर्वाधिक चम[...] करने वाला लक्षण है उसका प्रसिद्ध [...] धब्बा. वैसे इसके लिए 'धब्बा' शब्[...] उपयोग करना कुछ पाठकों को इस[...] गलत लग सकता है क्योंकि इस ध[...] अगल-बगल सटाकर दो पृथ्वियां रख[...] सकती हैं. यह धब्बा गुरु पर तब से दिख[...] रहा है, जब से दूरबीन द्वारा इसे दे[...] सम्भव हो पाया. परन्तु ऐसा माना जा[...] कि गुरु की गैसीय सतह पर यह [...] वास्तव में एक विशाल तूफानी बवंडर [...] सैकड़ों (अथवा कुछ हजार) वर्षों से [...] रहा है और जिसने अब तक थमने का[...] नहीं लिया.

गुरु की विशिष्टताओं में उसका [...] काल भी है. इसका घूर्णन सौर मंडल के[...] ग्रहों में सर्वाधिक है. हमारी पृथ्वी अपनी[...] पर 24 घंटे में एक बार घूमती है, परंत[...] अपनी धुरी पर दस घंटे से भी कम सम[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

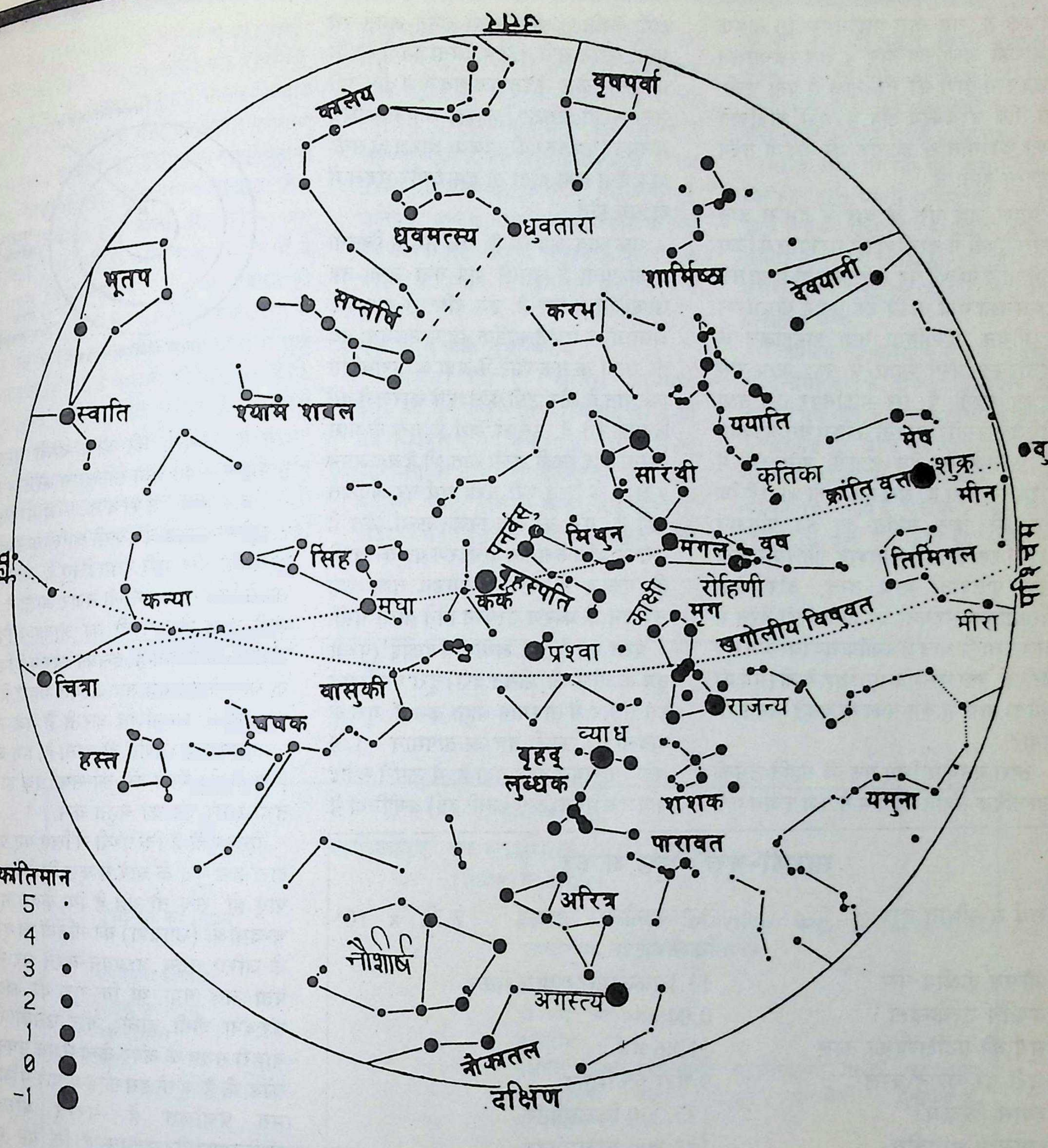

घंटा 55 मिनट) में एक बार घूम जाता है. यदि गुरु घूम न रहा होता तो अपनी गैसीय संरचना के कारण एक विशुद्ध पूर्ण गोला होता, परन्तु धुरी पर इस तेज घुमाव के कारण गुरु ध्रुवों पर चपटा तथा विषुवतीय क्षेत्र में फैल गया है जिससे यह थोड़ा अंडाकार हो गया है. इसका व्यास यदि ध्रुवों के अनुगत नापा जाए तो एक लाख 35 हजार किलोमीटर आता है और विषुवतीय क्षेत्र के अनुगत नापने पर एक लाख 44 हजार किलोमीटर.

सर्वप्रथम सन् 1955 में यह ज्ञात हुआ था कि इस ग्रह से रेडियो तरंगों के विस्फोट उत्सर्जित होते रहते हैं. कुछ वर्ष बाद यह देखा गया कि इन विस्फोटों के अतिरिक्त गुरु से सतत रूप से कम लंबाई वाली (शॉर्ट वेव) रेडियो तरंगें भी निकलती हैं. इस सतत रेडियो तरंग उत्पादन का कारण गुरु का तीव्र चुम्बकत्व है जो पृथ्वी के चुम्बकत्व से पांच गुना अधिक शक्तिशाली है तथा सौर मंडल में किसी भी ग्रह की तुलना में बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक है. यह बात पाइनियर 10 नामक अमेरिकी अन्तरिक्ष यान में लगे स्वचालित उपकरणों द्वारा की गई जांच से पता चली. इस तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र में 'फंसे' आवेशित कणों की गति से ही गुरु की रेडियो तरंगे उत्पन्न होती हैं.

पहले जब गुरु के बारे में हमारा ज्ञान केवल पृथ्वी से दूरबीनों की सहायता से किए जाने वाले प्रेक्षणों पर आधारित होता था तब यह समझा गया था कि इस ग्रह के वायुमंडल में मीथेन, अमोनिया तथा हाइड्रोजन के अतिरिक्त अल्प मात्रा में कुछ अन्य गैसें मौजूद रहती हैं, पर पाइनियर 10 तथा वोयेजर अन्तरिक्ष यानों से किए गए अध्ययन के फलस्वरूप अब हमारी जानकारी में परिवर्तन हुआ है. अब यह माना जाता है कि गुरु की कुल संहति का 84 प्रतिशत हाइड्रोजन है, 15 प्रतिशत हौलियम तथा शेष प्रतिशत अन्य तत्व, और ऐसी रासायनिक संरचना का होना बड़ी हैरत में डालने वाली बात है क्योंकि यह बिल्कुल सूर्य जैसी है. क्या गुरु एक ऐसा ग्रह है जो (सूर्य की भांति) तारा न बन सका या बनते-बनते रह गया?

तारा बनने के लिए गुरु की संहति उसकी वास्तविक संहति का कम से कम पचास गुनी होनी चाहिए. अतः 'तारा बनते-बनते रह गया' कथन सही नहीं है. बिना इतनी संहति के गुरु के केन्द्र में इतना दबाव तथा ताप नहीं उत्पन्न हो सकता कि वहां तापनाभिकीय संलयन (फ्यूजन) की प्रक्रिया आरंभ हो सके. यदि वैसा हुआ होता तो हमारे सौर मंडल में दो सूर्य होते.

एक बात अवश्य है, गुरु सूर्य से जितनी ऊर्जा पाता है उसकी ढाई गुना ऊर्जा वह उत्सर्जित करता है. इस दृष्टि से गुरु एक असाधारण ग्रह है क्योंकि ग्रह सामान्यतः सूर्य की ऊर्जा के एक छोटे से अंश को परावर्तित कर पाते हैं और उसी प्रकाश के कारण वे हमें दिखाई देते हैं. इसका अर्थ है गुरु के पास अपना कोई निजी ऊर्जा स्रोत भी है वह अपने प्रकाश के लिए पूरी तरह सूर्य पर आश्रित नहीं है. गुरु का यह निजी ऊर्जा स्रोत है उसकी अधिक संहति के कारण ग्रह का अपने ही गुरुत्व के कारण संपीडन तथा उस संपीडन के कारण उत्पन्न होने वाली गर्मी.

परंतु सूर्य से 5.2 'खगोलीय इकाई' (पृथ्वी सूर्य के बीच की औसत दूरी) दूरी पर स्थित इस संसार में तापमान बहुत कम है. गुरु के बादलों की ऊपरी तह का तापमान –149 अंश सेल्सियस नापा गया है, ये ऊपरी सफेद बादल संभवतः ठोस (जमी हुई) अमोनिया से

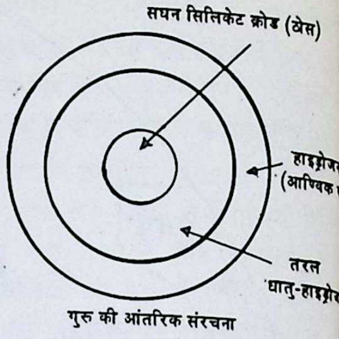

गुरु की आंतरिक संरचना

बने हैं, बादलों की बीच वाली परत तापमान –40 अंश सेल्सियस आंका गय ये बादल संभवतः अमोनि हाइड्रोसल्फाइड के किसी बहुलीकृत यौ के बने हैं और भूरी रंगत लिए हैं. बादलों सबसे निचली तह नीली नजर आती है, उसी तरह जैसे पृथ्वी का आकाश दि नीला दिखाई देता है. इसका कारण है कि के बादलों की यह तह अत्यंत गहरी है. जो प्रकाश उत्सर्जित करती है वह ऊ परतों द्वारा प्रकीर्णित हो जाता है. हम जा हैं प्रकीर्णन नीले रंग का सर्वाधिक होत तथा लाल रंग का बहुत कम.

ऐसा नहीं है कि पृथ्वी से लिए गए प्रे द्वारा हम गुरु के बारे में कुछ विशेष न पाए हों. सच तो यह है कि केवल गुरु चन्द्रमाओं (उपग्रहों) की गतियों का दूर के जरिए सूक्ष्म अध्ययन करने भर से पता चल गया था कि गुरु की आंत संरचना कैसी होगी; और उसकी गै बाहरी सतह के अंदर केन्द्र में एक सघन क्रोड भी है. यूं तो इस क्रोड के बारे में विभि मत प्रचलित हैं परन्तु अधिक खगोलशास्त्री सहमत हैं कि यह श सिलिकेटो की बनी हो. यह माना जाता है क्रोड की बाहरी सतह का तापमान 24, अंश सेलिसयस होगा.

हम यह चर्चा पहले कर चुके हैं कि गुरु मुख्य अवयव हाइड्रोजन है. हाइड्रोजन एक परमाणु में एक प्रोटॉन होता है जि परिक्रमा एक इलेक्ट्रॉन करता है. हाइड्रो के दो परमाणु मिलकर एक अणु की र

सारणी-गुरु : कुछ आंकड़े

सूर्य से औसत दूरी	:	5.2 खगोलीय इकाई = 7.78 x 10^8 किलोमीटर
औसत कक्षीय वेग	:	13.1 किलोमीटर प्रति सेकंड
कक्षीय उत्केन्द्रता	:	0.048
सूर्य की प्रदक्षिणा का काल	:	11.86 वर्ष
धुरी पर घूर्णन काल	:	9 घंटा 55 मिनट
व्यास (ध्रुवीय)	:	135,200 किलोमीटर
व्यास (विषुवतीय)	:	143,800 किलोमीटर
व्यास (पृथ्वी = 1) : ध्रुवीय	:	10.60, विषुवतीय= 11.27
संहति	:	1.90 x10^{27} किलोग्राम
संहति (पृथ्वी = 1)	:	318
औसत घनत्व	:	1.3 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर
सतह गुरुत्व (पृथ्वी = 1)	:	2.64
पलायन वेग	:	61 किलोमीटर प्रति सेकंड
औसत तापमान (सतह)	:	—110 अंश सेलिसयस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं. गुरु के ऊपरी हिस्से में हाइड्रोजन अपने आण्विक रूप में उपस्थित रहती है. परन्तु गुरु के अन्दर गहराई में जहां दबाव बहुत अधिक होता है वहां इलेक्ट्रॉन परमाणु से मुक्त हो जाते हैं. इस प्रकार इलेक्ट्रॉनों तथा प्रोटॉनों का एक तरल पदार्थ जैसा मिश्रण तैयार हो जाता है. चूंकि अब इलेक्ट्रॉन प्रोटॉनों से असम्बद्ध हो गए हैं वे उन्मुक्त विचरण करने के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं. हम यह भी जानते हैं इलेक्ट्रॉन में एक ऋणावेश होता है तथा प्रोटॉनों में एक धनावेश. हम इस बात से भी परिचित हैं कि यदि कोई आवेश गति करता है तो उससे विद्युत धारा उत्पन्न होती है. गुरु के अन्दर ये उन्मुक्त विचरण करने वाले इलेक्ट्रॉन विद्युत धाराएं उत्पन्न करते हैं, अर्थात गुरु का वह भाग एक धातु की तरह विद्युत का सुचालक बन जाता है. इसी कारण प्रायः इस सघन भाग को **तरल धात्विक हाइड्रोजन** कहा जाता है. गुरु के बादलों के भीतर लगभग 20,000 किलोमीटर की गहराई में आण्विक हाइड्रोजन अधिक दबाव के कारण तरल धात्विक हाइड्रोजन में परिवर्तित हो जाती है. गुरु के तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र के होने का कारण यही विद्युत धाराएं हैं जो गुरु के घूर्णन के प्रभाव के अन्तर्गत इसे उत्पन्न करती है.

गुरु के चन्द्रमा तथा वलय

अमेरिकी वौयेजर-1 अंतरिक्ष अभियान द्वारा की गई सबसे विस्मयजनक खोज थी ग्रह के बहुत से नए चन्द्रमाओं (उपग्रहों) का पता लगाना तथा एक वलय की उपस्थिति बताना. यह वलय तीन अलग-अलग पट्टियों में विभक्त है. गुरु के ये वलय पृथ्वी से नहीं देखे जा सकते, किसी बड़ी से बड़ी दूरबीन से भी नहीं. शनि के वलयों की हीं तरह गुरु के वलयों का निर्माण भी अत्यंत छोटे-छोटे स्वतंत्र कणों द्वारा हुआ है.

माना जाता है कि इस वलय का जन्म विस्फोट द्वारा किसी ऐसे उपग्रह के बिखर जाने से हुआ होगा जो गुरु की सतह क़े बहुत समीप से उसकी परिक्रमा कर रहा था. तीव्र ज्वारीय बलों (टाइडल फोर्सेज) के कारण वह विखंडित हुआ.

गैलीलियो के समय में गुरु के केवल चार ही चन्द्रमा ज्ञात थे. वौयेजर अभियान के भेजे जाने से पूर्व गुरु.के ज्ञात चन्द्रमाओं की संख्या 13 हो गई थी, आज इन अभियानों द्वारा की गई नई खोजों के फलस्वरूप यह संख्या बढ़कर 16 हो गई है. गुरु के उपग्रहों की कुछ विस्तार से चर्चा हम कभी और करेंगे. □

फार्म 4

'आविष्कार' का स्वामित्व संबंधी विवरण

(नियम 8 देखिए)

1.	प्रकाशन का स्थान	...	20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्स्टेन्शन, नई दिल्ली-110048
2.	प्रकाशन अवधि	...	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	...	डी०एन० भटनागर
	राष्ट्रीयता	...	भारतीय
	पता	...	नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्स्टेन्शन, नई दिल्ली-110048
4.	प्रकाशक का नाम, राष्ट्रीयता, पता	...	जैसा कालम 3 में दिया है
5.	सम्पादक का नाम, राष्ट्रीयता, पता	...	जैसा कालम 3 में दिया है
6.	व्यक्ति विशेष का नाम व पता जो पत्रिका का स्वामी और साझेदार हो और जो पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक का हिस्सेदार हो.		नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्स्टेन्शन, नई दिल्ली-110048

डी०एन० भटनागर एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि उक्त विवरण मेरी जानकारी तथा विश्वास में पूर्णतया सत्य है.

हस्ताक्षर (डी०एन० भटनागर)
प्रकाशक

दिनांक : 25-2-1991

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सस्ता इन्टरकॉम जिसे आप भी बना सकते हैं

इंटरकाम का परिपथ

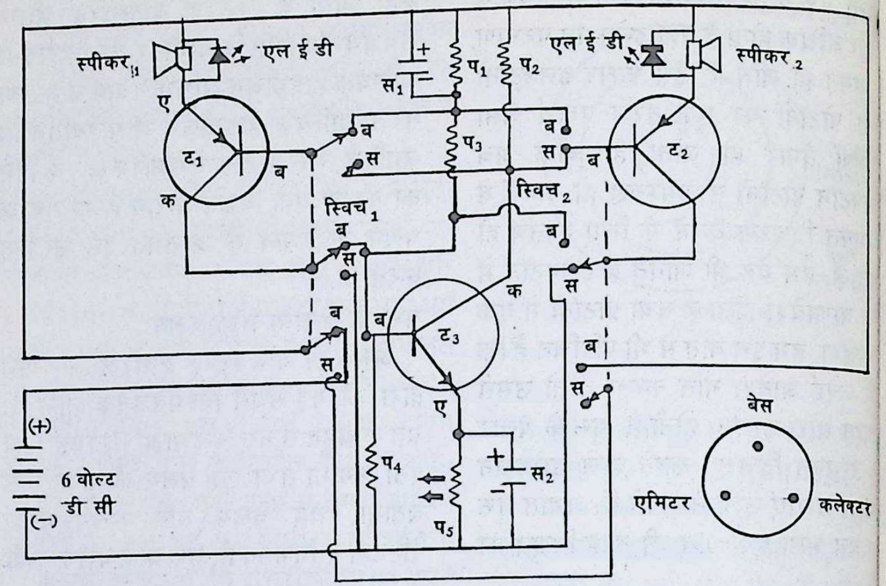

□ मैं एक ऐसे इन्टरकॉम का परिपथ भेज रहा हूं जिसे मैंने सफलतापूर्वक बना कर देखा है और जो अच्छा काम करता है. इसकी आवाज साफ और तेज है. इसे बनाने में मेरे 45 से 50 रुपए खर्च हुए. इसका विवरण नीचे प्रस्तुत है :

परिपथ में तीन ट्रांजिस्टर लगे हैं. इसमें ट$_1$ और ट$_2$ पी एन पी ट्रांजिस्टर हैं. ट$_3$ एन पी एन ट्रांजिस्टर है. किसी भी एक स्पीकर में गई आवाज ट$_1$ एवं ट$_2$ से प्रवर्धित (एम्प्लिफाई) होकर ट$_3$ से निकलकर दूसरे स्पीकर में साफ सुनाई देती है. इसमें तीन पोल दो थ्रो वाले दो स्विच लगे हैं जो बोलने व सुनने के लिए हैं. अगर आपको स्पीकर-1 से स्पीकर-2 को कुछ बोलना है तो आप स्पीकर-1 के स्विच को 'ब' एवं स्पीकर-2 के स्विच को 'स' की तरफ कर दीजिए. अब यदि आपको स्पीकर-2 पर बोली जाने वाली बातें सुननी हैं तो आप स्पीकर-1 के स्विच को 'स' एवं स्पीकर-2 के स्विच को 'ब' की तरफ कर दीजिए. इसमें माइक्रोफोन का काम भी स्पीकर ही करते हैं.

आप इस परिपथ को किसी छोटी परिपथ प्लेट पर बनाकर अपने पास रख सकते हैं. आप केवल स्पीकर-1 को अपने पास रखें तथा पूरा उपकरण और स्पीकर-2 को आप जिससे बातचीत करना चाहते हैं उसके पास दो वायरों से जोड़कर रख दें. इस उपकरण को आप 6 वोल्ट डी सी से चला सकते हैं. इस इन्टरकॉम में सबसे बड़ा फायदा यह है कि आप जब इसमें बोलेगें या सुनेगें तभी बिजली खर्च होगी अन्यथा चालू होने पर भी बिजली खर्च नहीं होगी.

इसमें जब कोई स्थान-2 से स्थान-1 के लिए बोलेगा तो सुनने वाले की तरफ का लाल एल ई डी या बल्ब जल जाएगा जिससे यह पता चल जाएगा कि कोई बोल रहा है और आप अपनी तरफ का स्पीकर उठाकर सुनने लगेंगे. आप इसमें 8 ओह्म से लेकर 15 ओह्म तक जरूरत के अनुसार छोटे या बड़े स्पीकर लगा सकते हैं.

परिपथ में लगने वाले घटक :

ट्रांजिस्टर	ट$_1$ ट$_2$—ए सी 125, ट$_3$ एस जी–118;
प्रतिरोध	प$_1$—470 ओह्म
	प$_2$—150 ओह्म
	प$_3$—15 किलो ओह्म
	प$_4$—4.7 किलो ओह्म
	प$_5$—2.2 किलो ओह्म
कन्डेंसर	स$_1$ और स$_2$—30 माइक्रो फैरड/6 वोल्ट
स्पीकर	8 से 15 ओह्म के बीच
स्विच	तीन पोल दो थ्रो वाले एल ई डी—लाल या हरे
अन्य	प्लेट, तारें, रांगा, बैटरी आदि

गिरीश कुमार शुक्ला
175 गोपाल बाग, गंगा बाल मिल के समीप
जबलपुर (मध्य प्रदेश)-482002.

रिक्शा के पहिए में सुधार

□ मैं जब भी बाजार जाता हूं तो अक्सर रिक्शा चालकों को इसलिए लड़ते हुए देखता हूं कि उनके रिक्शा के पिछले पहियों में निकले हुए बोल्ट दूसरी रिक्शा के पिछले पहियों में घुस जाते हैं तथा ताने तोड़ देते हैं. कम चौड़ी सड़कों और भीड़-भाड़ वाले स्थान पर छोटे शहरों में, यह समस्या अधिक प्रबल है.

इस समस्या से निपटने के लिए यदि पहिए के डिजाइन में थोड़ा सा सुधार कर दिया जाए तो समस्या का अंत हो सकता है. इसके लिए पहिए के केन्द्र पर स्थित नलकी, जिसके दोनों सिरों पर ताने लगी होती हैं, ले अब इसके अन्दर, एक सिरे से लगभग दो तिहाई की दूरी पर इस्पात की एक चकती इस प्रकार फिट कर दी जाए कि उसके ऊपर बोल्ट कसा जा सके. इस चकती को नलकी के अन्दर बेल्ड करके जोड़ा जा सकता है. इस चकती में एक छेद होगा जिसमें से लोहे का डण्डा, जिस पर चेन चलती है, गुजारा जाता है. इस सिरे पर चूड़ियां बनी होती हैं. यदि इस डण्डे को चकती में से गुजार कर फिर बोल्ट कस दिया जाए तो बोल्ट नलकी के अन्दर समा जाएगा. इस प्रकार तानों के टूटने का खतरा समाप्त हो जाएगा.

पंकज अग्रवाल
सुपुत्र श्री सुभाष चन्द्र अग्रवाल
मोहल्ला-ठेर, सम्भल-244302.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नए किस्म के बल्ब : ज्यादा चलेंगे, कम बिजली खर्चेंगे

जापान की एक कंपनी मत्सुशिता इलेक्ट्रिक वर्क्स लि०, ने बिजली के ऐसे बल्बों का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन शुरू किया है जिनमें न तो तंतु (फिलामेंट) हैं और न ही इलेक्ट्रोड और काम देने की अवधि प्रचलित बल्बों के मुकाबले कहीं अधिक है. ऐसा एक बल्ब 40,000 घंटे तक काम दे सकता है, जबकि प्रचलित तापदीप्त बल्ब 1000-2000 घंटे तक और प्रतिदीप्ति बल्ब 5000-10,000 घंटे तक काम देता है. कंपनी के अनुसार इनके इस्तेमाल से बिजली की काफी बचत होगी.

बिना इलेक्ट्रोड वाली इस विसर्जन प्रणाली में एक दीप्त पिंड होता है, जिसमें पारे की वाष्प या कोई अन्य वाष्प भरी होती है. यही वाष्प पराबैंगनी किरणपुंज उत्पन्न करके इस पिंड को प्रदीप्त करती है. दीप्त पिंड को उच्च आवृत्ति का चुंबकीय क्षेत्र बाहर से उपलब्ध कराया जाता है.

वैसे तो इस प्रणाली के सिद्धांत की जानकारी वैज्ञानिकों को काफी पहले से थी लेकिन पहले इसके साथ विकिरण के शोर और ठीक से रोशनी न देने की खामियां थीं जिन्हें अब दूर कर लेने के बाद इनका व्यापारिक स्तर पर उत्पादन शुरू किया जा सका.

लंबी अवधि तक काम देने की विशेषता के कारण ये बल्ब ऐसे स्थानों के लिए खास तौर पर उपयोगी बताए जाते हैं जहां बल्ब बदलने में दिक्कत आती है. सड़क-प्रकाश व्यवस्था के अलावा ये सुरक्षा संबंधी कार्यों में ऊंची इमारतों, मीनारों आदि के पर लगे संकेतकों के रूप में और पानी के अंदर इस्तेमाल होने वाली प्रकाश-व्यवस्था के लिए उपयोगी हो सकते हैं.

अब अतिसूक्ष्म जीव ऊर्जा उपलब्ध कराएंगे

आज पूरे विश्व में ऊर्जा-संकट की चर्चा आम हो गई है. पेट्रोलियम पर आधारित ऊर्जा स्रोत एक निश्चित मात्रा में ही हमारे पास उपलब्ध हैं. यह ज्ञान जब व्यवहारिक रूप में सामने आया तो ऐसे ऊर्जा स्रोतों की खोज आरंभ हुई जो असीमित और अप्रदूषणकारी हो. ऐसे स्रोतों को वैकल्पिक ऊर्जा का नाम दिया गया. इन्हीं में एक है—सौर ऊर्जा. लेकिन यह प्रौद्योगिकी अभी काफी महंगी है. सूर्य से बिजली प्राप्त करने के लिए आज सामान्य से लगभग 17 गुना अधिक खर्च आता है और सौर बिजलीघर बनाने के लिए एक सामान्य बिजलीघर की अपेक्षा तीन गुना अधिक भूमि की भी आवश्यकता होती है.

ऐसे में कुछ वैज्ञानिक अति सूक्ष्म जीवों से ऊर्जा प्राप्त करने लगे हैं. जापान के टोकियो विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त वैज्ञानिक प्रो० हाजिम ताकाहाशी ने बैक्टीरियम रोडोस्युडोमोनस की नस्ल को कच्चे मांड में मिलाकर हाइड्रोजन प्राप्त करने का एक तरीका खोज निकाला है. हाइड्रोजन को एक आदर्श ईंधन माना जाता है. यह स्वच्छ, प्रदूषण रहित तथा अधिक प्रभावी होता है. ताकाहाशी का विचार है कि जीवाणु हाइड्रोजन की खपत को काफी सस्ता बना सकते हैं. रोडोस्युडोमोनस जीवाणु जापान के चावल के खेतों में पाए जाते हैं.

रोडोस्युडोमोनस जीवाणुओं को पहले कच्चे मांड तथा पोषण-संपन्न जीवाणुओं से भरे हौज में, और फिर सूर्य के प्रकाश में रखा जाता है. फिर ये जीवाणु हाइड्रोजन उत्पन्न करने लगते हैं. एक बिन्दु पर आकर इस प्रक्रिया पर काबू पा लिया जाता है. ताकाहाशी और उनके सहकर्मी आजकल रोडोस्युडोमोनस की ऐसी नई नस्ल को खोजने में लगे हैं जो मांड की जगह बुरादे और चावल के तिनकों में पाए जाने वाले सेलुलोज को खाकर बढ़ सके. सेलुलोज को पाचक बनाने के लिए एक बाहरी जीन को गूंथ कर जीवाणु में बदलना पड़ेगा. यह जीन सेलुलोज के उत्पादन को नियंत्रित करेगा. एक बार यह काम सफल हो जाने पर दुनिया भर में अप्रदूषित तथा काफी सस्ती ऊर्जा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सकेगी.

सैनिक तैयारियां बनाम ढाई लाख बच्चों की मौत

चालीस पैसे से भी कम कीमत में मिलने वाली विटामिन 'ए' की गोली के अभाव में विश्व में प्रतिवर्ष ढाई लाख बच्चे आज भी अंधे हो जाते हैं. ढाई लाख बच्चे हर हफ्ते बहुत साधारण बीमारियों से मर जाते हैं और हर तीसरा बच्चा कुपोषण के कारण अविकसित या बौना रह जाता है. यह जानकारी यूनिसेफ ने अपनी ताजी रिर्पोट में दी है. 'दुनिया के बच्चों की स्थिति 1991 शीर्षक' इस रिर्पोट में कहा गया है कि सन् 2000 के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं उन पर होने वाले खर्चे का अनुमान प्रतिवर्ष लगभग केवल 20 अरब डालर है. यह राशि आज दुनिया में केवल दस दिन की सैनिक तैयारियों पर खर्च की जा रही है.

यूनिसेफ के अनुसार असली विकास का लक्ष्य और अर्थ है कि जो सबसे ज्यादा गरीब हैं, उनकी सामर्थ्य बढ़ाई जाए, उनकी शिक्षा और कौशल में उन्नति हो, अपने जीवन को स्वयं नियंत्रित करने की उनकी क्षमता बढ़े और उन्हें अपने श्रम का उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने के अवसर मिले. अभी औद्योगिक रूप से विकसित देशों से जो सहायता तीसरी दुनिया के देशों को मिलती है उसका सिर्फ तीन प्रतिशत ही प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा तथा ग्रामीण पेयजल आपूर्ति व्यवस्था जैसी बुनियादी आवश्यकताओं पर खर्च किया जाता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्रिम फेरोमोन से बढ़ेगा शहद उत्पादन

मजदूर मधुमक्खियां फूलों से रस चूसने के बाद एक विशेष फेरोमोन छोड़ती हैं जिसकी गंध छत्ते में बैठे मजदूर मधुमक्खियों के दूसरे जत्थे को फूलों की ओर आकर्षित करती हैं. अलग-अलग जाति की मधुमक्खियां फेरोमोन भी अलग-अलग प्रकार का उत्पन्न करती हैं. अब महाराष्ट्र एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन आफ साइंस (मैक्स) और केंद्रीय मधुमक्खी अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान, पुणे के वैज्ञानिकों ने भारतीय मधुमक्खी-एपिस इंडिका द्वारा उत्पन्न प्राकृतिक फेरोमोन जैसा कृत्रिम फेरोमोन विकसित किया है, जो मधुमक्खियों को फूलों की ओर आकर्षित करने का काम करेगा. मधुमक्खियों को जितना ज्यादा रस मिलेगा शहद उसी अनुपात में जमा होगा. इस प्रकार यह कृत्रिम फेरोमोन शहद-उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण साबित हो सकता है.

मजदूर मधुमक्खियों को वापस बुलाने के लिए रानी मधुमक्खी एक फेरोमोन छोड़ती है. अब मैक्स के वैज्ञानिको ने इसकी भी 'नकल' तैयार कर ली है, जो काफी उपयोगी साबित हो सकती है. अगर कभी रानी मधुमक्खी की मृत्यु हो जाए तो फेरोमोन की गंध न मिलने पर मजदूर मधुमक्खियां छत्ते में वापस न लौट कर भटक जाती हैं. मैक्स के वैज्ञानिकों ने एक प्रयोग में रानी मक्खी की जगह कृत्रिम फेरोमोन से विलेपित प्लास्टिक की एक गोली बिठा दी. वैज्ञानिकों ने पाया कि कृत्रिम फेरोमोन भी मजदूर मधुमक्खियों को छत्ते में वापस बुलाने में सफल रहा और शहद बनाने का काम चलता रहा.

अब ये वैज्ञानिक एक तीसरे फेरोमोन के विकास में जुटे हैं जो मधुमक्खियों द्वारा खतरे की भनक लगने पर छोड़े जाने वाले प्राकृतिक फेरोमोन की नकल होगा. यह कृत्रिम फेरोमोन मधुमक्खियों को खतरे वाली जगह से दूर रखने में सहायक होगा.

एन आर डी सी के उप-प्रबंधक को एस आइ एस फेलोशिप

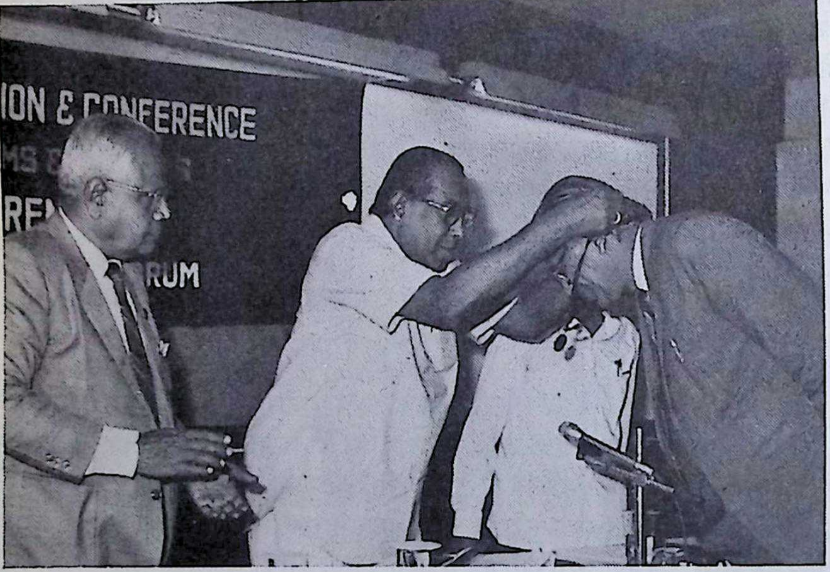

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन के उप-प्रबंधक (सूचना विज्ञान) श्री आई० आर० कुमार को सोसायटी फार इन्फरमेशन साइंस की फेलोशिप प्रदान की गई.

सोसायटी फार इन्फार्मेशन साइंस (एस आइ एस) ने नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन के उप-प्रबंधक (सूचना विज्ञान) श्री आई० आर० कुमार को फेलोशिप से सम्मानित किया है. यह पहला अवसर है जब देश के सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम के किसी निगमित प्रबंधक को इस प्रतिष्ठित पुरस्कार के लिए चुना गया.

यह फेलोशिप सूचना विज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए दी जाती है. सोसायटी फॉर इन्फार्मेशन साइंस के 17 जनवरी, 1991 को क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, त्रिवेन्द्रम में आयोजित 10वें वार्षिक सम्मेलन में श्री कुमार को एस आइ एस फेलोशिप के अंतर्गत एक पदक व सम्मान-पत्र प्रदान किया गया.

मौसम का पूर्वानुमान लगाइए अब व्हेल की मदद से

पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर जलवायु और मौसम की विविधता में समुद्र काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है. समुद्र का जल कई कारणों से गतिशील रहता है. समुद्री धाराएं और ज्वारभाटा आदि जल की गतिशीलता की ही देन हैं. ठंडी गर्म तेज हवाओं तथा तूफानों का कारण भी काफी हद तक समुद्र के ताप पर निर्भर करता है. सागर की सतह का तापक्रम तो आसानी से ज्ञात किया जा सकता है, लेकिन सतह के नीचे का तापमान ज्ञात करना कठिन कार्य है.

मौसम के पूर्वानुमान के लिए 'ओरेगन एस्टेट विश्वविद्यालय' के वैज्ञानिक ब्रूस मेट ने एक अनोखी विधि खोज निकाली है. ब्रूस मेट ने विभिन्न प्रकार की व्हेलों के शरीर पर ऐसे ट्रांसमीटर लगाए हैं, जिनसे समुद्र की विभिन्न गहराइयों पर तापक्रम की सूचना मिल सकती है. व्हेल की खास बात यह होती है कि वह जल्दी-जल्दी पानी की सतह पर आधे-पौने मील तक की गहराई तक बड़ी आसानी से गोते लगा सकती है तथा काफी कम तापमान भी बरदाश्त कर लेती है. ट्रांसमीटर से व्हेल द्वारा लगाए गए गोतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या और गहराई की सूचना मिलती रहती है. फिर इस सूचना को कृत्रिम उपग्रह के जरिए प्रयोगशाला तक पहुंचाया जाता है जिसके आधार पर मौसम का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है. मौसम के पूर्वानुमान से आने वाले खतरों की सूचना पहले ही मिल जाती है. अगर ब्रूस मेट का यह प्रयोग उनकी योजना के अनुसार ठीक-ठीक चलता रहा तो आने वाले दिनों में मौसम की भविष्यवाणी में व्हेल की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो जाएगी.

रक्त कैंसर के जिम्मेदार जीन की पहचान

कुछ ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने एक ऐसे जीन की पहचान की है जो एक विशेष प्रकार के रक्त कैंसर, ल्यूकीमिया, के लिए जिम्मेदार है. रक्त कैंसर में किसी एक प्रकार की श्वेत रक्त कोशिकाओं का जरूरत से ज्यादा अनियंत्रित ढंग से उत्पादन होने लगता है. इससे दूसरे प्रकार की रक्त कोशिकाओं का उत्पादन प्रभावित होता है और रक्त का संतुलन गड़बड़ा जाता है. ब्रिटेन के इम्पीरियल कैंसर रिसर्च फंड के अनुसंधानकर्ताओं ने अब 'आर ए आर उल्फा' नामक एक ऐसे जीन की पहचान की है. जिसकी 'प्रोमाइलो कसाइटिक' नामक रक्त कैंसर में सक्रिय भूमिका होती है.

इस प्रकार के रक्त कैंसर का असर अपरिपक्व अस्थि-मज्जा कोशिकाओं पर पड़ता है. ब्रिटेन में इस तरह के कैंसर के प्रत्येक साल औसतन 150 व्यक्ति शिकार हो जाते हैं और इसका इलाज भी काफी कठिन है. इन जीन का काम रक्त और अस्थि-मज्जा को सामान्य स्थिति में रखना है.

इस अनुसंधान दल के एक सदस्य डा० इलन सोलोमन इस खोज को काफी महत्वपूर्ण मानते हैं. उनका कहना है कि यह बात पहली बार तय हो पाई है कि 'आर एफ आर उल्फा' जीन और इस तरह के रक्त कैंसर में क्या संबंध है?

रक्त कैंसर पर हुए इस अनुसंधान से उसके इलाज में क्या सहायता मिल सकती है, वैज्ञानिक इस खोज में लगे हैं. आशा है कि 'प्रोमइला साइटिक' के इलाज में प्रगति हो सकेगी. अभी तक इसका इलाज कैंसर में सबसे ज्यादा मुश्किल है.

प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, पेटेंट और सूचना प्रणालियों के प्रबंध पर प्रशिक्षण कार्यक्रम

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन ने विकास आयुक्त, लघु स्तर उद्योग, उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार के लिए पटना में 29 से 31 जनवरी, 1991 के दौरान प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, पेटेंट और सूचना प्रणालियों पर प्रथम प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया. इसका मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षुओं को अपने ही देश में विकसित प्रौद्योगिकियों की नवीनतम जानकारियों तथा प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के सैद्धांतिक व व्यावहारिक पक्षों और उसके प्रबंध से अवगत कराना था.

यह कार्यक्रम विशेष रूप से चार राज्यों बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा के जिला उद्योग केंद्र के पदाधिकारियों के लिए आयोजित किया गया था किन्तु इसमें केवल बिहार व पश्चिम बंगाल के प्रतिनिधि ही भाग ले पाए.

प्रशिक्षण कार्यक्रम में कुछ विशेष विषयों पर चर्चा की गई और प्रशिक्षुओं को कुछ चुनिंदा विषयों पर दृश्य-श्रव्य कार्यक्रम दिखाए गए. इसके अलावा एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया और प्रशिक्षुओं को एक स्थानीय कंपनी का दौरा कराया गया जो—एन आर डी सी द्वारा हस्तांतरित—देश में ही विकसित प्रौद्योगिकी का उपयोग कर रही है.

यह तीन दिवसीय कार्यक्रम 31 जनवरी, 1991 को समाप्त हुआ. इसी दिन बिहार राज्य के लघु उद्योग मंत्री श्री बीरेन्द्र कुमार सिंह ने इस अवसर पर आयोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन किया.

प्रौद्योगिकी हस्तांतरण पर कार्यक्रम.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोषण के लिए रोटी और चावल ही नहीं दाल भी जरूरी

□ डा० वाई० पी० गुप्ता

□ इस दुनिया में जीने के लिए भोजन चाहिए. ऐसा भोजन जो हमें स्वस्थ रखे. विश्व के विभिन्न भागों में लोग जीवित रहने के लिए भोजन जुटाने में लगे हैं. अमेरिका, कनाडा और पश्चिम यूरोपीय देशों को छोड़कर दुनिया की आधी से ज्यादा आबादी अज्ञानता, गरीबी, कुपोषण और रोगों से जकड़ी हुई है. किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व और समृद्धि कृषि और सुपोषण पर निर्भर करती है. लोग कितना और किस प्रकार का भोजन करते हैं और उनका जीवन स्तर कितना ऊंचा और नीचा है, यह कृषि उपज पर निर्भर करता है.

अपर्याप्त भोजन को कुपोषण कहा जाता है. लेकिन पर्याप्त भोजन मिलते रहने पर भी कई तरह के रोग हो सकते हैं. इसलिए भोजन का मिलना ही काफी नहीं. जरूरी बात यह भी है कि भोजन में जिन तत्वों की हमें आवश्यकता है वे नियमित रूप से मिलते रहें. उदाहरण के लिए भरपेट भोजन मिलने के बावजूद प्रोटीन की कमी हो सकती है. खून की कमी संबंधी रोग (रक्ताभाव) हो सकता है. विशेषतः माताओं और छोटे बच्चों को. इसके अलावा विटामिन 'ए' और 'बी' की कमी भी हो सकती है, जो कई बीमारियों को जन्म दे सकती है.

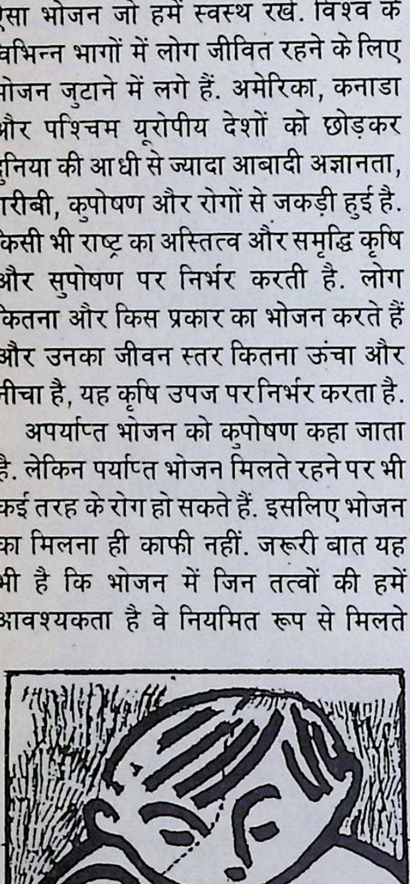

भोजन तीन काम करता है. पहला शारीरिक अर्थात् शक्ति देता है. जब भोजन पुष्टकर हो, उसमें चिकनाई, विटामिन और खनिज भी हों तो वह हमारी क्षतिग्रस्त कोशिकाओं और तन्तुओं को ठीक-ठाक करता है.

आप भरपेट भोजन करने के बाद भी भूखे हो सकते हैं—यह छुपी भूख है कुपोषण. रोटी और चावल के साथ दाल भी खाई जाए तो प्रोटीन की जरूरत पूरी हो जाती है. पर गरीबों के मुंह से दाल भी छिनती जा रही है.

भोजन का दूसरा काम है सामाजिक संबंधों की स्थापना. परिवार के सदस्यों या मित्रों, संबंधियों और अतिथियों के साथ मिलकर बैठकर हम भोजन करते हैं और इससे आपसी रिश्ते मजबूत होते हैं.

भोजन का तीसरा काम मनोवैज्ञानिक है अर्थात् भोजन हमें प्रसन्नता देता है, सन्तुष्ट करता है और इससे आनन्द की प्राप्ति होती है.

कुपोषण की जड़ में गरीबी

कोई व्यक्ति कैसा भोजन करता है, यह कई बातों पर निर्भर करता है जैसे धर्म, देश, काल और भोजन के प्रति उसकी रुचि और अरुचि पर. खैर, कोई कुछ भी खाता है, जरूरी बात यह है कि भोजन में ऐसे सभी तत्व होने चाहिएं जो शरीर को शक्ति दें और क्षतिग्रस्त तन्तुओं की मरम्मत करते रहे.

इस उद्देश्य को सामने रखकर आहार विशेषज्ञों ने बताया है कि कब, किसे कैसा भोजन करना चाहिए. कोई कितना और कैसा भोजन करे यह इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति कितनी आयु का, कितना शारीरिक और मानसिक श्रम क है, किस देश का है और वहां की जल क्या है? उदाहरण के लिए यदि किसी देश स्त्रियां और पुरुष शारीरिक श्रम अ करते हैं तो उन्हें ऐसे भोजन की आवश्यक अधिक है, जिसमें कैलोरी अधिक हो. शारीरिक श्रम करने वालों को कम कैल वाला भोजन चाहिए. भोजन कितनी श प्रदान करता है, यह कैलोरी के रूप में जाता है.

अंतरराष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसं संस्थान (वाशिंगटन) अमेरिका द्वारा गए एक अनुसंधान के अनुसार एक औ भारतीय को उसके दैनिक भोजन में मुश्कि से 1900 कैलोरी मिलती है. करोड़ों लोगों इतनी कैलोरी वाला भोजन भी नहीं पाता, जबकि न्यूनतम आवश्यकता 2 कैलोरी है. अमेरिका और पश्चिम यूरो देशों में एक औसत व्यक्ति के भोजन 3000 कैलोरी होती है. इस प्रकार भार भोजन अपर्याप्त है और इसका कुप्र स्वास्थ्य पर पड़ता है.

भारतीय सुपोषण सलाहकार समिति बताया कि स्वस्थ रहने के लिए जो सन्तु भोजन किया जाए, उसमें क्या होना चाहि किन्तु जिसे सन्तुलित भोजन कहा जात वह बहुत महंगा है. इसलिए अधिसंख्य असंतुलित भोजन खाकर ही किसी तरह रहे हैं. यानी कुपोषण का सबसे बड़ा का गरीबी है.

भारत में अधिसंख्य लोग शाकाहारी उनका मुख्य भोजन अनाज और दालें हैं. प्रोटीन और कैलोरी के मुख्य स्रोत हैं. सर्वेक्षण से पता चला है कि विकास देशों में डेढ़ से दो अरब लोग अनाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुज़ारा करते हैं. आधी दुनिया का मुख्य भोजन चावल है. चावल से एशियाई देशों के लोगों को उनकी जरूरत की 80 प्रतिशत कैलोरी मिलती है. दुनिया में गेहूं का नंबर दूसरा है. मक्के का उपयोग केन्द्रीय और दक्षिण अमेरिका में अधिक हैं.

संसार की अधिकतर जनसंख्या के लिए अनाज शक्ति का मुख्य स्रोत है. इसमें विटामिन 'ए', 'सी' और कैल्शियम को छोड़कर भोजन के अधिकांश तत्व विद्यमान हैं. उल्लेखनीय है कि अधिकतर खनिज लोहा, फास्फोरस और विटामिन बी काम्पलेक्स, चोकर या छाछ में पाए जाते हैं. यदि अनाज को तेजी से चलने वाली चक्कियों में पीसा जाए तो इसमें से ज्यादातर तत्व नष्ट हो जाते हैं. जनता के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए विकसित देशों में अनाजों और रोटी में बी जाति के विटामिन और कैल्शियम एवं लोहा जैसे खनिज मिलाए जाते हैं.

दालें

दालें प्रोटीन का एक उत्तम स्रोत हैं. दालों में भरपूर प्रोटीन होता है और इससे हमारे देश में अधिसंख्य लोगों की विशेषतः गरीबी की खाद्य संबंधी आवश्यकता की पूर्ति होती है, क्योंकि वे महंगे खाद्य पदार्थ नहीं खरीद सकते. आमतौर पर दालों में 20-30 प्रतिशत प्रोटीन होता है, 60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट और विटामिन-बी तथा कैल्शियम व लोहा. दालों के कार्बोहाइड्रेट में उनके वजन के बराबर कैलोरी होती है.

भारत में खाद्य समस्या को अनाज व दालों की मांग और आपूर्ति को सामने रखकर देखा जाता है और फिर अब कुपोषण की समस्या के प्रति जागरुकता भी है. औसत भारतीय भोजन, कैलोरी की दृष्टि से न केवल अपर्याप्त है, बल्कि असन्तुलित भी है. हमारे देश के बहुत से लोग प्रोटीन की कमी से उत्पन्न कुपोषण के शिकार हैं. कुछ तो इसलिए कि भरपेट भोजन नहीं और जिन्हें मिलता भी है उनके भोजन में प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में नहीं होता. यह समस्या बड़े बच्चों में अधिक है. प्रोटीन और कैलोरी की कमी से उत्पन्न कुपोषण आज भारत की एक बहुत बड़ी समस्या है. भोजन के आवश्यक तत्वों

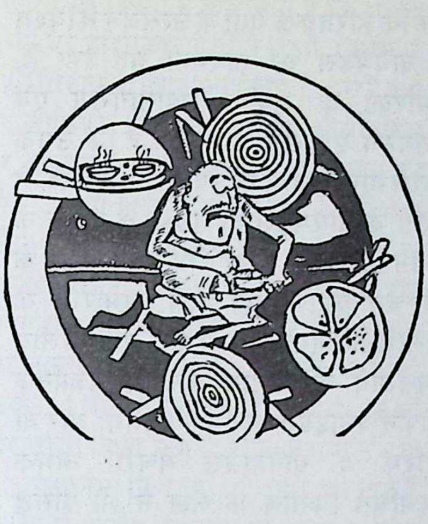

की पूर्ति अनाजों और दालों से ही होती है. लेकिन इनसे मिलने वाला प्रोटीन इतना बढ़िया नहीं होता जितना मांसाहारी भोजन का होता है.

अनाजों और दालों में प्रोटीन के तत्वों में लाइसीन और मैथिओनाइन जैसे अमीनो एसिडों का अभाव रहता है. इस कमी से कई गम्भीर रोग हो सकते हैं, विशेषकर बच्चों को. उनका विकास रुक जाता है. कभी-कभी अकाल मृत्यु तक हो जाती है.

भोजन में प्रोटीन की कमी कुपोषण का बहुत बड़ा कारण तो है ही, लेकिन पर्याप्त कैलोरी का अभाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं है. यह समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों में अधिक है, खासकर गर्भवती और दूध पिलाने वाली माताओं में. इसका प्रभाव राष्ट्र के भविष्य पर भी पड़ सकता है.

कहने का तात्पर्य यह है कि दालों से हम प्रोटीन की कमी दूर कर सकते हैं. अनाज और दालों को मिलाकर खाने से भोजन के कई आवश्यक तत्वों की पूर्ति हो जाती है. इस तरह के भोजन से कई तरह के अमीनो एसिड शरीर में पहुंचते हैं और प्रोटीन की गुणता बढ़ जाती है. दालों को वैज्ञानिक तरीकों से उगाकर हम अपने देश के ज्यादातर लोगों के भोजन के आवश्यक तत्वों की पूर्ति एक बड़ी सीमा तक कर सकते हैं. □

वायुमंडलीय कार्बन प्रदूषण और कार्बन टैक्स

□ यादवेन्द्र

□ जिन दिनों हमारे देश में राजनैतिक माहौल में बदलाव आ रहा था और नई सरकार बनाने की प्रक्रिया चल रही थी ठीक उसी समय स्विट्जरलैंड के वियना नगर में 137 देशों के वैज्ञानिक और राजनैतिक नेता दुनिया के वायुमंडल में आ रहे बदलाव पर चर्चा में जुटे थे. यह द्वितीय विश्व वायुमंडल सम्मेलन संयुक्त राष्ट्रसंघ के पर्यावरण कार्यक्रम और विश्व मौसम वैज्ञानिक संगठन के संयुक्त तत्वावधान में संपन्न हुआ.

प्रथम विश्व वायुमंडल सम्मेलन भी 1979 में वियना में ही आयोजित किया गया था और द्वितीय सम्मेलन का एक विशेष उद्देश्य पिछले दस वर्षों में किए गए कार्य का जायजा लेना भी था. नवम्बर 1988 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में यह निश्चय किया गया था कि वायुमंडलीय बदलाव के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत अध्ययन करने के लिए एक अन्तर-सरकारी समिति (इंटर गवर्नमेंट पैनेल) गठित की जाए. समिति के सामने जो उद्देश्य रखे गए वे इस प्रकार थे—वायुमंडल और वायुमंडलीय बदलाव के विज्ञान की अधुनातन जानकारी इकट्ठा करना, वायुमंडलीय बदलाव (जिसमें विश्वव्यापी तापमान वृद्धि भी शामिल है) के सामाजिक व आर्थिक प्रभावों का अध्ययन, प्रतिकूल वायुमंडलीय बदलाव को रोकने या धीमा करने की संभावित रणनीतियां बनाना, वायुमंडल पर अनुकूल प्रभाव डालने वाले अन्तरराष्ट्रीय कानूनी उपायों की पहचान करना व उन्हें मजबूती प्रदान करना और भविष्य में किसी संभावित अन्तरराष्ट्रीय वायुमंडलीय समझौते का आधार तैयार करना.

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्तर-सरकारी समिति ने तीन कार्यदल बनाए—प्रथम कार्यदल को वायुमंडलीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदलाव के वैज्ञानिक आकलन, दूसरे कार्यदल को वायुमंडलीय बदलाव के संभावित प्रभावों का अध्ययन तथा तीसरे कार्यदल को इस संकट से बचने के लिए उपयुक्त रणनीतियां बनाने का जिम्मा सौंपा गया. जैसा कार्यदलों के गठन के समय ही निश्चित किया गया था इन कार्यदलों ने जून 1990 में अपनी-अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी. लंदन में इन रिपोर्टों पर विस्तृत विचार-विमर्श भी हो चुका है. इसमें भारत का प्रतिनिधित्व श्रीमती मेनका गांधी ने किया था.

जेनेवा में संपन्न द्वितीय विश्व वायुमंडल सम्मेलन दो चरणों में संपन्न हुआ—पहले चरण में उपर्युक्त कार्यदलों की रिपोर्टों पर चर्चा हुई और 'विश्व वायुमंडल पर वैज्ञानिक सर्वसहमति का वक्तव्य' स्वीकार किया गया। इसमें आज उपलब्ध साधनों का हवाला देते हुए कहा गया है कि मानव जाति के पास वायुमंडलीय बदलाव को रोकने के उपाय उपलब्ध हैं. यह वक्तव्य मानता है कि विकसित देश अपने विकास की प्रक्रिया को खास नुकसान पहुंचाए बगैर इस शताब्दी के अंतिम वर्ष तक कार्बन उत्सर्जन को 20 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं. इसके बाद सदस्य देशों के मंत्रियों को हरितकक्ष (ग्रीन हाउस) के उत्सर्जन को कम करने के बारे में वैधानिक उपायों पर विचार-विमर्श करना था. इसमें, जैसी कि उम्मीद थी, बहुत खींचतान होती रही और अंततः कार्बन-उत्सर्जन कम करने के किसी निश्चित फैसले पर सम्मेलन पहुंचने में असमर्थ रहा. मंत्रियों के वक्तव्य में यह तो कहा गया कि हरितकक्ष गैसों के उत्सर्जन को प्रभावी ढंग से कम किया जाना चाहिए लेकिन न तो इसकी कोई बंधनकारी मात्रा निर्धारित की गई और न ही कोई कार्यक्रम रखा गया. स्पष्ट तौर पर कोई प्रतिबद्ध कार्यक्रम स्वीकार न कर पाने का मुख्य कारण यह रहा कि अमेरिका, सोवियत संघ और सऊदी अरब जैसे कुछ प्रभावशाली देशों ने कोई बंधनकारी कार्यक्रम स्वीकार करने से एकदम मना कर दिया.

अमेरिका तो शुरू से इस मुद्दे पर यही कहता रहा है कि ऐसे पक्के सबूत नहीं मिले हैं जिनसे यह अंतिम रूप से सिद्ध किया जा सके कि हरितकक्ष गैसों के उत्सर्जन से विश्व के वायुमंडल का तापमान बढ़ रहा है. अमेरिका के राष्ट्रीय महासागरीय एवं पर्यावरण प्रशासन का कहना है कि उसके टिरोस-एन श्रृंखला के उपग्रहों ने अंतरिक्ष से धरती के वायुमंडल का 1980 के दशक के दौरान परिमापन किया लेकिन ताप बढ़ने के निश्चित प्रमाण नहीं मिले. अमेरिका के कोलोराडो नगर में स्थित वायुमंडलीय अनुसंधान के राष्ट्रीय केन्द्र के वैज्ञानिक स्टीफन शनाइडन 'ग्लोबल वार्मिंग: आर वी इंटरिंग द ग्रीनहाउस सेंचुरी' नामक बहुचर्चित किताब के लेख ने भी प्रसिद्ध पत्रिका 'न्यू साइंटिस्ट' के 17 नवंबर 1990 के अंक में लिखा है कि अमेरिका में वायुमंडलीय तापमान बढ़ने के बारे में दो अतिवादी विचारधाराएं प्रचलित हैं-एक समूह यह मानता है कि तापमान इतना बढ़ जाएगा कि अकल्पनीय तबाही मचेगी और लाखों 'पर्यावरण शरणार्थी' अपना घरबार छोड़कर दर-दर भटकने को लाचार हो जाएंगे, वहीं दूसरा समूह यह मानता है कि तापमान या तो बढ़ नहीं रहा है या बढ़ भी रहा है तो इतनी धीमी गति से कि मानवजाति उससे आसानी से सामंजस्य बैठाने में सक्षम है, इसलिए चिंता की कोई बात नहीं है.

अमेरिका इन्हीं दो परस्पर विरोधी मान्यताओं की आड़ लेकर जेनेवा सम्मेलन में स्वीकृत मंत्रियों के वक्तव्य में अपनी किसी प्रतिबद्धता से बच गया. अमेरिकी प्रतिनिधिमंडल के प्रमुख जॉन नॉस ने कहा कि जिन देशों ने कार्बन उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लक्ष्य निर्धारित किए हैं, वे 'बहुत आदर्शवादी ढंग' से निर्धारित किए गए है और उन्हें प्राप्त कर पाने के बारे में अमेरिका को आशंका बनी हुई है. अमेरिकी पक्ष का इशारा यूरोपीय समुदाय के देशों की ओर था शायद—क्योंकि जेनेवा सम्मेलन शुरू होने से सप्ताह भर पहले ही (29 अक्तूबर '90 को चक्जमबर्ग में यूरोपीय समुदाय के पर्यावरण व ऊर्जा मंत्रियों के सम्मेलन में) इसने यह निश्चय किया था कि 2000 ई० में 1990 ई० के स्तर का कार्बन उत्सर्जन स्थिर रखा जाएगा.

यूरोपीय समुदाय यही लक्ष्य जेनेवा सम्मेलन के लिए भी मनवाना चाहता था परन्तु अमेरिका के अड़ियल रवैये को देखते हुए इस लक्ष्य को तूल न देना ही श्रेयस्कर समझा. बाद में यूरोपीय देशों के अनेक मंत्रियों ने यह स्वीकार किया कि यदि वे लक्ष्य निर्धारित करने पर अड़े रहते तो संभवतः अमेरिका आगामी बातचीत से अपने को अलग कर लेता. फरवरी 1991 में वाशिंगटन में वायुमंडलीय बदलाव को नियंत्रित करने के लिए एक अन्तरराष्ट्रीय समझौता करने की दिशा में विचार-विमर्श शुरू होना है और जून 1992 में ब्राजील में प्रस्तावित वायुमंडल सम्मेलन (संयुक्त राष्ट्रसंघ की पहल पर) में इस समझौते (यदि यह संभव हो पाया) को अंतिम रूप देने की औपचारिकताएं पूरी की जाएंगी.

इस बातचीत में अमेरिका को सक्रिय रूप से सम्मिलित किए रहना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि यह हरितकक्ष गैसों का विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता है. जहां तक यूरोपीय समुदाय का प्रश्न है, अमेरिका अकेले यूरोपीय समुदाय के सम्मिलित हरितकक्ष गैसों के उत्पादन से करीब डेढ़ गुना उत्पादन करता है. हरितकक्ष गैसों के दूसरे सबसे बड़े उत्पादक सोवियत संघ ने भी अपनी घरेलू प्राथमिकताओं का हवाला देते हुए किसी लक्ष्य को मानने से इन्कार कर दिया.

विकासशील देशों में ब्राजील, चीन और भारत जैसे देशों ने अपने वैसे ही तर्क प्रस्तुत किए जैसे ओजोन का उत्पादन बंद करने के समझौता अस्वीकार करने के बारे में दिए थे यानी इससे उनका औद्योगीकरण और सामाजिक स्तर नीचे गिरेगा, क्योंकि वैकल्पिक टेक्नोलाजी और पूंजी उनके पास नहीं है. इन विकासशील देशों का दूसरा तर्क यह था कि समझौते के अन्तर्गत इकतरफा ढंग से जंगलों के कटने पर रोक न लगाई जाए, क्योंकि विकास के वर्तमान ढांचे में जंगलों को कटने से रोकना संभव नहीं. वैज्ञानिकों के वक्तव्य को काट-छांट कर थोड़े और अप्रतिबद्ध ढंग से स्वीकार करने की मंत्रियों की मंडली की मंशा भांप कर विकासशील देशों ने मंत्रियों का वक्तव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ीकार किए जाने से कुछ पहले एक संगठन ...ना लिया—'छोटे द्वीप देशों का संगठन'. ...सकी पहल ट्रिनिडाड और टोबागो ने की ...र देखते-देखते दर्जन भर से ज्यादा देश ...सके झंडे तले आ गए. इस संगठन को ...ास्ट्रिया का समर्थन भी मिल गया.

इस संगठन को वायुमंडल में आते ...रिवर्तन, खासकर तापमान बढ़ने से सबसे ...ासन्न खतरा दिखाई दे रहा है और बढ़ते ...हासागर-तल के कारण अस्तित्व का संकट ...नके सामने है. वायुमंडलीय परिवर्तन के ...ारे में अन्तर-सरकारी समिति का मानना है ...क 2030 ई० तक 20 सेंटीमीटर और 2100 ...० तक 65 सेंटीमीटर की वृद्धि महासागरों ...तल में होगी. इसी कारण इस संगठन ने ...नेवा सम्मेलन के वक्तव्य में लक्ष्यबद्ध ...ार्यक्रम के न सम्मिलित किए जाने पर ...बसे ज्यादा रोष व्यक्त किया. बाद में ...गठन के प्रतिनिधियों ने कहा कि उन्होंने ...तना होने पर भी सम्मेलन का बहिष्कार ...सलिए नहीं किया क्योंकि उन्हें विकसित ...शों, मुख्यतः अमेरिका से वैकल्पिक उपाय ...ढ़ने के लिए पूंजी और प्रौद्योगिकी चाहिए. ...सीलिए इस संगठन की ओर से एक ऐसी ...धि (कोष) बनाने की मांग की गई जो ...कसित देशों के आर्थिक सहयोग से ...कासशील देशों को मुहैय्या कराने में मदद ...ने के उद्देश्य से बनी हो.

किसी भी देश में कार्बन उत्सर्जन की ...त्रा का आकलन करने के बारे में मतभेद ... अनेक पद्धतियों से यह आकलन किया ...ता रहा है. इससे अलग-अलग निष्कर्ष ...कलते हैं लेकिन सभी अध्ययनों से यह एक ...मान्य निष्कर्ष निकलता है कि अमेरिका ...युमंडल का प्रदूषण करने के मामले में ...ग्रणी है. इसीलिए इस खतरे का उन्मूलन ...रने की किसी भी कोशिश को अमेरिका को ...हर रखकर लागू करने का ख्याल ...ालीपुलाव होगा. स्वयंभू अमेरिका की ...्यावरण सुरक्षा एजेंसी का मानना है कि ...ुनिया की केवल 7 प्रतिशत आबादी वाला ...मेरिका वायुमंडल तापमान बढ़ाने के लिए ... प्रतिशत दोषी है जबकि भारत, चीन और ...ाजील तीनों मिलकर 15 प्रतिशत के लिए ...ी हैं. वाशिंगटन स्थित विश्व संसाधन संस्थान की रिपोर्ट में कहा गया है कि अकेले अमेरिका हरितकक्ष गैसों से बढ़ते प्रदूषण के 17 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार है. दूसरे क्रम पर सोवियत संघ 13 प्रतिशत. तीसरे क्रम पर ब्राजील 8.5 प्रतिशत और चौथे क्रम पर चीन 7.6 प्रतिशत है भारत पांचवें क्रम 4.6 प्रतिशत है. इस अध्ययन में 146 देशों के आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है और हरितकक्ष गैसों की श्रेणी में चार गैसों कार्बन डाइआक्साइड, मीथेन, क्लोरो फलोरो कार्बन-4 और क्लोरो फलोरो कार्बन-12 को सम्मिलित किया गया है. संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में किए गए अध्ययन बतलाते हैं कि वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि के लिए कार्बन डाइआक्साइड सबसे ज्यादा 54 प्रतिशत जिम्मेदार है. एक टन कार्बन (कोयले के रूप में) जलाने पर करीब चार टन कार्बन डाइआक्साइड वायुमंडल में फैल जाती है. इनका वर्गीकरण करने पर यह पता चलता है कि 40 प्रतिशत तापमान वृद्धि तो उद्योगों और कारों से निकलने वाले धुएं के कारण होती है और 14 प्रतिशत जंगलों में लगने वाली आग के कारण. इनके अलावा क्लोरो फलोरो कार्बन से तापमान वृद्धि का अनुपात 12 प्रतिशत है. अकेले अमेरिका में 9 करोड़ कारों में एयरकंडीशनर और 10 करोड़ घरों में फ्रिज लगे हुए हैं—इनसे आजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाली गैस 'क्लोरो फलोरो' कार्बन निकलती है जो पूरे विश्व में सबसे ज्यादा है. मीथेन गैस धान के खेतों में बैक्टीरिया की जैविक सक्रियता और तेल और गैस के कुंओं से प्राकृतिक गैस से निकलकर वायुमंडल में फैलते रहने के कारण मुख्य रूप से वातावरण को प्रदूषित करती रहती है. मीथेन की भी वायुमंडलीय तापमान वृद्धि में 24 प्रतिशत भूमिका है. इसी कारण सऊदी अरब, जो विश्व में तेल का सबसे बड़ा उत्पादक है, जेनेवा में किसी प्रतिबद्ध कार्यक्रम का विरोध करता रहा. नाइट्रस आक्साइड गैस की इस प्रक्रिया में छोटी (6 प्रतिशत) भूमिका है.

कई देशों ने अपनी जनता पर कार्बन टैक्स लगाने के प्रस्ताव किए हैं जिसके अनुसार ईंधन की कार्बनधारिता के अनुसार टैक्स लगाए जाएंगे. इससे ज्यादा कार्बनधारक ईंधनों का उपयोग कम किया जा सकेगा. उदाहरण के लिए जेनेवा सम्मेलन से थोड़ा पहले समर्थन व्यक्त करने के उद्देश्य से स्विटजरलैंड ने अपने नागरिकों पर कार्बन टैक्स लगाने का प्रस्ताव किया है. इस प्रस्ताव के अनुसार कोयले पर 42-105 प्रतिशत तक टैक्स लगाया जाएगा, जबकि पेट्रोल पर 15 प्रतिशत और प्राकृतिक गैस पर 20 प्रतिशत टैक्स लगाया जाएगा.

स्विट्जरलैंड को प्रतिवर्ष इस टैक्स से 150 करोड़ डालर की आमदनी होगी. परन्तु दिलचस्प तथ्य यह है कि इस टैक्स का वहां राजनैतिक रूप से विरोध इसलिए किया जा रहा है क्योंकि पहले से लबालब खजाने को और भर देना वहां मुनासिब नहीं समझा जा रहा है. नीदरलैंड में यह टैक्स लगा हुआ है जबकि जर्मनी और स्वीडन ऐसा टैक्स लगाने

घास-फूस और भूसी से चलने वाला स्टरलिंग इंजन

□ वीरेन्द्र कुमार विजय

□ साधारणतया जब भी हम किसी इंजन की बात करते हैं तो हमारा ध्यान पेट्रोल, डीजल, कोयले या बिजली से चलने वाले इंजनों की तरफ जाता है. यह जानकारी बहुत ही कम लोगों को है कि ऐसे इंजन भी होते हैं जिन्हें भूसी, घासफूस, लकड़ी के बुरादे या अन्य ईंधनों से चलाया जा सकता है. स्टरलिंग इंजन एक ऐसा ही इंजन है जो चावल की भूसी, लकड़ी के बुरादे या अन्य इस तरह के पदार्थों से चलाया जाता है. यह इंजन सिंचाई, बिजली पैदा करने, कृषि यंत्र को चलाने या अन्य ऐसे ही कार्यों में इस्तेमाल किया जा सकता है.

ऊर्जा के परम्परागत स्रोतों के महंगे होने, प्रदूषण करने तथा भविष्य में समाप्त हो जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बारे में सोच रहे है.

इस तरह के टैक्स की वकालत परिक्षणों से की जा रही है लेकिन विकासशील देशों में यह सीधे-सीधे अधिसंख्यक गरीबों के कंधे पर आ पड़ेगा जो ईंधन के रूप में कोयला इस्तेमाल करते हैं. इसीलिए टैक्स लगाने की यह प्रणाली परोक्ष रूप में गरीबी पर टैक्स लगाने जैसी है. हालांकि भारत में कुल ऊर्जा आपूर्ति का 20 प्रतिशत ही कोयले से आता है लेकिन पोलैंड 82 प्रतिशत, चीन 79 प्रतिशत और आस्ट्रेलिया 43 प्रतिशत जैसे देशों के नागरिकों पर तो टैक्स का पहाड़ ही आ पड़ेगा. इसलिए वायुमंडलीय बदलाव से लड़ने के लिए किसी ऐसे हथियार की खोज करनी होगी जिसका विकासशील देशों से उद्भव हो. वरना विकसित देश सबसे ज्यादा प्रदूषण पैदा करके सबसे कम कीमतें चुकाने की नीति दुनिया पर थोपते रहेंगे. □

की सम्भावना के कारण कृषि अवशेषों व व्यर्थ पदार्थों आदि से ऊर्जा प्राप्त करने की आवश्यकता बढ़ती जा रही है. भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि कार्यों के लिए बिजली तथा डीजल दोनों ऊर्जा संसाधनों की कमी लगातार बनी रहती है. बिजली सभी गांवों में पहुंचाना संभव नहीं है तथा डीजल के लिए हमें बहुत बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है. ऐसी स्थिति में कृषि क्षेत्र में ऊर्जा प्राप्त करने के लिए स्टरलिंग इंजन एक बहुत अच्छा साधन है. इसे चलाने के लिए किसानों को ईंधन पर पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ेगा, क्योंकि यह किसानों के पास बहुतायत से पाए जाने वाले कृषि अवशेषों से चलाया जा सकता है.

स्टरलिंग इंजन का इतिहास

स्काटलैण्ड निवासी राबर्ट स्टरलिंग पहला व्यक्ति था जिसने डीजल इंजन के आविष्कार के लगभग 80 वर्ष पहले सन् 1816 ई० में स्टरलिंग इंजन का सिद्धांत प्रतिपादित किया. एक या इससे भी कम अश्व-शक्ति के ये इंजन घरेलू कार्यों में उपयोग किए जाते थे. इन्हें किरासीन बर्नर से चलाया जाता था जिनकी दक्षता बहुत कम थी. बाद में हालैंड की फिलिप्स कंपनी ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया तथा बड़े आकार के इंजनों का विकास किया जो आ भी मौजूद हैं. परन्तु अपेक्षाकृत अधि कुशल अन्तर्दहन (इन्टरनल कम्बस्च इंजनों एवं विद्युत मशीनों के आविर्भाव कारण स्टरलिंग इंजन विगत वर्षों में अप उचित स्थान नहीं पा सके. वर्तमान में इ इंजन को पुर्नरुज्जीवित करने का श्रेय ऊ संकट तथा पर्यावरण प्रदूषण को है जि नए वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों को स्वीकृति दायरे में ला दिया है. आजकल अमेरि रूस और इंग्लैंड जैसे विकसित देशों में इ इंजन को और अधिक विकसित करने लिए अनुसंधान किए जा रहे हैं. भारत अभी यह कार्य शैशवावस्था में ही है.

इंजन की कार्य विधि

स्टरलिंग इंजन में तापीय ऊर्जा यांत्रि ऊर्जा में बदलती है. इससे दो सिरों के बी तापीय अन्तर होने के कारण बंद द्रव फैल एवं सिकुड़ता है जिससे इसके पिस्टन आगे पीछे गति मिलती है. यह पिस्टन ए क्रैंक शाफ्ट से जुड़ा होता है जो फ्लाई व्ही को घुमाता है. इसका सिद्धांत स्टरलि

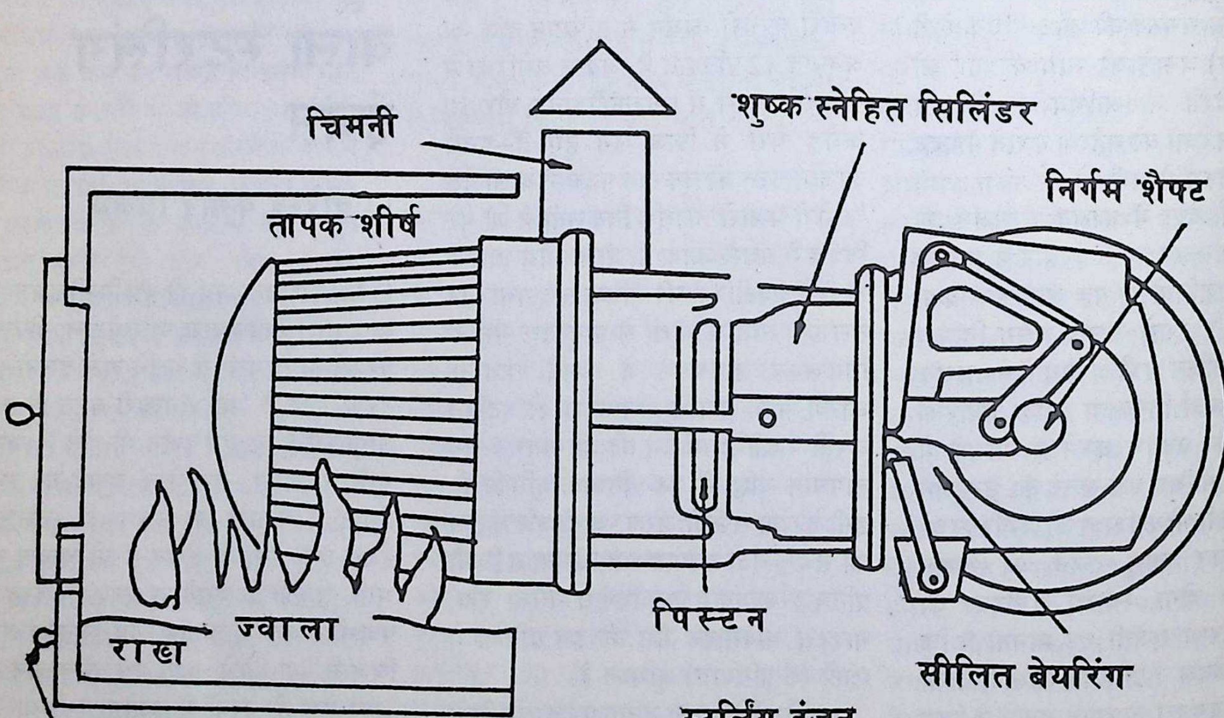

स्टर्लिंग इंजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साइकिल पर आधारित है जिसमें चार क्रियाएं होती हैं :

1. समतापीय फैलाव (आइसोथर्मल एक्सपेंशन).
2. सिकुड़न (कम्प्रेशन).
3. सम आयतनीय ऊष्मा प्राप्ति (आइसोकोरिक हीट गेन).
4. सम आयतनीय ऊष्मा त्याग (आइसोकोरिक हीट रिजेक्शन).

उपरोक्त क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए स्टरलिंग इंजन में निम्नलिखित भाग होते हैं :

1. भट्टी (कम्बस्टर) जो कार्यकारी द्रव को गरम करती है.
2. इंजन हीटर हेड.
3. एक शीतलन पद्धति (कूलिंग सिस्टम) जो द्रव को शीतल करने का कार्य करती है.
4. एक कम्प्रेसर जो द्रव का दबाव बनाए रखता है.
5. एक यंत्र जिससे आगे पीछे की गति (रेसिप्रोकेटिंग मोशन) को घूर्णन गति (रोटरी मोशन) मिलती है.
6. इंजन की शक्ति को काम में लेने का साधन (पावर यूटिलाइजेशन सिस्टम).

इस इंजन में जो कार्यकारी (वर्किंग) द्रव काम में लिया जाता है उसमें ताप संचालन क्षमता, विशिष्ट (स्पेसिफिक) ऊष्मा और ऊष्मा स्थानांतरण क्षमता अधिकतम होती है जबकि श्यानता (विस्कोसिटी) एवं घनत्व कम होते हैं. वायु, हीलियम और हाइड्रोजन आदि कार्यकारी द्रव के रूप में काम में लिए जाते हैं. साधारण तथा कम गति के उपयोग के लिए वायु काम में लाई जाती है.

भारत में स्टरलिंग इंजन का उत्पादन एक निजी कम्पनी स्टरलिंग डायनामिक्स प्रा० लि०, मद्रास ने शुरू किया है. इसके द्वारा बनाए गए 5 अश्वशक्ति के इंजन 600 घूर्णन प्रति मिनट देते हैं. यह लकड़ी, बुरादें, भूसी, घासफूस तथा अन्य कृषि अवशेषों से चलाया जाता है.

इसके दो मुख्य भाग हैं. एक भट्टी तथा दूसरा इंजन. भट्टी इंजन के हीटर हेड को गर्म करने के काम आती है. हीटर हेड का तापमान 650 डिग्री सेल्सियस पहुंचने पर इंजन काम करना शुरू कर देता है. भट्टी के ऊपर एक हौपर लगा रहता है जिससे निश्चित मात्रा में ईंधन (बुरादा, भूसी आदि) गिरता रहता है. भट्टी को शुरू करने के लिए शुरुआत में लकड़ी के टुकड़े या घास-फूस जलाया जाता है. इस भट्टी को हीटर हेड पर खिसकाया या अलग किया जा सकता है. इंजन में दो सिरे (गर्म व ठंडा) होते हैं. इनके बीच में कार्यकारी द्रव तथा एक डिस्प्लेसर रहता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है. इंजन की शीतलन पद्धति ठंडे सिरे की वायु को ठण्डी करने के काम आती है तथा भट्टी गर्म सिरे को गर्म करने के. जब हीटर हेड को गर्म किया जाता है तो कार्यकारी द्रव ठंडे सिरे की तरफ बैठता है. ठंडे सिरे पर द्रव फैलकर (वायु) ठण्डी होती है तथा सिकुड़ती है परन्तु रीजेनेरेटर की वजह से पुनः गर्म सिरे की तरफ फैलती है. रीजेनेरेटर का काम जब कार्यकारी द्रव ठण्डे सिरे की तरफ हो ऊष्मा को शोषित करना तथा जब कार्यकारी द्रव गरम सिरे की तरफ हो ऊष्मा को छोड़ना होता है जिससे कार्य की दक्षता में वृद्धि होती है. जब हवा गरम सिरे पर फैलती है तो कार्य होता है और पिस्टन को ठण्डे सिरे की तरफ धकेला जाता है. रीजेनेरेटर के कारण यह वापस गरम सिरे की तरफ आ जाता है. इस प्रकार इंजन चलता रहता है. इंजन को बंद करने के लिए पहले इस पर से भार (लोड) हटाया जाता है फिर भट्टी बंद की जाती है जिससे इंजन कार्य करना बंद कर देता है.

यह इंजन पम्प सेट चलाने, बिजली पैदा करने आदि जैसे कामों के लिए उपयुक्त है. खेती से संबंधित अधिकतर कार्य इस इंजन की मदद से किए जा सकते हैं. इसे अन्य ईंधनों पर चलाने, इसका वजन कम करने और सुवाहय (पोर्टेबल) बनाने पर अनुसंधान चल रहे हैं. भारत सरकार का गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोत विभाग इसे खरीदने के लिए और अनुसंधान के लिए सहायता देता है. आसन्न ऊर्जा संकट की छाया में निकट भविष्य में इस इंजन के लोकप्रिय होने के आसार बढ़ रहे हैं. □

प्रदूषण-रहित कीट नियंत्रण

□ डा० रेनू सिंघल

□ पिछले दो तीन दशकों में मानव पर्यावरण की महत्ता व उसे प्रदूषित किए जाने के घातक परिणामों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ है. इस दिशा में हमारा ज्ञान, विज्ञान, ध्यान व समाधान सभी कुछ अभी प्रारंभिक अवस्था में ही हैं. 'पर्यावरण प्रदूषण-रहित कीट नियंत्रण'—एक ऐसा विषय है जिसका सम्बन्ध जितना हमारे विभिन्न विषय-विशेषज्ञों और अनुसंधानकर्ताओं से है, उतना ही जनसाधारण, विशेषकर किसानों और स्वास्थ्यसेवियों, से है.

अतः इस क्षेत्र में हुए अनुसंधान के निष्कर्षों को हिन्दी में प्रस्तुत करना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है, और एक हद तक अनिवार्य भी. इस दृष्टि से राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पुणे के कीट-विज्ञान विभाग द्वारा 18-19 सितम्बर, 1990 के दौरान आयोजित एक उच्चस्तरीय राष्ट्रीय संगोष्ठी अपने आप में एक सराहनीय प्रयास था. कदाचित जीव-विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान स्तर पर राष्ट्रीय मंच पर मौलिक रूप से हिन्दी में आयोजित होने वाली यह पहली संगोष्ठी थी. इस संगोष्ठी में करीब 100 वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं ने भाग लिया.

संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि डा० हरिद्वार सिंह, निदेशक, विस्फोटक अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशाला, पुणे ने अपने भाषण में इस बात पर बल दिया कि जैसे-जैसे हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली विकसित होती जाए वैसे-वैसे उसमें वैज्ञानिकों का सहयोग लेते हुए बहुप्रचलित अंतरराष्ट्रीय शब्दों का समावेश किया जाना चाहिए. डा० रघुनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनंत माशलेकर, निदेशक, राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला ने अपने स्वागत भाषण में वैज्ञानिक अनुसंधान के अग्रिम क्षेत्रों में राष्ट्रभाषा हिन्दी में औपचारिक व पारम्परिक आदान-प्रदान को आवश्यक बताया.

पिछले वर्ष सितम्बर में राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पुणे में 'पर्यावरण प्रदूषण रहित कीट नियंत्रण' विषय पर राष्ट्रीय स्तर की एक उच्च स्तरीय वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन किया गया. दिल्ली विश्वविद्यालय के जन्तु विज्ञान विभाग में अनुसंधान सहयोगी डा० रेनू सिंघल, जिन्होंने इस संगोष्ठी में भाग लिया, इस संगोष्ठी का ब्यौरा प्रस्तुत कर रही हैं. उल्लेखनीय है कि हाल ही में अनेक वैज्ञानिक संस्थान हिन्दी में उच्चस्तरीय वैज्ञानिक संगोष्ठियों के आयोजन के लिए आगे आने लगे हैं. आशा हैं ये संगोष्ठियां वैज्ञानिक विचारधारा को हमारे जनमानस के करीब लाकर हमारे राष्ट्रीय सोच को समृद्ध करने में मददगार साबित होंगी. यह आवश्यक है कि इनका आयोजन विभिन्न स्तरों पर किया जाए.

संगोष्ठी की विषय वस्तु

जीवन और पर्यावरण, पृथ्वी ग्रह की ही विलक्षण विशेषता है. इन दोनों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है. स्वयं मानव प्रजाति के कार्यकलापों, विशेषकर औद्योगिक क्रियाओं से, आज पर्यावरण और उसके साथ इस ग्रह का समस्त जीवन प्रदूषित हो रहा है.

पारम्परिक संश्लेषित कीटनाशक (डी डी टी आदि) रसायनों का प्रभाव केवल इनके लक्ष्यों (वे जीव जिन्हें नष्ट करना है) तक ही सीमित नहीं रहता. लक्ष्येतर जीव, लाभदायक जीव व स्वयं मानव पर भी इनके प्रतिकूल हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं. इनमें से कई कीटनाशक विभिन्न भौगोलिक व जैविक क्रियाओं द्वारा समस्त वातावरण व जीव श्रृंखलाओं में फैल जाते हैं और दीर्घकाल तक प्रभावशाली बने रहते हैं. ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि पर्यावरण-संरक्षण हेतु हानिकारक कीट नियंत्रण के स्थान पर ऐसे पदार्थों व प्रणालियों की खोज की जाए, जो विषैले न हों परिस्थितियों के अनुकूल हों और साथ ही सामान्यतः जानसुलभ भी हों. इसी महत्वपूर्ण विषय पर राष्ट्र के विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों व पर्यावरण संरक्षण के पक्षधरों एवं कार्यकर्ताओं ने इस अखिल भारतीय संगोष्ठी में विचार विनिमय किया.

कीट नियंत्रण की नई प्रणालियां

संगोष्ठी में प्रस्तुत कुछ शोधपत्रों में वनस्पति जगत से प्राप्त पादप द्रव्यों को कीट समष्टि संतुलन (इन्सेक्ट पापुलेशन बैलेन्स) के लिए उपयोगी बताया गया. वनों में आमतौर पर पाए जाने वाले वृक्षों जैसे पलास, देवदार, करड़ी, करंज, महुआ आदि के बीज तेलों का फसलों के हानिकारक कीटों. एवं पीत ज्वर (यैलो फीवर) के रोगवाहक मच्छर **एडीज एजीप्टाई** के नियंत्रण में उपयोग उल्लेखनीय पाया गया. इस प्राकृतिक वृक्ष-सम्पदा के सही रख-रखाव और उपयोग से जहां एक ओर अ कीट-नियंत्रण किया जा सकता है वहीं ओर इन वनों पर आश्रित जनजाति जीवन स्तर में भी सुधार लाया जा सक

कीटनाशक के रूप में नीम का उ बहुत समय से किया जाता रहा है. शोधपत्रों में नीम के तेल के सक्रिय तत्व उपयोग अनेक कीटों के नियंत्रण के बहुत प्रभावशाली बताया गया. नीम के में 'एजाडिरेक्टिन' नामक रसायन पाया है. इससे उपचारित करने पर वस्तु, अथवा फसल पर कीट आक्रमण नहीं साथ ही पर्यावरण में इसका कोई वि अथवा प्रदूषणकारी प्रभाव भी नहीं होता तत्व के आधार पर दो पदार्थ, मार्गोसि नीमगार्ड तैयार किए गए हैं. इन दोनों का प्रयोगशाला स्तर पर साइक्लाप्स रोग का वाहक) के नियंत्रण के लिए उ प्रभावशाली पाया गया.

जहां कुछ शोधकर्ताओं ने कीटों का प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा नियंत्रण अ जैविक कीट-नियंत्रण की उपयोगित बल दिया, वहीं कुछ वैज्ञानिकों ने पौ विद्यमान कीट-अवरोधी तत्वों को उपयोगी बताया. इस संदर्भ में मक्क विभिन्न किस्मों पर, तना-वेधक, क **पारटैलस** की वृद्धि का अध्ययन उल्ले रहा. मक्का की एक किस्म 'सी एम सर्वाधिक प्रतिरोधी पाई गई. अतः पर्या को प्रदूषित किए बिना कीट नियंत्रण के खाद्य-फसलों की प्रतिरोधी किस्में विकास और चुनाव को भी प्रोत्साहित जाना चाहिए.

कुछ शोधपत्रों में वैकल्पिक रसायन, वनस्पति-जनित कीट नि पदार्थ व नूतन वितरण प्रणालियों अनुसंधान को जारी रखने पर जोर गया. इस दिशा में कीट-वृद्धिरोधक उपयोग अति महत्वपूर्ण है. कीटों को और जनन के लिए खाद्य-स्टेराल आवश्यकता होती है क्योंकि वे स्व संश्लेषण में सक्षम नहीं हैं. अधि पादपभोजी कीट C_{28} और C_{29} फाइटोस्टे को विऐल्कलीकरण की क्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोलेस्टेराल में परिवर्तित कर उसे महत्वपूर्ण जैव-क्रियाओं के लिए उपयोग करते हैं. कुछ एजास्टेरायड्स एवं मोल्टिंग हारमोन प्रतिस्पर्धी रसायन कीटों में कोलेस्टेराल विऐल्कलीकरण की क्रिया का निरोध करके, उनकी वृद्धि और जनन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं. ऐसे रसायनों पर आधारित कीटनाशकों का उपयोग कीट-नियंत्रण का अच्छा और प्रभावकारी साधन हो सकता है.

संगोष्ठी में प्रस्तुत सभी शोधपत्रों में जो बात मुख्य रूप से सामने आई वह थी कि हानिकारक कीटों को नष्ट करने के बजाए हमारा उद्देश्य उनके द्वारा पहुंचाने वाली आर्थिक हानि की क्षमता को नष्ट करना होना चाहिए. इस नवीन सूझ को 'समन्वित कीट व्यवस्था' (इन्टीग्रेटेड पैस्ट मैनेजमेंट) का नाम दिया गया है. इसके अनुसार हानिकारक कीटों की यथायोग्य संख्या का संतुलन करना ही हमारा मुख्य प्रयास होना चाहिए. ऐसा अनेक परिस्थिति-अनुकूल प्रणालियों से किया जा सकता है. उदाहरण के लिए, आकर्षी (अट्रैक्टेन्ट), प्रतिकर्षी (रिपेलेन्ट), कीट-वृद्धिरोधक (ग्रोथ इन्हिबिटर्स), चिरयुवकारी (जुवेनायड्स), पादप प्रतिरोधीकारक (प्लान्ट रजिस्टेन्ट फैक्टर) आदि रसायनों का उपयोग, कीटनाशी विषों के उपयोग में काफी कमी ला सकता है. भले ही उनका पूर्ण बहिष्कार न हो पाए.

विज्ञान में होने वाली प्रगति को जन-जन तक पहुंचाने के लिए तथा उसे लोकप्रिय बनाने के लिए जनभाषा का उपयोग आवश्यक है. संगोष्ठी में भाग लेने वाले सभी लोग इस बात पर एकमत थे कि विज्ञान के सभी विषयों पर अधिकाधिक संगोष्ठियां आयोजित करके हिन्दी भाषा को वैज्ञानिक विषयों की अभिव्यक्ति के लिए और भी सक्षम बनाने की दिशा में प्रयास किए जाने चाहिएं.

वास्तव में भाषा के विकास का दायित्व उसका उपयोग करने वालों पर ही होता है. इनमें वैज्ञानिक, पत्रकार एवं जनसाधारण सब शामिल हैं. इसलिए यह आवश्यक है कि विज्ञान के लेखन व अन्य कार्यकलापों में हिन्दी का अधिकाधिक उपयोग किया जाए. जब अन्य देश अपनी-अपनी भाषाओं का विज्ञान में उपयोग करते हैं जिससे उनकी राष्ट्रीय प्रगति में तेजी आती है, तब हम ही भारत में उनसे पीछे क्यों रहें. हमें भी अपनी संस्कृति और विज्ञान में हिन्दी को उसका उचित व अधिकृत स्थान देना चाहिए. यह संगोष्ठी इसी दिशा में एक उत्कृष्ट प्रयास थी. □

वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए पशु-बलि : क्या कोई विकल्प है?

□ अरविन्द मिश्र

□ वैज्ञानिक परीक्षणों के लिए दुनिया की प्रयोगशालाओं में हर वर्ष करोड़ों असहाय पशु-पक्षियों की बलि चढ़ा दी जाती है. वस्तुतः विज्ञान की सेवा में यातना भुगतने के लिए मजबूर इन पशुओं ने न कोई पाप किया होता है और न ही मानवीय मामलों में इनका कोई हस्तक्षेप ही है. फिर भी वैज्ञानिक परीक्षणों के नाम पर जो कष्ट ये झेलते हैं उसका कोई अन्त नहीं. और परीक्षण भी कैसे-कैसे? जीते जी उबाल देना, बर्फ से भी नीचे के ताप पर जमा देना, घाव करके मार देना और संत्रास सहायक रोगों से अभिशप्त कर तिल-तिल कर मरने पर मजबूर कर देना.

वैज्ञानिकों का तर्क यही है कि यह सब मानव के सुखमय भविष्य को दृष्टिगत रखते हुए वैज्ञानिक अध्ययनों के लिए किया जाता है, जबकि वास्तविकता यह भी है कि इन तमाम तथाकथित परीक्षणों से नई जानकारी के नाम पर प्रायः नया कुछ भी उपलब्ध नहीं होता. वे बस पुराने प्रयोगों का अन्धानुकरण बनकर रह जाते हैं. ज्ञान के मंदिर रूपी हमारी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में निरीह पशु वध के इस प्रसंग पर आइए कुछ विस्तार से जांच-पड़ताल करें.

ऐसी जानकारी मिलती है कि ब्रिटेन में जानवरों पर अत्याचार की पाबन्दी के लिए विधिवत नियम कानून काफी पहले से ही अस्तित्व में रहे हैं. किन्तु 1876 में इन कानूनों को शिथिल करते हुए 'जीवोच्छेदन' को वैज्ञानिक जानकारी के नाम पर परमिट मिल गया और यहीं से मानव जिज्ञासा की एक परपीड़ात्मक प्रवृत्ति मुखरित होना आरम्भ हुई. जैसा कि भारत ने कई दूसरे मामलों में ब्रितानी व्यवस्था का अन्धानुकरण किया, इस मुद्दे पर भी यहां पश्चिमी प्रतिध्वनि के चलते 1953 में कहीं जाकर थोड़ी बहुत जनचेतना उभरी. रूक्मिणी देवी अरूण्डेल ने राज्य सभा में जानवरों पर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध एक विधेयक रखा. जल्दीबाजी में बनाई गई एक उच्चस्तरीय समिति में कई वैज्ञानिक और चिकित्सा संस्थानों के अध्यक्ष भी शामिल हुए. किन्तु मात्र प्रचार-प्रसार सामग्री उपलब्ध कराते रहने के अतिरिक्त इस समिति की कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं कही जा सकती. कालान्तर में इसकी अकर्मण्यता के चलते इसे भंग कर दिया गया. हां, इस समिति ने एक संशय भरी बात जरूरी उठाई थी, "वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए की जाने वाली (पशु) चीर-फाड़ को नियंत्रित करने से कहीं इस देश में वैज्ञानिक प्रगति का कारवां रुक न जाए..."

भारतीय संदर्भ में जीवोच्छेदन (प्रयोगशालाओं में जानवरों की चीर-फाड़) के जो दृष्टान्त दिखाई देते हैं उनसे महज पश्चिमी देशों की प्रयोगशालाओं में जानवरों पर चल रहे अत्याचारों की अन्धानुकृति की ही झलक मिलती है. कुछ बानगी देखिए—एक आपरेशन में 15 कुत्तों की तिल्लियां निकाल ली गई. उन्हें इस आपरेशन के 12 घंटे पहले से भूखा-प्यासा रखा गया था. अब इन सभी कुत्तों की एक प्रमुख धमनी काट कर खून बहाया गया. निष्कर्ष? कोई मौलिक नहीं. इन वैज्ञानिकों की उपलब्धि मोराविट्ज नाम के वैज्ञानिक के समान प्रयोगों से लेशमात्र भी आगे बढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं पाई केवल मोराविट्ज के प्रयोग-परिणामों की हूबहू पुनरावृत्ति थी यह. निर्बाध रक्तस्राव और उसके परिणामों का अध्ययन किसी भी अस्पताल के आकस्मिक कक्ष में बिना पशु वध के खुद आदमी पर ही किया जा सकता है. इसी तरह छह स्वस्थ नवजात पड़वों (भैंसा शावक) की धमनियों और एक संवेदी नाड़ी को काटकर मात्र स्थापित नतीजे की पुष्टि की गई (संदर्भ : इण्डियन जनरल आफ सर्जरी, खण्ड 34, अंक 3; एवं जर्नल आफ द एनाटोमिकल सोसायटी आफ इण्डिया, खण्ड 25, संख्या 3).

अभी अति नहीं! आगे देखिए—पश्चिम बंगाल के बांकुरा जिले में जापानी मस्तिष्क शोध की जांच-पड़ताल के सिलसिले में दोषी विषाणु की पहचान के लिए 105 चिड़ियों और 121 चूहों-गिलहरियों को सीधे दिल का पंक्चर करते हुए खून के नमूने इकट्ठे किए गए (इण्डियन जर्नल आफ मेडिकल रिसर्च, खण्ड 64, अंक 12). नतीजा? यही कि "प्रश्नगत प्रयोगों से यह सिद्ध नहीं होता कि बांकुरा जिले में जापानी मस्तिष्क ज्वर के प्रसार में चिड़ियों और नन्हें स्तनपोषियों की भूमिका है?" क्या खूब? तो क्या यह कत्लेआम (सामूहिक पशु वध) जरूरी था?

इसी तरह अलकोहल की एक किस्म मीथेनाल की विषाक्तता की जांच के लिए 31 नर खरगोशों और 8 नर बन्दरों की बलि दे दी गई. जो भी परिणाम आए उनसे 'नया ज्ञान' हासिल नहीं हुआ. इन हतभाग्य जानवरों ने वही लक्षण प्रगट किए जो (जहरीली) शराब की हौलियों (दुकानों) पर खुद आदमियों पर अनेक बार देखे परखे जा चुके हैं. दस कुत्तों के वृषणों में रुधिर संचरण अवरुद्ध करते हुए उसके परिणामों की निरर्थक समीक्षा की जा चुकी है.

इन प्रयोगों और परिणामों को शोध पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी तकनीकी शब्दावलियों की आड़ में प्रस्तुत किया जाता है कि साधारण सोच-समझ वाला आदमी उन्हें 'महान वैज्ञानिक अनुसंधान' की ही कोटि में समझता है. भारत में तो ऐसे तमाम प्रयोग प्रायः अनुसंधान की बड़ी अनुदान राशियों का भयंकर दुरुपयोग भर लगते हैं.

इधर जानवरों का मस्तिष्क भी तमाम खोजों (?) का केन्द्र बना हुआ है. दिमाग का कौन-सा हिस्सा कुरेदने पर (बिजली अथवा रसायनों के जरिए) कब जानवर दर्द से बिलबिला उठेगा, कब अन्धा हो जाएगा, कब उसकी जुबान बन्द हो जाएगी. कब वह क्रोध से चिंघाड़ उठेगा, कब सेक्स की अनुभूति पाएगा? इस तरह के प्रयोगों के लिए बन्दरों-लंगूरों की जान पर बन आई है. जैवीय प्रणालियों में अपने मानव साम्य के चलते बन्दरों को सैनिक अनुसंधानों में काफी तादाद में इस्तेमाल किया गया है जहां उन पर कीटाणु आयुधों की तीक्ष्णता का भी परीक्षण होता आया है. वैसे तो भारत ने ऐसे प्रयोगों के विरोध में 1978 में बन्दरों का निर्यात बन्द कर दिया था, किन्तु अभी हाल में लंगूर की एक प्रजाति को संकटापन्न प्राणियों की सूची के परिशिष्ट एक से हटाकर परिशिष्ट दो में सूचीबद्ध करना सन्देह उत्पन्न करता है. ज्ञातव्य हो कि सिटेस (कन्वेन्शन आन इण्टरनेशनल ट्रेड इन एन्डेन्जर्ड स्पीशीज) के परिशिष्ट एक के जानवरों के आयात में ज्यादा अड़चनें नहीं है. सब कुछ निर्यातक देश की मर्जी पर निर्भर करता है. दूसरी ओर परिशिष्ट एक के जानवरों को आयातक देश से भी परमिट लेना आवश्यक है. क्या बन्दरों के बाद लंगूरों पर भी गाज गिरने वाली है?

यह तो रही वैज्ञानिक अनुसंधान में लगी प्रयोगशालाओं और अस्पतालों में जानवरों पर होने वाले नियोजित अत्याचारों की एक झलक. हमारी शिक्षा संस्थाओं के वैज्ञानिक संकायों के पठन-पाठन में मूलभूत व्यावहारिक जानकारी के लिए भी करोड़ों की संख्या में मेढ़कों, चूहों, कबूतरों, गिलहरियों का अन्तःच्छेदन किया जाता है. ज्यादातर संज्ञा शून्य करके और कुछेक बार लापरवाही के चलते अच्छी तरह उन्हें बेहोश किए बिना ही उन पर छुरी कैंची चला दी जाती है. कभी-कभी वे अन्तःच्छेदन के दौरान ही चैतन्य हो उठते हैं और मर्मान्तक पीड़ा जाहिर करते हैं. आज गावों तक में हाई स्कूल स्तर के विज्ञान का पाठ पढ़ाने वाले स्कूलों के भी अपने जानवर खोजी दस्ते

(एनिमल कैचर्स) हैं, जो प्रायः काफी दामों, 20 या 25 रुपए प्रति मेंढ़क इम्तहान के दिनों मुंहमांगी कीमत पर मे की कालाबाजारी करते हैं. वे ताल त पोखरों से मेंढ़कों को बीनते चलते हैं. ग्रा अंचलों के बड़े मेंढ़कों (राना जाति) के होते जाने का दोष शिक्षण संस्थाओं पर है. वैज्ञानिक शिक्षण के लिए जीवन्त मा की पेशकश की जानी चाहिए. तकनीकी क्रांति के इस युग में यह आसान है. बस इस दिशा में पहल नहीं हु और करोड़ों बेकसूर जानवर हर साल बे मारे जा रहे हैं.

ब्रिटेन के मशहूर शल्य-चिकि प्रोफेसर लैक्सन टेंट ने 'जीवोच्छेदन' अध्ययन परम्परा को बिल्कुल बेकार ब है. करीब एक दशक पहले ही एक प्रख्यात ब्रितानी चिकित्सक डा० बेडोबेली का दावा था कि जानवरों पर जा रहे औषधि-परीक्षणों से मानव कल्य की बात बेमानी है. प्रयोगशालाओं के पिगों (चूहे की कद काठी का एक तरह स्तनपोषी प्राणी जो वैज्ञानिक परीक्षण प्रायः प्रयुक्त होता है) पर प्रयोगों के न हमें उनके मानवीय संदर्भ की उपयोगिता मुद्दे पर गुमराह भी कर सकते हैं और कई बार हुआ भी है. सबसे बदनाम घ 'थैलिडोमाइड काण्ड' नाम से जानी जाती थैलिडोमाइड औषधि को कई बार पिगों, बन्दरों और चूहों पर उसके प्रशा गुणों का प्रभाव देखने के लिए आजम गया. लगभग सभी प्रायोगिक जन्तुओं छह सालाना परीक्षण के कड़े प्रतिबन्धों अधीन इसे मानव उपयोग के लिए पूरी त निरापद पाया गया. इसके बाद इसे अ और तानवग्रस्त गर्भवती महिलाओं के दिया जाने लगा. दवा बाजारों में धड़ल्ले बिकी और अगले ही साल दस हजार हाथ विहीन शिशुओं ने जन्म ले लिया. बहुत बच्चे जन्म से ही मर गए और शेष जिन्दगी मौत से भी बदतर साबित हुई.

इस तरह वैज्ञानिक परीक्षणों की क खुल गई. अकेली यह घटना जोरदार तरी से यह बताती है कि मानव कल्याण की दु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर अनाप-शनाप प्रयोग परीक्षणों का औचित्य कदापि सिद्ध नहीं किया जा सकता. विश्व के कई प्रसिद्ध वैज्ञानिक आज इस मुद्दे पर एकमत हो रहे हैं कि कई प्रयोगों में जिनमें जानवरों की अकारण जान जा रही है, बिना उनके (जानवरों के) वध के भी बखूबी सम्पन्न किए जा सकते हैं, और अब तो वैज्ञानिकों के हाथ 'ऊतक संवर्धन' (टिशु कल्चर), क्लोनिंग जैसी अभिनव प्राविधियां भी लग चुकी हैं जिनमें किसी खून-खराबे की जरूरत ही नहीं है. सीधे मानव कोशाओं को संवर्धित कर उन पर मनचाहे प्रयोग परीक्षण किए जा सकते हैं. इन्सुलिन प्राप्ति के लिए अब गो-वध जरूरी नहीं रहा. प्रयोगशालाओं में जीवाणुओं की फौज टनों इन्सुलिन तैयार करने में समर्थ हो चुकी है. तो फिर हम जीव-जन्तुओं की जान के पीछे हाथ धोकर क्यों पड़ गए हैं? जरूरत है दृष्टिकोण में बदलाव लाने का.

वास्तव में ऐसी प्रयोगशालाओं को प्रोत्साहन बन्द कर देना चाहिए जिनमें अभी भी घिसे-पिटे तरीकों का प्रचलन है. उनके अधिकांश उपकरण कसाई की काठी बन चुके हैं, और खुद प्रयोगशालाएं बूचड़खाना. आप इस देश के कई स्वनामधन्य (?) विश्वविद्यालयों के जन्तु विभागों की पड़ताल तो करें. आपका मन सन्ताप से भर उठेगा. टिशु कल्चर प्रौद्योगिकी अपेक्षाकृत बहुत सस्ती है, आवश्यकता है, इसे बड़े स्तर पर अपनाने की. अपने देश में प्रत्येक जन्तु परीक्षणों की प्रयोगशाला में 'टिशु कल्चर' कक्ष की अनिवार्यता होनी चाहिए. इससे करोड़ों जीव-जन्तुओं की जान बचेगी और परीक्षणों के नतीजे असंदिग्ध होंगे.

भारत में अभी भी चोरी-छिपे लुप्त प्रायः जन्तुओं की खरीद-फरोख्त जारी है. 'पीकाक नेचर क्लब' के श्री एस०पी० वर्मा का दावा है कि पटना शहर के मीर शिकार टोली इलाके में दुर्लभ जानवरों की चोर-बाजा चल रही है. यहां देश भर के पशु चोरों अड्डा बन गया है जो सुनहरे लंगूरों, बा शावकों, तेंदुओं, भालुओं के बच्च बिज्जुओं, लोरिस, राजहंसों को पिजड़ों ठूंस कर उनकी दुर्दशा करते हैं अ मनोवांछित दाम लगने पर उन्हें विदेशों त पहुंचाते हैं. न जाने वे चिड़ियाघरों की शो बढ़ा रहे हैं या फिर प्रयोगशालाओं की भे चढ़ रहे हैं. यह भी हो सकता है कि उनव बलिदान फैशन की उन्मत्त दुनिया की न साज-सज्जा के लिए किया जा रहा हो.

प्रयोगों परीक्षणों के नाम पर बिना मतल ही जीव-जन्तुओं को सताने की प्रवृत्ति दुनि भर में है. कई बार सिर-फिरे वैज्ञानि आत्म-प्रसिद्धि के लिए अजीबोगरीब प्रयोग का खाका तैयार करते हैं और अपनी सनक अनर्थ करते चलते हैं. इस प्रकरण प व्यापक विचार-विमर्श जरूरी है.

इलैक्ट्रोनिक होबियस्ट बनिये
(हिन्दी में पत्राचार द्वारा)

आज के इस इलैक्ट्रोनिक युग में आप पीछे क्यों ? आप भी इस दौड़ में शामिल होकर दुनिया को हैरान कर समते हैं । ''घिन्टाला इलैक्ट्रोनिक्स लैब'' आपको घर बैठे पत्राचार द्वारा सिखाती है—ऐसे चौंका देने वाले इलैक्ट्रोनिक्स के शौंकिया प्रोजेक्ट्स बनाने जो आपको भी हैरान कर सकते हैं बिजली का कुत्ता, रिमोट कन्ट्रोल से चलने वाला हवाई जहाज, ताली बजाते ही आन व आफ होने वाला स्विच, 20 मीटर तक दूर बैठे काम करने वाला रिमोट कन्ट्रोल, M.W.ट्रांस मीटर 100 मीटर रेंज का, डिस्को लाईट सायरन, ऐसे ही नये-नये 40 प्रोजेक्ट्स ।

—: लैब के कोर्स की विशेषतायें :—

1. लैब का पूरा कोर्स हिन्दी में तैयार किया गया है । (शुल्क मात्र 175 रू॰)
2. कोर्स 12 माह का है, जो आपको हर माह 3 होबी प्रोजेक्ट्स के बारे में पूर्ण जानकारी देता है । हर प्रोजेक्ट की P.C.B. कम्पोनेट, कैबनेट और ऐसेम्बल किट भी मंगवा सकते हैं ।
3. अगर आप इलैक्ट्रोनिक्स के बारे में अनुभव नहीं रखते तो भी निःसंकोच होकर प्रवेश ले ।

नोट : विवरणिका व नमूने की प्रति ''मुफ्त'' प्राप्त करें ।

GHINTALA ELECTRONICS LAB. INDIA

GEL INDIA

RAJ MARG, NOHAR-335523 .
SHRI GANGA NAGAR (RAJ.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में अंतर्स्थलीय मत्स्य उद्योग-1

प्रग्रहण मत्स्यकी

□ डा० अरुण गोपाल झिंगरन
□ डा० हेम चन्द्र जोशी

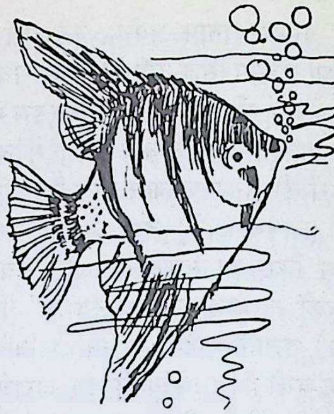

हमारे देश में मछली पालन बहुत प्राचीनकाल से किया जाता है मछली हमारे देश की जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग का मुख्य खाद्य भी है. हाल के वर्षों में देश के जलाशयों में वैज्ञानिक तरीकों से मछली पालने के प्रयत्न किए जा रहे हैं ताकि मछलियों की भरपूर फसल तो ली ही जा सके, इस व्यवसाय में लगे मछुआरों को इसका पूरा लाभ भी मिल सके. भारत में अंतर्स्थलीय मत्स्य उद्योग पर इस अंक में और अगले अंक में प्रस्तुत किए जा रहे दो लेखों से इस उद्योग से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत चर्चा की गई है.

□ मत्स्य पालन हमारे देश का एक प्राचीन व्यवसाय है. हमारे प्राचीन ग्रंथों में मत्स्यावतार व मत्स्यपुराण जैसे प्रसंग भारतीय जन जीवन में मछली के महत्व को उजागर करते हैं. मछली पालन की प्रमुख आवश्यकता जलाशय भारत में बड़ी संख्या में मौजूद हैं. पैंतालीस हजार किलोमीटर लंबी छोटी व बड़ी नदियों का जाल, 1.25 लाख किलोमीटर लंबी नहरें, 30 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फैले जलाशय व झीलें, 16 लाख हेक्टेयर छोटे व बड़े तालाब तथा दो हजार किलोमीटर लंबे कटिबन्धीय क्षेत्र में फैले हुए पृष्ठ जल समूह भारत की विशाल अंतर्स्थलीय जलनिधि का बखान करते हैं.

आज जबकि देश की जनसंख्या 100 करोड़ की सीमा से कुछ ही नीचे रह गई है इसके भरण-पोषण की विशाल आवश्यकताओं के संदर्भ में इन जल क्षेत्रों में मत्स्य उत्पादन का महत्व और भी बढ़ गया है. वैसे भी हमारे देश में प्रोटीन बहुल आहार की बहुत कमी है. मछली जो कि एक सस्ता प्रोटीन बहुल आहार है इस कमी को बहुत कुछ पूरा कर सकती है. लेकिन मत्स्यकी के स्रोतों का समुचित विकास न होने के कारण इस विशाल प्रोटीन स्रोत का उपयोग हम कुपोषण जैसी समस्याओं को हल करने में नहीं कर पाए हैं.

भारत में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति प्रोटीन की खपत 52 ग्राम है. इसमें जैविक प्रोटीन की मात्रा केवल 6 ग्राम है जो विकसित देशों जैसे अमेरिका (92 व 65 ग्राम), आस्ट्रेलिया (92 व 61 ग्राम) की दैनिक खपत से बहुत कम है. अतः संतुलित आहार के लिए जैविक प्रोटीन की 30 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन की न्यूनतम जरूरत को पूरा करने के लिए देश के मत्स्यकी स्रोतों का समुचित विकास नितांत आवश्यक है.

वर्तमान उद्योग

वर्ष 1986-87 में भारत के समुद्री क्षेत्रों से 17 लाख टन तथा अंतर्स्थलीय क्षेत्रों से 12.00 लाख टन मछली का उत्पादन हुआ. वर्ष 2000 ई० के लिए अंतर्स्थलीय व समुद्रीय क्षेत्रों से मत्स्य उत्पादन का लक्ष्य क्रमशः 45 व 35 लाख टन रखा गया है. अंतर्स्थलीय मत्स्य उद्योग अपनी प्रबंध सुगमता व सुरक्षा की दृष्टि से समुद्री मत्स्य उद्योग से अधिक महत्वपूर्ण है. साथ ही यह देश में उपलब्ध प्रचुर नैसर्गिक जल सम्पदा की दृष्टि से उच्चतर लाभ की संभावनाएं भी संजोए है. राष्ट्रीय कृषि आयोग के एक अनुमान के अनुसार अंतर्स्थलीय मत्स्य उद्योग के सुनियोजित विकास से देश की सम्पूर्ण जैविक प्रोटीन की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है.

देश में अंतर्स्थलीय मत्स्य उद्योग के सुचारु संचालन के लिए प्रत्येक प्रांत व केंद्र शासित प्रदेश में अलग-अलग मत्स्य निदेशालय हैं. ये विभाग मत्स्य व्यवसायियों को बड़े-बड़े जलाशयों, नदियों व तालाबों में मत्स्य आखेट की अनुमति देते हैं. जल तंत्रों में मत्स्यकी संरक्षण व मछुओं को मत्स्यपालन व मत्स्याखेट की नई तकनीकों की जानकारी देना इसी विभाग का काम है. इसके अलावा देश में कई केन्द्रीय शोध संस्थान हैं जो मत्स्य उत्पादन बढ़ाने की नई तकनीकों व मत्स्य प्रबंध की नई प्रणालियों के विकास का काम कर रहे हैं. इनमें बैरकपुर स्थित केन्द्रीय अंतर्स्थलीय प्रग्रहण मत्स्य पालन संस्थान, भुवनेश्वर स्थित केन्द्रीय मीठा जल मत्स्य पालन संस्थान व मद्रास स्थित केन्द्रीय नोना जल मत्स्य संस्थान प्रमुख हैं.

मत्स्यकी के नैसर्गिक स्रोत

किसी भी तरह का जल क्षेत्र जैसे नदी, तालाब, जलाशय, या झील मत्स्यकी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक स्रोत है. किसी भी जल क्षेत्र की मत्स्य उत्पादकता उसकी ऊर्जा संभरण क्षमता पर निर्भर करती है जिसका उनकी पारिस्थितिकी, उनके संग्रहण क्षेत्रों व उनके जल प्रवाह व जल संचयात्मकता से सीधा संबंध है. अतः मत्स्यकी स्रोतों के प्रबंध को सुगम व सक्षम बनाने के लिए जल क्षेत्रों को उनकी भू-जैविक गुणात्मकता के आधार पर दो मुख्य भागों में बांटा गया है.

(1) प्रग्रहण मत्स्यकी; और (2) मत्स्य पालन.

प्रग्रहण मत्स्यकी

बड़े-बड़े जल क्षेत्रों जैसे नदियों, जलाशय, झील मुहाने, नील व भेरी जल तंत्रों में मत्स्य संपदा का प्राकृतिक रूप से निरंतर विकास होता रहता है. इन जल क्षेत्रों में मछलियां बिना किसी बाहरी भोजन स्रोत, उर्वरक या उपचार के प्राकृतिक आहार पर निर्भर रह कर बढ़ती रहती हैं तथा प्राकृतिक रूप से ही इनमें प्रजनन भी होता है. ऐसे जल क्षेत्रों में मत्स्य उत्पादन मुख्यतया मछली पकड़ने की तकनीक व प्रयास की अवधि पर निर्भर करता है. भारत में अंतर्स्थलीय क्षेत्रों से उपलब्ध मत्स्य उत्पादन का 88 प्रतिशत प्रग्रहण मत्स्यकी द्वारा ही प्राप्त होता है. अतः प्रग्रहण मत्स्यकी क्षेत्रों का विस्तार होने व उनके प्रबंध पर विशेष ध्यान दिए जाने से देश के कुल मत्स्य उत्पादन को काफी अधिक बढ़ाया जा सकता है.

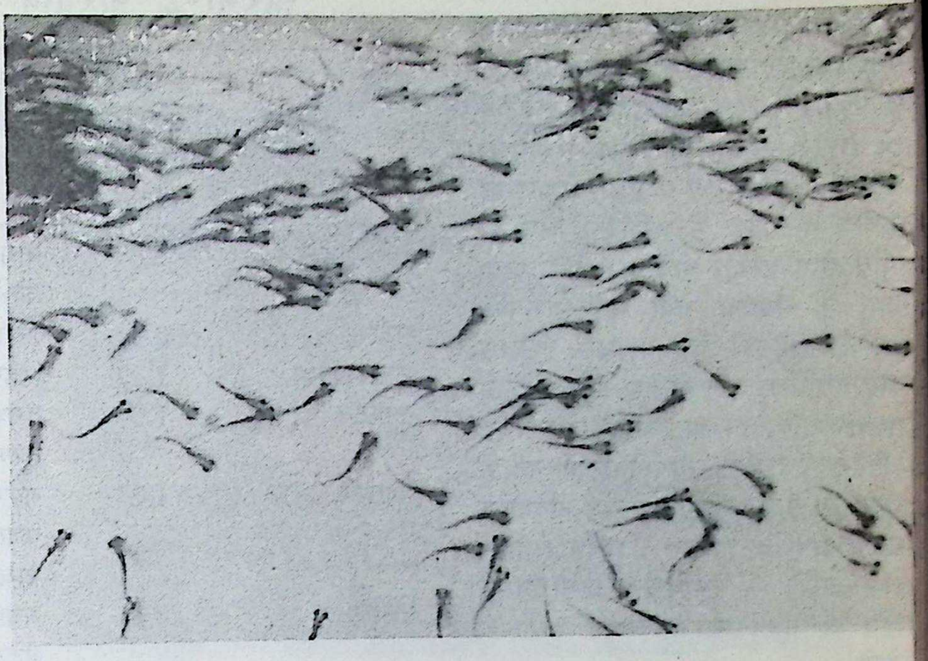

चित्र-2. नदियों से पकड़ा गया मछली का जीरा.

नदियों में प्रग्रहण मत्स्यकी

देश के विभिन्न सरिता तंत्रों की कु लंबाई लगभग 45,000 किलोमीटर है. ग सरिता तंत्र इन सब में प्रमुख है. मुख्य गंग इसकी सहायक नदियों की कुल लं लगभग 12,500 किलोमीटर है. गंगा अतिरिक्त उत्तर में सिंधु का भाग, पूर्वोत्त ब्रह्मपुत्र, पश्चिम में नर्मदा व ताप्ती त दक्षिण में महानदी, गोदावरी, कृष्णा व का इत्यादि सरिता तंत्र हैं जिनका म उत्पादन में विशेष स्थान है. इन नदिय औसतन एक टन प्रति किलोमीटर प्रति मछली का उत्पादन होता है तथा किलोमीटर सरिता क्षेत्र से लगभग मछुओं का जीविकोपार्जन होता है. देश लगभग 1.9 लाख मछुओं की जीविका सरिता तंत्रों में प्रग्रहण मत्स्यकी पर नि करती है. देश की मुख्य सरिताओं से म एकत्रीकरण केन्द्रों पर मछली की साल आमद का विस्तृत विवरण सारणी-1 में गया है.

इन सरिता तंत्रों में एक सौ से अ मछलियों की जातियां व प्रजातियां पाई ज हैं. नदियों में बढ़ते प्रदूषण वनों के कट कारण नदियों में बढ़ते गाद तथा जल विकास के फलस्वरूप उत्पन्न जल सं

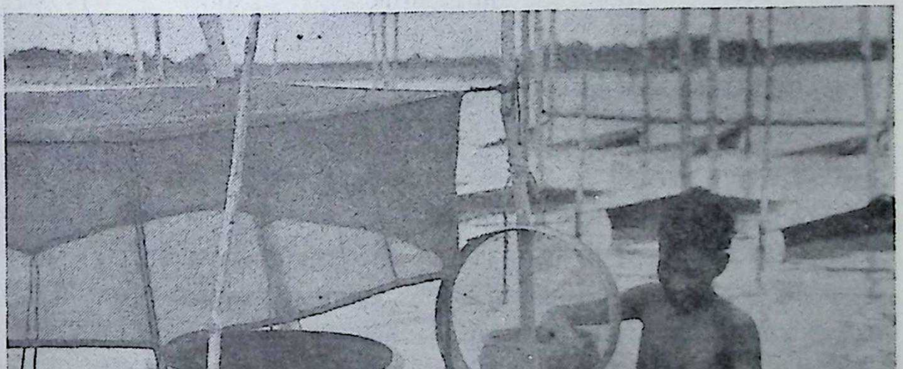

चित्र-1. नदियों में मछली के जीरे का प्रयास.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीन जाल द्वारा मछली के बच्चों के भारी ात्रा में पकड़े जाने से मछलियों की संख्या व त्पादन में निरंतर भारी गिरावट आई है. कुछ मछलियों का तो अस्तित्व ही संकट में जर आता है. सरिता तंत्रों की पारिस्थिति की मत्स्यकी की सुरक्षा के लिए प्रदूषण की ोकथाम व नदियों में अतिरिक्त जल की ापूर्ति होना अत्यंत आवश्यक है. साथ ही दियों के संग्रहण क्षेत्रों में वृक्षारोपण, ामाजिक वानिकी जैसे कार्यक्रम तत्काल ार्यान्वित किए जाने चाहिए. इन उपायों से ृषि क्षेत्र से बहकर आने वाले गाद, उर्वरक कीटनाशी विषैले रसायनों को भी नदी में हुंचने से रोका जा सकेगा और नदियों के ंग्रहण क्षेत्रों के विकास से दुर्गम क्षेत्रों में त्स्य आखेट की संभावनाएं बढ़ेंगी जिससे त्स्य उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि हो केगी.

सारणी-1. देश की मुख्य नदियों से मछली की वार्षिक आमद

दी ंत्र	मत्स्य एकत्रीकरण केन्द्र	कुल आमद (टनों में)
ंगा	इलाहाबाद	39.96
	कानपुर	25.31
	आगरा-मथुरा	31.46
	पटना	12.66
	सहरसा	6.5
र्मदा	होशंगाबाद	9.49
हानदी	जोबरा	12.17
	चौधर	3.42
ोदावरी	नासिक	10.39
	राजमुंदरी	6.34
ृष्णा	रायचूर	9.55
	विजयवाड़ा	11.03
ावेरी	कृष्णराज नगर	10.75
	थंजाबूर	10.72
	कुल योग	209.30

ोत : राष्ट्रीय प्रबंध संस्थान, अहमदाबाद

सारणी-2. भारतीय जलाशयों में मछली उत्पादन

राज्य	कुल जलाशय क्षेत्र (लाख हेक्टेयर)	मुख्य जलाशय	जलाशयों का वार्षिक मत्स्य उत्पादन (टन)	वर्ष
आंध्र प्रदेश	1.47	नागार्जुन सागर कोलेरु झील	4385.9	1977
उड़ीसा	0.99	हीरा कुण्ड	1300	1979-80
उत्तर प्रदेश	1.27	रिहन्द	1400	1980-81
कर्नाटक	1.5	तुगभ्रदा कृष्णराज सागर	—	—
गुजरात	1.25	बल्लम सागर कदाना साबरमती	350	1979
तमिलनाडु	0.51	भवानी सागर मेट्टूर	1577	1981-82
प० बंगाल	0.17	कन्सावती मयूराक्षी	34	1981-82
बिहार	0.50	गेतलसुद्र मैथोन	7	—
मध्य प्रदेश	2.5	गांधी सागर	2,164	1979-80
महाराष्ट्र	1.05	नाथ सागर	—	—
राजस्थान	1.0	उज्जयनी जय समंद फतेह सागर	1700	1979-80
हरियाणा	0.90	बदकल डुमडुमा	—	—
हिमाचल प्रदेश	0.40	गोबिंद सागर पोंग	2300	1979-80

स्रोत : राष्ट्रीय प्रबंध संस्थान, अहमदाबाद

जलाशय प्रग्रहण मत्स्यकी

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गत 40 वर्षों में नदियों में जल स्रोत विकास परियोजनाओं के फलस्वरूप अनेक छोटे बड़े जलाशयों का निर्माण हुआ है. एक अनुमान के अनुसार सातवें दशक के पूर्वार्ध में इन जलाशयों का कुल क्षेत्रफल लगभग 30 लाख हेक्टेयर था. वर्ष 2000 ई० तक इसके 60 लाख हेक्टेयर तब बढ़ जाने की आशा है. भारतीय प्रबंध संस्थान, अहमदाबाद के अनुसार भारत में 975 बड़े जलाशय हैं. इनमें मत्स्यकी प्रबंध नदियों की अपेक्षा सुगम व सरल है. अतः जलाशयों के रूप में उपलब्ध इस प्रचुर जल राशि से मत्स्यकी विकास की उज्ज्वल संभावना है. परन्तु वर्तमान स्थिति उतनी उत्साहजनक नहीं है. जलाशयों से मछली की अनुमानित आपूर्ति केवल 14.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष है जो कि एक आदर्श लक्ष्य 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष से कहीं कम है. केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर के प्रावधान में चल रही अखिल भारतीय जलाशय मत्स्यकी परियोजना के निष्कर्षों के आधार पर जलाशयों में मत्स्यकी विकास व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबंध का प्रारूप तैयार किया गया है. अभी तक के प्रयासों से तमिलनाडु में भवानी सागर जलाशय में मत्स्य उत्पादन 90 टन प्रति वर्ष से बढ़कर 300 टन प्रति वर्ष तथा हिमाचल प्रदेश के गोबिन्द सागर जलाशय में 200 से 1000 टन तक पहुंच गया है अन्य मुख्य जलाशयों जैसे रिहन्द, नागार्जुन सागर, गेतलसुद्र व गांधी सागर में भी उत्पादन में उल्लेखनीय सुधार हुआ है.

लगभग 500 हेक्टेयर या उससे कम क्षेत्र में फैले सिंचाई व पेय जल के लिए बने छोटे जलाशयों में मत्स्यकी प्रबंध और भी सुगम है क्योंकि कम क्षेत्रफल होने के कारण इनमें मछलियों को इच्छानुसार विकास के लिए छोड़े रखना, मछलियों का नियोजित आखेट व मत्स्य संपदा की सुरक्षा इत्यादि सभी काम बड़े जलाशयों की अपेक्षा अधिक सुविधापूर्वक किए जा सकते हैं. इन जलाशयों में प्रग्रहण मत्स्यकी व मत्स्य पालन की विकसित प्राविधियों का समन्वय करके मत्स्य उत्पादन 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष या उससे अधिक किया जा सकता है. केन्द्रीय अंतर्स्थलीय प्रग्रहण मत्स्यकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर के तत्वावधान में नियोजित उत्तर प्रदेश के गुलेरिया व बछरा जलाशयों तथा तमिलनाडु के अलियार जलाशय में क्रमशः 100, 139 व 115 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष का रिकार्ड उत्पादन प्राप्त किया जा सका है. सारणी-2 में देश के विभिन्न राज्यों में जलाशयों से प्राप्त कुल मत्स्य उत्पादन का आंकलन किया गया है.

छोटे जलाशयों की तरह देश के पूर्वोत्तर प्रांतों में वे उत्तरी बिहार में मन बील इत्यादि जल समूहों का विशाल जल क्षेत्र उपलब्ध है. ये जलतंत्र मुख्य नदियों से कट गई छोटी नदियों के अवशेष हैं जिनका अब पृथक अस्तित्व है. इनमें से कुछ बरसात के बाद फिर से मुख्य नदी से मिल जाते हैं. कुछ ऐसे भी बील हैं जो बिल्कुल अलग हैं. अकेले उत्तरी बिहार में ऐसे जल क्षेत्रों का क्षेत्रफल लगभग 40,000 हेक्टेयर आंका गया है. इनमें से अधिकतर शहरी व कृषि-जनित प्रदूषण से ग्रस्त हैं तथा इनमें जल वनस्पतियां भरी पड़ी हैं. असम में एक लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फैली बीलों की भी लगभग यही दशा है. इन जल समूहों से मछली का उत्पादन अभी नगण्य है. इन जल क्षेत्रों से सामान्य प्रयासों जैसे खरपतवार उन्मूलन, मत्स्य अंगुलिका संभरण द्वारा मछली की अच्छी उपज ली जा सकती है. इन जल क्षेत्रों को पट्टे पर उठा कर तथा कृषि विस्तार सेवा के अंतर्गत लाकर मत्स्य पालन करने से न केवल मत्स्य उत्पादन बढ़ेगा बल्कि ग्रामीण रोजगार के नए अवसर भी खुलेंगे.

चित्र-5. नदी से पकड़ी झीमा मछलियां.

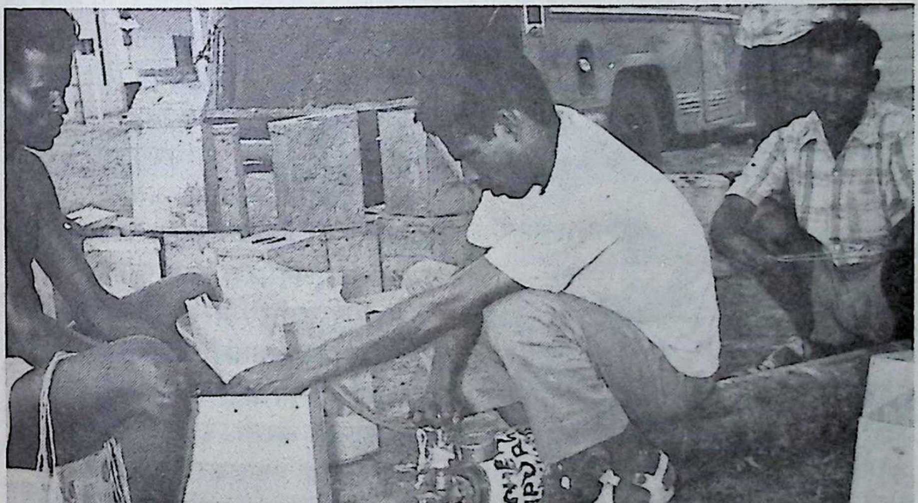

चित्र-3. मछली के जीरे को पोलीथीन के थैलों में ऑक्सीजन देकर अन्यत्र भेजने का प्रबंध.

प्रग्रहण मत्स्यकी के विभिन्न घटक

प्रग्रहण मत्स्यकी का देश के विशाल क्षेत्र में फैले व बंटे हुए जल क्षेत्रों से सीधा संबं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन क्षेत्रों में मछली पालन एक दुष्कर कार्य इनके क्षेत्र की विशालता के समक्ष इनमें रिक्त पोषण या उर्वरण द्वारा मत्स्य ादन बढ़ाना असाध्य-सा है. अतः इन क्षेत्रों में जो भी मत्स्य उत्पादन होता है इनकी भौगोलिक स्थिति, इनके संग्रहण ों की पारिस्थितिकी व इनके जल में ामान पोषक तत्वों व मत्स्य आहार योग्य जल सम्पदा पर निर्भर करता है. ऐसे क्षेत्रों में मत्स्य उत्पादन बढ़ाने के लिए क्षेत्रों के संरक्षण व मत्स्य प्रग्रहण नीकों के विकास की आवश्यकता है.

ंरक्षण के अतर्गत उन सभी बातों पर ोष ध्यान दिया जाता है जो मत्स्यकी के के लिए उत्तरदायी होती हैं, जैसे ्षण, छोटी मछलियों को पकड़ना तथा नेमाइट द्वारा मत्स्याखेट करना इत्यादि. के अतिरिक्त जल क्षेत्रों में नियमित रूप मछलियों की अंगुलिकाओं का संभरण ा जाना चाहिए जिससे उनमें उपलब्ध लियों की एक निश्चित संख्या सर्वदा बनी संभरण के लिए मछलियों का चुनाव क्षेत्र की पारिस्थितिकी के अनुरूप होना हिए जिससे मछलियों को विकास के लिए कूल आहार उचित मात्रा में मिलता रहे.

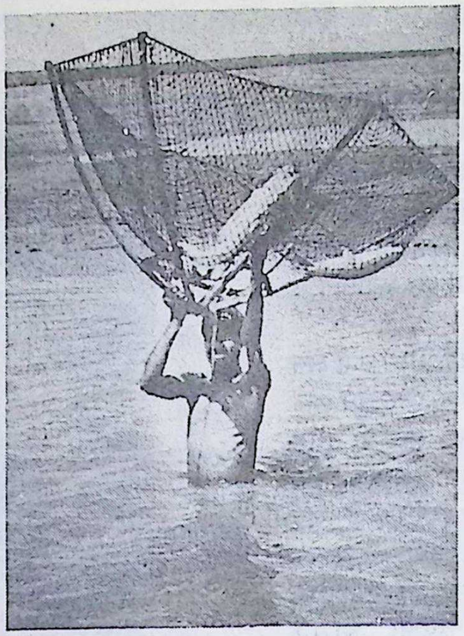

चित्र-7. जलाशयों में प्रयुक्त 'जानो' ट्रैप जाल.

भारत में अंतर्स्थलीय जलस्रोतों से प्राप्त मछलियों में तीन प्रमुख हैं. ये हैं रोहू व नैन. ये मछलियां देश के सभी क्षेत्रों में स्वाद की दृष्टि से अधिक पसंद की जाती हैं इस कारण इनका व्यावसायिक महत्व भी अन्य मछलियों से ज्यादा है. इन मछलियों को प्रायः 'इण्डियन मेजर कार्प' के नाम से जाना जाता है. अतः संरक्षण के लिए मछलियों का चुनाव करते समय लोगों की पसंद का भी विशेष ध्यान रखा जाता है.

चित्र-6. मीठे पानी की बील से पकड़ी गई मछली की एक आकर्षक फसल.

मछलियों के संरक्षण के लिए यह भी आवश्यक है कि उनके प्रजनन काल के दौरान जो कि सामान्यतया जुलाई से सितम्बर के मध्य होता है, मछलियों का प्रग्रहण नहीं किया जाना चाहिए. राजस्थान सरकार ने ऐसे उपाय करके राज्य के मत्स्य उत्पादन को बढ़ाने के सराहनीय प्रयास किए है. इस अवधि में मछलियों को पकड़ना उनकी संख्या के नैसर्गिक विकास में बाधक होता है. इस कमी को संभरण द्वारा पूरा कर पाना संभव नहीं हो पाता. अतः देश के अन्य राज्यों में भी मत्स्य संरक्षण के इस तरह के प्रयासों का अनुसरण किया जाना चाहिए.

संभरण के लिए मत्स्य बीज का एकत्रण नदियों से किया जाता है. इण्डियन मेजर कार्प (मछलियां) साधारणतया स्थिर जल में प्रजनन नहीं करती. इसलिए नदियों से ही इनका बीज पकड़कर तथा छोटे नर्सरी तालाब में उसे बढ़ाकर स्थिर जल क्षेत्रों जैसे झील, जलाशय या बील में संभरित किया जाता है. इस कार्य के लिए लगभग तीन मीटर लंबा एक शंकुनुमा जाल उपयोग में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

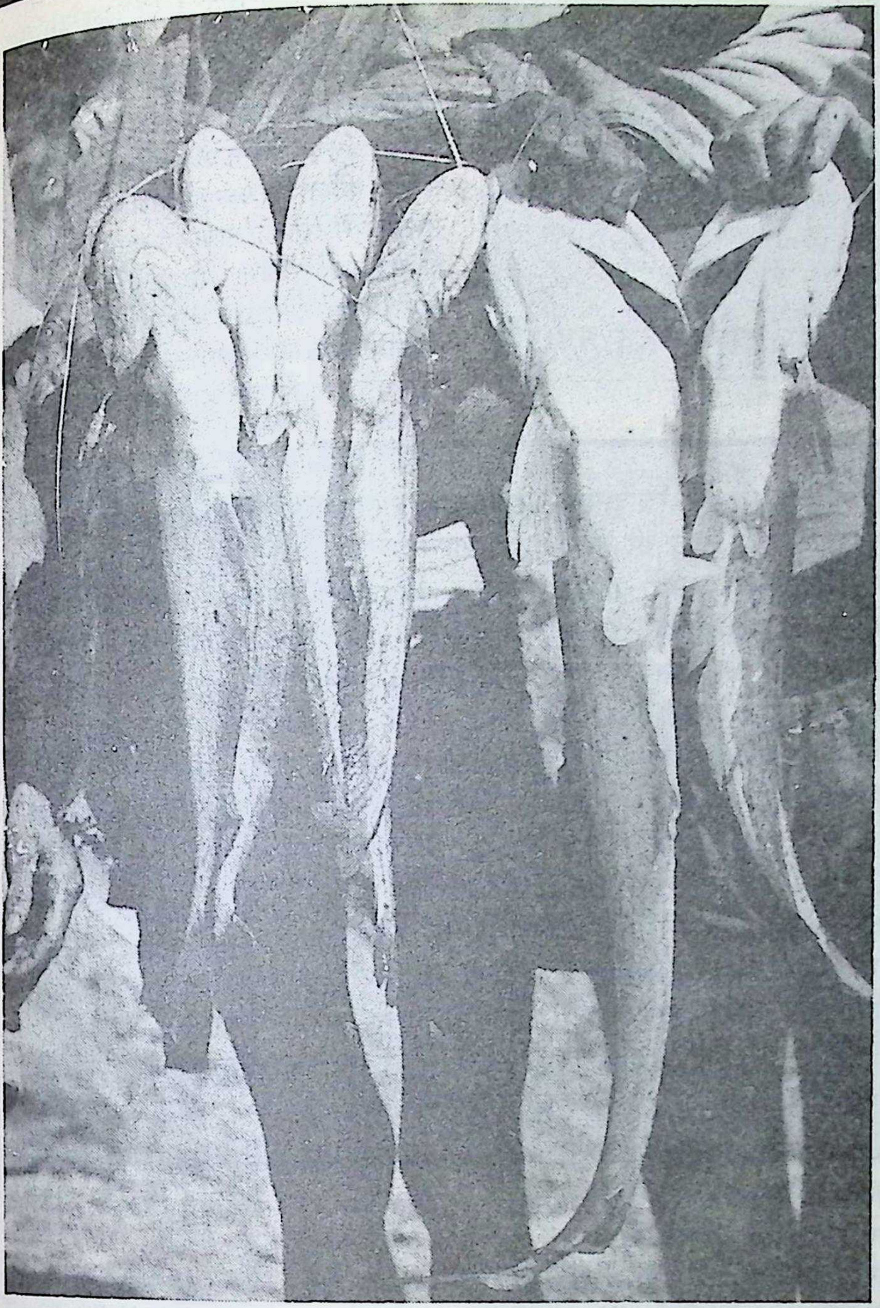

चित्र-4. कांटा डोर से पकड़ी गई मछलियां.

लाया जाता है. जाल के बड़े मुख को सरिता की धार के विपरीत दो बांसों की सहायता से खड़ा कर दिया जाता है. छोटा मुख धार के साथ नीचे की ओर एक हापा में खुलता है. पानी के साथ बहकर आए मछली के छोटे-छोटे बच्चे धीरे-धीरे हापा में इक्ट्ठा होते रहते हैं. कुछ समय के बाद हापा में एकत्रित बीज को बाहर निकाल लिया जाता है तथा उन्हें पोलीथीन के थैलों में भरकर व उचित आक्सीजन देकर नर्सरी तालाबों में छोड़ने के लिए बाहर भेज दिया जाता है. मछलियों के बीज पकड़ने का काम प्रायः बरसात के मौसम में ही होता है क्योंकि इसी मौसम में इन मछलियों में प्रजनन होता है. आजकल कृत्रिम प्रजनन द्वारा बड़ी मात्रा में मछली का बीज पैदा किया जाने लगा है.

बड़े जल क्षेत्रों से मछली की फसल निकालना ही प्रग्रहण कहलाता है. प्रग्रहण के लिए प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रकार की नावों, विभिन्न प्रकार के जालों व विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता रहा है, मछली पकड़ने के लिए मछुए प्रायः जालों व ट्रैप का उपयोग करते हैं. इन जालों में फ़ंसता जाल प्रमुख है. व्यवसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मछलियों जैसे कतला, रोहू व नैन इत्यादि को पकड़ने केलिए प्रायः इसी जाल का उपयोग किया जाता है. फेंका जाल (कास्ट नैट) घसीटा जाल (ड्रैग नैट) इत्यादि अनेक प्रकार के जाल हैं जो मछली पकड़ने के काम में प्रयुक्त होते हैं. कुछ मत्स्यग्राही मछलियों को पकड़ने के लिए कांटा डोर का उपयोग किया जाता है. छोटी-छोटी मछलियों, झीगों इत्यादि को पकड़ने के लिए विशेष प्रकार के ट्रैप उपयोग में लाए जाते हैं. जाल लगाना, जाल फैंकना व जाल बैठाना इत्यादि कामों के लिए विभिन्न प्रकार की नौकाओं का उपयोग होता है. जिन जल क्षेत्रों से अधिक मछली की आमद होती है वहां मोटर चालित नौकाओं का उपयोग होने लगा है. देश में सहकारिता आंदोलन का प्रभाव प्रग्रहण मत्स्यकी पर भी पड़ा है. मछुए अपनी आमद अलग-अलग न बेच कर एक निश्चित स्थान पर एकत्रित करते हैं. यहां से ही इन मछलियों को बिक्री के लिए दूरदराज के क्षेत्रों में भेजा जाता है. मछलियों को ताजा रखने के लिए शीतलन यंत्रों की भी व्यवस्था रहती है.

मछलियों के प्रग्रहण का काम कठिन तो है ही, जोखिम से भरा भी है. इसलिए इस व्यवसाय से संबद्ध मछुओं के जीवन स्तर में सुधार की अत्यंत आवश्यकता है. प्रग्रहण मत्स्यकी का विकास मत्स्य उत्पादन बढ़ाने व मछुओं का जीवन स्तर सुधारने में अहम् भूमिका निभा सकता है. ☐

डा० झिंगरन अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मत्स्य वैज्ञानिक हैं और पश्चिम बंगाल में बैरकपुर स्थित केन्द्रीय अंतर्स्थलीय प्रग्रहण मत्स्य पालन अनुसंधान संस्थान के निदेशक हैं, डा० जोशी इसी संस्थान में वैज्ञानिक हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ाचार मंथन

वज्ञान-दर्शन का विज्ञानेतर अनुशासनों पर प्रभाव-1

□ डा० चन्द्रमोहन भंडारी

दर्शन कोई भी हो, चिन्तन का आयाम कोई भी हो, परिस्थितिजन्य व्यावहारिकता कुछ भी हो एक अनुशासन में जो घट रहा है वह दूसरे से जा जुड़ता है कभी अनुकूल प्रवाह में और कभी प्रतिकूल प्रवाह में. अनेक बार एक सहज, स्वाभाविक समन्वयात्मक संबंध और कई स्थितियों में एक असहज, आरोपित गठबंधन—दोनों प्रकार के दृष्टान्त स्पष्ट देखे जा सकते हैं.

इन सब संबंधों का—चाहे वे सहज-स्वाभाविक हों या असहज अस्वाभाविक—एक मुख्य कारण है कि यह सब जिससे जुड़ा है वह तो एक ही है मन—उसके अन्दर घट रहा हर पल दूसरे पल से जुड़ा है और जब जुड़ने की इस प्रक्रिया का आभास हमें होता है तब खण्ड-खण्ड चिन्तन के आदी हम सोचने लगते हैं कि एक अनुशासन का दूसरे पर प्रभाव होने लगा है. विभिन्न अनुशासनों का पार्थक्य स्वीकार कर लेने के बाद उनके आपसी संबंधों की चर्चा सार्थक हो जाती है. दो खण्डों में प्रस्तुत इस लेख में विज्ञान का सामाजिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक चिन्तन पर प्रभाव ऐसी ही चर्चा का केन्द्र बिन्दु है.

विज्ञान का वर्तमान स्वरूप यूरोपीय ज्ञान के संदर्भ में ही चर्चित होता रहा है. द्रहवीं सदी में कोपरनिकस द्वारा र-परिवार का सूर्य-केन्द्रीय प्रारुप धुनिक विज्ञान के एक सिरे पर स्थापित ना जा सकता है जिसका दूसरा छोर मान के साथ गतिशील है भविष्य की र.

आधुनिक विज्ञान के इस विकास-क्रम के ले भी अन्यत्र अनेक आयामों में विज्ञान उद्भव एवं विकास हुआ था यद्यपि यूरोप कुछ समय पहले तक इसे स्वीकार करना धिकांश बुद्धिजीवियों को भी कठिन जान ता था. पूर्ववर्ती चीन तथा भारत में या यत्र भी विज्ञान के अस्तित्व को रअन्दाज करना एक उपनिवेशवादी नसिकता से ग्रसित साजिश माना जा ता है या श्रेष्ठता की भावना से जुड़ा ग्रह. यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है हर देश-काल में विज्ञान का विकास ान नहीं रहा और एक सीमा तक उसका रूप उस देश-काल की विशिष्टता पर र करता रहा है. विज्ञान के अनुप्रयोगों में मिकता भी सदा एक सी नहीं रही और से जुड़ी प्रौद्योगिकी भी. विज्ञान के ास-क्रम का सही लेखा-जोखा प्राप्त े में अनेक कठिनाइयों में एक यह भी है प्रारम्भिक काल-खण्डों में उसका स्वरूप उससे जुड़ी प्रौद्योगिकी की मिकताओं में विविधता थी.

ुनिक विज्ञान की श्रृंखला-प्रक्रिया

हां तक विज्ञान के आधुनिक स्वरूप का ा है यह कहना अनुचित न होगा कि उसकी वर्तमान संतत् कड़ी का एक छोर कोपरनिकस के पास पहुंचता है. कोपरनिकस तथा उसके पूर्ववर्ती खगोलशास्त्रियों के बीच जो खोई हुई कड़ियां हैं उन्हें खोजना असंभव नहीं तो भी दुःसाध्य अवश्य है और स्वयं में शोध का एक महत्वपूर्ण विषय है.

यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आधुनिक विज्ञान की श्रृंखला का सूत्रपात मध्यकालीन यूरोप में हुआ था. कोपरनिकस का महत्व खगोल में उनके योगदान की वजह से तो है ही, कदाचित इस कारण भी है कि वे इतिहास के उस मोड़ पर खड़े थे जहां से वैज्ञानिक चिन्तन की एक अटूट धारा प्रवाहित होती रही जो कई सदियों के अन्तराल में अपनी निरन्तरता को बनाए रख सकी.

यों सभ्यताओं के उद्भव, विकास तथा पतन की लाक्षणिकताओं को ध्यान में रखते हुए आधुनिक विज्ञान के संबंध में अंतिम रूप से कुछ कहना अधिक अर्थपूर्ण न होगा और समग्रता में उसका आकलन सुदूर भविष्य में ही संभव हो सकेगा (संदर्भ 4 व 2). ऐसा विश्लेषण इस लेख का उद्देश्य है भी नहीं. आधुनिक विज्ञान की जिस संतत् श्रृंखला की बात हम कर रहे हैं वह भविष्य में क्या रूप लेगी इस पर सम्भावित विकल्प चर्चा का विषय हो सकते हैं.

यह संभव है कि किसी विशिष्ट श्रृंखला-प्रक्रिया का क्षय तीव्र गति से हो और उसका प्रभाव भावी प्रक्रियाओं पर लगभग नगण्य हो. दूसरी ओर संभव है कि यह सब बदलाव एक दीर्घ काल-खण्ड में क्रमिक रूप से होता रहे. एक और संभावना यह है कि आंतरिक तथा बाह्य कारणों से उत्पन्न क्रमिक सामयिक परिवर्तन आत्मसात किए जाते रहे ताकि श्रृंखला को तोड़े बिना उसकी दिशा और संदर्भ परिवर्तित होते रहें जैसा कि कुछ आयामों में भारतीय तथा चीनी सभ्यताओं और जीवन-पद्धतियों के विषय में कहा जा सकता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक-सामाजिक परिवेश

मध्यकालीन यूरोप में विज्ञान के विकास का स्वरूप उसके पूर्ववर्ती कालखण्डों में अन्यत्र हुए विज्ञान के विकास से भिन्न है विशेषकर उसकी गति में और श्रृंखला-प्रक्रिया के विस्तार में. विज्ञान के त्वरित विकास की आवश्यक शर्तें मध्यकालीन यूरोप में पूरी होती प्रतीत होती है. वे परिस्थितियां जिन्होंने इस त्वरित विकास को प्रभावित किया अन्यत्र कहीं-विशेषकर मध्यकाल या उसके पूर्ववर्ती समय में-उतनी स्पष्टतया उजागर नहीं हो सकीं थी. दो प्रमुख लाक्षणिकताएं ध्यान देने योग्य हैं:

(1) धार्मिक—सामाजिक मान्यताओं की संकीर्णता; और

(2) आर्थिक मजबूरियां.

चीन तथा भारत का धार्मिक-सामाजिक परिवेश मध्य-पूर्व तथा यूरोप के धार्मिक-सामाजिक परिवेश की तुलना में एकदम भिन्न रहा है. इस भूभाग में धर्म की एक एकीकृत संरचना कभी सुदृढ़ नहीं रही. ऐसा कहना भी सही नहीं होगा कि यहां के सम्पूर्ण इतिहास में धार्मिक सहिष्णुता की धारा अनवरत प्रवाहित होती रही हो, पर यह भी ध्यान देने योग्य है कि अपने अपेक्षाकृत अनुदार कालखण्ड में भी इस भूभाग में एक सद्भाव की क्षीण परम्परा किसी न किसी रूप में बनी रही. यह सहिष्णुता एक सीमित संदर्भ में थी जो अनेकता को सैद्धांतिक स्वीकृति देने से विशेष प्रयोजन रखती थी और अपने मत से इतर मतों के अनुयायियों को इस धरती पर रहने का अधिकार स्वीकारती थी. आर्थिक-सामाजिक संदर्भों में समान अधिकार की बात उसमें शामिल नहीं थी पर विश्व में अन्यत्र परिलक्षित धार्मिक असहिष्णुता के स्तर की तुलना में यह असाधारण रूप से उदार कही जा सकती थी. कई बातों में उदार तथा कुछ बातों में अनुदार यह व्यवस्था समाज में अपनी पकड़ गहराने लगी तथा कालांतर में जीवन-प्रणाली का अभिन्न अंग बन गई. वैचारिक-दार्शनिक आधार पर सहिष्णुता तथा सामाजिक-आर्थिक आधार पर असहिष्णुता एक साथ अस्तित्व में आ गई जो आज बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भी औसत भारतीय की मानसिकता को प्रतिबिम्बित करती है.

हिन्दू समाज में उच्च वर्ग के संभ्रांत लोगों को यह व्यवस्था रास आने लगी. सामाजिक यथार्थ के धरातल पर अनुदार प्रबुद्ध भारतीय मन को दार्शनिक स्तर पर उदार दृष्टि स्वीकार कर लेने से एक संतुलन प्राप्त हो गया जो सहज न होते हुए भी आवश्यक था. परिणामस्वरूप इस समाज के एक विशिष्ट अंग को एक सुविधाजनक व्यवस्था उपलब्ध हो गई यद्यपि पूरे समाज को ध्यान में रखते हुए इसकी कीमत बहुत अधिक थी और जिसे वह आज तक चुका रहा है.

यों एक वर्ग-विशेष के लिए और एक समय-विशेष में इसका एक धनात्मक पहलू भी था. जीवन चाहे जैसे जियो पर वैचारिक धरातल पर उदार दृष्टिकोण अपनाने की छूट परिणामतः अनेक प्रकार की कलाएं, अनेक दर्शन और विज्ञान की कई विधाएं यहां पर उपजीं, विकसीं और कई आयामों में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचीं. यह उस द्वन्द्वात्मकता (वैचारिक सहिष्णुता—सामाजिक असहिष्णुता) का उजला पक्ष था. इस द्वन्द्वात्मकता का प्रतिफल था कालांतर में एक सर्व-स्वीकारी भाव की स्वीकृति. धर्म या धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ी पृथकता की स्वीकृति, दार्शनिक आधार पर प्रकृति को समझने की बहुमुखी दृष्टि तथा दैनिक रहन-सहन में विविधता को स्वीकृति—ये सभी एक स्वस्थ जीवन का पर्याय हैं. पर जब बात नैतिक-सामाजिक मूल्यों से संबंध रखती है तब एक स्पष्ट विभाजक रेखा की स्वीकृति एक अस्पष्ट पर तथाकथित उदार सहमति-सूचक व्यवस्था से बेहतर है. सब कुछ स्वीकार कर लेने की बात में जहां एक सहिष्णुता का भाव दिखाई देता है वहीं सही-गलत, वांछित-अवांछित, स्वस्थ-अस्वस्थ का अंतर धूमिल होने लगता है. यह बात एक लघु काल-परिसर में भले ही महत्वपूर्ण न लगे पर इसके प्रभाव दूरगामी हैं. इस धूमिल सीमा-रेखा का लाभ जितना वांछित तत्वों को प्राप्त होता रहा है उसका कई गुना अधिक लाभ अवांछित सामाजिक इकाइयों को प्राप्त हो जाता है जो उस व्यवस्था का लाभ उठाकर वर्ग-विशेष हित का साधन बनकर एक अस्व सामाजिक परम्परा का सूत्रपात करने में उसे दीर्घकाल तक बनाए रखने में सफल जाती हैं.

हर समाज में ऐसे तत्व विद्यमान हैं निहित स्वार्थों की पूर्ति में किसी सीमा मर्यादा को नहीं मानते. एक अपेक्षाकृत उ व्यवस्था में (जिसमें विभिन्न सामाजि घटक एक-दूसरे की बातों में दखल न देने परम्परा से बंधे हों) नैतिक या सामाजि मूल्यों की कोई स्पष्ट विभाजक रेखा दीखती और इसका लाभ अवांछित तत्वों प्राप्त होता रहता है. विभिन्न घटकों के आपसी सद्भाव के नाम पर, विभि संस्थाओं का स्वायत्तता के नाम पर, त अनेकता में एकता के अस्पष्ट सूत्र खोजने विशिष्ट पद्धति को बनाए रखने अनिवार्यता के नाम पर अनेक अस्व परम्पराएं इतिहास में दूर तक चली जाती अपने समाज में अनेक प्रथाएं—जैसे स प्रथा, देवदासी प्रथा तथा बलि आदि प्रथा—इतिहास में दूर तक चली आईं अ बीसवीं सदी में भी अपना अस्तित्व बन रख सकीं. उसके मूल कारणों में सर्व-स्वीकारी भाव के दुरुपयोग की ब निहित है.

यह इस बात का अच्छा उदाहरण है स्वस्थ परम्परा का भी दुरुपयोग हो सम्भव है. आवश्यकता इस बात की है ऐसी संभावना को कम किया जा सके अ साथ ही उसके धनात्मक पहलुओं प्रभावोत्पादकता बनी रहे. सामाजि अभियांत्रिकी के अनुप्रयोग की दृष्टि से य एक महत्वपूर्ण विषय हो सकता है जिस विस्तृत विश्लेषण अन्यत्र किया जाए (संदर्भ 3).

स्वस्थ परम्परा के दुरुपयोग के अ अच्छे उदाहरण ढूंढे जा सकते हैं और दुरुपयोगों को रोकने के तरीके भ लोकतांत्रिक व्यवस्था में शासन-तंत्र जनमत से चुना जाता है. समय-समय जनमत को उसमें परिवर्तन लाने स्वतंत्रता रहती है. इस व्यवस्था को आद नहीं कहा जा सकता पर करोड़ों लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क अर्थपूर्ण सामाजिक-राजनैतिक इकाई में नुशासित रखकर एक क्रियाशील कासोन्मुख प्रक्रम से जोड़ने का इससे ष्ठतर कोई विकल्प दिखाई नहीं देता.

इस व्यवस्था के दुरुपयोग की संभावना हुत अधिक है. भ्रष्टाचार, दलगत जनीति, जातीय स्वार्थों पर आधारित गठन, धन शक्ति का अनियंत्रित रुपयोग—सभी कुछ ऐसी व्यवस्था में संभव और भारतीय समाज के संदर्भ में पूरी तरह जागर होते रहे हैं. लोकतंत्र की उदार यवस्था का दुरुपयोग रोकने के लिए एक क्षित एवं प्रबुद्ध समाज होना चाहिए. ारतीय जनता की अशिक्षा एवं अज्ञान के ारण प्रारंभिक वर्षों में लोकतंत्र का बहुत रुपयोग होता रहा पर मात्र चालीस वर्षों की कास-यात्रा में जनता ने अपने विवेक का भूतपूर्व परिचय दिया और अब उसकी शिक्षा तथा गरीबी के बावजूद उसे ासानी से गुमराह नहीं किया जा सकता.

अमेरिकी शासन व्यवस्था में भी ोकतांत्रिक परम्परा का बहुत दुरुपयोग ोता रहा है. अमेरिकी संविधान के र्माताओं ने संतुलन के लिए आवश्यक ातों को संविधान में शामिल कर एक पेक्षाकृत उदार तथा स्थायी व्यवस्था नाए रखने का प्रयत्न किया है ताकि व्यक्ति े मूल अधिकारों की रक्षा करते हुए समाज कासोन्मुख होता रहे. पूर्वी यूरोप में तथा स में 1989 में प्रारम्भ हुई क्रांतिकारी रिवर्तनों की श्रृंखला इस बात को स्पष्ट रती है कि एक अपेक्षाकृत खुला एवं हिष्णु परिवेश अपने दुरुपयोग की भावना के बावजूद अनिवार्य है. यही ुलापन एवं सहिष्णुता पूर्ववर्ती चीन तथा ारत में विकसित संस्कृति की विशेषता ही थी.

रोपीय मध्यकालीन परिदृश्य

मध्यकाल में यूरोप का सामाजिक-ार्मिक परिवेश भारतीय परिवेश से र्ववर्ती कालखण्डों में) एकदम अलग था. क अपेक्षाकृत असहिष्णु परिवेश, लोगों की ढ़ती आवश्यकताएं, आकांक्षाएं और इन बके साथ आर्थिक कठिनाइयां एवं मजबूरियां—एक अनुकूल स्थिति पनपती जा रही थी परम्परा से हटकर सोचने और करने के लिए. आवश्यकता आकांक्षा, आर्थिक कठिनाई तथा अनुदार परिवेश का मिला जुला दबाव उस क्रांतिक-दबाव को शनैःशनैः पार करने लगा जो परम्परा को स्वीकारने की सीमा-रेखा को परिभाषित करता आ रहा था. एक ऐसा दर्शन अपेक्षित था जो सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन एवं विकास का आधार बन उसे दिशा दे सके. प्रकृति के साथ तादात्म्य उस चिंतन का मूलमंत्र नहीं हो सकता था. प्रकृति को जीतना उसका आधार बन सकता था और उस समय की समस्याओं का समाधान भी.

ध्यान देने योग्य है कि विज्ञान की एक परम्परा भारतीय परम्परा थी जिसमें प्रकृति को एक समन्वयात्मक आदर भाव से देखने की बात पर सैद्धान्तिक बल था और यही बात चीन के विज्ञान के संदर्भ में भी कही जा सकती है. वह दबाव जो पारम्परिक चिन्तन को तोड़कर रख दे भारत में बनना सहज ही नहीं था और प्राथमिकताओं के आधार पर आवश्यक भी नहीं था.

दबाव की अनुपस्थिति इस व्यवस्था की कमजोरी थी और ताकत भी. एक दृष्टि से यह एक उपलब्धि थी जिसने समाज-व्यवस्था को एक दीर्घजीवी सन्तुलन में रखने तथा विरोधी स्वरों को मुखरित होने का अवसर देने का प्रयत्न किया था. विज्ञान के विशेष संदर्भ में विज्ञान से जुड़ी प्रौद्योगिकी को मात्र यांत्रिक विकास से नहीं जोड़ा था. उसकी कमजोरी थी तो यही कि समाज का एक विशिष्ट वर्ग ही विज्ञान, दर्शन व कला की उपलब्धियों का भागीदार बना रहा. यांत्रिकीकरण उस विज्ञान व प्रौद्योगिकी का एकमात्र लक्ष्य नहीं था. इसका एक कारण समग्र-दृष्टि पर आधारित पर्यावरणीय समझ थी पर अधिक महत्वपूर्ण कारण था प्रकृति-प्रदत्त बाहुल्य. प्रकृति के साथ तादात्म्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने का निश्चय ही एक कारण यह था.

यांत्रिकीय दर्शन का अभ्युदय एवं विकास

पन्द्रहवीं सदी के उपरोक्त सामाजिक-आर्थिक परिवेश में आधुनिक विज्ञान की आधारशिला रखी गई. रेने देकार्त तथा आइज़क न्यूटन का योगदान इसमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है. देकार्त तथा न्यूटन दोनों ने गणित की दो विशेष शाखाओं—नियामक (कोआर्डिनेट) ज्यामिति तथा चलन-कलन (डिफ्रेंशियल कैल्कुलस) की नींव रखी. क्रमशः गणित की भाषा के बढ़ते उपयोग ने भौतिक-विज्ञान को एक अतिरिक्त गहराई और शक्ति प्रदान कर उसकी तथा उससे जुड़े विषयों के विकास की गति को अत्यधिक त्वरित कर दिया. गणित तथा भौतिक-विज्ञान में देकार्त तथा न्यूटन की उपलब्धियों के साथ दोनों ही नामों के साथ जुड़ गया एक दर्शन जिसे 'कार्टीजियन दर्शन' भी कहा जाता है और 'न्यूटोनियन' भी. दोनों ही यांत्रिकीय-दर्शन के अभ्युदय एवं विकास से जुड़े हैं.

द्रव्य (मैटर) तथा मन (माइंड) दो स्वतंत्र सत्ताएं हैं और दोनों का तालमेल समझने के लिए एक और स्वतंत्र सत्ता की जरूरत है और वह है ईश्वर, ऐसा देकार्त का मत था. उनके अनुसार मन द्रव्य को तथा द्रव्य पर आधारित विश्व या प्रकृति को नियंत्रित करने में सक्षम है. यह नियंत्रण की बात उस समय एक सीमित संदर्भ में दार्शनिक आधार पर समझी गई हो यह संभव है. पर इस सामान्य से कथन में भावी दिशा-निर्देश (विज्ञान के संदर्भ में) का बीज दिया था जो कालान्तर में विज्ञान तथा उसके अनुप्रयोगों पर आधारित प्रौद्योगिकी की दिशा निर्धारित करने लगा.

विज्ञान का यह विकास मात्र ज्ञान की पिपासा से संचालित नहीं था. वह प्रकृति को निचोड़ कर अपने लिए सुविधा जुटाने वाले वर्ग के हाथों में एक अस्त्र था. पश्चिम में विज्ञान का दार्शनिक आधार उसके मध्यकालीन त्वरित विकास के साथ बदलने लगा. जैक्स मोनोड की चर्चित पुस्तक 'चान्स एण्ड नेसेसिटी' (संदर्भ-4) में इस परिवर्तित मानसिकता को स्पष्ट आभास मिलता है. यह मानसिकता प्रकृति के प्रति एक निर्मम और कठोर दृष्टिकोण रखने के लिए उकसाती है जिसमें उसे सताकार, प्रताड़ित कर उसके रहस्य उगलवाने की बात पर स्पष्ट जोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई देता है. पश्चिमी चिन्तन के विकास में वे स्वर उभरते हुए स्पष्ट दिखाई देते हैं जो बृहतर परिवेश से व्यक्ति को पृथक करते हैं और व्यक्ति तथा शेष विश्व (जिसका वह मात्र एक अंश है) के मध्य चले आ रहे गहन संबंध को नहीं स्वीकारते. "यह नैतिकता यथार्थ में वस्तुपरक अस्तित्व नहीं रखती और उसे सदा के लिए ज्ञान के क्षेत्र से निष्कासित किया जाना चाहिए". (मोनोड : संदर्भ-4).

द्रव्य तथा उस पर आधारित विश्व–यानी कि प्रकृति के विषय में उपरोक्त धारणा क्रमशः प्रबल होती गई और अन्य अनुशासनों से मिलकर एक नया आयाम खोजने लगी. इस दिशा में कई बार अवधारणाओं के आपसी आदान-प्रदान (विभिन्न अनुशासनों के मध्य) से सार्थक संवाद की स्थिति बनने लगी. सत्रहवीं सदी में जॉन लॉक ने लोकतंत्र की आधारशिला से जुड़ा एक महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किया जिसके अनुसार शासन को शासित जनता की राय से निर्देशित होना चाहिए. हर व्यक्ति का एक सहज-स्वाभाविक अधिकार है और वह (अधिकार) शासन की शक्ति की सीमा निर्धारित करता है. यह विचार प्राकृतिक दर्शन में प्रयुक्त द्रव्य की संरचना संबंधी अवधारणा के कितना निकट है जिसके अनुसार द्रव्य के गुण मूलतः उसके आधारभूत घटकों (अणु, परमाणु आदि) से निर्धारित होते हैं और उनके आधार पर पूरी तरह समझे जा सकते हैं. दोनों विचार राजनैतिक तथा प्राकृतिक दर्शनों से जुड़े हैं पर एक-दूसरे को प्रभावित करते प्रतीत होते हैं और यह सही है कि विभिन्न दर्शनों की विकास-यात्रा में एक-दूसरे के बीच वैचारिक विनिमय परोक्ष रूप में होता रहा है.

द्रव्य के सभी गुणों को उसके घटकों के गुणों के आधार पर समझने की प्राकृतिक दर्शन की विश्लेषणात्मक दृष्टि पूर्णतया व्यावहारिक थी और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी से जुड़े विकास का स्रोत भी. किसी द्रव्य के भौतिक व रासायनिक गुणों के संबंध में यह सत्य स्पष्टतया उजागर होता है विशेषकर जब वह निकाय जिसका अध्ययन किया जा रहा है एक जड़ निकाय हो. वहां भी सभी स्थितियों में उपरोक्त अवधारणा का निश्चयात्मक व्यापकीकरण स्वीकृत हो सकेगा इसमें संदेह हो सकता है पर अधिक जटिल निकायों के संदर्भ में यह खण्डदृष्टि शत-प्रतिशत खरी नहीं उतरती. पर विश्लेषणात्मक खण्ड दृष्टिवादी चिन्तन से जुड़ी प्रौद्योगिकी की अप्रत्याशित सफलता ने अधिकांश विचारकों का दृष्टिकोण एकांगी कर दिया.

यह एकांगी दृष्टि भौतिक विज्ञान की सीमा से इतर अन्य अनुशासनों पर प्रभाव डालने लगी. जीवित निकायों जैसे जीव-जन्तुओं के संदर्भ में धारणा का व्यापकीकरण जीव-विज्ञान को प्रभावित करने लगा. यहां तक कि मनोविज्ञान पर भी इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देने लगा. उन्नीसवीं सदी के अन्त तक पहुंचते खण्ड दृष्टिवादी चिन्तन का चरमोत्कर्ष अधिकांश विचारकों को इतना अभिभूत कर चुका था कि वे यह मानने लगे थे कि "विश्व में कहीं ऐसा कुछ नहीं है जिसे अणु, परमाणु तथा उनके व्यवहार के आधार पर न समझा जा सके". इस चरमोत्कर्ष के उपरांत वही हुआ जो शिखर पर पहुंचने के बाद हुआ करता है नीचे उतरना. पर यह एक स्वतंत्र विषय है जिसे सविस्तार अन्यत्र देखा जा सकता है (संदर्भ 2, 5, 6). इसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत लेख के संदर्भ में अगले पृष्ठों पर दिया जाएगा.

विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के मध्य तथा विज्ञान तथा अन्य अनुशासनों (जैसे राजनीति, मनोविज्ञान) के मध्य विचारों का आदान-प्रदान स्वाभाविक था और अनेक संदर्भों में स्वस्थ एवं सहज भी. यह एक स्वस्थ शुरुआत थी ब्रह्मांड को अनेकानेक दृष्टिकोणों से समझने-परखने की. विभिन्न अनुशासनों के बीच एक विनिमय सतह से नीचे प्रवाहमान धाराओं की तरह दो विचारों को जोड़ता प्रतीत होता था जैसा कि जॉन लॉक के विचारों के संदर्भ में हम देख चुके हैं.

एक अनुशासन का दूसरे अनुशासनों पर प्रभाव सदा सहज, स्वस्थ एवं स्वाभाविक ही रहा हो ऐसा नहीं कहा जा सकता. किसी वस्तु या विचार का उपयोग प्रयोगकर्ता पर भी निर्भर करता है और विज्ञान के संदर्भ में भी ऐसा कई बार हुआ जबकि स्वार्थवश या अज्ञानवश विचारों को तोड़ा-मरोड़ा गया.

डारविन का विकासवाद

उन्नीसवीं सदी के मध्यवर्ती दशकों में डारविन ने जैविक-विकास संबंधी सिद्धान्त प्रस्तुत किया जो अभूतपूर्व एवं क्रांतिकारी था. डारविन के पहले भी इस दिशा में प्रयास हुए थे पर कई कारणों से इसका श्रेय डारविन को ही प्राप्त हुआ. जैविक-विकास की इन धारणाओं को विज्ञान की विशिष्टतम उपलब्धियों में गिना जा सकता है और उसके प्रभाव भी अत्यंत दूरगामी हैं.

डारविन के समय पश्चिम के बुद्धिजीवियों तथा अधिकांश विचारकों में यह बात लगभग निर्विवाद रूप में स्वीकृत थी कि उनकी यूरोपीय सभ्यता वर्तमान तथा अतीत की सभी सभ्यताओं से श्रेष्ठ है. इतना ही नहीं श्वेत-व्यक्ति की अन्य की तुलना में आनुवंशिक श्रेष्ठता की बात लगभग सर्व-स्वीकृत थी. स्वयं डारविन के विचार इससे भिन्न रहे हों ऐसा नहीं प्रतीत होता. शायद इन्हीं कारणों से विकासवाद के विश्लेषण में 'योग्यतम की उत्तरजीविता' (सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट) जैसे मुहावरों का उपयोग करने की जरूरत महसूस हुई. यदि ऐसा न भी रहा हो तब भी इस मुहावरे का सामाजिक चिन्तन पर जो प्रभाव पड़ा वह न केवल गलत था वरन् अमानवीय तथा अवांछित भी. जैविक विकास के संदर्भ में डारविन का सिद्धान्त सही है या गलत इस विषय पर अभी बहस की गुंजायश है. यदि उसे पूर्णरूपेण सही स्वीकार कर लिया जाए तब भी इसका दुरुपयोग तथा अन्य संदर्भों में उसका व्यापारीकरण स्वीकृत नहीं हो सकता. यूरोप के साम्राज्यवाद को इससे बल मिला तथा यूरोपीय बुद्धिजीवियों को अपनी श्रेष्ठता तथा शेष को अपनी कमी का अहसास अधिक तीव्र हो गया (देखें संदर्भ 7).

डारविन के विचारों पर हिटलर की पूर्ण आस्था थी. यह आस्था उसके वैज्ञानिक स्वरूप पर शायद उतनी नहीं थी जितना कि उसके सामाजिक प्रभाव के प्रति. जर्मन जाति की श्रेष्ठता के प्रति हिटलर तथा जर्मनी के बुद्धिजीवियों का आग्रह एक तथाकथित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक संस्तुति प्राप्त कर अबाध रूप से बढ़ चला. जर्मनी के लोग यदि सम्पूर्ण यूरोप को जीत लें तो वे श्रेष्ठतम साबित होंगे और उत्तरजीविता (सरवाइवल) की लड़ाई में वे ही विजयी भी सिद्ध होंगे. स्वयं अपनी नजरों में वे श्रेष्ठतम थे इसलिए उनका विजयी होना सुनिश्चित था या यों कहें कि वैज्ञानिक आधार पर पूर्व-निर्धारित. युद्ध को उसकी निर्णायक स्थिति तक ले जाने में हिटलर को दुविधा नहीं हुई. अपने श्रेष्ठतम होने में और इसलिए विजय में उसकी आस्था अभूतपूर्व थी और उसका एक कारण यह था कि डारविन के सिद्धान्त उसके विचारों का समर्थन करते प्रतीत होते थे.

यह कहना गलत होगा कि हिटलर तथा जर्मन बुद्धिजीवी ही ऐसा सोचते रहे हों और सारा राष्ट्र एक तानाशाह के भय से आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य रहा हो. यदि ऐसा होता तो एक आम सैनिक या गुप्त-पुलिस ने यहूदियों के साथ उतनी बर्बरता का व्यवहार न किया होता. सच तो यह है कि जर्मन जाति की श्रेष्ठता की बात अधिकांश लोगों के दिल में घर कर चुकी थी और जो थोड़ा-बहुत संशय रह गया था उसे दूर कर उन्हें पूरी तरह आश्वस्त करना हिटलर का कमाल था. ध्यान देने योग्य है कि हिटलर ने किसी सैनिक क्रांति द्वारा शासन हाथ में नहीं लिया. बस अपने विचारों से ही वह लोकप्रिय हुआ और चुनाव जीतकर ही राष्ट्र का सर्वेसर्वा बना.

यदि युद्ध में जर्मनी विजयी हो गया होता तब यहूदियों तथा गैर-जर्मन लोगों पर क्या गुजरती इसका मात्र अनुमान ही किया जा सकता है. डारविन के सिद्धान्त का केवल हिटलर द्वारा ही इस तरह दुरुपयोग हो ऐसा नहीं. कुछ कम सीमा तक अश्वेतों की तुलना में श्वेत जातियों की आनुवंशिक श्रेष्ठता की धारणा यूरोप में प्रचलित थी. इतिहास पर नज़र डालें तो कई उदाहरण इस तरह के ढूंढे जा सकते हैं.

ब्रह्माण्ड-विज्ञान

ब्रह्माण्ड-विज्ञान (कौस्मोलौजी) में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति तथा विकास से संबंधित कई अवधारणाएं हैं. इनमें दो अवधारणाएं इस प्रकार हैं :

(1) फैलते ब्रह्माण्ड की अवधारणा, और

(2) साम्य-अवस्था की अवधारणा.

फैलते ब्रह्माण्ड की अवधारणा के अनुसार बृहत-विस्फोट (बिग बैंग) के समय से, जो अनुमानतः 15-20 अरब वर्ष पूर्व हुआ था, यह ब्रह्माण्ड निरंतर फैलता रहा है. आकाश में दीख रहे सभी पिंड एक दूसरे से दूर भागते रहे हैं. डॉप्लर विस्थापन के प्रयोग इस बात की पुष्टि करते हैं. इतना ही नहीं इस प्रयोग से यह भी ज्ञात होता है कि हमारे सौर-परिवार के सापेक्ष कोई नक्षत्र कितनी वेग से दूर हो रहा है.

इस बात का व्यापकीकरण कर यदि समय-अक्ष पर पीछे की ओर जाएं तो यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है (द्रव्य या ऊर्जा रूप में) आज से 15-20 अरब वर्ष पहले एक छोटे से आयतन में विद्यमान रहा होगा. उस छोटे आयतन में अणु-परमाणु के रूप में न होकर संपूर्ण द्रव्य शायद मूलभूत कणों के ही रूप में रहा होगा जिसमें ताप व दाब बहुत अधिक रहा होगा. तभी एक विस्फोट हुआ जिसके फलस्वरूप द्रव्य तथा प्रकाश चारों ओर फैलना शुरू हो गया और अभी तक यह क्रम जारी है.

एक अन्य सिद्धान्त के आधार पर यह ब्रह्माण्ड एक सीमा तक फैलेगा, फिर सिकुड़ना शुरू होगा. यह पुनः विस्फोट के कारण फैलेगा. इस तरह फैलने और सिकुड़ने का यह क्रम अनवरत चलता रहेगा.

अब इनके सामाजिक-दर्शन पर प्रभाव की बात करें. विश्व के प्रमुख शक्तिकेंद्रों में विस्तृत होते जा रहे ब्रह्माण्ड की अवधारणा के प्रति एक गहरा लगाव है और सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में एक स्वीकृति का भाव भी है. इस तरह ब्रह्माण्ड-विज्ञान की एक अवधारणा का लाभ आर्थिक तथा राजनैतिक विस्तारवाद को नैतिक समर्थन देने लगता है. यदि फैलते ब्रह्माण्ड की अवधारणा गलत सिद्ध कर दी जाए तब विस्तारवाद के समर्थक अपनी नीतियां बदल देंगे ऐसा नहीं. पर यदि एक वैज्ञानिक अवधारणा दूसरे अनुशासनों में रूपान्तरित होकर निहित स्वार्थसिद्धि में नैतिक समर्थन दे सके तो अच्छा ही है—इससे उनका पक्ष और मजबूत हो जाता है.

खगोलशास्त्र में फैलते ब्रह्माण्ड की अवधारणा तथा जीव-विज्ञान में श्रेष्ठतम का 'सरवाइवल' विज्ञान के इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाएं हैं. इन बातों में संदेह की गुंजायश अभी भी बनी हुई है और शत-प्रतिशत निश्चितता के साथ अभी कुछ नहीं कहा जा सकता. ये अवधारणाएं कतिपय तथ्यों को समझाने के लिए दिए जा रहे प्रारूपों का एक अनिवार्य अंग हैं. पर एक अनुशासन की अवधारणाओं या निष्कर्षों को दूसरे अनुशासनों पर आरोपित कर मनमाने अर्थ खोजना तथा उन्हें निहित स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयुक्त करना एक बड़ी साजिश है. उस हर विचार के खिलाफ जो अपने व्यापक संदर्भ में मानव को एक और कदम आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करती रही है (संदर्भ-7).

क्वांटम भौतिकी का उद्भव एवं विकास

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में भौतिक विज्ञान ने जो मोड़ लिया वह सर्वथा अप्रत्याशित था. उन्नीसवीं सदी के अन्त तक न्यूटोनियन विज्ञान अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंच रहा था और ऐसा प्रतीत होता था कि कुछ और दशकों के अन्तराल में वह सब (द्रव्य के गुणों के विषय में) जाना जा सकेगा जो जानने योग्य है. लगभग उसी समयान्तराल में यह धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा कि कुछ विशेष बातों में एक विराट गतिरोध की स्थिति आने लगी है जिससे निपटने के लिए क्लासिकी न्यूटोनियन धारणा में आमूल परिवर्तन करने होंगे. विकिरण ऊर्जा के वर्णपट को स्पष्ट करने के लिए मैक्स प्लांक ने क्वांटम अवधारणा सामने रखी जो उपरोक्त सैद्धान्तिक गतिरोधों को दूर करने में सफल रही. यह विज्ञान के इतिहास की सबसे बड़ी घटनाओं में एक थी जो अपने अंदर एक संपूर्ण भावी क्रांति को संजोए थी. इसके कुछ ही समय बाद अन्य महत्वपूर्ण शोध-निष्कर्ष सामने आए जिनमें महत्वपूर्ण हैं: आइंस्टाइन द्वारा (प्रकाश वैद्युत प्रभाव पर आधारित) क्वांटम धारणा की पुष्टि, नील्स बोहर द्वारा हाइड्रोजन वर्णपट का स्पष्टीकरण, द ब्रोग्ली द्वारा द्रव्य-तरंगों का विवेचन, हाइजेनबर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अनिश्चितता का सिद्धान्त. इन सबने तथा इसी कालखण्ड में हुए अन्य महत्वपूर्ण शोधों ने चार सदियों से विकासोन्मुख यांत्रिकीय दर्शन को झकझोर दिया. (संदर्भ 2 व 5) रही सही कसर सापेक्षिकता के सिद्धान्त ने पूरी कर दी. सापेक्षिक क्वांटम भौतिकी के पास अब एक शक्तिशाली सैद्धान्तिक संरचना थी जिसके आधार पर सूक्ष्म तथा साधारण निकायों के विषय में वह सब कुछ जाना जा सकता था जो जानने योग्य था और जो प्रेषण के निष्कर्षों से संबंध रखता है. गूढ़ दार्शनिक स्तर पर अनेक कठिनाइयों के बावजूद भौतिक विज्ञान के पास अब लगभग हर बात का जवाब था, हर गतिरोध को लांघने की शक्ति थी.

यांत्रिकीय प्रारूप को अस्वीकृति

हाइजेनबर्ग द्वारा प्रतिपादित अनिश्चितता का सिद्धान्त किसी प्रेक्षक में निहित अनिश्चितता को पारिभाषित करता है. प्रेक्षक को प्रयोग के निष्कर्षों से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि वह पूरी तरह प्रेक्षण में हिस्सेदार है. अनिश्चितता का सिद्धान्त प्रेक्षक की इस (प्रेक्षण में) हिस्सेदारी को प्रतिबिम्बित करता है और उसका स्तर निर्धारित करता है. कुछ यही प्रेक्षक की हिस्सेदारी सापेक्षिकता के सिद्धान्त में भी निहित है. दिन तथा काल दोनों पर ही सापेक्षिकता के नियम लागू होते हैं और किसी वस्तु का आकार, द्रव्यमान आदि इस बात पर निर्भर करते हैं कि प्रेक्षक उस वस्तु के सापेक्ष किस वेग से गति कर रहा है. किसी घटना के प्रेक्षण में प्रेक्षक की हिस्सेदारी हर घटना में प्रतिबिम्बित नहीं होती, विशेषकर दैनिक जीवन की घटनाओं में. पर इसके बावजूद भी सैद्धान्तिक स्तर पर इसकी अनिवार्यता दर्शन के स्तर पर एक नवीन दृष्टिकोण अपनाने पर बल देती है. समग्र दृष्टि का सैद्धान्तिक महत्व कई संदर्भों में महत्वपूर्ण हो जाता है और खण्ड दृष्टिवादी चिन्तन की सार्थकता की एक धुंधली सी सीमारेखा दीखने लगती है.

यह स्थिति विश्लेषणात्मक अध्ययन के महत्व को अस्वीकार नहीं करती वरन् उसे मर्यादाबद्ध करती है. कुछ यही बात समग्रदृष्टि के संदर्भ में भी कही जा सकती है. यद्यपि उसका महत्व आधुनिक चिन्तन में वैसे हो इतना कम है कि मर्यादा का उल्लंघन जैसी बात अभी वहां बहुत अर्थ नहीं रखती. समग्र-दृष्टि तथा खण्ड-दृष्टि दोनों को एक विरोधाभास की स्थिति में न लेकर एक सार्थक समन्वय की स्थिति में लेना होगा. कई शताब्दी पहले पान कू के इस कथन पर ध्यान दें, "जो चीजें एक-दूसरे का विरोध करती हैं वे एक-दूसरे की पूरक होती हैं" (संदर्भ 8).

(क्रमशः)

संदर्भ :

1. ओस्वाल्ड स्पैंग्लर, 'डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट', 1928.
2. फ्रिटजॉफ कापरा, 'द टर्निंग प्वाइंट', वाइल्डवुड हाऊस, ग्रेट ब्रिटेन, 1982.
3. चन्द्रमोहन भंडारी, 'सामाजिक अभियांत्रिकी', आविष्कार नव०-दिस० 1982, पृष्ठ 257.
4. जैक मोनोड, 'चान्स एण्ड नेसेसिटी', कौलिन्स फोन्टाना बुक्स, इंग्लैण्ड, 1974.
5. फ्रिटजॉफ कापरा, 'टाओ ऑफ फिजिक्स', वाइल्डवुड हाउस, 1975.
6. चन्द्रमोहन भंडारी, 'प्राकृतिक दर्शन में चक्रीय प्रक्रम', आविष्कार मार्च, 1989, पृष्ठ 123.
7. जॉन मिशेल, 'आदर्श विश्व-दृष्टिकोण', 'शुभाखर लेक्चर्स', सं० सतीश कुमार, ब्लौण्ड एण्ड ब्रिग्स लि०, 1980.
8. एम०एच०एफ० विलकिन्स, 'पूरकत्व एवं विरोध की एकता', 'क्वांटम इम्लिकेशन्स', सं० हाइले तथा पीट, राउट्लेज एंड केगन पॉल, 1987.
9. आर० डी० लेन्ग, 'व्हाट इज द मैटर विद माइण्ड', शुभाखर लेक्चर्स, सं० सतीश कुमार, ब्लौण्ड एंड ब्रिग्स लि०, 1980.
10. फ्रिट्जाफ कापरा, 'असाधारण विवेक', सेन्चुरी हचिन्सन लि०, ग्रेट ब्रिटेन, 1988.
11. हैजल हैण्डरसन, 'वैकल्पिक भविष्य का निर्माण' पुटनेम प्रकाशन, न्यूयार्क 1978.
12. स्वामी विवेकानन्द, 'द कम्प्लीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द', मायावती मेमोरियल अंक, भाग-1, अद्वैत आश्रम, 1962, ग्यारहवां संस्करण.

एजेंट कृपया ध्यान दें

पत्रिका की बिक्री करने वाले एजेंटों से निवेदन है कि वे कृपया पत्रिका की प्रतियों का आर्डर अग्रिम दें. संबंधित अंक के प्रकाशन से कम से कम एक महीने पहले आर्डर कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए. इसके लिए यह आवश्यक है कि आर्डर की गई प्रतियों का मूल्य (कमीशन काट कर) पहले ही कार्यालय में जमा करा दिया गया हो. पत्रिका का अंक प्रकाशित हो जाने के बाद आर्डर में वृद्धि नहीं की जा सकती है. कृपया अपने आर्डर में निकटतम रेलवे स्टेशन का उल्लेख अवश्य करें ताकि पार्सल भेजने में सुविधा हो और आपको प्राप्त करने में विलंब न हो. कृपया ध्यान रहे कि आप उतनी ही प्रतियों का आर्डर दें जितनी आप आसानी से बेच सकते हैं, क्योंकि एक बार आर्डर की गई पत्रिकाओं को वापस लेने की व्यवस्था नहीं है.

—वरिष्ठ सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूवैज्ञानिक घड़ियां-5

खगोलीय पिण्डों से काल-निर्धारण

□ डा० विजय कुमार उपाध्याय

□ जैसे-जैसे मनुष्य ने सभ्यता की ओर कदम बढ़ाया, उसे समय के माप की आवश्यकता महसूस हुई. अनुमान है कि पुरा-पाषाणयुग का मनुष्य आकाश में सूर्य की स्थिति देखकर या अपने आस-पास स्थित पेड़ों की छाया की लम्बाई माप कर समय का मोटा अनुमान लगा लेता था. इन्हीं अनुमानों के आधार पर धीरे-धीरे धूप-घड़ी का विकास हुआ.

धूपघड़ी का आविष्कार लगभग 4000 वर्ष पूर्व बेबीलोन में हुआ था. सामान्यतः धूपघड़ी में एक दण्ड होता है जो अपनी छाया एक ऐसे डायल पर डालता है जिस पर समय को सूचित करने वाली रेखाएं बनी रहती हैं. इस दण्ड का रुख उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव की ओर रहता है. यह दण्ड डांयल के ऊपर एक ऐसे कोण पर लगाया जाता है जिसका मान उस स्थान के अक्षांश के बराबर होता है. जयपुर में एक बहुत बड़ी धूपघड़ी है जिसके डायल का व्यास 30 मीटर तथा दण्ड की लम्बाई 44 मीटर 10 सेंटीमीटर है.

प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि पृथ्वी स्थिर है. लोगों की मान्यता थी कि रात तथा दिन का आना तथा तारों का स्थान बदलना इस कारण सम्भव होता है कि पृथ्वी के चारों ओर का आकाश पृथ्वी को केन्द्र बनाकर उसके चारों ओर घूमता है. परन्तु आधुनिक काल में यह साबित हो चुका है कि पृथ्वी भी अपने अक्ष पर घूमती है. यही कारण है कि तारे इसके चारों ओर घूमते दिखाई देते हैं, तथा रात और दिन बारी-बारी से एक-दूसरे के बाद आते-जाते रहते हैं.

सन् 1851 ई० में जीन बर्नार्ड लिओन फोको नामक फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने एक पेंडुलम परीक्षण द्वारा प्रमाणित किया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर लगातार घूमती रहती है और अपने अक्ष पर 23 घंटे 56 मिनट तथा 4.09 सेकंड में एक पूरा चक्कर लगा लेती है. पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूर्णन करती है तथा इस कारणवश, सूर्य, चांद तथा तारे पूर्व में उदित तथा पश्चिम में अस्त होते दीखते हैं. पृथ्वी अपने अक्ष पर तो घूमती ही है, साथ ही सूर्य के चारों ओर एक दीर्घवृत्ताकार परिपथ पर परिक्रमा भी करती है. पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर एक बार परिक्रमा करने में 365 दिन, 6 घंटे, 9 मिनट तथा 10 सेकंड का समय लगता है. इसी काल को एक वर्ष कहते हैं.

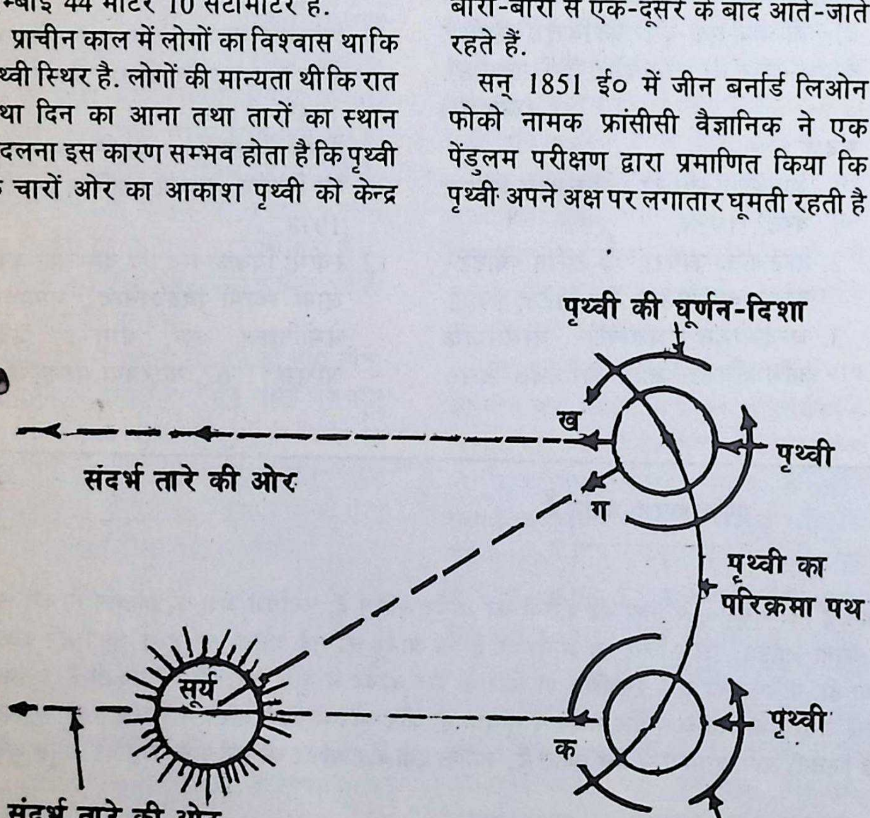

चित्र-1

पृथ्वी से देखने पर तारे पूर्व से पश्चिम की ओर एक वृत्ताकार पथ पर चलते दिखाई देते हैं. ये वृत्ताकार पथ ध्रुवों के पास सबसे छोटे तथा विषुक्त रेखा के पास बड़े होते हैं. सबसे छोटा कोणीय व्यास ध्रुवतारे का है जो 2° है. तारे आकाश में अपना दैनिक पश्चिमवर्ती दोलन 23 घंटे 56 मिनट में पूरा करते हैं. इस काल को लोग तारक दिवस के नाम से जानते हैं. इसके विपरीत सूर्य को पृथ्वी का एक चक्कर लगाने में 24 घंटे लगते हैं. इस काल को सौर दिवस कहा जाता है. चूंकि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपने परिक्रमा पथ पर लगभग 1° प्रतिदिन की दर से चलती है, अतः सूर्य भी स्थिर तारों की तुलना में प्रतिदिन लगभग 1° पूरब की ओर बढ़ता दीखता है. इसी कारणवश सौर दिवस की तुलना में तारक दिवस (साइडिरियल डे) चार मिनट कम होता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी के क बिन्दु पर (चित्र-1) स्थित एक पर्यवेक्षक दोपहर में सूर्य तथा एक सन्दर्भ तारे को एक ही रेखा में स्थित देखता है. सूर्य तथा सन्दर्भ तारा पर्यवेक्षक से दक्षिण दिशा में स्थित हैं. पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन तथा सूर्य के चारों ओर परिक्रमा पथ पर चलने के कारण पर्यवेक्षक 23 घंटे 56 मिनट बाद ख स्थान पर आ जाता है. इतने समय में पृथ्वी अपने अक्ष पर 360° घूम जाती है तथा पर्यवेक्षक पुनः उसी सन्दर्भ तारे को दक्षिण दिशा में देखता है. चूंकि तारा इतनी दूरी पर है कि पृथ्वी अपने परिक्रमा-पथ पर किसी बिन्दु पर भी हो, सन्दर्भ तारे से प्राप्त प्रकाश किरणें समानान्तर दिखाई देंगी, परन्तु सूर्य इतनी देर में ठीक दक्षिण दिशा में अर्थात् सन्दर्भ तारे की सीध में नहीं पहुंच पाता है.

सारणी-2. विभिन्न तारों का ध्रुवतारा काल

तारे का नाम	वह काल जिसमें वह ध्रुवतारे के रूप में रहेगा
लाइरा समूह का वेगा तारा	13000 वर्ष ई० पू०
ड्रैको तारा समूह का यूबन तारा	3000 वर्ष ई० पू०
ऐल्फा उर्सा माइनर तारा समूह का पोलारिस	वर्तमान समय में
अल्फासीफियो	7000 ई० पू०
सिगनस तारा समूह का डेनेब तारा	10000 ई० पू०

सूर्य की सीध में आने के लिए पर्यवेक्षक को 1° का कोण तय कर ग बिन्दु पर आना पड़ेगा, जिसमें चार मिनट अधिक समय लगेगा.

सौर दिवस की लम्बाई में प्रतिवर्ष कुछ परिवर्तन होता है, क्योंकि पृथ्वी की परिपथीय गति तथा रविमार्ग पर सूर्य व पूर्ववर्त्ती विचलन में परिवर्तन आता है. कहने का तात्पर्य यह है कि सूर्य की तुलना में तार का दैनिक पश्चिमवर्त्ती विचलन होता है चूंकि हम लोगों की घड़ियां सौर दिवस मिली रहती हैं अतः प्रत्येक शाम को प्रत्येक तारा अपने पहले दिन की तुलना चार मिनट पहले उदय होता है तथा चा मिनट पहले अस्त भी होता है. उदाहरण के लिए मान लिया जाए कि कोई तारा अक्तूबर को 9 बजे रात को उदय होता है तो अगले दिन अर्थात् 3 अक्तूबर को वह 8 बज कर 56 मिनट पर उदय होगा. इसी प्रकार 30 दिनों के बाद अर्थात् पहली नवम्बर को वह तारा 7 बजे शाम को ही उदय होगा. यह तारा पहली नवम्बर को 9 बजे रात में अक्तूबर के स्थान की तुलना में लगभग 30 पश्चिम में स्थित होगा. इस प्रकार हम यदि तारों का पर्यवेक्षण जारी रखें तो किसी विशेष तारे के सम्बन्ध में भविष्यवाणी कर सकते हैं कि वर्ष की किसी खास तिथि को उस तारे का उदय किस समय होगा. चूंकि कोई भी तार अपना दैनिक यात्रा मार्ग लगभग 24 घंटे में पूरा करता है अतः वह एक घंटे में अपने यात्रा मार्ग का 1/24 भाग तय करेगा.

यदि प्रत्येक रात को किसी विशेष तारे के स्थान का किसी विशेष समय पर पर्यवेक्षण हम करें तो पाएंगे कि प्रत्येक मास में लगभग 30° का विचलन होता है, तथा इस प्रकार पू एक वर्ष भर में उस तारे का स्थान 360° घूमकर पुनः उसी स्थान पर आ जाता है वार्षिक विचलन उसी दिशा में होता है जिस दिशा में दैनिक विचलन होता है. ता सम-केन्द्रीय (कौंसेंट्रिक) वृत्ताकार पथों प

सारणी-1. विभिन्न खगोलीय पिण्डों की गतियां तथा उनसे संबंधित काल

खगोलीय पिण्डों की गति	संबंधित काल
पृथ्वी का अपने अक्ष पर एक घूर्णन	23 घंटे 56 मिनट तथा 4.9 सेकंड
पृथ्वी पर के किसी बिन्दु का सूर्य के सामने से चलकर एक घूर्णन के बाद फिर सूर्य के सामने आगमन	24 घंटे
चन्द्रमा का नाक्षत्रिक मास	27.3 दिन
चन्द्रमा का संयुति मास (साइनौडिक मंथ)	29.5 दिन
सूर्य के चारों ओर बुध का परिक्रमा काल	88 दिन
सूर्य के चारों ओर शुक्र का परिक्रमा काल	225 दिन
सूर्य के चारों ओर पृथ्वी का परिक्रमा काल	365 दिन, 6 घंटे, 9 मिनट, 10 सेकंड
सूर्य के चारों ओर मंगल का परिक्रमा काल	687 दिन
सूर्य के चारों ओर बृहस्पति का परिक्रमा काल	12 वर्ष
सूर्य के चारों ओर शनि का परिक्रमा काल	29.5 वर्ष
सूर्य के चारों ओर यूरेनस का परिक्रमा काल	84 दिन
सूर्य के चारों ओर नेपच्यून का परिक्रमा काल	165 वर्ष
सूर्य के चारों ओर प्लूटो का परिक्रमा काल	248 वर्ष
पृथ्वी के ध्रुवों का 360° का भ्रमण काल	25800 वर्ष
आकाशगंगा के केन्द्र के चारों ओर सूर्य के एक चक्कर पूरा करने का काल	20 करोड़ वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलते नजर आते हैं. ध्रुव तारे से ऊपर स्थित तारे दाएं से बाएं चलते दिखाई देते हैं.

पृथ्वी के सबसे निकट स्थित खगोलीय पिण्ड है इसका अपना ही उपग्रह चन्द्रमा. चन्द्रमा भी अपनी धुरी पर लगातार घूमता रहता है तथा साथ ही पृथ्वी के चारों ओर एक अंडाकार परिपथ पर परिक्रमा करता रहता है. चन्द्रमा को अपने अक्ष पर एक घूर्णन में 27.3 दिन तथा पृथ्वी के चारों ओर एक परिक्रमा पूरी करने में 29.5 दिन का समय लगता है. 27.3 के समय को नाक्षत्रित (साइडिरियल) मास कहते हैं तथा 29.5 दिन के समय को (अर्थात एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक) संयुति (साइनोडिक) मास कहते हैं.

सौर परिवार के ग्रहों का भी सूर्य के चारों ओर का परिक्रमा काल निश्चित है जैसे बुध को 88 दिन, शुक्र को 225 दिन, मंगल को 687 दिन, बृहस्पति को 12 वर्ष, शनि को 29.5 वर्ष, यूरेनस को 84 वर्ष, नेपच्यून को 165 वर्ष तथा प्लूटो को 248 वर्ष का समय सूर्य की परिक्रमा करने में लगता है. इसी प्रकार ग्रहों के अतिरिक्त सूर्य की परिक्रमा करने वाले खगोलीय पिण्डों में शामिल हैं धूमकेतु. धूमकेतु भी सूर्य की परिक्रमा निश्चित समय में दीर्घवृत्तीय परिपथ में करते हैं. उदाहरण स्वरूप एक ऐसा ही धूमकेतु है—हेली धूमकेतु जो प्रत्येक 75 वर्ष के अंतराल पर दृष्टिगोचर होता है. अंतिम बार यह धूमकेतु सन् 1985 ई० में देखा गया था. वैसे इस धूमकेतु के दृष्टिगोचर होने का इतिहास 240 वर्ष ई० पू० से ही मिलता है.

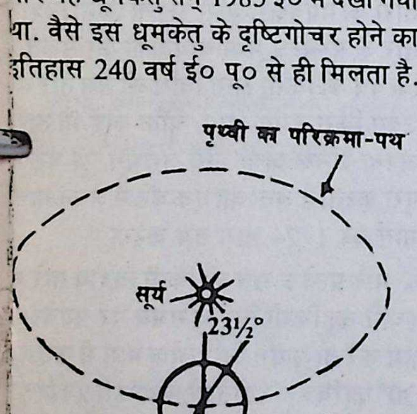

चित्र-2

पृथ्वी जब सूर्य की परिक्रमा करती है तो उसका अक्ष दीर्घवृत्ताकार परिपथ के तल के ऊपर डाले गए लम्ब से 23½° झुका रहता है. इसके परिणामस्वरूप परिक्रमा पथ किसी भाग में यदि पृथ्वी का उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य की ओर झुका रहता है तो दूसरा भाग में दक्षिणी गोलार्द्ध सूर्य की ओर झुकेगा. यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु में उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़े होते हैं तथा रातें छोटी होती हैं क्योंकि यह गोलार्द्ध सूर्य की ओर झुका रहता है जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में ठीक इसका उल्टा होता है (चित्र-2).

हमारी पृथ्वी सूर्य के गिर्द अपने परिपथ पर लगभग 28 किलोमीटर प्रति सेकंड की दर से परिक्रमा करती है. यह इसकी औसत गति है. कभी-कभी पृथ्वी की गति इससे कम या अधिक भी हो सकती है. सूर्य आकाश गंगा (मिल्की वे) के केन्द्र के चारों ओर घूमता है तथा इसे एक चक्कर लगाने में करीब 20 करोड़ वर्ष लगते हैं. पृथ्वी भी सौर परिवार का एक सदस्य होने के नाते सूर्य के साथ-साथ आकाशगंगा के केन्द्र की परिक्रमा करती है. इस परिक्रमा के दौरान पूरे सौर परिवार की गति 180-260 किलोमीटर प्रति सेकंड रहती है.

साधारणतः लोगों की मान्यता रही है कि हमारी पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव के ठीक ऊपर खगोल में स्थित तारा (ध्रुवतारा) अचल है अर्थात् समय के अनुसार अपना स्थान नहीं बदलता है. परन्तु बात ऐसी नहीं है. ध्रुवतारा भी चलायमान है, परन्तु उसकी गति अत्यन्त मन्द है. हजारों वर्ष बाद इसकी स्थिति में परिवर्तन दिखाई पड़ता है. वस्तुतः आज भी ध्रुवतारा ठीक भौगोलिक उत्तर दिशा में नहीं है, वरन् उससे 1° दूर है. यह तथ्य एक प्रयोग द्वारा साबित किया जा सकता है. यदि हम ध्रुवतारे का चित्र एक फोटो कैमरे के लम्बे एक्सपोजर से लें तो उसकी गति गोलाकार अंकित हो जाएगी. सर्वप्रथम यूनानी खगोलविद् हिपकिस ने आज से 2200 वर्ष पूर्व सिकन्दरिया स्थित वेधशाला में अध्ययन कर इस तथ्य का पता लगाया था. उस काल में सिकन्दरिया स्थित वेधशाला संसार में सर्वोत्तम मानी जाती थी. हिपकिस अपने अध्ययनों से इस निष्कर्ष पर

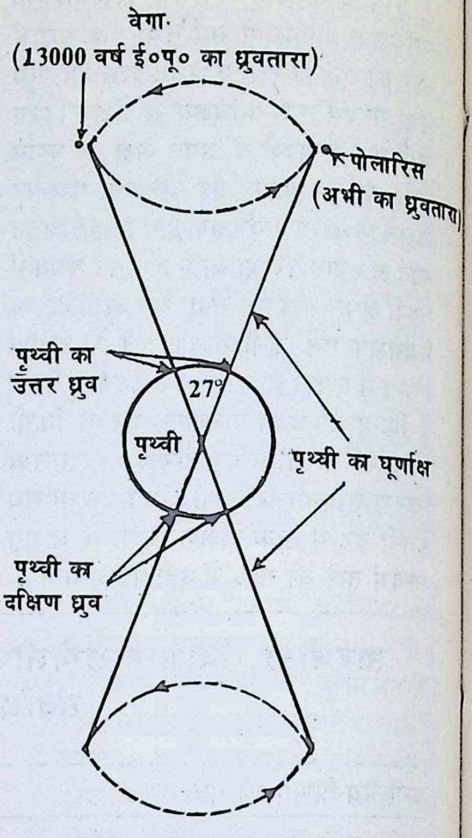

चित्र-3

पहुंचा कि पृथ्वी की धुरी भी स्थिर नहीं है. वह अपनी दिशा बदलती रहती है. पृथ्वी के अक्ष के इस प्रकार झूलने या लड़खड़ाने को अयन (प्रीशीशन) कहा जाता है. इस क्रिया के दौरान पृथ्वी के घूर्णाक्ष (ऐक्सिस आफ रोटेशन) की दिशा में क्रमिक परिवर्तन आता है, तथा विषुव (इंक्विनौक्स) धीरे-धीरे पश्चिम दिशा में बढ़ता जाता है. अयन दो प्रकार के होते हैं—चान्द्र सौर अयन (लूनी सोलर प्रीशीशन) तथा ग्रहीय अयन (प्लेनेटरी प्रीशीशन). कुल अयन उपर्युक्त दो अयनों का योग है. चान्द्र-सौर अयन ही मुख्य अयन है. ग्रहीय अयन उसकी तुलना में नगण्य है. चान्द्र-सौर अयन की खोज सर्वप्रथम हिप्पार्कस नामक वैज्ञानिक द्वारा 125 वर्ष ई० पू० में की गई थी.

अयन से ही संबंधित एक शब्द है विषुव (इक्विनौक्स). विषुव शब्द के दो अर्थ होते हैं. पहले अर्थ के अनुसार विषुव उन दो बिन्दुओं में से किसी को भी कहा जा सकता है जिस पर रविमार्ग (एक्लिप्टिक) खगोलीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषुवत (सेलेश्चियल एक्वेटर) को काटता है. रविमार्ग का अर्थ है तारों के बीच सूर्य का पूर्ववर्ती वार्षिक परिक्रमा पथ. दूसरे अर्थ के अनुसार विषुव वे दोनों तिथियां हैं जिस दिन रविमार्ग खगोलीय विषुवत को काटता है. रविमार्ग पर वार्षिक यात्रा के दौरान सूर्य खगोलीय विषुवत वृत्त को दो बार मार करता है. यही कारण है कि प्रत्येक वर्ष में दो विषुव होते हैं. वसन्त विषुव (वर्नल इक्विनौक्स) 21 मार्च को होता है जबकि शरद विषुव (औटम इक्विनौक्स) 23 सितम्बर को.

पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव (तथा साथ-साथ दक्षिणी ध्रुव) $23\frac{1}{2}^\circ$ कोण की त्रिज्या में एक वृत्ताकार पथ बनाता है जिससे पृथ्वी का अक्ष दो शंकुओं का निर्माण करता है जिसका शीर्ष पृथ्वी के केन्द्र पर होता है (चित्र- 3). वृत्ताकार पथ पर एक परिक्रमा पूरी करने में पृथ्वी के ध्रुवों को लगभग 25,800 वर्ष का समय लगता है. ध्रुवों की इस यात्रा के दौरान खगोल में स्थित विभिन्न तारे ध्रुव की सीध में आते हैं तथा ध्रुवतारे का रूप लेते हैं. अभी की स्थिति में पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव पोलेरिस नामक तारे की सीध में है. इसी को ध्रुवतारा कहा जाता है. परन्तु 13000 वर्ष ई० पू० लाइरा तारा समूह का वेगा नामक तारा उत्तरी ध्रुव की सीध में था. 3000 वर्ष ई० पू० ड्रैको तारा समूह का यूबन नामक तारा उत्तरी ध्रुव की सीध में था. 7000 ई० में अल्फासीफियो नामक तारा ध्रुवतारा बनेगा जबकि 10000 ई० में सिगनस तारा समूह का डेनेब नामक तारा ध्रुवतारा बनेगा. आज से करीब 25800 वर्ष बाद ऐल्फा उर्स माइनर तारा समूह का पोलारिस नामक तारा पुनः ध्रुवतारा बन जाएगा.

अयनों के कारणों की व्याख्या आइजक न्यूटन द्वारा की गई थी. उसने बताया था कि पृथ्वी के विषुवतीय उभार पर सूर्य तथा चन्द्रमा के आकर्षण बल के कारण अयन उत्पन्न होते हैं. अयन गति को दो-तिहाई हिस्सा चन्द्रमा के आकर्षण बल के कारण उत्पन्न होता है जबकि एक तिहाई हिस्सा सूर्य के आकर्षण बल के कारण. सूर्य तथा चन्द्रमा द्वारा उत्पन्न अयन-गतियों का अनुपात वही है जो अनुपात इनके आकर्षण बल के कारण उत्पन्न समुद्री ज्वारों में है. पृथ्वी के विषुवतीय उभार को पृथ्वी रूप गोले के ऊपर पदार्थ का एक अतिरिक्त वलय माना जा सकता है जिस पर सूर्य एवं चन्द्रमा का आकर्षण बल एक बलयुग्म उत्पन्न करता है. यह बलयुग्म पृथ्वी के विषुवतीय उभार को रविमार्ग के तल में घुमाने का प्रयत्न करता है, क्योंकि दोनों आकर्षण बल रविमार्ग के तल में ही स्थित होते हैं. यदि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती नहीं होती तो यह बलयुग्म पृथ्वी को इस प्रकार घुमा देता कि उसकी विषुवत रेखा रविमार्ग से संपाती (कोंसिडेंट) हो जाती. परन्तु अपनी धुरी पर घूर्णन करती हुई पृथ्वी एक घूर्ण स्थायी (जाइरोस्टैट) के समान बर्ताव करती है. इस कारण इसका अक्ष बलयुग्म के तल के लम्बवत स्थित होकर अपना काम करता है. चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा-पथ का तल रविमार्ग के तल से 5° का कोण बनाता है. परन्तु यह शान्त नहीं रहता. इसका पात (नोड) रविमार्ग के चारों ओर एक चक्कर 18.6 वर्ष में पूरा करता है. यदि काफी लम्बे समय का औसत लिया जाए तो रविमार्ग से चन्द्रमा का परिक्रमा पथ का विचलन निरस्त हो जाता है. तारों के बीच ध्रुव का मार्ग कुछ हद तक वक्र (साइनुअस) होता है. खगोलविदों के मतानुसार औस दीर्घकालिक गति को अयन कहा जाता जबकि नियतकालिक उतार-चढ़ाव विदोलन (न्यूटेशन) कहा जाता है.

पृथ्वी का ध्रुव जैसे-जैसे रविमार्ग के के के चारों ओर घूमता है वैसे-वैसे विष (इक्विनौक्स) भी रविमार्ग के चारों अ घूमता जाता है, तथा एक पूर्ण चक्कर 25800 वर्ष का समय लगता है. विषुवां (राइट-असेंसन) तथा देशान्तर दोनों संगणना विषुव को शून्य मानकर की गई इस हिसाब से नाक्षत्रिक देशान्तर $1'$ (ए अंश कोण का साठवां भाग) प्रति वर्ष की से शनैः शनैः बढ़ता है. विषुवांश पर इस प्रभाव कुछ अधिक जटिल है. वसन्त विष को ही प्रायः लोग मेष राशि का प्रथम बि मानते हैं. परन्तु अब यह स्थान मीन राशि पड़ता है. ध्यान देने योग्य बात यह है वि विषुव अयनों (प्रीशीशन आ इक्विनौक्सेन) का मौसम पर कोई प्रभा नहीं पड़ता है.

उपर्युक्त चान्द्र सौर अयनों के अतिरि ग्रहीय अयन भी होते हैं. परन्तु इनका मह कम माना गया है. इसका कारण यह है विभिन्न ग्रहों द्वारा उत्पन्न विक्षोभ के कार पृथ्वी के परिपथ के तल में शनैः श परिवर्तन आता है, जबकि चान्द्र सौर अय के कारण विषुवत के स्थान में परिवर्तन स्प रूप से देखा जाता है. परन्तु दोनों ही प्रकार चयन विषुव को प्रभावित करते हैं. सारणी- में विभिन्न खगोलीय पिंडों की गतियों उनसे संबंधित काल दिखाए गए सारणी-2 में विभिन्न तारों के ध्रुवतारा ब का समय दिखाया गया है.

लेखकों से निवेदन

यदि आप विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न विषयों पर हिन्दी में सशक्त, उच्च स्तरीय मौलिक लेखन करने में सक्षम हैं तो आप 'आविष्कार' के माध्यम से अपनी लेखनी को अभिव्यक्ति दे सकते हैं. कृपया सम्पर्क करें : वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर कम्युनिटी सेंटर, कैलाश कालोनी एक्स्टेंशन, नई दिल्ली-110048

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या होता है कृत्रिम रबड़?

□ डा० अजय कुमार चतुर्वेदी

□ पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार मनुष्य को रबड़ की जानकारी बहुत पहले से है क्योंकि वह इसका उपयोग प्राचीन काल से करता रहा है और आज भी कर रहा है. स्पेनवासी कोट के कपड़े को जलरोधी बनाने के लिए रबड़ के पेड़ से प्राप्त दूध का उपयोग करते थे. धीरे-धीरे रबड़ का उपयोग बढ़ता गया, फलस्वरूप मांग भी बढ़ी.

सन् 1820 में जेम्स लेट हेनकोक ने लंदन में संसार का पहला रबड़ कारखाना स्थापित किया. यह रबड़ बहुत मुलायम था. इसे कठोर बनाने की विधि 1839 में एफ० डब्ल्यू० ल्यूडर्स ड्रोफ तथा एन० हेवार्ड, चार्ल्स गुडइयर ने खोज निकाली. इस विधि को बल्केनाइजेशन कहते हैं. 1841 में चार्ल्स गुडइयर ने अमेरिका में रबड़ बनाने का कारखाना स्थापित किया. 1876 से रबड़ के बने हुए रेनकोट, टायर आदि का उपयोग शुरू हुआ. आज इसका उपयोग अत्यधिक हो रहा है.

आरम्भ में रबड़ को पेड़ से प्राप्त किया जाता था. रबड़ के पेड़ को ही विधा ब्रासीलिएन्सिस के नाम से जानते हैं. इस पेड़ के तने से दूध जैसा सफेद द्रव (लेटेक्स) निकलता है. रबड़ इसी से प्राप्त किया जाता है. लेटेक्स में एसीटिक अम्ल मिला कर गर्म करते हैं जिससे ठोस पदार्थ बन जाता है. इसे ही रबड़ कहते हैं. चूंकि यह पेड़ से प्राप्त होता है अतः. यह प्राकृतिक रबड़ कहलाता है.

प्राकृतिक रबड़ जटिल कार्बनिक पदार्थ है. इसमें केवल कार्बन व हाइड्रोजन होते हैं अतः यह जटिल हाइड्रोकार्बन है. इसकी इकाई आइसोप्रीन है जो टरपीन में पाई जाती है. अतः रबड़ टरपीन हाइड्रोकार्बन भी कहलाती है. रबड़ का मुख्य गुण लचीलापन है. इस कारण रबड़ की व्यावहारिक उपयोगिता बहुत है. इसे जूतों के क्रीप सोल बनाने के काम में लाते हैं, रबड़ चूंकि कार्बनिक घोलकों में घुलनशील है इस कारण चिपकाने वाले पदार्थ के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है.

रबड़ का रंग की रेजिन के रूप में, छाते, रेनकोट, गारमेन्ट, बैग, फूड पेकिंग, शावर करटेन, वेल्ट आदि बनाने में भी उपयोग होता है. कुछ रबड़, अग्नि, रसायन अवरोधक रंग बनाने में भी काम आता है.

कुछ पदार्थ मुलायम रबड़ से नहीं बनाए जा सकते. अतः रबड़ को कठोर बनाया जाता हैं. इस विधि को बल्केनाइजेशन कहते हैं. इस विधि में रबड़ को गन्धक के साथ 150° सेल्सियस ताप पर कई घंटे गर्म किया जाता है. जिससे रबड़ कठोर व ज्यादा लचकदार हो जाता है. इस रबड़ का उपयोग गैस्कट, टायर, ट्यूब, पर्स, रबड़ वेन्ड, हाथ के दस्ताने, कुशन आदि बनाने में किया जाता है. इन उपयोगों के कारण रबड़ की बहुत मांग है. इसी से आर्थिक जीवन में प्राकृतिक रबड़ का महत्वपूर्ण स्थान है.

प्राकृतिक रबड़ जिन पेड़ों से प्राप्त होता है वे हर जगह नहीं होते. इन्हें मलाया, जावा, श्रीलंका, भारत, थाइलैंड, दक्षिणी अमेरिका, मैक्सिको में पाया जाता है. इन पेड़ों से लेटेक्स इकट्ठा करके रबड़ बनाने के लिए कारखानों को भेजते हैं. लेटेक्स का भण्डार करने की कठिनाई के कारण अक्सर इसकी पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति करना सम्भव नहीं होता. इसका रबड़ के उत्पादन पर असर पड़ता है. एक बहुपयोगी वस्तु होने के कारण इसकी बढ़ती मांग की कमी को पूरा करने के लिए कृत्रिम विधि से रबड़ जैसा नया पदार्थ विकसित किया गया. इस रबड़ को कृत्रिम रबड़ कहते हैं. कृत्रिम रबड़ का आविष्कार प्रथम विश्वयुद्ध के समय जर्मनी में हुआ.

कृत्रिम रबड़

कृत्रिम रबड़ प्राकृतिक रबड़ का प्रतिरूप नहीं है और न ही रचना में समान है. लेकिन गुणों में रबड़ के समान होने के कारण इसे कृत्रिम रबड़ कहते हैं. कृत्रिम रबड़ बहुलीकरण की क्रिया से प्राप्त होता है. बहुलीकरण की प्रक्रिया 'कोनज्यूगेटेड डाइईन्स' में होती है जो आइसोप्रीन के समान होते हैं. सबसे पहले 1909 में वैज्ञानिक फ्रिटस हॉफमेन ने कृत्रिम रबड़ बनाया. यह कृत्रिम रबड़ डाइमिथाइल ब्यूटाडाइईन के बहुलीकरण से बनाया जाता है. इसके बाद ब्यूना रबड़, न्यूप्रीन रबड़, पोलीयूरेथेन रबड़, सिलीकोन रबड़ आदि प्रकार के कृत्रिम रबड़ का आविष्कार हुआ.

इस प्रकार विभिन्न प्रकार के कृत्रिम रबड़ के विकसित हो जाने से रबड़ की उपयोगिता और महत्व और अधिक बढ़ गया. आज रबड़ एक जरूरत बन गया है. कृत्रिम रबड़ के भेद निम्न हैं :

बूना रबड़ : यह रबड़ ब्यूटाडाइईन का बहुलक है. इसलिए इसे पोलीब्यूटाडाइईन रबड़ कहते हैं. यह ब्यूटाडाइईन के बहुलीकरण से बनती है. इसलिए ब्यूटाडाइईन से 'बू' शब्द तथा सोडियम से सूत्र 'ना' (Na) को मिला कर बूना शब्द बनाया गया. इस रबड़ का आविष्कार जर्मनी में हुआ था. यह रबड़ दो प्रकार का होता है :

(1) बूना-एस और (2) बूना एन. यह वर्गीकरण इस बात पर आधारित है कि बूना के साथ सल्फर जुड़ा है या नाइट्रोजन.

बूना-एस : इस रबड़ को स्टायरीन ब्यूटाडाइईन रबड़ कहते हैं. बूना-एस रबड़ 75 प्रतिशत ब्यूटाडाइईन तथा 25 प्रतिशत स्टायरीन के कोपोलीमेराइजेशन से प्राप्त होता है.

इस रबड़ में द्विबन्ध होते हैं, अतः सल्फर के साथ गर्म करने पर वल्कनीकृत हो जाता है. यह अणु संकरित बहुलक बनाता है. बूना-एस रबड़ पर रगड़ का प्रभाव नहीं होता. इस कारण इसका उपयोग मशीनी सामान बनाने में करते हैं.

ब्यूटाडाइईन और स्टायरीन को −18° से 5° सेल्सियस ताप पर आम्सीकारक और अवकारक की उपस्थिति में प्रक्रिया करा कर जो रबड़ प्राप्त होता है उसे कोल्ड रबड़ कहते हैं.इस रबड़ की खिंचने की शक्ति व रगड़ न खाने की क्षमता बूना-एस से अधिक होती है.

बूना-एन : इस रबड़ को नाइट्राइल ब्यूटाडाइईन रबड़ कहते हैं. यह ब्यूटाडाइईन और विनायन सायनाइड या एक्राइलो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाइट्रायल के बहुलीकरण से प्राप्त होता है. इस रबड़ पर तेल रसायन और रगड़ का प्रभाव नहीं होता. अतः बहुत उपयोगी है.

ब्यूटाइल रबड़ : यह रबड़ 2 प्रतिशत ब्यूटाडाइईन और 98 प्रतिशत आइसोब्यूटाइलीन के सहबहुलीकरण से प्राप्त होता है. इस पर रसायनों व आक्सीकारकों का प्रभाव नहीं होता. बल्केनाइजेशन के उपरान्त इस रबड़ का उपयोग टायर के ट्यूब बनाने में किया जाता है. आइसो-ब्यूटायलीन की मात्रा अधिक होने के कारण इसे पोली आइसोब्यूटायलीन रबड़ भी कहते हैं.

नियोप्रीन या इयूप्रीन रबड़ : यह रबड़ क्लोरोप्रीन या कलोरी 2-ब्यूटाडाइईन 1,3 का बहुलक है क्योंकि क्लोरोप्रीन में उपस्थित द्विबंध बहुलीकरण की क्रिया करते हैं. क्लोरोप्रीन के कई अणु मिलकर बहुलक बनाते है. इस कारण इसे पोलीक्लोरोप्रीन भी कहते हैं.

इस रबड़ के बल्कनीकरण के लिए सल्फर की आवश्यकता नहीं पड़ती. इस रबड़ पर तेल, रसायन और आक्सीजन का भी प्रभाव नहीं होता. इसका उपयोग बिजली के तार के इन्सुलन, बोतलों के ढक्कन बनाने, जूते के तले बनाने और दस्ताने आदि बनाने के लिए किया जाता है.

पोलीआइसोप्रीन रबड़ : इसे आई आर रबड़ भी कहते हैं. आइसोप्रीन के बहुत से अणु आपस में जुड़कर बहुलक बनाते हैं. यह पोलीआइसोप्रीन बहुलक है. इसे कृत्रिम प्राकृतिक रबड़ के नाम से भी जानते हैं. इसकी रचना प्राकृतिक रबड़ की रचना के समान होती है. इसे यह नाम इस कारण दिया गया है कि प्राकृतिक रबड़ में आइसोप्रीन इकाई होती है जो कि यहां पर भी है. यह आइसोप्रीन संश्लेषित की गई है फिर बहुलीकरण क्रिया से पोलीआइसोप्रीन बहुलक बनता है. गुर्डरिच गुल्फ कम्पनी ने आइसोप्रीन के जिगलर उत्प्रेरक के साथ बहुलीकरण द्वारा जो पदार्थ बनाया उसे एमरोपोल एस-एन नाम से जानते हैं जबकि फायरस्टोन कम्पनी के आइसोप्रीन के बहुलीकरण द्वारा प्राप्त पदार्थ को जो लीथियम की उपस्थिति में होता है, कोरल रबड़ के नाम से जानते हैं.

लेक्टोप्रीन रबड़ : यह रबड़ इथायलएक्राइलेट तथा बीटा-क्लोरोइथायल विनायल ईथर के साथ सहबहुलीकरण की क्रिया द्वारा बनाया जाता है. इस पर आक्सीजन व मौसम का प्रभाव नहीं होता.

थायोकोल्स रबड़ : इस रबड़ में सल्फर होती है इस कारण इसे पोली सल्फाइड रबड़ भी कहते हैं. यह रबड़ संघनन बहुलीकरण क्रिया द्वारा बनाया जाता है. इसे बनाने के लिए कार्बनिक डाइ हेलाइड, अकार्बनिक पोलीसल्फाइड से संघनन बहुलीकरण किया जाता है.

इसे बल्केनीकृत करने के लिए धातु आक्साइड की आवश्यकता होती है. इस पर तेल, घोलक का प्रभाव नहीं होता अतः यह टैंक , ट्यूब, इंजन गेसकट आदि बनाने के काम आती है.

पोलीयूरिथेन रबड़ : इसे डाई आइसोसाइनेट तथा डाई हाइड्रिक एलकोहल के संघनन बहुलीकरण द्वारा प्राप्त करते हैं जैसे हेक्सामिथिलीन डाई आइसोसायनेट 1.6 तथा ब्यूटेन डाईओल 1.4 के संघनन बहुलीकरण से प्राप्त पदार्थ को पोलीयूरिथेन कहते हैं. पोलीयूरिथेन बहुलक को 2,4, डाई आइसोसायनाटोलीन तथा एडीपिक अम्ल और ग्लिसरोल के एस्टर के साथ क्रिया कर भी बना सकते हैं.

पोलीयूरिथेन रबड़ बहुपयोगी है. इसमें खिंचने की शक्ति अधिक होती है. इसी कारण पोलीयूरिथेन अच्छा 'इलास्टोमर' कहलाता है. इस पर ग्रीस, तेल, खरोंच, रगड़ का प्रभाव नहीं होता है. इसका उपयोग चमड़े के स्थान पर अधिक होता है. इसे नाच व जिमनास्टिक के फर्श की सतह को समतल करने में उपयोग करते हैं. पोलीयूरिथेन का मुख्य उपयोग लचकदार फोम बनाने में किया जाता है. फोम को गद्दा, तकिया, कुशन बनाने के काम में लाते हैं. जूते के तले भी इसी रबड़ के लगाए जाते हैं.

सिलीकोन रबड़ : यह कार्बन सिलीकोन बहुलक होता है. इसे एल्कायल क्लोरोसिलेन से जल अपघटन द्वारा प्राप्त किया जाता है. जल अपघटन से प्राप्त सिलोन्स, रेखीय, अ[ण] संकरित और सह बहुलीकरण की क्रिया क[र] सिलीकोन रबड़ बनाते है.

इस रबड़ पर रसायन का प्रभाव नही[ं] होता. अधिक ताप पर यह स्थिर रहता है[.] पानी में अघुलनशील है. इन विशेषताओं के कारण सिलीकोन रबड़ बहुपयोगी है. इस रबड़ का उपयोग बिजली के तारों को पानी अवरोधक बनाने व उच्च ताप पर तापरोधी बनाने के लिए किया जाता है. इसके द्रव को हाइड्रोलिक द्रव के रूप में उपयोग किया जाता है.

सिलीकोन द्रव में भरत पदार्थ (फिलर) मिलाकर सिलोकोन ग्रीस बना लेते हैं. इस ग्रीस का उपयोग वहां करते हैं जहां रसायन रक्षित ग्रीस की आवश्यकता पड़ती है. उच्च ताप पर रसायनों के प्रभावहीन होने की अवस्था में इस रबड़ का उपयोग किया जाता है. □

उत्तर (अपना वैज्ञानिक ज्ञान...)

1. (आ); 2. (आ); 3. (आ); 4. (अ) 5. (अ); 6. (ई); 7. (ई); 8. (इ) 9. (आ); 10. (अ); 11. (अ); 12. (ई) 13. (ई); 14. (अ); 15. (आ); 16. (ई) 17. (आ); 18. (इ); 19. (आ) 20. (आ); 21. (अ); 22. (ई); 23. (ई) 24. (इ); 25. (अ); 26. (आ); 27. (इ) 28. (अ); 29. (ई); 30. (इ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु करे, इंजन का काम

पहले ये सामान बटोरिए

एक बड़ा गुब्बारा, बाल-पेन का प्लास्टिक वाला ऊपरी खोल, धागे वाली लकड़ी की खाली रील, धागा, क्विक फिक्स, चाकू.

फिर ये तैयारी कीजिए

सबसे पहले तो आप बाल-पेन के ऊपरी खोल को ले लीजिए और चाकू की मदद से इस खोल के चार बराबर टुकड़े काटिए. काटते वक्त आपको इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि इस स्थिति में चाकू का फन बाल-पेन से 90 अंश का कोण बनाने की जगह 45 अंश का कोण बनाए ताकि कटने के बाद टुकड़े चित्र की तरह नजर आने लगें.

इसके बाद दो-दो टुकड़ों को कटी हुई तरफ से आपस में क्विक-फिक्स की मदद से जोड़ दीजिए. इस तरह आपकी 'L' आकार की दो नलियां तैयार हो गईं.

अब लीजिए धागे की रील और इसके बीच में तो एक छेद होता ही है. आपको इसमें एक और छेद करना है, पहले वाले छेद से होकर गुजरता हुआ परन्तु इससे ठीक 90 अंश पर. साथ ही आपको पहले छेद को एक ओर से बंद भी कर देना है.

दूसरे छेद पर रील के दोनों ओर बाल-पेन के खोल से बने 'एल' आकार वाली नलियां घुसाकर इनके चारों ओर क्विक-फिक्स लगाइए ताकि जोड़ वायुरुद्ध हो जाए. चित्र देखकर यह तो आप समझ ही गए होंगे कि 'एल' आकार वाली नलियों के मुंह एक-दूसरे के विपरीत दिशा में होने चाहिएं.

अब शुरू कीजिए अपना खेल

गुब्बारे में ढेर सारी हवा भर कर इसको पूरा फूला लीजिए. फिर गुब्बारे के मुंह को थोड़ा पीछे की ओर से पकड़कर एक हाथ की अंगुलियों से इसे दबाए रखिए और दूसरे हाथ की सहायता से इसका मुंह धागे की रील के

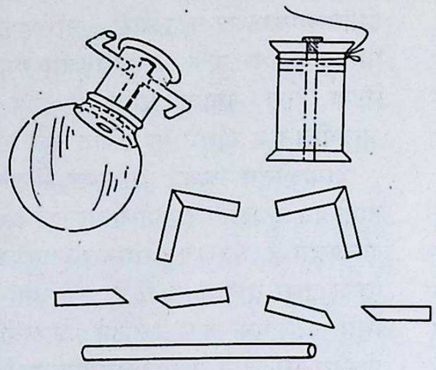

ऊपर उस तरफ चढ़ा दीजिए जिधर छेद का खुला हुआ मुंह है.

रील के दूसरे किनारे की तरफ पहले ही से एक धागा बांधकर रखना है आपको—यह ध्यान रखिएगा और इस धागे के सहारे रील को लटकाकर आप गुब्बारे के मुंह पर से अपनी अंगुलियां जैसे ही हटाएंगे गुब्बारा बिना किसी इंजन के अपने आप घूमने लगेगा.

गुब्बारा घूमता रहेगा, घूमता रहेगा जब तक कि इसकी सारी हवा नहीं निकल जाएगी यहां तक कि हवा समाप्त हो जाने के बाद भी यह कुछ देर घूमता रहेगा. फिर धीरे-धीरे रुकेगा और दोबारा विपरीत दिशा में फिर घूमना शुरू कर देगा.

यहां सिद्धान्त के तौर पर लागू होता है न्यूटन का तीसरा नियम यानी हर क्रिया के बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया होती है. दोनों 'एल' आकार वाली नलियों से निकलती हुई वायु इन्हें विपरीत दिशा में ढकेलती है और इस तरह गुब्बारा तब तक घूमता रहता है जब तक कि गुब्बारे से निकलती वायु का प्रभाव समाप्त नहीं हो जाता.

—आइवर यूशिएल

हाथ की गर्मी, पंख घुमाए

पहले ये सामान बटोरिए

पतंगी कागज (टिश्यू पेपर) या कार्बन पेपर का एक टुकड़ा, कैंची, पेंसिल.

फिर ये तैयारी करिए

साथ के चित्र में दिखाई गई आकृति पर पतंगी कागज रखकर इसे पेंसिल से पतंगी कागज पर ट्रेस कर लीजिए. ट्रेसिंग करना तो जानते हैं न आप? अरे हां भई, महीन कागज में नीचे की जो आकृति नजर आ रही है उसी पर सावधानी के साथ पेंसिल घुमा देनी है आपको, बस!

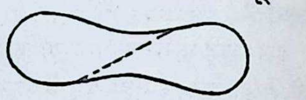

एक बात का ध्यान रखना जरूर रखिएगा कि बीच की बिन्दुओं वाली रेखा ठीक इसी स्थिति में हो जैसी यहां दिखाई गई है.

इसके बाद ट्रेस की हुई इस आकृति के बाहर चारों तरफ वाले कागज के बेकार भाग को कैंची की मदद से काटकर आपको अलग कर देना है और फिर बची हुई आकृति को बिन्दुवाली रेखा पर मोड़ते हुए इस रेखा के दोनों ओर के भागों को ऐसी स्थिति में ले आना है ताकि ये एक दूसरे से लगभग 90 अंश का कोण बनाए.

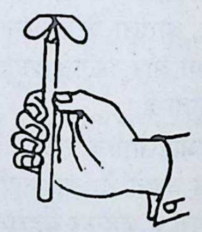

अब शुरू कीजिए अपना खेल

अब लीजिए पेंसिल और इसे छीलकर खूब नुकीला बना लीजिए. नोक बन जाए तो इस पेंसिल को एक हाथ में इस तरह पकड़िए जिससे इसका नुकीला सिर ऊपर की ओर रहे. इसी नुकीले सिरे पर आपको पतंगी कागज वाली पंख जैसी आकृति टिकानी है, पर टिकानी है पूरी तरह संतुलित अवस्था में

(शेष पृष्ठ 142 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

वस्तुपरक बहुविकल्पी प्रश्नों की इस कड़ी में विद्युत विज्ञान से संबंधित ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के स्तर के प्रश्न प्रस्तुत किए जा रहे हैं. प्रत्येक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए हैं. सही उत्तर का चुनाव करके उत्तर तालिका से मिलान कीजिए. मूल्यांकन 26-30 सही सर्वोत्तम; 20-25 सही उत्तम; 15-19 सही अच्छा; 10-14 सही सामान्य.

□ **विमलेश चन्द्र**

1. विद्युत आवेश की इकाई है:
   (अ) एम्पियर
   (आ) कूलाम
   (इ) वोल्ट
   (ई) वाट.

2. विद्युत वाहक बल की माप किससे की जाती है:
   (अ) अमीटर से
   (आ) वोल्टामीटर से
   (इ) वोल्टमीटर से
   (ई) गैल्वेनोमीटर से.

3. एक रेडियो स्टेशन 30 मीटर तरंग दैर्ध्य पर ध्वनि प्रसारित करता है. उसका कम्पनांक होगा:
   (अ) 16^6 c/s
   (आ) 10^7 c/s
   (इ) 10^8 c/s
   (ई) 10^9 c/s.

4. अधातु जो विद्युत तथा ऊष्मा की सुचालक है:
   (अ) ग्रेफाइट
   (आ) फास्फोरस
   (इ) आयोडीन
   (ई) सल्फर.

5. ट्रांजिस्टर का मूल सिद्धांत है:
   (अ) किसी इलेक्ट्रान प्राप्त करने वाली वस्तु से विद्युत सम्पर्क करना
   (आ) ध्वनि तरंगों का आयाम बढ़ाना
   (इ) विद्युत तरंगों को ध्वनि तरंगों में बदलना
   (ई) उपरोक्त में से कोई नहीं.

6. वह अधिकतम ताप जिस पर विद्युत युग्म की धारा का मान उच्चतम होता है उसे कहते हैं:
   (अ) उत्क्रमण ताप
   (आ) उच्चतम ताप
   (इ) ऊष्मा ताप
   (ई) उदासीन ताप.

7. विद्युत घंटी के बजते समय:
   (अ) उसमें विद्युत धारा निरन्तर प्रवाहित होती है
   (आ) विद्युत धारा पहले अधिक तथा बाद में कम प्रवाहित होती है
   (इ) स्थायी चुम्बक द्वारा कार्य होता है
   (ई) निरंतर विद्युत धारा प्रवाहित नहीं होती है.

8. चुम्बक के केन्द्र का चुम्बकत्व होता है:
   (अ) न्यूनतम
   (आ) अधिकतम
   (इ) शून्य
   (ई) अनन्त.

9. इलेक्ट्रान वोल्ट किसकी इकाई है:
   (अ) शक्ति की
   (आ) ऊर्जा की
   (इ) संवेग की
   (ई) आवेश की.

10. विद्युत चुम्बकीय तरंगें कौन तरंगे हैं:
   (अ) प्रकाश तरंगें
   (आ) ध्वनि तरंगें
   (इ) अनुदैर्ध्य तरंगें
   (ई) अनुप्रस्थ तरंगें.

11. विद्युत धारा कौन-सी राशि है:
   (अ) अदिश
   (आ) सदिश
   (इ) उदासीन
   (ई) अनुदिश.

12. गैसें विद्युत की सुचालक हैं :
   (अ) अधिक ताप पर
   (आ) कम ताप पर
   (इ) अधिक दाब पर
   (ई) कम दाब पर.

13. विद्युत बल्ब के तन्तु का ताप निम्न में से किस ताप पर अधिकतम होगा:
   (अ) लाल
   (आ) पीला
   (इ) नारंगी
   (ई) सफेद.

14. किसी परिपथ में किसी स्थान पर t सेकंड में n इलेक्ट्रान प्रवाहित हो रहे हों तो धारा का मान होगा:
   (अ) ne/t
   (आ) nt/e
   (इ) et/n
   (ई) n/et.

15. श्रेणीक्रम में जुड़े कई संधारित्रों के लिए निम्न में से क्या सबके लिए समान है:
   (अ) विभवान्तर
   (आ) आवेश
   (इ) ऊर्जा
   (ई) विद्युत क्षेत्र की तीव्रता.

16. RC का मात्रक क्या है? जहां R प्रतिरोध तथा C धारिता है:
   (अ) प्रतिरोध
   (आ) एम्पियर
   (इ) वोल्ट
   (ई) सेकंड.

17. किस ताप परिसर में प्रतिरोध ताप गुणांक लगभग नियत रहता है:
   (अ) 0° से० से 40° सेल्सियस तक
   (आ) —60° से० से 60° सेल्सियस तक
   (इ) 100° से० से 120° सेल्सियस तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ई) 120° से० से 150° सेल्सियस तक.

18. एक तार को खींच कर उसकी लंबाई में 0.1 प्रतिशत की वृद्धि की जाए तो उसके प्रतिरोध में कितने प्रतिशत की वृद्धि होगी:
(अ) 0.1 प्रतिशत
(आ) 0.01 प्रतिशत
(इ) 0.2 प्रतिशत
(ई) 0.02 प्रतिशत.

19. तापवृद्धि से धातुओं का प्रतिरोध बढ़ जाता है क्योंकि तापवृद्धि से:
(अ) एकांक आयतन में मुक्त इलेक्ट्रानों की संख्या बढ़ जाती है
(आ) इलेक्ट्रानों का श्रांतिकाल घट जाता है
(इ) इलेक्ट्रानों का द्रव्यमान बढ़ जाता है
(ई) इलेक्ट्रान नष्ट हो जाते हैं.

20. 16 ओहम के तार के दोनों सिरों को जोड़कर एक वृत्त बनाया गया है. वृत्त के किसी व्यास के सिरों का तुल्य प्रतिरोध निम्नलिंखित में से क्या होगा :
(अ) 2 Ω
(आ) 4 Ω
(इ) 8 Ω
(ई) 16 Ω.

21. एक वाह्य चुम्बकीय क्षेत्र में एक इलेक्ट्रान प्रवेश कर रहा है. यदि इलेक्ट्रान-चुम्बकीय क्षेत्र के अभिलम्बवत प्रवेश करे तो उसके गमन पथ की प्रकृति बताइए :
(अ) वृत्ताकार
(आ) सर्पीली (हेलिकल)
(इ) ऋजुरेखीय
(ई) अतिपरवलय.

22. लेंज नियमः
(अ) दाएं हाथ के नियम के समान ही है
(आ) से प्रेरित विद्युत वाहक बल का मान ज्ञात कर सकते हैं
(इ) ऊर्जा संरक्षण नियम से संबंधित नहीं है
(ई) प्रेरित धारा की दिशा बताने में सहायक है.

23. एस आइ प्रणाली में विशिष्ट आवेश का मात्रक है:
(अ) कूलाम • मीटर
(आ) कूलाम • किलोग्राम
(इ) किलोग्राम प्रति कूलाम
(ई) कूलाम/किलोग्राम.

24. संधारित्र को निम्न में से किसके लिए उपयोग किया जाता है :
(अ) KW
(आ) KVA
(इ) KVAR
(ई) KV.

25. सौर सेल का विद्युत वाहक बल होता है:
(अ) 0.26 v.
(आ) 2.2 v.
(इ) 1.5 v.
(ई) 1.86 v.

26. चुम्बकीय सुई होती है:
(अ) इलेक्ट्रोमैग्नेट
(आ) स्थायी चुम्बक
(इ) प्राकृतिक चुम्बक
(ई) अस्थायी चुम्बक.

27. जल का परावैद्युतांक होता है:
(अ) 40
(आ) 60
(इ) 80
(ई) 100.

28. उष्मीय प्रतिरोध का मात्रक है:
(अ) सेकेण्ड x° से० प्रति किलो कैलोरी
(आ) किलो कैलोरी/मीटर सेकंड से०
(इ) न्यूटन•मीटर/सेकंड
(ई) किलोग्राम बल-मीटर/सेकंड.

29. सिलीकान इस्पात का हिस्टेरिसिस गुणांक होता है:
(अ) 0.50
(आ) 1.00
(इ) 1.50
(ई) 1.91.

30. पृथ्वी की धारिता कितनी होती है:
(अ) 400 F
(आ) 412 μF
(इ) 711 μF
(ई) 905 F.

(उत्तर पृष्ठ 139 पर पढ़ें)

(पृष्ठ 140 का शेषांश)

और यह संतुलित अवस्था तभी मानी जाएगी जब पंख, पेंसिल की नोक पर बिल्कुल क्षैतिज अवस्था में रुक जाएगा. यानी नोक पंख के केन्द्र के ठीक नीचे आ जाएगी. इतना करने के बाद जरा ध्यान दीजिए और देखिए कि क्या होता है.

यदि आपका पंख ठीक तरह संतुलित अवस्था में आ गया है तथा पेंसिल की नोक के अलावा और कहीं किसी चीज को नहीं छू रहा तो यह अपने आप चक्कर लगाना शुरू कर देगा. इसमें हैरत की कहीं कोई बात भी नहीं है क्योंकि आप चाहे बंद खिड़की-दरवाजे वाले कमरे में चले जाइए और चाहे तो अपनी सांस भी रोक लीजिए पर यह पंख जो एक बार घूमना शुरू हो गया है बिना किसी ईंधन-पेट्रोल के बस घूमता ही रहेगा. हां, अगर आप इसे रुका हुआ देखना ही चाहते हैं तो एक काम कीजिए. पेंसिल को बिल्कुल सीधा ठीक पहले वाली स्थिति में ही किताबों आदि के सहारे फंसा कर खड़ा कर दीजिए और इस तरह अपने हाथ की पकड़ से पेंसिल को मुक्त कर दीजिए फिर देखिए, मजाल है कि पंख दो-चार चक्कर भी लगा जाए.

कैसे होता है यह तमाशा

वास्तव में होता यह है कि आपके हाथ की गर्मी से इसके आसपास की वायु प्रभावित होती है और इस तरह प्रभावित होकर ऊपर की ओर उठने वाली वायु की गति में इतनी शक्ति तो आ ही जाती है कि वह इस महीन कागज के पंख जैसे टरबाइन को घूमा सके.

— आइवर यूशिएल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SOMETHING MISSING?

You really can't afford to miss!

If you aren't receiving everyissue of ***Latest PROJECT Information*** *India's fastest growing magazine on projects, technologies, finance & management , then you are missing vital facts & valuable information which you can't afford to miss.*

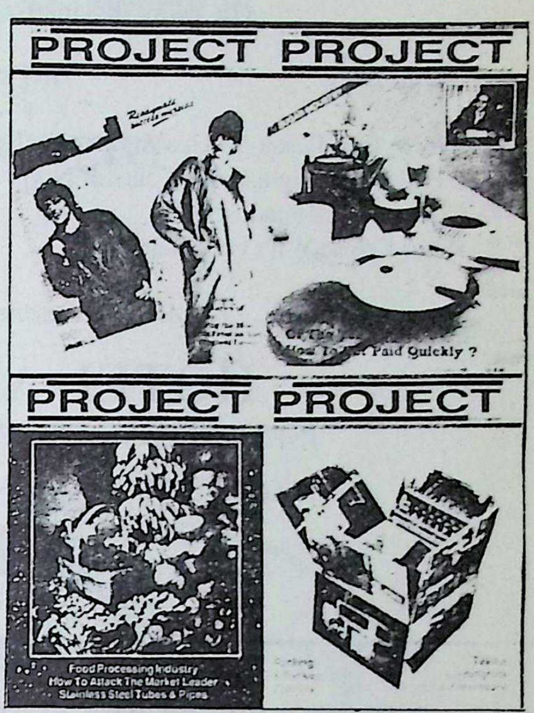

Act Immediately! Subscribe Now!!

- Only subscribers receive EVERY copy of **Latest PROJECT Information** by post at their door-step.
- Only subscribers have quick and consistent information at hand about technologies, projects, management, finance, business law, international trade, the industry leaders and the important trends in the **national** and **international** market place.

If staying abreast of new technology in every area of industry is **important** to you and the future of your company, you should not miss any issue of **Latest PROJECT Information.**

Fill up this coupon and send it to us with cheque, money order, demand draft or postal order for Rs. 85.00 / 160.00* favouring ***Dominique Data Links (P) Ltd.*** and we will rush you the copies of **Latest PROJECT Information** for one/two years (packing & forwarding included).

YES

I/We don't want to miss vital facts and valuable information. Please enroll my/our subscription for ONE/TWO YEAR (S) and rush me the copies of **Latest PROJECT Information** by post. I /we enclose a cheque / money order / demand draft / postal order for **Rs. 85.00 / 160.00** * towards my/our subscription charges.

Name____________________

Company____________________

Department or Position ____________________

Address____________________

Street____________________

Station __________ PIN __________

Signature__________ Date__________

Please fill clearly (BLOCK LETTERS) and send coupon to:

Circulation Manager
Latest PROJECT Information
27, South Patel Nagar, (UCO Bank Bldg.) New Delhi-110 008.
Phones : 583705, 5735995

*** Please add Rs. 10/- on an outside Delhi Cheque.All payments favouring: Dominique Data Links (P) Limited**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOLDEN GOA

Exciting Package Tour Only Rs. 799/- Per Head
On Twin Sharing Basis For 4 Days-3 Nights

INCLUDING

* Return Bus Ticket To Goa & Back By Luxury Bus From Bombay
* 2 Full Days' Sightseeing Tours of North & South Goa
* Continental Breakfast
* River Cruise With Folk Dances

For Advance Reservations, Please Contact :

HOTEL AZAVEDO'S

(NEAR CALANGUTE BEACH, CALANGUTE, GOA)

CORRESPONDENCE ONLY TO BOMBAY OFFICE :

203, Gulab, P. D'Mello Road, Bombay-400 001
Ph : Off : 2615321, 2619849, 6403834

FREE **FREE** **FREE**

Sales/Purchase Classified Advertisements
Published Free in
Colour & Chemicals Weekly

Yearly Subscription Rs. 300/-

Contact :

COLOUR & CHEMICALS WEEKLY

203, Gulab, 237 P. D'Mello Road, Bombay-400001
Tel : 2615321, 2619849

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कारक . . .

आपका आविष्कार एक बालक के समान है, जिसे चाहिए सुरक्षा और सहारा

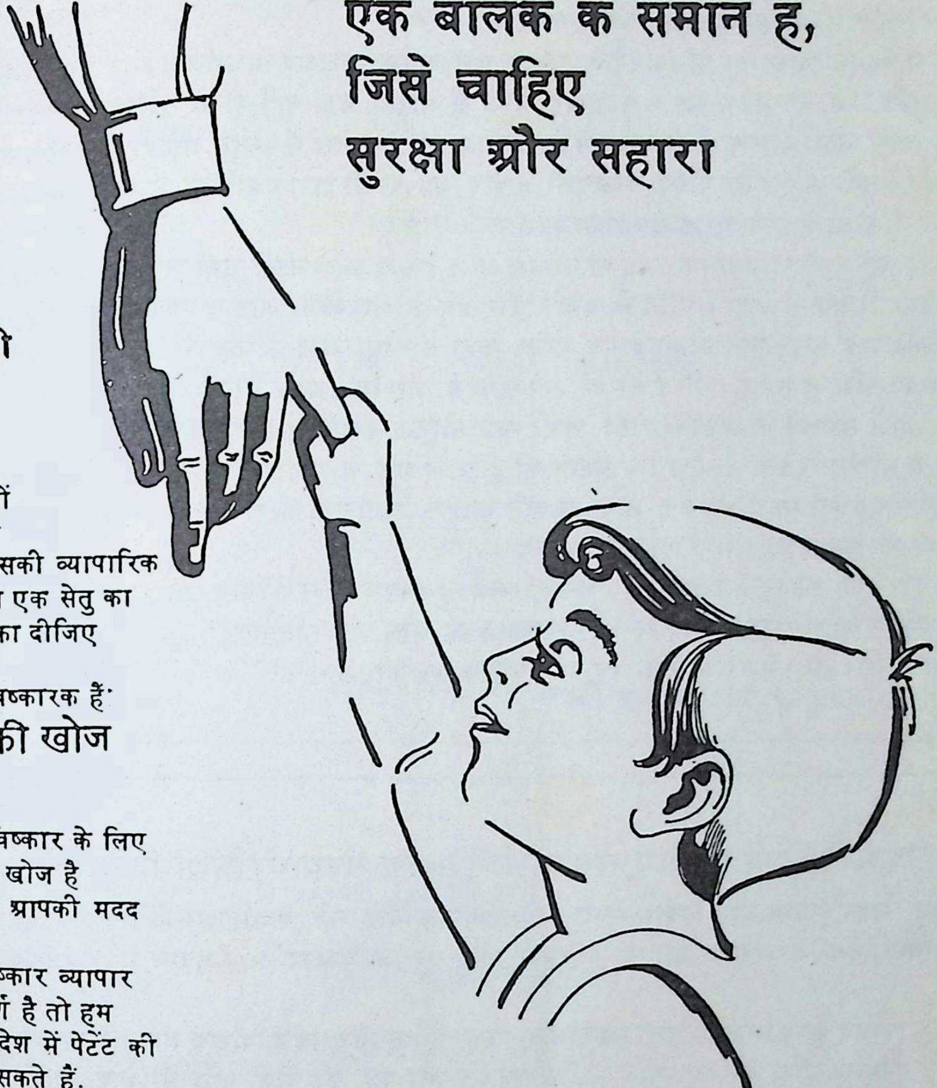

आइए एन आर डी सी के साथ बढ़िए

हमें अपने
विचारों और उद्यमों
उद्यमों व परिणामों
आविष्कार और इसकी व्यापारिक उपयोगिता के बीच एक सेतु का काम करने का मौका दीजिए

यदि आप एक आविष्कारक हैं
और अवसर की खोज में हैं,
या फिर अपने आविष्कार के लिए आपको बाजार की खोज है तो एन आर डी सी आपकी मदद कर सकता है.
यदि आपका आविष्कार व्यापार की संभावना से पूर्ण है तो हम इसे भारत और विदेश में पेटेंट की सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं.
आपका आविष्कार एन आर डी सी का पुरस्कार भी जीत सकता है, जो साल में दो बार, सराहनीय आविष्कारों के लिए दिया जाता है.
एन आर डी सी आपके आविष्कार पर आधारित पायलट संयंत्रों/प्रोटोटाइपों के विकास के लिए वित्तीय सहायता भी दे सकता है.
हम आपके आविष्कार के व्यापारीकरण के लिए उद्यमी की पहचान कर सकते हैं.

देर न कीजिए आज ही लिखिए !

एन आर डी सी
NRDC

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र
कैलाश कालोनी एक्स्टेंशन
नई दिल्ली-110048
फोन. : 6419945, 6432121, 6432627
टेलीग्राम : अनुसंधान विकास
टेलेक्स–031-71358

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लेखकों से निवेदन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. 'आविष्कार' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किए या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक का पूरा नाम, पता व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी आविष्कार/विकास/अनुसंधान या खोज कार्य के सार्वजनिक रुचि के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकता है.

4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रस्तुत अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में जहां कहीं रासायनिक तत्वों का उल्लेख आता है वहां उनके उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए जो आज रसायन विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय हो चुके हैं जैसे तांबे के लिए कॉपर और जस्ते के लिए जिंक, सीसे के लिए लेड और आक्सीजन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि. तांबा व सीसा शब्द कोष्ठक में दिए जा सकते हैं.

7. मापों को संक्षिप्त रूप में न लिखकर पूरे रूप में लिखें. जैसे कि० ग्रा० के लिए किलोग्राम, मि० मी० के लिए मिलीमीटर. इससे समझने में आसानी होगी. सभी माप मीट्रिक प्रणाली में दिए जाएं.

8. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि—हो तो अच्छा है.

9. लेख वरिष्ठ संपादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

10. 'आविष्कार' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.

विज्ञान प्रदर्शनी/मेलों में भाग लेने वाली शिक्षण संस्थाएं/विद्यार्थी कृपया ध्यान दें

राष्ट्रीय, राज्य, जिला और क्षेत्रीय स्तरों पर आयोजित विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विज्ञान प्रदर्शनियों/मेलों में पुरस्कृत मॉडलों, युक्तियों आदि पर 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए विचारार्थ प्रलेख आमंत्रित हैं.

प्रलेख पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थी द्वारा स्वयं लिखा होना चाहिए और संबद्ध शिक्षण संस्था के प्राचार्य/प्रधानाचार्य द्वारा अग्रसारित किया जाना चाहिए. साथ में 'पुरस्कार प्रमाण पत्र' की फोटो प्रति भी भेजी जानी चाहिए.

प्रलेख में पुरस्कृत मॉडल, युक्ति आदि को बनाने की संपूर्ण जानकारी का तरतीबवार विवरण होना चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए कि उक्त माडल, युक्ति आदि को बनाने का विचार विद्यार्थी के मस्तिष्क में कैसे उपजा और उसे बनाने के लिए विद्यार्थी ने तकनीकी जानकारी कैसे जुटाई.

प्रलेख की दो प्रतियां भेजें जो कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप की गई हों अथवा साफ-साफ लिखी हों. चित्र सफेद ड्राइंग कागज पर साफ-साफ बने होने चाहिएं. चित्रों की भी दो प्रतियां भेजें.

जिस लिफाफे में प्रलेख भेजा जाए उसके बाईं ओर मोटे अक्षरों में 'विज्ञान प्रदर्शनी/मेले में पुरस्कृत मॉडल' लिखें.

जिन प्रलेखों को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाएगा उनकी सूचना संबद्ध शिक्षण संस्था/विद्यार्थी को उपयुक्त समय पर कार्यालय द्वारा स्वयं भेज दी जाएगी. अस्वीकृत रचनाओं के बारे में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा.

प्रलेख वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन.आर.डी.सी.
NRDC

आविष्कार

अप्रैल 1991

वर्ष 21, अंक 4

प्रबंध निदेशक
एन०के० शर्मा
प्रमुख (आई०पी०पी० एवं इ०)
एम०पी० भटनागर
•
वरिष्ठ सम्पादक
डी०एन० भटनागर
सम्पादन सहायक
राघवेंद्र कुमार शर्मा
आर०के० अन्थवाल
•
उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन
मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा
•
व्यावसायिक चित्रकार
के०के० थपलियाल
वरिष्ठ चित्रकार
नबनीता भौमिक
•
विज्ञापन प्रतिनिधि
रमा रानी त्रिपाठी

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■ लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरूरी है.

एक प्रति : 3 रुपए
वार्षिक मूल्य : 30 रुपए
फोन: 6432580, 6419929, 6419945, 6419947, 6418615 टेलेक्स: 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'

इस अंक में

164 प्राकृतिक आपदाओं का सामना : कितने तैयार हैं हम?
—डा० जगदीप सक्सेना

170 तालाबों में मछली पालन
—डा० अरुण गोपाल झिंगरन
—डा० हेम चन्द्र जोशी

174 भौतिक विज्ञान से इतर अनुशासनों पर प्रभाव
—डा० चन्द्र मोहन भंडारी

178 प्लेट-खिसकाव एवं महाद्वीपीय विस्थापन द्वारा काल-निर्धारण
—डा० विजय कुमार उपाध्याय

148 अपनी बात

149 आपकी प्रतिक्रियाएं

152 व्योमविहार

155 विज्ञान के विविध आयाम : रक्षा अनुसंधान 'राजभाषा विज्ञान संगोष्ठी-91'. निम्नतापीय अतिचालकता सिद्धांत के जनक : ब्रार्डीन. खिलाड़ियों की आहार संबंधी समस्याएं.

181 विज्ञान साहित्य चर्चा : हिन्दी में संदर्भ साहित्य : विश्व कोश हमारा पर्यावरण.

185 हम सुझाएं आप बनाएं : आई सी 741 और उस पर आधारित आडियो एम्प्लिफायर.

187 क्या और कैसे? : क्यों आते हैं हमें आंसू. क्यों झपकती हैं हमारी पलकें.

189 अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक आपदाएं कैसे घटाएं

प्रकृति के रहस्यों को उजागर करने के तमाम प्रयत्नों के बाद भी हम आज भी यह नहीं जानते कि उसका प्रकोप किस पर, कहां और कब कहर बन कर टूट पड़ेगा.

सदियों से मनुष्य प्रकृति की इस मार को सहता आ रहा है. इन हादसों में जान-माल का बेतहाशा नुकसान होता है. उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार सन् 1988 की एक वर्ष की अवधि में ही दुनिया को 74 भयंकर बाढ़ों, पांच चक्रवातों, 11 झंझावातों, 34 बड़े तूफानों, 17 भूस्खलनों, 17 भूकंपों, 18 सूखों और 162 बड़ी दुर्घटनाओं को झेलना पड़ा. इनमें हजारों जानें गईं, लाखों घायल हुए, करोड़ों बेघर हुए और अरबों रुपयों की सम्पति नष्ट हुई. हर साल कमोबेश यही कहानी दोहराई जाती है. मनुष्य द्वारा ढाए गए कहर इनके अलावा हैं.

आंकड़े यह भी बताते हैं कि विकास की गति बढ़ने के साथ-साथ प्रकृति के प्रकोपों की संख्या भी बढ़ती जा रही है और अब यह जरूरी समझा जा रहा है कि इनके कुप्रभावों को कम करने के लिए कुछ कारगर कदम उठाए जाएं. इसके लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि प्राकृतिक आपदाओं का सामना करने के लिए हम हर समय तैयार रहें.ऐसा विशेष कर निरीह जानों की रक्षा के दृष्टिकोण से बेहद जरूरी है.

संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में विश्व स्वास्थ्य संगठन इस काम को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अंजाम दे रहा है. इस समस्या की ओर विश्व भर का ध्यान केन्द्रित करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस वर्ष 7 अप्रैल को विश्व स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर 'प्राकृतिक आपदाओं' को मुख्य विषय चुना है. विश्व स्वास्थ्य संगठन हर ऐसी आपदा के समय सहायता जुटाने में प्रमुख भूमिका निभाता रहा है. इस कार्य के लिए यह अन्य अन्तरराष्ट्रीय संगठनों के साथ तालमेल भी बनाए रखता है. वैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राहत कार्य में तालमेल भी बनाए रखने और किसी भी सम्भावित आपदा से होने वाली क्षति को न्यूनतम स्तर पर रखने के लिए पूर्व योजना बनाने का कार्य 'यूनाइटेड नेशन्स डिजास्टर रिलीफ आर्गेनाइजेशन' (संयुक्त राष्ट्र आपदा राहत समन्वयक के कार्यालय) का है. हमारे देश में आपदाओं से निपटने का मुख्य दायित्व कृषि मंत्रालय और स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय के स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय पर है.

आपदाओं को कम करने और आपदा आ जाने पर उसके लिए तैयार रहने की आवश्यकता पर बल देने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने 1990 से 1999 तक के दस वर्ष की अवधि को 'अंतरराष्ट्रीय आपदा घटाओ दशक' घोषित किया है. इस अवधि में समन्वित अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम के अनुसार विशेषकर विकासशील देशों में आपदाओं के कारण होने वाले जान व माल के नुकसान तथा सामाजिक और आर्थिक व्यवधानों को कम से कम रखने के प्रयत्न पर जोर दिया जाएगा.

इन कार्यक्रमों द्वारा चाहे प्राकृतिक आपदाओं को रोक पाना संभव न भी हो तो भी हर सम्भावित परिस्थिति से निबटने के लिए उपयुक्त तैयारी बनाए रख कर आपदा के कारण होने वाली जान व माल की क्षति में कमी कर पाना तो संभव है ही और यही संदेश इस वर्ष के विश्व स्वास्थ्य दिवस के नारे में निहित है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ **आणविक जीव विज्ञान :** मैं 'आविष्कार' का नया पाठक हूं. मुझे यह पत्रिका काफी ज्ञानवर्धक व रोचक लगी. फरवरी 1991 का अंक पढ़ा. अपने आप में विज्ञान की नई-नई जानकारियां संजोए यह अंक था.

'आणविक जीव विज्ञान' पर लेखक का विचार काफी सराहनीय है. आविष्कार मंच में प्रकाशित 'इलेक्ट्रानिक घड़ी' के सेल को दोबारा प्रयोग में लाना भी हमारे लिए एक नई और उपयोगी सामग्री रही. 'क्या और कैसे' स्तम्भ भी रोचक लगा. आप पत्रिका में कोई ऐसा स्तंभ भी दें जिसमें पाठक अपने विज्ञान संबंधी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर सकें. **[बनारसी सेन 443/- 1, क्यू टाइप घमरिया, जबलपुर मध्य-प्रदेश पिन-482005].**

□ 'आविष्कार' का फरवरी 1991 अंक अपेक्षाकृत विलंब से प्राप्त हुआ. यों तो आविष्कार का प्रत्येक अंक ही ज्ञान का सागर होता है किन्तु 'आणविक जीव विज्ञान: अतीत, वर्तमान और भविष्य' के अंतर्गत आणविक जीव विज्ञान के बारे में तथ्यपूर्ण वदुर्लभ जानकारी मिली. इसके अलावा 'व्योम विहार','आविष्कार मंच' आदि स्थायी स्तंभ रोचक और ज्ञानवर्धक थे. **[प्रणय मिश्र, जमालपुर].**

□ मैं इस पत्रिका का एक पुराना पाठक हूं. मैं इसे बहुत ही चाव से पढ़ता हूं, क्योंकि इस पत्रिका के द्वारा मेरे बहुत से अपूर्ण विचारों को पूर्णता मिली है. इसके लिए मैं 'आविष्कार' का ऋणी हूं. यूं तो मैं सभी अंक पढ़ता हूं. लेकिन फरवरी 1991 अंक मेरे लिए कुछ ज्यादा सार्थक सिद्ध हुआ. खास तौर पर इस अंक में छपे लेख 'आणविक जीव विज्ञान: अतीत, वर्तमान और भविष्य' से मेरी अधूरे ज्ञान को पूर्णता मिली.

इस लेख के अलावा मुझे सभी अन्य लेख भी रोचक लगे. खास तौर पर मैंने 'खेल-खेल में विज्ञान' के जरिए 'आलू करे जेनरेटर का काम' का प्रायोगिक प्रयास किया जिसमें मुझे आसानी से सफलता प्राप्त हुई. मुझे अन्दर ही अन्दर एक खुशी का अनुभव हुआ. **[गोविन्द कुमार, किदवईपुरी पी० एण्ड टी० कालोनी, क्वा० नं० 15/II, पटना, बिहार]**

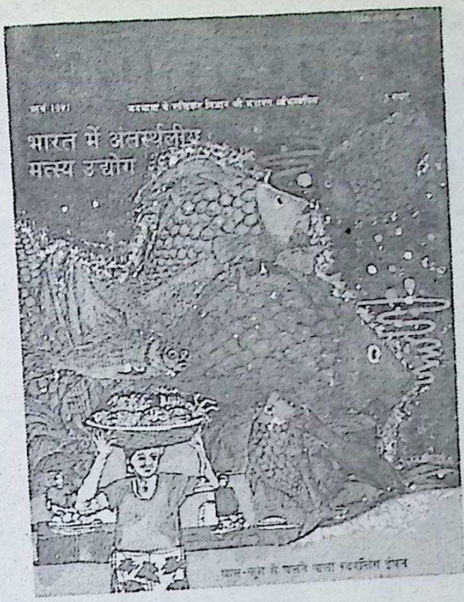

□ **व्योम विहार :** मैं 'व्योम विहार' नियमित पढ़ता हूं. मुझे 'आविष्कार पत्रिका' ज्ञान का भंडार लगती है. हमारे पूरे परिवार को यह पत्रिका बहुत प्रिय है. फरवरी 1991 अंक के अनुसार 'आलुओं से बल्ब जलाएं' तथा 'मिट्टी के फ्रिज का माडल' बनाया. दन दोनों ने ठीक काम किया. **[सत्यनारायण, कोली महावर, शिवपुरा भिवरिया, कुण्ड कोटा].**

□ मैं पिछले 5 वर्षों से इस आविष्कार पत्रिका का पाठक हूं. मुझे विज्ञान की पत्रिकाओं में से यह सबसे रोचक पत्रिका लगती हैं. मुझे इस पत्रिका के 'व्योम विहार', 'आविष्कार मंच',"हम सुझाएं आप बनाएं" आदि सभी स्तम्भ बहुत ही अच्छे व रोचक लगते हैं.

इस बार फरवरी 1991 के अंक में मुझे 'आलू करे जेनरेटर का काम' प्रयोग अच्छा लगा. मैं और मेरे मित्र चाहते हैं कि आप अपने 'हम सुझाएं आप बनाएं' स्तम्भ के अन्तर्गत 'ट्रांसमिटर बनाने की विधि' प्रकाशित करें जिसकी क्षमता 2 या 3 किलोमीटर तक की हो. **[मणिशंकर द्विवेदी और आशिश शुक्ला, बी/28ए, गोविन्द पुर कालोनी, तेलियर गंज, इलाहाबाद, (उ० प्र०)-211004].**

□ **आविष्कार करने की प्रेरणा:** मैं 'आविष्कार' का नया पाठक हूं. यह पत्रिका मुझे बेहद अच्छी लगती है. मुझे हर माह इसका बेसब्री से इन्तजार रहता है. इससे मुझे अमूल्य जानकारी मिलती है. साथ ही मन में आविष्कार करने की भावना जागृत होती है. नवम्बर 1990 के अंक में दो रंगों का उपयोग देखकर मन खिल उठा. 'आविष्कार मंच' पढ़कर आविष्कार करने को जी चाहता है. 'क्या और कैसे' में विद्युत कैसे उत्पन्न की जाती है तथा विद्युत परिपथ में फ्यूज क्यों उड़ जाता है, प्रशंसनीय रहे. 'व्योमविहार' पढ़कर खगोलशास्त्री की भांति आकाश में तारों को देखते हैं. मैंने इस अंक में 'बिना चोक के फ्यूज लाइट जलाने की जो विधि दी गई है मैंने उसी के अनुसार सर्किट बनाया है. उक्त विधि से फ्यूज ट्यूब बहुत अच्छी रोशनी देती है मगर 'प्रतिरोध' बहुत अधिक गर्म हो रहा है फलस्वरूप मैं इसे नहीं जला पा रहा हूं. कृपया कोई साथी बताने की कृपा करें. **[अशोक कुमार चन्द्रा सुपुत्र श्री कामता प्रसाद चन्द्रा, तालदेवटी, बाया बिर्रा, बिलासपुर (म० प्र०)-495601].**

□ **प्लास्टिक भी उगेंगे खेत में:** मैं आविष्कार का नया पाठक हूं. मैंने इसका पहला अंक अक्तूबर सन् 1990 में खरीदा था. उस दिन से मैं इस पत्रिका का नियमित पाठक हूं. मुझे और मेरे परिवारजनों को इसका बेसबरी से इन्तजार रहता है.

मैंने आविष्कार के माध्यम से 'फ्यूज ट्यूब लाइट जलाने', 'गैस लालटेन में सुधार', 'भाप इंजन माडल और पानी की टंकी भरने पर सूचित करने वाली युक्ति' आदि बनाने में अब तक सफलता प्राप्त की है.

मैंने आविष्कार के माध्यम से एक पत्र-मित्र भी बनाया है. अक्तूबर 1990 के अंक में 'प्लास्टिक भी उगेंगे खेत में' और नवम्बर 1990 में 'कैंसर की चपेट में भारत' पसन्द आए. **[जितेन्द्र मिश्र सुपुत्र बी० एस० मिश्र, 361 नई बस्ती, डौरली, मेरठ-250001 (उ० प्र०)].**

□ **समय के अंतरराष्ट्रीय तालमेल की कहानी:** आविष्कार मासिक का जनवरी 1991 अंक मिला. इस अंक में, 'रक्त कैंसर', 'समय के अंतरराष्ट्रीय तालमेल की कहानी' विषयों पर दी गई जानकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर. गुप्ता कृत लाभदायक पुस्तकें

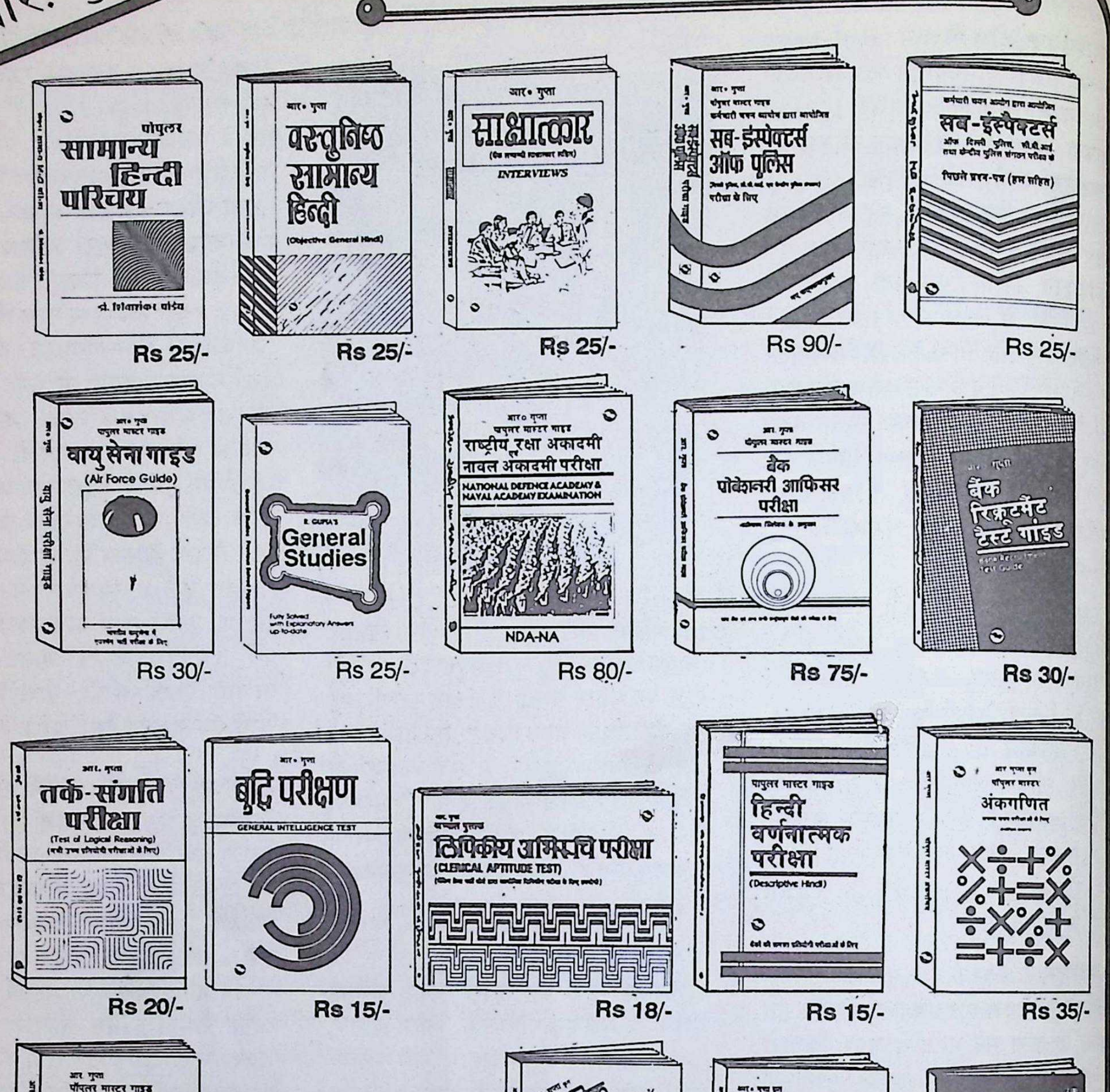

वी पी पी द्वारा पुस्तकें मंगाने के लिए 15 रु. का अग्रिम मनीआर्डर भेजें :

रमेश पब्लिशिंग हाउस 4457, नई सड़क, दिल्ली-6

'विश्व घटना चक्र' की नमूना प्रति मंगाने के लिए कृपया 3 रु. का मनीआर्डर भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानवर्धक है. 'खेल-खेल में विज्ञान', 'विज्ञान-प्रतिभा प्रतियोगिता' स्तम्भ भी पत्रिका को बहुआयामी रूप प्रदान करते हैं. **[गजानन पाण्डेय, सहायक निदेशक, राजभाषा इन्दिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केन्द्र; भारत सरकार' परमाणु ऊर्जा विभाग, कल्पाक्कम, (तमिलनाडु) -603102].**

□ **रक्त कैंसर :** जनवरी 1991 की पत्रिका में 'रक्त कैंसर' पर प्रकाशित लेख बहुत अच्छा लगा. कैंसर पर पिछले चार अंकों (सितम्बर, 1990 से दिसम्बर 1990) में प्रकाशित लेखों को भी मैंने ध्यान पूर्वक पढ़ा. इससे मुझे इस रोग के बारे में बहुत जानकारी मिली.

प्रस्तुत अंक में रक्त कैंसर के बारे में ये भी जानकारी मिली कि कुछ रासायनिक औषधियों के उपयोग से भी रक्त कैंसर हो जाता है. 'विज्ञान के विविध आयाम' के अंतर्गत प्रकाशित सभी लेख पसंद आए. समाचारिकी में 'भारत में अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण द्वारा रक्त कैंसर का सफल उपचार' की कहानी भी सराहनीय रही.

'अंतरिक्ष यात्रियों का जीवन कैसा होता है' लेख की जितनी भी तारीफ की जाए कम है. यदि 'हम सुझाएं आप बनाए' स्तंभ और होता तो पत्रिका में चार चांद लग जाते. पर पत्रिका में प्रकाशित अन्य रोचक और ज्ञानवर्धक लेख इस कमी को कुछ हद तक पूरा कर देते हैं. **[ओम प्रकाश प्रजापति, प्रजापति-छत्रावास, ग्वालियर-474002].**

□ **क्या कोई ऐसा उपकरण है :** मैं नियमित रूप से चार हिन्दी की प्रमुख विज्ञान पत्रिकाओं का पाठक हूं. किन्तु, फिर भी मेरे व्यवसाय से सम्बन्धित लेख किसी पत्रिका में नहीं छपता है. न ही कोई नवीन जानकारी उपलब्ध हो पाती है.

मैं मुख्यतः निजी स्तर पर इलैक्ट्रीशियन का कार्य करता हूं. मेरी मुख्य समस्या यह है कि मुझ जैसे लाखों व्यक्ति जो इस व्यवसाय में लगे हैं को अंडर ग्राउंड फिटिंग करते समय पाइपों के लिए (झिरी) काटने में छैनी हथौड़ी का सहारा लेना पड़ता है जो कि अत्यन्त श्रम साध्य व लम्बे समय का कार्य है. आपकी जानकारी के अनुसार क्या कोई ऐसा उपकरण है जो इस कार्य को शीघ्रता व सुगमता दे सके. यदि है तो इसकी सूचना दें. यदि ऐसा कोई उपकरण नहीं, तो मेरा निवेदन उन वैज्ञानिकों, तकनीशियनों से है, जो इस उपकरण को बना कर मुझ जैसे को मदद दे सकते है. **[राजेन्द्र कुमार दत्त, 56ए डी०डी०ए० फ्लैट्स, मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली-32].**

□ **सवाल सांस लेने का :** 'आविष्कार' के फरवरी, 1991 अंक पर मेरी प्रतिक्रिया.

[इरफान ह्युमन, कार्यालय-जन विज्ञान मिशन, 67, अन्टा, शाहजहांपुर 242001].

□ **मेरे सुझाव :** मैंने आपको पहले भी कई पत्र लिखें हैं, किन्तु एक भी पत्र नहीं छपा. अतः मैंने निराश होकर पत्र लिखना छोड़ दिया था. लेकिन फरवरी अंक में 'आपकी प्रतिक्रियाएं' स्तंभ के अंतर्गत आपके द्वारा पाठकों से की गई बात में मैं इतना प्रभावित हुआ कि पत्र के माध्यम से अपने सुझाव बताने को उत्सुक हो उठा. मेरे सुझाव हैं कि कृपया पत्रिका के विशेषांक भी प्रकाशित करें; प्रतियोगिता शुरू करें; हम सुझाएं आप बनाएं हर महीने दें; पृष्ठ बढ़ाएं, रंगीन चित्र छापें. **[कृष्ण कुमार अग्रवाल, निकट सरस्वती विहार, 35 शारदा निकेतन, दिल्ली-110034].**

□ मैं पत्रिका में कुछ सुझाव भेज रहा हूं : (1) पाठकों की प्रतिक्रियाओं के साथ उत्तर देने की भी व्यवस्था करें (2) 'आविष्कार मंच' या 'हम सुझाएं आप बनाएं' स्तंभों में जो युक्तियां देते हैं उनमें लगने वाले घटकों का पूरा जिक्र करें ताकि पाठक दुविधा में न रहे. (3) 'हम सुझाएं आप बनाएं' व 'आविष्कार मंच' जरूर दें इसके बिना पत्रिका अधूरी लगती है. यदि न मिले तो पुरानी ही दुबारा दे दें. 'छोटा ट्रांसमीटर कैसे बनाएं' की जानकारी दें. **[पवन कुमार त्रिपाठी 73, पत्ता बाग, फैण्डस कालोनी, इटावा-206001 (उ० प्र०)].**

□ मैं 'आविष्कार' का नियमित पाठक हूं. यह पत्रिका विज्ञान के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी और लाभदायक है. 'हम सुझाएं आप बनाएं' और 'आविष्कार मंच' इसके मुख्य उदाहरण हैं. मेरा सुझाव है कि कृपया टेलीविजन का 'बूस्टर' बनाने की विधि चित्र सहित छापें. मैं आविष्कार को अधिक ऊंचाइयों तक चढ़ता हुआ देखना चाहता हूं. **[मोहम्मद हैदर अली अन्सारी, महुदा बस्ती, धनबाद (बिहार)].**

विज्ञापन
का
उत्तम माध्यम
आविष्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ बोकिथ्य

इस अंक के साथ आपका यह स्तम्भ अपने दूसरे वर्ष में प्रवेश कर रहा है. हमें आशा है इस विधि में अनेक नए पाठक व्योमविहार से जुड़े होगें. उनकी सुविधा के लिए इस अंक में हम मानचित्र की उपयोग-विधि की चर्चा कुछ विस्तार के साथ कर रहे हैं. हमेशा की तरह ग्रहों की स्थितियों की चर्चा तथा चन्द्रमा की कलाओं का उल्लेख इस अंक में भी आप पाएंगे.

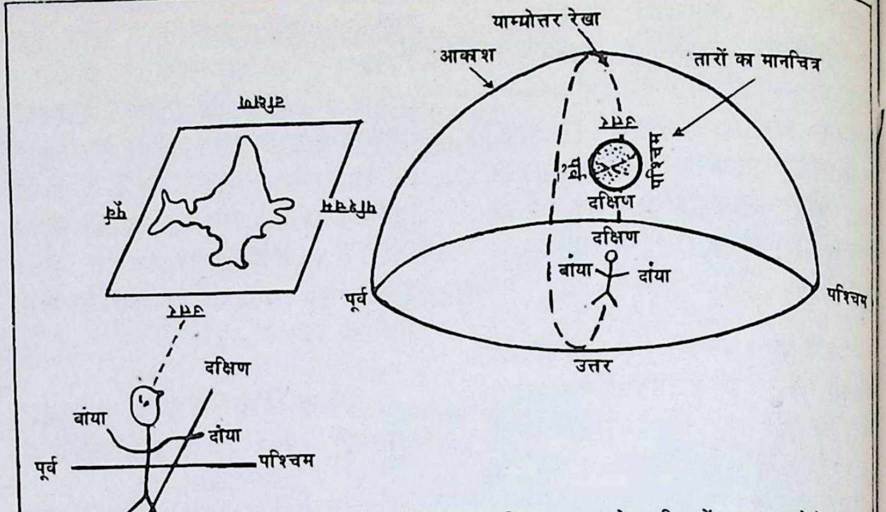

रेखाचित्र–1. भौगोलिक मानचित्र एवम् हमारे मानचित्र में साम्य तथा दोनों को दक्षिणोन्मुख अवस्था में आयोजित करने का तरीका

□ मानचित्र की उपयोग विधि की विस्तार से चर्चा करने का एक अन्य कारण यह भी है कि हमारे एक पाठक ने मानचित्र में प्रदर्शित दिशाओं के संबंध में अपनी शंका व्यक्त की है. संभवतः उन्होंने भौगोलिक मानचित्र की तुलना में हमारे मानचित्रों में पूर्व-पश्चिम के पलट कर दिखाए जाने के कारण ऐसी शंका की हो. अतः यह मानते हुए कि कुछ अन्य पाठकों के मन में भी यह विचार आया होगा हम इस बात को यहां कुछ स्पष्ट करना चाहेंगे. वैसे, जिन पाठकों ने व्योमविहार के मानचित्रों का उपयोग रात्रि में तारों-ग्रहों को पहचानने के लिए किया वे अब तक अनुभव कर चुके होंगे कि ये मानचित्र आकाश के साथ तथा भौगोलिक दिशाओं के साथ ठीक-ठीक समायोजित हो जाते हैं.

प्रश्न उठता है कि आखिर रहस्य क्या है? क्यों भौगोलिक मानचित्रों के विपरीत इनमें पूर्व-पश्चिम उलटकर दिखाए जाते हैं. इसे समझना अत्यंत सरल है. भौगोलिक मानचित्र पृथ्वी पर रखने पर भौगोलिक दिशाओं के साथ पूरी तरह समायोजित हो जाते हैं. पृथ्वी गोल है, हम उसकी सतह **पर** रहते हैं, उसे बाहर से देखते हैं, अतः पृथ्वी हमारे लिए एक उन्नतोदर (कॉन्वेक्स) गोला है. इसके विपरीत आकाश जो गोल प्रतीत होता है और हमें चारों ओर से घेरे रहता है, हमें एक नतोदर (कॉन्केव) गोले सदृश प्रतीत होता है तथा ऐसा लगता है जैसे हम उस गोले के केन्द्र में हों. कल्पना कीजिए कि आप एक इतना बड़ा पृथ्वी का ग्लोब बनाते हैं जिसके अंदर आप प्रवेश कर सकें तथा वह पारदर्शी हो तो अंदर से देखने पर अब पूर्व पश्चिम पलट जायेंगे, अब आपके बाईं ओर पूर्व होगा. इसी कारण आकाशीय मानचित्रों में पूर्व-पश्चिम दिशा पलट कर प्रदर्शित करने से वे आकाश से समायोजित हो जाते हैं. सम्भवतः ऊपर दिए रेखाचित्र से यह बात कुछ और स्पष्ट हो सकेगी.

कल्पना करें कि कोई व्यक्ति दक्षिण की ओर मुख करके खड़ा है, तो उत्तर दिशा उसकी पीठ पीछे होगी, दाईं तरफ पश्चिम तथा बाईं तरफ पूर्व. अब यदि उसे जमीन पर रखकर किसी भौगोलिक मानचित्र को दिशाओं के साथ समायोजित करना है तो वह मानचित्र को उस तरह से रखेगा जैसा रेखाचित्र में बाईं ओर दिखाया गया है.

वही व्यक्ति यदि अब दक्षिण के आकाश का निरीक्षण करना चाहता है तो उसी प्रकार खड़े होकर, ''आविष्कार'' को अपने सामने सीधा खड़ा पकड़ेगा. उत्तर दिशा उसके ठीक पीठ पीछे है और वह मानचित्र में ऊपर की ओर प्रर्शित होगी. इस प्रकार हमारे मानचित्र की दिशाएं भौगोलिक दिशाओं तथा आकाश के तारों के साथ समायोजित हो जाएंगी.

अन्य दिशाओं के लिए उपयोग करने के लिए आप मानचित्र को इतना घुमाएं कि मानचित्र में प्रदर्शित अमुक दिशा को आप सीधा पढ़ सकें, जैसे यदि आप पश्चिम की ओर उन्मुख हैं तो मानचित्र को आयोजित करने के लिए आप ''आविष्कार'' को अपने सामने इस प्रकार पकड़ेंगे जैसा चित्र में दिखाया गया है.

मध्य आकाश का निरीक्षण करने के लिए भी आप इसी प्रकार मानचित्र की भौगोलिक दिशाओं से आयोजना को बनाए रखते हु

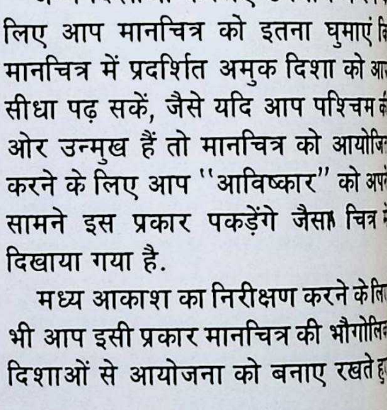

रेखाचित्र 2 : पश्चिमोन्मुख अवस्था में मानचित्र को आयोगित करने का तरीका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

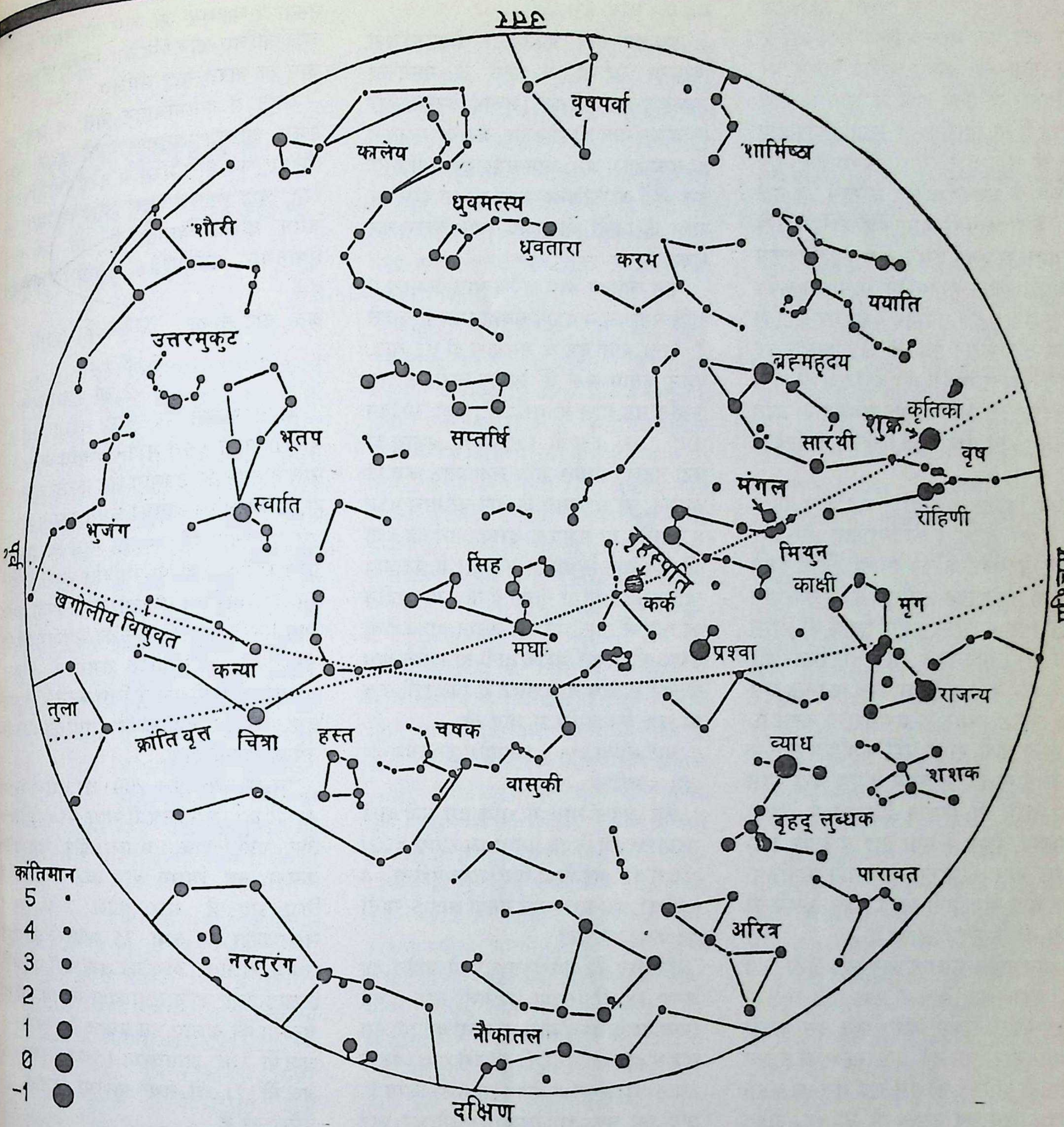

उसे अपने सामने से उठाकर सिर के ऊपर ले आएंगे तथा मानचित्र के केन्द्र के आसपास प्रदर्शित तारों की मध्याकाश में दिखाई दे रहे तारों से तुलना करेंगे.

दूसरी प्रमुख बात है मानचित्र के उपयोग करने के समय की. इसे हमने मास के मध्य के लिए संध्या **सवा आठ बजे** (स्थानीय समयानुसार) उपयोग के लिए बनाया है. परन्तु स्थानीय समय और भारतीय प्रामाणिक समय में अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग अंतर होता है. उदाहरण के लिए यदि आप दिल्ली में व्योमविहार करना चाहते हैं तो 15 अप्रैल के लिए मानचित्र के उपयोग का समय भारतीय प्रामाणिक समय के आठ बजकर छत्तीस मिनट पर होगा. जयपुर में वही स्थानीय समय **27 मिनट बाद** एवम् पटना में दस मिनट पहले ही हो जाएगा.

परन्तु ऐसा नहीं है कि मानचित्र का उपयोग करने के लिए इतनी शुद्धता से समय का हिसाब-किताब रखना पड़ेगा. बताए हुए समय से आगे पीछे मानचित्र का उपयोग करने पर भी आप उन तारामंडलों को आकाश में पाएंगे. बस वे अपनी स्थितियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ा हटी हुई अवस्था में मिलेंगे. उदाहरण के लिए यदि आप मध्य अप्रैल में सवा आठ के बजाए सवा नौ बजे स्थानीय समय पर व्योमविहार के लिए खुले आकाश के नीचे आ जाते हैं तो मानचित्र में दिखाए पश्चिमी दिशा के कुछ तारे (एवम् तारामंडल) इस एक घंटे के अंदर क्षितिज के नीचे जा चुके होंगे. अतः आपको मानचित्र की तुलना में पूरा आकाश एवम् उसके तारे थोड़ा पश्चिम की ओर खिसके हुए मिलेंगे. निर्धारित समय से एक घंटा पहले उपयोग करने पर आपको वे सब तारामंडल पूर्व की ओर खिसके हुए मिलेंगे तथा मानचित्र में पूर्व में प्रदर्शित कुछ तारे एवम् तारामंडल उस समय तक उदय नहीं हुए होंगे तथा अभी क्षितिज के नीचे ही होंगे.

एक विशेष बात और, यदि आप पन्द्रह अप्रैल को आकाश का निरीक्षण करें और किसी तारे को ठीक सिर के ऊपर किसी समय पाएं तो अगले दिन उसी तारे को उसी स्थिति में चार मिनट पहले पाएंगे. उसके भी अगले दिन आठ मिनट पहले. चार-चार मिनट कर यदि आप जोड़ें तो पन्द्रह दिन बाद यह कुल एक घंटे के अंतर के बराबर हो ज़ाता है. इसलिए **तारों का ही यही मानचित्र मास के अन्त में निर्धारित समय से एक घंटा पहले** की तारों की स्थिति दिखाता है, यानी स्थानीय समय के सवा सात बजे की. इसी प्रकार मास के आरंभ में ही यही मानचित्र **एक घंटा बाद** यानी संध्या सवा नौ बजे की तारों की स्थिति दिखाता है.

आप पूछेंगे क्या यह आवश्यक है कि सवा नौ, सवा आठ, अथवा सवा सात बजे ही व्योमविहार किया जाए. क्या हम अपनी इच्छानुसार ऐसा नहीं कर सकते. हो सकता है किसी व्यक्ति को दस बजे रात का समय अधिक अनुकूल लगता हो, तो वह व्यक्ति यह यह कार्य कैसे करें.

अब तक आप 'आविष्कार' के माध्यम से विभिन्न महीनों के तारों के मानचित्र संकलित कर चुके होंगे (जुलाई, अगस्त और सितम्बर मास को छोड़कर, जब यह संभव न हो सका था), अतः आप ऐसी स्थिति में हैं कि इन चार्टों का विभिन्न समयों पर उपयोग कर रात्रि के किसी भी समय व्योमविहार कर सकते हैं.

मान लीजिए आप अप्रैल मास के मध्य में रात्रि सवा दस बजे व्योमविहार करना चाहते हैं, यानी मानचित्र के समय से दो घंटे बाद. पहले बताए तर्क के कारण तारों की यह स्थिति मई मास के मध्य में (यानी 30 दिन बाद), 30x4 यानी 120 मिनट अर्थात दो घंटा पहले, अर्थात रात्रि सवा आठ बजे हो जाएगी, जो मई मास के चार्ट का मास मध्य में उपयोग का समय है. इसका अर्थ यह हुआ कि यदि आप निर्धारित समय से दो घंटे बाद व्योमविहार करना चाहते हैं तो अगले महीने का चार्ट लें. चार घंटे बाद करना चाहते हैं तो उसके भी अगले महीने यानी दो महीने बाद के चार्ट से काम चला सकते हैं. यदि इसी बात को सूत्र रूप में लिखा जाए तो:

चार्ट संख्या =½ x (उपयोग का समय — 20) + महीना

जैसे अप्रैल मास में रात्रि दस बजे वाले उदाहरण को लें तो प्रयोग का समय =22 (10 में 12 जोड़ दिया गया) तथा महीना =4 (अप्रैल), इस तरह चार्ट संख्या आई 5, यानी मई मास का चार्ट.

निश्चय ही उपरोक्त सूत्र में प्रयोग का समय 18 घंटे (संध्या छः बजे) तथा 6 घंटे (प्रातः छः बजे) के बीच का होना चाहिए. इस सूत्र में हमने सुविधा की दृष्टि से सवा आठ के स्थान पर समय 8 बजे (20 बजे) लिया है. यदि इस सूत्र का उपयोग करने पर चार्ट संख्या ऋणात्मक आ जाए तो उसमें बारह जोड़ लीजिए और यदि वह 12 से अधिक हो जाए तो बारह घटा लीजिए.

बहुत से व्योमविहार प्रातः 4 बजे का समय अधिक अनुकूल पाते होंगे. मान लीजिए जून मास मध्य में कोई व्योमविहारी प्रातः चार बजे के लिए उपयुक्त चार्ट का चयन करना चाहता है, तो उपरोक्त सूत्रानुसार, महीना =6, उपयोग का समय =4

अतः चार्ट संख्या = ½ x (4-20) + 6
= -8 + 6
= -2, जो ऋणात्मक है.

बारह जोड़ने पर चार्ट संख्या 10 हो जाएगी यानी दसवें महीने अर्थात अक्तूबर मास के चार्ट का उपयोग उसे करना चाहिए.

हां, एक बात का आपको ध्यान रखना होगा, इन मानचित्रों में हम उस मास विशेष की ग्रहों की स्थितियां भी प्रदर्शित करते हैं और इन पर उपरोक्त सूत्र लागू नहीं होता. यदि आप किसी मास के चार्ट का उपयोग किसी अन्य मास में निर्धारित समय के अलावा आकाश के निरीक्षण के लिए करते हैं तो उस चार्ट में दिखाई ग्रहों की स्थितियों की आपको उपेक्षा करनी होगी.

आइए अब अप्रैल 1991 का व्योमविहार आरंभ करें. मानचित्र में मास मध्य के लिए तीन ग्रहों, शुक्र, मंगल और बृहस्पति क्रमशः वृष, मिथुन और कर्क में प्रदर्शित किए गए हैं. बुध अप्रैल 7 से पहले संध्याकाश में तथा 25 अप्रैल के बाद उषाकाश में है. बीच की अवधि में यह नहीं दिखाई देगा. शनि उषाकाश में मकर में है. चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं: कृष्ण पक्ष अष्टमी 7 को, अमावस्या 15 को, शुक्ल पक्ष अष्टमी 21 को तथा पूर्णिमा दिनांक 29 अप्रैल को है. □

लेखकों से निवेदन

यदि आप विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न विषयों पर हिन्दी में सशक्त, उच्च स्तरीय मौलिक लेखन करने में सक्षम हैं तो आप 'आविष्कार' के माध्यम से अपनी लेखनी को अभिव्यक्ति दे सकते हैं. कृपया सम्पर्क करें: वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर कम्युनिटी सेंटर, कैलाश कालोनी एक्स्टेन्शन, नई दिल्ली-110048

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगोष्ठी

रक्षा अनुसंधान 'राजभाषा विज्ञान संगोष्ठी-91'

□ सुभाष लखेड़ा

□ रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन हमारे देश का एक प्रमुख वैज्ञानिक संगठन है. इसकी देश भर में फैली विभिन्न प्रयोगशालाएं रक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं उपयोगी शोधकार्यों में जुटी हैं. इनके कर्तव्यों और दायित्वों में इतनी अधिक भिन्नता है कि उन सब पर एक साथ चर्चा करना कठिन है. जहां एक ओर ये प्रयोगशालाएं बहादुर सैनिकों के लिए आधुनिक अस्त्र-शस्त्र का विकास करती हैं, वहीं दूसरी ओर वे सैनिकों के आवास, वस्त्र, भोजन तथा विषम परिस्थितियों में शारीरिक सामार्थ्य बनाए रखने संबंधी अनुसंधान कार्य भी करती हैं. दरअसल, फौज के सामने आने वाली चुनौतियों को ध्यान में रखकर हमारे रक्षा वैज्ञानिकों को अपनी 'शोध परियोजनाएं' तैयार करनी पड़ती हैं.

विभिन्न रक्षा प्रयोगशालाओं के वैज्ञानिक एक-दूसरे के शोधकार्यों से परिचित हो सकें, उनके कार्यों की जानकारी जनसाधारण तक पहुंच सके और रक्षा प्रयोगशालाओं के कार्यों में राजभाषा के उपयोग को बढ़ावा मिले, इन उद्देश्यों को लेकर 22-23 जनवरी, 1991 के दौरान दिल्ली छावनी स्थित 'रक्षा शरीरक्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान (डिपास) ने अपने प्रांगण में 'रक्षा अनुसंधान-सैनिक, सैन्य उपकरण और समाज' विषय पर 'रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन' स्तर के प्रथम दो दिवसीय 'राजभाषा विज्ञान सेमिनार' का आयोजन किया.

संगोष्ठी का उद्घाटन रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन के मुख्य नियंत्रक श्री कल्पनाथ सिंह ने किया. उन्होंने आशा प्रकट की कि अन्य रक्षा प्रयोगशालाएं भी अपने यहां राजभाषा के माध्यम से ऐसी वैज्ञानिक संगोष्ठियों का आयोजन करेंगी. हिन्दी को वैज्ञानिक एवं तकनीकी दृष्टि से समृद्ध बनाने के लिए तथा उपलब्ध उपयोगी वैज्ञानिक जानकारी को जन साधारण तक पहुंचाने के लिए इस तरह के और अधिक प्रयासों की आवश्यकता है.

संगोष्ठी में उपस्थित अतिथियों और वैज्ञानिक समुदाय का स्वागत करते हुए संस्थान के निदेशक डा० जे० सेन गुप्त ने कहा "एक स्वतंत्र देश का नागरिक होने के नाते मैं इस बात में विश्वास करता हूं कि हमारी अपनी एक ऐसी भाषा अवश्य होनी चाहिए जिसके माध्यम से हम विज्ञान को समाज के सभी वर्गों तक पहुंचा सकें. वास्तव में, विज्ञान सच्चे अर्थों में तभी उन्नति कर सकता है जब उसे स्वदेशी भाषा के माध्यम से पढ़ाया व पाला-पोसा जाएगा."

इस संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला के भूतपूर्व निदेशक डा० अजीत राम वर्मा ने विज्ञान और समाज के पारस्परिक संबंधों की विस्तार से चर्चा की और विज्ञान को जनता तक पहुंचाने के लिए स्वदेशी भाषाओं के महत्व पर प्रकाश डाला. उन्होंने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, उत्पादन तथा समाज की आपसी कड़ियों को और अधिक मजबूत बनाने के लिए वैज्ञानिकों से ठोस कार्य करने को कहा. इसी सत्र में अपना मुख्य भाषण देते हुए वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय के निदेशक डा० जी० पी० फौंडके ने कहा कि जनसाधारण तक उपयोगी वैज्ञानिक जानकारी पहुंचाना वैज्ञानिकों का कर्तव्य है और इस कर्तव्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक स्वदेशी भाषाओं को संप्रेषण का माध्यम बनाएं. उन्होंने बताया कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शोधकार्यों में राजभाषा के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय इस वर्ष से एक हिन्दी अनुसंधान पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ करेगा. इसका प्रवेशांक सम्भवतः जून 1991 में प्रकाशित होगा.

संगोष्ठी के प्रथम 'इलेक्ट्रानिकी' सत्र में डा० यू०सी० गुप्ता ने 'इलेक्ट्रानिकी युद्धकला' शीर्षक से शोधपत्र प्रस्तुत करते हुए बताया कि आज की युद्धकला की श्रेष्ठता इसी में है कि शत्रु के सारे इलेक्ट्रानिक यंत्र मीलों दूर से निष्क्रिय कर दिए जाएं जबकि अपने सारे इलेक्ट्रानिक यंत्र सक्रिय रहें. युद्ध की दृष्टि से इलेक्ट्रानिकी युद्धकला को मुख्यतः तीन भागों में बांटा गया है: एक—इलेक्ट्रानिकी सूचना संग्रहः इसका ध्येय है शत्रु की रेडियो तथा रेडार प्रणाली के बारे में अधिक से अधिक सूचना प्राप्त करना; दो—इलेक्ट्रानिकी अवरोधः इस तकनीक से शत्रु के रेडियो तथा रेडार प्रणाली में जान बूझकर विघ्न उत्पन्न किया जाता है; तीन—'इलेक्ट्रानिकी अवरोध' अवरोधनः इस तकनीक का उपयोग शत्रु द्वारा किए गए इलेक्ट्रानिकी अवरोध को निष्क्रिय करना है ताकि अपनी इलेक्ट्रानिक प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य करती रहे.

इसी सत्र में इलेक्ट्रानिक्स तथा रेडार विकास स्थापना, बंगलौर के वैज्ञानिक डा० डी० सी० पाण्डे ने युद्ध में न्यूक्लीय अस्त्रों के विद्युत चुम्बकीय प्रभावों पर शोधपत्र प्रस्तुत किया और बताया कि आधुनिक इलेक्ट्रानिक युग में विद्युत-चुम्बकीय प्रभावों का बहुत अधिक महत्व है. इन प्रभावों में ब्लैक आउट एवं नाभिकीय विद्युत-चुम्बकीय स्पंदन मुख्य हैं. ब्लैक आउट में वातावरण में विद्युत गुणों में परिवर्तन हो जाता है जिससे सामान्य रेडियो तरंग संचार प्रभावित होता है. नाभिकीय विद्युत-चुम्बकीय स्पंदन एक प्रकार की विद्युत-चुम्बकीय तरंग है जो नाभिकीय विस्फोटों से निकलने वाली गामा किरणों के वातावरण में उपस्थित वायु के अणुओं के साथ परस्पर क्रियाओं से उत्पन्न होती है. ये स्पंदन इलेक्ट्रानिक उपकरणों को स्थाई अथवा अस्थाई रूप से हानि पहुंचा सकते हैं. डा० पाण्डे के अनुसार इन प्रभावों की विस्तुत जानकारी के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है.

रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर के वैज्ञानिक श्री के० एल० शर्मा ने अपरम्परागत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धकार्यों में इलेक्ट्रानिक तकनीकों के संभावित भविष्य की चर्चा करते हुए बताया कि इन तकनीकों का मुख्य उपयोग शत्रु की संपत्ति का विनाश करने में किया जाता है. दरअसल, आज कई ऐसी इलेक्ट्रानिक तकनीकें मौजूद हैं जिनके उपयोग से शत्रु के मालवाहक जहाजों, पुलों, बांधों, विद्युत प्रदाय संस्थानों, रेलपथों और महत्वपूर्ण भवनों आदि को नष्ट किया जाता है.

संगोष्ठी के द्वितीय 'भण्डार एवं सामग्री' सत्र में पांच शोधपत्र प्रस्तुत किए गए. रक्षा विज्ञान केन्द्र, दिल्ली के श्री देवी प्रसाद सचान ने 'जल विरागी सिलिका—एक उपयोगी सामग्री' शीर्षक से शोधपत्र प्रस्तुत करते हुए बताया कि सिलिका की ट्राई मिथाइल सैलाइल क्लोराइड से रासायनिक प्रतिक्रिया कराने पर जल विरागी सिलिका बनता है. यह जल विरागी सिलिका पानी में तैरता है और इसका उपयोग पानी में तेल के प्रदूषण को दूर करने के लिए किया जा सकता है. चूंकि यह समुद्री जीव-जन्तुओं के लिए हानिकारिक नहीं है अतः इसका उपयोग तेल शोधक कारखानों से निष्कासित पानी को 'तेल प्रदूषण से मुक्त करने से लेकर समुद्रों में बिखरे हुए तेल से उत्पन्न प्रदूषण को दूर करने तक में किया जा सकता है.

रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला, पिथौरागढ़ में कार्यरत डा० प्रकाश चन्द्र पन्त ने पर्वतीय जलवायु के परिप्रेक्ष्य में टमाटर में परिपक्वता के साथ-साथ होने वाले एमिनो अम्लों के परिवर्तनों के अध्ययन पर शोधपत्र प्रस्तुत किया. डा० पन्त के अनुसार पर्वतीय क्षेत्रों में टमाटर के कच्चे फलों में थ्रिओनीन, अल्फा एलानिन तथा मिथिओनीन की मात्रा सापेक्ष रूप में अधिक होती है जबकि पके टमाटरों में एस्पार्टिक अम्ल, ओर्निथीन, वेलीन तथा आइसोल्यूसिन की मात्रा अधिक होती है. डा० पन्त का कहना था कि पर्वतीय जलवायु के परिप्रेक्ष्य में शाक-सब्जियों के पोषक तत्वों से संबंधित वैज्ञानिक अध्ययन उन सैनिक टुकड़ियों के पोषण की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं जो उच्च पर्वतीय क्षेत्रों मे तैनात रहते हैं.

इसी सत्र में रक्षा शरीरक्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली छावनी के वैज्ञानिक डा० हरि भारद्वाज ने 'भारतीय नौसेना के जवानों की ग्रीष्मकालीन वर्दियों के साइज निर्धारण हेतु किए गए मानवमितीय सर्वेक्षण' पर शोध पत्र पढ़ा. दरअसल, सेना के तीनों अंगों के जवानों के लिए वर्दियों का साइज तय करने में इस तरह के व्यापक मानवमितीय सर्वेक्षण अत्यावश्यक हैं क्योंकि वस्त्र निर्माण करने वाली संस्थाओं को इस जानकारी से सहायता मिलती है.

यंत्र अनुसंधान एवं विकास संस्थान, देहरादून के वैज्ञानिक श्री गोपालकृष्ण शर्मा ने दैनिक जीवन से लेकर खगोल विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, सैन्य विज्ञान, तन्तु विज्ञान तथा होलोग्राफी आदि विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाले प्रकाशीय उपकरणों की प्रगति का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत करते हुए उन प्रकाशीय उपकरणों के विषय में भी संक्षिप्त जानकारी दी जिनका रक्षा सेवाओं में उपयोग किया जाता है.

कानपुर संस्थान के श्री के० एस० परिहार ने उच्च पर्वतीय दुर्गम क्षेत्रों में सैनिक औजार, गोला-बारूद, सैन्य उपकरण एवं अन्य सामान ढोने के लिए विकसित किए गए उपस्करों की चर्चा की और इस तरह के उपकरणों को विकसित करने की पद्धतियों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया.

हवाई वितरण अनुसंधान तथा विकास संस्थापन, आगरा छावनी के वैज्ञानिक राजेश कुमार ने 'पैराशूट तकनीक का उदय, विकास एवं उपलब्धि' शीर्षक से अपना शोधपत्र प्रस्तुत करते हुए बताया कि अब स्वदेश में ही पैराशूट प्रणालियों एवं हवाई वितरण उपकरणों में प्रयुक्त विभिन्न धातु घटकों, टैक्सटाइल सामग्रियों एवं अन्य युक्तियों का सफलतापूर्वक विकास एवं मानकीकरण किया जा चुका है. उन्होंने पैराशूट के विषय में विस्तृत जानकारी देते हुए बताया कि इस शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'पेरेरे' और 'शूट' से हुई है. पेरेरे का अर्थ है 'संग्रहित बचाव' और शूट का अर्थ है 'वेग से नीचे गिरना'. पैराशूट का प्रारूप एक छतरी है जो अपनी लचक के कारण परतों में मोड़कर एक छोटे से पैक में रखी जा सकती है.

संगोष्ठी के प्रथम दिन के अन्तिम और तृतीय सत्र 'सैनिक और पर्यावरण' में अनुसंधान तथा विकास स्थापना, पुणे में सेवारत कर्नल सत्य स्वरूप शर्मा (कीर्तिचक्र) ने अंटार्क्टिक महाद्वीप में बहुत बड़ी मात्रा में तेल और धातुओं के पाए जाने की संभावनाओं पर प्रकाश डालते हुए भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा वहां किए जा रहे शोधकार्यों की चर्चा की. रक्षा मनोवैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान, दिल्ली के वैज्ञानिक डा० उमादत्त पाण्डेय ने भारतीय सेना के लिए अपने संस्थान द्वारा किए जा रहे कार्यों की चर्चा करते हुए बताया कि आज सेना के लिए मनोवैज्ञानिक युद्ध, सैद्धांतिक धारणा, अभिप्रेरणा, अभिवृत्ति, मनःस्थिति, नेतृत्व व्यवहार और संगठनात्मक स्थिति संबंधी शोधकार्य अत्यधिक महत्व रखता है. साथ ही व्यक्ति और मशीन प्रणाली में मानवीय अवयव संबंधी समस्याओं एवं पर्यावरण तथा अन्य दूसरे कारकों से उत्पन्न मनोवैज्ञानिक दबावों का समाधान भी आवश्यक है. इस तरह का शोधकार्य सेना की क्षमता एवं मनोबल बढ़ाने में बहुत सहायता करता है.

इसी विषय को आगे बढ़ाते हुए रक्षा शरीरक्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली छावनी में सेवारत मनोवैज्ञानिक श्री एम० आर० पंवार ने नम एवं शुष्क तापमान का मानसिक योग्यताओं पर पड़ने वाले प्रभाव पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया. इसके अनुसार ऊंचे वातावरणीय तापमानों पर मानसिक योग्यताओं का ह्रास होने लगता है. साथ ही, समान उच्च तापमानों पर नम वातावरण में शुष्क वातावरण की अपेक्षा मानसिक योग्यताओं में अधिक गिरावट देखने को मिलती है. इसी संस्थान की श्रीमती विमला आसनानी ने उच्च पर्वतीय स्थलों पर लंबी अवधि के निवास का मानवीय तथा बौद्धिक प्रक्रिया पर प्रभाव संबंधी शोध पत्र प्रस्तुत करते हुए बताया कि समुद्रतल के करीब रहने वाले निवासियों की उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में निवास के दौरान प्रतिक्रिया समय (रियेक्शन टाइम), कर-नेत्र समन्वय (हैण्ड-आई कोआर्डिनेशन) जैसी कतिपय मानसिक क्रियाएं प्रभावित होती हैं. सैनिकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कर्तव्य निर्वाह के लिए तैनात करते समय इस तरह के अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों से काफी सहायता मिल सकती है.

इसी सत्र में रक्षा शरीरक्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान के वैज्ञानिक श्री जी० पीचन ने जो शोध पत्र पढ़ा उसके अनुसार रेगिस्तानी जलवायु का सैनिकों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन बहुत जरूरी है क्योंकि गरमी के दिनों में इन क्षेत्रों में तैनात सैनिक हाइपोहाइड्रेशन (जल-अल्पता) के शिकार बन सकते हैं. इसी संस्थान की डा० शशिबाला सिंह ने मोटर वाहनों से निकलने वाले धुएं के फेफड़ों पर कुप्रभाव की विस्तार से जानकारी दी.

संगोष्ठी के चतुर्थ सत्र में 'अभियांत्रिकी, प्रौद्योगिकी और संक्रिया अनुसंधान' विषयों पर शोध पत्र प्रस्तुत किए गए. वायु सेना मुख्यालय में सेवारत वैज्ञानिक डा० आर० जी० नाग ने 'शत्रु हवाई हमले से क्षतिग्रस्त हवाई पट्टी' की शीघ्र मरम्मत के उपायों की चर्चा करते हुए बताया कि युद्ध के दौरान इस प्रकार की तकनीकों के उपयोग की बहुत अधिक आवश्यकता होती है. अनुसंधान कार्यों से हम इस तरह के कई उपाय कर सकते हैं जिनसे न्यूनतम समय में क्षतिग्रस्त हवाई पट्टियों की तेजी से मरम्मत की जा सके. इसी सत्र में रक्षा अनुसंधान तथा विकास प्रयोगशाला, हैदराबाद के वैज्ञानिक श्री दामोदर स्वरूप पाण्डेय ने भारतीय प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम को देश की औद्योगिक प्रगति से जोड़ते हुए बताया कि प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम में 150 से अधिक तकनीकी प्रतिष्ठान सहयोग दे रहे हैं. फलस्वरूप, अब हम कई औद्योगिक-उत्पादन क्षेत्रों में आत्मनिर्भर होते जा रहे हैं.

नौ सेना रसायन तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला, मुंबई की श्रीमती सूसन टाइटस ने सामुद्रिक सूक्ष्म जैविक परत (बायोफिल्म) धातुओं को किस प्रकार से हानि पहुंचाती है विषय पर अब तक किए गए अपने शोध की चर्चा करते हुए बताया कि इस प्रक्रिया को पूर्ण रूप से समझने पर लाभदायक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं. इसी सत्र में 'रक्षा अनुसंधान तथा विकास स्थापना, ग्वालियर, के श्री एल० बी० आर० मूर्ति ने रक्षा अनुसंधान के क्षेत्र में इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप की उपयोगिता पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए बताया कि इस यंत्र का उपयोग विभिन्न रक्षा संबंधी समस्याओं को सुलझाने में किया जा रहा है.

इसी सत्र में रक्षा इलेक्ट्रानिकी प्रयोज्यता प्रयोगशाला, देहरादून के वैज्ञानिक श्री सुभाष चन्द्र जैन ने 'वास्तविक काल हवाई सर्वेक्षण' हेतु 'मल्टी-स्पैक्ट्रल स्कैनर' के विषय में जानकारी दी और इसी संस्थान की कुमारी ऋतु अग्रवाल ने प्रकाशीय बिम्ब विधायन की रक्षा प्रयोज्यता में उपयोगिता संबंधी शोधपत्र प्रस्तुत किया. इस सत्र का अन्तिम शोधपत्र प्रस्तुत करते हुए वैमानिक निदेशालय, हैदराबाद के वैज्ञानिक श्री अशोक कुमार ने बताया कि वैमानिक पदार्थों के विकास एवं उत्पादन में प्राप्त सफलता के कारण देश को काफी विदेशी मुद्रा की बचत हुई है. वैमानिकी पदार्थों के विकास से विमान के भार में कमी करने से ईंधन बचाने में सहायता मिलती है. उन्होंने विमान निर्माण के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने विशिष्ट इस्पात, उत्कृष्ट मिश्र धातुओं एवं टाइटेनियम मिश्र धातुओं के विषय में विस्तार से जानकारी देते हुए बताया कि वायुसेना की दृष्टि से टाइटेनियम-लीथियम मिश्रधातु की खोज एक उल्लेखनीय विकास है.

पांचवे सत्र में 'सैनिक और समाज' विषय पर तीन शोध पत्र प्रस्तुत किए गए. रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेख केन्द्र, दिल्ली के श्री कुसुमाकर सुकुल ने देश को आजादी मिलने के बाद अब तक हुए रक्षा अनुसंधान कार्यों का विवरण देते हुए बताया कि उनका संस्थान रक्षा विज्ञान अनुसंधान संबंधी विश्वस्तर पर हो रही सभी उपलब्धियों तथा सूचनाओं का संग्रह, आकलन, समानुक्रमण तथा प्रसार करता है. इसी संस्थान के श्री अनिल कुमार शर्मा ने रक्षा अनुसंधान के विभिन्न कार्य क्षेत्रों पर प्रकाश डालते हुए बताया कि रक्षा अनुसंधान के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे 'फूड टेक्नोलाजी, मेडीसिन, ह्यूमन सेफटी' आदि क्षेत्रों में कार्य हो रहा है. इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए हैदराबाद के डा० देवेन्द्र कुमार कौशिक ने चिकित्सा, संचार, कृषि आदि के क्षेत्र में रक्षा वैज्ञानिकों द्वारा किए जा रहे शोध कार्यों की जानकारी दी और कुछ ऐसे उपाय सुझाए जिनसे इन शोध कार्यों की सामाजिक उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है.

'मानव और विज्ञान' नामक छठे एवं अन्तिम सत्र में रक्षा विज्ञान केन्द्र, दिल्ली के वैज्ञानिक डा० सी० एल० गर्ग ने लेसर के विषय में प्रारम्भिक जानकारी देते हुए नवीनतम अस्त्र-शस्त्रों में इसके उपयोग की चर्चा की. उन्होंने चिकित्सा तथा उद्योगों में भी लेसर के उपयोग की विभिन्न संभावनाओं के विषय में जानकारी दी.

नाभिकीय औषधि तथा संबद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली के वैज्ञानिक डा० शील चन्द जैन ने भारतीय संदर्भ में यहां के वयस्क पुरुषों एवं महिलाओं की शारीरिक ऊंचाई, भार तथा वृद्धि के विषय में तुलनात्मक आंकड़े प्रस्तुत किए. डा० जैन के अनुसार इस अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि एक भारतीय संदर्भ पुरुष का भार व ऊंचाई क्रमशः 55 किलोग्राम व 165 सेंटीमीटर तथा एक भारतीय संदर्भ स्त्री का भार व ऊंचाई क्रमशः 45 किलोग्राम व 154 सेंटीमीटर है. यंत्र अनुसंधान एवं विकास संस्थान, देहरादून के डा० एम० के० शर्मा ने प्रौद्योगिकी और पर्यावरण के पारस्परिक संबंधों पर विस्तार से जानकारी देते हुए उन तकनीकों और उपायों की भी जानकारी दी जिनके उपयोग से हम औद्योगिक प्रदूषण से पर्यावरण को बचाने के ठोस उपाय कर सकते हैं.

इस प्रकार कुल मिलाकर विभिन्न रक्षा प्रयोगशालाओं के इकत्तीस वैज्ञानिकों ने इस संगोष्ठी में अपने शोधपत्र पढ़े. समापन सत्र में विभिन्न प्रयोगशालाओं से आए जिन वैज्ञानिकों ने अपने सुझाव प्रकट किए, वे सभी इस विषय में एकमत थे कि हिन्दी में वैज्ञानिक संगोष्ठी आयोजित करने का यह प्रयास अत्युत्तम रहा और भविष्य में सभी प्रयोगशालाओं को अपने यहां इस तरह के आयोजन करने चाहिएं ताकि देश में हो रहे वैज्ञानिक कार्यों की जानकारी जनभाषा के माध्यम से समाज के सभी वर्गों तक पहुंच सके और हिन्दी में मौलिक रूप से स्वदेश में किए जा रहे शोधकार्यों की जानकारी उपलब्ध हो सके. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निम्नतापीय अतिचालकता सिद्धांत के जनक : बार्डीन

□ सैयद सलमान हैदर

□ गत तीस जनवरी 1991 को दो बार के नोबल पुरस्कार विजेता जौन बार्डीन की बोस्टन, अमेरिका में मृत्यु हो गई.

श्री बार्डीन अपनी दो महत्वपूर्ण उपलब्धियों के लिए याद किए जाएंगे. एक तो ट्रांजिस्टर से सह-आविष्कारक के रूप में, और दूसरे निम्नतापीय अतिचालकता सिद्धांत के सह-आविष्कारक के रूप में. बार्डीन ऐसे पहले व्यक्ति थे, जिन्हें एक ही क्षेत्र (भौतिकी) में दो बार नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

बार्डीन ने सन् 1936 में प्रिंसटन यूनिवर्सिटी से गणित तथा भौतिकी में पी-एच डी की डिग्री प्राप्त की. 1938-40 के दौरान उन्होंने मिनीसोटा यूनिवर्सिटी, मिन्नापोलीस में कार्य किया. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान वे अमेरिका की नौसैनिक प्रयोगशाला में मुख्य भौतिकविद् के रूप में कार्य करते रहे. युद्ध के बाद उन्होंने बेल टेलिफोन प्रयोगशाला में काम किया जहां उन्होंने अर्द्धचालक धातुओं में इलेक्ट्रानों के व्यवहार का अध्ययन किया. इसी अध्ययन के फलस्वरूप वे ट्रांजिस्टर के आविष्कार में सफल हुए. सन् 1957 में बार्डीन और अमेरिकी भौतिकविद् वाल्टर ब्रेटिन और विलियम शौकले को संयुक्त रूप से ट्रांजिस्टर के आविष्कार के लिए भौतिकी का नोबल पुरस्कार मिला.

ट्रांजिस्टर के आविष्कार ने इलेक्ट्रानिकी जगत में एक क्रांति ला दी जिससे सूक्ष्म इलेक्ट्रोनिक कल-पुर्जों का एक नया युग शुरू हुआ. ट्रांजिस्टर ही आगे चलकर आज के बहुचर्चित 'माइक्रोचिप्स' का जन्मदाता बना, जिसके कारण अब मेज पर रखे जा सकने वाले छोटे कम्प्यूटर बनाए जा सके हैं. पहले, ट्रांजिस्टर के स्थान पर निर्वात वाल्वों का इस्तेमाल किया जाता था जिससे पुराने जमाने के रेडियो काफी भारी और बड़े आकार के होते थे. हालांकि अब ट्रांजिस्टर का स्थान माइक्रोचिप्स ने ले लिया है, फिर भी यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है.

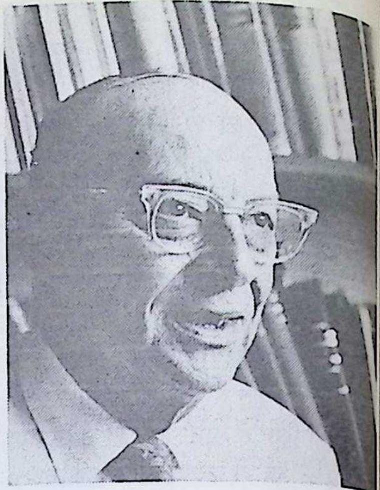

सन् 1951 में बार्डीन इलिनायस यूनिवर्सिटी, अरबाना में वैद्युत इंजीनियरी और भौतिकी के प्रोफेसर नियुक्त हुए. इसी दौरान उन्होंने ट्रांजिस्टर और निम्न तापीय

जौन बार्डीन जिनके एक आविष्कार ट्रांजिस्टर द्वारा लाई गई क्रांति के प्रभाव आज हम अपने चारों ओर देख रहे हैं इनकी दूसरी खोज अतिचालकता का सिद्धांत एक और अभूतपूर्व क्रांति की सम्भावनाओं से परिपूर्ण है. यह वैज्ञानिक अब हमारे बीच नहीं रहा.

अतिचालकता सिद्धांत का आविष्कार किया. अतिचालक भी ट्रांजिस्टर जितने ही महत्वपूर्ण होते हैं. इनका अन्य क्षेत्रों के अलावा ऊर्जा संरक्षण मे बड़ा महत्व है. अतिचालक दरअसल वे पदार्थ होते हैं जो एक निश्चित तापमान पर अपना प्रतिरोध खो बैठते हैं यानी उनकी विद्युत चालकता अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है. इस ताप विशेष को ट्रांजिशन ताप कहते हैं और ये आमतौर पर 20 डिग्री केल्विन (-253° सेल्सियस) से नीचे होता है. इनका उपयोग अच्छे विद्युत चुम्बकों के निर्माण में होता है. अतिचालकता का यह व्यवहार पारे सहित पच्चीस दूसरे रासायनिक तत्व, सिरैमिक पदार्थ और दूसरी हजारों मिश्र धातुएं प्रकट करती हैं.

अतिचालकों का एक और महत्वपूर्ण गुण यह है कि वे बाह्य चुम्बकीय प्रभावों से मुक्त रहते हैं यानी वे पूरी तरह द्वि-चुम्बकीय होते हैं.

कोई भी विद्युत चालक पदार्थ (जैसे– तांबा, लोहा) आदि क्रिस्टल लैटिस और इलेक्ट्रानों के बने होते हैं. लैटिस में क्रिस्टल के अणु क्रमवार लगे होते हैं, और इनकी बाहरी कक्षा में मौजूद इलेक्ट्रान ही अपने चक्रमण द्वारा विद्युत ऊर्जा को इधर से उधर पहुंचाते हैं. इन इलेक्ट्रानों को 'चालक इलेक्ट्रान' भी कहते हैं. जब एक विद्युत चालक पदार्थ अपनी सामान्य अवस्था में होता है, तो प्रत्येक इलेक्ट्रान विद्युत चालन के लिए स्वतंत्र रूप से कार्य करता है. इनकी चालन क्षमता इनके आपस में टकराने से घटती रहती है और इस प्रकार विद्युत चालन में बाधा पहुंचती है. यही कारण है कि हर धातु जो विद्युत चालक होती है, उसमें कुछ न कुछ प्रतिरोध अवश्य होता है, यानी धातु को दी गई पूरी विद्युत की मात्रा वापस नहीं प्राप्त की जा सकती. कुछ विद्युत की मात्रा इलेक्ट्रानों के आपस में टकराने के कारण व्यर्थ चली जाती है. लेकिन जब यही धातु अतिचालकता की स्थिति में होती है, तो सभी इलेक्ट्रान सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं और इनके आपस में टकराने की नौबत नहीं आने पाती. साथ ही, ऊर्जा का ह्रास भी नहीं होता.

बार्डीन ने अतिचालकों के इन गुणों का बारीकी से अध्ययन किया था. सन् 1957 में इलिनॉयस यूनिवर्सिटी में जौन बार्डीन, कूपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जौन आर० श्रीफर ने अतिचालकों के संबंध में एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसे अब बी०सी०एस० सिद्धांत के नाम से जाना जाता है. इसके लिए उन्हें 1972 का भौतिकी का नोबल पुरस्कार मिला.

इसके पूर्व, सन् 1956 में बार्डीन के सहकर्मी लिओन एन०कूपर ने पाया था कि अगर इलेक्ट्रान एक-दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करें, भले ही यह आकर्षण बहुत कमजोर हो, तो भी इनके बीच एक बन्ध बन जाता है. सम्भवतः यही बंध अतिचालकता की अवस्था का प्रारंभिक चरण है. कूपर ने देखा कि इस आकर्षण से दो इलेक्ट्रान आपस में बंध (जिन्हें हम कूपर पेअर कहते हैं) बनाकर क्रिस्टल लैटिस में घूमते रहते हैं. इस सहभागिता के कारण इलेक्ट्रानों की ऊर्जा न्यूनतम हो जाती है. घूमते-घूमते ये इलेक्ट्रान दूसरे इलेक्ट्रानों को भी इलेक्ट्रान-फोनॉन अंतर्क्रिया के माध्यम से आकर्षित करते हैं. इस अवस्था में धातु अतिचालकता की अवस्था में पहुंच जाती है. लेकिन, जैसे ही तापक्रम बढ़ाया जाता है, इलेक्ट्रानों की ऊर्जा में वृद्धि हो जाती है और अतिचालकता की स्थिति से वे वापस सामान्य अवस्था में लौट जाते हैं.

बार्डीन सिद्धांत में इस बात की भी व्याख्या की गई है. कि विद्युत के अच्छे सुचालक जैसे तांबा और सोना आदि,प्रतिचालक क्यों नहीं है? इस सिद्धांत के अनुसार इन दोनों धातुओं के मामले में, चालक इलेक्ट्रान क्रिस्टल लैटिस में बेरोक-टोक घूमते हैं तथा ये इलेक्ट्रान आपस में कम टकराते हैं. फलतः ऊर्जा ह्रास या विद्युत प्रतिरोध कम होता है जबकि अतिचालकता की पहली शर्त यह है कि इलेक्ट्रान आपस में, तथा क्रिस्टल लैटिस के अणुओं से खूब टकराएं. इसी कारण अच्छे विद्युत सुचालक अतिचालक नहीं होते जबकि कम सुचालक पदार्थ अतिचालक होते हैं.

अतिचालकों का व्यावसायिक इस्तेमाल बड़े विद्युत चुम्बकों के निर्माण में है. साठ के दशक में बार्डीन के योगदान से ही यह संभव हो सका था, कि प्रयोगशाला में भी 10,0000 गौस (चुंबकीय इकाई) तक का चुम्बक बन सका है जबकि इसके पूर्व इन चुम्बकों को बनाने के लिए बहुत अधिक विद्युतधारा का इस्तेमाल करना पड़ता था, साथ ही इससे पैदा भयंकर गर्मी को ठंडा करने के लिए काफी मात्रा में पानी की जरूरत पड़ती थी.

कम्प्यूटरों में अतिचालकों के इस्तेमाल पर भी काफी काम किया गया है. अब, जबकि विद्युत ऊर्जा के नष्ट होने का संशय अतिचालकों के कारण बिल्कुल समाप्त हो गया है, तो और भी छोटे परिपथों का निर्माण संभव है.

बड़े पैमाने पर अतिचालकों का इस्तेमाल विद्युत उत्पादन, सम्प्रेषण और इसके उपयोग में किया जा सकता है. पहले विद्युत तारों में जो बिजली बेकार चली जाती थी, अब इसका सदुपयोग संभव है. उदाहरण के लिए अतिचालक धातु का बना कुछ इंच व्यास का एक केबिल एक पूरी पावर ग्रिड की बिजली के संप्रेषण की क्षमता रखता है और इसमें ऊर्जा का ह्रास बिल्कुल नहीं होता.

बार्डीन ने जो बीज वर्षों पहले बोया था, वह अब फलदार वृक्ष का रूप ले चुका है. अब तो ऐसे सिरेमिक अतिचालक बन गए हैं, जिन्हें द्रव-नाइट्रोजन से ठंडा करके सस्ते दर पर विद्युत संप्रेषण का काम लिया जा सकता है.

अतिचालकों के कारण अब जेनरेटरों और मोटरों के आकार को छोटा करने में भी मदद मिली है. अतिचालक तारों से कम वाईडिंग द्वारा अधिक शक्तिशाली जेनरेटर और मोटर तैयार किए जा सकते हैं. अतिचालक चुम्बकों में विद्युत संग्रह किए जाने पर भी विचार किया जा रहा है. साथ ही, ताप-नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में भी इनके इस्तेमाल की बात सोची जा रही है.

ऊर्जा के इस संकटकाल में अतिचालकों का महत्व और भी बढ़ जाता है हमारे तापीय/नाभिकीय और जल-विद्युत गृहों द्वारा पैदा की गई बिजली का अधिकांश उसे उपभोक्ता तक पहुंचाने के दौरान रास्ते में बिजली के तारों में खोकर रह जाता है. अतिचालक धातु के बने तारों से इस बरबादी को रोका जा सकता है.

इस तरह बार्डीन ने अतिचालकता के सिद्धांत और ट्रांजिस्टर जैसे महत्वपूर्ण आविष्कार हमें दिए. इसके लिए उन्हें सदा याद किया जाएगा. □

खिलाड़ियों की आहार संबंधी समस्याएं?

□ सुभाष लखेड़ा

□ यह आम जानकारी की बात है कि हम सभी को केवल काम ही करने के लिए नहीं, मात्र जीवित रहने के लिए भी ऊर्जा की आवश्यकता होती है. हमारे शरीर को यह ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा प्रोटीन के चयापचय (मेटाबालिज्म) से प्राप्त होती है. चयापचय की जटिल रासायनिक क्रियाएं हमारे शरीर के सभी अंगों की उत्तक-कोशिकाओं में लगातार घटित होती रहती हैं.

कोशिकाओं को चयापचय के लिए आवश्यक पोषाहार रक्त से प्राप्त होता है. रक्त को यह पोषाहार खाए और पचाए गए भोजन से मिलता है.

हमारे शरीर को प्रतिदिन कुल कितनी ऊर्जा चाहिए इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर है कि हम क्या कुछ करते हैं. हम जो भी कार्य करते हैं उसके लिए हमें अपनी शारीरिक ऊर्जा का कुछ भाग खर्च करना पड़ता है. यदि किसी कारण से शरीर में यथेष्ट ऊर्जा का उत्पादन न होता तो हमारी कार्यक्षमता पर उसका कुप्रभाव पड़ता है.

कैसे मिलती है शरीर को ऊर्जा?

कार्बोहाइड्रेट ग्लूकोज में एवं वसा वसीय अम्लों में परिवर्तित होकर कोशिकाओं में ईंधन के रूप में ऊर्जा का उत्पादन करते हैं. शरीर की पेशी कोशिकाओं और यकृत में ग्लूकोज ग्लाइकोजन के रूप में संरक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है. दरअसल, ग्लूकोज, ग्लाइकोजन एवं वसीय अम्ल (फैटी एसिड) इन तीनों के आक्सीकरण से ऊर्जा का उत्पादन होता है. इसका उपयोग हमारे शरीर सीधे नहीं करता. चयापचय की जटिल रासायनिक क्रियाओं में पैदा होने वाली यह ऊर्जा शरीर की कोशिकाओं में ऐडिनोसिन ट्राइफास्फेट (एटीपी) बनाती है. इस यौगिक में दो पायरोफास्फेट बंधे होते हैं जिनके टूटने से हमारे शरीर को किए जा रहे कार्यों के लिए ऊर्जा मिलती है.

इस प्रकार शरीर के संघटन एवं शरीर से प्राप्त की जाने वाली ऊर्जा दोनों का आहार से महत्वपूर्ण संबंध है.

हाल के अंतरराष्ट्रीय खेल प्रदर्शनों में अपने खिलाड़ियों के निराशाजनक प्रदर्शन से खिन्न हम सबके लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि खिलाड़ियों की आहार संबंधी आवश्यकताएं क्या हैं और उनकी सही आपूर्ति खिलाड़ियों के प्रदर्शन को किस प्रकार बेहतर कर सकती है क्योंकि तभी हम नई पीढ़ी के खिलाड़ियों को खेल प्रतियोगिताओं में अधिक सफल बना सकते हैं.

एक खिलाड़ी के लिए उसका शारीरिक संघटन एवं शरीर से प्राप्त होने वाली ऊर्जा दोनों ही अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं. पिछले कई वर्षों से विभिन्न खेल प्रतियोगिताओं के स्तर में निरन्तर सुधार को ध्यान में रखते हुए खिलाड़ियों के आहार पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता को आज खेलों से संबंधित सभी पक्ष महसूस करने लगे हैं. दुर्भाग्यवश, खिलाड़ियों के आहार के संबंध में फैली अनेक अवैज्ञानिक धारणाओं, भ्रान्तियों एवं किवदन्तियों के कारण इसके विषय में उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारी का अभी भी पूर्ण रूप से उपयोग नहीं हो पा रहा है.

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि मनुष्य के शरीर में ऊर्जा का भंडार सीमित होता है. हमारे द्वारा व्यय की जाने वाली ऊर्जा की मात्रा कार्यभार, कार्य करने की तीव्रता एवं इस बात पर निर्भर करती है कि हमें वह कार्य किसी गति से कितनी देर तक करना है. यद्यपि ऊर्जा-ईंधन के रूप में हमारे लिए कार्बोहाइड्रेट एवं वसा दोनों ही महत्वपूर्ण हैं तथापि कार्य करने की गति में वृद्धि होने पर हमारा शरीर वसा की अपेक्षा कार्बोहाइड्रेट का उपयोग अधिक करता है. फलस्वरूप, एक खिलाड़ी के लिए ऐसी अवस्था में उसके शरीर में मौजूद ग्लाइकोजन का भंडार उसकी खेल प्रदर्शन की क्षमता को तय करने में प्रमुख निर्णायक होता है.

चूंकि पेशीय ग्लाइकोजन मुख्य रूप से खिलाड़ी के द्वारा खाए गए आहार से प्राप्त कार्बोहाइड्रेट यौगिकों से बनता है, अतः पेशीय ग्लाइकोजन के भंडार को अधिकतम स्तर पर बनाए रखने के लिए खिलाड़ी द्वारा ग्रहण किए जाने वाले आहार पर उचित ध्यान दिया जाना आवश्यक है. चूंकि किण्व भोज (सब्स्ट्रेट) के दहन और भंडारण में कई एन्जाइम प्रमुख भूमिका निभाते हैं अतः विटामिनों जैसे सहएन्जाइमों की उपलब्धता भी महत्वपूर्ण है. इनके अल्प अभाव मात्र से भी खेल क्षमता कुप्रभावित हो सकती है. यद्यपि खिलाड़ी के खेल प्रदर्शन के अंतिम परिणाम कई बातों पर निर्भर करते हैं फिर भी आहार संबंधी जानकारियों की उपेक्षा करना उचित नहीं है.

आज के खेल प्रदर्शनों में तो कभी-कभी हार-जीत में मात्र सेकंड के शतांश का अन्तर होता है. बहुत से खेलों में खेल प्रदर्शन का स्तर इतना अधिक ऊंचा हो गया है कि विभिन्न खिलाड़ियों द्वारा अर्जित कौशल में मामूली-सा ही अन्तर होता है. श्रेष्ठ बनने के प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रशिक्षण की तकनीकों द्वारा खिलाड़ी अपनी 'यांत्रिक भार योग्यता' एवं 'ऊर्जात्मक शक्ति' की चरम सीमाओं तक पहुंच रहे हैं. परिणामस्वरूप, कुछ खेलों में ऊर्जा व्यय की मात्रा बहुत अधिक हो गई है. जहां एक ओर एक साधारण सक्रिय व्यक्ति प्रतिदिन लगभग 2000 से 2500 किलो कैलोरी ऊर्जा व्यय करता है, वहीं दूसरी तरफ खेलकूद के गहन प्रशिक्षण से जुड़े खिलाड़ी इससे कहीं अधिक ऊर्जा व्यय करते हैं. वैज्ञानिक अनुसंधानों से पता चला है कि यह मात्रा 5200 से 6,800 किलोकैलोरी तक होती है. इतना ही नहीं, यदाकदा बहुत ही चरम सीमाओं पर इससे भी अधिक ऊर्जा व्यय रिकार्ड किया गया है. पर्वतारोहण का समय पर्वतारोही प्रतिदिन 7000 से 800 किलोकैलोरी तक ऊर्जा व्यय करते हैं. 'टूर फ्रांस' में भाग लेने वाले साइकिल चालकों का औसतन ऊर्जा व्यय 6500 किलोकैलोरी के आसपास रहता है. एक दिन में सबसे अधि 9000 किलोकैलोरी ऊर्जा व्यय भी देखने आया है.

कुल मिलाकर, संक्षेप में खेल और प्रशिक्षण की प्रकृति एवं समयावधि के अनुसार खिलाड़ियों की ऊर्जा आवश्यक सामान्य जीवन बिताने वाले समान आयु व्यक्तियों की तुलना में दो से लेकर पांच गु तक अधिक होती है. सघन प्रशिक्षण कर वाले उच्च श्रेणी के खिलाड़ियों को ऊर्जा अधिक व्यय कभी-कभी नहीं बल्कि लगातार करना पड़ता है. अतः ऐसी स्थि में उनके शरीर में ग्लाइकोजन के भंडार बनाए रखना अत्यावश्यक है.

शारीरिक परिश्रम और भूख की अनुभू

इस तथ्य से हम सभी परिचित हैं कि हल्के एवं मध्यम स्तर के शारीरिक श्रम का भू पर अच्छा प्रभाव पड़ता है. किन्तु वैज्ञानि परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि कई घ लगातार कठोर शारीरिक परिश्रम करने प खिलाड़ियों की भूख बढ़ती नहीं घटती है खेल समाप्ति के बाद कुछ समय तक खिलाड़ी 'ठोस आहार' लेना कतई पसंद नहीं करते. जहां तक शरीर में होने वा जलाभाव के कारण प्यास लगने का प्रश्न है शारीरिक परिश्रम के कारण प खिलाड़ियों में प्यास की अनुभूति भी क्षीण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है. दरअसल, शरीर के आन्तरिक तापमान में वृद्धि एवं केटेकोलामीन हार्मोनों के स्तर में हुई वृद्धि खिलाड़ियों की भूख एवं प्यास महसूस करने संबंधी केन्द्रों पर निरोधी प्रभाव डालती है. .

इस प्रकार दिन भर के खेल प्रदर्शन अथवा प्रशिक्षण के कारण थके हुए खिलाड़ी ठोस आहार चबाने के बजाए तरल आहार पीना अधिक पसंद करते हैं. वैज्ञानिकों के अनुसार खिलाड़ियों द्वारा किए जाने वाले ऊर्जा व्यय और उनकी भूख को महसूस करने की अनुभूति के बीच विलोम संबंध है. यही कारण है कि अत्यधिक शारीरिक परिश्रम वाले दिन अधिकांश खिलाड़ी अपने द्वारा व्यय की गई ऊर्जा की आपूर्ति हेतु यथेष्ट मात्रा में आहार नहीं ले पाते. ऐसे खिलाड़ियों में आराम अथवा अपेक्षाकृत कम शारीरिक श्रम वाले दिन अधिक आहार लेकर अपने ऊर्जा भंडार को पूर्ववत स्तर पर बनाए रखने की नैसर्गिक प्रवृत्ति पाई गई है. वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि बहुत से खिलाड़ी आहार की दृष्टि से संतुलन नहीं बना पाते. फलस्वरूप, उनकी खेल संबंधी योग्यता में गिरावट आने की संभावना बनी रहती है.

मानसिक दबाव के प्रभाव

देखने में आया है कि खिलाड़ियों की भूख एवं प्यास को महसूस करने की अनुभूतियों पर मानसिक दबाव का भी प्रभाव पड़ता है. खेल वैज्ञानिकों के अनुसार महत्वपूर्ण प्रतियोगिताओं में भाग लेने से पूर्व कुछ खिलाड़ी अक्सर युद्ध में भाग लेने के लिए कूच करने वाले सिपाहियों वाली मनोस्थिति में होते हैं और उनमें भी ऐसे सिपाहियों की भांति मतली, वमन एवं आहार ग्रहण करने के प्रति अरुचि जैसे लक्षण प्रकट होने लगते हैं. ऐसे प्रमाण मिले हैं कि महत्वपूर्ण प्रतियोगिताओं में भाग लेने से पूर्व एवं उनके दौरान खिलाड़ियों की आमाशय-आंत्र प्रणाली की क्रियाशीलता में परिवर्तन हो जाता है. उदाहरणार्थ, सामान्य दिनों में ऐसे खिलाड़ियों के आमाशय को भोजन लेने के बाद खाली होने में तीन-चार घंटे का समय लगता है जबकि प्रतियोगिता वाले दिन मनोवैज्ञानिक दबावों के कारण इस समय में लगभग दो घंटे की वृद्धि हो जाती है. यदि ऐसी स्थिति अक्सर पैदा होती है तो खिलाड़ी के लिए इसके परिणाम खेल की दृष्टि से हानिकारक हो सकते हैं. अतः ऐसे खिलाड़ियों को मानसिक दबावों से उबारने के लिए उचित कदम उठाए जाने चाहिएं.

खेल और भोजन समय

अवलोकनों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि खिलाड़ियों द्वारा व्यय की जाने वाली ऊर्जा में वृद्धि होने से उनकी आहार लेने की सामान्य प्रणाली में विसंगति आने लगती है. यह एक सहज समझ में आने वाली बात है कि ऊर्जा व्यय में वृद्धि होने का अर्थ 'अधिक समय तक परिश्रम करना' है. यदि कोई खिलाड़ी दिन भर अपने खेल प्रदर्शन अथवा प्रशिक्षण में व्यस्त रहे तो उसके पास संतुलित आहार सामग्री को खाने एवं पचाने के लिए पर्याप्त समय नहीं होता. अनुभव से यह भी सिद्ध है कि खिलाड़ी के लिए भरपेट भोजन करने के बाद खेल अभ्यास करना संभव नहीं है. मुक्केबाजी, कराटे, जूडो एवं ऊंची-लंबी कूद जैसे खेलों के दौरान पेट भरा होने से आमाशय पर चोट लगने का खतरा बढ़ जाता है. अतः इस कारण से भी सघन खेल अभ्यास करने वाले खिलाड़ी के आहार लेने के तौर तरीके असामान्य हो जाते हैं.

बहरहाल, चाहे जो भी परिस्थिति हो, खिलाड़ी को अपनी ऊर्जा आवश्यकता के अनुरूप आहार तो मिलना ही चाहिए क्योंकि उसके द्वारा की जाने वाली गतिविधियों एवं लिए जाने वाले आहार के बीच सीधा संबंध है. सामान्य स्थिति में ऊर्जा मांग में वृद्धि के अनुसार अधिक आहार लेकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है किन्तु दिन भर खेल में व्यस्त खिलाड़ी के लिए व्यावहारिक दृष्टि से यह एक टेढ़ी समस्या है.

अधिक 'ऊर्जा व्यय' से संबंधित खेलों से जुड़ी आहार समस्या को सुलझाने के लिए कुछ वैज्ञानिकों ने सुझाव दिया है कि 5000—6000 किलोकैलोरी प्राप्त करने के लिए खिलाड़ी को दिए जाने वाले आहार को पांच बराबर भागों में बांटकर निश्चित समय-अन्तराल पर लेना सुविधाजनक होगा किन्तु यथार्थ में इस तरह का आहार विभाजन खिलाड़ियों के लिए समस्याएं पैदा करता है. ऐसी स्थिति में समय अभाव, भूख में ह्रास तथा अन्य दूसरे कारणों से कठिनाई पैदा होती है.

दरअसल, उपरोक्त समस्या का समाधान खिलाड़ी उच्च ऊर्जा युक्त आहार लेकर कर सकते हैं. 'टूर द फ्रांस' जैसी साइकिल प्रतियोगिता के दौरान खिलाड़ी प्रतियोगिता के दिनों में तरल शिशु आहार लेते रहे हैं. यह आसानी से पच भी जाता है. आहार संबंधी एक सलाह यह भी है कि खेल प्रतियोगिता के समय से 3 से 5 घंटे पूर्व कोई आहार लेना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर बाद में अल्प मात्रा में आसानी से पचने वाला आहार लेना उचित है. यह नियम प्रशिक्षण वाले दिनों के लिए भी लागू होता है क्योंकि श्रेष्ठ खिलाड़ियों के अनुसार प्रशिक्षण और प्रतियोगिता के दौरान किए जाने वाले शारीरिक परिश्रम में कोई विशेष अन्तर नहीं होता.

यहां यह बताना आवश्यक है कि दिन में दो बार खेल अभ्यास करने वाले उच्च श्रेणी के खिलाड़ी के पास लगभग सात घंटे का समय होता है. इस दौरान वह आहार की काफी बड़ी मात्रा को कई भागों में बांट कर ले सकता है. व्यावहारिक अनुभव से ऐसा कर पाना संभव नहीं हो पाता. फलस्वरूप, ऐसे खिलाड़ियों को निरन्तर कुछ न कुछ खाते रहने की पद्धति अपनानी पड़ती है. ऐसे सभी खिलाड़ी उच्च ऊर्जायुक्त आहार लेते हैं और शर्करा एवं शर्करा पेयों का खूब उपयोग करते हैं.

खेल वैज्ञानिकों के अनुसार खिलाड़ियों द्वारा अपनाए जाने वाले आहार ग्रहण करने संबंधी तरीके इस बात पर निर्भर करते हैं कि उन्हें खेल प्रशिक्षण अथवा प्रदर्शन के दौरान कितनी ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है. ऐसे खेलों के दौरान जिनमें अपेक्षाकृत कम ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है, खिलाड़ी प्रतिदिन चार से लेकर सात बार तक आहार लेते हैं, जबकि अधिक ऊर्जा व्यय से जुड़े खेलों वाले खिलाड़ी प्रतिदिन छह से आठ बार आहार लेते हैं. ऐसे खिलाड़ी प्रति डेढ़ घंटे के समय अन्तराल पर कुछ न कुछ खाते-पीते हैं. ऐसी स्थिति में खिलाड़ियों को भोजन एवं पेय पूरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन उपलब्ध होने जरूरी है. साधारणतया ऐसे खिलाड़ी आसानी से तैयार किए जाने एवं उपयोग में आने वाले उच्च ऊर्जायुक्त किसी भी स्वादिष्ट आहार (विशेष वरीयता मीठे तरल खाद्य पदार्थों को) को खाने के लिए लालायित रहते हैं. यही वजह है कि वे चाकलेट, क्रीम, केक एवं दूसरे मीठे पदार्थों का अक्सर अधिक उपयोग करते हैं. वे मीठे पेय भी खूब पीते हैं.

वैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि ऐसे अधिकांश खिलाड़ी अपने द्वारा व्यय की जाने वाली ऊर्जा का पैंतीस प्रतिशत भाग मुख्य आहारों के बीच में लिए जाने वाले इन बिस्कुट चाकलेट, केक जैसे हल्के-फुल्के कहे जाने वाले आहारों से एवं मीठे पेयों से प्राप्त करते हैं. चूंकि इस प्रकार की सामग्री में प्रोटीनों एवं विटामिनों की कमी होती है अतः इस कारण उनके शरीर में कुछ आवश्यक पोषाहारों की कमी हो जाती है.

इस प्रकार अब तक खिलाड़ियों के आहार के विषय में जो भी वैज्ञानिक कार्य हुआ है, उसके आधार पर संक्षेप में निम्न जानकारी मिली है:

1. अत्यधिक ऊर्जा व्यय करने वाले खिलाड़ियों को अल्प समय अन्तरालों पर कुछ न कुछ ऊर्जा-समृद्ध सामग्री खानी चाहिए.

2. प्रशिक्षण समयावधि में वृद्धि होने से ऊर्जा व्यय में वृद्धि होती है अतः खाने के लिए बचने वाले समय के दौरान आहार को अधिक मात्रा में लेने की आवश्यकता पड़ती है.

3. भरपेट भोजन करने के बाद गहन खेल अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए.

4. बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम किए जाने वाले दिन खिलाड़ियों की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उन्हें सामान्य आहार सामग्री के अलावा कार्बोहाइड्रेट समृद्ध तरल आहार दिए जाने चाहिए.

5. यह धारणा खेल संबंधी अधूरी जानकारी पर आधारित एवं गलत है कि खिलाड़ी प्रत्येक स्थिति में संतुलित ठोस आहार से अपनी ऊर्जा आवश्यकता पूरी कर सकता है.

सान्द्र तरल आहार

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि जब आहार ग्रहण करने के तरीकों में विभिन्न कारणों से व्यवधान उत्पन्न होते हैं तो ऐसी स्थिति में खिलाड़ियों के लिए ऊर्जा की पर्याप्त आपूर्ति बहुत महत्वपूर्ण है.

यदि किन्हीं कारणों से ऐसा संभव न हो तब समयपूर्व ग्लाइकोजन की कमी के कारण खोल-प्रदर्शन के अन्तिम परिणाम पर निर्णायक प्रभाव पड़ता है.

ग्लाइकोजन की उच्च मात्रा धारण करने वाले खिलाड़ी प्रदर्शन के दौरान लम्बे समय तक थकावट का शिकार नहीं होते और जब उनकी ग्लाइकोजन-धारिता घटकर 3 ग्राम प्रति किलोग्राम पेशीय भार हो जाती है तो ये खिलाड़ी अपनी सक्रियता को बनाए रखने में अक्षम हो जाते हैं. यदि कोई खेलों में सफलता प्राप्त करना चाहता है तो नियमित लंबे समय के गहन शारीरिक परिश्रम से पूर्व, दौरान एवं तुरंत बाद में कार्बोहाइड्रेटों की आपूर्ति एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है. ऐसे मामले में तरल आहार लेना ही सबसे अच्छा रहता है.

इस संबंध में ऐसे सभी अध्ययनों में जिनमें प्रतियोगिता पूर्व ठोस आहार के बजाए तरल आहार दिया गया है, यह देखने में आया है कि यह मतली, वमन तथा आमाशय ऐंठन से खिलाड़ी को बचाता है और मुंह भी अपेक्षाकृत कम सूखता है. साथ ही ऐसा करने से रक्त-ग्लूकोज स्तर अच्छी स्थिति में बना रहता है एवं इस प्रकार से यह ऊर्जा स्रोत चुक जाने से बचाया जा सकता है. हाल के अनुसंधानों से यह स्पष्ट है कि गहन प्रशिक्षण के दौरान अक्सर अत्यधिक शारीरिक परिश्रम करने वाले खिलाड़ियों के लिए कार्बोहाइड्रेट की अधिक मात्रा ग्रहण करना महत्वपूर्ण है.

यह ज्ञात है कि अत्यधिक थकान पैदा करने वाले कठिन शारीरिक श्रम वाले खेल प्रदर्शन के बाद पेशी एवं यकृत ग्लाइकोजन के पुनः सामान्य स्तर पर आने में सामान्य आहार के द्वारा 2-3 दिन लगते हैं. यहां सामान्य आहार का तात्पर्य ऐसे ठोस आहार से है जिसमें कार्बोहाइड्रेट का घनत्व ऊर्जा देने की दृष्टि से पचास प्रतिशत हो.

यदि उपरोक्त समयावधि के दौरान खेल व्यायाम करना पड़े तो पेशीय ग्लाइकोजन के भंडार में कमी के कारण खिलाड़ी की खेल क्षमता में गिरावट आ जाएगी. आहार के कार्बोहाइड्रेट अंश में वृद्धि करके एवं खेल प्रदर्शन के तत्काल बाद खिलाड़ी को ऐसा आहार देने से ग्लाइकोजन के पुनर्संश्लेषण की समयावधि में काफी कमी लाई जा सकती है. ऐसे आहार में ऊर्जा प्राप्ति की दृष्टि से कार्बोहाइड्रेट का अंशदान साठ प्रतिशत होना आवश्यक है.

शरीर क्रिया की दृष्टि से एक अच्छी बात यह है कि ग्लाइकोजन सिन्थेटेज एन्जाइम की सक्रियता ग्लाइकोजन के स्तर में गिरावट आने पर बढ़ती है. एन्जाइम की यह सक्रियता खेल प्रदर्शन समाप्ति के बाद कुछ घंटों तक ही अधिक रहती है.

इसके विपरीत इसी समय काल के दौरान खिलाड़ी की भूख लगने की अनुभूति में भी गिरावट आती है. अतः तरल कार्बोहाइड्रेट समृद्ध पेय पदार्थ ही इस स्थिति में एक बेहतर विकल्प है. प्रतियोगितात्मक क्रीड़ाओं और उच्च श्रेणी के खेलों के दौरान यह ध्यान रखना आवश्यक है कि खिलाड़ी विशेष को ऐसा आहार दिया जाए कि उसके आमाशय आंत्रपथ को इसे पचाने एवं अवशोषित करने में अल्पतम कार्य करना पड़े.

यह ज्ञात है कि तरल आहार आमाशय से शीघ्रता से गुजरकर आंत्र पथ में तेजी से अवशोषित होता है और ऊर्जा की दृष्टि से शरीर को वापस सामान्य स्थिति में भी जल्दी पहुंचाता है. एक्स किरण परीक्षण में देखा गया है कि खेल शुरू होने से पूर्व ग्रहण किया गया तरल आहार आमाशय से दो घंटे की समयावधि में आंत्र पथ में पहुंच जाता है और ग्रहण करने के समय के बाद चार घंटे के अंदर पचकर अवशोषित हो जाता है. दूसरी तरफ खेल से पूर्व लिया गया ठोस आहार 4-6 घंटे तक आमाशय-आंत्र पथ में ही पाया गया.

तरल आहार लेने से खिलाड़ियों को आमाशय-आंत्र संबंधी समस्याएं भी कम होती हैं. जो खिलाड़ी खेल समाप्ति के तुरंत बाद उच्च ऊर्जाधारी (कार्बोहाइड्रेट समृद्ध) आहार लेते हैं, उनका कहना है कि इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थकान जल्दी दूर हो जाती हैं और उन्हें भूख भी जल्दी लगती है.

आहार संबंधी अन्य बातें

आहार के तीन प्रमुख ईंधनों कार्बोहाइड्रेट, वसा एवं प्रोटीन के बीच के अनुपात को लेकर खेल आहार विशेषज्ञों के विचारों में अभी भी कोई एकरूपता नहीं है. ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत अनुभवों एवं सामान्य विवेक का उपयोग करना बेहतर है. इन ऊर्जा स्रोतों की मात्रा के बीच का अनुपात किसी खिलाड़ी द्वारा खेले जाने वाले खेल की मात्रा पर भी निर्भर करता है. 4700 ओलम्पिक खिलाड़ियों के अध्ययन से पता चला है कि वे औसतन 800 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 270 ग्राम वसा एवं 320 ग्राम प्रोटीन युक्त आहार प्रतिदिन खाते हैं. इस प्रकार एक उच्चस्तरीय खिलाड़ी सामान्यतया अपनी खेल संबंधी ऊर्जा आवश्यकताओं का 46 प्रतिशत भाग कार्बोहाइड्रेटों से, 35 प्रतिशत भाग वसा से एवं 19 प्रतिशत भाग प्रोटीन से प्राप्त करता है. प्रशिक्षण एवं प्रतियोगिता के दौरान इन आहार घटकों के बीच के अनुपात में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ सकती है.

दरअसल, एक अच्छे खिलाड़ी को अपने आहार पर प्रारम्भ से ही पूरा ध्यान देना चाहिए. ताजे फल, हरी सब्जियों, दूध एवं मक्खन का नियमित उपयोग करने से खिलाड़ी को लाभ होता है. किसी भी खिलाड़ी को शराब, धूम्रपान एवं तले खाद्य पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिए. अच्छे खिलाड़ियों को चाय एवं काफी से भी अपने को बचाकर रखना चाहिए. एक अच्छे खिलाड़ी को मादक औषधियों, तथाकथित शक्तिवर्धक टानिकों एवं संश्लेषित विटामिनों के जाल में भी नहीं फंसना चाहिए. वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि प्राकृतिक रूप से उपलब्ध संपूर्ण आहार ही हमारे शरीर के लिए सर्वोत्तम है. यहां यह बताना आवश्यक है कि कठिन प्रशिक्षण के कारण अक्सर खिलाड़ियों के शरीर में लौह यानी आयरन की कमी हो जाती है जिसे आहार विशेषज्ञों एवं खेल चिकित्सकों की सलाह लेकर 'लौह संपूरकों' का उपयोग करके पूरा करना आवश्यक है.

खिलाड़ियों को प्रतियोगिता के दिन उतना ही आहार दिया जाना चाहिए जिससे न तो उन्हें खेल के दौरान भूख महसूस हो और न ही वे 'अधिक खाने' के दुष्परिणामों के शिकार हों. उनका यह आहार वसा एवं प्रोटीन के बजाए कार्बोहाइड्रेटों से समृद्ध होना चाहिए. यह भी आवश्यक है कि उन्हें उस दिन मसालेदार, चिकनाई युक्त एवं पेट में पहुंचकर गैस बनाने वाले खाद्य पदार्थ बिल्कुल न दिए जाएं. उनके आहार ग्रहण करने एवं प्रतियोगिता के समय के बीच इतना अन्तर होना जरूरी है कि खेलते समय उनका आमाशय एवं आंत का ऊपरी भाग खाली रहे.

इसके साथ ही खिलाड़ी के शरीर में द्रव की पर्याप्त मात्रा का होना भी जरूरी है ताकि खेल के दौरान उसके शरीर में 'जल अभाव' की स्थिति पैदा न हो. उस दिन यह भी आवश्यक है कि खिलाड़ी को आहार में उसके प्रिय खाद्य पदार्थ ही दिए जाएं ताकि वह मानसिक रूप से प्रसन्न रहे. यहां यह याद रखना आवश्यक है कि ये खाद्य पदार्थ मात्र पोषण की दृष्टि से ही सर्वोत्तम न हों अपितु खिलाड़ी विशेष की रुचि के अनुसार स्वादिष्ट भी हों. □

प्राकृतिक आपदा संबंधी परीक्षा के उत्तर

1. **गलत** – स्थानीय स्वास्थ्य सेवाएं काम संभाल लेती हैं. विदेशी दल आपदा ग्रस्त देश पर अतिरिक्त बोझ बन जाते हैं.
2. **सही** – यह काम तुरंत नहीं करना चाहिए. पहले उस देश की जरूरतों का पता लगाना चाहिए.
3. **गलत** – इन कामों में अक्सर कई साल लग जाते हैं.
4. **सही** – रईस देश आपदाओं से निपटने के लिए बेहतर ढंग से तैयार होते हैं.
5. **गलत** – पूरी दुनिया को आपदा ग्रस्त देश से सहानुभूति होती है.
6. **गलत** – पहले 72 घंटों तक लाशें रोग नहीं फैलातीं. इसके बाद लाशों के सड़ने से जल-स्रोत संदूषित होते हैं. इसलिए सबसे पहले इनका ध्यान करना चाहिए.
7. **सही** – अगर अन्न के भंडार भरे हों तो ऐसा नहीं होता. अंतरराष्ट्रीय सहायता भी मिल जाती है.
8. **सही** – पुनर्वास शिविर अन्य समस्याएं पैदा करते हैं.
9. **गलत** – हर किसी को भोजन मिलना चाहिए. खासतौर से उनको जो राहत के काम में लगे हैं.
10. **गलत** – दल बनाकर काम करना बेहतर होगा.
11. **सही** – भूकंप-सह भवन बनाने से जान-माल का नुकसान काफी कम हो जाता है.
12. **सही** – यह दोनों का मिलाजुला नतीजा है.

परिणाम
(i) **90 अंक या इससे ज्यादा : बहुत अच्छे! शबाश!!**
(ii) **50-90 अंक : अपनी जानकारी और बढ़ाइए.**
(iii) **50 से कम अंक : जानकारी बहुत बढ़ानी होगी.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व स्वास्थ्य दिवस (7 अप्रैल) पर

प्राकृतिक आपदाओं का सामना : कितने तैयार हैं हम?

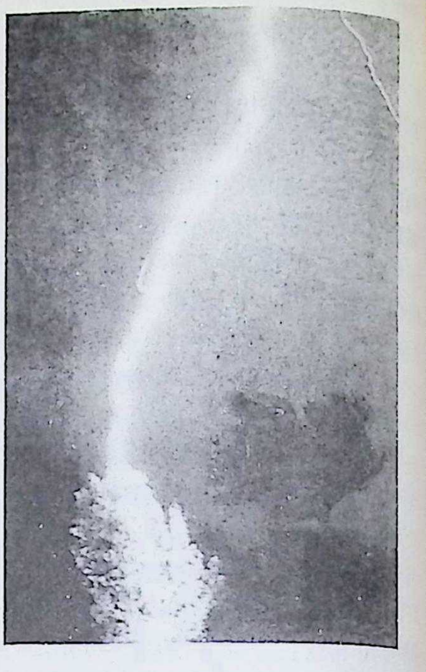

□ डा० जगदीप सक्सेना

प्रकृति का कहर कब और कहां टूट पड़े, कहना मुश्किल है. तमाम वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद प्राकृतिक प्रकोपों की सौ फीसदी सही भविष्यवाणी करना हमारे बस में नहीं. इसलिए जरूरी है कि हम प्राकृतिक आपदाओं का मुकाबला करने के लिए हर समय तैयार रहें. खासतौर से सेहत के मोर्चे पर. इस काम को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संगठित करने की जिम्मेदारी विश्व स्वास्थ्य संगठन निभा रहा है. दुनिया भर का ध्यान इस ओर खींचने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस वर्ष विश्व स्वास्थ्य दिवस (7 अप्रैल) पर 'प्राकृतिक आपदाओं' को मुख्य विषय के रूप में चुना है. साथ ही एक नारा दिया है—'आपदाओं से चौकस रहिए'. इस मौके पर प्रस्तुत लेख में प्राकृतिक आपदाओं से मुकाबले की तैयारी का ब्यौरा प्रस्तुत किया जा रहा है.

□ उत्तर भारत को भूकंप झेले ज्यादा दिन नहीं बीते हैं. पहली फरवरी का सूरज उगा भी नहीं था कि धरती के झटकों ने लाखों दिल्लीवासियों की नींद उड़ा दी. ऐसा लगा कि शायद आज का सूरज देखना नसीब में नहीं. सौभाग्य से कुछ बहुमंजिली इमारतों में दरार पड़ने के अलावा और कोई खास नुकसान नहीं हुआ. पर हमारे पड़ोसी देशों पाकिस्तान और अफगानिस्तान में एक हजार से ज्यादा लोग इस प्राकृतिक प्रकोप का शिकार बने. वैसे सन् 1960 से 1989 तक हम आठ बार भूकंप का कहर झेल चुके हैं. ये भूकंप लगभग छह सौ लोगों को मौत के घाट उतार चुके हैं, ढाई हजार को घायल कर चुके हैं और पचास हजार को असर में ले चुके हैं. प्राकृतिक प्रकोपों के मामले में हमारे देश का दुर्भाग्य कुछ ज्यादा ही प्रबल है. बाढ़, सूखा और समुद्री तूफान तो जैसे सालाना मेहमान हैं. सन् 1960 से 1989 के बीच भारत में घटी प्राकृतिक आपदाओं और हमारी करतूतों से उपजी विपदाओं का ब्यौरा तैयार किया गया है. इसे सारणी—1 में दर्शाया जा रहा है.

दुनिया भर पर कहर

दुनिया भर में हर रोज कहीं न कहीं कुदरत का गुस्सा उतरता है. कभी हल्का-फुल्का तो कभी रौद्र रूप में. कई बार प्राकृतिक प्रकोप से निपटना अकेले उस देश के बस की बात नहीं रह जाती. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अकेले सन् 1988 में दुनिया को 74 भयंकर बाढ़ों, पांच चक्रवातों, 11 झंझावातों, 34 बड़े तूफानों, 17 भू-स्खलनों, 17 भूकंपों, 18 सूखों और 162 बड़ी दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा. इनमें हजारों की जान गईं, लाखों घायल हुए और करोड़ों बेघर हो गए. अरबों रुपयों की सम्पत्ति का जो नुकसान हुआ, वह अलग से.

आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि विकास के साथ-साथ प्राकृतिक प्रकोपों की तादाद भी बढ़ती जा रही है. इसके लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दुनिया के पांच क्षेत्रों में सन् 1900 से 1960 और 1960 से 1989 के बीच घटी आपदाओं की तादाद की तुलना की है. इसे सारणी—2 में दर्शाया जा रहा है. सारणी—3 में प्राचीन काल से अब तक घटी महाविनाश आपदाओं का ब्यौरा प्रस्तुत किया जा रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतरराष्ट्रीय प्रयास

विश्व स्वास्थ्य संगठन शुरू से ही मुसीबत के मारे देशों का सहारा रहा है. किसी भी प्राकृतिक या मानव निर्मित आपदा के समय इसने वहां के नागरिकों की सेहत का ख्याल रखा है. दवाओं, टीकों, चिकित्सकों, चिकित्सा कर्मचारियों के रूप में सहायता पहुंचाई है. आपदा-ग्रस्त देशों को राहत पहुंचाने के काम में यह अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों के साथ तालमेल बनाए हैं. इनमें प्रमुख है: 'संयुक्त राष्ट्र आपदा राहत समन्वयक का कार्यालय'. यह 'यू०एन०डी०आर०ओ०' के संक्षिप्त नाम से मशहूर है इसका गठन 1972 में दो उद्देश्यों से किया गया था. एक तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आपदा राहत के कार्य में तालमेल रखना और इसके आपदा से होने वाले नुकसान को कम से कम करने के लिए पहले से योजना बनाना. इन दोनों ही कामों में विश्व स्वास्थ्य संगठन इसका मददगार है. इसके अलावा विश्व स्वास्थ्य संगठन संयुक्त राष्ट्र के कुछ अन्य संगठनों के साथ तालमेल बनाए हैं जैसे यू०एन०डी०पी० (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम), 'यूनीसेफ' और यू०एन०एच०सी०आर०. रेडक्रॉस और रेड क्रीसेन्ट सोसाइटी जैसी अनेक गैर-सरकारी संस्थाएं भी विश्व स्वास्थ्य संगठन की मदद लेती हैं.

प्राकृतिक आपदाओं की ओर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा सन् 1981 से विशेष ध्यान दिया जा रहा है. खासतौर से दक्षिण-पूर्वी एशियाई क्षेत्र में. दुनिया के सबसे ज्यादा आपदा ग्रस्त क्षेत्रों में इसका स्थान चौथा है. उल्लेखनीय है कि हमारा देश इसी क्षेत्र में है. इस क्षेत्र के सदस्य देशों के बीच आपसी तालमेल बढ़ाने और आपदा का सामना करने की तैयारी को बढ़ावा देने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सन् 1983 में नई दिल्ली में पहली अन्तरराष्ट्रीय कार्यशाला आयोजित की थी. इसके बाद से अब तक दो और कार्यशालाएं भी आयोजित की जा चुकी हैं. इन कार्यशालाओं से काफी आशाजनक परिणाम निकले हैं.

जल्दी ही विश्व स्वास्थ्य संगठन को महसूस हुआ कि केवल क्षेत्रीय स्तर पर काम करने से बात नहीं बनेगी. इस ओर दुनिया भर का ध्यान खींचना होगा. इसलिए दिसम्बर, 1989 में संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने एक प्रस्ताव पारित कर सन् 1990-1999 के दशक को 'अंतरराष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा घटाओ दशक' (आई०डी०एन०डी०आर०) घोषित किया. इसके जरिए दुनिया भर के स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं को एक ऐसा मंच मिल गया है, जहां वे मिलजुल कर प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की तैयारी कर सकते हैं. इस मौके पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सदस्य देशों से अपील की है कि वे अपने यहां राष्ट्रीय समिति बनाएं. हमारे क्षेत्र में बंगलादेश, मंगोलिया, इंडोनेशिया, मयनमार और नेपाल में ऐसी समितियां गठित की चुकी हैं. आई०डी०एन०डी०आर० को प्रभावी ढंग से कारगर बनाने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चार निकायों का गठन किया गया है—एक विशेष उच्च स्तरीय परिषद, 20-25 विशेषज्ञों की एक वैज्ञानिक और तकनीकी समिति, दशक की गतिविधियों में तालमेल के लिए एक सचिवालय और दशक की प्रायोजनाओं को मदद देने के लिए एक न्यास कोष. इसका मुख्य कार्यालय जेनेवा के संयुक्त राष्ट्र भवन में है.

विश्व स्वास्थ्य संगठन की मदद के लिए इसके दो सहयोगी केन्द्र हैं. पहला—आपदा महामारी विज्ञान अनुसंधान केन्द्र (सी०आर०ई०डी०). यह ब्रुसेलस

सारणी—2. दुनिया के पांच क्षेत्रों में दो अवधियों के दौरान आपदाओं की तादाद

क्षेत्र	आपदाओं की संख्या	
	सन् 1900-1960	सन् 1960-1989
पूर्वी भूमध्यसागरीय देश	312	281
यूरोप	495	384
दक्षिण-पूर्वी एशिया	645	560
पश्चिमी प्रशांत सागरीय देश	748	598
अफ्रीका	850	734
अमेरिका	1048	823

स्रोत : विश्व स्वास्थ्य संगठन

सारणी—1. सन् 1960 से 1989 के बीच भारत में घटी आपदाओं का ब्यौरा

आपदा	संख्या	मृत	घायल	प्रभावित
दुर्घटना	40	5512	101359	351010
हिमस्खलन	1	250	0	0
दंगे	2	5660	0	10400000
शीतलहर	7	1555	0	0
समुद्री तूफान	26	31730	1700	33474172
सूखा	9	0	0	710666000
महामारी	19	16150	0	35723
भूकंप	8	595	2424	50000
आग	7	60857	103059	754926905
बाढ़	38	24988	1000	223296610
लू	7	1235	0	0
अंधड़	27	2647	1993	9672267
कुल	191	151179	211535	1742872687

स्रोत : विश्व स्वास्थ्य संगठन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बेल्जियम) में 'केथोलिक यूनिवर्सिटी आफ लोवेन' में स्थित है. दूसरा–शरणार्थी स्वास्थ्य दल. यह लंदन के 'लंदन स्कूल ऑफ हाइजीन एंड ट्रॉपिकल मेडिसिन' में स्थित है. सी०आर०ई०डी० की स्थापना सन् 1973 में हुई थी. उस समय यह विश्व स्वास्थ्य संगठन से सम्बद्ध नहीं था. यह सन् 1980 में विश्व स्वास्थ्य संगठन का सहयोगी केन्द्र बना. अनुसंधान, सूचना प्रणालियों का विकास, आपदा के समय के लिए स्वास्थ्य प्रबंधकों का प्रशिक्षण, और प्रलेखन सेवाएं उसकी मुख्य गतिविधियां हैं. आने वाले समय में यह व्यावहारिक अनुसंधान और प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देगा.

राष्ट्रीय व्यवस्था

हमारे देश में आपदाओं से निपटने की मुख्य जिम्मेदारी कृषि मंत्रालय और स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मत्रालय के स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय पर है. कृषि मंत्रालय ने आपदाओं से निपटने की एक राष्ट्रीय नीति बनाई है. इसी के आधार पर हर राज्य ने अपने हिसाब से नीतियां बनाई हैं. कुछ राज्यों ने राहत नियमावली भी बनाई है, जिसमें इस विषय पर कानून हैं. प्रशासनिक नियंत्रण के लिए राज्यों को जिलों, तालुकों, सब-डिवीजनों और ब्लॉकों में बांटा गया है.

किसी भी आपदा से निपटने के लिए राज्य सरकार में एक राहत आयुक्त/सचिव के तहत एक पूरा विभाग है. जरूरत पड़ने पर राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार से सहायता मांगती है. स्वास्थ्य संबंधी देखरेख के लिए स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय में एक आपातकालीन स्वास्थ्य राहत विभाग है. यह पूरे देश में स्वास्थ्य संबंधी राहत का तालमेल करता है.

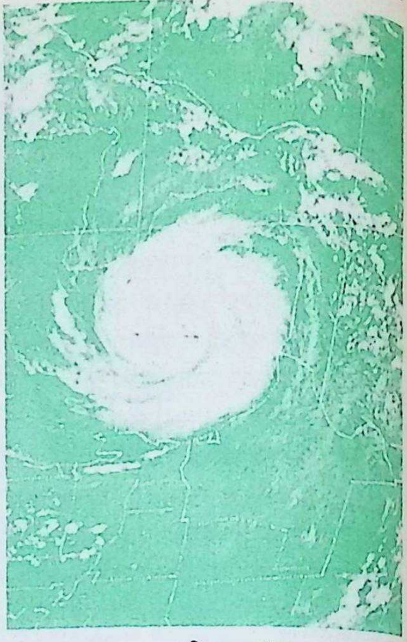

प्राकृतिक बवंडर

जैसे ही किसी जिले में प्राकृतिक प्रकोप होता है, जिलाधिकारी एक छोटी-सी समिति बनाता है. यह समिति आपदा से हुए नुकसान को आंकती है और यह भी निर्धारित करती है कि बचाव और राहत कार्य कैसे किया जाए. इसकी सूचना तुरंत ही राज्य सरकार के राहत आयुक्त/सचिव को भेजी जाती है, जो सीधे मुख्य सचिव या मुख्यमंत्री के तहत कार्य करता है. राहत कार्य की देखरेख के लिए राज्य सरकार के वरिष्ठ अधिकारी आपदाग्रस्त क्षेत्र में तैनात किए जाते हैं. इस दौरान केन्द्र और राज्य के संबंधित मंत्री आदि भी मौके पर जाते हैं और अधिकारियों की सलाह पर वित्तीय सहायता की घोषणा करते हैं.

स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय का आपातकालीन स्वास्थ्य राहत विभाग आपदा ग्रस्त क्षेत्र पर लगातार निगाह रखता है और हर तरह की स्वास्थ्य संबंधी जरूरत पूरी करता है. खासतौर से आपदा के बाद महामारियों को रोकने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है. बाढ़ और सूखे के लगातार प्रकोप को देखते हुए स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय ने बाढ़ और सूखे से निपटने के लिए आपातकालीन योजनाएं बनाई हैं. इनमें ऐसी दशा में होने वाले रोगों, रोकथाम के उपायों तथा अन्य प्रबंधों की जानकारी दी गई है

सारणी–3. प्राचीन काल से अब तक मानवता पर टूटी विश्व की महान आपदाएं और उनसे हुई मौतों की तादाद का अनुमान

वर्ष	आपदा और स्थान	मौतों की तादाद
79 ए०डी०	ज्वालामुखी विस्फोट, पम्पई, इटली	20,000
1347-1351	प्लेग	75,000,000
1846-1851	अकाल और टाइफस, आयरलैंड	1,500,000
1877-1878	अकाल, उत्तरी चीन	9,500,000
अगस्त, 1883	क्राकातोआ ज्वालामुखी, (इंडोनेशिया)	36,380
मई, 1889	बांध टूटना, पेनसिलवेनिया, अमेरिका	2,200
1918	इन्फ्लुएंजा प्रकोप	21,640,000
दिसम्बर, 1920	भू-स्खलन, कांसू प्रांत, चीन	1,80,000
मार्च, 1925	बवंडर, दक्षिण मध्य अमेरिका	689
अगस्त, 1931	बाढ़, ह्वांग-हो नदी, चीन	3,700,000
अप्रैल, 1942	खान दुर्घटना, होनकीको, चीन	1,572
नवम्बर, 1970	तूफान, बंगलादेश	300,000
जुलाई, 1976	भूकंप, तांगशान, चीन	142,000
मई, 1985	तूफान और ज्वारीय तरंगे, बंगलादेश	11,000
दिसम्बर, 1988	भूकंप, आर्मीनिया, रूस	25,000
सितम्बर, 1989	झंझावात, कैरीवियन, अमेरिका	105 (60,000 बेघर)
जून, 1990	भूकंप, रूवार, ईरान	37,000

(स्रोत : 'वर्ल्ड हैल्थ')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपदा से निपटने की तैयारी परखने के लिए योजना के अंत में कुछ सवाल भी दिए गए हैं. अगर हमारे पास इन सवालों का जवाब है तो समझिए तैयारी पूरी है. ये सवाल बॉक्स में दिए गए हैं.

अन्य देश क्या करें?

किसी एक देश पर प्राकृतिक आपदा टूटने पर दुनिया के अनेक देश राहत सामग्री भेजने लगते हैं. इनमें खाने-पहनने की चीजों से लेकर दवाएं, टीके आदि तक रहते हैं. कई अंतरराष्ट्रीय स्वयंसेवी संगठन भी ऐसा ही करते हैं. यह एक अच्छा व्यवहार है. पर आपसी तालमेल और सही जानकारी के अभाव में कभी-कभी उनकी मेहनत और त्याग बेकार चला जाता है. सन् 1988 में आर्मीनिया के भयंकर भूकंप के समय ऐसा ही हुआ. उस समय दुनिया भर के देशों ने पांच हजार टन से ज्यादा दवाएं और चिकित्सा उपकरण आदि भेजे. ज्यादातर दवाओं के साथ कोई सूची नहीं थी. इसलिए हर पैकेट को खोल-खोल कर देखने की जहमत उठानी पड़ी. बीस फीसदी दवाएं तो तब पहुंची जब उनकी इस्तेमाल की मियाद खत्म हो चुकी थी. दो-तिहाई पैकेटों पर दवा के 'ब्रांड नेम' 21 अलग-अलग भाषाओं में छपे थे. ऐसी समस्याओं को खत्म करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने आपातकालीन स्वास्थ्य 'किट' बनाई है. इसमें ऐसी दवाओं और चिकित्सा सामग्रियों की सूची दी गई है, जिनकी प्राकृतिक आपदाओं के समय जरूरत पड़ती है.

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अमेरिका क्षेत्र में एक कार्यक्रम चल रहा है—आपातकालीन तैयारी और आपदा राहत समन्वय कार्यक्रम इसके अध्यक्ष डॉ० क्लॉडे गोयेट ने अन्य देशों को कुछ उपयोगी सुझाव दिए हैं. उनके अनुसार राहत सामग्री भेजने में होड़ नहीं होनी चहिए बल्कि तालमेल होना चाहि[ए] ताकि कोई चीज जरूरत से बहुत ज्यादा न हो जाए. आमतौर पर कोई भी पूरा देश आपदा की चपेट में नहीं आता. ऐसे में उसी देश के अन्य क्षेत्र खाने-पहनने की चीजें काफी तादाद में दान करते हैं. इसलिए अन्य देशों को स्थानीय जरूरतों की ओर ध्यान नहीं दे[ना]

विश्व स्वास्थ्य संगठन के महानिदेशक डॉ० हिरोशी नकजिमा के संदेश के मुख्य अंश

"दुर्भाग्य से ज्यादातर आपदाओं को रोक पाना असंभव है, फिर भी पहले से तैयारी करके इसके विनाशक प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है. विश्व स्वास्थ्य संगठन इन आपदाओं से मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले असर को कम करना चाहता है. इसके लिए पहले से तैयारी जरूरी है ताकि सही समय पर, समन्वित ढंग से और प्रभावकारी रूप से सही तकनीक पहुंच सके—राहत, पुनर्वास और पुनर्निर्माण के दौरान."

"आपदाओं से निपटने की तैयारी के लिए जरूरी है कि हमें वहां फैलने वाले रोगों की जानकारी हो और आपदाओं को पहले से भांपने की क्षमता हो. विश्व स्वास्थ्य संगठन कई सरकारी, गैर-सरकारी और संयुक्त राष्ट्र के संगठनों के साथ मिलकर बड़ी आपदाओं के इतिहास पर अध्ययन कर रहा है ताकि इनके असर की विस्तृत जानकारी हो सके."

"ज्यादातर बड़ी आपदाएं उन देशों पर टूटती हैं, जहां के लोगों की सेहत पहले से ही खराब है और जो गरीब हैं. अधिकांश प्राकृतिक प्रकोप उसी देश या क्षेत्र में बार-बार आते हैं. भूमि के गलत उपयोग और वनों के लगातार कटने से पर्यावरण की हालत दिनों-दिन बिगड़ती जा रही है. इससे आने वाले दशक में सूखा और बाढ़ जैसी आपदाओं की तादाद बढ़ने की पूरी संभावना है."

"राहत के कार्य में तालमेल बहुत जरूरी है. नहीं तो कुछ चीजें बहुत ज्यादा हो जाती हैं, और कुछ जरूरी चीजें छूट जाती हैं. अलग-अलग आपदाओं में किन-किन चीजों की जरूरत पड़ती है, इसकी सूची तैयार रहनी चाहिए. इन्हें तुरंत पहुंचाने की व्यवस्था होनी चाहिए. बाद में पुनर्वास और पुनर्निर्माण पर भी ध्यान देना चाहिए. यह आपातकालीन तैयारी का एक हिस्सा है."

प्रस्तुति : डॉ० जगदीप सक्सेना

सूखे या बाढ़ की आशंका होने पर देखें

1. क्या सूखे के दौरान पीने के पानी की समस्या से त्रस्त होने वाले गांवों को पहचान लिया गया है? या क्या बाढ़ से प्रभावित होने वाले गांव चुन लिए गए हैं?
2. क्या इन गांवों की पानी की न्यूनतम जरूरत आंक ली गई है? इन्हें कितने अतिरिक्त पानी की जरूरत होगी? (केवल सूखे में)
3. क्या पानी की कमी पूरी करने के लिए वैकल्पिक स्रोत तलाश लिए गए हैं? (केवल सूखे में)
4. क्या इन गांवों में चिकित्सा और सह-चिकित्सा कर्मचारियों की जरूरत आंक ली गई है? क्या उन्हें भी चुन लिया गया है? क्या इन्हें उचित प्रशिक्षण दिया जा चुका है?
5. क्या तुरंत मल जांच के लिए जीवाणु विज्ञानियों का दल तैयार कर लिया गया है?
6. क्या दवाओं, विसंक्रामक रसायनों और टीकों की जरूरत आंक ली गई है? क्या इनका पर्याप्त भंडार है? क्या अतिरिक्त भंडार की व्यवस्था हो गई है?
7. क्या सूखा क्षेत्र/बाढ़ क्षेत्र में रोगों से बचने के उपायों का प्रचार किया गया है?
8. मक्खियों और मच्छरों को मारने के उपाय किए गए हैं? उपचार केन्द्र खोले गए हैं?
9. क्या उपचार केन्द्र में कर्मचारियों, दवाओं, टीकों आदि की पर्याप्त व्यवस्था है?
10. क्या स्वास्थ्य सेवा निदेशालय में केवल सूखा क्षेत्र की समस्याओं पर ध्यान देने के लिए कोई वरिष्ठ अधिकारी तैनात किया गया है? क्या जिला और ब्लॉक स्तर पर भी इस काम के लिए अधिकारी हैं?
11. क्या महामारी जैसी दशा उत्पन्न होने पर उच्च स्तर तक सूचना पहुंचाने की कोई व्यवस्था है?

प्रस्तुति : डॉ० जगदीप सक्सेना

(स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय की आपात्कालीन योजना के आधार पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए. उन्हें ऐसी सामग्री भेजनी चाहिए, जो वहां उपलब्ध नहीं हैं.

अन्य देशों को संचार माध्यमों की रिपोर्ट के आधार पर तुरंत कार्रवाई नहीं करनी चाहिए. जब उस देश की जरूरतें, उसी के द्वारा पता लग जाए तभी हरकत में आना चाहिए. यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्राकृतिक आपदाओं के समय जान-माल का ज्यादातर नुकसान 24 घंटों के भीतर हो जाता है. इसलिए अफरा-तफरी में सहायता दलों को भेजना ठीक नहीं. प्राकृतिक आपदा से निपटने की हर देश की अपनी एक व्यवस्था होती है, जो वहां की हालात के मुताबिक होती है. इसलिए उसमें दखल देना ठीक नहीं. इसलिए बेहतर यह होगा कि नकद सहायता दी जाए. जब वह देश अपनी जरूरतें बताए, तभी उन्हें भेजना चाहिए.

अन्य देशों के चिकित्सा दलों को आपदाग्रस्त क्षेत्रों में जाने की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए. क्योंकि जरूरत न होने पर ये दल वहां के चिकित्सा अधिकारियों के लिए मुसीबत के समय में अतिरिक्त बोझ बन जाते हैं.

डॉ० गोयेट के अनुसार आपदा-ग्रस्त देश को अन्तरराष्ट्रीय समुदाय की सबसे ज्यादा जरूरत तब होती है, जब वह आपदा 'खबर' नहीं रह जाती. यानी आपदा के कुछ हफ्तों बाद. इस समय तक उस देश के अपने साधन खर्च हो चुके होते हैं. उसे बाहरी मदद की जरूरत होती है. लेकिन इस समय अंतरराष्ट्रीय समुदाय किसी खबर बनी ताजा आपदा की मदद कर रहा होता है. इसलिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय से अपील है कि वे चाहे तुरंत मदद न करें, पर बाद में सुध जरूर लें. यह मदद पहले भेजी गई मदद से कहीं ज्यादा सार्थक होगी.

प्रशिक्षण की कुंजी

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले नुकसान को कम से कम करने का केवल एक जरिया है—प्राकृतिक आपदा से निपटने की तैयारी और प्रशिक्षण. विश्व स्वास्थ्य संगठन इस ओर पुरजोर कोशिश कर रहा है. पहले इसने उच्च स्तरीय स्वास्थ्य प्रबंधकों को प्रशिक्षण दिया. पर अब उन्हें प्रशिक्षण देने पर जोर दिया जा रहा है, जो सीधे राहत का काम करते हैं. यानी स्थानीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता और नेता. स्थानीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं को वहां के सीमित साधनों में ही आपातकालीन देखरेख का प्रशिक्षण दिया जाता है. विकासशील देशों में हर समय दवाओं आदि के पर्याप्त भंडार की अपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि वहां तो सामान्य दशा में भी इनकी कमी रहती है.

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपने अनुभव से बताया है कि प्राकृतिक आपदाओं का सामना करने की तैयारी का प्रशिक्षण देने के लिए स्कूली बच्चे और उनके अध्यापक सबसे उपयुक्त पात्र हैं. स्कूली बच्चे घर जाकर

प्राकृतिक आपदा संबंधी ज्ञान परखिए

आप प्राकृतिक आपदाओं और इनसे निपटने के बारे में कितना जानते हैं? अपने ज्ञान की परीक्षा लीजिए. नीचे बारह तथ्य दिए जा रहे हैं. आपको बताना है कि ये सही हैं या गलत. कृपया उपयुक्त स्थान पर सही (✓) का निशान लगाएं. प्रत्येक सही उत्तर के दस अंक मिलेंगे. गलत उत्तर पर शून्य. उत्तर इसी अंक में अन्यत्र दिए गए हैं.

1. आपदा पड़ने पर चिकित्सा कर्मचारियों की मदद के लिए तुरंत अंतरराष्ट्रीय अपील करें.
   सही ☐ गलत ☐
2. आपदा पड़ने पर, अन्य देशों को तुरंत दवाएं, कपड़े, आदि नहीं भेजने चाहिए.
   सही ☐ गलत ☐
3. आपदा के कुछ हफ्तों बाद सब कुछ सामान्य हो जाता है. मुख्य सेवाएं काम करना शुरू कर देती हैं.
   सही ☐ गलत ☐
4. आपदा से गरीब देशों की तुलना में रईस देशों में कम मौतें होती हैं.
   सही ☐ गलत ☐
5. आपदा के दौरान मानव व्यवहार बहुत बुरा हो जाता है.
   सही ☐ गलत ☐
6. आपदा पड़ने पर संक्रामक रोगों का फैलाव अवश्यंभावी है, क्योंकि लावारिस लाशें इधर-उधर पड़ी रहती हैं.
   सही ☐ गलत ☐
7. आपदा के बाद भुखमरी को रोका जा सकता है.
   सही ☐ गलत ☐
8. आपदा के बाद लोगों को पुनर्वास शिविरों में रखने से बेहतर होगा कि उन्हें घर के पास रखा जाए.
   सही ☐ गलत ☐
9. आपदा के बाद भोजन की कमी होने पर बच्चों और बूढ़ों को प्राथमिकता देनी चाहिए.
   सही ☐ गलत ☐
10. आपदा के दौरान हर व्यक्ति को अपने परिवार और अपने सामान की देखरेख करनी चाहिए.
    सही ☐ गलत ☐
11. हाल ही में आर्मीनिया और सैनफ्रांसिसको में एक ही तीव्रता के भूकंप आए, पर आर्मीनिया में हजारों लोग मरे जबकि सैनफ्रांसिसको में केवल 60 लोग मारे गए. ऐसा मुख्य रूप से भूकंप सह-निर्माण के कारण हुआ.
    सही ☐ गलत ☐
12. साहेलियाई सूखे का कारण मौसम और मानव की करतूतें थीं.

प्रस्तुति : डॉ० जगदीप सक्सेना

(यह परीक्षा विश्व स्वास्थ्य संगठन के डोरोथी हॉफमैन और गिलबर्ट पेडे द्वारा तैयार की गई है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने परिवार वालों को और पड़ोसियों को भी इसके बारे में बताते हैं. इससे प्रशिक्षण का दायरा अपने आप बढ़ता है. प्रशिक्षण की यह नीति बहुत लंबे समय तक प्रभावकारी रहती है. यह भी सलाह दी गई है कि चिकित्सकों, नर्सों, आदि में पाठ्यक्रम में भी प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की तैयारी पर अध्याय जोड़े जाएं. उन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाए. तभी सही मायनों में प्रशिक्षण सफल होगा.

क्या कहते हैं भारतीय वैज्ञानिक?

प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती हुई तादाद और इनसे होने वाले नुकसान को देखते हुए इस वर्ष भारतीय विज्ञान कांग्रेस ने अपने वार्षिक अधिवेशन में अपना मुख्य विषय चुना–''प्राकृतिक आपदाओं का सामना: एक समेकित दृष्टिकोण.'' इसके मुख्य सत्र में कई प्राकृतिक आपदाओं पर व्यापक चर्चा हुई. भूकंप पर हुई चर्चा के दौरान सभी वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया कि भूकंप की सही भविष्यवाणी करना हमारे बस में नहीं. भूकंप से होने वाले नुकसान को कम से कम करने के लिए जरूरी है कि भवनों के निर्माण के समय उन नियमों का पालन किया जाए जो भवन को भूकंप-सह बनाते हैं. रुड़की स्थित केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान के उप-निदेशक नरेन्द्र वर्मा ने बताया कि सीधे भूकंप से जान-माल का उतना नुकसान नहीं होता, जितना भवनों के ढह जाने से. प्रसिद्ध भूकंप विज्ञानी डॉ० हर्ष गुप्ता का मानना है कि अगर नई दिल्ली में भूकंप आया तो इसके

ज्वालामुखी विस्फोट

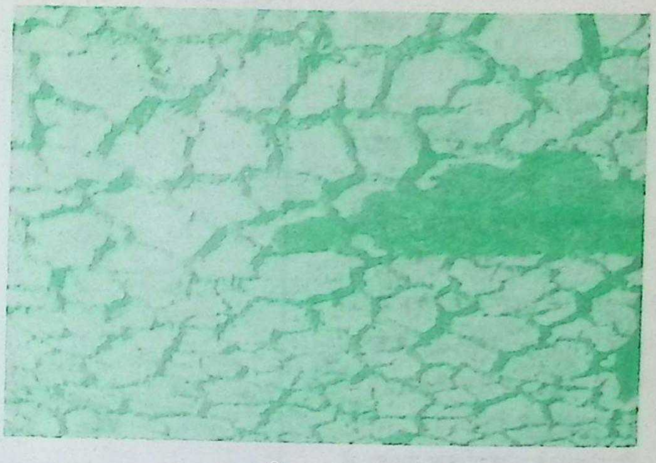

प्राकृतिक भूस्खलन

परिणाम भयानक होंगे क्योंकि यहां बने भवनों और घरों में भारतीय मानक नियमों की भरपूर अवहेलना की गई है. इसलिए लोगों को भूकंप से निपटने का प्रशिक्षण देना बहुत जरूरी है.

अधिवेशन के दौरान हमारे देश की आम समस्याओं बाढ़ और सूखा पर भी चर्चा हुई. वैज्ञानिकों की राय थी कि इन्हें प्राकृतिक प्रकोप न माना जाए. ये मानव द्वारा कुदरत के खिलवाड़ का नतीजा है. इसलिए इन्हें अपने करतूतों की सजा मानना चाहिए. इनसे बचने के लिए जरूरी है कि पर्यावरण को बचाया जाए. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष प्रोफेसर यशपाल ने इस मौके पर एक 'गृह बचाओ कार्यक्रम' की जरूरत महसूस की. उन्होंने कहा कि धरती के वातावरण का धीरे-धीरे गर्म होना भी एक आपदा है. इससे अनेक देशों की अर्थव्यवस्था को धक्का पहुंचेगा.

अधिवेशन के दौरान देश की एक अन्य प्रमुख प्राकृतिक आपदा समुद्री तूफानों पर भी चर्चा की गई. पिछले साल मई में आंध्र प्रदेश के तूफान की सही भविष्यवाणी के लिए भारतीय मौसम विज्ञान विभाग विशेष प्रशंसा का अधिकारी है. इससे जान-माल के भारी नुकसान को बचाया जा सका. मौसम विज्ञान विभाग के उप-महानिदेशक जी०एस० मंडल ने बताया कि उपग्रहों और राडारों के उपयोग के कारण अब कोई भी समुद्री तूफान हमारी निगाह से नहीं बच सकता. अब हमारा मौसम विज्ञान विभाग 24-48 घंटे पहले समुद्री तूफान की चेतावनी दे सकता है. इसके आगे की कार्रवाई प्रशासन पर निर्भर करती है. चेतावनी को जल्दी से जल्दी देश के कोने-कोने तक पहुंचाने के लिए नेशनल इन्फार्मेटिक्स सेन्टर का नेटवर्क उपलब्ध है. यह उपग्रह के जरिए काम करता है. इसके माध्यम से 440 जिला मुख्यालयों, 32 राज्यों/संघ शासित प्रदेशों की राजधानियों और राष्ट्रीय राजधानी से पलक झपकते सम्पर्क साधा जा सकता है.

नेशनल इन्फार्मेटिक्स सेन्टर के महानिदेशक डॉ० एन० शेषागिरि ने बताया कि एक प्राकृतिक आपदा राहत प्रबंध प्रणाली विकसित की गई है. यह एक कम्प्यूटरीकृत सूचना प्रणाली है, जिसमें प्राकृतिक आपदाओं से संबंधित आंकड़े संग्रहित किए जाते हैं. इससे हर स्तर के अधिकारियों को प्राकृतिक आपदा के समय निर्णय लेने में मदद मिलेगी.

इस तरह प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए हमारे देश में भी पर्याप्त चेतना है, जानकारी है और तैयारी है. कम से कम वैज्ञानिक संदर्भ में तो इतना ही कहा जा सकता है. समस्या है प्रशासन और धन की. सरकारी कर्मचारियों की कार्य प्रणाली की. और सबसे ऊपर भ्रष्टाचार की. मौके का फायदा उठाने वाले प्राकृतिक आपदाओं को भी नहीं छोड़ते हैं. जब तक इसका इलाज नहीं होता, तब तक असली मुसीबत के मारे राहत की तलाश में भटकते ही रहेंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में अंतर्स्थलीय मत्स्य उद्योग-2

तालाबों में मछली पालन

□ डा० अरुण गोपाल झिंगरन,
एवं डा० हेम चन्द्र जोशी

भारत में अंतर्स्थलीय मत्स्य उद्योग पर प्रस्तुत इस दूसरे लेख में मत्स्य पालन के विविध पक्षों को उजागर किया गया है.

□ तालाबों में मछली पालन हमारे देश का एक सौ साल से भी अधिक पुराना व्यवसाय है. मछली के बीज उत्पादन तथा मछली को नर्सरी में बढ़ा कर बड़े तालाबों में डालने से लेकर मछली की फसल को बाजार में विक्रय तक की प्रक्रिया मछली पालन व्यवसाय के अंतर्गत आती है. देश में पिछले कुछ वर्षों से इस व्यवसाय का महत्व बढ़ा है, क्योंकि देश के अधिकतर राज्यों में मछली को खाद्य के रूप में स्वीकृति मिलने लगी है. यद्यपि मछली में संतुलित आहार के लिए आवश्यक सभी घटक जैसे प्रोटीन, विटामिन, वसा, खनिज तथा कार्बोहाइड्रेट समुचित मात्रा में होते हैं, देश में अभी भी मछली की प्रति व्यक्ति सालाना खपत केवल 3 किलोग्राम है जबकि न्यूनतम पौष्टिक गुणवत्ता के लिए यह मात्रा कम से कम 11 किलोग्राम होनी चाहिए. इस दृष्टि से तालाबों में मत्स्य पालन का विस्तार आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है.

देश के लगभग कुल 10 लाख टन अंतर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन में तालाबों में मछली पालन द्वारा उत्पादन कुल लगभग 1.2 लाख टन ही है. इसका अधिकांश भाग मीठे पानी के क्षेत्रों से आता है. देश के विभिन्न राज्यों में कुल मिलाकर 16 लाख हेक्टेयर क्षेत्र छोटे-बड़े तालाबों में मछली पालन के अंतर्गत आता है. इसमें से 2.55 लाख हेक्टेयर क्षेत्र तमिलनाडु में, 2.44 लाख हेक्टेयर पश्चिम बंगाल में, 1.8 लाख हेक्टेयर राजस्थान में, 1.11 लाख हेक्टेयर महाराष्ट्र में, 1.03 लाख हेक्टेयर मध्य प्रदेश में, 0.63 लाख हेक्टेयर बिहार में तथा 0.33 लाख हेक्टेयर उड़ीसा में है. एक अनुमान के अनुसार इस उद्योग में लगे परिवारों की संख्या लगभग 5 लाख आंकी गई है जबकि व्यवसाय के रूप में तालाबों में मछली पालन का प्रचलन केवल 6 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में ही है. शेष 10 लाख हेक्टेयर क्षेत्र या तो बेकार पड़ा है या उसमें मछली पालन की उन्नत प्राविधियों का प्रयोग नहीं हो रहा है. यही कारण है कि मछली पालन अनुसंधान में उल्लेखनीय प्रगति के बावजूद मत्स्य उत्पादन की दर में आशातीत सफलता नहीं मिल पाई है. देश के तालाबों से मत्स्य उत्पादन की दर 50 से 500 किलोग्राम प्रति हेक्टयर प्रति वर्ष है. केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर ने ऐसी तकनीकों का विकास किया है जिनसे छोटे तालाबों में 3,000-10,000 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष की दर से मत्स्य उत्पादन संभव है. अतः 50-500 किलोग्राम की वर्तमान दर को बढ़ाकर यदि 1000 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष कर दिया जाए तो इन क्षेत्रों से मत्स्य उत्पादन में वृद्धि की संभावनाएं उज्जवल हो जाती हैं.

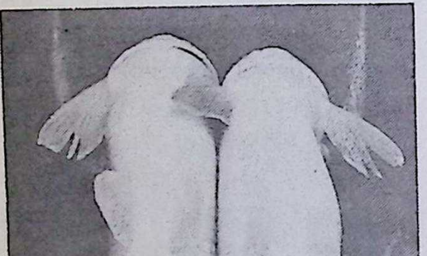

प्रजनन योग्य नर व मादा मछली

तालाबों में मत्स्य उत्पादन का महत्व और भी अधिक है क्योंकि मत्स्य उत्पादन बढ़ाना, फसल उठाना तथा उसका विक्रय के लिए इच्छानुसार निदान करना प्रग्रहण मत्स्यकी से कहीं अधिक सुगम है. यही नहीं आधुनिक उन्नत तकनीकों का उपयोग कर मत्स्य पालन छोटे व मझले मछुआरों, भूमिहीन किसानों व ग्रामीण बेरोजगारों के लिए आय का अच्छा अवसर प्रदान करता है. आर्थिक दृष्टि से तालाबों में मछली पालन एक लाभकारी व्यवसाय है क्योंकि इसमें मछली पालक का सर्वांगीण नियंत्रण रहता है. उन्नत तकनीकों द्वारा विशेष प्रकार की मछलियां पाली जा सकती हैं. बाजार भावों को ध्यान में रख कर फसल उठाई या संरक्षित रखी जा सकती है. अतः जिन तालाबों में मछली पालन नहीं किया जा रहा उन्हें इस व्यवसाय के अंतर्गत लाने के यदि व्यापक प्रयास किए जाएं तो मछली उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ ग्रामीण रोजगार में दो से तीन गुना वृद्धि संभव है. केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर ने मत्स्य उत्पादन की इन तकनीकों के प्रलेख हिन्दी, अंग्रेजी व बंगला भाषा में छपे हैं जिनकी प्रतिलिपि क्षेत्रीय मत्स्य अधिकारियों के माध्यम से या सीधे पत्र लिख कर प्राप्त की जा सकती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्स्य पालन के आधुनिक तरीके

भारत में प्रधानतः तीन मछलियों, रोहू, कतरा व नैन पसंद की जाती हैं. इसलिए इनके उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया है. प्रायः ये मछलियां तालाबों व पोखरों में प्रजनन नहीं करतीं. अतः नदियों व सरिताओं से बरसात के मौसम में इन मछलियों का बीज (जीरा) पकड़ कर तालाबों में छोड़ दिया जाता है. आजकल मछली का बीज प्रेरित प्रजनन द्वारा तालाबों में ही प्राप्त कर लिया जाता है. वर्ष 1957 में केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर द्वारा प्रेरित प्रजनन की तकनीक के क्रांतिकारी विकास के बीस वर्षों में इस विधि का उपयोग बड़े पैमाने पर होने लगा है. पिछले कुछ वर्षों में नदियों से एकत्रित मछली के बीज का प्रतिशत केवल 30 रह गया है, शेष 70 प्रतिशत बीज प्रेरित प्रजनन या बरसाती पानी को बांधों में रोक कर कृत्रिम प्रजनन द्वारा ही तैयार किया जाता है.

प्रेरित प्रजनन द्वारा प्राप्त मछलियों के अंडे

मछलियों में प्रेरित प्रजनन

साधारणतया रुके पानी में कार्प मछलियों का नैसर्गिक प्रजनन नहीं हो पाता. यदि इन मछलियों को किसी अन्य माध्यम से प्रजनन के लिए प्रेरित किया जा सके तो प्रजनन संभव हो सकता है. शुष्क बंध तथा नहर में नदी जैसे बहाव की दशाएं पैदा करके प्रजनन के सफल प्रयोग हुए हैं, लेकिन पीयूष ग्रंथि का टीका देकर मछलियों को प्रजनित करने के प्रयोग सर्वाधिक सफल हुए हैं. परिपक्व मछलियों की पीयूष ग्रन्थियों से मिलने वाला 'गोनेडोट्रोपिन' इस कार्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है. परिपक्व मछलियों की पीयूष ग्रन्थियों का अलकोहल में घोल बनाकर प्रजनन योग्य नर व मादा मछलियों को 2-4 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम मछली के भार की दर से 6-6 घंटे के अंतराल में दो तीन बार टीका देने से मछलियां रुके जल में ही प्रजनन के लिए प्रेरित हो जाती हैं. प्रेरित प्रजनन एक विशेष प्रकार के हापा में कराया जाता है जिसे ब्रीडिंग हापा कहते हैं. प्रजनन हो जाने के बाद मछलियों को हापा से निकाल लिया जाता है. अंडों को अंदरूनी हापा में, जो मच्छरदानी के कपड़े का बना होता है फैला दिया जाता है. एक हापे में लगभग 50,000 से 75,000 अंडे रखे जाते हैं. 15 से 20 घंटे के भीतर इन अंडों से बारीक से बच्चे निकलते हैं जो कि अंदरूनी हापों के छिद्रों से निकल कर बाहर वाले हापे में आ जाते हैं. अंडों के छिलके अंदरूनी हापों में ही रह जाते हैं जिन्हें बाहर निकाल लिया जाता है. मछली के जीरे को तीन-चार दिन तक हैचिंग हापा में ही रहने दिया जाता है. तत्पश्चात इन्हें पहले से तैयार किए हुए छोटे-छोटे नर्सरी तालाबों में छोड़ दिया जाता है.

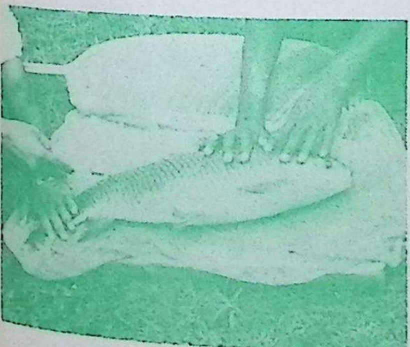

मछली को प्रेरित प्रजनन के लिए पीयूष ग्रंथि के आसव का इजेक्शन देना

मछली के बीज पैदा करने की प्रेरित प्रजनन की तकनीक के विकास के तीन दशाब्दी बाद भी इस तकनीक का पूरा उपयोग देश के कुछ ही राज्यों में किया जा रहा है. पश्चिम बंगाल, इस दिशा में एक

तालाब में एक मत्स्य प्रजाति के पालन द्वारा रोहू-मछली की फसल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

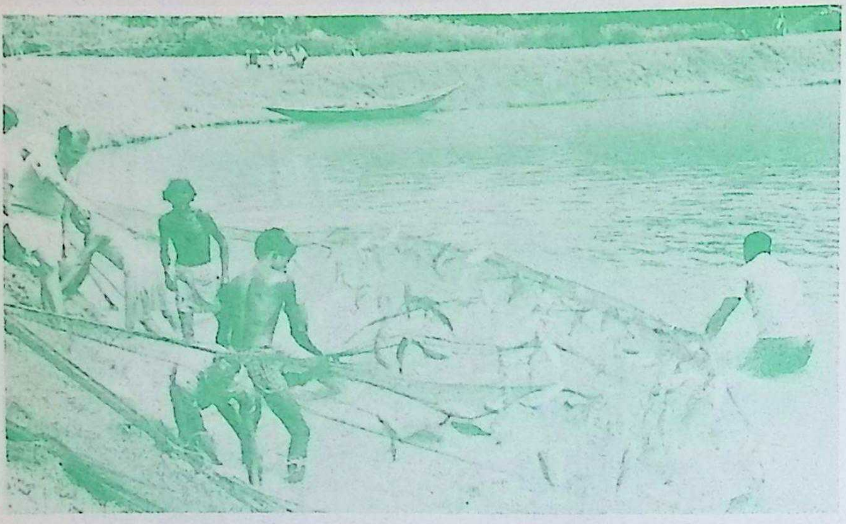

तालाब से मछलियों की फसल निकालना

अग्रणी राज्य है जिसमें निजी क्षेत्र में ऐसे अनेक मत्स्य फार्म हैं जहां वर्ष में दो बार प्रेरित प्रजनन द्वारा करोड़ों की संख्या में मछली का बीज तैयार किया जाता है. यहां से देश के अन्य राज्यों को भी पोलीथीन थैलों में आक्सीजन देकर मछली का बीज बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है.

मिश्रित मछली पालन

रोहू, कतल व नैन के साथ-साथ एक ही तालाब में तीन विदेशी मछलियों, ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प व कामन कार्प का मिश्रित मछली पालन करने से मत्स्य उत्पादन दो से तीन गुना तक बढ़ाया जा सकता है. केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान में मिश्रित मत्स्य पालन पर अपने प्रयोगों में इस तकनीक से 10 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष तक की उपज प्राप्त की है. अतः प्रेरित प्रजनन के बाद मिश्रित मत्स्य पालन, मत्स्य उत्पादन बढ़ाने की दिशा में इसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है. इस तकनीक के उचित प्रसार से नील क्रान्ति के स्वप्न को साकार करता संभव हो सकेगा.

वायु श्वासी मछलियों का पालन

वायु श्वासी मछलियों (मांगुर सिंघी, कोई, सौल इत्यादि) पोषक तत्वों के हिसाब से बहुत महत्वपूर्ण हैं. इनका संवर्धन गन्दे पानी के तालाबों में भी किया जा सकता है जहां कार्प मछलियां नहीं पाली जा सकती हैं. प्रेरित प्रजनन व उन्नत संवर्धन प्राविधि से इनका उत्पादन 3 से 5 टन तक प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष तक किया जा सकता है.

मीठे जल में झींगा पालन

मीठे जल का झींगा **मैकोब्रेकियम रोजेनबरगाई** स्वदेशी व निर्यात खपत दोनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है. यह झींगा अकेले व कार्प मछलियों के साथ संवर्धित किया जा सकता है. इस झींगे के प्रजनन व बीज उत्पादन तकनीक का विकास किया जा चुका है. इसके एकल संवर्धन से वर्ष में 400 से 500 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक फसल प्राप्त की जा सकती है.

समन्वित मछली पालन

समन्वित मछली पालन के अंतर्गत मिश्रित मछली पालन को पशु-पालन, मुर्गी-पालन या बत्तख-पालन से जोड़कर काफी लाभ उठाया जा सकता है. मछली व बत्तख के समन्वित पालन से एक हेक्टेयर के तालाब से 3.5-4 टन मछली 18,500 अंडे व 600 किलोग्राम बत्तख का मांस पाया जा सकता है. इसी तरह मछली व मुर्गियों के एक साथ पालन से 4-5 टन मछली 70 हजार अंडे व 1,250 किलोग्राम मांस प्रति हेक्टेयर तालाब से प्रति वर्ष पाया जा सकता है. इन विधियों में मुर्गी या बत्तख की बीट व छीजन आदि को मछलियों की खुराक के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है और मछलियों के संवर्धन के लिए आवश्यक उर्वरक व चारे के खर्च को बचाया जा सकता है. मछली और सुअर को साथ-साथ पाल कर भी गंदे पदार्थों को उर्वरक व ऊपरी चारे के रूप में उपयोग करके उस पर होने वाले खर्चे को कम किया जा सकता है. साथ ही लगभग एक हेक्टेयर तालाब से 6-7 टन मछली तथा 4-5 टन सुअर का मांस मिल सकता है.

धान और मछली की साझी खेती से धान के साथ-साथ मछली की उपज भी ली जा सकती है. वैज्ञानिक प्रयोगों में एक हेक्टेयर धान के खेत से एक साल में दो फसलें लेकर 6 टन धान के अतिरिक्त 700 किलोग्राम मछली की उपज प्राप्त की जा सकी है.

शहरी जलमल में मत्स्य पालन

शहरी जलमल जिसे आम भाषा में सीवेज कहा जाता है मत्स्य पालन के लिए उपयोग किया जाने लगा है. प्राथमिक उपचार के बाद

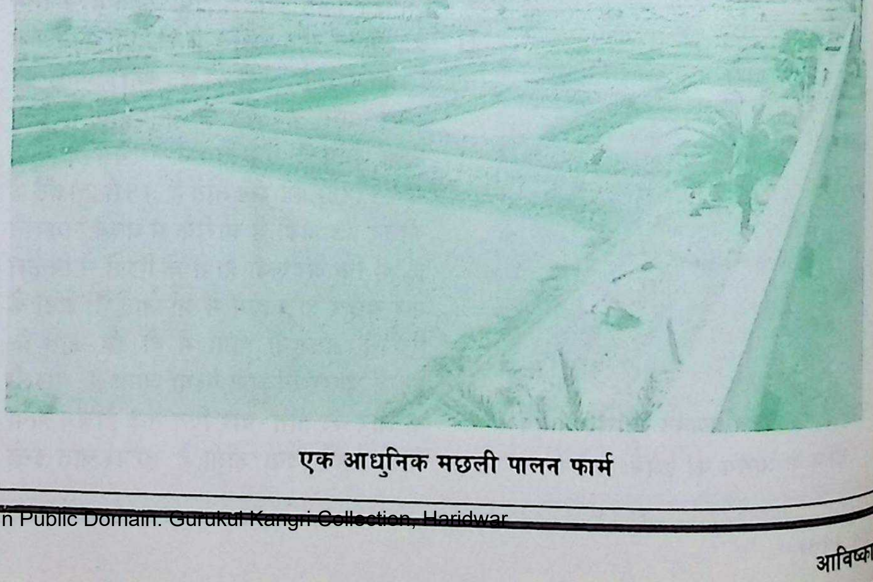

एक आधुनिक मछली पालन फार्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंशिक रूप से परिष्कृत जलमल में मछली पालन करने से 7 टन से अधिक कार्प मछलियों या 9 टन से अधिक तिलापिया मछली प्राप्त की जा सकती है. सीवेज उपचार में मछली की उपज प्रदूषण रोकथाम उपायों की अतिरिक्त उपलब्धि है जिसका लाभ हर संभव उठाया जाना चाहिए. वर्ष 1985 में प्रारंभ की गई गंगा शुद्धीकरण परियोजना में भी सीवेज को कृषि व मत्स्य पालन के उपयोग में लाने का प्रावधान है. केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर द्वारा उन्नत सीवेज में मछली पालन की प्राविधि इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है.

खारे जल में मत्स्य पालन

नदियों के मुहाने, कटिबंधीय क्षेत्रों के पृष्ठ जल तंत्र तथा भेरियों के रूप में देश में एक विशाल खारे पानी का जल क्षेत्र उपलब्ध है जिसमें अभी तक विकसित उन्नत तरीकों से मछली उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है. खारे जल में पाया जाने वाला बागदा झींगा (पीनियस मोनोर्डन) आर्थिक रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है. इसके निर्यात से देश को पांच सौ करोड़ रुपए से ऊपर की विदेशी मुद्रा की आय होती है. स्वदेश में भी इसकी बहुत मांग है.

बागदा झींगे को खारे जल के तालाब में परिपक्व करके प्रजनन कराने और इसके लिए हैचरी विकसित करने का कार्य सफलतापूर्वक किया जा चुका है जो कि मछली पालन के क्षेत्रों में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है. बागदा झींगे के अतिरिक्त खारे जल में संवर्धन योग्य अन्य मछलियों जैसे मलेट भेटकी व मिल्क फिश के पालन के तरीकों का भी विकास हुआ है. इन मछलियों के मिश्रित संवर्धन से 1.5-3 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष का उत्पादन संभव है.

तालाबों में मछली व बत्तख पालन

मत्स्य पालन की अप्रचलित व अल्प-प्रचलित विधियां

झीलों व जलाशयों को मछली पालन के लिए उपयोग में लाने के लिए बाड़े बनाकर मछली पालन की पद्धति का विकास किया गया है. जलाशय के एक निश्चित क्षेत्र को घेर लिया जाता है. इस क्षेत्र में तीन मेजर कार्प की अंगुलिकाएं डाल कर तथा नियमित रूप से कृत्रिम आहार देकर मत्स्य संवर्धन किया जाता है. इस पद्धति से छः मास में 4 टन प्रति हेक्टेयर मछली प्राप्त की जा सकती है. इन बाड़ों में मिश्रित मछली पालन करके मत्स्य उत्पादन और भी बढ़ाया जा सकता है. बड़े तालाबों में पिंजरे लगाकर मछली पालन की पद्धति का भी विकास हुआ है. इन पिंजरों में मछली की अंगुलिकाएं डाल कर उनका संवर्धन किया जाता है. इनमें मछली की बढ़त को सुविधानुसार नापा जा सकता है. बीमारी आदि की रोकथाम भी आसान है. इन विधियों से एक निश्चित अवधि के भीतर खाने योग्य मछली का संवर्धन किया जा सकता है.

शीतल जल मत्स्यकी

भारत के उत्तरी क्षेत्र जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश पश्चिमोत्तर उत्तर प्रदेश

(शेष पृष्ठ 177 पर)

मछलियों के प्रजनन के लिए विकसित चाइनीज हैचरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान दर्शन का विज्ञानेतर अनुशासनों पर प्रभाव-2

भौतिक विज्ञान से इतर अनुशासनों पर प्रभाव

□ डा० चन्द्रमोहन भंडारी

□ बीसवीं सदी के सातवें दशक तक आते-आते क्वांटम भौतिकी तथा सापेक्षिकता सिद्धान्त का प्रभाव अन्य अनुशासनों पर परोक्ष रूप से पड़ने लगा था. यह ठीक है कि सभी भौतिकविद् भी दर्शन के स्तर पर क्वांटम अवधारणा के विषय में एकमत नहीं है. कण-भौतिकी में दो (एक प्रकार से विरोधी) धारणाएं प्रस्तुत होती रहीं हैं.

एक धारणा के अनुसार मूलभूत कणों की तलाश सार्थक है और भविष्य में ऐसे कणों के विषय में पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो सकेगी जिनके आधार पर संपूर्ण द्रव्य-जगत की व्याख्या की जा सकेगी. दूसरी धारणा के अनुसार ऐसी तलाश किन्हीं निश्चित कणों पर समाप्त नहीं होगी. विश्व में घट रही कोई घटना अन्य घटनाओं से जुड़ी है और एक मूलभूत कण (तथाकथित) अन्य कणों के आधार पर जाना जा सकता है.

यह आपसी संयोजन एक बड़े धागे या रस्सी की तरह है जिसे कई गांठों में बांधा गया है. एक विशेष तरीके से एक सिरे को खींचते ही सारी गांठें खुलती चली जाती हैं. संपूर्ण ब्रह्मांड ऐसे संयोजक बंधनों का एक बृहत जाल-सा है. समग्रता की बात किसी सीमा तक (प्रेक्षक की किसी प्रेक्षण में निहित हिस्सेदारी की दृष्टि से) क्वांटम भौतिकी की आधारभूत अवधारणा में निहित है. परंतु कण-भौतिकी के संयोजन प्रारूप के संदर्भ में यह एकदम स्पष्ट रूप से उभर आती है (संदर्भ : 2).

भौतिक विज्ञान की यह अवधारणा कई मामलों में अन्य अनुशासनों को प्रभावित कर रही है यद्यपि कई बार इसकी लाक्षणिकता तथा स्तर पर स्पष्ट मतभेद दिखाई देते हैं.

शुभावर और कई अन्य आधुनिक विचारक विज्ञान के गुणवत्ता से तथा नैतिकता से असम्पृक्त होने के कारण हमारी वर्तमान आर्थिक-सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं के समाधान में उसकी कोई भूमिका नहीं स्वीकारते. जबकि दूसरी ओर हाइजेनबर्ग, डेविड बॉम, एफ० कापरा विज्ञान में क्वांटम भौतिकी के अभ्युदय के साथ जुड़ी समग्रतापूर्ण दृष्टि के कारण विज्ञान के इस नवीन स्वरूप को महत्व देते हैं. शायद दोनों धारणाओं में आधारभूत अंतर विज्ञान की उस छवि के कारण है जो सत्रहवीं सदी के यांत्रिकीय तथा बीसवीं सदी के क्वांटम स्वरूप से जुड़ा है.

निश्चय ही शुमारवर उस विज्ञान की बात कर रहे हैं जिसका ठोस दार्शनिक आधार रेने देकार्तव आइजक न्यूटन के नामों के साथ जुड़ा है और प्रकृति के संबंध में फ्रांसिस बेकन की विचारधारा का पक्षधर रहा है. विज्ञान के विषय में बेकन ने बहुत स्पष्ट शब्दों में अपने विचार दिए हैं और उसके स्वरूप तथा तरीकों की बात बेलाग कही है. ''प्रकृति को कैद कर जंजीरों में जकड़ना, मानव की सेवा के लिए मजबूर करना, उसे मानव का दास बनाना और जरूरत पड़ने पर रहस्य उगलवाने के लिए उसे प्रताड़ित करना''—जैसे शब्दों में उसने अपनी मानसिकता को उजागर किया है. यह केवल एक व्यक्ति की ही नहीं वरन् उस समय (सत्रहवीं सदी) के पूरे यूरोपीय बुद्धिजीवियों के वर्ग की मानसिकता थी (संदर्भ : 9-10).

यह एक अश्लील एवं हिंसक मानसिकता थी जिसने विज्ञान की एक स्पष्ट भूमिका निर्धारित करने में सहयोग दिया था. प्रकृति का स्त्री रूप में लेने तथा उसे प्रताड़ित करने की शब्दावली में स्त्री के प्रति उस युग के व्यवहार की रूपरेखा मिलती है.

यह मानसिकता इतने अश्लील तथा हिंसक रूप में अन्यत्र कहीं और नहीं दिखाई देती. भारतीय समाज भी अन्य सभी पारम्परिक समाजों की तरह पुरुष-प्रधान रहा है और उसमें भी पुरुष को एक केंद्रीय स्थान प्राप्त है जिसमें स्त्री विभिन्न रूपों में उसकी सहायता करती है. पति को परमेश्वर का दर्जा देना, सती-प्रथा को सम्मानजनक परम्परा में रूपान्तरित करना पुरुष प्रधान समाज की ही मानसिकता है. परन्तु, ध्यान देने योग्य है कि यह बात सभी भारतीय समाजों में एक ही रूप में नहीं रही और यह भी कि वैचारिक स्तर पर नारी को एक सम्मान का दर्जा दिया जाता रहा. देवताओं को मात्र पुरुष रूप में नहीं पूजा गया वरन् उसके नारी रूप को भी पूजा गया. पृथ्वी और प्रकृति के मातृ-रूप को स्वीकार किया गया. शायद यह भी एक कारण रहा है कि पूर्व की संस्कृतियों में उनके उत्कर्ष-काल में विज्ञान की प्रगति को प्रकृति-संहारक प्रौद्योगिकी से जोड़ने का प्रयास नहीं हुआ और न उसे वैचारिक स्वीकृति देने का ही प्रयास हुआ.

आर्थिक संदर्भ और नया अर्थशास्त्र

यह जो आधुनिक विज्ञान का समग्रदृष्टि स्वरूप सामने आया है अपनी अस्पष्टता (दार्शनिक आधार पर) के बावजूद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थशास्त्र पर अपना प्रभाव डालने लगा है वैचारिक स्तर पर. दलगत राजनीति और निहित स्वार्थ ऐसे हर परिवर्तन का विरोध करेंगे जो मनुष्य को तुरंत लाभ से वंचित करने का प्रयत्न करते हैं. इस आधार पर यह कहना कठिन होगा कि व्यवहार के स्तर पर आर्थिक संदर्भों में यह समग्र दृष्टिकोण निकट भविष्य में कारगर हो सकेगा या नहीं.

पर्यावरणीय दृष्टिकोण

मात्र व्यक्तिगत लाभ से प्रेरित अर्थव्यवस्था समाज के एक बड़े वर्ग का ही अहित नहीं करती वरन् प्रकृति तथा प्राकृतिक सम्पदा का भी शोषण करती है. अनियंत्रित रूप से निरंतर होता आ रहा यह शोषण प्रकृति के उस पर्यावरणीय संतुलन को बिगाड़ सकता है जो इस पृथ्वी पर जीवन का आधार है और जो अरबों वर्षों के अन्तराल में विकसित हुआ है. यह पर्यावरण संकट अब व्यापक रूप में चर्चा का विषय बन रहा है. समाजसेवी संस्थाएं तथा कई सरकारें इस दिशा में सक्रिय हैं और उन नियमों को कड़ाई से लागू करने के लिए प्रतिबद्ध हैं जो पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में सहयोग दे सकें.

यह एक कदम है मात्र पहला कदम जो राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में एक समग्र दृष्टि को पूरी तरह स्वीकार नहीं करता है. अभी तक उठाए गए कदम मात्र एक संकटकालीन स्थिति से निपटने के लिए बने हैं. नदी के जल का प्रदूषण इसलिए रोकना है क्योंकि इससे जीवन तथा स्वास्थ्य को तुरंत खतरा दिखाई दे रहा है. परमाण्विक संस्थानों में सुरक्षा प्रबंध कड़े किए जा रहे हैं क्योंकि विकिरण जीवन के लिए बड़ा संकट उत्पन्न कर सकता है और ऐसा कुछ घटनाओं में हो भी चुका है. हर बार संकट सामने दीखने पर सुरक्षा-प्रबंध खोजना एक संकट-नियोजन अवश्य है समग्र दृष्टि से संचालित व्यवहार नहीं. यह ठीक है कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के आधार पर हुए परिवर्तनों को अनकिया नहीं किया जा सकता और न ही उन सुविधाओं को ठुकराया जा सकता है जो हमें इनके कारण प्राप्त हुई है. पर यह भी तो आवश्यक नहीं कि उपभोग को वस्तुओं का सुनियोजित तथा अनियंत्रित उत्पादन, प्राकृतिक सम्पदा का विवेकहीन शोषण तथा प्रकृति के सुरक्षा-चक्र का अनुत्क्रमणीय विघटन ही मानव भविष्य का निर्धारिण करे भले ही वह सामूहिक विध्वंस की ओर ले जाता हो.

प्राकृतिक साधनों का अनियंत्रित शोषण तथा एक उपभोगी संस्कृति का अनियंत्रित विस्तार पूंजीवादी दृष्टि का प्रमुख आधार है. इस दृष्टि में प्रकृति का महत्व वही है जिसे बेकन ने परिभाषित किया है और जिसे कैद कर जंजीरों में जकड़ कर मानव को दास बनाना तथा उसे प्रताड़ित कर उसके रहस्य उगलवाना विज्ञान का परम् उद्देश्य है. मानव भी कौन? विश्व का हर मानव नहीं. शोषण प्रकृति का ही नहीं मानव का भी. एक छोटे सुविधाजीवी वर्ग की उपभोगी मानसिकता में शेष मानव तथा संपूर्ण प्रकृति मात्र साधन हैं.

समाजवाद इस व्यवस्था का एक विकल्प है जिसमें मानव द्वारा मानव के शोषण को सिद्धान्त रूप में अस्वीकार किया गया है. यद्यपि व्यावहारिक स्तर पर ऐसा नहीं हो सका जैसा कि पूर्वी यूरोप में हो रही उथल-पुथल से स्पष्ट होता है. पर सैद्धान्तिक आधार भी दीर्घ-परिसर में महत्व रखता है और एक वैकल्पिक व्यवस्था के विकास का आधार बना सकता है.

पर जब बात प्रकृति के शोषण की हो या पर्यावरण के प्रति एक समन्वयात्मक संबंध की हो समाजवादी व्यवस्था में भी इसे महत्व नहीं दिया गया. पूंजीवाद की पोषित उपभोगी संस्कृति तथा समाजवादी प्रणाली में व्यावहारिक अंतर मात्र इस बात का है कि पहले में उपभोग एक वर्ग कर रहा होता है जबकि दूसरे में पूरा समाज, पूर्वी, यूरोप में 1989-90 में हुए परिवर्तन समाजवादी व्यवस्था के उस पक्ष पर भी प्रश्नचिह्न लगाते हैं जो उसे पूंजीवाद से पृथक करते रहे हैं. प्रकृति तथा पर्यावरण के विषय में पूंजीवादी तथा समाजवादी दृष्टिकोण 'संकट-नियंत्रण' तक ही अभी तक सीमित है. परिवेश से समन्वयात्मक संबंधों पर आधारित समग्रदृष्टि पर नहीं. वैसे अभी इसकी अपेक्षा करना उचित भी नहीं. जब मानव द्वारा मानव का शोषण समाप्त होगा और सभी समाजों व राष्ट्रों के मध्य एक सहयोगी भाव का विकास होने लगेगा तभी प्रकृति से सहयोग की बात सोची जा सकेगी, मात्र संकट-नियंत्रण के लिए नहीं, वरन् 'जियो तथा जीने दो' की भावना पर आधारित समग्र दृष्टि के संदर्भ में.

सन् 1978 में 'वैकल्पिक भविष्य का निर्माण' नाम से प्रकाशित निबंध-संग्रह (संदर्भ:11) में लेखिका हैजल हैण्डरसन ने शुमारवर द्वारा प्रतिपादित अर्थनीति की दिशा लेते हुए बड़े ही प्रभावकारी, मौलिक तथा बेबाक रूप से अपना मंतव्य स्पष्ट किया है. सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक स्तरों पर आवश्यक तालमेल बैठाते हुए वे उनसे इतर जाकर अर्थनीति के विषय में स्पष्ट रूप से कहने का साहस करती है कि "अर्थशास्त्र विज्ञान नहीं है. वह तो राजनीति है अपना भेष बदले हुए."

पर्यावरण के प्रति एक गहरी समझ हैण्डरसन की विशेषता है. वैसे यह स्वयं में कोई असाधारण बात नहीं. पर्यावरण से संबंधित समझ न तो नई है और न ही एकदम मौलिक. जब महात्मा गांधी 'हरित चरागाहों वाले ग्रामीण लोकतंत्र' की बात करते हों, या जब शुमारवर 'छोटा ही खूबसूरत है' जैसे मुहावरों का उपयोग करते हों या जब सुन्दरलाल बहुगुणा 'चिपको आन्दोलन' का नेतृत्व कर रहे होते हैं अथवा कापरा 'बौद्ध-अर्थशास्त्र' की बात करते हों—प्रकृति और उसके संतुलन-चक्र के प्रति एक आस्था उभरकर सामने आती प्रतीत होती है.पिछले कुछ दशकों में यदि कोई नई बात सामने आई है तो यही कि बेकन, न्यूटन तथा देकार्त द्वारा निर्देशित खण्डदृष्टि का अंधा पक्षधर विज्ञान बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक पहुंचकर अपने ही निष्कर्षों द्वारा उस अंधविश्वास के दलदल से निकल आने के लिए आकुल है. सापेक्षिकता और क्वांटम भौतिकी इसी खण्ड-दृष्टि के चरम निष्कर्ष हैं जो एक सीमा के उपरान्त समग्रता तथा संयोजन की दृष्टि देते प्रतीत होते हैं. गांधी, शुमारवर, बहुगुणा तथा कापरा—सब एक सूत्र में बंधे नजर आते हैं और विज्ञान का नवीन स्वरूप उसे एक ठोस सैद्धान्तिक आधार देता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रिटजॉफ कापरा तथा हैजल हैण्डरसन इस नई विज्ञान-दृष्टि को और अन्य अनुशासनों के संदर्भ में उसकी सार्थकता को अपनी लेखनी की मौलिकता से कुछ और समद्ध कर देते हैं. प्रबुद्ध विचारकों, भौतिकविदों, अर्थशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों तथा चिकित्सा शास्त्रियों के बीच एक सार्थक संवाद की स्थिति कुछ-कुछ उभरने लगी है. हैण्डरसन द्वारा अर्थनीति को राजनीति का पर्याय कहना एक वास्तविकता को स्वीकार करना है. भविष्य में कोई प्रभावकारी कदम उठाए जाने के मार्ग में यही राजनीति बनाम् अर्थनीति सबसे बड़ा अवरोध भी है. यह संभव होगा या नहीं यह विवादास्पद नहीं है क्योंकि इस पृथ्वी पर जीवन को समूल विध्वंस से बचाने का यही एक विकल्प है. विवादास्पद है तो यह कि वह वांछित परिवर्तन किस प्रकार और कब होगा?

चिकित्सा शास्त्र तथा मनोविज्ञान में समग्र दृष्टिकोण की जरूरत और भी अधिक है. चिकित्सा की वर्तमान मुख्य पद्धति एलोपैथी में जीव का यांत्रिक प्रारूप ही चिकित्सा प्रणाली का आधार है. कुछ स्थितियों में यह सरलीकृत प्रारूप अव्यावहारिक नहीं पर हर समस्या के समाधान में उसे स्वीकार करना कठिन होगा. एक घड़ी की कार्यविधि पूरी तरह उसके घटकों की कार्यविधि के आधार पर समझी जा सकती है पर मानव शरीर के लिए यह नहीं कहा जा सकता. वास्तव में जीवित निकायों के लिए यह सही नहीं और जब जीवित निकाय के साथ मन भी जुड़ जाता है तब शरीर-मन का सम्मिलित निकाय एक घड़ी की कार्यविधि के आधार पर नहीं समझा जा सकता.

एलोपैथी की कई मामलों में सफलता के बावजूद उसे अपूर्ण ही माना जाएगा क्योंकि उसका आधार यांत्रिकीय है और शरीर के किसी भाग में गड़बड़ी होने पर चिकित्सा द्वारा उस अवयव विशेष पर ही ध्यान दिया जाता है. दूसरी ओर समग्र दृष्टिकोण के अनुसार शरीर-मन एक ही निकाय है और अवयवों पर आधारित न होकर प्रक्रियाओं पर आधारित है. किसी प्रक्रिया में कोई अवरोध या असंतुलन एक जटिल श्रृंखला का सूत्रपात कर सकता है जो किसी अवयव विशेष में किसी विशेष लक्षण के रूप में प्रकट होता है. एक अवयव में परिलक्षित कोई लक्षण उस अवयव मात्र से नहीं वरन् एक संपूर्ण प्रक्रिया से जुड़ जाता है.

होम्योपैथी में कुछ इसी तरह की दृष्टि विद्यमान है. वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उसे सफल नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसकी कार्यप्रणाली का ठोस सैद्धांतिक आधार नहीं बन सका है तथा उसकी प्रभावोत्पादकता संदेह से परे नहीं है. पर इसमें शोध की सम्भावनाएं हैं और भविष्य की सम्भावित पद्धतियों का एक विकल्प भी.

आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति में भी यही दृष्टि विद्यमान है. यह स्वाभाविक ही है क्योंकि जिस देश-काल में आयुर्वेद का विकास हुआ उसमें समग्र दृष्टिकोण अपनाए जाने पर आग्रह था. पर सदियों के दीर्घ अन्तराल में कोई शोध न होने के कारण इसकी प्रगति अवरुद्ध हो गई.

यौगिक-क्रियाएं शरीर-मन के आपसी समन्वय को प्रभावित करती हैं (संदर्भ :12), राजयोग में शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से मन को नियंत्रित करने का प्रावधान है जो एक समग्र दृष्टि पर आधारित प्रक्रम का उदाहरण है..

कई बार ऐसा संभव है कि लक्षण शरीर के किसी भाग में प्रकट हों पर रोग का उद्गम कहीं और हो. यह भी संभव है कि रोग का उद्गम उस शरीर-मन निकाय के एकदम बाहर हो. शरीर-मन निकाय का स्वस्थ रहना शरीर व मन के आपसी तालमेल व संतुलन पर ही निर्भर नहीं करता वरन् अपने निकट परिवेश पर भी निर्भर करता है. एक परिवार के सदस्यों के बीच यदि सहज एवं स्वस्थ संबंध नहीं है तब तनावपूर्ण प्रक्रियाओं की एक श्रृंखला बन जाती है जो अपेक्षाकृत संवेदनशील व्यक्ति को आन्दोलित कर देती है. इस सबका सम्मिलित प्रभाव सर्वथा अप्रत्याशित रूप में परिलक्षित हो सकता है. परिणामस्वरूप रोग एक शारीरिक रोग के रूप में प्रकट होता है या मानसिक रोग के रूप में.

अनेक विशेषज्ञ यह मानते हैं कि कैंसर जैसी बीमारियों का मन से संबंध है और तनावग्रस्त व्यक्ति इस रोग के लिए अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होते हैं. दूसरी ओर तनावग्रस्त परिस्थिति दुःसाध्य रूप से जटिल होने पर शरीर-मन-निकाय एक तरह से एक प्रतिरक्षा प्रणाली खोज निकालता है जो 'शिजोफ्रेनिया' जैसे मानसिक रोगों को जन्म दे सकती है.

शिजोफ्रेनिया—दोहरे व्यक्तित्व की मानसिक बीमारी—जिसमें रोगी दो अलग व्यक्तियों में जीने लगता है. यह एक समग्र दृष्टि पर आधारित व्याख्या के आधार पर समझी जाने लगी है और इसके निदान में भी यह समझ महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है. (संदर्भ : 2, 10)

यूरोप में उन्नीसवीं सदी के मध्य तक पागलपन को एक मानसिक रोग का दर्जा नहीं दिया जा सका था और पागल व्यक्तियों के साथ अमानवीय व्यवहार होता रहा था. फ्रायड के समय में पहली बार सिद्धान्त रूप में यह स्वीकृति मनोचिकित्सा के यूरोपीय इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है. वह (पागल) अब एक रोगी था सहानुभूति का हकदार. वैसे यह स्वीकृति व्यावहारिक स्तर पर उतनी स्पष्ट नहीं थी पर फिर भी यह एक उपलब्धि थी.

यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन भारतीय संदर्भ में पागल व्यक्तियों को उस तरह प्रताड़ित नहीं किया गया जैसे कि यूरोप में. जब तक वह हिंसा पर उतारु न हो जाए वह एक सहानुभूति अर्जित करता रहा था या एक तटस्थ उपेक्षा. पर उसे प्रताड़ित नहीं किया गया था. यह बात और है कि यूरोप की नकल करते-करते हम अपने पागलखानों में लगभग दो सदी पूर्व की यूरोपीय मानसिकता का परिचय दे रहे हैं, जबकि यूरोप अब पुरानी खण्ड-दृष्टि पर अत्यधिक आग्रह छोड़ एक समग्र-दृष्टि पर आधारित मनोविज्ञान पर ध्यान दे रहा है.

समन्वयात्मक गतिशील प्रक्रम

भौतिक विज्ञान अपने आधुनिक स्वरूप में जिस आधारभूत संयोजन पर सैद्धांतिक बल दे रहा है वह समग्र तथा खण्ड-दृष्टि के समन्वय पर आधारित एक गतिशील प्रक्रम की ओर इंगित करता प्रतीत होता है. दोनों ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण एक-दूसरे के पूरक हैं और पूरकत्व का ज्ञान एक गतिज तथा सृजनात्मक व्यवस्था को जन्म दे सकता है. (संदर्भ: 6, 8)

भौतिक विज्ञान अधिकतर द्रव्य तथा ऊर्जा के गुणों की व्याख्या से संबंध रखता है और इसलिए उसमें सदैव समग्रता का आग्रह आवश्यक नहीं पर उसमें हो रही क्रांति का अधिक सार्थक प्रभाव उन अनुशासनों पर अधिक होना स्वाभाविक है जो जीवन से जुड़े हैं. सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक या मानसिक संदर्भों में एक पर्यावरणीय दृष्टिकोण चुनने का विकल्प विद्यमान है और इसे स्वीकारने में हमें विलम्ब नहीं करना चाहिए.

यहां विज्ञान-दर्शन के विज्ञानेतर अनुशासनों में प्रभाव की चर्चा की गई है. प्रभाव सदा इकतरफा नहीं हुआ करता. विज्ञान की दृष्टि ने अन्य अनुशासनों को जैसे समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान या अर्थशास्त्र को किन्हीं संदर्भों में प्रभावित किया है तो वह भी स्वयं दूसरे अनुशासनों से प्रभावित हुआ है. स्वयं क्वांटम भौतिकी को दार्शनिक स्तर पर परिभाषित करने के प्रयत्नों में भारतीय दर्शन के कतिपय आयामों की भूमिका रही है.

क्वांटम भौतिकी से संबंधित तीन महत्वपूर्ण नाम हैं एर्विन श्रोडिन्जर, वर्नर हाइजनबर्ग तथा डेविड बॉम, श्रोडिन्जर ने अपने चिन्तन के उपनिषदों के प्रभाव को स्वीकारा है. अपने चिन्तन पर भारतीय दर्शन के परोक्ष प्रभाव को हाइजनबर्ग स्वीकारते हैं (संदर्भ: 10) और डेविड बॉम तथा जिदू कृष्णमूर्ति के बीच दीर्घकाल तक सार्थक-संवाद की स्थिति बने रहना तथा बॉम के दार्शनिक दृष्टिकोण पर उसका प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है. आधुनिक भौतिक विज्ञान तथा समग्रदृष्टि पर आधारित चिन्तन के बीच दार्शनिक स्तर पर कई समानताएं दिखाई देती हैं. यह बात पश्चिमी बुद्धिजीवियों को कुछ हैरान-सी करती प्रतीत होती हैं.

विश्व की हर घटना दूसरी हर घटना को प्रभावित करती है तथा उससे प्रभावित होती है यह समग्रदृष्टि पर्यावरणीय दृष्टिकोण का पर्याय है. यह स्वाभाविक ही है कि एक अनुशासन में जो घट रहा है वह दूसरे से जा जुड़ता है. कभी अनुकूल प्रवाह में तथा कभी प्रतिकूल प्रवाह में. अपने सामूहिक विवेक का उपयोग कर हम अवांछित कार्यों के लिए किए जा रहे अस्वस्थ तथा अस्वाभाविक सैद्धान्तिक अपनिर्वचनों की प्रभावोत्पादकता कम कर सकते हैं.

पिछले कुछ दशकों से खण्ड तथा समग्रदृष्टि पर आधारित चिन्तन को विरोधी स्थिति में न लेकर पूरकत्व की स्थिति में लेने की बात वैचारिक स्तर पर क्रमशः स्पष्ट होती जा रही है. व्यावहारिक स्तर पर यह समझ कब दृष्टिगोचर होगी नहीं कह सकते पर इसे होना ही है क्योंकि इसका कोई विकल्प (दीर्घ-परिसर में) है ही नहीं. □

(पृष्ठ 173 का शेषांश)

इत्यादि में कुछ ऐसी नदियां व झीलें हैं जहां का पानी वर्ष भर अत्यधिक ठंडा रहता है. इन जलयंत्रों में भारतीय मेजर कार्प नहीं पाली जा सकती. इनमें कुछ विशेष प्रकार की मछलियों को ही जो कि साल भर शीतल जल में रहने की अभ्यस्त हैं या उनका जीवन क्रम शीतल परिस्थितियों के अनुकूल है, रह सकती हैं. इनमें महाशीर प्रजाति की एक मछली बहुत होती है. इसे **टांर पिट्रयूटोरा** भी कहते हैं.

यह मछली प्रोटीन, वसा व उत्पादन की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही यह एक रोचक मत्स्य आखेट के लिए भी प्रसिद्ध है. विदेशी पर्यटक इस मछली के आखेट से विशेषतया आकर्षित होते हैं. पिछले कुछ वर्षों में पहाड़ी क्षेत्रों के अनियोजित विकास, पेड़ कटने व चूना व पत्थर खदान गतिविधियों से शीतल जलक्षेत्र अत्यधिक प्रभावित हुए हैं. इस मछली की संख्या में भी भारी कमी आई है. वैज्ञानिक पर्यवेक्षणों से यह पता लगा है कि इस मछली का नैसर्गिक प्रजनन नहीं हो रहा तथा इसके अस्तित्व विलोप के संकेत नजर आ रहे हैं. प्रेरित प्रजनन द्वारा इस मछली का बीज पैदा करने के प्रयास किए जा रहे हैं जिसमें महत्वपूर्ण सफलता मिलने की आशा है.

महाशीर के अतिरिक्त एक और मछली है जो कि विदेशों से लाई गई है तथा भारत के शीतल जल क्षेत्रों में विकसित हो रही है. इस मछली को 'ट्राउट' कहते हैं. यह मछली मत्स्य आखेट के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है. कश्मीर व हिमाचल में इनके लिए विशेष प्रकार की हैचरी बनाई गई है. मत्स्यकी के अलावा पर्यटक उद्योग से जुड़ी शीतल जल मत्स्यकी का विकास नितान्त आवश्यक है. इसके लिए महाशीर मछली के पुनर्वासन व ट्राउट मछलियों के विकास के लिए उन्नत तरीकों को खोजने के प्रयास विशेष महत्व रखते हैं.

आने वाले समय में जबकि देश की खाद्य जरूरतें बढ़ेंगी तथा सीमित कृषि क्षेत्र से उत्पादन बढ़ाना कठिन होगा मत्स्यकी उद्योग अतिरिक्त खाद्य जुटाने के प्रयासों में विशेष भूमिका निभा सकता है. अतः अभी से इसकी ओर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए. अधिक से अधिक जल क्षेत्र में मत्स्यकी का प्रसार होना चाहिए. प्रग्रहण मत्स्यकी व मछली पालन की उन्नत विधियों का लाभ उठाकर अतिरिक्त खाद्य तो जुटाया ही जाएगा, इसके समोचित विकास से समाज के कमजोर वर्ग के लिए आय के नए साधन भी उपलब्ध कराए जा सकेंगे. □

डा० झिंगरन पश्चिम बंगाल स्थित केन्द्रीय अंतर्स्थलीय प्रग्रहण मत्स्य पालन अनुसंधान संस्थान के निदेशक हैं और डा० जोशी इसी संस्थान में वैज्ञानिक.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भू-वैज्ञानिक घड़ियां-6

प्लेट-खिसकाव एवं महाद्वीपीय विस्थापन द्वारा काल-निर्धारण

□ डा० विजय कुमार उपाध्याय

भू पटल के उस टोपीनुमा खण्ड को प्लेट कहा जाता है जो अपने स्थान पर दृढ़ हो तथा जिसके चारों ओर की सीमाओं पर सक्रिय भूकम्पों की संकीर्ण पट्टी मौजूद हो. सभी प्लेटें अपनी पड़ोसी प्लेटों के सापेक्ष गतिशील रहती हैं. प्लेटों के विवर्त्तन के ही कारण महाद्वीपों एवं महासागरों का निर्माण एवं वितरण होता है. महाद्वीपीय खंडों के उठने और धंसने तथा उनका खिसकाव प्लेट-विवर्तन में शामिल हैं. उदाहरणार्थ नेपल्स के पश्चिम में सेरापिस का मंदिर प्लेट-विवर्त्तन के कारण भूखण्ड के उत्थान का दृष्टांत प्रस्तुत करता है.

यहां मन्दिर के तीन स्तम्भ खड़े दिखाई पड़ते हैं. समझा जाता है कि यह मन्दिर पहले सूखी जमीन पर बनाया गया, फिर समुद्र तल के नीचे धंस गया तथा फिर से समुद्र के ऊपर उठ गया. जिस स्थिति में यह आज दिखाई पड़ता है. प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि इस भूखंड का समुद्र तल के ऊपर दुबारा उत्थान 1500 ई० के आस-पास हुआ. संसार के अन्य भागों में भी ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं. दक्षिणी कैलिफोर्निया के पेलॉस वर्डी तट पर सीढ़ियों के समान पांच उत्थित वेदिकाएं (टेरेसेज) मिलती हैं. सबसे निचली वेदिका समुद्र तल से 45 मीटर ऊपर तथा सबसे ऊंची वेदिका समुद्र तल से 240 मीटर की ऊंचाई पर है.

महाभारत की कहानी से पता चलता है कि भगवान कृष्ण की राजधानी द्वारिका नगरी में थी जो भारत के पश्चिमी भाग के सटे समुद्र में एक टापू पर स्थित थी. कहा जाता है कि भगवान कृष्ण के मरणोपरान्त द्वारिका नगरी समुद्र में धंस गई. वर्तमान द्वारिका नगरी वस्तुतः बाद में विकसित हुई. पहले लोग इसे सिर्फ एक कपोल कल्पित कहानी समझते थे. परन्तु हाल में भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा की गई खोजों से कुछ आश्चर्यजनक तथ्य प्रकाश में आए हैं. इन खोजों से पता चला है कि वर्तमान द्वारिका तट से कुछ दूरी पर समुद्र की तलहटी में कुछ मकानों के भग्नावशेष हैं. साथ-ही-साथ धातु एवं प्रस्तर की बनी देवी-देवताओं की मूर्तियां तथा धातु के बर्तन मिले हैं. इन खोजों ने महाभारत की उस कहानी की सत्यता प्रमाणित कर दी है जिसके अनुसार कृष्ण की मूल द्वारिका नगरी समुद्र में धंस गई थी, क्योंकि भग्नावशेषों से प्राप्त वस्तुओं के आयु निर्धारण से जो निर्माण-काल मिलता है वह लगभग उसी के बराबर है जो काल महाभारत का था.

भारत में ही भूखंड के धंसने का एक दूसरा उदाहरण भी मिलता है. सन् 1878 ई० में बंबई की पास प्रिंस गोदी (प्रींसेस डौक) का निर्माण करते समय बंबई के पूर्वी भाग में समुद्र तल से 10 मीटर नीचे एक जलमग्न जंगल का पता लगा. पुनः सन् 1910 ई० में जब जांच की गई तो पता चला कि उपर्युक्त जलमग्न जंगल की गहराई समुद्र तल से 12 मीटर नीचे हो गई थी. अतः यह निष्कर्ष निकला कि यह भूखंड 6 सेंटीमीटर प्रति वर्ष की दर से नीचे धंस रहा है. इसी प्रकार इटली के निकट समुद्र में स्थित काफी द्वीप पर ब्लू ग्रोटो नामक समुद्री गुफा भी भूखंड के धंसने का एक अच्छा उदाहरण है. कहा जाता है कि रोमनों द्वारा छिपने के लिए इस गुफा का उपयोग किया जाता था. इस गुफा की छत में प्रकाश आने के लिए छेद बना हुआ था. यह पूरी गुफा तथा छेद का कुछ भाग आज जल में डूबा हुआ है.

उपर्युक्त सभी भूखंडों का उत्थान या पतन स्थानीय तौर पर हुआ है जिसे हम समुद्र तल के सापेक्ष तुलना कर तुरंत पहचान सकते हैं. परन्तु बड़े-बड़े भूखंडों का भी उत्थान या अवतलन (सबसिडेंस) होता है जिसे पहचानने के लिए अन्य विधियों का सहारा लेना पड़ता है. ऐसी ही एक विधि है पुरा भूचुम्बकत्व की. किसी भी काल में चुम्बकीय खनिज पृथ्वी के तत्कालीन चुंबकीय क्षेत्र के अनुसार अभिविन्यस्त (ओरिएंट) हो जाते हैं. खनिजों की यह अभिविन्यस्तता चुंबकीय क्षेत्र की प्रकृति के परिवर्तित हो जाने पर भी लगभग ज्यों की त्यों बनी रहती है, जो उस काल के चुंबकीय क्षेत्र की ध्रुवीयता (पोलैरिटी) पता लगाने में सहायता करती है. इस अवशिष्ट चुंबकत्व को पुराभूचुंबकत्व कहते हैं.

भूवैज्ञानिक काल के दौरान समय-समय पर पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र की ध्रुवीयता में परिवर्तन आते रहे हैं. इन परिवर्तनों को भूचुम्बकत्व का उत्क्रमण (रिवर्सल ऑफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी-1. क. ढाई करोड़ वर्ष पूर्व से हाल तक प्रशान्त के सापेक्ष प्लेट-घूर्णन

क्षेत्र	अक्षांश °उत्तर	देशान्तर °पूरब	घूर्णन-दर अंश प्रति वर्ष	वैज्ञानिक का नाम जिसने अध्ययन किया
यूरेशिया	-67°	138°	-8.1×10^{-7}	ली पिचौन (1968)
	67°	114°	-8.0×10^{-7}	मौर्गन (1973)
	-63°	90	-8.8×10^{-7}	चेज (1972)
उत्तरी अमेरिका	53	-47	6.0×10^{-7}	ली पिचौन (1968)
	54	-61	6.9×10^{-7}	मौर्गन (1973)
	52	-73	7.9×10^{-7}	चेज (1972)

सारणी-1 ख. ढाई करोड़ वर्ष पूर्व से हाल तक प्रावर के सापेक्ष प्लेटों का निरपेक्ष घूर्णन

क्षेत्र	अक्षांश °उत्तर	देशान्तर °पूरब	घूर्णन-दर अंश प्रति वर्ष	वैज्ञानिक का नाम जिसने अध्ययन किया
प्रशांत	-67.3	120.6	-8.3×10^{-7}	मिनिस्टर आदि (1974)
यूरेशिया	38.1	-110.5	-1.2×10^{-7}	,, ,,
उत्तरी अमेरिका	-48.1	-82.1	-2.4×10^{-7}	,, ,,

सारणी-1 ग. ढाई करोड़ वर्ष पूर्व से अब तक प्रशान्त के सापेक्ष खिसकाव-दर

क्षेत्र	खिसकाव-दर सेंटीमीटर प्रति वर्ष	खिसकाव की प्रकृति
पश्चिमी उत्तरी अमेरिका	5.5 से कम	क्षैतिज कर्तन
अलेडंसियन खाई पूरब से पश्चिम	5.5 से 7.0	अभिसार
कमचटका से कुरील खाई	7.0 से 7.5	अभिसार
कुरील से जापान खाई	7.5 से 9.0	अभिसार

मैग्नेटिक फील्ड) कहा जाता है. अध्ययनों से पता चला है कि विगत 36 लाख वर्षों में 9 बार भूचुम्बकत्व का उत्क्रमण हो चुका है. पिछला उत्क्रमण लगभग 7 लाख वर्ष पूर्व हुआ था. एक उत्क्रमण चक्र पूरा होने में लगभग 10-15 लाख वर्ष का समय लग जाता है. ध्रुवीयता के अध्ययन के आधार पर ही शैलों के निर्माण, टूटने तथा खिसकने का अनुमान लगाया जा सकता है. वैसे तो प्लेटों अथवा भूखंडों की गतियों का अध्ययन जीवाश्मों के अध्ययन के आधार पर भी किया जाता है. परंतु जीवाश्मों के संबंध में सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि जीवों की उत्पत्ति भूवैज्ञानिक काल में बहुत विलम्ब से हुई. इसके कारण बहुत पुरानी चट्टानों में जीवाश्म नहीं मिलते जबकि भूचुंबकत्व तो पृथ्वी की उत्पत्ति के समय से ही उपलब्ध रहा है. यही कारण है कि पुरा भूचुम्बकत्व प्लेटों या भूखंडों की गतियों के अध्ययन के लिए सबसे अधिक उपर्युक्त साधन माना जाता है.

प्लेटों या भूखंडों का निर्माण कुछ नाभिकों पर शैल कणों की अभिवृद्धि (ऐक्रीशन) के द्वारा होता है. अभिवृद्धि की दर शून्य से 10 सेंटीमीटर प्रति वर्ष तक पाई गई है. परन्तु किसी एक ही स्थान पर अभिवृद्धि की दर नियत नहीं रहती, वरन् समय-समय पर बदलती रहती है. यह परिवर्तन प्लेट की गतियों को नियंत्रित करने वाले बलों में बड़े बदलाव को सूचित करते हैं.

भूखंडों या प्लेटों के क्षैतिज अपरूपण (शीयर) तथा उदग्र उत्थान या पतन की दरों में भी इसी प्रकार के परिवर्तन आते रहते है. चट्टानों के गैर जमाव वाले किनारों पर खिसकाव-दर के बारे में अनुमान सागर तल के खुलने अर्थात् उसकी चौड़ाई बढ़ने की दर से लगाया जाता है उदाहरणार्थ सैन एंड्रीज भ्रंश, (फौल्ट) जो प्रशांत तथा उत्तरी अमेरिकी प्लेट को पृथक करता है, सक्रिय अभिवृद्धि केंद्र से कैलिफोर्निया की खाड़ी के पास जुड़ा हुआ है, जहां समुद्र के खुलने की दर विगत 45 लाख वर्षों से 5.5 सेंटीमीटर प्रति वर्ष है. 45 लाख वर्ष पूर्व इन प्लेटों के खिसकाव की दर बड़ी समुद्री द्रोणियों के खुलने की दर से अनुमानित की जा सकती है. एटेवाटर नामक भूवैज्ञानिक ने इन प्लेटों के आपसी सापेक्ष वेग की गणना की और बताया कि यह वेग 2.9 करोड़ वर्ष पूर्व से 2.1 करोड़ वर्ष पूर्व के बीच 4 सेंटीमीटर प्रति वर्ष, 2.1 करोड़ वर्ष पूर्व से 1.0 करोड़ वर्ष पूर्व तक 1.3 सेंटीमीटर प्रति वर्ष तथा 1.0 करोड़ वर्ष पूर्व से 45 लाख वर्ष पूर्व तक 4 सेंटीमीटर प्रति वर्ष था. उत्तरी एटलांटिक समुद्र तल के खुलने की दर आज से 5.3 करोड़ वर्ष पूर्व 5 सेंटीमीटर प्रति वर्ष से घटकर सिर्फ 2 सेंटीमीटर प्रति वर्ष रह गई थी. सारणी-1 क, 1- ख तथा 1 ग में प्रशान्त, अमेरिकी तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरेशियाई क्षेत्र में प्लेट खिसकाव पर किए गए अध्ययन के सारांश दिए गए हैं. सारणी-1 क में प्रशान्त के सापेक्ष विभिन्न प्लेटों के घूर्णन की दर दिखाई गई है. सारणी-1 ख में तीन प्रमुख प्लेटों के निरपेक्ष घूर्णन की दर दिखाई गई है. सारणी-1 ग में विभिन्न प्लेटों के खिसकाव की दर अंकित की गई है. इन आंकड़ों में धनात्मक चिह्न घड़ी की सूई की दिशा में घूर्णन सूचित करते हैं, जबकि ऋणात्मक चिह्न घड़ी की सूई की विपरीत दिशा में. सापेक्ष घूर्णन प्रशान्त प्लेट की तुलना में अध्ययन किए गए हैं जबकि निरपेक्ष घूर्णन प्रावर (मैंटल) की तुलना में.

वेजेनर नामक भूवैज्ञानिक की परिकल्पना के अनुसार पुराजीवी महाकल्प के आरंभ में (लगभग 60 करोड़ वर्ष पूर्व) पृथ्वी की सतह एक अविछिन्न सियाली परत से आच्छादित थी. धीरे-धीरे यह सियाली परत दक्षिण ध्रुव के आस-पास एकत्र होकर एक विशाल महाद्वीप में परिणित हो गई जिसे भूवैज्ञानिक लोग पैंजिया के नाम से पुकारते हैं. पैंजिया के चारों ओर एक विशाल महासागर फैला हुआ था. जिसका नाम था पैंयालसा. आज से लगभग 42 करोड़ वर्ष पूर्व पैंजिया महाद्वीप में एक विस्तृत दरार पड़ गई जिसके फलस्वरूप पैंजिया दो भागों में विभक्त हो गया—उत्तर में लौरेंशिया तथा दक्षिण में गौंडवाना लैंड.

इन दो महाद्वीपों के बीच में पड़ी दरार चौड़ी होती गई जिससे कालान्तर में टेथी महासागर का निर्माण हुआ. आजकल भूमध्य सागर को टेथी का अवशेष माना जाता है. धीरे-धीरे लॉरेशिया तथा गौंडवाना लैंड भी छोटे-छोटे खंडों में टूटते गए जिससे वर्तमान सभी महाद्वीपों का निर्माण हुआ. पैंजिया महाद्वीप में आज से 42 करोड़ वर्ष पूर्व ही दरार पड़नी प्रारंभ हो गई थी परन्तु विघटित महाद्वीपों को पृथक होने में काफी लम्बा समय लगा. आज जो अफ्रीका महाद्वीप है वह भूखण्ड अपने स्थान पर लगभग अपने ही स्थान पर स्थिर रहा जबकि दूसरे भूखंड इससे दूर हटते चले गए. अनुमान लगाया गया है कि आस्ट्रेलिया तथा एंटार्कटिका आज से लगभग 16 करोड़ वर्ष पूर्व एक दूसरे से पृथक होने लगा. आस्ट्रेलिया तथा मैडागास्कर अफ्रीका से दक्षिण पूर्व की ओर दूर हटते गए. उत्तरी अमेरिका का पश्चिम की ओर खिसकना लगभग 13 करोड़ वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ. भारत तथा मैडागास्कर का अलगाव आज से लगभग 5 करोड़ वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ. उत्तरी अमेरिका तथा यूरोप आज से लगभग 10 लाख वर्ष पूर्व

(शेष पृष्ठ 184 पर)

सारणी-2 महाद्वीपीय विस्थापन संबंधी घटनाएं एवं उनसे संबंधित काल

पैंजिया महाद्वीप में दरार की शुरुआत	42 करोड़ वर्ष पूर्व
आस्ट्रेलिया का एंटार्कटिका से अलगाव का प्रारंभ	16 करोड़ वर्ष पूर्व
अमेरिका का लॉरेशिया से टूटना	13 करोड़ वर्ष पूर्व
भारत तथा मैडागास्कर के अलगाव का प्रारंभ	5 करोड़ वर्ष पूर्व
अमेरिका तथा यूरोप के अलगाव का प्रारंभ	10 करोड़ वर्ष पूर्व

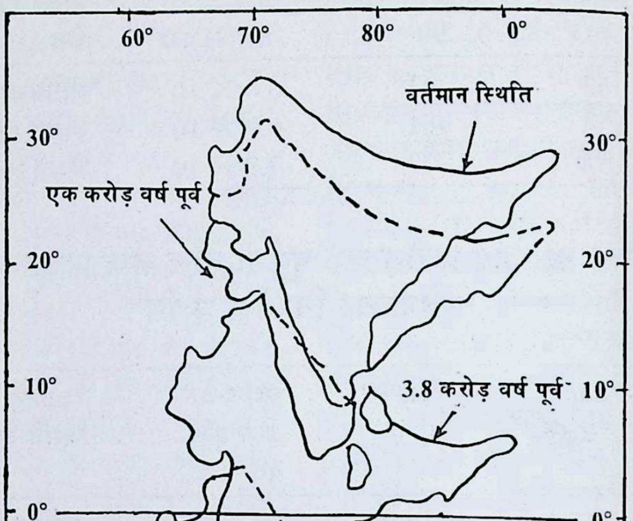

चित्र–1. विभिन्न कालों में भारतीय उपमहाद्वीपों की स्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में संदर्भ साहित्य : विश्वकोश

□ यादवेन्द्र

चर्चित विश्वकोश: हिन्दी विश्वकोश (बारह खंड); प्रधान संपादक: डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रथम संस्करण); स्व० पं० कमलापति त्रिपाठी (द्वितीय संस्करण); प्रकाशक: नागरी प्रचारिणी सभा, बिशेशरगंज, वाराणसी; कुल खंडों की पृष्ठ संख्या: 6167; संस्करण प्रकाशन का वर्ष: 1973 में संशोधित संस्करण प्रकाशित; आकार: डिमाई; मूल्य: 516 रुपए (पुराना संशोधित मूल्य नहीं मालूम).

हिन्दी में संदर्भ-साहित्य का इतना अकाल है कि सामान्य पाठक (या लेखक) के लिए अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथों को कोई आसन्न विकल्प नहीं नजर आता. आज किसी विषय पर लिखते वक्त 'एनसाइक्लोपीडिया-ब्रिटेनिका' की छानबीन करना सहज स्वाभाविक प्रक्रिया मानी जाती है. हां, भारतीय आंकड़ों के लिए भारत सरकार द्वारा प्रकाशित साहित्य का उपयोग किया जाता है. यह सही है कि हिन्दी में इक्का-दुक्का प्रयास ऐसे हुए भी तो उन्हें सही ढंग (आक्रामक विक्रय रणनीति) से पाठकों के सामने प्रस्तुत नहीं किया जा सका. प्रकाशन जगत में भी हिन्दी में प्रकाशित गंभीर साहित्य दोयम दर्जे का या नौसिखुआ पाठकों को जैसे-तैसे परोसने लायक समझा जाता है.

हम विस्तृत संदर्भ-ग्रंथों के प्रकाशन के गंभीर प्रयासों का आकलन करने निकले जो नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'विश्वकोश' और वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी०एस०आइ०आर०) द्वारा प्रकाशित 'भारत की संपदा' के सिवा कुछ और नहीं

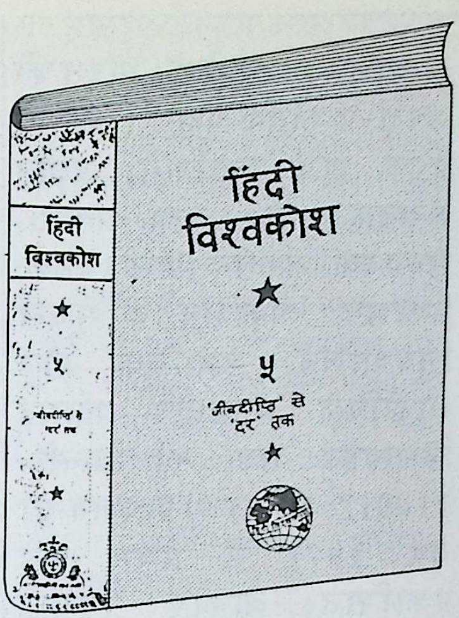

मिलेगा. हालांकि आपको यह जानकर शायद हैरानी हो कि हिन्दी में पहला विश्वकोश एक बांग्लाभाषी विद्वान ने तैयार किया था, वह भी एक-दो नहीं बल्कि पचीस खंडों में.

यह महान कार्य 1916-32 के दौरान स्व० नागेन्द्र नाथ बसु ने किया था, जिन्हें किसी भी भारतीय भाषा में प्रथम बांग्ला विश्वकोश (बाईस खडों में) 1911 में तैयार करने का श्रेय जाता है. उनका हिन्दी विश्वकोश बांग्ला विश्वकोश पर आधारित था. हिन्दी विश्वकोश की भूमिका में उन्होंने लिखा था कि 'जिस हिन्दी भाषा का प्रचार और विस्तार भारत वर्ष में उत्तरोत्तर बढ़ता और जिसे राष्ट्रभाषा बनाने का उद्योग होता—ईश्वर यह प्रयास सफल करे—उसी भारत की भावी राष्ट्रभाषा में ऐसे ग्रंथ का न होना बड़े दुःख और लज्जा का विषय है. यद्यपि बहुत दिन से हमारी प्रबल इच्छा थी कि हिन्दी विश्वकोश के प्रकाशन में हाथ लगाते, परन्तु कई कारण से वह सफल न हुई—हम हिन्दी रसिकों की आज्ञा पालन न कर सके. अब बराबर हिन्दी प्रेमियों से अनुरुद्ध होने पर हमने इस बहुपरिश्रम और विपुल व्ययसाध्य कार्य को चलाया है.'

इस पुनीत कार्य के बाद हिन्दी को विश्वकोश उपलब्ध कराने का दूसरा प्रयास भी एक अहिन्दी भाषी डा० श्रीधर व्यंकटेश केतकर (मराठी भाषा) ने किया. हालांकि उनके मराठी विश्वकोश पर आधारित यह हिन्दी विश्वकोश कई प्रकार की कठिनाइयों के कारण दो-तीन खंडों के बाद आगे नहीं निकल सका. निश्चिय ही इस प्रकार के महान कार्य आजादी की लड़ाई के दौरान लोगों में व्याप्त राष्ट्रीय भावना के कारण संपन्न हो सके.

आजादी के बाद नागरी प्रचारिणी सभा ने 1954 में हिन्दी विश्वकोश तैयार करने की योजना बनाई. सौभाग्य से सभा से पं० गोविंद वल्लभ पंत और कमलापति त्रिपाठी जैसे राजनेता अभिन्न रूप से जुड़े हुए थे. इसी कारण उन्हें राजकीय आर्थिक सहायता मिलने में कठिनाई नहीं हुई. विश्वकोश की आवश्कयता पर बल देते हुए जो प्रस्ताव नागरी प्रचारिणी सभा ने भारत सरकार को आर्थिक सहायता के लिए भेजा था, उसमें कहा गया था कि 'कला और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान और वाङ्मय की सीमाएं अब अत्यंत विस्तृत हो गई हैं. नए अनुसंधानों, वैज्ञानिक आविष्कारों तथा दूरगामी चिंतनों ने मानवज्ञान के क्षेत्र का विस्तार बहुत बढ़ा दिया है. जीवन के विविध अंगों में व्यावहारिक एवं साहसपूर्ण प्रयोगों द्वारा विचारों तथा मान्यताओं में असाधारण परिवर्तन हुए हैं. इस महती और वर्द्धनशील ज्ञानराशि को देश की शिक्षित तथा जिज्ञासु जनता के सामने राष्ट्रभाषा के माध्यम से संक्षिप्त एवं सुबोध रूप में रखने का हमारा विचार पुराना है. प्रस्तावित विश्वकोश का यही ध्येय है. इस योजना का प्रारूप बहुत महत्वकांक्षी था—एक-एक हजार पृष्ठों के तीस खंडों का दस वर्षों की अवधि में संकलन—प्रकाशन करना जिस पर कोई बाईस लाख रुपए (1954 में) की लागत आती है.

भारत सरकार ने यह प्रस्ताव मान तो लिया पर संशोधित संक्षिप्त रूप में. बहरहाल भारत सरकार ने इस परियोजना के लिए साढ़े छह लाख रुपए उपलब्ध कराए और इसे भारत सरकार के प्रकाशन के रूप में तैयार करने की अनुमति प्रदान की. इसकी बिक्री से प्राप्त धनराशि भी भारत सरकार ही लेती रही जबकि संपादकों के अनुसार इस विश्वकोश पर कुल खर्च आया कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15,81,345.42 रुपए. 1956 में इस परियोजना पर काम शुरू किया गया और बारह खंडों का यह विश्वकोश 1970 में पूरा छप कर तैयार हो गया.

विख्यात लेखक डा० भगवतशरण उपाध्याय इस विश्वकोश के पहले संपादक नियुक्त हुए. अधिकांश काम अकेले करने के बाद प्रख्यात गणितज्ञ डा० गोरख प्रसाद इसके दूसरे संपादक और अंत में महान भाषाविद् डा० धीरेन्द्र वर्मा इसके प्रधान संपादक नियुक्त किए गए. गिने-चुने सहायकों की मदद से इन पुरोधाओं ने केवल डेढ़ वर्ष की अल्पावधि में विश्वकोश का पहला खंड उपलब्ध करा दिया. प्रथम संस्करण में प्रत्येक खंड में औसतन 500 पृष्ठ थे. हिन्दी भाषी जनता को विज्ञान की अद्यतन सूचना देने के प्रति संपादकगण इतने सचेत थे कि प्रथम संस्करण में प्रकाशित कुल 470 विशेष निबंधों में से करीब दो-तिहाई लेख विज्ञान पर आधारित थे. और शेष एक-तिहाई मानविकी से जुड़े विषयों पर. हालांकि जब 1973 में इस विश्वकोश का दूसरा संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाने लगा तो यह असंतुलन दूर करने के प्रयत्न किए गए. समयानुरूप विज्ञान लेखों को संशोधित किया गया और आनुवंशिकी जैसे विषय पर तो नए सिरे से पुनः लेख लिखे गए. भारत सरकार द्वारा स्वीकृत तकनीकी शब्दावली के प्रति विशेष आग्रह दूसरे संस्करण में संपादकों का रहा—जैसे पहले संस्करण में जहां 'अनिद्धीर्यता सिद्धांत' लिखा गया, मई 'दूसरे संस्करण में' अनिश्चितता सिद्धांत' लिखा गया. इन्हीं संशोधनों के कारण दूसरे संस्करण में 470 के स्थान पर 710 विशेष निबंध दिए गए. दूसरे संस्करण के प्रधान संपादक पं० कमलापति त्रिपाठी और संपादक डा० सुधाकर पांडे हैं जो बाद में राजनीति में आकर सांसद बने.

इस विश्वकोश की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मूल हिन्दी में लिखे गए आलेखों को संकलित किया गया है. (किसी-किसी तकनीकी विषय पर अंग्रेजी) से हिन्दी अनुवाद भी किया गया है. इसीलिए इसकी भाषा में एक सहज रवानगी है. 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका'

चर्चित विश्वकोश : भारत की संपदा-प्राकृतिक पदार्थ (आठ+दो पूरक खंड प्रकाशित; प्रधान संपादक: डा० सत्य प्रकाश, सम्पादक तुरशन पाल पाठक; प्रकाशक: प्रकाशन व सूचना निदेशालय, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-110012; संस्करण/प्रकाशन का वर्ष: 1971 में प्रथम खंड प्रकाशित; आकार: डिमाई क्वार्टो; मूल्य: 1128 रुपए (आठ+दो पूरक खंडों के लिए).

से प्रेरणा लेकर तैयार किए गए इस विश्वकोश के पहले खंड में ही सवा दो सौ से ज्यादा लेखकों का सहयोग लिया गया है. इसी से इस कार्य की व्यापकता का अनुमान लगाया जा सकता है. हां, प्रत्येक खंड के अंत में अनुक्रमणिका (इंडेक्स) का न होना खटकता है. आशा है आगामी संस्करण में पाठकों की सुविधा को ध्यान में रख के इस कमी को जरूर दूर कर दिया जाएगा.

इसी क्रम में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी एम आइ आर) द्वारा प्रकाशित 'भारत की संपदा' नामक भारत के प्राकृतिक पदार्थों के वैज्ञानिक विश्वकोश का गौरवपूर्ण उल्लेख किया जा सकता है. अब तक इस विश्वकोश के आठ खंड व दो पूरक खंड प्रकाशित किए जा चुके हैं. बड़े आकार (27.5x21.5 सेंटीमीटर) के चिकने पृष्ठ पर छपे इस विश्वकोश के प्रत्येक खंड में औसतन चार सौ से ज्यादा पृष्ठ हैं. इसके दो और खंड प्रकाशनाधीन हैं. हिन्दी वर्णमाला के अकारादिक्रम से इनका विभाजन किया गया है और पूरक खंडों में एक खंड तो पशुधन व कुक्कुट पालन पर और दूसरा मत्स्य व मात्स्यिकी पर आधारित है. 1971 में इसका प्रथम खंड प्रकाशित किया गया था. जिसमें 723 शीर्षकों व 18 विस्तृत लेखों के साथ-साथ 150 चित्रों को सम्मिलित

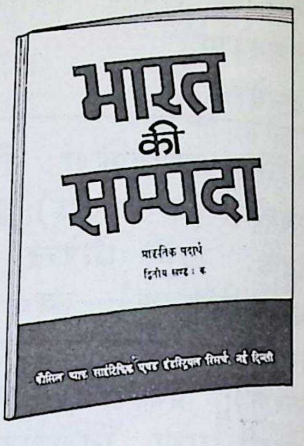

किया गया है.

सन् 1942 में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान बोर्ड (जो बाद में सी०एस०आइ०आर० बना) में भारत की प्राकृतिक संपदा का अंग्रेजी विश्वकोश बनाने का फैसला किया था. यह ध्यान रहे कि स्व० डा० शांति स्वरूप भटनागर ने उसी समय बोर्ड के प्रधान की हैसियत से काम करना शुरू किया था. उपर्युक्त फैसले की प्रेरणा दरअसल पहले प्रकाशित दो ग्रंथों से मिली थी—"डिक्शनरी ऑव इकानामिक प्रोडक्ट्स" (1889-99) तथा "कमर्शियल प्रोडक्ट्स ऑव इंडिया (1908)" जिनके लेखक थे जार्ज वाट. अंग्रेजी में 'वेल्थ ऑव इंडिया' शीर्षक से प्राकृतिक संपदा का विश्वकोश 1948 से छपने भी लगा था. बाद में इसके दूसरे भाग के रूप में औद्योगिक उत्पादों का विश्वकोश भी छपा. अंग्रेजी के उपर्युक्त प्रकाशन का महत्व देखते हुए यह निश्चय किया गया कि इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया जाए. इस अनुवाद के पहले चरण के रूप में प्राकृतिक संपदा को ही चुना गया और 'भारत की संपदा' नामक विश्वकोश उसी का परिणाम है.

यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि हिन्दी विश्वकोश प्रकाशित करने के विचार ने तब जोर पकड़ा अब एक हिन्दी भाषी वैज्ञानिक डा० आत्माराम इस संगठन के महानिदेशक बने. इस महान काम को संपन्न कराने के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निवृत्तमान रसायनज्ञ प्रो० सत्यप्रकाश को चुना गया, जिन्होंने हिन्दी में विज्ञान-लेखन के काम में पहल करके एक पूरी पीढ़ी तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है. संपादक के रूप में रामचन्द्र तिवारी और डा० शिवगोपाल मिश्र नियुक्त किए गए. जुलाई 1968 में अनुवाद का काम शुरू करके 1971 में पहला खंड प्रकाशित कर दिया गया. हालांकि संपादकों का आग्रह है कि इसे अंग्रेजी का अविकल अनुवाद न माना जाए और पाठक इससे मूल का-सा आनंद उठाएं-लेकिन है यह मूलतः अंग्रेजी का हिन्दी अनुवाद ही. इसीलिए इसके प्रत्येक खंड के प्रारंभ में अनुवादकों की सूची प्रकाशित की गई है जबकि नागरी प्रचारिणी सभा के विश्वकोश में लेखकों की सूची है. इस समय इसका सम्पादक तुरशन पाल पाठक कर रहे हैं.

उपर्युक्त ग्रंथ में प्राकृतिक संपदा से केवल वनस्पति या खनिजों का आशय नहीं लिया है. बल्कि जीवजन्तुओं को भी सम्मिलित किया गया है. मूल योजना के अनुसार 5000 पृष्ठों के प्रकाशित साहित्य में करीब पांच हजार पेड़-पौधों, 48 जीवजन्तुओं और 47 खनिजों के विस्तृत ब्यौरे दिए जाएंगे जैसे हम ऊंट को लें तो इनके प्राप्ति-स्थान, शरीरिक बनावट व स्वभाव, खानपान, रोग और उनकी चिकित्सा, नस्लें, भार-वाहन व अन्य क्षमता प्रदेशवार संख्या, उत्पाद (बाल, दूध, मांस, व खाल) इत्यादि का विस्तृत ब्यौरा तो विश्वकोश में दिया गया है, उत्पादों की प्रकृति, उपयोगिता, रासायनिक संरचना, आर्थिक महत्व, उत्पादन, आयात-निर्यात, औषधीय गुण इत्यादि की भी लंबी-चौड़ी चर्चा है. ऊंट के दूध और गाय, बकरी और भैंस के दूध का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है. इसी प्रकार वनस्पतियों के देशी व वैज्ञानिक नाम, खेती, कटाई और भंडारण के तरीके, रोग और उनके निदान-नियंत्रण, उत्पादों के रासायनिक संघटन व उपयोग, आयात-निर्यात व उत्पादन के अद्यतन आंकड़ों को सम्मिलित किया गया.

इन विवरणों को और प्रामाणिक व उपयोगी बनाने के उद्देश्य से संदर्भ-ग्रंथों की सूचियां भी दी गई हैं और अच्छी बात यह है कि प्रत्येक खंड के अंत में भारतीय भाषाओं के नामों की अनुक्रमणिका (इंडेक्स) भी दी गई है. अपनी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए दस खंडों का मूल्य 1128 रुपए सामान्य पाठक की पहुंच में है.

हमारा पर्यावरण

□ राजेन्द्र कुमार राय

चर्चित पुस्तक : हमारा पर्यावरण; लेखक : अनिल कुमार शुक्ल; प्रकाशक : पुस्तकायन, 2/4240, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 1990; पृष्ठ : 56; मूल्य : 25 रुपए.

□ सतही तौर पर देखें तो भारत के विकास नियोजन में पर्यावरणीय सोच का महत्व बढ़ता जा रहा है. अनेक परियोजनाओं की पर्यावरणीय दृष्टि से विस्तृत जांच पड़ताल की जा रही है. उन्हें मंजूरी देने से पहले उन्हें पर्यावरण संरक्षण की अनेक सावधानियां

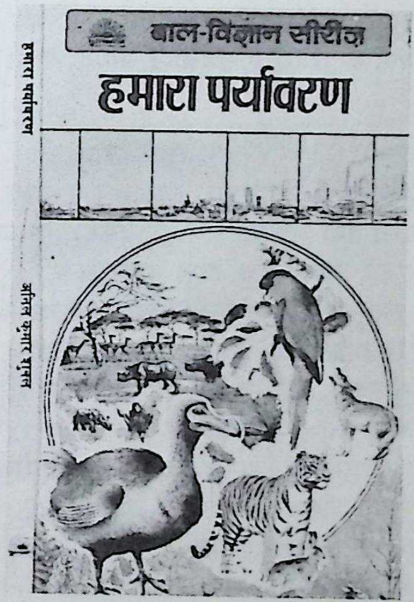

अपनाने को कहा जा रहा है. लगता है कि भारत का आर्थिक नियोजन पर्यावरणीय आवश्यकताओं के प्रति पर्याप्त संवेदनशील हो चुका है क्योंकि अब हमने बच्चों को भी पर्यावरण का पाठ पढ़ाना शुरू कर दिया है. पर्यावरण-प्रदूषण के बारे में शिक्षा के प्रारम्भिक चरण में ही जानकारी देने वाले पाठ्यक्रम बनने लगे हैं. पिछले कुछ समय से बच्चों के लिए काफी पर्यावरण साहित्य भी सामने आने लगा है. ऐसी ही एक पुस्तक पुस्तकायन प्रकाशन ने अपनी बाल-विज्ञान श्रृंखला के अंतर्गत "हमारा पर्यावरण" शीर्षक से प्रकाशित की है.

पुस्तक को पांच अध्यायों "पर्यावरण अर्थ, परिभाषा और विषय क्षेत्र", "पर्यावरण—एक नाजुक संतुलन", "प्रदूषण पर्यावरण में असंतुलन", "प्रदूषण अन्तरराष्ट्रीय आयाम" व "पर्यावरण—हमारा दायित्व" में बांटा गया है. पहले अध्याय में एक जगह लिखा है कि हमारी जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ अन्य जीवों, पशु-पक्षियों और पौधों के विलुप्त हो जाने की आशंका बढ़ती जा रही है. जैसे-जैसे हमारी जनसंख्या बढ़ रही है, उद्योग धन्धों का विकास हो रहा है, वैसे-वैसे हमारे पर्यावरण को खतरा भी बढ़ रहा है. लेकिन अगर पुस्तक पर्यावरण के पीछे की राजनीति को उजागर करने के बजाए बच्चों को पर्यावरण के बारे में सीधी-सादी जानकारी देती तो अच्छा रहता, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ व दुनिया भर की सरकारें इस 'विकास चेतना' के युग में जब अपने आप को असहाय पा रही हैं तो चर्चित पुस्तक के 56 पृष्ठों में कितना कुछ लिखा व समझाया जा सकता है. सच तो यह है कि आज की हमारी पर्यावरण चेतना भी विकास चेतना का एक अंग बन कर रह गई है. इस चेतना के अनुसार पर्यावरण का अपने आप में या लोगों के लिए कोई महत्व है ही नहीं.

संयुक्त राष्ट्र संघ ने दुनिया भर में पर्यावरण की स्थिति जानने के लिए सन् 1983 में एक 'विश्व पर्यावरण तथा विकास आयोग' का गठन किया था. इस आयोग ने दस हजार पन्नों की एक रिपोर्ट 'अवर कामन फ्यूचर' नाम से प्रकाशित की थी, और पूरी रिपोर्ट का एक-एक शब्द गहरी चिंता का पर्याय बन गया. आज आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति, संसाधन, पर्यावरण और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास के बीच एक मधुर ताना-बाना बुना जाए. इसी अध्याय में डोडो पक्षी व कालबेरिया के जंगलों का नामोनिशां मिट जाने की कहानी भी है.

''प्रदूषण-पर्यावरण में असन्तुलन'' अध्याय में वायु, जल, मृदा व ध्वनि-प्रदूषण के बारे में जानकारी दी गई है. वायु प्रदूषण के बारे में लिखा गया है कि कानपुर, कलकत्ता, अहमदाबाद, दिल्ली और बम्बई जैसे उद्योग-बहुल भारतीय नगरों में भी वायु प्रदूषण खतरनाक स्तर तक पहुंच गया है. यह प्रदूषण धूल और राख जैसे बारीक कणों के रूप में भी हो सकता है तथा कारखानों व मोटर वाहनों से निकलने वाले धुएं और गैसों के रूप में भी. वायु प्रदूषण बढ़ाने वाली कुछ प्रमख गैसों के नाम हैं—नाइट्रोजन डाइआक्साइड, सल्फर डाइआक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड तथा कार्बन डाइआक्साइड आदि. लेकिन यहां सल्फर डाइआक्साइड व नाइट्रोजन डाइआक्साइड की देन 'एसिड-वर्षा' के बारे में सामग्री दी गई होती तो अच्छा रहता क्योंकि एसिड वर्षा आज प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण आयाम बन गई है. इसकी थोड़ी जानकारी 'प्रदूषण अन्तरराष्ट्रीय आयाम' में दी गई है.

जल प्रदूषण के बारे में लिखा है नदियों के किनारे बसे शहरों का सारा कूड़ा-कचरा, मल-जल और कारखानों का जहरीला पानी बिना साफ किए नदियों में मिला दिया जाता है. मृत्यु के बाद मानव और पशु शवों को बिना जलाए नदियों में प्रवाहित कर दिया जाता है. इन सबके कारण नदियों का पानी प्रदूषित हो जाता है. कुंभ मेले एवं अन्य अनेक धार्मिक त्यौहारों पर लाखों की संख्या में लोग नदियों में स्नान करते हैं तथा फल-फूल-दूध आदि गिराकर नदियों को प्रदूषित करते हैं. परंतु सवाल सिर्फ कुछ मेलों व फल-फूल-दूध का ही नहीं है,बल्कि सारे देश के पापों को कथित रूप से धोने वाली गंगा के किनारे बसे 1500 उद्योगों का है जो अपना जहरीला पानी उसमें लगातार मिला रहे हैं.

'प्रदूषण-अन्तरंराष्ट्रीय आयाम' नामक अध्याय में ओजोन समस्या व एसिड वर्षा पर थोड़ी सामग्री दी गई है. लेकिन एसिड की वर्षा क्यों होती है? बच्चों के मन में यह भाव उठना स्वाभाविक है. अतः इसके कारणों पर थोड़ा बहुत प्रकाश डालना चाहिए था.

वास्तव में होता यह है कि कल-कारखानों के धुएं से निकलने वाले सल्फर डाइ आक्साइड व नाइट्रोजन के आक्साइड वातावरण की नमी पाकर सल्फ्यूरिक एसिड व नाइट्रिक एसिड में बदल जाते हैं. ये वर्षा के पानी को दो प्रकार से अम्लीय बनाते हैं. एक तो बादलों से संघनित होकर और दूसरा वर्षा में पानी में घुलकर. वर्षा रसायन एक नया विषय है. उसमें अभी एसिड वर्षा और उनके प्रभावों के संबंध में उपलब्ध जानकारी भी बहुत अधिक नहीं, फिर भी अब तक के अध्ययनों के आधार पर एसिड वर्षा से होने वाले दुष्प्रभावों के बारे में वैज्ञानिक ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं

पिछले कुछ समय से एक बात सबसे अधिक चर्चा में आ रही है कि पर्यावरण सुधार में आम आदमी की क्या भूमिका है? यह आज काफी महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया है. पुस्तक में इस बारे में लिखा है—वृक्षारोपण के कार्यक्रमों में बच्चों को पूरे मनोयोग से भाग लेना चाहिए. अपने घरों व स्कूलों के आसपास अधिक से अधिक फूल-पौधे लगाएं ताकि शुद्ध हवा में सांस ले सकें और वायु प्रदूषण भी नियंत्रित हो सके. लेकिन ऐसा सिर्फ बच्चों को ही नहीं हम सबको करना चाहिए.

लेकिन सादगी व समानता पर आधारित सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को अपना कर हम बहुत हद तक प्रदूषण के खतरों से बच सकते हैं और सभी लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति व पर्यावरण सुरक्षा की जिम्मेदारी साथ-साथ निभा सकते हैं.

पुस्तक की छपाई, कागज की क्वालिटी व संपादन साधारण है. कई जगह संपादन की आवश्यकता है. हां, पुस्तक का आवरण आकर्षक है. अंदर के रेखाचित्रों को थोड़ा छोटा करके और अधिक सामग्री दी जा सकती थी. छात्रों के लिए पुस्तक उपयोगी हो सकती है. □

(पृष्ठ 179 का शेषांश)

एक दूसरे से पृथक होने लगे. अभी भी दोनों महाद्वीप एक-दूसरे से दूर खिसकते जा रहे हैं. एंटार्कटिका अपने स्थान पर ही अडिग रहा. प्रशान्त महासागर भी अपने मूल स्थान पर ही बना रहा.

अफ्रीका से अमेरिका अलग हुआ तो उन दोनों के बीच एटलांटिक महासागर का निर्माण हुआ. प्रारंभ में एटलांटिक महासागर की चौड़ाई 4 सेंटीमीटर प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही थी. परन्तु 5.3 करोड़ वर्ष पूर्व यह दर घटकर 2 सेंटीमीटर प्रतिवर्ष रह गई जो आज तक बनी हुई है. उसी प्रकार एक ओर एंटार्कटिका तथा आस्ट्रेलिया तथा दूसरी ओर भारत तथा अफ्रीका जब पृथक हुए तो उनके बीच हिन्द महासागर का निर्माण हुआ. भारत तथा अफ्रीका जब एक दूसरे से पृथक हुए तो उनके बीच अरब सागर बना.

चित्र-1 में विभिन्न कालों में भारतीय उपमहाद्वीप की स्थिति दिखलाई गई है. लगभग 7.1 करोड़ वर्ष पूर्व इस भूखंड की स्थिति 18° से 42° दक्षिणी अक्षांश एवं 55° से 80° पूर्वी देशान्तर के बीच थी. 5.5 करोड़ वर्ष पूर्व लगभग 3° उत्तरी अक्षांश से 22° दक्षिणी अक्षांश के बीच तथा 62° से 90° पूर्वी देशान्तर के बीच यह स्थित था. 3.8 करोड़ वर्ष पूर्व यह भूखंड 15° उत्तरी अक्षांश से 10° दक्षिणी अक्षांश के बीच तथा 63° से 91° पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित था. एक करोड़ वर्ष पूर्व 3° से 27° उत्तरी अक्षांश तथा 68° से 93° पूर्वी देशान्तर के बीच यह स्थित था. अभी यह भूखंड लगभग 8° उत्तरी अक्षांश से 32° उत्तरी अक्षांश के बीच तथा 67° से 92° पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है. 5 करोड़ वर्ष पूर्व यूरेशिया हिन्द महासागर की ओर लगभग 10 सेंटीमीटर प्रति वर्ष की दर से बढ़ रहा था. परन्तु उसी काल में अचानक भारतीय उपमहाद्वीप तथा मध्य एशिया के बीच टकराव हो जाने से यह गति घटकर लगभग 5 सेंटीमीटर प्रति वर्ष रह गई. सारणी-2 में महाद्वीप विस्थापन संबंधी घटनाएं एवं उनसे संबंधित काल से संबंधित आंकड़े दिए गए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आई सी 741 और उस पर आधारित आडियो एम्प्लिफायर

□वी० के० सेखरी

□ आई सी 741 एक ऐसा एकीकृत परिपथ है जिससे विभिन्न प्रकार के परिपथ बनाए जा सकते हैं. यह साधारणतया 8 पिन वाले धातु के गोलाकार खोल में या 8 पिन वाले दो सीधी लाइनों वाले प्लास्टिक के पैक में जिसे डी आई पी पैक कहा जाता है बनाया जाता है (चित्र-1 और चित्र-2).

इस आई सी के पिन 7 पर धनात्मक (पाजिटिव) वोल्टेता दी जाती है और पिन 4 पर ऋणात्मक (नेगेटिव). पिन 6 आउटपुट का है जहां से हमें संकेत प्रवर्धित होकर मिलते हैं. इसकी संकेतों को बढ़ाने की क्षमता फीडबैक प्रतिरोधक प_2 और इनपुट प्रतिरोधक प_1 पर निर्भर करती है. (चित्र-3 और चित्र-4). चित्र-3 में संकेत पिन-2 पर दिया गया है जिसे इनवर्टिंग इनपुट कहा जाता है. पिन 3 को नान-इनवर्टिंग कहा जाता है और इसे गाइड से जोड़ा जाता है. इस स्थिति में आई सी की लब्धि (गेन) या संकेत को बढ़ाने की क्षमता होगी $\text{प}_2/\text{प}_1$.उदाहरण के लिए अगर प_2 का मान 100 किलो ओह्म है और प_1 का मान 10 किलो ओह्म है तो आपरेशनल एम्प्लिफायर यानी आई सी की लब्धि होगी 100/10=10. दूसरे शब्दो में यह इनपुट पर दिए गए संकेतों को दस गुणा बढ़ा देगा.

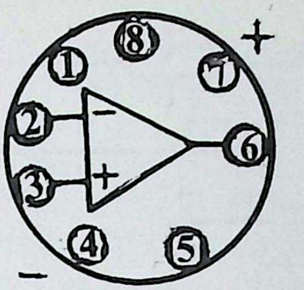

चित्र-1.आई सी-741, धातु के खोल में

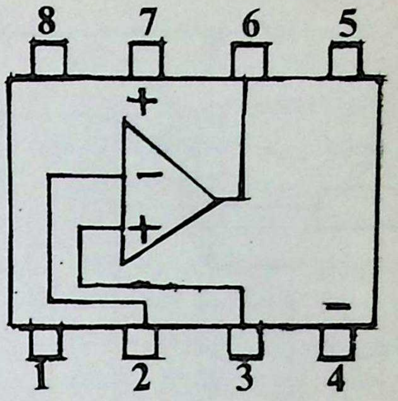

चित्र-2. आई सी-741 डी आई पी प्लास्टिक के पैक में

घटकों की सूची

एकीकृत परिपथ	(आई०सी०) 741
ट्रांजिस्टर	ट_1—ए०सी० 187
	ट_2—ए०सी० 188
प्रतिरोधक	प_1—10 किलो ओह्म
	प_2—10 किलो ओह्म
	प_3—12 किलो ओह्म
	प_4—22 किलो ओह्म
	प_5—470 किलो ओहम
संधारित्र	स_1—100 माइक्रोफैरड, इलेक्ट्रोलाइटिक
	स_2—500 माइक्रोफैरड, इलेक्ट्रोलाइटिक
लाउडस्पीकर	8 ओह्म
अन्य	बैटरी, तारें इत्यादि.

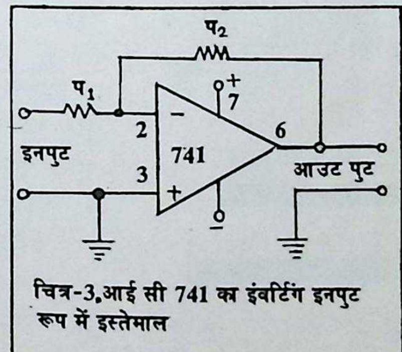

चित्र-3.आई सी 741 का इंवर्टिंग इनपुट रूप में इस्तेमाल

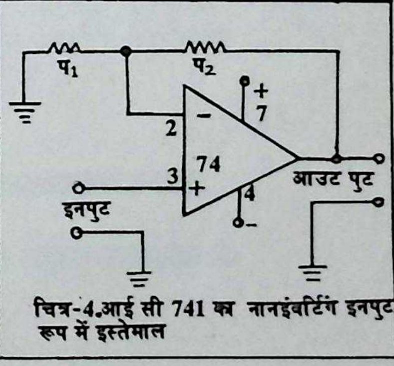

चित्र-4.आई सी 741 का नानइंवर्टिंग इनपुट रूप में इस्तेमाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

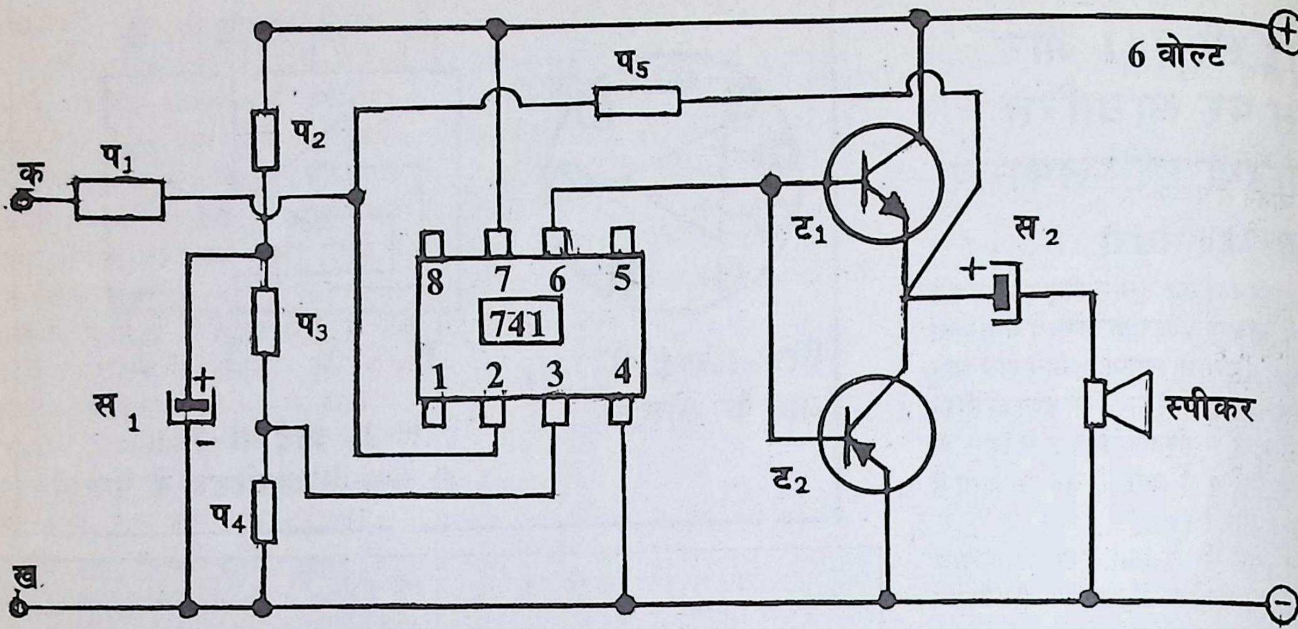

चित्र-5.आडियो एम्प्लिफायर का परिपथ

दूसरी स्थिति में (चित्र-4) जबकि इनपुट संकेत पिन 3 पर दिया गया है और पिन 2 को प$_1$ के द्वारा ग्राउंड कर दिया है, आपरेशनल एम्प्लिफायर की लब्धि होगी $1 + \frac{प_2}{प_1}$ उदाहरण के लिए यदि प$_2$ 100 किलो ओह्म हो और प$_1$ एक किलो ओह्म हो तो लब्धि $1 + \frac{100}{1} = 101$ होगी. पिन 2 यानी इनवर्टिंग पिन पर दिए गए संकेत के बढ़ने से पिन 6 (आउटपुट) पर मिलने वाला संकेत घटता है और इस संकेत के घटने से आउटपुट का संकेत बढ़ता है. इसीलिए इसे इनवर्टिंग इनपुट टर्मिनल कहते हैं. यानी पिन 2 पर संकेत दिए जाने पर आउटपुट (पिन 6) पर हमें उल्टा संकेत मिलता है. लेकिन पिन 3 पर दिए गए संकेत हमें उसी तरह पिन 6 पर मिलते हैं. इसीलिए इसे नान-इनवर्टिंग इनपुट कहते हैं.

एकीकृत परिपथ (आई सी) 741 का उपयोग करके एक आडियो एम्प्लिफायर (श्रव्य प्रवर्धक) बनाने का परिपथ चित्र-5 में दिखाया गया है. इसका उपयोग छोटे ट्रांजिस्टरों या इन्टरकॉम टेलीफोन वगैरह में किया जा सकता है.

इस परिपथ की कार्य विधि इस प्रकार है: ध्वनि संकेत बिन्दु क और ख पर दिए जाते हैं जो प्रवर्धित होकर हमें लाउड स्पीकर पर मिलते हैं. इनपुट पर दिए गए संकेत प्रतिरोधक प$_1$ द्वारा आई सी के पिन 2 पर दिए जाते हैं. पिन 3 को प्रतिरोधक प$_2$, प$_3$ और प$_4$ द्वारा 3 वोल्ट के लगभग रखा जाता है. पिन 4 को नेगेटिव या ग्राउंड पर रखा जाता है. जबकि पिन 7 को पाजिटिव 6 वोल्ट दी जाती है. संकेत आई सी द्वारा बढ़ा कर पिन 6 से हमें मिलते हैं. परन्तु यह संकेत लाउडस्पीकर को चलाने के लिए काफी नहीं होते. इन्हें ट्रांजिस्टर ट$_1$ और ट$_2$ के द्वारा और बढ़ाया जाता हैं. ये ट्रांजिस्टर संधारित्र (कण्डेंसर) स$_2$ के द्वारा लाउडस्पीकर को चलाते हैं. फीड बैक प्रतिरोधक प$_5$ और प्रतिरोधक प$_1$ आई सी 741 की लब्धि निर्धारित करते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों आते हैं हमें आंसू?

□ सुभाष लखेड़ा

□ हमें आंसू क्यों आते हैं? इस प्रश्न का उत्तर जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि हमारी आंखों में ये आंसू कहां से आते हैं?

दरअसल, हमारी प्रत्येक आंख में कुछ ऐसी ग्रन्थियां होती हैं जिनके स्रावों से आंसू बनते हैं. इनमें से प्रमुख अश्रुग्रन्थि आंख के कोटर के ऊपरी भाग के बाहरी छोर की तरफ होती है. हल्की गुलाबी रंग की इस ग्रन्थि का भार वयस्क व्यक्तियों में लगभग एक ग्राम होता है और आकार में यह बादाम जैसी होती है. इस ग्रन्थि से थोड़ा आगे की तरफ क्रमशः क्राउसे एवं वुल्फ्रिंग ग्रन्थियां होती हैं.

ये ग्रन्थियां मुख्य अश्रुग्रन्थि के अधोमुखी विस्तार से बनती है. इन ग्रन्थियों के अलावा कॉर्निया के ऊपर फैली झिल्ली कंजेक्टाइवा में श्लेष्म ग्रन्थियां होती हैं. ये एक कोशिक ग्रन्थियां कलश कोशिकाओं से बनी होती हैं और मुख्य रूप से ऊपरी पलक से ढके नेत्रगोलक के फॉर्निक्स नामक भाग से होती है. ये ग्रन्थियां पूर्णस्रावी होती हैं और स्रावित होने के बाद नष्ट होती जाती हैं.

शायद आप जानते हों कि जागते रहने के दौरान भी हमारी इन ग्रन्थियों से निरन्तर आंसू निकलते रहते हैं और सामान्य रूप से झपकती हुई पलकें इन आंसुओं को कॉर्निया की बाहरी सतह पर समान रूप से फैलाती रहती हैं. सामान्य अवस्था में हमारी ये अश्रुग्रंथियां कुल मिलाकर सोलह घंटे के जागरण के दौरान 600-700 मिलिग्राम आंसू स्रावित करती हैं. यही कारण है कि हम इस तथ्य से अनभिज्ञ रहते हैं. इन आंसुओं का कुछ भाग आंखों की सतह से वाष्पित होता रहता है और शेष आंखों के नेत्र कोणों से होते हुए सूक्ष्म नलिकाओं के द्वारा अश्रुकोष में पहुंचता रहता है. अश्रुकोश में एकत्रित आंसू अश्रुवाहिनी के माध्यम से नाक में पहुंचते हैं. जब कभी विशेष कारणों से हमारी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं. तब ये आंसू नाक में पहुंचने के साथ-साथ पलकों से बाहर आकर हमारे चेहरे पर लुढकने लगते हैं.

सामान्य अवस्था में हमारी अश्रुग्रन्थियों से स्रावित होने वाले आंसुओं का मुख्य कार्य आंखों के प्रकाश ग्रहण करने वाले हिस्से कॉर्निया की सतह को नम एवं चिकना बनाए रखना है. ये आंसू कॉर्निया की उपकला सतह की चयापचय संबंधी आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते हैं. वातावरण से आंखों में पहुंचने वाली धूल एवं अन्य इतर पदार्थों के सूक्ष्म कणों को आंसू अपने साथ बहा ले जाते हैं. फलस्वरूप, हमारी आंखें स्वच्छ बनी रहती हैं.

रासायनिक संघटन की दृष्टि से हमारे आंसुओं के द्रव में प्रोटीन, नाइट्रोजन, यूरिया, ग्लूकोज, सोडियम तथा पोटेशियम के आक्साइड, अमोनिया, क्लोरीन एवं सोडियम क्लोराइड जैसे रसायन मौजूद रहते हैं. साथ ही आंसुओं में लाइसोजाइम नामक एन्जाइम होता है. यह एन्जाइम आंखों में पहुंचने वाले हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करता है. वैज्ञानिकों का विचार है कि आंसुओं में मौजूद कुछ अन्य अज्ञात घटक भी इस कार्य में सहायक होते हैं.

संपूर्ण प्राणिजगत में मनुष्य ही ऐसा जीव है जिसे प्रकृति ने रोने व हंसने का गुण दिया है. रोते समय अश्रुग्रन्थियों से आंसुओं का स्राव बड़ी तेजी से होता है. यद्यपि शरीर-क्रिया की दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्व नहीं है किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन अतिरिक्त आंसुओं को बहाने से मनुष्य को मानसिक तनाव से राहत मिलती है.

इसके अलावा हमारी आंखों के सम्पर्क में आने वाली वायु में घुले कई उद्दीपकों के कारण भी अश्रुग्रन्थियां उत्तेजित होकर अधिक आंसुओं का स्राव करती हैं. छींकने, खांसने एवं वमन करते समय भी आंसुओं के स्राव में वृद्धि हो जाती है. तेज रोशनी को देखने से, अत्यधिक मिर्च-मसाले युक्त भोजन खाने से, दांतों में तीव्र पीड़ा होने से, नाक पर खुजली होने से एवं अत्यधिक हंसी आने से भी आंखें आंसुओं से भर उठती हैं.

वयस्क व्यक्तियों की अपेक्षा बच्चों तथा किशोरों में आंसू बहाने की क्षमता अधिक होती है. किशोर अवस्था के बाद आयु बढ़ने के साथ-साथ मनुष्य की आंसू बहाने की क्षमता घटती चली जाती है. यह दिलचस्प है कि 16 से लेकर 29 वर्ष तक आयु की महिलाएं समान आयु वर्ष के पुरुषों की अपेक्षा अधिक आंसू बहाने की सामर्थ्य रखती हैं.

जहां तक मस्तिष्क का प्रश्न है, रोते समय तथा अन्य उत्तेजकों की उपस्थिति में परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र ही अश्रुग्रन्थियों को अधिक आंसुओं का स्राव करने के लिए सक्रिय करता है. सामान्य अवस्था में होने वाले अश्रुस्राव को संभवतया अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र ही नियंत्रित करता है. सोते समय हमारी अश्रुग्रन्थियां निष्क्रिय रहती हैं.

वैज्ञानिकों का कहना है कि अत्यधिक हर्ष या विषाद की अवस्था में हमारे मस्तिष्क के एक छोटे से हिस्से हाइपोथैलेमस में उत्पन्न आवेग ही अश्रुग्रन्थियों को अधिक आंसू स्रावित करने के लिए उत्तेजित करते हैं. □

क्यों झपकती हैं हमारी पलकें?

□ सुभाष लखेड़ा

□ हमारी शारीरिक इन्द्रियों में आंखों का महत्वपूर्ण स्थान है. जागते समय हम अपनी आंखों के बादाम के आकार के दसवें भाग से दुनिया को देखते हैं. हमारा शरीर वातावरण से रोशनी प्राप्त करने वाले अपने इस नाजुक भाग की रक्षा अपनी पलकों से करता है.

दरअसल, कोमल प्रतीत होने वाली हमारी ये पलकें मजबूत कार्टिलेज जैसे रेशों से बनी होती हैं. इन पलकों की बाहरी त्वचा पतली होती है. फलस्वरूप, हमारी पलकें आसानी से सिकुड़ एवं फैल सकती हैं. हमारी पलकों के अन्तिम छोरों पर छोटे-छोटे बाल होते हैं. ऊपरी पलक पर सौ से लेकर एक सौ पचास तक और निचली पलक पर लगभग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे आधे बाल होते हैं. ये अत्यधिक संवेदनशील होते हैं.

हमारी पलकों के तीन मुख्य कार्य हैं: नींद के दौरान आंखों में रोशनी न पहुंचने देना; आंखों में बाहरी पदार्थों को पहुंचने से रोकना; और आंखों के रोशनी ग्रहण करने वाले भाग कॉर्निया की सतह को नम व स्वच्छ बनाए रखना.

नींद के दौरान पलकें बन्द रहने के कारण, हमारी आंखों में रोशनी नहीं पहुंच पाती हैं. जहां तक पलकों द्वारा आंखों में बाहरी पदार्थों को पहुंचने से रोकने का प्रश्न है, यह एक प्रतिवर्ती क्रिया है. जैसे ही कोई बाहरी पदार्थ हमारी आंखों के समीप पहुंचता है, हमारी पलकें तुरंत झपक जाती हैं. किसी बाहरी पदार्थ द्वारा पलकों के बालों को अथवा आंखों की खुली सतह को छूने से अथवा आंखों में तेज रोशनी पड़ने से भी पलकें तत्काल झपकती हैं. हम स्वेच्छा से भी अपनी पलकों को धीरे-धीरे अथवा तेजी से झपका सकते हैं, अथवा कुछ समय के लिए उन्हें झपकने से रोक भी सकते हैं. आवश्यकता पड़ने पर हम अपनी मुलायम पलकों को काफी मजबूती से बन्द भी कर सकते हैं.

जागते रहने के दौरान हमारी पलकें स्वभाविक रूप से स्वयं ही झपकती रहती हैं. पलक झपकने की इस प्राकृतिक प्रवृत्ति का मुख्य उद्देश्य कॉर्निया की सतह को नम व स्वच्छ बनाए रखना है. दरअसल, सामान्य रूप से झपकती हुई पलकें कॉर्निया की बाहरी सतह पर अश्रुकोषों से निकलने वाले द्रव को फैलाती रहती हैं. इस द्रव से कॉर्निया अपनी चयापचय संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है. साथ ही इस द्रव के कारण उसकी बाहरी सतह प्रकाश ग्रहण करने की दृष्टि से चिकनी बनी रहती है. पलकों के झपकने से आंखों और हमारी दृष्टि पटल से संबंधित पेशियों के साथ-साथ हमारे मस्तिष्क को भी आराम मिलता है. हमारी पलकें झपक कर हमें चक्कर आने से बचाती हैं. साथ ही पलकों के झपकने के कारण हमारे देखने की क्षमता संतुलित रहती है.

वैज्ञानिक परीक्षणों से पता चला है कि हमारे मस्तिष्क में एक ऐसा केन्द्र है जो हमारी पलकों की झपकने की प्रक्रिया एवं गति को नियंत्रित करता है. यही कारण है कि सामान्य अवस्था में हमें अपनी पलकों को झपकाने के लिए कुछ नहीं सोचना पड़ता. वे मस्तिष्क से प्राप्त संकेतों के अनुसार स्वयं झपकती रहती हैं.

स्वभाविक रूप से पलक झपकने की यह प्रवृत्ति हवा में रहने वाले ऐसे सभी पृष्ठवंशी प्राणियों में होती है जिनकी पलकें होती हैं. वैसे सभी प्राणियों की पलक झपकने की दर अलग-अलग होती है. जहां शेर की पलकें एक मिनट से भी अधिक समय में केवल एक ही बार झपकती हैं, वहीं कुछ विशिष्ट जाति के बंदरों की पलकें एक मिनट में पैंतालीस बार झपकती हैं. मनुष्यों में सामान्य अवस्था में पलकों के झपकने की दर औसतन तेरह झपकन प्रति मिनट पाई गई है. हमारी एक झपक की कुल अवधि दो से तीन सेकंड तक होती है.

प्राकृतिक रूप से हमारी ऊपरी पलकें ही झपकती हैं, निचली पलकें प्रायः स्थिर रहती हैं. यूं भी हमारी ऊपरी पलक निचली पलक से अपेक्षाकृत बड़ी होती है और इसे आसानी से हिलाया-डुलाया जा सकता है.

मानव शिशुओं की पलकें जन्म लेते समय खुली रहती हैं और उनमें पलक झपकने की प्रवृत्ति नहीं होती. अपने जन्म के कई महीनों तक शिशु पलक नहीं झपकाते. वयस्क पुरुषों व महिलाओं की पलक झपकने की दर अलग-अलग होती है. महिलाओं की पलकें पुरुषों की अपेक्षा कम बार झपकती हैं. जागते समय अंधे व्यक्तियों की पलकें भी झपकती रहती हैं. यदि हम जागते समय अपनी पलकों को बंद कर लें तो भी उनमें झपकने की प्रवृत्ति बनी रहती है. केवल सोते समय यह प्रवृत्ति नहीं रहती.

बाहरी वातावरण एवं हमारी मानसिक अवस्था में हुए परिवर्तनों का असर हमारी पलक झपकने की दर को घटा-बढ़ा सकता है. उत्तेजना, चिन्ता एवं तनाव के क्षणों में हमारी पलकें अपेक्षाकृत अधिक बार झपकती हैं. यही कारण है कि नौकरी के लिए होने वाले साक्षात्कार के दौरान असफलता की आशंका से ग्रस्त उम्मीदवार, अदालत में वकील के प्रश्नों से घबराया हुआ गवाह, अथवा झूठ पकड़े जाने के भय से ग्रस्त व्यक्ति की पलकें सामान्य से अधिक बार झपकती हैं.

वैज्ञानिक अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जब हम गहरे विचारों में खोए रहते हैं अथवा ध्यान पूर्वक पूरी सतर्कता एवं सावधानी से किसी कार्य में जूटे रहते हैं, उस दौरान हमारी पलकें काफी लंबे-लंबे अंतरालों के बाद झपकती हैं. जब हम पढ़े जा रहे वाक्यों अथवा अपने द्वारा देखे जा रहे किसी भी दृश्य को अपने दिमाग में अच्छी तरह बैठाना चाहते हैं, उस अवस्था में भी हमारी पलकें बहुत कम झपकती हैं. इसके विपरीत हवा में धूल, धुआं जैसे आंखों को चुभने वाले पदार्थों की उपस्थिति में हमारी पलकें तेजी से झपकने लगती हैं. आंखों की कई बीमारियों के कारण भी पलकें अधिक झपकती हैं. मस्तिष्क शोथ, पारकिन्सन रोग जैसे तंत्रिका तंत्र की बीमारियों के मरीजों में पलक झपकने की दर कम हो जाती है.

कुल मिलाकर, हमारी पलकें हमारी भलाई के लिए ही झपकती हैं. फिर भी यदि आप किसी कारणवश कभी उन्हें कुछ देर के लिए झपकने नहीं देना चाहते तो ये आपका आदेश मानने के लिए भी सदैव तैयार रहती हैं. □

एजेंट कृपया ध्यान दें

पत्रिका की बिक्री करने वाले एजेंटों से निवेदन है कि वे कृपया पत्रिका की प्रतियों का आर्डर अग्रिम दें. संबंधित अंक के प्रकाशन से कम से कम एक महीने पहले आर्डर कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए. इसके लिए यह आवश्यक है कि आर्डर की गई प्रतियों का मूल्य (कमीशन काट कर) पहले ही कार्यालय में जमा करा दिया गया हो. पत्रिका का अंक प्रकाशित हो जाने के बाद आर्डर में वृद्धि नहीं की जा सकती है. कृपया अपने आर्डर में निकटतम रेलवे स्टेशन का उल्लेख अवश्य करें ताकि पार्सल भेजने में सुविधा हो और आपको प्राप्त करने में विलंब न हो. कृपया ध्यान रहे कि आप उतनी ही प्रतियों का आर्डर दें जितनी आप आसानी से बेच सकते है, क्योंकि एक बार आर्डर की गई पत्रिकाओं को वापस लेने की व्यवस्था नहीं है.

—वरिष्ठ सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

वस्तुपरक बहुविकल्पी प्रश्नों की इस कड़ी में रसायन विज्ञान से संबंधित ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के स्तर के प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं. सही उत्तर का चुनाव करके उत्तर तालिका से मिलान कीजिए. मूल्यांकन 26-30 सही-सर्वोत्तम; 20-25 सही-उत्तम; 15-19 सही-अच्छा; 10-14 सही-सामान्य.

□ काली शंकर

1. घरों में खाना पकाने में प्रयुक्त गैस को एल पी जी कहते हैं. एल पी जी का पूरा नाम है:
   (क) लो प्रैशर गैस
   (ख) लिक्विफाइड प्रेशराइज्ड गैस
   (ग) लिक्विफाइड पेट्रोलियम गैस
   (घ) लिक्विड पेट्रोल गैसोलीन.

2. रबड़ के पेड़ में चीरा लगाकर उससे निकलने वाले द्रव से प्राकृतिक रबड़ बनाया जाता है. इस द्रव का नाम है:
   (क) सेल्यूलोज
   (ख) लेटेक्स
   (ग) फीनोल
   (घ) थियोकोल.

3. घरों में खाना पकाने में प्रयुक्त गैस से एक विशेष प्रकार की गंध आती है, यह गंध:
   (क) गैस की अपनी गंध होती है
   (ख) गंधक की होती है जो गैस में मिलाया जाता है
   (ग) इथाइल मरकैप्टन पदार्थ की है जो गैस में मिलाया जाता है
   (घ) गैस में होने वाली आयनीकरण क्रिया के कारण होती है.

4. उत्तम कोटि की रबड़ बनाने के लिए प्राकृतिक रबड़ को गंधक के साथ मिलाकर गरम करते हैं. इस क्रिया को कहते हैं:
   (क) वल्केनाइजेशन
   (ख) ऊर्ध्वपातन
   (ग) कैल्सिनेशन
   (घ) एक्लेमेटाइजेशन.

5. प्रकृति में वही पदार्थ स्वतंत्र रूप में प्राप्य नहीं है जो:
   (क) अच्छे आक्सीकारक हैं
   (ख) जिनका गलनांक बहुत अधिक है
   (ग) बहुत अधिक सक्रिय है
   (घ) जो बहुत अधिक कठोर है.

6. स्टेनलेस स्टील एक मिश्र धातु है जिसमें लोहा और क्रोमियम के साथ मौजूद होता है:
   (क) कैडमियम
   (ख) निकल
   (ग) कोबाल्ट
   (घ) कार्बन.

7. जर्मन सिल्वर एक मिश्र धातु है जिसमें निम्न पदार्थों का मिश्रण होता है:
   (क) तांबा, जिंक, निकेल
   (ख) तांबा, चांदी, लोहा
   (ग) चांदी, सोना
   (घ) प्लैटिनम, तांबा, निकेल.

8. जंग लगने से लोहा का भार:
   (क) बढ़ जाता है
   (ख) घट जाता है
   (ग) पहले बढ़ता है और फिर घटता है
   (घ) वही रहता है.

9. पानी की कठोरता के कारण हैं:
   (क) सोडियम लवण
   (ख) छोटे-छोटे पत्थर
   (ग) कैल्शियम और मैगनीशियम लवण
   (घ) गंधक.

10. वायु का भाग जो जैविक दृष्टि से उपयोगी तो है लेकिन ज्वलनशीलता में सहायक नहीं होता, वह है:
    (क) आक्सीजन
    (ख) कार्बन डाइआक्साइड
    (ग) हाइड्रोजन
    (घ) नाइट्रोजन.

11. लोहे में जंग लगने के लिए दो बातें जरूरी हैं. पहली बात है वायु की उपस्थिति तथा दूसरी बात है:
    (क) पानी की उपस्थिति
    (ख) हाइड्रोजन की उपस्थिति
    (ग) कार्बन डाइआक्साइड की उपस्थिति
    (घ) किसी अम्ल की उपस्थिति.

12. वायु के विभिन्न अवयवों में सबसे ज्यादा मात्रा है:
    (क) कार्बन डाइआक्साइड गैस की
    (ख) जलवाष्प की
    (ग) आक्सीजन की
    (घ) नाइट्रोजन की.

13. सीमेन्ट मुख्य रूप से दो अवयवों से मिलकर बना है. पहला अवयव लाइमस्टोन है तथा दूसरा अवयव है:
    (क) सल्फर
    (ख) आमोनिया
    (ग) क्ले
    (घ) बालू.

14. ग्लास (जिसे कांच भी कहते हैं) हैं:
    (क) मिश्रण है
    (ख) रासायनिक यौगिक है
    (ग) आंशिक रूप से यौगिक है
    (घ) कोई भी नहीं है.

15. सीमेंट, बालू और पानी के गाढ़े मिश्रण को कहते हैं:
    (क) जिप्सम
    (ख) बिट्मिन
    (ग) मोर्टार
    (घ) सेल्यूलोज.

16. परमाणु ऊर्जा के पावर स्टेशनों में प्रयुक्त होने वाला ईंधन है:
    (क) कोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) यूरेनियम
(ग) पैट्रोल
(घ) कोयला.

17. कास्टिक सोडा का दूसरा नाम है:
(क) पोटाश.
(ख) सोडियम क्लोराइड
(ग) हाइड्रोक्लोरिक एसिड
(घ) सोडियम हाइड्रौक्साइड.

18. अल्फा कणों का आवेश होता है:
(क) धनात्मक
(ख) ऋणात्मक
(ग) उदासीन
(घ) परिवर्तित होता रहता है.

19. गामा कणों की गति प्रकाश की गति की:
(क) बराबर होती है
(ख) आधी होती है
(ग) चार गुनी होती है
(घ) 100 गुना होती है.

20. कार्बन का सबसे विशुद्ध रूप है:
(क) ग्रेफाइट
(ख) कोक
(ग) हीरा
(घ) कोयला.

21. अच्छी पैदावार के लिए मिट्टी में कुछ खास तत्वों का होना आवश्यक होता है. ये हैं फास्फोरस, नाइट्रोजन और:
(क) कैल्शियम
(ख) सोडियम
(ग) कार्बन
(घ) पोटेशियम.

22. डी डी टी एक सामान्य कीटनाशक पाउडर है. इसका पूरा नाम है:
(क) डाईमिथाईल ड्राई टैबलेट.
(ख) डाईक्लोरो डाईफ़िनाईल ट्राईक्लोरोईथेन.
(ग) डाईनाइट्रो डाईफ्लोरो ट्राईफिनाईल.
(घ) डबुली ड्राईड ट्राईक्लोरोईथेन.

23. ड्यूरालुमिन एक मिश्र धातु है जिसके अवयव है:
(क) तांबा, मैगनीशियम, मैंगनीज और एलुमीनियम
(ख) तांबा, लोहा, मैंगनीज, कैल्शियम
(ग) सोडियम, एलुमीनियम, सोना
(घ) चांदी, तांबा, क्रोमियम, निकल.

24. सभी तरह के विकिरणों में सबसे खतरनाक गामा विकिरण है क्योंकि:
(क) इस विकिरण की गति अधिक है
(ख) इसमें किसी तरह का आवेश नहीं होता
(ग) इसकी भेदन शक्ति और ऊर्जा अधिक है
(घ) इस पर विद्युतीय फील्ड का असर नहीं होता.

25. रासायनिक प्रतिक्रियाओं और परमाणविक प्रतिक्रियाओं में काफी अन्तर होता है. परमाणविक प्रतिक्रियाएं:
(क) तापक्रम और दाब परिवर्तन से प्रभावी होती हैं
(ख) आर्द्रता के परिवर्तन से प्रभावी होती हैं
(ग) तापक्रम और दाब के परिवर्तन से नहीं प्रभावी होती
(घ) भौतिक परिवर्तन होती है.

26. विश्व में ऊर्जा की कमी को देखते हुए ऊर्जा के एक विशेष स्रोत पर काफी अनुसंधान कार्य हो रहा है. यह स्रोत है:
(क) ऊर्जा के गैर पारम्परिक स्रोत
(ख) ऊर्जा के पारम्परिक स्रोत
(ग) ऊर्जा के नवीनीकरणीय स्रोत
(घ) ऊर्जा के पुनः प्रयोगीनीय स्रोत.

27. रेडियोधर्मिता का पहली बार पता लगाने वाले व्यक्ति थे:
(क) मैडम क्यूरी
(ख) आइंस्टीन
(ग) रूदरफोर्ड
(घ) हेनरी बेक्वैरल.

28. सारे अधातु ताप और विद्युत के कुचालक होते हैं. इनमें केवल एक अपवाद है. ताप और विद्युत का सुचालक अधातु है:
(क) हीरा
(ख) क्ले
(ग) ग्रेफाइट
(घ) पारा.

29. विश्व में सबसे ज्यादा सोना पाया जाता है:
(क) भारत में
(ख) रूस में
(ग) दक्षिणी अफ्रीका में
(घ) ब्राजील में.

30. सभी अधातुओं के परमाणुओं की वाह्य कक्षा में 4 से 8 इलेक्ट्रान होते है. अपवाद हैं केवल दो अधातु:
(क) कैडमियम और बेरीलियम
(ख) मैंगनीज और बोरान
(ग) नाइट्रोजन और कार्बन
(घ) हाइड्रोजन और हीलियम.

उत्तर :

1. (ग); 2. (ख); 3. (ग); 4. (क); 5. (ग); 6. (घ); 7. (क); 8. (क); 9. (ग); 10. (घ); 11. (क); 12. (घ); 13. (घ); 14. (क); 15. (ग); 16. (ख); 17. (घ); 18. (क); 19. (क); 20. (ग); 21. (घ); 22. (ख); 23. (क); 24. (ग); 25. (ग); 26. (क); 27. (घ); 28. (ग); 29. (ग); 30. (घ).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SOMETHING MISSING?

You really can't afford to miss!

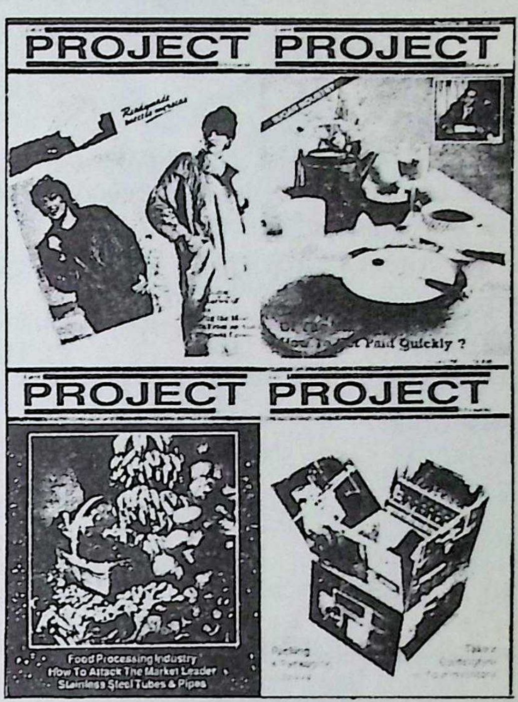

If you aren't receiving everyissue of Latest PROJECT Information India's fastest growing magazine on projects, technologies, finance & management , then you are missing vital facts & valuable information which you can't afford to miss.

Act Immediately! Subscribe Now!!

- Only subscribers receive EVERY copy of **Latest PROJECT Information** by post at their door-step.
- Only subscribers have quick and consistent information at hand about technologies, projects, management, finance, business law, international trade, the industry leaders and the important trends in the **national** and **international** market place.

If staying abreast of new technology in every area of industry is **important** to you and the future of your company, you should not miss any issue of **Latest PROJECT Information.**

Fill up this coupon and send it to us with cheque, money order, demand draft or postal order for Rs. 85.00 / 160.00* favouring ***Dominique Data Links (P) Ltd.*** and we will rush you the copies of **Latest PROJECT Information** for one/two years (packing & forwarding included).

YES

I/We don't want to miss vital facts and valuable information. Please enroll my/our subscription for ONE/TWO YEAR (S) and rush me the copies of **Latest PROJECT Information** by post. I /we enclose a cheque / money order / demand draft / postal order for **Rs. 85.00 / 160.00** * towards my/our subscription charges.

Name______________________________

Company______________________________

Department or Position ______________________________

Address______________________________

Street______________________________

Station ____________________ PIN __________

Signature____________________ Date__________

Please fill clearly (BLOCK LETTERS) and send coupon to:

Circulation Manager

Latest PROJECT Information

27, South Patel Nagar, (UCO Bank Bldg.) New Delhi-110 008.

Phones : 583705, 5735995

*** Please add Rs. 10/- on an outside Delhi Cheque.All payments favouring: Dominique Data Links (P) Limited**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOLDEN GOA

Exciting Package Tour Only Rs. 799/- Per Head On Twin Sharing Basis For 4 Days-3 Nights

INCLUDING

* Return Bus Ticket To Goa & Back By Luxury Bus From Bombay
* 2 Full Days' Sightseeing Tours of North & South Goa
* Continental Breakfast
* River Cruise With Folk Dances

For Advance Reservations, Please Contact :

HOTEL AZAVEDO'S

(NEAR CALANGUTE BEACH, CALANGUTE, GOA)

CORRESPONDENCE ONLY TO BOMBAY OFFICE :

203, Gulab, P. D'Mello Road, Bombay-400 001
Ph : Off : 2615321, 2619849, 6403834

FREE **FREE** **FREE**

Sales/Purchase Classified Advertisements
Published Free in
Colour & Chemicals Weekly

Yearly Subscription Rs. 300/-

Contact :

COLOUR & CHEMICALS WEEKLY

203, Gulab, 237 P. D'Mello Road, Bombay-400001
Tel : 2615321, 2619849

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर. गुप्ता कृत लाभदायक पुस्तकें

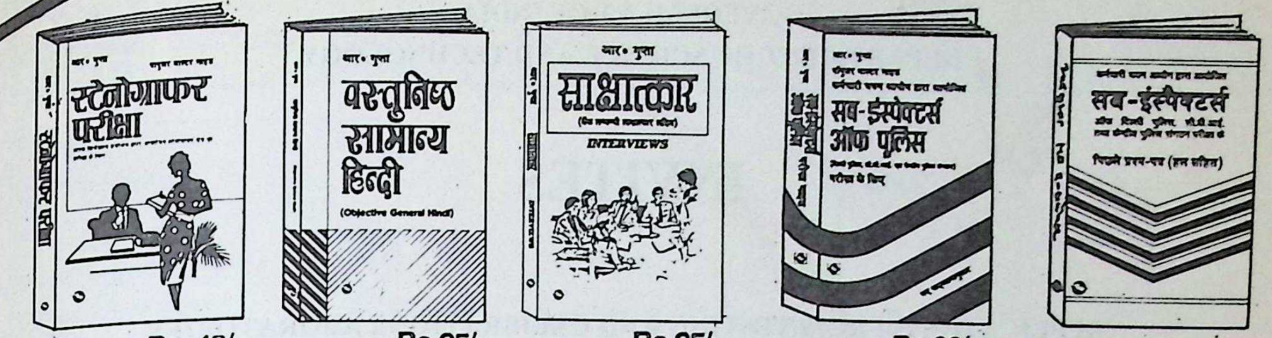

Rs 40/- Rs 25/- Rs 25/- Rs 90/- Rs 25/-

Rs 30/- Rs 25/- Rs 80/- Rs 75/- Rs 30/-

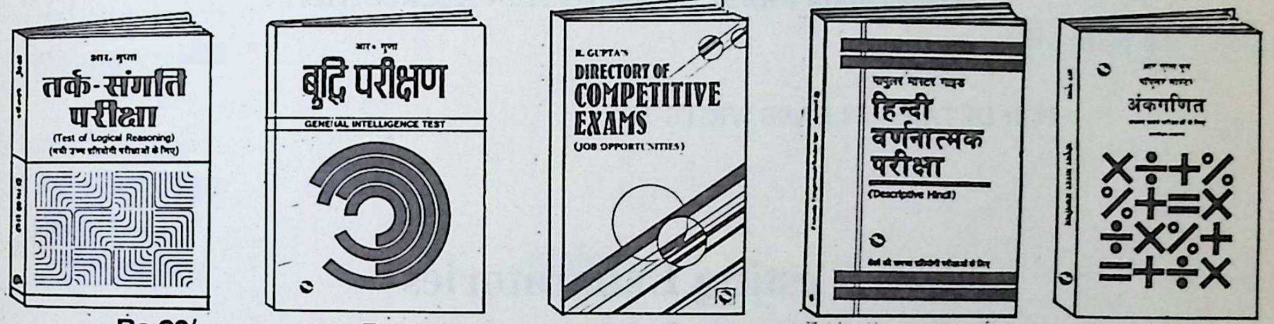

Rs 20/- Rs 15/- Rs 20/- Rs 15/- Rs 35/-

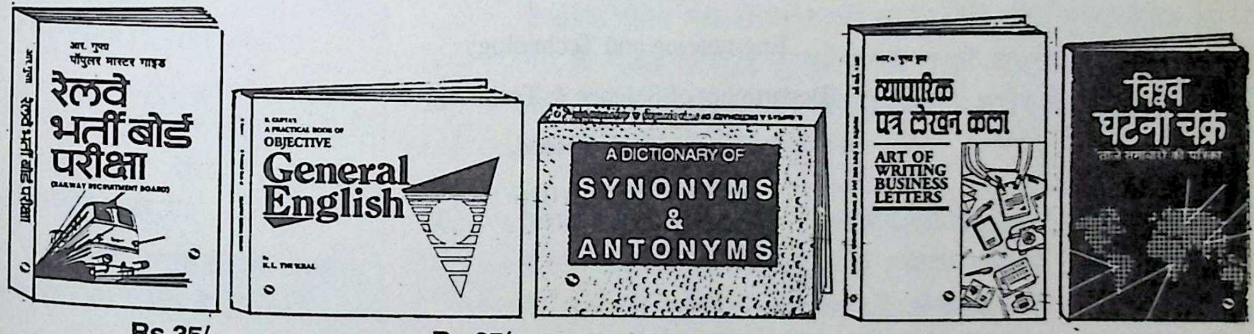

Rs 35/- Rs 35/- Rs 22.50 Rs 20/- Monthly Magazine: Annual Subs. Rs 24

वी पी पी द्वारा पुस्तकें मंगाने के लिए 20रु. का अग्रिम मनीआर्डर भेजें :

रमेश पब्लिशिंग हाउस 4457, नई सड़क, दिल्ली-6

'विश्व घटना चक्र' की नमूना प्रति मंगाने के लिए कृपया 3 रु. का मनीआर्डर भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

INVITES

APPLICATIONS FROM TESTING AND CALIBRATION LABORATORIES
FOR THEIR ACCREDITATION
UNDER THE PROGRAMME ON NATIONAL COORDINATION OF
TESTING AND CALIBRATION FACILITIES (NCTCF)

ORGANISATIONS (GOVERNMENT OR PRIVATE) WHICH UNDERTAKES TESTING/CALIBRATION EITHER FOR ITS OWN PURPOSE OR FOR OTHERS ARE ELIGIBLE TO SEEK ACCREDITION.

FOR DETAILS, PLEASE WRITE TO :

Testing Laboratories

Adviser
Engineering and Technology
Department of Science & Technolgy
New Mehrauli Road,
New Delhi-110 016

Calibration Laboratories

Director
National Physical Laboratory
Dr. K.S. Krishnan Road
New Delhi-110 012

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन.आर.डी.सी NRDC

आविष्कार

मई 1991 वर्ष 21, अंक 5

प्रबंध निदेशक
एन०के० शर्मा
प्रमुख (आई०पी०पी० एवं इ०)
एम०पी० भटनागर
•
वरिष्ठ सम्पादक
डी०एन० भटनागर
सम्पादन सहायक
राघवेंद्र कुमार शर्मा
आर०के० अन्थवाल
•
उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन
मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा
•
व्यावसायिक चित्रकार
के०के० थपलियाल
वरिष्ठ चित्रकार
नबनीता भौमिक
•
विज्ञापन प्रतिनिधि
रमा रानी त्रिपाठी

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■ लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरूरी है.

एक प्रति : 3 रुपए
वार्षिक मूल्य : 30 रुपए
फोन: 6432580, 6419929, 6419945, 6419947, 6418615 टेलेक्स: 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'

इस अंक में

217 निम्न भूमि से बढ़िया उत्पादन कैसे लें
—डा० रमेश चन्द्र तिवारी

222 बेकरी पदार्थों को और भी पोषक बना सकता है सोयाबीन
—एस० डी० कुलकर्णी
—एल० के० सिन्हा,
—एन० अली

225 ठोस पदार्थ की संरचना का एक नया रूप क्रिस्टल-कल्प (आभासी क्रिस्टल)
—डा० राधेश्याम तिवारी

228 दिन की लंबाई में परिवर्तन से काल-निर्धारण
—डा० विजय कुमार उपाध्याय

197 व्योमविहार

200 समाचारिकी : भारतीय रेलगाड़ियों के लिए नई शौचालय प्रणाली. चपड़े से जैलेरिक एसिड मच्छरों के लारवों को मारने के लिए सूक्ष्म जैविक कीटनाशी. गैस के चूल्हों के लिए सुरक्षा-युक्ति. पुराने टायरों से बिजली. उपग्रहों से गांवों में शिक्षा-प्रसार. प्रति-विषाणु औषधि शरीर में कहां पहुंची. पौधों को गहरी नींद में सुलाने की तकनीक.

203 विज्ञान के विविध आयाम : माटी मेरे देश की अनमोल. बांस के बने पानी के पाइप: इस्पात और प्लास्टिक से ज्यादा मजबूत. उन्नत कृषि में पादप कार्यिकी की भूमिका. अंतरिक्ष की ऊंचाइयां और जीवन की गहराइयां. बेन्जीन के अब सात समावयव. गरीबों को ही मारेगा कार्बन टैक्स. सामाजिक वानिकी—आवश्यकता और महत्व.

231 विज्ञान साहित्य चर्चा : अक्षरों की कहानी. समय. जल-कृषि.

235 क्या और कैसे ? कैसे पहचानते हैं हम परिचितों की आवाज ? हम ध्वनि कैसे सुनते हैं ?

237 अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों से निवेदन

1. 'आविष्कार' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किए या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक का पूरा नाम, पता व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी आविष्कार/विकास/अनुसंधान या खोज कार्य के सार्वजनिक रुचि के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकता है.

4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रस्तुत अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में जहां कहीं रासायनिक तत्वों का उल्लेख आता है वहां उनके उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए जो आज रसायन विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय हो चुके हैं जैसे तांबे के लिए कॉपर और जस्ते के लिए जिंक, सीसे के लिए लेड और आक्सीजन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि. तांबा व सीसा शब्द कोष्ठक में दिए जा सकते हैं.

7. मापों को संक्षिप्त रूप में न लिखकर पूरे रूप में लिखें. जैसे कि० ग्रा० के लिए किलोग्राम, मि० मी० के लिए मिलीमीटर. इससे समझने में आसानी होगी. सभी माप मीट्रिक प्रणाली में दिए जाएं.

8. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि—हो तो अच्छा है.

9. लेख वरिष्ठ संपादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

10. 'आविष्कार' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.

विज्ञान प्रदर्शनी/मेलों में भाग लेने वाली शिक्षण संस्थाएं/विद्यार्थी कृपया ध्यान दें

राष्ट्रीय, राज्य, जिला और क्षेत्रीय स्तरों पर आयोजित विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विज्ञान प्रदर्शनियों/मेलों में पुरस्कृत मॉडलों, युक्तियों आदि पर 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए विचारार्थ प्रलेख आमंत्रित हैं.

प्रलेख पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थी द्वारा स्वयं लिखा होना चाहिए और संबद्ध शिक्षण संस्था के प्राचार्य/प्रधानाचार्य द्वारा अग्रसारित किया जाना चाहिए. साथ में 'पुरस्कार प्रमाण पत्र' की फोटो प्रति भी भेजी जानी चाहिए.

प्रलेख में पुरस्कृत मॉडल, युक्ति आदि को बनाने की संपूर्ण जानकारी का तरतीबवार विवरण होना चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए कि उक्त माडल, युक्ति आदि को बनाने का विचार विद्यार्थी के मस्तिष्क में कैसे उपजा और उसे बनाने के लिए विद्यार्थी ने तकनीकी जानकारी कैसे जुटाई.

प्रलेख की दो प्रतियां भेजें जो कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप की गई हों अथवा साफ-साफ लिखी हों. चित्र सफेद ड्राइंग कागज पर साफ-साफ बने होने चाहिएं. चित्रों की भी दो प्रतियां भेजें.

जिस लिफाफे में प्रलेख भेजा जाए उसके बाईं ओर मोटे अक्षरों में 'विज्ञान प्रदर्शनी/मेले में पुरस्कृत मॉडल' लिखें.

जिन प्रलेखों को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाएगा उनकी सूचना संबद्ध शिक्षण संस्था/विद्यार्थी को उपयुक्त समय पर कार्यालय द्वारा स्वयं भेज दी जाएगी. अस्वीकृत रचनाओं के बारे में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा.

प्रलेख वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ पीयूष पाण्डेय

'आविष्कार' के इस स्तंभ में हम आपका परिचय नए तारामंडलों से कराते हैं. आपकी सुविधा के लिए इस अंक में हम मई 1991 और जून 1991 के महीनों की स्थिति दर्शा रहे हैं. अगले अंक में हम जुलाई 1991 माह की स्थिति दर्शाएंगे. हमें आशा है कि इस प्रकार आप 'व्योमविहार' का पूरा आनंद उठा पाएंगे. आप जानते ही हैं कि तारामंडलों से परिचय करने के लिए आपको केवल निर्देशों का पालन करना है, आपके सामने खुलता जाएगा तारों, ग्रहों और नक्षत्रों का नया अनोखा संसार. आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है.

□ मई मास में संध्याकाश के तीनों ग्रह हमारे मानचित्र की परिधि के अन्दर हैं, वे हैं क्रमशः पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ने पर शुक्र, मंगल एवम् बृहस्पति. इन ग्रहों की महीने के मध्य की स्थिति मानचित्र में प्रदर्शित हैं.

इस मास तेजस्वी शुक्र ग्रह (कान्तिमान −4.2) वृष और मिथुन से होता हुआ कर्क राशि में आ जाएगा.

मंगल ग्रह मिथुन से कर्क राशि में प्रवेश करेगा और महीने के मध्य में यह मिथुन के दो चमकीले तारों कैस्टर तथा पोलक्स के, जिन्हें भारतीय खगोलशास्त्र में संयुक्त रूप से पुनर्वसु नक्षत्र के नाम से जाना जाता है, दक्षिण में स्थित होगा.

बृहस्पति अथवा गुरु ग्रह कर्क राशि में हैं. इस प्रकार ये तीनों ग्रह आकाश के एक ही भाग में पास-पास इकट्ठा होते प्रतीत हो रहे हैं.

बुध तथा शनि ग्रह उषाकाश में हैं. बुध मीन और मेष राशि के क्षेत्र में दिखलाई देगा तथा शनि मकर राशि में. बुध को खोजने का सर्वाधिक उपयुक्त अवसर मई 12 के आसपास का है जब इसकी सूर्य से कोणीय दूरी लगभग 26 अंश होगी. शनि ग्रह लगभग मध्यरात्रि में उदय होगा.

इस मास चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं: कृष्ण पक्ष अष्टमी दिनांक 7 मई, अमावस्या दिनांक 14 मई, शुक्ल पक्ष अष्टमी दिनांक 21 मई एवम् पूर्णिमा 28 मई को है. इस मास संध्याकाश में प्रवेश कर रहे नए तारामण्डलों में से प्रमुख हैं—उत्तर पूर्व दिशा में स्वरमण्डल, दक्षिण पूर्व के आकाश में वृश्चिक राशि तथा एकदम दक्षिण के आकाश में नरतुरंग और त्रिशंकु.

वे तारामण्डल जिन्हें हम पिछले छः मासों से निरंतर संध्याकाश में निहारते आ रहे थे परन्तु जो अब इस मास के संध्याकाश में पश्चिमी क्षितिज के नीचे जा छिपे हैं उनमें से प्रमुख हैं, शर्मिष्ठा, वृष और मृग तारामण्डल.

एक मास व्यतीत हो जाने पर हम जून मास के संध्याकाश में दिखलाई दे रहे तीन ग्रहों को और भी पास-पास स्थित पायेंगे. हम अपने मानचित्र में मास के मध्य के लिए ग्रहों की स्थितियां प्रदर्शित करते हैं.

इस जून मास में तो मंगल और गुरु ग्रह एक दूसरे के इतने समीप स्थित हैं कि हमें उनकी स्थितियां प्रदर्शित करने के लिए मानचित्र में केवल एक बिन्दु से काम चलाना पड़ा. परन्तु इसका अर्थ यह न समझियेगा कि मंगल ग्रह इस मास गुरु को ढक लेगा. आप गुरु को मंगल के थोड़ा दक्षिण में पायेंगे. शुक्र इस मास मिथुन, कर्क से होता हुआ सिंह राशि के क्षेत्र में आ जायेगा. मंगल भी कर्क से सिंह में प्रवेश करेगा और गुरु कर्क में स्थित होगा.

इस प्रकार इनकी बदलती स्थितियों के कारण हमें 14 जून को मंगल ग्रह गुरु के आधा अंश उत्तर में दिखाई देगा. फिर 17 जून को शुक्र ग्रह गुरु से लगभग एक अंश उत्तर की ओर होगा और फिर 23 जून को शुक्र ग्रह मंगल ग्रह से लगभग चौथाई अंश उत्तर की ओर आ जायेगा.

बुध ग्रह जून 26 के बाद से संध्याकाश में दिखाई देना आरंभ होगा, तब यह मिथुन राशि के क्षेत्र में होगा. शनि ग्रह मकर राशि में स्थित है और हमारे मानचित्र में पूर्वी छोर पर प्रदर्शित राशि धनु है. इसके बाद मकर आती है; इसका अर्थ है मानचित्र के उपयोग के समय के दो घंटे बाद आप उसे पूर्वी क्षितिज पर उदय होता पायेंगे. हम आपको याद दिला दें कि मानचित्र के उपयोग का समय इस प्रकार है; मास के आरंभ में संध्या सवा नौ बजे, मध्य में सवा आठ बजे तथा मास के अन्त में सवा सात बजे. ये तीनों स्थानीय समय हैं.

चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं, कृष्ण पक्ष अष्टमी 5, अमावस्या 12, शुक्ल पक्ष अष्टमी 19 तथा पूर्णिमा 27 जून को है. सम्भवतः ग्रहों को आकाश में पास-पास इकट्ठा होते देख

सारणी. ग्रहों की सूर्य से खगोलीय माप में औसत दूरी

	ग्रह	सूर्य से दूरी (खगोलीय माप में)	बोदे-तितियस श्रेणी
1.	बुध	0.39	0.4
2.	शुक्र	0.72	0.7
3.	पृथ्वी	1.00	1.0
4.	मंगल	1.52	1.6
5.	____	____	2.8
6.	गुरु	5.20	5.2
7.	शनि	9.54	10.0
8.	यूरेनस	19.18	19.6
9.	नेप्च्यून	30.06	____
10.	प्लूटो	39.44	38.8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे पाठकों के मन में कई प्रश्न उठे हों, जैसे क्या ये परस्पर टकरा भी सकते हैं, क्या उनकी दूरी भी हमसे समान हो गई है, इत्यादि. अतः इस संदर्भ में ग्रहों की दूरियों की चर्चा करना उपयुक्त होगा.

यहां सारणी में हमने ग्रहों की सूर्य से औसत दूरियां खगोलीय-माप में दी हैं. खगोलीय-माप सूर्य और पृथ्वी के बीच की औसत दूरी को कहते हैं जो पन्द्रह करोड़ किलोमीटर के लगभग होती है.

सन् 1772 की बात है योहान बोदे नामक वैज्ञानिक ने पहली बार लोगों का ध्यान उस गणितीय संबंध की ओर दिलाया जिसे कुछ वर्ष पूर्व तितियस नामक एक अन्य वैज्ञानिक ने खोजा था. उस समय तक केवल शनि तक के ग्रह ज्ञात थे. तथा यूरेनस, नेप्च्यून और प्लूटो के बारे में कुछ भी पता न था. वह गणितीय संबंध ऐसा थाः सबसे पहले तीन के अंक से आरंभ कर एक गुणात्मक श्रेणी लिखिए जिसका सर्व-अनुपात 2 हो, यानि, सरल शब्दों में कहें तो तीन के अंक को दूना करते जाइए

3, 6, 12, 24, 48, 96, 192, 384.

अब प्रत्येक पद में 10 का भाग दीजिए तथा एक अतिरिक्त पद "0" आरंभ में रखिए

मई मास में तारों की स्थिति

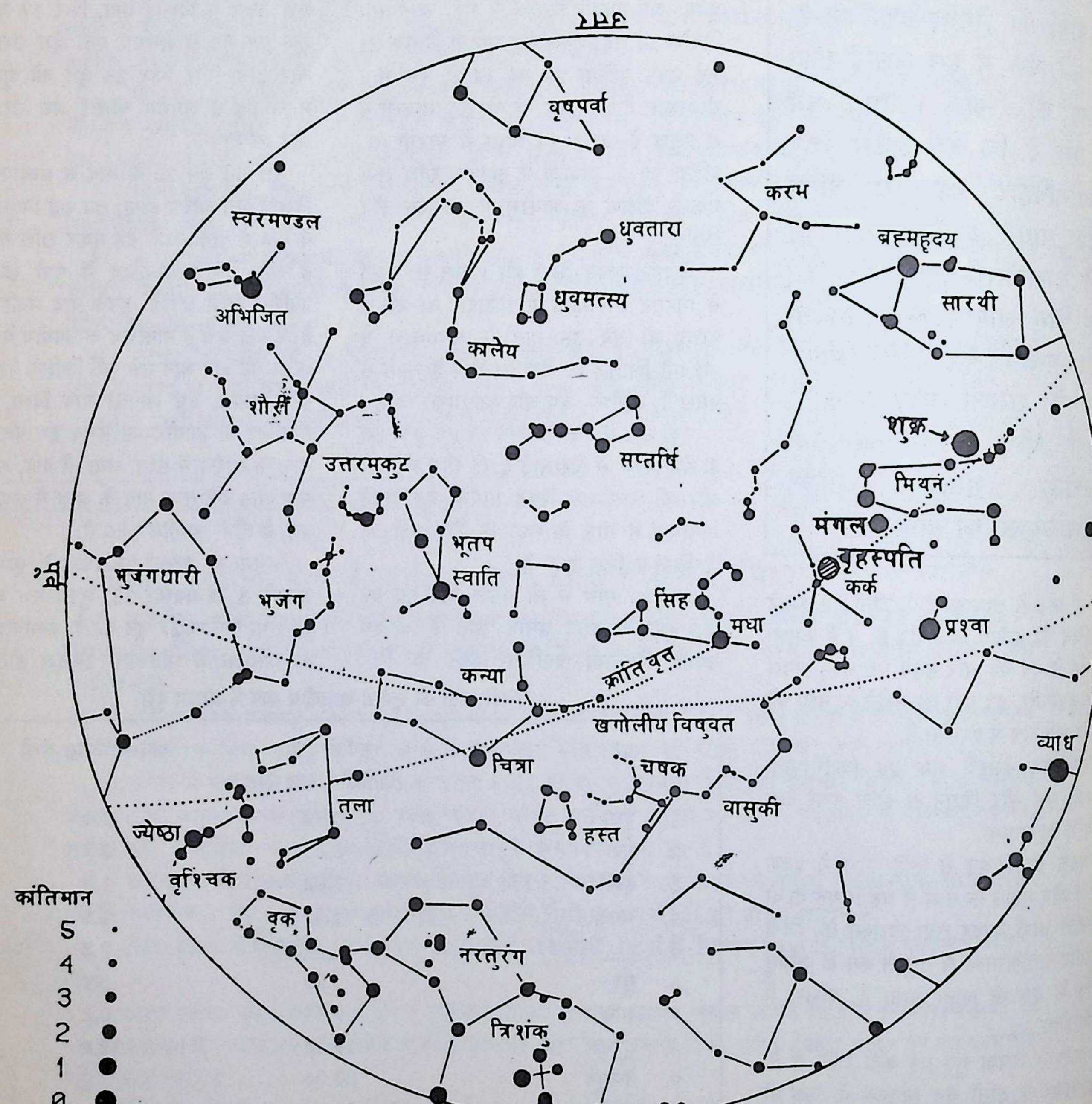

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जून मास में तारों की स्थिति

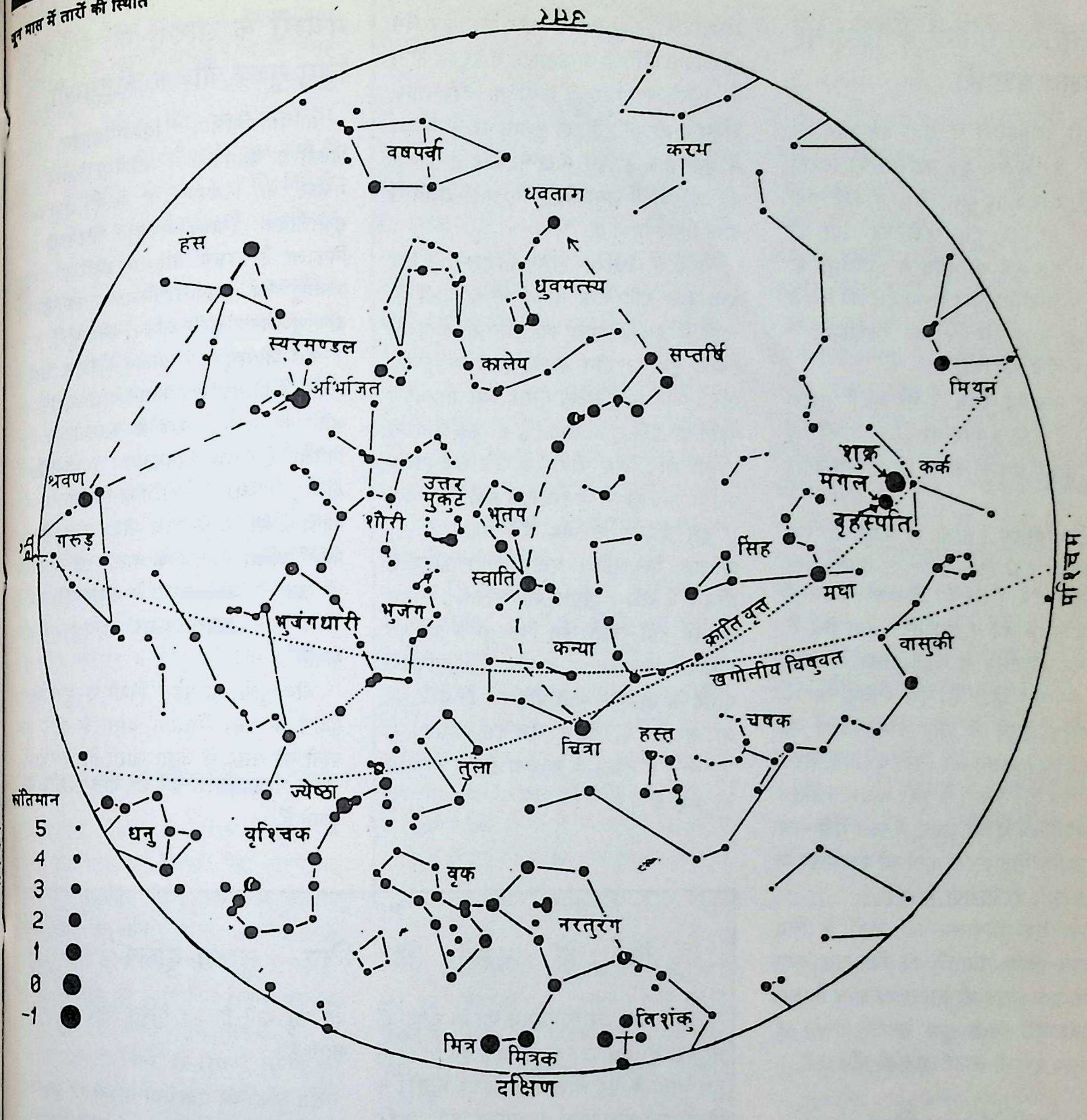

0, 0.3, 0.6, 1.2, 2.4, 4.8, 9.6, 19.2, 38.4

अब इस श्रेणी के प्रत्येक पद में 0.4 जोड़ दीजिए,

0.4, 0.7, 1.0, 1.6, 2.8, 5.2, 10.0, 19.6, 38.8,

इस प्रकार आपको ऊपर दी सारणी के चौथे (अन्तिम) स्तंभ की संख्याएं प्राप्त हो गईं और इनकी तुलना इससे पहले के स्तम्भ से करने पर आप पायेंगे कि बुध से शनि ग्रह की दूरियों को यह श्रेणी बखूबी प्रदर्शित करती है.

यूरेनस की खोज इस श्रेणी को खोजने के नौ वर्ष पश्चात अर्थात सन् 1781 में हुई थी और तब यह देखा गया कि यह संबंध यूरेनस की दूरी भी बता रहा था. उस समय केवल एक कठिनाई थी कि बोदे तितियस श्रेणी का पांचवा पद 2.8 था और इस दूरी पर कोई ग्रह नहीं था. परन्तु बाद में सन् 1801 में पियाजी ने "सीरीज" नाम का एक लघु ग्रह खोजा जिसकी दूरी 2.77 आंकी गई जो इस श्रेणी पर सटीक बैठती थी. बाद में बहुत सारे अन्य लघु ग्रह इसी दूरी पर मंगल और गुरु की कक्षाओं के बीच खोजे गए. बाद में जब नैप्च्यून और

(शेष पृष्ठ 202 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय रेलगाड़ियों के लिए नई शौचालय प्रणाली

हमारी रेलगाड़ियों में अभी बने शौचालय ऐसे होते हैं कि मल-मूत्र पटरियों पर गिरता रहता है, और अगर सुबह के समय कोई गाड़ी प्लेटफार्म पर देर तक खड़ी रह जाए तो प्लेटफार्म मल-मूत्र की दुर्गंध से भर जाता है. लेकिन पश्चिमी देशों की रेलगाड़ियों की स्थिति ऐसी नहीं है क्योंकि वहां की रेलगाड़ियों से मल-मूत्र नीचे नहीं गिरता.

अब भारतीय रेलवे ने भी अपनी सवारी गाड़ियों में इसी आधार पर डिजाइन की गई नई शौचालय प्रणाली लगाने की योजना बनाई है.

नई शौचालय प्रणाली में स्टील की एक आयताकार टंकी होती है जिसमें दो खंड होते हैं. ऊपरी खंड में कई सौ फिल्टर लगे होते हैं जबकि निचले खंड में क्लोरीनित्र लगा होता है. मल-मूत्र शौचालय से आकर टंकी के ऊपरी खंड में जमा होता है. इसे जैविक रूप से उपचारित करने के बाद ठोस पदार्थों को फिल्टर करके अलग कर लिया जाता है. तरल भाग पहले ही फिल्टरों से गुजर कर निचले खंड के क्लोरीनित्र में आ जाता है. क्लोरीनीकरण के बाद निर्जर्मित तरल पदार्थ को एक पाइप के जरिए पटरी पर गिराया जाता है.

ऐसा एक शौचालय 50 लोगों के लिए डिजाइन किया गया है जो दिन-रात काम करेगा. एक इकाई की लागत डेढ़ लाख है. शुरू में लंबी दूरी वाली कुछ रेलगाड़ियों में नई शौचालय प्रणाली लगाई जाने की योजना है.

चपड़े से जैलेरिक एसिड

भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान, रांची के वैज्ञानिकों ने चपड़े से जैलेरिक एसिड अलग करने में सफलता प्राप्त की है. वैज्ञानिकों के अनुसार चपड़े से लगभग 12 प्रतिशत जैलेरिक एसिड प्राप्त होता है जो परंपरागत स्रोतों से पांच गुना ज्यादा है.

जैलेरिक एसिड एक टर्पीन यौगिक है जो डाइकीटोनों, डाइलैक्टोनों और ट्राइएस्टर जैसे औद्योगिक यौगिकों के उत्पादन में प्रयुक्त होता है. और चपड़ा एक प्राकृतिक ज्वलनशील रेजिन है जो पानी में नहीं घुलता पर एलकोहल में घुलनशील है. इसे लाख के कीड़े द्वारा पेड़ों की टहनियों में जमा किए गए लाख-रेजिन से प्राप्त किया जाता है.

चपड़े से जैलेरिक एसिड निकलने के बाद बचा हुआ गोंद जैसा पदार्थ भी उपयोगी है. चपड़े में इसकी मात्रा 90 प्रतिशत होती है. इसका पुनः उपयोग करके इससे हाइड्रौक्सी एसिड और ऐल्यूरिटिक एसिड जैसे महत्वपूर्ण पदार्थ प्राप्त किए जा सकते हैं जो कुछ सुंगधित पदार्थों और लिंग फीरोमोन जैसे जैव-सक्रिय पदार्थों के संश्लेषण में इस्तेमाल होते हैं.

इस प्रक्रिया में गोंद जैसे पदार्थ से 20 प्रतिशत ऐल्यूरिटिक एसिड प्राप्त होता है जिससे जैलेरिक एसिड की उत्पादन लागत खर्चीली नहीं रहती. इस विधि में 5 प्रतिशत सोडियम सल्फाइट के उपयोग से ऐल्यूरिटिक एसिड के उत्पादन में 5 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है. इससे जैलेरिक एसिड की गुणवत्ता में सुधार के अलावा इसकी मात्रा में भी वृद्धि होती है.

मच्छरों के लारवों को मारने के लिए सूक्ष्म जैविक कीटनाशी

जामिया-मिलिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों ने मलेरिया फैलाने वाले मच्छर के नियंत्रण के लिए एक नया सूक्ष्मजैविक (माइक्रोबाइल) कीटनाशी ढूंढ निकाला है. इसमें **बैसिलस स्फैरिक्स** नामक जीवाणु का उपयोग किया जाता है जो बीजाणुकजनक (स्पोरूलेटिंग) जीवाणु है.

यह जीवाणु एक प्रोटीन क्रिस्टल उत्पन्न करता है जो मलेरिया फैलाने वाले—एनोफेलीज जाति के मादा मच्छर के लारवों के लिए विषैला है. यह अंतराविष (एंडोटॉक्सिन) बीजाणु की कोशिका-भित्ति और कोशिका-झिल्ली के बीच मौजूद होता है. यह पदार्थ उचित पी-एच के वातावरण में सक्रिय हो जाता है, और लारवा के शरीर की मध्यांत्र (मिड-गट) इसे उपयुक्त पी-एच उपलब्ध करती है.

बीजाणुओं को पहले किसी उपयुक्त खाद्य पदार्थ के साथ मिलाया जाता है और फिर पानी की सतह में डाला जाता है. लारवा इसे अपना भोजन समझ कर खा जाते हैं और मरने लगते हैं.

गैस के चूल्हों के लिए सुरक्षा-युक्ति

कभी-कभी द्रव पैट्रोलियम गैस के चूल्हों की लौ हवा से, दूध या पक रहे खाने की उबाल से बुझ जाती है. ऐसे में अगर रसोईघर में कोई न हो या इस ओर ध्यान न जाए तो घुंडी (बर्नर नॉब) के खुले रहने से गैस की सप्लाई जारी रहती है. इससे रसोईघर में गैस भर सकती है और आग लगने की दुर्घटना हो सकती है.

इस स्थिति से बचाने के लिए अब इंजीनियरी का सामान बनाने वाली एक भारतीय कंपनी ने ऐसी युक्ति तैयार की है जो हवा, उबाल या किसी और कारण से चूल्हे की लौ के बुझने पर गैस की सप्लाई को अपने आप बंद कर देती है. यह युक्ति चूल्हे पर लगाई जाती है.

इस युक्ति का एक ऐसा मॉडल भी उपलब्ध है जो चूल्हे की घुंडी को 'आन' करने पर स्पार्क पैदा करके गैस भी जला सकता है—यानी गैस लाइटर और माचिस की डिबिया की छुट्टी.

पहले ये युक्तियां सिर्फ आयातित गैस के चूल्हों के साथ उपलब्ध थी लेकिन अब कुछ भारतीय कंपनियां ऐसे चूल्हे बना रही हैं जिनमें यह सुरक्षा युक्ति फिट है. इसके लिए प्रचलित चूल्हे की बनावट में परिवर्तन किया गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीजाणु मिले खाद्य पदार्थ को चूर्ण या तैल-आधारित पदार्थ के रूप में तैयार किया जा सकता है. मच्छर के लारवे पानी की सतह पर उपलब्ध भोजन पर निर्भर करते हैं. सतह पर डाले गए बीजाणु मिले खाद्य-पदार्थ को खाने पर बीजाणु इनके शरीर में पहुंच जाते हैं जहां इनकी भित्ति के घुल जाने से विषैली प्रोटीन मुक्त हो जाती है, जिससे लारवों की मृत्यु हो जाती है.

वैज्ञानिकों के अनुसार तैल-आधारित बीजाणु मिले खाद्य पदार्थ ज्यादा असरदार हैं क्योंकि ये पानी की सतह पर अच्छी तरह फैल जाते हैं जबकि चूर्ण के रूप में तैयार खाद्य पदार्थ कुछ समय बाद नीचे बैठ जाते हैं, जिसकी वजह से यह ज्यादा असरदार नहीं है.

अध्ययनों में बीजाणु मिला खाद्य पदार्थ लारवा के विरुद्ध 90 प्रतिशत असरदार पाया गया है लेकिन यह मच्छर के अंडों व मच्छरों के विरुद्ध बिल्कुल भी असरदार नहीं निकला. अभी बीजाणु मिले खाद्य पदार्थ देश में उपलब्ध न होने के कारण अमेरिका से आयात किए जाते हैं.

उपग्रहों से गांवों में शिक्षा-प्रसार

उपग्रहों के माध्यम से देश के गांवों में शिक्षा के प्रसार के लिए भारत सरकार के अंतरिक्ष विभाग ने एक महत्वाकांक्षी योजना तैयार की है. इसके अंतर्गत अंतरिक्ष में उपग्रहों का एक जोड़ा भेजा जाएगा. आशा है पहला उपग्रह सन् 1995 तक अंतरिक्ष में पहुंचा दिया जाएगा. गांवों को समर्पित इन उपग्रहों को 'ग्रामसैट' नाम दिया गया है.

देश के 5,60,000 गांवों की 70 प्रतिशत जनता अभी भी निरक्षर है. इससे जनता को साक्षर बनाने के मुख्य कार्य के अलावा इस उपग्रह—नेटवर्क से औद्योगिक मजदूरों को और अच्छी तरह शिक्षित व प्रशिक्षित करने का काम भी लिया जाएगा.

ग्राम सैट के जरिए लोगों को मातृ भाषा में पढ़ाया जाएगा. शुरू में छः क्षेत्रीय भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित किए जाएगें. बाद में सभी 14 भाषाओं में कार्यक्रम-प्रसारण की योजना है. इन कार्यक्रमों के साथ एक विशेष सुविधा यह होगी कि पाठ के अंत में दर्शक प्रश्न पूछ कर फिर उसका उत्तर भी प्राप्त कर सकेंगे.

इससे पहले 1974 में भी उपग्रह के जरिए गांवों में शिक्षा-प्रसार का काम किया जा चुका है, जो काफी सफल रहा. तक अमेरिकी उपग्रह 'साइट' (सैटेलाइट इन्सट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट) की मदद से 2000 गांवों में शिक्षा संबंधी कार्यक्रम दिखाए जाते थे. इसके लिए सीधे अभिग्रहण वाले टेलीविजन सेटों का उपयोग किया जाता था. अंतरिक्ष विभाग के प्रमुख के अनुसार 'ग्रामसैट' उस 'साइट' का ही व्यापक स्वरूप है जिसका उपयोग राष्ट्रीय स्तर पर किया जाना है.

डा० राव के अनुसार 'ग्राम सैट' नेटवर्क में निजी कंपनियां भी पैसा लगाने को तैयार हैं क्योंकि इससे उनके यहां काम कर रहे मजदूरों को शिक्षा जारी रखने और साथ ही अपनी दक्षता बढ़ाने का अवसर मिलेगा. इसके लिए फैक्टरी मालिक को सीधे अभिग्रहण वाले टेलीविजन सेट लगाने होंगे और मजदूरों को सप्ताह में दो घंटे कार्यक्रम देखने के लिए देने होंगे. शिक्षण व प्रशिक्षण कार्यक्रमों का सीधा-सीधा लाभी उत्पादन वृद्धि के रूप में देखने को मिलेगा.

डा० राव के अनुमान से 'ग्रामसैट' उपग्रहों में प्रमोचन सहित 15 करोड़ अमेरिकी डालर का खर्च आएगा.

पुराने टायरों से बिजली

मिडलैंडस, ब्रिटेन में पुराने बेकार पड़े टायरों को जला कर बिजली पैदा करने का एक संयंत्र स्थापित किया जा रहा है. 20 मैगावाट की अनुमानित क्षमता का यह संयंत्र 20,000 घरों को बिजली की आपूर्ति करेगा. 3.6 करोड़ पौंड की अनुमानित लागत का यह संयंत्र ब्रिटेन के बेकार पड़े टायरों के 45 प्रतिशत सालाना हिस्से को ठिकाने लगाने का महत्वपूर्ण कार्य भी करेगा. टायरों को जला कर विद्युत उत्पादन की यह प्रौद्योगिकी पर्यावरण की दृष्टि से भी सुरक्षित बताई जाती है.

वैसे सन् 1970 से अमेरिका में टायरों से बिजली बनाने वाले संयंत्र काम कर रहे हैं और अब इनकी संख्या 125 पहुंच गई है. ब्रिटेन पहली बार इस प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कर रहा है.

नई प्रौद्योगिकी में प्रारंभिक चरणों में टायरों को एक 'बायरस' में डाला जाता है. इनके जलने से उत्पन्न ताप को भाप में बदला जाता और भाप से टरबाइन जनरेटर चलाया जाता है.

इस प्रारंभिक दहन में टायरों का रबड़ तो जल जाता है लेकिन नई प्रौद्योगिकी की विशेषता यह है कि इसमें दुबारा जलाने का काम करने वाले 'रि-बर्न टनलों' का उपयोग होता है जिसमें अधजले भाग भी अच्छी तरह जल जाते हैं और तापमान 2000 डिग्री फारेनहाइट तक पहुंच जाता है सामान्य बिजलीघरों में ऐसे टनलों की आवश्यकता नहीं पड़ती लेकिन यहां नाइट्रस आक्साइडों और डायआक्सिनों को जलाने के लिए उच्च तापमान आवश्यक है.

जलने के बाद बचे हुए अवयवों को ठंडे होने के बाद विशेष फिल्टरों से गुजारा जाता है, जहां इनसे जिंक अवयव अलग हो जाते हैं, गंधक को अलग करने के लिए गैसों को चूने से उपचारित किया जाता है और प्राप्त गंधक को अन्य उद्योगों में इस्तेमाल किया जा सकता है. इसी प्रकार प्रारंभिक दहन के बाद बची लौह धातुएं भी दूसरे उद्योग में इस्तेमाल की जा सकती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति-विषाणु औषधि शरीर में कहां पहुंची

आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिकों ने एक नई तकनीक विकसित की है जिससे रोगी द्वारा ली गई प्रति-विषाणु (एंटी-वायरल) औषधि की शरीर में अवस्थिति और किसी कोशिका में उसके सांद्रण का पता लगाया जा सकता है. इन वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस तकनीक के बाद अब उनके देश के कॉमनवेल्थ, साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च आर्गेनाइजेशन (सी एस आइ आर ओ) को नई प्रति-विषाणु औषधियों के विकास में अपेक्षाकृत कम समय लगा करेगा.

इस तकनीक में एक स्कैनिंग प्रोटोन माइक्रोप्रोब का इस्तेमाल किया जाता है. इसका विकास मेलबोर्न विश्वविद्यालय के सूक्ष्म विश्लेषक अनुसंधान केंद्र के डा॰ जार्ज लेग्गी ने किया है.

इस तकनीक से अब अनुसंधानकर्ता शरीर के अंदर क्रियाशील औषधि के अभूतपूर्व प्रतिबिंबों को देखने के अलावा यह भी जान सकते हैं कि औषधि कोशिका के अंदर गई या नहीं, अगर गई है तो कैसे गई, कहां जमा हुई और इसके काम करने का क्या तरीका है. इससे मानव कोशिका के व्यास के दसवें हिस्से पर भी फोकस करके, भाग प्रति दस लाख भाग जितने सांद्रण में भी देखा जा सकता है.

इस समय दुनिया भर में अभी तक लाइलाज एड्स रोग के इलाज के लिए किसी कारगर औषधि के विकास पर जोर-शोर से काम चल रहा है. यह तकनीक अभी विकसित एड्स की औषधियों के प्रभाव को जानने में काफी उपयोगी साबित होगी.

पौधों को गहरी नींद में सुलाने की तकनीक

अमेरिकी कृषि वैज्ञानिकों ने शकरकंद के पौधे के क्रियाकलापों को लंबी अवधि तक ठप्प रखने की एक विधि विकसित की है जो शकरकंद के ऊतक-संवर्धन में काफी उपयोगी बताई जाती है.

शकरकंद व कुछ अन्य ऐसे पौधे हैं जो सामान्यतः बीज से नहीं उगाए जाते हैं. इन पौधों के ऊतक-संवर्धन में एक समस्या यह है कि ये बढ़ते-बढ़ते भंडारण हेतु प्रयुक्त परखनलियों से बाहर निकल आते हैं और वृद्धि-माध्यम को भी चट कर जाते हैं. परंपरागत ऊतक संवर्धन तकनीकों में शकरकंद को 90 दिन के बाद पुनः संवर्धित करना पड़ता है.

अब अमेरिका के कृषि विभाग के उद्यान-कृषि विशेषज्ञ रार्बट एल॰ जेरैट ने शकरकंद के पौधे को लंबी अवधि तक गहरी नींद में सुला कर उसके तमाम क्रियाकलापों को पूर्णतया ठप्प करने की विधि विकसित की है. इसमें पौधे पर कोई दीर्घावधि दुष्प्रभाव नहीं पड़ता.

इस तकनीक में एक तो तापमान को 21 डिग्री फारेनहाइट तक नीचे लाया जाता है और साथ ही वृद्धि-माध्यम में कार्बोहाइड्रेट के स्तर को 3 प्रतिशत से 2 प्रतिशत कर दिया जाता है. इन परिस्थितियों में भी पौधे पूर्णतया सामान्य वृद्धि करते हैं, लेकिन वृद्धि की गति अत्यधिक धीमी हो जाती है.

जेरैट ऊतक संवर्धन पुनर्जननों के बीच अवधि को 12 महीने तक बढ़ाने में सफल रहे हैं. इसके बाद जब पौधों को परखनलियों से निकाल कर खेत में रोपा जाता है तो ये तुरंत ही सामान्य दर से वृद्धि करने लगते हैं.

इस समय जेरैट द्वारा शकरकंद की 600 से अधिक किस्मों पर यह तकनीक अपनाई जा रही है और अब वे ऊतक संवर्धन पुनर्जनन की अवधि को दो साल तक बढ़ाने के लिए प्रयासरत् हैं.

(पृष्ठ 199 का शेषांश — व्योमविहार)

प्लूटो की खोज हुई तो देखा गया कि यह श्रेणी उनकी दूरियां ठीक-ठीक नहीं बतलाती, पर यदि नैप्च्यून को भूल जाएं तो इस श्रेणी का यूरेनस के बाद वाला अगला पद प्लूटो की दूरी पर कुछ ठीक बैठता है.

आज बोदे-तितियस श्रेणी का महत्व मात्र ऐतिहासिक रह गया है. खगोलशास्त्री इसे मात्र एक संयोग मानते हैं. शायद हमारे बहुत से पाठक इस बात से जल्दी सहमत न हों, परन्तु जरा विचारिए इस श्रेणी को बनाने में कितनी स्वच्छन्दता बरती गई है. क्या आरम्भिक पद '3' लेने का कोई औचित्य है और फिर उसके भी आरम्भ में एक और पद शून्य जोड़ देना जिसके कारण यह श्रेणी न तो गुणात्मक ही कही जा सकती है और न समान्तर श्रेणी. फिर हम दस से भाग देने के बाद 0.4 जोड़ते हैं प्रत्येक पद में. इनमें से कोई भी चरण कोई भौतिक अस्तित्व नहीं रखता. और फिर इतनी सब खींचतान के बावजूद बोदे-तितियस श्रेणी नेप्च्यून की पूर्ण उपेक्षा कर जाती है. आज यह सम्बन्ध उतना ही बेबुनियाद हो गया है जितना यह मानना कि ग्रहों की गतियां मानव जीवन को प्रभावित और नियंत्रित करती हैं.

हां, मूल बात यह थी कि यह सारणी बता रही है. कि ग्रहों की दूरियां भिन्न-भिन्न हैं. अतः उनका आकाश में किसी राशि विशेष में साथ-साथ दिखाई देना पृथ्वी के सापेक्ष उनकी बदलती कक्षीय स्थितियों का परिणाम है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माटी मेरे देश की अनमोल

□ रमेशदत्त शर्मा

□ क्या आपने कभी सोचा है कि इलाहाबादी अमरूद, नागपुरी संतरे, मुजफ्फरपुर की लीचियां, देहरादून की बासमती, मलीहाबाद के दशहरी आम—आखिर क्यों मशहूर हैं. इसका भेद इन जगहों की मिट्टी में छुपा है और यह मिट्टी कोई आज या कल में नहीं बनी. लाखों साल में बनी है. ये समझिए कि मिट्टी को एक सेंटीमीटर मोटी उपजाऊ ऊपरी परत को बनाने में कुदरत को करीब हजार साल लगते हैं.

इस मिट्टी की अपनी एक दुनिया है. तमाम किस्म के जीवाणु, फफूंदी और केंचुए जैसे कल्याणकारी कृमि, तमाम तरह के खनिज तत्व, हवा और पानी तथा टूटी-टहनियों, पत्तियों, फल-फूलों के अंश मिलकर कुछ ऐसी कीमियागरी रचते हैं कि हर मिट्टी की अपनी एक अलग ही सोंधी गंध होती है, गुण होते हैं.

यों तो अनादिकाल से ही आदमी धरती को माता मानकर उसकी पूजा करता आया है, पर मिट्टी किस तरह पौधों की बढ़वार में मदद करती है, इसकी वैज्ञानिक खोज का श्रेय जर्मन रसायनवेत्ता लीबिग को दिया जाता है. सन् 1840 में लीबिग की एक किताब छपी थी, जिसमें पहली बार यह बताया गया था कि पौधों के पोषण के लिए कार्बन हवा में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड से आता है और हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन हवा और मिट्टी में मौजूद जल-कणों से मिलते हैं. लीबिग ने ही पहली बार यह बताया था कि नाइट्रोजन फसलों को अमोनिया से मिलती है और उसके साथ ही फास्फेट और पोटाश भी पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक है.

लंदन के पास रोदमस्टेड में जे०बी०लास और जे०एच० गिलबर्ट ने सन् 1843 में विश्व के प्रथम कृषि अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की. बस तभी से बाकायदा यह खोज शुरू हुई कि किस फसल को कितनी भूख-प्यास लगती है और किस तरह पौधे की जड़ों के सबसे आगे के कोमल भाग पर मौजूद रोयें मिट्टी में बने पानी के घोल में से खनिज तत्व खींच कर ऊपर चोटी पर पहुंचाते हैं. फिर साल दर साल प्रयोगों के बाद पता लगाया गया कि अनाज वाली फसलें तो मिट्टी से पोषक तत्व खींच लेती हैं और फली वाली फसलें, जिनसे हमें दालें और खाने के तेल मिलते हैं, वे मिट्टी से तो पोषण ग्रहण करती ही हैं, हवा से भी नाइट्रोजन खींचती हैं. इनकी जड़ों में गांठें बनाकर रहने वाले जीवाणु में यह गुण पाया गया कि वे खेत में रासायनिक खाद की एक अच्छी खासी फैक्टरी ही लगा देते हैं. इसीलिए यह तय किया गया कि ऐसा फसल-क्रम अपनाया जाए, जिसमें फली वाली कोई न कोई फसल जरूर शामिल हो ताकि मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बनी रहे. रासायनिक खादों के आने से पहले हरी खाद, गोबर की खाद और फली वाली फसलें उगाना, यही साधन थे, जिससे कि मिट्टी को उपजाऊ बनाये रखा जा सकता था.

हर साल 600 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी बाढ़ के पानी के साथ बह जाती है. लाखों हेक्टेयर जमीन बंजर पड़ी है. इसे सुधार कर फिर से हरा-भरा करने की तकनीकें उपलब्ध हैं. फिर भी देश की मिट्टी खराब क्यों हो रही है?

हालांकि अब तो रासायनिक खाद सभी किसान इस्तेमाल कर रहे हैं, लेकिन एक जमाना था जब भारतीय किसान इन उर्वरकों के नाम से ही नाक-भौं सिकोड़ते थे. उन्हें डर था कि इनसे फसलों के पौधे जल जाएंगे और मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता नष्ट हो जाएगी. यह भ्रम तो अब दूर हो चुका है और किसान भाई आजादी मिलने के समय जहां औसतन मुश्किल से आधा किलो प्रति हेक्टेयर उर्वरक इस्तेमाल कर रहे थे, वहीं अब 48 किलोग्राम से भी अधिक का औसत पड़ रहा है. यानी पिछले 42 सालों में उर्वरकों के इस्तेमाल में 96 गुनी वृद्धि हुई है.

लेकिन अब भी ज्यादातर किसान रासायनिक खाद डालने से पहले अपने खेतों की मिट्टी की जांच नहीं कराते. हो सकता है कि मिट्टी की जांच करा लेने पर आपको कम उर्वरक खरीदने पड़ें या फिर अपनी मिट्टी में इन छह जरूरी तत्वों में से किसी की कमी हो—लोहा, जस्ता, तांबा, मैंगनीज, बोरोन और मोलिब्डेनम. जस्ते की कमी हो तो जिंक सल्फेट मिलाना होगा, तांबे की कमी हो तो कॉपर सल्फेट, लोहे की कमी हो तो फेरस सल्फेट और मैंगनीज की कमी हो तो मैंगनीज सल्फेट देना होगा. बोरोन की कमी दूर करने के लिए सुहागा या बोरेक्स और मोलिब्डेनम के लिए अमोनियम मोलिब्डेट देना होगा. इनकी बहुत थोड़ी मात्रा चाहिए—बस यों समझिए कि ऊंट के मुंह में जीरे के बराबर. पर उसी से फसलों की पैदावार में चमत्कारी असर पड़ता है.

मिट्टी की जांच कराने के लिए आप अपने खेत में अलग-अलग जगह से 6 से 8 इंच की गहराई तक मिट्टी खोदकर एक थैली में मिला लीजिए और उस पर अपने नाम और पते की चिप्पी नत्थी कर दीजिए. ये नमूने ज्यादातर तो मुफ्त में जांचे जाते हैं या फिर मामूली फीस लेकर. नाम-पते की एक चिप्पी थैली के अंदर भी डाल दें. ये ध्यान रहे कि मिट्टी के इन नमूनों में खाद, राख या गोबर न मिल पाए. फसल बोने से डेढ़-दो महीने पहले अपनी मिट्टी की जांच करा लें. पूरे देश में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के 40 से ज्यादा कृषि अनुसंधान संस्थान और 23 कृषि विश्वविद्यालय तथा राज्यों के कृषि विभाग मिट्टी परीक्षणशालाएं चलाते हैं. इसके अलावा चलती-फिरती प्रयोगशालाएं हैं. डाक से हफ्ते भर में और खुद लेकर जाएं तो तुरंत आपकी मिट्टी की जांच करके उसकी तमाम खूबियां और कमियां बता दी जाती हैं. सन् 1967 में साल में 6-7 लाख नमूने जांचे जाते थे, पर अब तो इन सुविधाओं का कई गुना विस्तार हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है. अब तो जगह-जगह मशीनें लग गई हैं. मिट्टी का घोल रखते ही उनकी सुइयां बता देती हैं कि मिट्टी में क्या-क्या है.

मिट्टी की खराबी का खुद पता लगाएं

ऊसर मिट्टियों की जांच करके उन्हें भी सुधारा जा सकता है. हमारे देश में कोई 70 हेक्टेयर जमीन रेह वाली या कल्लर बतायी जाती है, जिसमें लवण या क्षार ज्यादा होते हैं. कुछ मिट्टियां अधिक अम्लीय होने के कारण बंजर हो गई हैं. इसके नाप को वैज्ञानिक पी-एच कहते हैं. साढ़े छह से साढ़े आठ तक पी-एच वाली मिट्टियों में फसलें जमकर पैदावार देती हैं. इससे ज्यादा पी-एच होने पर मिट्टी खराब होती जाती है. राष्ट्रीय वनसति अनुसंधान संस्थान लखनऊ की डा० कुसुम भारद्वाज और श्री वीरेन्द्र चन्द्र ने एक आसान तरीका निकाला है, जिससे आप खुद ही अपनी मिट्टी का पी-एच पता कर सकते हैं.

इसके लिए 20 ग्राम पिसी हुई हल्दी लें और उसे 250 मिलीलिटर शुद्ध पानी में (डिस्टिल वाटर हो तो ज्यादा अच्छा) 5 मिनट तक उबालें. फिर नये-निकोर कपड़े का 25 सेंटीमीटर चौड़ा और इतना ही लंबा रूमाल जितना टुकड़ा लें और दो दिन यानी 48 घंटे तक हल्दी के घोल में पड़ा रहने दें. इसके बाद निचोड़ कर सुखा लें. फिर इस कपड़े की ढाई सेंटीमीटर लंबी और उतनी ही चौड़ी पट्टियां काट लें. ध्यान रहे कि कपड़ा सफेद रंग का हो और उसमें मांड न लगा हो. इसकी पट्टियों को पोलीथीन की थैली में भरकर उसका मुंह बंद कर दें, ताकि पट्टियां किसी बाहरी चीज के संपर्क में न आएं.

फिर जिस खेत की मिट्टी जांचनी हो उसमें एक भाग मिट्टी और उससे दूना शुद्ध पानी मिलाकर घोल बना लें. अब हल्दी रंगी कपड़े की पट्टी इस मिट्टी के घोल में दो मिनट तक डुबोएं. इसके बाद इसी पट्टी को साफ पानी में डालकर निकाल लें ताकि मिट्टी के कण हट जाएं. अगर पी-एच 7 तक होगा तो पट्टी हलका हरापन लिए पीली रहेगी. जैसे-जैसे पी-एच बढ़ता जाएगा हरापन कम होता जाएगा और नारंगी रंग गहरा होता जाएगा. 9 से ऊपर पी-एच होने पर पट्टी लाल होने लगती है. 10 पी-एच पर हलका नीलापन आ जाता है. इन रंगो का चार्ट भी बना-बनाया आता है जिससे आप तुलना कर सकते हैं.

7 से ऊपर पी-एच बताता है कि आपकी मिट्टी क्षारीय है और उसे सुधारने के लिए जिप्सन का इस्तेमाल करें. पंजाब में करीब दो लाख हेक्टेयर ऊसर मिट्टी सुधारी जा चुकी है और हाल में ही ऊसर विकास के लिए अलग से तकनीकी मिशन बनाया गया है, जो बड़े पैमाने पर पेड़ लगाकर और दूसरे तरीके अपनाकर बंजर जमीनों में हरियाली लाएगा.

'एग्रोसोक' और 'जलशक्ति'

बिगड़ी मिट्टियों की सबसे बड़ी खराबी यह होती है कि या तो वे सारा पानी सोख जाती हैं या बिलकुल भी नहीं सोखतीं. ब्रिटेन की केमिकल्स डिस्कवरी लिमिटेड नामक कंपनी ने 'एग्रोसोक' नामक मिट्टी सुधारने वाला पोलीमर निकाला है. यह अपने वजन से 40 गुना और आयतन से 50 गुना पानी सोख सकता है. रेगिस्तान की बालू में 10 सेंटीमीटर गहराई पर 'एग्रोसोक' के कण मिलाकर पानी सोखने वाली परत बन जाती है. यह परत पानी को तब तक जमाकर के रखेगी जब तक पौधों की जड़ें उन्हें खींच न लें. वैज्ञानिकों ने देखा कि एक घनमीटर बालू में 3 किलोग्राम एग्रोसोक मिलाने से सूरजमुखी के पौधों में 65 प्रतिशत पानी की बचत हुई. एग्रोसोक पानी सोखते समय उसका खारापन भी अलग कर देता है. इसी कंपनी ने एक और पोलीमर बनाया है, 'एरोसेल'. इसे रेगिस्तान की बालू के ऊपर बिछा दें तो पानी रिसकर नीचे तो जाएगा, मगर भाप बनकर ऊपर नहीं उड़ेगा. हमारे देश के वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद की राष्ट्रीय रसायनशाला, पूना में ऐसे ही पोलीमरों का विकास किया है, जो 'जलशक्ति' नाम से उपलब्ध है.

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के वैज्ञानिकों ने फसलों की छीजन से अधिक नाइट्रोजन वाली खाद बनाने का आसान और सस्ता तरीका खोजा है. घास-फूस, पत्ती, टहनियां वगैरह के कूड़े और भूसे में पेनीसिलियम और एस्परजिलस फफूंदी का टीका लगाया जाता है. इससे ऐसी पोषक खाद बनती है जिसमें नाइट्रोजन का अंश 14 से 17 प्रतिशत तक बढ़ जाता है. गेहूं, धान, मक्का और ज्वार तथा बाजरा से हर साल लगभग 14 करोड़ 12 लाख टन भूसा मिलता है. इसी तरह दलहनी फसलों से 1 करोड़ मीटरिक टन छीजन निकलता है. इसमें फफूंदी का टीका लगाकर कम्पोस्ट खाद बनाई जाए तो 7 लाख टन नाइट्रोजन, 8 लाख 40 हजार टन फॉस्फेट और 21 लाख टन पोटाश की पूर्ति की जा सकती है. **एजोटोबैक्टर क्रोकोकम** और **ऐस्परजिलस एवामोरी** के साथ ही रॉक फॉस्फेट का चूरा मिलाने से और भी पोषक खाद बनाई जा सकती है.

उपजाऊ मिट्टी हमारी सबसे कीमती धरोहर है. इसे हमे हर कीमत पर बचाना होगा. हर साल कोई 600 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी बाढ़ के साथ बहकर समुद्र की भेंट हो जाती है. 15 करोड़ हेक्टेयर में मिट्टी का कटाव जारी है. अगर हमने मिट्टी के ऊपर हवा-पानी की मार से बचाने वाली हरियाली की चादर फिर से नहीं डाली तो कहीं ऐसी नौबत न आ जाए कि हमें अपनी फसलों के लिए चन्द्रलोक की मिट्टी लानी पड़े. अमेरिकी कृषि विभाग के दक्षिणी वन आयोग केन्द्र के वनसति विज्ञानी डा० वाल्किनशो ने देखा कि चन्द्रमा से लाई गई चन्द्र धूल जब तम्बाकू के पौधों पर छिड़की गई तो उनकी बढ़वार अच्छी हुई. हमारे लिए तो यही अच्छा होगा कि चन्द्रधूल की प्रतीक्षा न करके अपने देश की माटी का मोल समझें और देश की मिट्टी और ज्यादा खराब न करें. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बांस के बने पानी के पाइप : इस्पात और प्लास्टिक से ज्यादा मजबूत

□ जॉर्ज नाइम्बेला

ग्रामीण-क्षेत्रों में पानी पहुंचाने के लिए तंजानिया ने महंगे, आयातित इस्पात के पाइपों का एक व्यावहारिक विकल्प ढूंढ लिया है. स्थानीय बांस से बनाए गए पानी के पाइप सस्ते भी होते हैं और उनकी उम्र प्लास्टिक या स्टील के पाइपों से कहीं ज्यादा होती है

□ तीसरी दुनिया की तीन-चौथाई आबादी को सामुदायिक जल-पूर्ति मुहैय्या नहीं है क्योंकि ये देश इतने गरीब हैं कि गांव-गांव में पानी के नल नहीं लगा सकते. मगर इनमें से अधिकांश के पास उनके वनों से आसानी से प्राप्त किए जा सकने वाले बांसों से बने पाइपों का विकल्प मौजूद है.

तंजानिया में बांस के पाइप बनाने की पहली परियोजना 1974 में म्वांजा क्षेत्र के कोयेंजे स्थान पर प्रारंभ की गई. इसका मुख्य उद्देश्य आयातित स्टील के पाइपों पर होने वाले खर्च में कमी करना था. इस परियोजना के अग्रदूत तंजानिया के ही जल-पूर्ति इंजीनियर थाबिती लिपांजिले थे. उसके बाद से इन्होंने अपना सारा समय और शक्ति इस प्रणाली को निर्दोष बनाने में ही खर्च किया है.

प्रारंभ में नतीजे ज्यादा उत्साहवर्धक नहीं रहे क्योंकि देश का बांस के पाइपों तथा लकड़ी की टंकियों के डिजाइन और प्रौद्योगिकी से परिचय नहीं था. 1979 में बांस के पानी के नलों, कोमल-लकड़ी के पाइपों तथा टंकियों का तंजानिया के दार-अस-सलाम विश्वविद्यालय में सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया और उन्हें जलपूर्ति के क्षेत्र में व्यावहारिक पाया गया.

इस प्रौद्योगिकी के दार-अस-सलाम विश्वविद्यालय की स्वीकृति मिलने के बाद इंजीनियर लिपांजिले को 'सामग्री परीक्षण प्रमाण-पत्र' मिल गया. इसके बाद परियोजना के निर्माताओं को विभिन्न-प्रकार के पाइप, शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के लिए बड़े पैमाने पर बनाने की प्रेरणा मिली.

वर्तमान में इरिंगा. आरुशा, रुकवा, म्बेया, मोरोगोरो, किलिमंजारो, दोदोमा तथा दार-अस-सलाम क्षेत्रों में लकड़ी और बांस की योजनाएं हैं. लिपांजिले ने, जो कि लकड़ी और बांस परियोजना के मैनेजर भी हैं, हाल ही में बतलाया कि सभी 28 योजनाओं को बदल कर बड़ी और स्थाई परियोजनाओं का रूप दे दिया जाएगा. उन्होंने बतलाया कि अब जो भी नई परियोजनाएं स्थापित की जाएंगी वे सभी स्थाई किस्म की होंगी क्योंकि 14 वर्ष के अनुभव ने हमें बतला दिया है कि समस्याएं और उनके हल क्या हैं.

इस परियोजना को अंतरराष्ट्रीय मान्यता सन् 1979 से मिलना शुरू हुई जब एक डच स्वयंसेवी संस्था ने इंजीनियरों, रसायनविदों तथा वैज्ञानिकों जैसे विशषेज्ञ उपलब्ध करा कर इस परियोजना की मदद करना शुरु किया. इसके बाद डच सरकार ने भी सहायता देनी शुरु की और तबसे अब तक वह 25 लाख तंजानियाई शिलिंगों (लगभग 17 लाख रुपए की मदद रसायनों के अनुसंधान तथा वाहनों की खरीद के लिए कर चुकी है. नार्वे की अंतरराष्ट्रीय विकास एजेंसी (एन॰ ओ॰ आर॰ डी॰) ने 1981 में लगभग 25 लाख रुपए की मदद लकड़ी के पाइप तथा टंकियों के निर्माण के लिए दी. स्वीडन की अंतरराष्ट्रीय विकास एजेंसी एन॰ आई॰.डी॰ ए॰ ने भी विशेषज्ञता, वाहनों तथा खुदरा पुर्जों के रूप में सहायता का प्रस्ताव रखा है. स्वीडन ने 1982 से 1984 के बीच 50 लाख तंजानियाई शिलिंग से ज्यादा की मदद की है. योरोपीय आर्थिक समुदाय (ई॰ ई॰ सी॰) ने 1983 में इरिंगा क्षेत्र में न्याज़वा सिंचाई परियोजना के निर्माण का प्रस्ताव रखा. यह योजना, जिसके अंतर्गत 200 हेक्टेयर में प्याज की सिंचाई होती है, अफ्रीका की पहली लकड़ी से बनी सिंचाई नहर है.

बांस तथा लकड़ी परियोजना के पीछे मूल धारणा उस स्थानीय सामग्री का उपयोग करने की है जो सस्ती और ग्रामीणों को सुलभ है. यह परियोजना सिर्फ 5 प्रतिशत आयातित सामग्री का उपयोग बांस तथा लकड़ी के पाइपों के परिष्कार के लिए कर रही है.

श्री लिपांजिले ने कहा कि अनुसंधान के नतीजे बतलाते हैं कि यदि लकड़ी और बांस का ठीक से परिष्कार किया जाए तो वे पाइप बनाने की किसी भी परंपरागत सामग्री से ज्यादा श्रेष्ठ होते हैं. परिष्कृत लकड़ी/बांस के पाइप औसतन 50 वर्ष चलते हैं जबकि प्लास्टिक के पाइपों की 40 तथा स्टील-पाइपों की उम्र 15 वर्ष की होती है. लागत की दृष्टि से भी ये पाइप सस्ते बैठते हैं. 1974 के बाद से तंजानिया में लकड़ी/बांस के पाइपों का 260 किलोमीटर का संजाल बिछा दिया गया है. इनमें मंगामा की परियोजना जो 1,800 ग्रामीणों को तथा इगुंबिलो-परियोजना, जो 1,500 लोगों को लाभ पहुंचा रही है, भी शामिल हैं. यह दोनों ही गांव इरिंगा क्षेत्र में हैं. पहले से पूर्ण की जा चुकी परियोजनाओं के रख-रखाव के लिए उसका खुद का कर्मचारी-दल है जिसमें कि अधिकांश कर्मचारी उन्हीं गांवों के हैं जो योजना के क्षेत्र में आते हैं. ये कर्मचारी निर्माण तथा मरम्मत करने में सक्षम हैं.

(सप्रेस/थर्ड वर्ल्ड नेटवर्क फीचर्स) □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नत कृषि में पादप कार्यिकी की भूमिका

□ डा० अशोक कुमार गुप्ता

□ अनुमानों के अनुसार लगातार बढ़ती जनसंख्या तथा पशुधन के पोषण के लिए आवश्यक खाद्य, चारे एवं रेशों की कमी इस शताब्दी के अन्त तक भयंकर समस्या का रूप धारण कर सकती है. यदि सारी दुनिया में अनाज के उत्पादन में हर साल 3 प्रतिशत की वृद्धि हो, तभी यह समस्या सुलझाई जा सकती है. इसका अर्थ है कि हमें विगत वर्ष की तुलना में प्रतिवर्ष 5-6 करोड़ टन अधिक अन्न का उत्पादन करना होगा.

आरंभ में सन् 1950 तक उत्पादन में जो भी वृद्धि हो पाई थी वह केवल खेती के लिए अधिक भूमि उपलब्ध किए जाने के कारण हुई थी. इस कृषि क्षेत्र का विस्तार भूमि सुधार करके, व्यर्थ भूमि का उपयोग करके या जंगलों को काटकर संभव हो सका था. किन्तु अब इस प्रकार कृषि क्षेत्र को और बढ़ाना संभव नहीं है क्योंकि इससे प्राकृतिक सम्पदा, विशेषकर जंगलों तथा घास के मैदानों, में कमी होगी और पेड़-पौधे तथा वन्य जीवों की कमी के कारण जैव पारिस्थितिकी असंतुलित होगी.

पिछले 25 वर्षों में सिंचाई साधनों के विकास, जलाशयों तथा भूमिगत जल के उपयोग, आधुनिक संशोधित उर्वरकों, कीटनाशियों आदि के उपयोग से खाद्यान्न, गन्ना, आलू, कपास आदि के उत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति हुई है. पंजाब में गेहूं की पैदावार 1966 से 1976 तक दस वर्षों में तीन गुनी पहुंच गई थी. इसी प्रकार अन्य फसलों का उत्पादन बढ़ाने के भी प्रयास हुए. यद्यपि प्रति इकाई क्षेत्रफल अन्न उत्पादन बढ़ाने की अभूतपूर्व संभावनाएं हैं, पर अभी भी प्रत्येक फसल के औसत अन्न उत्पादन को काटने तथा अनुकूल साधनों में अन्तराल अधिक है. अभी कई फसलों का उत्पादन बढ़ाया जाना शेष है जो पादप कार्यिकीय दक्षता बढ़ा सके जैसे—प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में तेजी लाना, नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सुधार करना, वाष्पोत्सर्जन और प्रकाशीय श्वसन में नियंत्रण रखना, जल तथा पोषक तत्वों का बेहतर उद्ग्रहण, पर्ण-जीर्णता पर नियंत्रण, उत्पादनांक में सुधार, पर्यावरणीय प्रतिबल तथा प्रदूषक-अवरोधी फसल की किस्मों का विकास करना आदि. पादप नियंत्रकों का उपयोग इस कार्य में महत्वपूर्ण होगा.

प्रकाश संश्लेषण

वास्तव में कृषि ही एकमात्र उद्यम है जिसमें सौर ऊर्जा का संचय खाद्य, चारे और रेशे के रूप में होता है. सौर ऊर्जा सबसे बड़ा प्राकृतिक साधन है जिसका हरे पौधे विविध रूपों में संचय करते हैं. लेकिन पौधे अन्तरिक्ष से प्राप्त होने वाली कुल सौर ऊर्जा के दो प्रतिशत से अधिक का उपयोग नहीं कर पाते. अतः इस बात की बहुत आवश्यकता है कि पौधों में कार्बनिक पदार्थों के रूप में अधिक से अधिक सौर ऊर्जा का संचय हो सके और इस प्रकार हमारे खेतों की उत्पादकता बढ़ सके.

कार्बन डाइआक्साइड की उपलब्धि भी प्रकाश संश्लेषण को निर्धारित करती है. कांच गृह में किए गए प्रयोगों से यह पता चला है कि यदि कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा पर्यावरण में 300 प्रति दश लक्षांश (पी पी एम) से 1500 प्रति दश लक्षांश बढ़ा दी जाए तो पौधों की उत्पादन क्षमता में असाधारण वृद्धि हो सकती है. किन्तु खुले मैदान में किसी भी विधि से कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ा कर ऐसा किया जाना संभव नहीं है. एक अन्य अवरोध यह भी है कि पर्यावरणीय कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ा देने पर भी यह पौधों में उस गति से प्रवेश नहीं कर पाती जिस गति से उसे पत्तियों में प्रवेश करना चाहिए, क्योंकि पत्तियों की कोशिकाओं में कार्बन डाइआक्साइड के विसरित होने का प्रतिरोध होता है. इस प्रतिरोध को कम करके ही उत्पादन वृद्धि की आशा की जा सकती है.

प्रकाशीय श्वसन

मक्का, गन्ना, ज्वार आदि कुछ विशिष्ट पौधों के समूह में प्रकाश-संश्लेषण का उत्पादन अन्य पौधों की अपेक्षा अधिक होता पाया गया है. ये पौधे शारीरिक रचना में भिन्न होते हैं, इनकी पत्तियों में विशिष्ट हरितलवक पूलाच्छद कोशिकाओं में होता है. ये C-4 पौधे कहलाते हैं. इन में प्रकाश संश्लेषण का प्रारम्भिक उत्पाद चार कार्बन वाला यौगिक, आक्जेलोएसिटिक अम्ल, होता है. इन में हेक्सोज का संश्लेषण तीव्र गति से होता है और इनमें वृद्धि भी अधिक होती है.

एक और बड़े पौध समूह में जिसमें गेहूं, चावल, दाल, तिलहन और अन्य रेशेदार फसलें शामिल हैं, प्रकाश संश्लेषण का प्रारम्भिक उत्पाद तीन कार्बन वाला यौगिक, ग्लिसरिक अम्ल होता है. ऐसे पौधों में C-3 पथ द्वारा कार्बन डाइआक्साइड के यौगिकीकरण के कारण इन्हें C-3 के पौधे कहा जाता है. C-3 पौधों में प्रकाश संश्लेषण द्वारा प्राप्त प्रारम्भिक उत्पाद प्रकाशीय श्वसन के कारण शीघ्र समाप्त हो जाता है जिससे प्रकाश संश्लेषज का अधिकांश भाग भण्डारण अंगों तक पहुंचने से पहले ही नष्ट हो जाता है. परिणामस्वरूप प्रकाश संश्लेषज का वास्तविक उत्पादन 40-50 प्रतिशत कम हो जाता है. यदि इस क्षति को रोकने का उपाय ढूंढा जा सके तो वह उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से महान उपलब्धि होगी. दूसरी ओर C-4 वर्ग के पौधों में प्रकाशीय श्वसन की अनुपस्थिति में उत्पादकता अधिक होती है किन्तु इनमें सूखे, उच्च ताप तथा उच्च सौर तीव्रता के प्रति अनुकूलनशीलता होती है और ये उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में बहुतायत से पाए जाते हैं. अतः ऐसी प्रजातियों की पहचान करने की आवश्यकता है जिसके द्वारा प्रजनन कार्यों के लिए यह क्षति-दर कम होती हो.

प्रकाशीय श्वसन पर विस्तृत शोध सूचनाएं उपलब्ध हैं. C-3 पौधों में कार्बन डाइआक्साइड का यौगिकीकरण रिबुलोज बाइ फास्फेट कार्बोक्सिलेज एन्जाइम द्वारा होता है. यह एन्जाइम कार्बन डाइआक्साइड या आक्सीजन की उपलब्धता के आधार पर अवसरवादी संयोग करता है. वास्तव में इसमें आक्सीजन से संयोग करने की क्षमता अधिक होती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम यह होता है कि **रिबुलोज बाइ फास्फेट,** कार्बन डाइआक्साइड से संयोग करने की अपेक्षा **फास्फोग्लिसरेट** बनाता है जो बाद में आक्सीजन से संयोग कर एन्जाइम की उपस्थिति में **ग्लाइकोलेट** बनाता है. यह ग्लाइकोलेट अब तीन कोशिकाओं, **हरित लवक, परआक्सीसोम** और अन्ततः **माइटोकान्ड्रिया (सूत्र कणिका)** में पार्श्वपथन करता रहता है. इसके अल्पावास में इसका आक्सीकरण होने से पुनः कार्बन डाइआक्साइड बन जाता है. वायुमण्डलीय कार्बन डाइआक्साइड, जो सौर ऊर्जा के माध्यम से यौगिकीकरण द्वारा संचित हुई थी, अब पुनः वायुमण्डल में वापस लौट जाती है. अतः जो भी प्रकाश संश्लेषज, प्रकाश संश्लेषण द्वारा बना था, वह पुनः प्रकाशीय श्वसन द्वारा व्यर्थ हो जाता है.

ऐसे पौधे, जिनमें प्रकाशीय श्वसन होता है बहुत कम हैं. उन्हें अंगुलियों पर गिना जा सकता है. यह अनुमान किया गया है कि करोड़ों पौधों ने प्राकृतिक चयन द्वारा प्रकाशीय श्वसन जन्मजात अपना लिया है. सम्भवतः इसमें पौधों को आनुवांशिक लाभ मिला है. यदि प्रकाशीय श्वसन एक अर्जित त्रुटि है तो C-3 पौधों में इसकी कमी करना संभव हो सकता है. ऐसे उपाय निश्चय ही उन पौधों में प्रकाश संश्लेषित उत्पाद को बढ़ा देंगे. इस प्रयत्न में C-3 एवं C-4 वाले पौधों के संकरण से अत्यधिक लाभ होता देखा गया है. प्रयोगशालाओं में ऐसे अनुसंधान चल रहे हैं जिनसे C-3 पथ वाले पौधों में प्रकाशीय श्वसन को न्यूनतम किया जा सके.

प्रकाश संश्लेषज का विभाजन

कुछ पौधों में उत्पादन कम होता है—इसलिए नहीं कि उनमें प्रकाश संश्लेषण कम होता है, बल्कि इसलिए कि उन पौधों में प्रकाश संश्लेषण के उत्पाद उनकी शाखाओं एवं पर्णसमूह के निर्माण में लग जाते हैं. अतः ऐसे पौधों में प्रकाश संश्लेषज का बहुत कम अंश फल व बीज के उत्पादन में लग पाता है. इस तरह प्रकाश संश्लेषण के उत्पाद की अल्प मात्रा ही खाद्य सामग्री या उपयोगी भाग को उत्पादित करने के काम में आती है. इसे 'सस्यकर्तनांक' कहते हैं.

इसलिए यह आवश्यक है कि पोषवाह द्वारा उपापचयज के स्थानान्तरण की दिशा को बदलकर उन्हें फसलोत्पादन के लिए उपयोग किया जाए. अभी तक प्रकाश संश्लेषण के उत्पाद का पौधों के जननांगों तथा कायिक वृद्धि की ओर जाने के लिए उत्तरदायी कारणों की ही जानकारी प्राप्त हुई है. यह कार्य पौधे का कौन सा भाग नियंत्रित करता है? तथा इस पर कैसे नियंत्रण किया जाए? यह वैज्ञानिकों को अभी भी समझना बाकी है. यह एक ऐसा क्षेत्र है जो 'सस्यकर्तनांक' को सुधार कर उनमें प्रति-पौध अधिक उत्पादन बढ़ाने में सहायक होगा.

पर्णजीर्णता

पादप कार्यिकी में एक और तत्काल ध्यान देने योग्य क्षेत्र पर्णजीर्णता का है. अनाजों में पराग आ जाने के बाद 10 प्रतिशत से अधिक प्रकाश संश्लेषित उत्पाद दानों के भराव हेतु उपयोग होता है. यह कार्य बालियों (फलियों) के समीपस्थ पत्तियों द्वारा विशेष रूप से होता है. ये पत्तियां प्रकाश संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं. परन्तु इन पत्तियों का क्रियाशील जीवनकाल बहुत कम होता है और ये शीघ्र ही पीली होकर जीर्ण हो जाती हैं. इन पर्णों में उपस्थित पर्णहरित और न्यूक्लिक अम्ल अपघटित हो जाते हैं और उनके बचे हुए पदार्थ अन्यत्र उपयोग में आते हैं. पत्तियों में उपस्थित कुल प्रोटीन का 50 प्रतिशत भाग **रिबुलोज बाइफास्फेट कार्बोक्सिलेज** एन्जाइम ही होता है. जो प्रकाश संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है.

जीर्णपर्ण में यह प्रथम प्रोटीन है जिसका अपघटन होता है और इस प्रकार उस पत्ती के सम्पूर्ण प्रकाश-संश्लेषण को असंतुलित कर देता है. इसी कारण पर्ण-जीर्णता के समय प्रकाश संश्लेषण की कमी इन्हीं विशेष पत्तियों में देखी गई है. पर्ण-जीर्णता के समय पत्तियों में होने वाले उपापचयी परिवर्तनों पर बहुत से शोध कार्य चल रहे हैं. वैज्ञानिक प्रयासरत हैं कि यदि इस जीर्णता को हार्मोन के प्रभाव से विलंबित किया जा सके, तो प्रकाश संश्लेषण के अतिक्रियाशील कार्य को देर तक करते रहने से उत्पादन बढ़ाने में लाभकारी परिणाम मिल सकता है.

पोषक खनिज

पादप कार्यिकी में विभिन्न पोषक खनिजों के कार्य को भलीभांति समझने तथा उनके समुचित उपयोग से आधुनिक कृषि में क्रान्ति आई है. इस ज्ञान के कारण ही उर्वरक का सही समय एवं सही मात्रा में उपयोग करना संभव हो सका है. खनिज पोषकों की उपलब्धता तथा पौधों द्वारा उनके उद्ग्रहण को भलीभांति समझने तथा पौध वृद्धि के निश्चित व विशेष समय पर उर्वरक की आवश्यकता की पूर्ति करने से उत्पादन बढ़ सकता है. फसल की विभिन्न किस्मों द्वारा खनिज पोषकों का उद्ग्रहण उनमें जड़ों (मूल) के विकास पर निर्भर करता है. मूल वृद्धि तथा मूल-उद्ग्रहण क्षमता में सुधार लाने पर अभी कम शोध कार्य हुए हैं. मूल उद्ग्रहण दक्षता बढ़ाने का एक उपाय है **माइक्रोरिजी** नामक जीवाणु. इसके द्वारा जड़ों में संक्रमण पैदा कर उनके उद्ग्रहण क्षेत्र को बढ़ा कर जड़ों की उद्ग्रहण दक्षता बढ़ाई जा सकी है.

नाइट्रोजन स्थिरीकरण

कृषि क्षेत्र में नाइट्रोजन युक्त उर्वरक सबसे मंहगे हैं पर अनाजों के उत्पादन को बहुत प्रभावित करते हैं. पैट्रोलियम ही औद्योगिक अमोनिया के उत्पादन का एक मात्र साधन है जिससे उर्वरक बनाया जाता है. यह एक अपुर्नवीकरणीय जीवाश्म ऊर्जा स्रोत है, जो अनुमानतः शीघ्र समाप्त हो जाएगा. दूसरी ओर राइजोबियम जीवाणु, एक्टिनोमाइसिटीज, नील-हरित शैवाल आदि पौधों के साथ वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण (स्थिरीकरण) करते हैं.

नील-हरित शैवाल तो स्वंय नाइट्रोजन यौगिकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान देती है. नील-हरित शैवाल द्वारा 15-17.5 करोड़ टन नाइट्रोजन का यौगिकीकरण प्रतिवर्ष होता है जो सम्पूर्ण औद्योगिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण से 4-5 गुना अधिक है. मूल ग्रन्थियों में उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राइज़ोबियम सबसे महत्वपूर्ण कार्य करता है. यद्यपि प्रायः सभी दाल वाली फसलों में मूल ग्रन्थियां पाई जाती हैं, पर इनमें भी जाति के अनुसार नाइट्रोजन की यौगिकीकरण दक्षता अलग-अलग होती है. दूसरे इन ग्रन्थियों का क्रियाशील जीवनकाल प्रायः बहुत कम होता है केवल कुछ सप्ताह ही. गुलाबी रंग की मूल ग्रन्थियां क्रियाशील रहती हैं और अल्प समय में ही हरे-भूरे रंग में बदल जाती हैं तथा यौगिकीकरण कार्य बन्द कर देती हैं. यदि इन ग्रन्थियों के जीर्ण काल में किसी प्रकार विलम्ब कर दिया जाए तो इसका भी लाभकारी परिणाम मिल सकता है. ग्रन्थियों में कार्य करने वाले एन्जाइम तथा पोषी एवं राइजोबियम के संबंध को वैज्ञानिकों ने भलीभांति समझ लिया है. ग्रन्थियों द्वारा नाइट्रोजन यौगिकीकरण में नाइट्रोजिनेज नामक एन्जाइम बहुत महत्वपूर्ण है. मृदा में बातन कमजोर होने पर नाइट्रोजन की उपलब्धता प्रभावित होती है. इलेक्ट्रोन जो नाइट्रोजन के अवकरण में काम आता है वह अब प्रोटोन से संयोग करके हाइड्रोजन बनाता है. परिणामस्वरूप ग्रन्थियां नाइट्रोजन के यौगिकीकरण के बजाए हाइड्रोजन निष्कासित करने लगती हैं. इस अनुपयोगी कार्य को कम करके नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि करना संभव हो गया है.

प्रश्न है, क्या ग्रन्थियां अपनी नाइट्रोजन आवश्यकता को स्वयं पूरा कर लेती हैं? क्या उत्पादन बढ़ाने के लिए उर्वरक के रूप में नाइट्रोजन देना आवश्यक है? सामान्यतः 10-20 किलोग्राम कार्बोहाइड्रेट एक किलोग्राम नाइट्रोजन यौगिकीकरण के लिए आवश्यक होता है. अतः पोषी पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण की पूर्ति नाइट्रोजन यौगिकीकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य है. कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ाने से मूंगफली तथा सोयाबीन में प्रकाश संश्लेषण में वृद्धि हुई. इससे उनमें अधिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण हुआ.

सबसे आदर्श अवस्था यह हो सकती है कि जहां उच्चकोटिक-पादप नाइट्रोजन की स्थिरीकरण क्षमता रखता है, वहीं जीवाणु की भी वह मदद कर सकता है. शोध कार्य द्वारा यह प्रयत्न भी किया गया है कि नाइट्रोजन स्थिरीकरण में काम आने वाले जीन को राइजोबियम से निकाल कर पौधों में स्थानान्तरित किया जाए. हालांकि अभी भी इस क्षेत्र में बहुत काम करना शेष है.

प्रतिबल कार्यिकी

पादप कार्यिकी वैज्ञानिक अत्यन्त उत्सुक हैं कि पादप वृद्धि को नियंत्रित करने वाले पर्यावरणीय प्रभावों को समझा जाए. पर्यावरणीय चरमावस्था में, जैसे पानी की कमी, खनिज लवणों का जमाव, उच्च व न्यून ताप, पर्यावरणीय प्रदूषकों का जमाव आदि से पौधे किस प्रकार अनुक्रिया देते हैं उन्हें समझना व सुधारना अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं.

जल प्रतिबल : कृषि में जल सबसे महत्वपूर्ण है. कृषि उत्पादन जल उपलब्धता पर निर्भर है. दुर्भाग्यवश पौधे जल की अधिक मात्रा अवशोषित करते हैं पर उसमें से 98 प्रतिशत जल को वाष्प के रूप में उड़ा देते हैं. अतः पादप कार्यिकी विशेषज्ञों के समक्ष चुनौती है कि वे इस व्यर्थ होने वाले जल की रक्षा कर कम से कम जल में सफलतापूर्वक फसल उगा सकें.

रंध्राकाश कार्यिकी पर शोध कार्य करते समय पौधों पर प्रतिवाष्पोत्सर्जकों का छिड़काव करके बहुत उत्साहवर्धक परिणाम देखे गए हैं. यद्यपि अभी सस्ते तथा निराविषी और दीर्घस्थाई प्रतिवाष्पोत्सर्जकों की खोज नहीं हो सकी है.

वैसे तो विभिन्न फसलों में ऐसी किस्मों के विकास एवं प्रसार की मांग है जो नमी के अवरोधी हो और सूखे की स्थिति में भी उत्पादन क्षमता रखते हों. अतः पादप कार्यिकी विज्ञानी तथा पादप प्रजनक मिलकर फसलों की ऐसी किस्मों का विकास करें जो जल के अवरोधी हों तथा सूखे की स्थिति में भी उत्पादन क्षमता रखते हों. जब पौधों में जल अवशोषण तथा आकाशीप्ररोह द्वारा वाष्पोत्सर्जन से जल अपव्यय में सामंजस्य नहीं रह पाता तब पौधों में जल की कमी के लक्षण दिखाई पड़ते हैं. परिणामस्वरूप पादप वृद्धि तथा उत्पादन में कमी स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती है. अतः यह आवश्यक है कि जीन प्रणाली के कार्य को सुधार कर बढ़ाया जाए जिससे मृदा की नमी को पौधे निचले संस्तर से प्राप्त कर सकें और उस शोषित नमी को संजोकर अपनी कोशिकाओं की उपापचयी क्रिया हेतु उपयोग कर सकें.

कृषि में मुख्य उपलब्धि हुई है 'बारानी खेती' से कुछ फसलें सीमित जल उपलब्धता में भलीभांति उगाई जा सकती हैं, कुछ नहीं. सूखे जैसी विषम परिस्थितियों में भी फसल का उत्पादन किस प्रकार हो सकता है पादप कार्यिक विज्ञानी इस प्रश्न के उत्तर की खोज में लगे हैं.

नहर द्वारा सिंचाई साधन ने मृदा के जल-संस्तर को उठा कर मृदा की उर्वरता को नष्ट भी किया है जिसके कारण कई स्थानों पर मृदा में लवणता का जमाव हुआ है. कुछ फसलें जल भराव की स्थिति में अच्छी उगती हैं जैसे धान, पर अनेक फसलें जैसे मक्का, ज्वार, दालें आदि कुछ घंटों के जल भराव में भी नष्ट हो जाती हैं. ऐसी विषम परिस्थितियों में पौधे अपनी उपापचयी क्रिया को संतुलित रख सकें ऐसे उपाय के लिए कृषि वैज्ञानिक कार्यरत हैं क्योंकि यही कारक कृषि उत्पादन को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं. समुचित तथा समयानुकूल सिंचाई तकनीक द्वारा इन विषम परिस्थितियों में अब फसलें उगाई जा रही हैं पर अभी भी वैज्ञानिकों के समक्ष पूर्ण सफलता प्राप्त करने की चुनौती है.

लवण प्रतिबल : पौध-वृद्धि के लिए खनिज पोषकों की आवश्यकता होती है परन्तु इनकी अधिकता भी हानिकारक होती है. गंगा के तराई क्षेत्र के बहुत से भागों में भूमिगत जल संस्तर ऊपर होने के कारण मृदा तीव्र गति से लवणीय होती जा रही है. अनुमान किया गया है कि भारत में लगभग 0.7-1.2 करोड़ हेक्टेयर भूमि की मृदा लवणीय है. प्रत्येक वर्ष हजारों हेक्टेयर भूमि लवण की अधिकता के कारण खेती से छिनती जा रही है. लवणता पौध वृद्धि के लिए घातक है, क्योंकि परासरणी प्रतिबल, तत्वों की आपनों की विषालुता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लवणता उनमें पोषक असंतुलन पैदा कर देती है. अतः कोशिका भित्ति द्वारा अवशोषण और जीवद्रव की भौतिक दशा को ढंग से समझना होगा. अभी इस क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ना है, जिससे लवण की सांद्रता से पौधों में हानि को भलीभांति समझा व रोका जा सके.

रासायनिक नियंत्रण

पादप कार्यिकी का सबसे अधिक व्यावसायिक उपयोग पादप-हार्मोन तथा वृद्धि नियंत्रकों द्वारा हुआ है. ये अत्यल्प मात्रा में भी पौधों में अभूतपूर्व परिवर्तन ला देते हैं. कार्यिक वृद्धि, पुष्पन, मूलवृद्धि, तनाकर्तन, फल पकने, फूल लेने तथा अपतृण नियंत्रण आदि में इन रसायनों का भरपूर उपयोग होता है. इनके द्वारा पौधों की कई समस्याओं का समाधान हुआ है तथा उन पर नियंत्रण संभव हो सका है. अभी भी इसमें असीमित सम्भावनाएं हैं जिसे विश्व के वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं.

अनेक फलदार तथा इमारती लकड़ी वाले पौधे बीज द्वारा उत्पन्न होने पर बहुत कम बढ़ते हैं तथा उनके द्वारा उत्पन्न पौध अपने वंशजीय पौधों से भिन्न हो जाते हैं. उनमें वंशानुगत फलों की किस्में कम अच्छी होती हैं. यह अन्तर उनमें असमान संकरण के कारण होता है. इस समस्या का हल कार्यिक प्रवर्धन द्वारा हुआ है जिसमें तनों के कर्तन में जड़-वृद्धि द्वारा पौध उगाया जाता है. सभी तनों को मृदा में उगाए जाने पर जड़े अच्छी तरह नहीं आतीं परन्तु उनके कर्तनों को संश्लेषित 'आक्सिन' जैसे **एन ए ए** तथा **आई पी ए** के 100-500 पी पी एम के घोल में डुबाने से जड़ें जल्द ही अच्छी प्रकार विकसित हो जाती हैं और जल्द ही सम्पूर्ण पौधा का रूप ले लेती हैं. इस प्रकार के कई जड़-प्रेरक पदार्थ अब बाजारों में उपलब्ध हैं हालांकि इनका उपयोग अभी उद्यान-विज्ञान तक ही सीमित है.

अंकुरण तथा पुष्पन का नियंत्रण

आलू एवं प्याज की खपत पूरे वर्ष होती है. जब इसका भंडारण किया जाता है तब इनमें अंकुरण के कारण जड़ें निकल आती हैं. जिससे इनके भार व गुणवता में बहुत कमी आ जाती है. आलू के कंदों में **एन ए ए** के मिथाइल एस्टर **एम ई एन ए** जो एक आक्सिन है, के उपयोग से उनमें अंकुरण रुक जाता है. प्याज को भी **मेलिक हाइड्राजाइड** से उपचार करके उनके अंकुरण को रोका जा सकता है. **मेलिक हाइड्राजाइड** का अन्य सब्जियों में भी उपयोग किया जाता है जैसे—गाजर व चुकन्दर.

तम्बाकू में शीर्ष-कर्तन एक सामान्य पद्धति है जिससे पत्तियों के गुणों में सुधार होता है. पर इस कार्य में कई पार्श्व कलिकाएं चूषक का कार्य करती हैं. इसके प्रभाव से पत्तियों के गुणों में कमी होती है. हाथ से इन चूषकों को निकालना दुष्कर कार्य है. मेलिक हाइड्राजाइड जो कोशिका विभाजन को अवरुद्ध करता है इन चूषकों का दमन करता है. गन्ना में फूल आने से 10-20 प्रतिशत शर्करा में कमी आ जाती है, पर **मोन्यूरॉन** तथा **डाईयूरॉन** द्वारा फूल आने से (पुष्पन को) रोका जा सकता है. इससे ईख में शर्करा की सांद्रता बढ़ाई जा सकती है.

अनन्नास में पुष्पन एक समान नहीं होता. पुष्पन के अनुसार उसमें पैदावार होती है. एन ए ए के उपयोग से अनन्नास में भरपूर तथा समान पुष्पन होता है जिसके कारण उनमें सामान आकार के फल आते हैं तथा एक साथ पकते हैं. अभी हाल में ही **इथेफॉन** बाजारों में आया है जो इथिलीन मुक्त करने वाला पदार्थ है. पुष्पन बढ़ाने के लिए इसका बागों में उपयोग किया जाता है.

सेब, आम एवं अन्य फलों में विलगन पर्त के आ जाने से फलों के पकने से पहले झड़ने की समस्या रहती है जिससे कृषकों को इन फसलों में बड़ी हानि होती है. इस हानि को **एन ए ए** का छिड़काव करके रोका जाता है. इसी प्रकार नींबू वर्गीय पौधों में भी पूर्व सस्यकर्तन के समय फल गिरने से होने वाली क्षति को **2,4-डी** के उपयोग से रोका जा सकता है.

अपतृण नियंत्रण

पादप वृद्धि नियंत्रक का कृषि में सर्वाधिक उपयोग खर पतवार या अपतृण के नियंत्रण में किया जाता है. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद रासायनिक उद्योगों ने इस कार्य हेतु अनेक अपतृणनाशी रसायनों का विकास किया है. कोई भी अपतृणनाशी रसायन किसी न किसी पौधे पर प्रभावी होता है. झाड़ीदार पौधे, वार्षिक, चौड़ी पत्ती वाले तथा अन्य घासें किसी विशिष्ट अपतृणनाशी द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं. अब अपतृणनाशी के उत्पादन से विश्व में करोड़ों डालर का व्यापार होता है. **साइकोसेल** का उपयोग उत्तरी योरोप में गेहूं के पतन को रोकने तथा सम्पूर्ण विश्व में रबर के **लेटेक्स** के रिसाव-वर्धन बढ़ाने के लिए अत्यधिक प्रचलित हो गया है.

इस प्रकार पादप कार्यिकी ने कृषि को सुधारने में काफी योगदान तो दिया है पर अभी बहुत कार्य करना शेष है. वैज्ञानिकों को प्रत्येक क्षेत्र में ठोस परिणाम मिलने के आसार नजर आ रहे हैं. कृषि, पादप कार्यिकी, जीव रसायन, पर्यावरण, परिस्थितिकीय वैज्ञानिकों के समन्वित प्रयास से ही निकट भविष्य में प्रति इकाई भूमि से अत्यधिक पैदावार लेने में हम सक्षम हो जाएंगे. जीन प्रतिरोपण, ऊतक संवर्धन, जैव प्रौद्योगिकी ने इस दिशा में नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं. पादप कार्यिकी ने वैज्ञानिकों को पौधों की आवश्यकताओं, अनुकूलनशीलता एवं व्यवहार को समझने में भी बहुत सहायता पहुंचाई है और अब इसका फायदा किसानों को मिलने लगा है. □

अंतरिक्ष की ऊंचाइयां और जीवन की गहराइयां

□ **हरीश अग्रवाल**

बीता साल विश्व विज्ञान के लिए चमक-दमक वाला रहा. अंतरिक्ष की खोज के लिए अनेक उड़ाने हुईं तो जीवन के रहस्यों की खोज के लिए अनुसंधान किए गए. दोनों को गहराई से देखने के प्रयत्न किए गए. साल-भर की अखबार-कतरनों से देखने से पता चलता है कि जनवरी से लेकर दिसम्बर तक कोई न कोई महत्वपूर्ण घटना घटती रही.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष की पहली तिमाही में अमेरिकी खाद्य विशेषज्ञों ने ऐसे खाद्य पदार्थ बनाने की घोषणा की जिनसे रोग न हों. ऐसा भोजन बने जिसमें कोलस्टरोल और वसा न हो. संसार के करोड़ों मोटे लोगों के सामने ऐसा भोजन न छूने की समस्या है. खाद्य विशेषज्ञों ने ऐसे दो पदार्थ बनाने की घोषणा की जो वसा की तरह है, लकिन उनका असर उल्टा है. उनका स्वाद वसा-जैसा है.

मार्च के शुरू में ही स्विटजरलैंड के एक वैज्ञानिक दल ने आनुवांशिक इंजीनियरी द्वारा जीवन काल बढ़ाए जाने की घोषणा की. पहले प्रयोगों में एक कीड़े का जीवनकाल बढ़ाया गया. उन्होंने एक प्रोटीन का इंजेक्शन देकर उसे सक्रिय जीवन दिया यानी बुढ़ापे की प्रक्रिया में बाधा डाली गई.

मार्च के अंत में एक भारतीय चिकित्साविद् प्रो० वी० रामलिंगस्वामी ने नैरोबी के एक सम्मेलन में बताया कि संसार में दो अरब से ज्यादा लोग ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं, जिन्हे मलेरिया होने का डर है. अस्सी के दशक में बाल स्वास्थ्य सुधार में कोई प्रयत्न नहीं हुए. उन्होंने नब्बे के दशक के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत निराशाजनक भविष्य बताया.

गर्माती धरती के बारे में कड़ी बहस जारी रही. अप्रैल में 17 देशों के पर्यावरण, विज्ञान तथा वित्तमंत्रियों ने राय प्रकट की कि धरती इतनी ज्यादा गरम नहीं होगी जितनी आशंका प्रकट की जा रही है. राष्ट्रपति बुश ने भारत तथा अन्य देशों से अपील की कि वे जलवायु परिवर्तन पर गहराई से अध्ययन करें और यह भी बताएं कि इस समस्या से सुलटने के लिए कितने धन की जरूरत होगी.

वास्तव में जलवायु परिवर्तन के डर से त्रसित संसार के बारे में वैज्ञानिकों में इतनी लंबी बहस चली कि यह पूरे एक लेख का विषय हो सकती है. अमेरिका अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने जो निष्कर्ष निकाला उससे उसी के वैज्ञानिकों को आश्चर्य हुआ. निष्कर्ष था कि गत दशक में 'ग्रीनहाउस प्रभाव' से पृथ्वी गरम नहीं हुई है. टायरोस-एन मौसम उपग्रहों से 1979 व 1988 के बीच जो अध्ययन किए गए उससे यह निष्कर्ष निकाला गया. इस निष्कर्ष का महत्व इसलिए और भी बढ़ गया क्योंकि यह दशक सबसे गरम दशक माना गया था.

जेनेवा में अक्तूबर में संयुक्त-राष्ट्र संघ ने एक बड़ा सम्मेलन किया जिसमें कहा गया कि एक दूसरे की तरफ उंगली उठाने से क्या फायदा जबकि हम सबका दम घुट जाएगा (गरमाती धरती के कारण). इस सम्मेलन में 137 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया. इन देशों के वैज्ञानिकों और अधिकारियों ने कहा कि अगली शताब्दी में पृथ्वी की जलवायु असाधारण गति से बदलेगी, समुद्रों की सतह ऊंची हो जाएगी और निचले तटीय इलाके तथा द्वीप-राष्ट्र डूब जाएंगे.

'न्यूजवीक' ने भविष्यवाणी की कि ग्रीनहाइस गैसें कम करने के लिए एक नई अंतरराष्ट्रीय संधि होगी तथा गरीब देशों के नेताओं के लिए पर्यावरण की चिंता राजनीति का मुद्दा बन जाएगी. वर्ष के मध्य से अंत तक अंतरिक्ष अनुसंधान से लेकर जीव विज्ञान में कई महत्वपूर्ण घटनाएं घटी.

आदमी के बिना अंतरिक्ष यान ग्रहों तथा तारों की खोज के लिए भेजे गए. नासा का वॉयजर-1 यान 1977 में छोड़ा गया था, जिसने सुदूर अंतरिक्ष में जाते हुए सौरमण्डल के चित्र लिए. नासा ने इन असाधारण चित्रों को प्रकाशित किया. पहले किसी भी अंतरिक्ष यान ने ग्रहों के ऐसे साफ चित्र नहीं लिए.

वॉयजर-2 ने भी साल में ऐसे चित्र भेजे, जिन्हें देखकर वैज्ञानिक दंग रह गए. इसकी यात्रा नेप्च्यून ग्रह (वरुण) के पास जाकर समाप्त हुई. इसने 2.8 अरब मील दूर से इस ग्रह और उसके चंद्रमाओं के चित्र भेजे. कहा गया कि वॉयजर मिशन से वैज्ञानिकों को 10 अरब सूचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं. इन्हें छापा जाए तो एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के छह हजार सेट भर जाएंगे.

जुलाई से नासा के बारे में कुछ निराशाजनक समाचार आने शुरू हो गए. चार साल पहले चेलेंजर दुर्घटना के बाद से गत वर्ष नासा के सामने अन्य संकट आ खड़े हुए. डेढ़ अरब डालर की लागत से जो हब्ल टेलिस्कोप छोड़ा गया था, उसकी 'आंख' में कुछ खराबी हो गई. अंतरिक्ष शटल बेड़े की सभी उड़ाने अनिश्चितकाल के लिए स्थागित कर दी गई. अमेरिकी कांग्रेस के सदस्यों में नासा के प्रति आस्था डिगने लगी. वे कहने लगे कि बहुमूल्य अमेरिकी डालर क्यों खराब किए जाएं.

हबल और शटल के चक्कर में फंसे वैज्ञानिक हबल टेलिस्कोप को किसी प्रकार ठीक करने की योजना बनाते रहे. 1610 में गेलीलिओ द्वारा टेलिस्कोप के आविष्कार के बाद हबल का छोड़ा जाना सबसे महत्वपूर्ण घटना थी. इससे आशा की गई कि यह ब्रह्माड के सभी रहस्यों का उद्घाटन कर देगा.

अप्रैल से जो निराशा शुरू हुई थी, अक्तूबर में जाकर वह उस समय कम हुई जब टेलिस्कोप ने तारों और आकाश गंगाओं के कुछ ऐसे चित्र भेजे, जैसे अब तक खगोलविदों को मिले ही नहीं थे.

टेलिस्कोप ने वर्ष बीतने के पहले ही खुशी के समाचार दिए. हमारी आकाशगंगा के पड़ोस में एक आकाशगंगा में कुछ नए तारों के 'पालना' का पता लगा इनके कुछ तारे तो सूर्य से दस लाख गुना चमकीले तथा सैंकड़ों गुना अधिक बड़े समझे जाते हैं. खगोलविदों का विश्वास है कि इन नवतारों के अध्ययन से तारों के उद्भव की प्रक्रिया समझी जा सकेगी क्योंकि इस प्रकार के समूह ब्रह्माडीय 'नर्सरी' समझे जाते हैं, जहां तारों का जन्म और पोषण होता है.

अगस्त में विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट में बताया गया कि एशिया में एड्स तेजी से फैल रहा है. भारत में भी यह महामारी का रूप धारण कर रहा है. कहा गया कि जून में सारे देशों में एड्स के 60 से 80 लाख रोगी बताए गए थे, लेकिन अब (गत अगस्त) 80 लाख से एक करोड़ लोग इस रोग से ग्रसित हैं. एशिया की हालत खराब होती जा रही है क्योंकि गत दो साल में ही रोगियों की संख्या शून्य से पांच लाख तक पहुंच गई है.

एक अध्ययन में यह भी बताया गया कि दक्षिण भारत में जो वेश्याएं बंबई में आ गई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं, उनमें से 70 प्रतिशत को एड्स हो गया है. अगले दशक में एशिया भी अफ्रीका बन जाएगा, जहां सबसे पहले एड्स रोग शुरु हुआ और जहां अब भी हालत गंभीर है.

रिपोर्ट में कहा गया कि नब्बे के दशक में संसार में 30 लाख महिलाएं और बच्चे एड्स के कारण मरेंगे.

अब तक अनेक लोग अन्य ग्रह के निवासियों में विश्वास करते हैं. सितम्बर में मास्को से समाचार आया कि इसी तरह के तीन प्राणी एक निर्जन सोवियत गांव में उतरे. इनकी बांहें लंबी थी और उनके तीन-तीन टांगे थी. स्थानीय पृथ्वीवासियों को पूरा विश्वास हो गया कि अन्य ग्रहों पर हमारी तरह की सभ्यताएं हैं. ये तीनों प्राणी अपनी उड़न-तश्तरी में बैठकर उड़ गए हैं.

अंतरिक्ष में प्रयोग करने और अन्य ग्रहों पर बसने की आकांक्षा आदमी के मन में आदिकाल से रही है. लेकिन अपनी धरती पर दूसरी धरती बनाने का विचार कुछ अनोखा ही है. ऐसा ही एक प्रयोग अमेरिका में सितम्बर मास में शुरू किया गया. एरिजोना के रेगिस्तान में बनाई गई नई पृथ्वी का नाम बायोस्फीयर-2 रखा गया. इसमें आठ स्वयंसेवकों ने प्रवेश किया. वे दो साल तक इसके विशिष्ट वातावरण में रहेंगे. इसका पर्यावरण, मौसम प्रकृति आदि अलग है. केवल पृथ्वी की धूप और सूचनाएं अंदर जाएंगी. इन पंक्तियों के लिखे जाने तक बायोस्फीयर-2 के बारे में कोई समाचार नहीं मिला है.

हबल टेलिस्कोप भेजकर नासा का दिल नहीं भरा था. अक्तूबर में उसने एक वैज्ञानिक अंतरिक्ष यान 'यूलीसिस' अंतरिक्ष शटल डिस्कवरी के द्वारा छोड़ा. इससे नासा की छवि में कुछ सुधार हुआ. सूर्य के ध्रुवीय क्षेत्रों पर चक्कर काटने वाला यह अपने आप में पहला यान है. सूर्य के ऊपर अपेक्षित कक्षा प्राप्त करने के लिए यूलीसिस पहले बृहस्पति ग्रह की ओर जा रहा है, जहां वह ग्रह का गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र का इस्तेमाल कर सूर्य के ध्रुवों के ऊपर पहुंचने में सफल होगा. यह मिशन पांच साल का है.

वर्ष 1990 में एक और महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य शुरू हुआ. यह था आदमी के अंदर की निर्माण इकाइयों की खोज जिसे हम 'जेंनोम'' कहते हैं. कई वर्ष तक चलनेवाला यह असाधारण अनुसंधान आदमी की कोशिकाओं, क्रोमोसोमो और घुमावदार डी एन ए पर किया जाएगा. यही सब हमारे रोगों और यहां तक कि जीवन के आधार हैं. इस अनुसंधान योजना पर तीन अरब डालर खर्च होंगे और यह सन् 2005 तक पूरी होगी.

और अंत में एक पत्रकार ने अंतरिक्ष में जाने के लिए नाम कमाया. इससे सिद्ध हुआ कि अंतरिक्ष में जाने के लिए किसी प्रशिक्षण की जरूरत नहीं है, आम आदमी भी यात्रा कर सकता है. यह पत्रकार जापानी वीडियो कंपनी का था. इसने अंतरिक्ष से 'मौके' पर जाकर इंटरव्यू दिए. लेकिन शायद इस पत्रकार की पहली यात्रा सुखद नहीं रही. उसने यात्रा के दौरान अपनी पत्नी को संदेश भेजा—'मैं पूरी तरह ठीक नहीं हूं. मैं कुछ अजीब अनुभव कर रहा हूं'

□

बेन्जीन के अब सात समावयव

□ डा० महेश कुमार शर्मा

□ अमेरिका में टेक्सास की ह्यूस्टन स्थित राइस यूनीवर्सिटी में बेन्जीन के रासायनिक सूत्र के समान तीन और नए अणुओं की खोज पिछले वर्ष की गई. इन नए अणुओं में परमाणुओं का विन्यास (अरेन्जमेंट) बेन्जीन से भिन्न पाया गया है. इस प्रकार बेन्जीन के कुछ ज्ञात समावयवों (आइसोमर्स) की संख्या अब सात हो गई है. वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इसके साथ ही रासायनिक सूत्र C_6H_6 के सभी संभव समावयवों का पता लगा लिया गया है.

छः कार्बन परमाणुओं और छः हाइड्रोजन परमाणुओं का केवल बेन्जीन ही स्थायी विन्यास है. इस अणु में एकल व द्विक बंध (सिंगल एण्ड डबल बौंड) एकान्तर (आल्टरनेट) रूप में होते हैं. यद्यपि रसायनज्ञों को इसकी संरचना का ज्ञान सौ से भी अधिक वर्ष पहले से था परन्तु बेन्जीन के अणु का चित्र अभी हाल ही में खींचा गया है. कैलिफोर्निया के आई बी एम एल्माडेन रिसर्च सेन्टर के वैज्ञानिकों ने अवलोकन सुरंगी सूक्ष्मदर्शी (स्कैनिंग टनेलिंग माइक्रोस्कोप) के इस्तेमाल से यह दर्शाया है कि बेन्जीन के अणु में छः कार्बन परमाणु मुद्रिका (रिंग) के रूप में व्यवस्थित होते हैं.

माइकल फैराडे ने 1825 में उन सिलिंडरों में बेन्जीन की खोज की थी जिनमें ऐसीटिलीन गैस को रखा गया था. इसका नामकरण आगस्ट कैकुले ने किया था जिन्होंने 1865 में इसकी संरचना प्रस्तावित की थी. उन्होंने दावा किया था कि ग्रीष्म ऋतु की एक शाम को क्लैफाम ओमनीबस में सफर करते हुए उन्हें झपकी आ गई थी और उन्होंने स्वप्न में बेन्जीन की संरचना की कल्पना छः सांपों को देखकर की थी. परन्तु उनका यह दावा अब विवादास्पद माना जा रहा है.

सन् 1867 में जेम्स डेवार ने एक दूसरी संरचना प्रस्तावित की थी (चित्र—1). इस संरचना की प्रामाणिकता 1963 में सिद्ध हुई थी, जब यह अणु वास्तव में निर्मित किया गया था. रसायनज्ञों ने अन्य संरचनाएं भी प्रस्तावित की हैं, जैसे बेन्जवैलीन जिसे 1967 में संश्लेषित किया गया था और प्रिजमैन जिसे 1973 में बनाया गया था. C_6H_6 के अन्य संभावित समावयव द्विक-मुद्रिका (डबल-रिंग) अणु है जिन्हें बाइसाइक्लोप्रोपिनाइल्स कहा गया. इनके जीन समावयव हैं : 1, 1; 1, 2; और 2, 2. इनमें केवल द्विक-बंध की स्थिति के कारण ही भेद है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

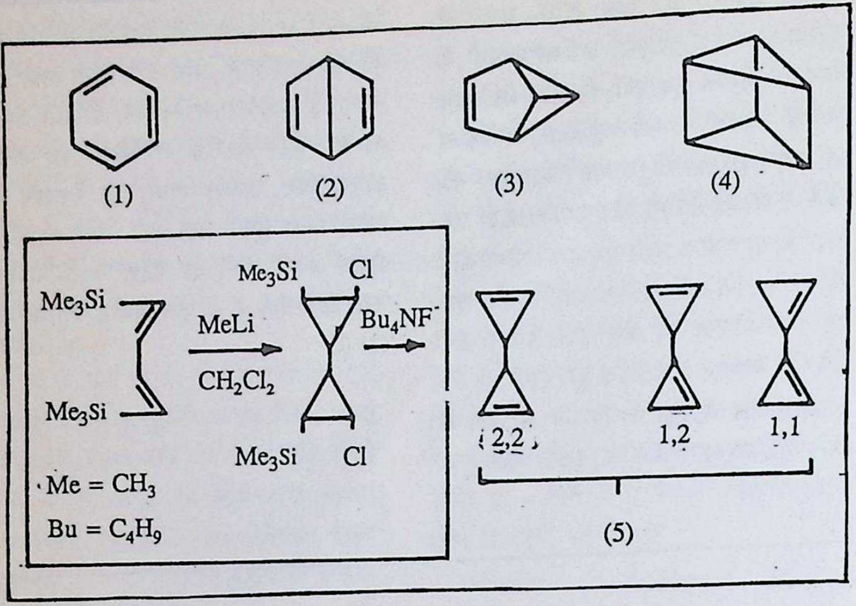

चित्र–1. बेन्जीन के सात समावयव और बाइसाइक्लोप्रोपिनाइल्स का संश्लेषण
(1) बेन्जीन, (2) डेवार बेन्जीन, (3) बेन्जवैलीन, (4) प्रिजमैन तथा (5) तीन बाइसाइक्लोप्रोपिनाइल्स

राइस यूनीवर्सिटी के बिल्बर बिलप्स तथा माइकेल हैली ने हाल ही में बाइसाइक्लोप्रोपिनाइल के 2, 2 तथा 1, 2 समावयवों का निर्माण किया है. उन्होंने 1, 1 समावयव को भी बनाने का दावा किया है परन्तु इसकी पूर्ण जानकारी अभी उन्होंने अभी नहीं दी है.

बिलप्स और हैली ने बाइसाइक्लोप्रोपिनाइल (2, 2) यौगिक, 1, 4 बिस (ट्राइमिथाइल सिलाइल) ब्यूटा-1, 3-डाईन से संश्लेषित किया है (चित्र-1). पहले उन्होंने इस पदार्थ की मियाइल लिथियम व डाइक्लोरोमीथेन से क्रिया करवाई. इसके बाद ट्रेट्रा-एन-ब्यूटाइल अमोनियम फ्लोराइड से क्रिया करने पर बाइसाइक्लोप्रोपिनाइल (2, 2) यौगिक प्राप्त हुआ. इस पदार्थ की उपलब्धि 45 प्रतिशत पाई गई.

इस नए समावयव को पहचानने के लिए, इन वैज्ञानिकों ने न्यूक्लीय चुम्बकीय सेक्ट्रमदर्शी (न्यूक्लिअर मैग्नेटिक सेक्ट्रोस्कोपी) का उपयोग किया. इस विधि में समस्वरित (ट्यूंड) चुम्बकीय क्षेत्र के इस्तेमाल से छः हाइड्रोजन परमाणुओं को उनके न्यूक्लियस के चक्करों (सिन) से पहचाना गया.

बाइसाइक्लोप्रोपिनाइल (2, 2) 10° सेल्सियस से कम तापमान पर स्थायी (स्टेबल) है. इस ताप से ऊपर यह धीरे-धीरे एक पीले ठोस पदार्थ में विघटित हो जाता है, जिसकी जांच अभी नहीं हो पाई है. बिलप्स और हैली को इससे आश्चर्य हुआ था क्योंकि उन्होंने सोचा था कि इसे बेन्जीन में परिवर्तित हो जाना चाहिए था. उन्होंने गणना की कि इस प्रक्रिया में बहुत अधिक 500 किलो जूल प्रति ग्राम-अणु (मोल) ऊर्जा नियुक्त होती है.

बेन्जीन की संरचना की खोज सबसे पहले किसने की थी यह आजकल चर्चा का विषय बना हुआ है. 1990 में अमेरिका के कृषि विभाग के विलियम विसवेजर ने आल्ड्रिशिमिका एक्टा पत्रिका में छपे अपने लेख में बताया है कि वास्तव में यह गौरव वियना के रसायनज्ञ जौन लौशमिड्ट को जाना चाहिए. कैकुले से चार वर्ष पहले, लौशमिड्ट ने बेन्जीन के लिए छः कार्बन परमाणुओं की चक्राकार संरचना को प्रस्तावित किया था. उन्होंने अपने विचार को एक निजी पुस्तिका में प्रकाशित किया था. विसवेजर के अनुसार कैकुले को लौशमिड्ट के प्रस्ताव के बारे में एक मित्र के जरिए निश्चित रूप से जानकारी थी, परन्तु उन्होंने उस पुस्तिका के बारे में कभी भी जिक्र नहीं किया. □

गरीबों को ही मारेगा कार्बन टैक्स

□ यादवेन्द्र

□ वायुमंडलीय बदलाव को सारी दुनिया में महसूस किया जा रहा है और आमतौर पर इसे रोकने या कम करने के प्रति चिंता व्यक्त की जा रही है. सामाजिक विवेक द्वारा इसे रोकने की कोशिशें तो की ही जा रही हैं, लेकिन इसके भरोसे ही मानवजाति के अस्तित्व के सामने मुंह बांए इस खतरे को नहीं छोड़ा जा सकता. यदि सामाजिक या व्यक्तिगत विवेक इतना ही सुधारवादी होता तो निषेधात्मक नियम और कानून बनाने की नौबत ही नहीं आती. इसीलिए वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ने के बारे में भी निषेधात्मक कानून बनाने का फैसला अनेक देशों ने विभिन्न चरणों में किया है, या करने की तैयारी कर रहे हैं. यहां यह ध्यान देने की बात है कि वायुमंडलीय तापमान बढ़ने के लिए सबसे बड़ा कारक कार्बन डाइऑक्साइड को ही माना जा रहा है.

1957-58 के दौरान अन्तरराष्ट्रीय भूभौतिकी वर्ष मनाया गया था और इसके एक कार्यक्रम के अंतर्गत अमेरिका के हवाई द्वीप में मोना लोआ में और दक्षिणी ध्रुव में कार्बन डाइऑक्साइड की उपस्थिति की गणना तब से लगातार की जा रही है. इन्हें इस उद्देश्य से चुना गया था क्योंकि यहां किसी प्रकार के औद्योगिक प्रदूषण की गुंजाइश नहीं है और यहां कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि को सुरक्षित सूचक माना जा सकता है. गणना बतलाती है कि कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा लगातार बढ़ रही है–निष्कर्ष के तौर पर यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानना दिलचस्प होगा कि 1957 में जहा वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड की उपस्थिति 315 पी०पी०एम० (दस लाख में एक भाग) थी, वह अब बढ़कर 350 पी०पी०एम० तक पहुंच गई है.

वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के जमा होने का मुख्य स्रोत जलते वाल्प जीवाश्म ईंधन (मुख्यतः कोयला) है. अनुमान किया जाता है कि 1850 से 1950 के बीच की एक सदी में कोई 6 हजार करोड़ टन कार्बन (मुख्य रूप में कोयले) की शक्ल में जलाया गया जबकि 1980 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में प्रतिवर्ष 500 करोड़ टन कार्बन जलाया जा रहा था–इस रफ्तार से केवल 12 वर्षों में इतना कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में पहुंचा दिया जाएगा जितना 1850-1950 के सो वर्षों में वायुमंडल में पहुंचा होगा. प्रयोग यह बतलाते हैं कि एक टन कार्बन को जलाने पर चार टन कार्बन डाइऑक्साइड गैस निकलती है. 500 करोड़ टन कार्बन जलाने पर प्रतिवर्ष कोई 2 हजार करोड़ टन कार्बन डाइऑक्साइड निकलकर वायुमंडल में पहुंच जाती है. प्रकृति में कार्बन डाइआक्साइड को आत्मसात करने वाले बहुत से अवशोषक हैं जैसे समुद्र वनस्पति इत्यादि. इसीलिए वायुमंडल में पहुंचने वाला सारा कार्बन डाइऑक्साइड वहीं नहीं बना रहता बल्कि इसकी करीब आधी मात्रा इन अवशोषकों में जाकर सूख जाती है.

अमेरिका के कोलोरोडो नगर स्थित वायुमंडलीय अनुसंधान के राष्ट्रीय केंद्र के डा० स्टीफन श्नाइडर का यह मानना है कि अगली शताब्दी के शुरुआती वर्ष में वायुमंडल का तापमान बढ़ने के बारे में अलग-अलग निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, परन्तु यह निर्विवाद है कि औद्योगिक क्रांति के बाद से अब तक वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की उपस्थिति 25 प्रतिशत तक तो बढ़ी ही है. इसके साथ-साथ मीथेन की उपस्थिति इस अवधि में दुगुनी हो गई है. इनके प्रभाव से पृथ्वी के प्रतिवर्ग मीटर पर करीब दो वाट अतिरिक्त ऊर्जा का प्रभाव पड़ रहा है. यह ऊर्जा किस पद्धति से तापमान में रूपांतरित हो रही है, इस बारे में वैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है.

इन खतरों को देखते हुए कुछ पश्चिमी विचारकों ने कार्बन टैक्स की अवधारणा सामने रखी जिसका उद्देश्य यह था कि ज्यादा प्रदूषणकारी ईंधन पर ज्यादा कार्बन टैक्स लगाकर उसका उपयोग कम किया जाए. एक रपट के अनुसार इस तरह के टैक्स के प्रभावों के बारे में कम से कम पचास अध्ययन किए जा चुके हैं. इनकी प्रणालियां अलग-अलग हैं परन्तु एक सामान्य निष्कर्ष यह है कि टैक्स लगाने से (परिणामतः कीमत बढ़ाने से) ईंधन का उपयोग अपेक्षाकृत बहुत कम प्रभावित होता है. कुछ अध्ययनों से यह पता चलता है कि कार्बनयुक्त ईंधन की कीमत में 10 प्रतिशत की वृद्धि करने पर बरसों बाद इसकी मांग में 2 प्रतिशत की कमी आती है. लंदन बिजनेस स्कूल ने ब्रिटेन के बारे में जो अध्ययन किया उसमें बतलाया गया है कि यदि आगामी दस वर्षों में ईंधन की कीमत दुगुनी कर दी जाए तब अब के स्तर पर ईंधन की मांग को स्थिर किया जा सकता है. यूरोपीय आयोग के लिए एथेंस की टेक्नीकल युनिवर्सिटी ने जो अध्ययन किया है इसके अनुसार जीवाश्म ईंधनों पर यदि 42 प्रतिशत (सवा पांच गुना) टैक्स लगाया जाएगा तब जाकर कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को 20 प्रतिशत कम किया जा सकेगा. अमेरिका के अमेरिकन एंटरप्राइज इंस्टीट्यूट के अनुसार इस शताब्दी के अंत तक कार्बन डाइआक्साइड उत्सर्जन को 20 प्रतिशत कम करने के लिए अमेरिका में भी कार्बन टैक्स लगाना पड़ेगा. अमेरिका क़ांग्रेस के बजट ऑफिस का मानना है कि कोयले पर 17 डॉलर प्रति टन (74.4 प्रतिशत) तेल पर 3.6 डालर प्रति बैरल (22.7 प्रतिशत) और प्राकृतिक गैस पर 0.45 डालर प्रति हजार घनफीट (26.3 प्रतिशत) का टैक्स लगाने से क्रमशः 15 अरब, 23 अरब और 8 अरब डॉलर का वार्षिक राजस्व प्राप्त हो सकेगा. मोटे तौर पर यह माना जा सकता है कि कार्बनधारी ईंधनों पर औसतन 28 डॉलर प्रति टन का टैक्स लगाने से 1995 तक अमेरिका को 163 अरब डॉलर का राजस्व मिलेगा. इस टैक्स को सीधे उपभोक्ता से वसूलना मुश्किल है इसलिए सुझाव यह दिया जा रहा है कि ईंधनों के स्रोत (खान) या राज्य की सीमा पर इसे वसूला जाए.

लेकिन इस तरह के कार्बन टैक्स के विरोधी भी बहुत हैं. उनका तर्क यह है कि इससे प्रशासनिक दिक्कते बढ़ेंगी और गरीबों पर बोझ पड़ेगा. गरीब जनता ही कोयले का ज्यादा उपयोग करती है. आधुनिकता के वर्तमान ढांचे में कोयला सबसे रूढ़िवादी ईंधन है, इसीलिए तो विश्व में कोयले के उपयोग का चरमवर्ष 1920 था जब दुनिया भर में ऊर्जा के लिए 70 प्रतिशत कोयला उपयोग में लाया जाता था. अब इसके उपयोग का प्रतिशत 26 प्रतिशत रह गया है जो विकासशील देशों में ज्यादा केंद्रित है. ऐसे भी विकसित विश्व में खाता पीता परिवार ईंधन के लिए कुल खर्च का केवल 4 प्रतिशत देता है, जबकि उन्ही देशों में गरीब परिवारों को इस काम के लिए 10 प्रतिशत तक खर्च करना पड़ता है. कार्बन टैक्स की सीधी मार गरीब परिवारों पर पड़ेगी. कुछ दिनों पहले दिल्ली के नौ सौ परिवारों (जिनमें उच्च-मध्यम व निम्न वर्गीय परिवार शामिल हैं) का सर्वेक्षण करने के बाद टाटा इनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली ने यह पाया कि इन परिवारों की ऊर्जा की कुल खपत का आधा भाग तो केवल खाना पकाने में लगता है. इससे विकासशील देशों के महानगरों की झलक मिलती है. गांवों में यह प्रतिशत तो और भी ज्यादा है.

जहां तक कार्बन टैक्स लगाने का प्रश्न है, नीदरलैंड में यह लगाया जा चुका है. स्विटजरलैंड में यह टैक्स लगाने का प्रस्ताव ससंद के विचाराधीन है. 1991 के मध्य में इसके लागू होने की संभावना है. कोयले के लिए यह टैक्स 42-105 प्रतिशत पेट्रोल पर 15 प्रतिशत और प्राकृतिक गैस पर 20 प्रतिशत प्रस्तावित है. इससे प्रतिवर्ष 150 करोड़ डॉलर राजस्व इकट्ठा किए जाने की उम्मीद है. इतना ही नहीं 1995 में टैक्सों की दर दुगुनी की जा सकती है.

कुछ विशेषज्ञों की राय में कार्बन टैक्स की तुलना में 'कार्बन-परमिट' प्रणाली ज्यादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्कसंगत है. इस प्रणाली में उद्योगों को, क्षेत्र विशेष को और यदि संभव हो तो अलग-अलग देशों को ऐसे परमिट दिए जाएं जिन पर उनके द्वारा वायुमंडल में छोड़े जाने वाले कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा लिखी हुई हो. किसी को भी उससे ज्यादा कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन की अनुमति न दी जाए. इसके लिए एक तो अन्तरराष्ट्रीय समझौता संपन्न करना होगा, जो अभी के संदर्भ में संभव नहीं लगता. जिसने अपनी परमिट से कम उत्सर्जन किया, वह अपने परमिट का उपयोग में न आया हुआ शेष हिस्सा दूसरे को बेच सकता है—कीमत या तो पैसे के रूप में या तकनीकी जानकारियों के रूप में वसूल की जाए.

1990 में वाशिंगटन के ब्रुकिंग्स इंस्टीट्यूट द्वारा प्रकाशित किताब 'कंट्रोलिंग द ग्रीन हाउस एक्ट-फाइव ग्लोबल रेजिम्स कंपेयर्ड' में लेखक ने कार्बन डाइआक्साइड कम करने के लिए पांच प्रचलित सुझावों की चर्चा की है. ये हैं—(1) कार्बन टैक्स, (2) बातचीत के जरिए कमी लाने का उपाय, (3) प्रति व्यक्ति लक्ष्य निर्धारण, (4) ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर उत्सर्जन में कमी लाने की क्षेत्रीय कोशिशें, और (5) कार्बन मुद्रा का प्रचलन. पांचवें विकल्प की वकालत करते हुए यह किताब कहती है कि देशों की जनसंख्या और उनकी आर्थिक स्थिति को देखते हुए प्रत्येक देश को निर्धारित मात्रा में कार्बन मुद्रा दी जाए. कई देश बेहतर ऊर्जा संरक्षण के उपाय अपना कर अपनी निर्धारित कार्बन मुद्रा बचा सकते हैं और उन्हें उन देशों को बेच सकते हैं जो ज्यादा कार्बन वायुमंडल में छोड़ रहे हैं. भारत, चीन और ब्राजील जैसे विकासशील देशों में अग्रणी देशों का हवाला देते हुए कहा गया है कि ये बेहतर प्रबंधन के तरीकों से अपनी मुद्रा बचा सकते हैं और अमेरिका जैसे देश को बेचकर बदले में ऊर्जा-सक्षम तकनीकी प्रणालियां खरीद सकते हैं. अपने उत्सर्जन पर नियंत्रण न रखने वाले देशों को दिवालिया घोषित करके दंडित किया जा सकता है.

पर्यावरण के प्रति पश्चिम से आयातित चिंता के अनेक भारतीय प्रतीक है जो स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से इस देश में अपने-अपने स्तर पर परियोजनाओं को प्रभावित कर रहे हैं. पश्चिमी दान से ऐसे अनेक व्यक्ति/संस्थाएं पश्चिमी दान से बनने वाली परियोजनाओं की ही जड़ खोद रहे हैं. इनके पर्यावरण संरक्षण के पैमाने भी पश्चिमी ही हैं और विकास के मानदंड भी वही हैं. अंतर केवल इतना है कि काल के दो अलग-अलग खंडों में पश्चिम ने ये दो अलग-अलग पैमाने अपनाए जबकि हमारे पुरोधा आज एक ही साथ दोनों मानदंडों को यहां (या सम्पूर्ण तृतीय विश्व में) लागू करना चाहते हैं. ऐसी स्थिति में कोई आश्चर्य नहीं कि 'पर्यावरण मित्रवत्' उत्पादों की तर्ज पर किसी 'पर्यावरण शत्रुता टैक्स' की अवधारणा यहां भी विकसित करने की कोशिश की जाए. यूं भी पेट्रोल पर 'खाड़ी अधिभार' के रूप में जैसे टैक्स लगाया गया है और उस समय के इसके प्रखर आलोचक इस अधिभार को आज सत्ता में आने के बाद भी हटाने को तैयार नहीं हैं—उसी तरह पर्यावरण के संरक्षण के प्रति जुनून की हद तक सजग हमारे ये तथाकथित आलोचक अचानक किसी अधिभार का प्रस्ताव कर सकते हैं. लेकिन इससे ऊर्जा की असंगत और कुत्सित उपयोग पद्धति बदलेगी नहीं केवल गरीब जनता मारी जाएगी.

अब तक नए बिजलीघर बनाने के बदले वर्तमान बिजलीघरों की दक्षता नहीं बढ़ाई जाएगी, पेट्रोल खपत कम करने के उद्देश्य से अधिभार लगाने और साप्ताहिक बंदी करने के बदले सार्वजनिक यातायात को सुधारने और व्यक्तिगत (दुपहिया और चौपहिया) वाहनों के उत्पादन पर रोक नहीं लगाई जाएगी—भारत जैसे अधकचरे ढंग से समाजवादी-पूंजीवादी मुरब्बे का स्वाद चखते रहने वाले देश के ऊर्जा संकट कम नहीं होंगे. □

सामाजिक वानिकी—आवश्यकता और महत्व

□ डा. शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि

□ भारतीय संस्कृति का चिन्तन शुरू से ही प्रकृति प्रधान रहा है. प्राचीन ऋषियों-मुनियों ने प्रायः वनों में ही रहकर ज्ञान प्राप्त किया था. आज भी हम अपने दैनिक जीवन में काम आने वाली अधिकांश वस्तुएं वनों से ही प्राप्त करते हैं. वन वृक्षों के समूह को कहते हैं. राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार कुल भू-भाग के 33.3 प्रतिशत भाग पर वन होने चाहिएं. पहाड़ी क्षेत्रों में कम से कम 60 प्रतिशत तथा मैदानी क्षेत्र में कम से कम 20 प्रतिशत भू-भाग वनों के अन्तर्गत होना चाहिए किन्तु, उत्तर प्रदेश में तो भौगोलिक क्षेत्रफल का केवल 17.4 प्रतिशत ही वनों के अन्तर्गत है.

सन् 1976 में राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा वन क्षेत्र के विकास के लिए दो प्रमुख नीतियां बनाई गईं. पहली नीति में वन विकास निगम द्वारा वन उपज बढ़ाने पर बल दिया गया और दूसरी नीति में गांव के निर्धन लोगों के लिए ईंधन व पशु चारा उपलब्ध कराने के लिए **सामाजिक वानिकी** नामक नया कार्यक्रम शुरू किया गया. छठीं पंचवर्षीय योजना से ही सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के लिए विशेष धनराशि की व्यवस्था की जाने लगी किन्तु अभी तक इस कार्यक्रम से उतना लाभ प्राप्त नहीं हो सका है जितना योजनाओं में आंका गया था. एक अनुमान के अनुसार भविष्य की मांग को पूरा करने के लिए ईंधन लकड़ी का उत्पादन वर्तमान 1000 लाख टन प्रतिवर्ष से 3000 लाख टन प्रतिवर्ष तथा हरे चारे का उत्पादन 2300 लाख टन से 7800 लाख टन तक बढ़ाना होगा. उद्योगों के लिए वनों से प्राप्त कच्चे माल की निरन्तर बढ़ती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वनों का विस्तार एवं उचित प्रबन्ध और भी आवश्यक हो गया है.

सामान्यतया सामाजिक उपयोग के वनीकरण को **सामाजिक वानिकी** (सोशल फारेस्ट्री) कहा गया है किन्तु जब कोई व्यक्ति ऐसे वन निजी भूमि पर आरोपित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि के रूप में उद्यम करें तो उसे **कृषि वानिकी** (एग्रो-फारेस्ट्री) कहा जाएगा. भारत की अधिकांश आबादी गांवों में रहती है इसलिए ग्रामीण विकास के लिए वन नीति बहुत जरूरी है. गांवों में समग्र विकास और उन्हें ठोस आर्थिक आधार प्रदान करने हेतु सामाजिक वानिकी नितान्त आवश्यक कदम है. इसका उद्देश्य गांवों की बेकार पड़ी बंजर भूमि पर वन लगाकर ईंधन, पशुचारा एवं कुटीर उद्योग के लिए कच्चे माल उपलब्ध कराना है. सामाजिक वानिकी के विस्तार से वनों पर आधारित कुटीर उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं यथा—रेशम कीट पालन, मधुमक्खी पालन, कागज की लुग्दी बनाना, महुआ, नीम का तेल, गोंद, कत्था आदि.

सामाजिक वानिकी का एक प्रमुख अंग कृषि वानिकी है जिसमें मुख्य रूप से गरीब कृषकों को वनीकरण को बढ़ावा देने के लिए नई पौधों के निःशुल्क वितरित किए जाने की व्यवस्था है. इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से **यूकेलिप्टस** की पौध वितरित की जाती है क्योंकि यूकेलिप्टस की नर्सरी कम लागत में एवं आसानी से तैयार की जा सकती है. साथ ही इसे तेजी से बढ़ने के गुण के कारण इससे अल्प समय में व अधिक मात्रा में ईंधन/इमारती लकड़ी प्राप्त हो जाती है. वर्तमान समय में वन विभाग के नियंत्रण एवं प्रबंध के अधीन 750 लाख हेक्टेयर भूमि है. इसका आधा भाग वनाच्छादित तथा आधा भाग वनविहीन है. इसके कई कारण है, ठेकेदारों द्वारा लकड़ी की अन्धाधुंध कटाई, वनभूमि का कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित किया जाना, बांध, नदी, घाटी आदि परियोजनाओं का विकास करना आदि.

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम की वास्तविकता से अवगत होने पर पता चलता है कि इस कार्यक्रम से लाभान्वित होने वाला प्रमुख वर्ग बड़े कृषकों का है. ये लोग छूट का फायदा उठाकर अपने ट्रैक्टरों द्वारा हजारों की संख्या में निःशुल्क पौध ले जाकर अपने खेतों में लगाने लगे. इन्होंने अपने कृषि योग्य खेतों को यूकेलिप्टस के बागों में बदल दिया. दूसरी ओर कागज और लुगदी उद्योग के मालिकों द्वारा भी इस कार्यक्रम की सफलता में बाधा आई.

सामाजिक वानिकी एवं ग्रामीण विकास के एक अंग के रूप में वृक्ष पट्टा योजना राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा संयुक्त रूप से लागू की गई थी. इस योजना के तहत वनीकरण उद्देश्यों के लिए बेकार पड़ी भूमि को उपलब्ध कराकर उन पर वृक्षारोपण करना था. पट्टाधारकों को भूमि पर लगे पेड़ों व उगी वनस्पतियों को उपयोग में लाने का पूरा अधिकार भी दे दिया गया था फिर भी भूमि की अनुपलब्धता एवं राजनैतिक हस्तक्षेपों के कारण यह योजना सफल न हो सकी. केवल चट्टानी एवं उपेक्षित भूमि को ही इस कार्य हेतु दिया गया. इस प्रकार मात्र 350-400 लाख हेक्टेयर भूमि पर ही इसके अन्तर्गत वृक्षारोपण किया जा सका.

वास्तव में सामाजिक वानिकी उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इसे तभी सफल बनाया जा सकता है जब स्थानीय संगठनों को महत्व देकर जन समुदाय को प्रेरित कर उन्हें स्वैच्छिक रूप से वृक्ष लगाने के लिए राजी किया जाए. पश्चिमी बंगाल में ग्राम पंचायतों के सक्रिय योगदान से भूमि और लाभान्वित लोगों का सही पता लगाकर सामाजिक वानिकी कार्यक्रम की उद्देश्य पूर्ति में सफलता मिल रही है. धीरे-धीरे अन्य राज्यों में भी स्थानीय संगठनों (ग्राम पंचायत आदि) का गठन किया जा रहा है.

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम

उत्तर प्रदेश के सामाजिक वानिकी निदेशालय ने सामाजिक वानिकी परियोजना के अन्तर्गत निम्न योजनाएं कार्यान्वित की है

(1) पौध वितरण: इसके अन्तर्गत किसान अपनी भूमि में वृक्ष लगाने के लिए

सारणी-2. मृदा-सुधारकों की मात्रा किलोग्राम में

पी-एच मान	पाइराइट	ऊसर तोड़	जिप्सम	टिप्पणी
9.0	3	3	5.0	एक समय में
9.5	4	4	6.0	एक ही मृदा सुधारक के
10.0	5	5	7.0	प्रयोग हेतु
10.5	6	6	8.0	मात्राएं दर्शाई गई हैं.

नोट: (1) दोमट मिट्टी में मात्राओं का 3/4 भाग तथा बलुई मिट्टी में मात्रा का 1/2 भाग उपयोग किया जाए.
(2) 75 x 75 x 75 सेंटीमीटर आकार के गड्ढों में मात्राएं दोगुनी तथा 90 x 90 x 90 सेंटीमीटर आकार के गड्ढों में 3½ गुनी होंगी.

सारणी-1. मिट्टी के अनुसार प्रजातियों का चयन

मिट्टी का पी-एच मान	उपयुक्त पौधे
7.5 से 8.5	शीशम, महुआ, नीम, बकायन, ढाक, यूकेलिप्टस, आंवला, खैर, सूबबूल, बबूल प्रजातियों का रोपण.
8.5 से 9.0	नीम, सिरस, ढाक, कंजी, अकेसिया-आरीकुली-फार्मिल, प्रोसोविस बबूल तथा जंगल-जलेबी प्रजातियों का रोपण.
9.0 से अधिक	कंजी, अर्जुन, सिरस, ढाक, प्रोसोपिस, अकेसिया-आरीकुली-फार्मिस प्रजातियों का रोपण.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक वानिकी विभाग के निकटतम पौधालय से ईंधन तथा शोभाकार पौध अत्यल्प मूल्य में प्राप्त कर सकते हैं.

(2) पंचायती स्वयंसेवी योजना: इस परियोजना के अन्तर्गत कोई पंचायत अपनी भूमि पर वृक्षारोपण कार्यक्रम लागू कर सकती है. इसके लिए वन विभाग पूरी तकनीकी जानकारी देगा और पौध भी निःशुल्क उपलब्ध कराएगा परन्तु पौध लगाने के लिए गड्ढे खुदवाने, सुरक्षा खाई की खुदाई तथा पौधों की देखरेख का सारा प्रबन्ध पंचायत अपनी ओर से करेगी तथा आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई वन विभाग द्वारा की जाएगी. इस प्रकार का रोपण पूर्णतया पंचायत की सम्पत्ति होगी.

(3) गांव सभा की खाली भूमि पर वृक्षारोपण: यदि किसी गांव समाज की भूमि खाली पड़ी हो तो ग्राम सभा वहां सामाजिक वानिकी विभाग द्वारा वृक्षारोपण करा सकती है. वृक्षारोपण पर होने वाला सारा व्यय सामाजिक वानिकी निदेशालय द्वारा वहन किया जाएगा. इसमें होने वाली घास, चारा-पत्ती व लकड़ी ग्रामीणों को निःशुल्क प्राप्त होगी. वृक्षारोपण से प्राप्त ईंधन भी नाम मात्र के मूल्य पर ग्रामीणों को देने की व्यवस्था है.

(4) अन्य कार्यक्रम: उपर्युक्त कार्यक्रमों के अतिरिक्त सड़कों के किनारे और नहरों की पटरियों पर वृक्षारोपण सामाजिक वानिकी निदेशालय की ओर से किया जाएगा. इस वृक्षारोपण का लाभ भी निकटवर्ती गांव को उसी प्रकार मिलेगा जिस प्रकार ग्राम समाज की भूमि पर लगाए गए वनों का.

कुछ महत्वपूर्ण सुविधाएं

(1) विभिन्न विकास खण्डों में स्थित वन विभाग के पौधालयों से विभागीय वृक्षारोपण के अलावा जनसाधारण तथा अन्य सरकारी विभागों को पौध की आपूर्ति की जाती है.

(2) विद्यार्थियों के लिए: उत्तर प्रदेश शासन ने वर्ष 1986-87 से प्रत्येक विद्यालय को उसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या के बराबर निःशुल्क पौध की आपूर्ति का प्रावधान किया है. इन पौधों का रोपण विद्यालय परिसर, पंचायत घरों अथवा पूजा गृहों (मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा आदि) परिसर में करना है तथा सुरक्षा व देखरेख की व्यवस्था सम्बन्धित विद्यालय करेंगे.

(3) स्वैच्छिक संस्थाएं तथा फौज के लिए: राजकीय सामुदायिक भूमि पर सामुदायिक प्रयोजन हेतु वृक्षारोपण करने के लिए युवक मंडल दलों, एन एस एस, एन सी सी को भी निःशुल्क पौध उपलब्ध कराई जा रही है. फौज को भी राजकीय भूमि पर रोपण हेतु पौध की निःशुल्क आपूर्ति की जाती है.

(4) किसान पौधशाला: किसानों को अपनी निजी भूमि पर पौधालय स्थापित करने हेतु तकनीकी ज्ञान वन विभाग द्वारा सुलभ कराया जा रहा है तथा इस कार्यक्रम के लिए बैंक से ऋण उपलब्ध कराने के सम्बन्ध में भी आदेश प्रसारित किए गए हैं.

(5) स्कूल नर्सरी: स्कूल कालेजों के उपयोग में जहां खाली भूमि उपलब्ध हो वहां विद्यार्थियों के माध्यम से स्कूल पौध-शालाएं स्थापित की जाती हैं. वन विभाग प्रशिक्षण, तकनीकी ज्ञान, बीज थैले, रासायनिक खाद व कीटनाशक एवं आवश्यकतानुसार तार बाड़ की सुविधा प्रदान करेगा. श्रम सेवा विद्यार्थियों से प्राप्त होगी. विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ाने एवं वनीकरण की ओर रुचि उत्पन्न करने के उद्देश्य से ऐसे पौधालयों से ली जाने वाली प्रत्येक पौध के लिए दस पैसे की दर से पारिश्रमिक का भुगतान विद्यार्थियों को प्रधानाचार्य के माध्यम से किया जाएगा. इस धन का उपयोग विद्यार्थियों के लिए कल्याणकारी योजनाओं घर किया जाएगा.

बिक्री एजेंटों की नियुक्ति
'आविष्कार' और 'ग्राम शिल्प' के लिए

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका आविष्कार तथा त्रैमासिक पत्रिका ग्राम शिल्प की बिक्री के लिए हर जिले में बिक्री एजेंट नियुक्त करने के लिए पत्र-पत्रिकाएं बेचने वाले एजेंटों में आवेदन पत्र आमंत्रित हैं.

एजेंटों के लिए आकर्षक कमीशन उपलब्ध है. विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

प्रबंध निदेशक
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
(भारत सरकार का उपक्रम)
20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048

ग्राम : 'अनुसंधान विकास' फोन : 6432580

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि सुधार

निम्न भूमि से बढ़िया उत्पादन कैसे लें

□ डा० रमेश चन्द्र तिवारी

□ कृषि एक विज्ञान पर आधारित उद्योग है. इसमें जिन प्राकृतिक संसाधनों का कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जाता है उनमें एक जीवधारी, जटिल संसाधन है भूमि या मिट्टी या मृदा. ''मिट्टी चट्टानों की देन है. इसके बनने में सैकड़ों वर्षों तक जलवायवीय, जैविक तथा स्थलाकृति (ढाल) कारक संयुक्त भूमिका निभाते हैं. इसमें जीवांश भी पाया जाता है तथा इस पर पेड़-पौधे अपना विकास कर सकते हैं''.

मिट्टी पेड़-पौधों के जीवन का आधार हैं. भूमि पर उगने व पोषित होने वाली वनसतियों से हमें भोजन, वस्त्र, ईंधन, लकड़ी, खाद, ऊर्जा तथा पशुओं के लिए चारा आदि वस्तुएं प्राप्त होती हैं. जैसी मिट्टी होती है उसी प्रकार भूमिगत पेय जल भी. अतः यह कहना उचित ही है कि भूमि हमारा भी जीवन-आधार है. यही कारण है कि प्रकृति के इस संसाधन का उपयोग मानव अपने जीवन के लिए भौतिक साधन जुटाने में सदियों से करता आ रहा है.

इस प्रक्रिया में भूमि का दोहन होता आया है. जाने अनजाने में भूमि की सही देखभाल न किए जाने के फलस्वरूप इसमें घटियापन आता जा रहा है. अच्छी मिट्टियां बंजर व मरूस्थल बनती जा रही हैं. इन्ही भूमियों को परती या 'वेस्ट लैंड' भी कहा जाता है.

वास्तविकता तो यह है कि दुनिया में वेस्ट लैंड यानी बंजर, परती भूमि की कोई सटीक परिभाषा तक उपलब्ध नहीं है. हमारे देश में सन् 1985 में भारत सरकार के योजना आयोग ने एक 'तकनीकी सलाहकार समूह' का गठन किया था और उसे बंजर भूमि को परिभाषित करने का तकनीकी कार्य सौंपा था. इस समूह ने बंजर भूमि के लिए जिस परिभाषा का सुझाव दिया वह इस प्रकार है :

''बंजर भूमि ऐसी भूमि है जो वर्तमान में घटिया है और बिना किसी उपयोग के बेकार पड़ी है. इनमें कुछ व्यवधानों के कारण होने वाले आकस्मिक पलिहार सम्मिलित नहीं हैं.''

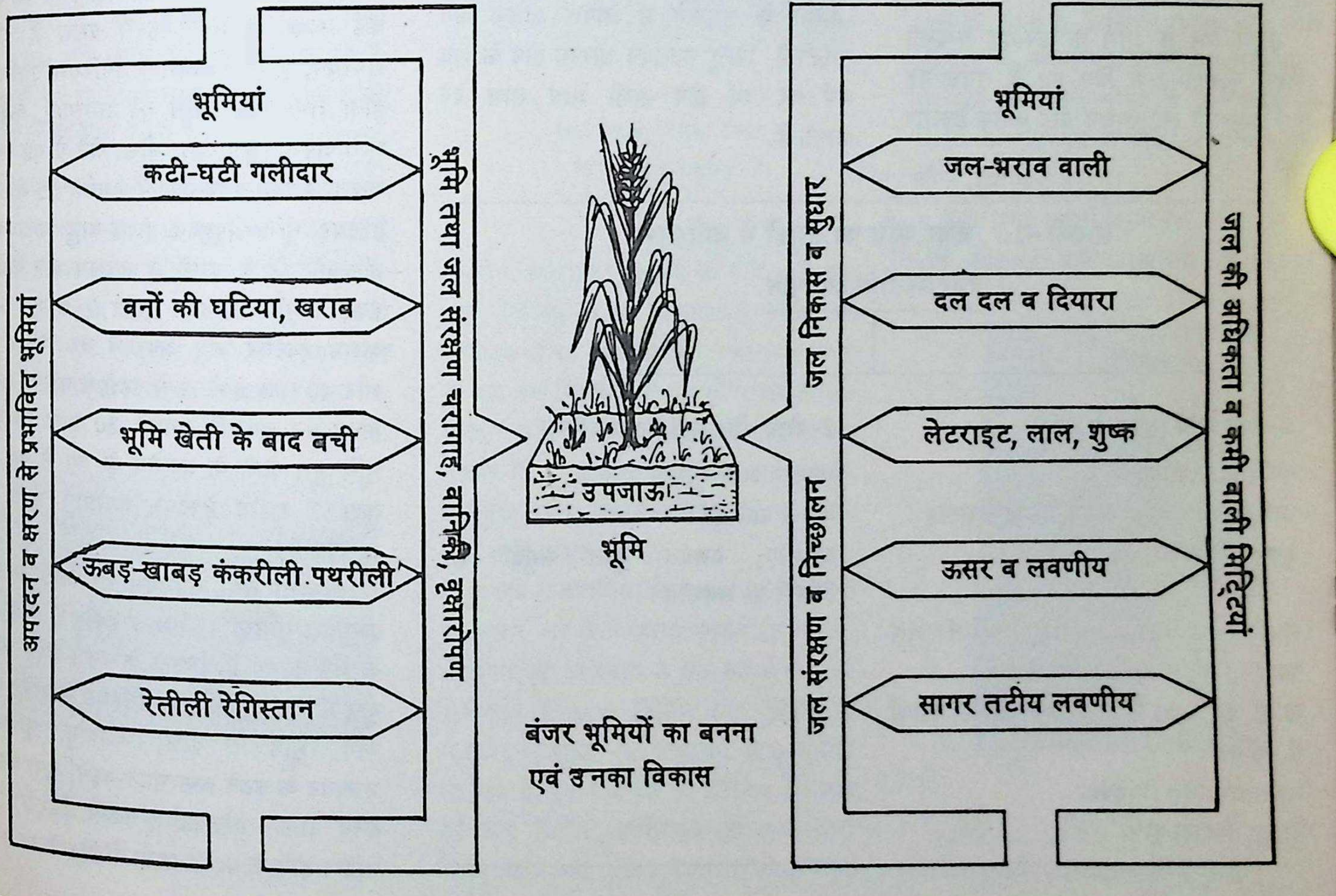

बंजर भूमियों का बनना एवं उनका विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस परिभाषा में भी कमी हो सकती है. यही कारण है कि बंजर एवं परती भूमियों के क्षेत्रफल के सही आकलन में कठिनाई होती है. हमारे देश में इस तरह की लगभग 17 करोड़ हेक्टेयर भूमि बंजर/परती/अनुपयुक्त अवस्था में बेकार पड़ी है. वैज्ञानिकों का मत है कि ऐसी भूमियों में कृत्रिम तथा प्राकृतिक परिवर्तन करके इनसे उत्पादन लिया जा सकता है. ऐसी बंजर भूमियां लगभग सत्तर लाख हेक्टेयर नमक या सोडियम के कारण खराब हैं जिन्हें ऊसर या रेह की संज्ञा दी जाती है. लगभग साठ लाख हेक्टेयर भूमि में स्थाई अथवा अस्थाई रूप से पानी भरा रहता है. इनका जल निकास अवरूद्ध है. जल अपरदन से प्रभावित नदियों के आस-पास पाए जाने वाले लगभग सैंतीस लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में फैले बीहड़ (रेवाइन) भी बंजर भूमि श्रेणी में आते हैं.

बंजर भूमियों का विभिन्न समूहों में वर्गीकरण किया गया है. इनका वर्गीकरण कई तरह से किया जाता है जिनमें एक रूपरेखा सारणी–1 में दी गई है.

हमारे देश के भूमि के उपयोग सम्बन्धी आंकड़े सारणी–2 में दिए गए हैं. इनसे यह पता चलता है कि लगभग चार करोड़ हेक्टेयर भू क्षेत्र में सुधार करके उसे खेती योग्य बनाकर अच्छा उत्पादन किया जा सकता है. इन भूमियों के सुधारने में लागत अधिक लग सकती है, किन्तु उत्पादन आरम्भ होने के बाद वर्ष दर वर्ष होने वाली आय लाभ देने लगती है.

सारणी–2. भारतीय भूमियों के उपयोग की सांख्यिकी (क्षेत्रफल करोड़ हेक्टेयर में)

विवरण	क्षेत्रफल
कुल भौगोलिक क्षेत्रफल	32.80
कुल क्षेत्रफल जिसके उपयोग के आंकड़े हैं	30.55
क्षेत्रफल जिनमें खेती करना असम्भव है	2.10
क्षेत्रफल जिन्हें सुधार कर खेती की जा सकती है :	
जल-भराव से प्रभावित	0.60
लवण तथा क्षार से प्रभावित	0.70
बीहड़ दियारा आदि	0.37
लाल एवं लेटेराइट	1.20
समुद्र के किनारे के बालू पत्थर व कंकरीले क्षेत्र	
ऊंची पहाड़ियों तथा सीधी ढलान वाले क्षेत्र	1.13
कुल कृषि योग्य बंजर	4.00
कुल क्षेत्रफल जिसमें खेती की जाती हैं	14.30

स्रोत : आई०पी०एब्राल (1982), रिक्लेमेशन आफ वेस्ट लैण्ड्स एण्ड वर्ल्ड फूड प्रास्पेक्ट्स

सारणी–1. बंजर भूमि का समूहों में वर्गीकरण

बंजर/परती/घटिया भूमि

1–खेती योग्य (सुधार के बाद)

कटी-छंटी गलीयुक्त
पत्थर, कंकड़ वाली ऊबड़-खाबड़ चरागाह
झूम खेती से छटी हुई

सतही जल भराव वाली (अस्थाई जल प्लावन, ऊंचे जल स्तर वाले क्षेत्र)
खानों एवं उद्योगों से निकले विषैले पदार्थों से प्रदूषित
लवण-प्रभावित मिट्टियां
बीहड़, दियारा-क्षेत्र

2–खेती योग्य नहीं (सुधार कठिन)

चट्टान वाली भूमियां
बर्फ से ढंकी हुई
लवणीय, दलदल युक्त समुद्रों के किनारे की लवणीय

भूमि घटिया क्यों, कहां, कितनी

भूमि के घटिया या बंजर होने के वैसे तो कई कारण हैं किन्तु इनमें प्रमुख हैं भूमि अपरदन, भूमि में लवण व सोडियम एकत्रित होना तथा जल प्रबन्ध की समस्याएं. केवल भूमि अपरदन का लेखा जोखा लेने से यह पता चलता है कि हमारे देश में लगभग 15 करोड़ हेक्टेयर भूमि अपरदन (जल-वायु अपरदन) की चपेट में है. इसमें से लगभग 6.9 करोड़ हेक्टेयर भूमि की दशा गंभीर है. लगभग 3.2 करोड़ हेक्टेयर वायु अपरदन का शिकार है और 40 लाख हेक्टेयर में पहले से गलियां तथा बीहड़ बन चुके हैं. लगभग 30 लाख हेक्टेयर भूमि झूम खेती के अवशेष के रूप में पड़ी है तथा 7 करोड़ हेक्टेयर वर्षाधीन खेती के अन्तर्गत है.

लवणता तथा सोडियम की अधिकता से प्रभावित भूमियों (70 लाख हेक्टेयर) के बनने के कई कारण हैं. मिट्टी के बनते समय तथा बाद में विखंडन प्रक्रम में सोडियम कार्बोनेट बन जाने, भूमि के ढाल, जलवायु, भूमिगत जलस्तर के उठने तथा घटने-बढ़ने, चूना कंकर बनने तथा मृत्तिका (चिकनी मिट्टी) के घटिया होने के कारण ऊसर मिट्टियों का जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है. दूसरी ओर लवणीय मिट्टियों के बनने में मुख्य रूप से लवणीय जल का योगदान है. मैदानी भागों, समुद्र के किनारे, तथा डेल्टा बनने के अलग-अलग कारण होते हैं. परन्तु मुख्य कारण खारा जल ही कहा जा सकता है.

लाल तथा लेटराइट मिट्टियों का जन्म ऐसे क्षेत्रों में होता है जहां ताप तथा आर्द्रता (नमी) अधिक होती है. ऐसी मिट्टियां मुख्यतया तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, गोआ तथा पांडेचेरी में बहुतायत में पाई जाती है. बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल तथा असम के कुछ क्षेत्रों में भी ऐसी मिट्टियां कहीं-कहीं मिलती हैं. इन मिट्टियों में पौधों के भोज्य तत्वों की कमी होती है. अच्छा भूमि प्रबन्ध करके इन पर चाय, काफी, रबड़, कसावा तथा सिन्कोना की अच्छी खेती की जा सकती है.

गलियों वाली बीहड़ भूमियों का जन्म अधिक कटाव-छंटाव से होता है. ऐसे क्षेत्र अधिकतर पहाड़ी तथा नदियों के आस-पास पाए जाते हैं. जल तथा हवा द्वारा भूमि का अपरदन इनके बनने का मुख्य कारण रहे हैं. वनस्पतियों का दोहन तथा लोप हो जाना इनके बनने में सहायता करते हैं.

घटिया भूमियों को कैसे सुधारें

जिन बंजरों की चर्चा इस लेख में की गई है उनमें फसलोत्पादन की अन्तःशक्ति मौजूद है. उन्हें सुधार कर खेती योग्य बनाया जा सकता है. सभी बंजरों के सुधार करने के अलग-अलग तरीके हैं. इनका संक्षिप्त वर्णन यहां दिया जा रहा है.

चित्र–1.
ऊसर एवं लवणीय भूमि-सतह
पर सफेद नमक एकत्रित है.

अपरदन (कटाव-छंटाव) के द्वारा बंजर हुए खेतों व वनों को खेती योग्य बनाने के लिए जल तथा भूमि संरक्षण की समुचित विधियां काम में लाई जाती हैं. इनमें कुछ प्रमुख कार्य हैं—पपड़ी न बनने देना, जुताई गहरी करके अन्दर की कड़ी परत तोड़ना, फसलों के अवशेषों को भूमि में मिलाना, वर्षा जल का एकत्रण व उपयोग तथा भूमि उर्वरता का समुचित प्रबन्ध करना. अपरदन रोकने के लिए, गलियों को बांधना, खेतों की मेंड़बन्दी, सीढ़ीदार खेत बनाना, नालों आदि में जल बन्धियां बनाना आदि कार्य आते हैं. पानी का संरक्षण अर्थात भूमि का संरक्षण. जीवांश का

चित्र–2.
लाल मिट्टी, जिसका प्रबन्ध
कठिन किन्तु सम्भव है.

उपयोग तथा उचित जुताई करने से भूमि तथा जल दोनों का संरक्षण हो जाता है. मिट्टी की उत्पादकता बढ़ जाती है. भूमि तथा जल प्रबन्ध के बाद इन मिट्टियों में फसलोत्पादन आरम्भ करना आवश्यक हो जाता है. भूमि का वैकल्पिक उपयोग जैसे—एग्रोफारेस्ट्री, सिल्वीवास्तुरल, उद्यान-कृषि, फसलें एक साथ लेना आदि करना चाहिए.

नमकों से प्रभावित ऊसर तथा रेह मिट्टियों को सुधार कर खेती करना सम्भव हो गया है. सोडियम की अधिकता से ब्रज्र ऊसर भूमि को राजस्थान से प्राप्त ज़िप्सम तथा बिहार के अमजोर से प्राप्त लौह पाइराइट द्वारा सुधारा जा रहा है. इन रसायनों में सोडियम को हटा देने तथा मिट्टी की क्षारता को अम्ल द्वारा खतम करने की शक्ति है. अतः मिट्टी का

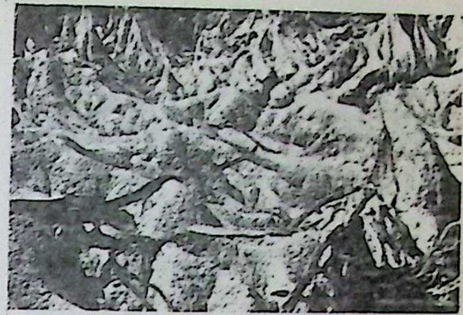

चित्र–3.
अत्यधिक अपरदन के कारण
बनी गलियां व बीहड़ भूमि.

पी-एच घट जाता है और सोडियम जल के साथ बहा दिया जाता है. सोडियम के रिस जाने से मिट्टी की ऊपरी पन्द्रह सेन्टीमीटर गहराई में फसलों की जड़ें पनपने लगती हैं. सुधारे गए ऊसर में धान-गेहूं के अतिरिक्त गरमी में ढैंचा उगाया जाता है. दो तीन साल बाद इन खेतों में गन्ना तथा आलू जैसी नकदी फसलों की खेती की जाती है. मिट्टियों में पाए जाने वाले सोडियम के कारण कुछ फसलें उग नहीं पातीं तो कुछ सहनशील होती हैं. सारणी–2 में फसलों की सोडियम के प्रति सहनशीलता का ब्यौरा दिया गया है.

घासों तथा फसलों के अलावा ऊसर भूमि में गड्ढे खोदकर ऊसर सुधारक जिप्सम या

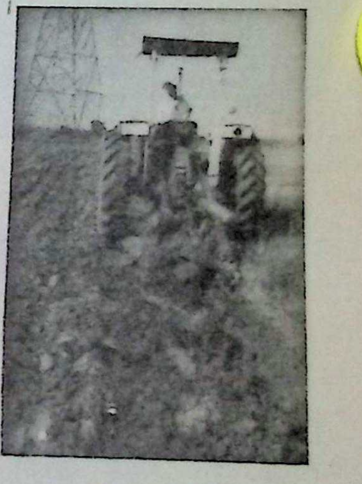

चित्र–4.
गहरी जुताई करने से वर्षा जल का रिसाव अधिक
होता है तथा जल अपरदन कम हो जाता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाइराइट मिलाकर वृक्ष उगाए जा सकते हैं. जो वृक्ष उग सकते हैं उनमें—यूक्लिप्टिस, सुबबूल, अर्जुन, बेर, अमरूद, आवंला आदि हैं. इन मिट्टियों में फसल उगाने के लिए विशेष तकनीक अपनाई जानी चाहिए. नाइट्रोजन की कुछ अधिक मात्रा (25 प्रतिशत) देनी चाहिए. ऊसर सुधारने के कुछ वर्षों तक फास्फोरस की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु, मिट्टी परीक्षण की सहायता से उर्वरकों की मात्रा निर्धारित करना अच्छा रहता है. इन मिट्टियों की सिंचाई करते रहने से नमक नीचे रिसे रहते हैं और फसल उग जाती है. जैविक खादों तथा हरी खाद के उपयोग से ऊसर सुधारने में सहायता मिलती है तथा उपज भी बढ़ती है.

ऐसे क्षेत्र जहां वर्षा कम तथा वाष्पीकरण अधिक होता है भूमि में जल के साथ घुले हुए नमक ऊपर आ जाते हैं, पानी भाप बनकर उड़ता रहता है तथा नमक सतह पर एकत्रित होते रहते हैं. पानी भर देने से ये नमक पुनः नीचे चले जाते हैं. यदि भूमिगत जल का स्तर ऊपर से डेढ़ मीटर के नीचे रहता है तो मिट्टी की सतह पर नमक कम आ पाते हैं. किन्तु इससे कम गहराई पर पाए जाने वाले जल से नमकों का भूमि के उपरिस्तर पर लगातार बना रहना निश्चित है.

लवणीय या नमकीन मिट्टियों को सुधारने के लिए उनका निच्छालन (लीचिंग) करना ही एकमात्र सुधार का उपाय है. एक बलुई मिट्टी में एक मीटर गहरा पानी भरने से मिट्टी के ऊपरी-2 मीटर तक की गहराई से 0.2 प्रतिशत नमक रिस जाते हैं. निच्छालन का काम गरमी के मौसम में करना चाहिए. समुद्री किनारों की खारी मिट्टियों को चार-पांच वर्ष में सुधारा जा सकता है बशर्ते उसमें ज्वार का समुद्री जल न भरने पाए. भूमिगत जल का निकास भी इन्हें सुधारने के लिए आवश्यक है. जल निकासी का प्रबन्ध लवणीय मिट्टी बनना रोकता है.

लाल मिट्टियों से अच्छा उत्पादन लेने के लिए अनुसंधान कार्य कई वर्षों से चले आ रहे हैं. परिणामस्वरूप इन मिट्टियों से धान, अरहर, बाजरा, ज्वार, रागी, मूंगफली, मक्का, गेहूं तथा चना जैसी फसलों के उगाने की विधियां विकसित कर ली गई है. अनुसंधान केन्द्रों तथा किसानों की खेत के उपज के आंकड़े सारणी—3 में दिखाए गए हैं.

लाल मिट्टियों से अनुसंधान केन्द्रों पर अच्छी उपज प्राप्त करने के जो उपाय किए गए उनमें प्रमुख हैं पपड़ी न बनने देना. इसके लिए, हल्के हैरो से पपड़ी तोड़ना, बीजों को मेड़ों पर बोना तथा बुआई के बाद बीज जमने तक जैविक अवशेष (पुआल आदि) से मल्चिंग कर देना आदि आवश्यक है. इसके अलावा जुताई गहरी तथा ऐसी करें कि वर्षा जल भूमि में रिस जाए (समा जाए). इससे अपरदन भी कम होता है. जो खेत गहरी जुताई के बाद बोए गए उनमें बाजरा तथा आरंडी की उपज क्रमशः 12 तथा 34 प्रतिशत अधिक हुई. मानसून के पहले मई-जून में दो साल में एक बार 25-30 सेंटीमीटर गहरी जुताई से भूमि में नमी में दुगनी वृद्धि देखी गई है. लाल मिट्टियों में

सारणी—4. लाल मिट्टियों से शुष्क भूमि कृषि पद्धति के अनुसार उपज (अनुसंधान एवं किसान के खेत पर)

स्थान	फसल	उपज क्विन्टल/हेक्टेयर: अनुसंधान केन्द्र पर	उपज क्विन्टल/हेक्टेयर: किसान के खेत पर
हैदराबाद	आरंडी (रेंडी)	20	7
	ज्वार	43	3
बंगलौर	काकुन	35	10
	मक्का	45	34
रायचुर	नाइजर	66	2.5
अनन्तपुर	मूंगफली	15	5
	बाजरा	10	3

[स्रोत : हरिमानी, हेगड़े एवं सत्यनारायन (1982); रिव्यू आफ रिसर्च इन इण्डिया (भाग-11, पृष्ठ 698)

सारणी—3. कुछ फसलों तथा घासों की सोडियम के प्रति सहनशीलता

सहनशील (उग सकती है)	मध्यम-सहनशील (मध्यम विकास)	सहनशील नहीं (बिल्कुल नहीं उगती)
कर्नाल घास	गेहूं	ग्वार
रोड घास	जौ	चना
पारा घास	जई	मूंगफली
धान	राया	मूंग
चुकन्दर	बरसीम	मटर
	सेजी	मक्का
	गन्ना	कपास (अंकुरण)
	कपास	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैविक अवशेषों को मिलाने से मक्का की उपज में लगभग सवा गुना बढ़ोत्तरी देखी गई है. मिट्टी में पांच वर्ष बाद कार्बनिक पदार्थ की मात्रा लगभग दुगनी हो गई. इन मिट्टियों से अच्छा उत्पादन लेने के लिए आवश्यक है कि वर्षा के फालतू बह जाने वाले पानी को फार्म तालाब में एकत्रित किया जाए और आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई के काम में लाया जाए. बंगलौर की लाल मिट्टी में एकत्रित इस जल द्वारा 5 सेंटीमीटर गहरी एक सिंचाई करने से ग्वार के चारे, दाने तथा मिर्च की उपज में क्रमशः 88, 188 तथा 113 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी पाई गई है. ऐसे ही परिणाम टमाटर तथा रागी के साथ भी मिले हैं. भूमि तथा जल का सटीक प्रबन्ध करने के लिए इन मिट्टियों में चौड़े मेड़ तथा नाली बनाकर खेती से काफी लाभ मिलता है. लाल मिट्टियों में फास्फोरस तथा नाइट्रोजन और गोबर की खाद देने से अच्छी उपज मिलती है. कुछ मिट्टियों में चूना मेलाना भी जरूरी पाया गया है.

दियारा भूमियां

ऐसा भूभाग जो नदियों के या तो किनारे हैं, या एक से अधिक नदियों से घिरे हुए हैं, दियारा कहलाते हैं. कहीं-कहीं नदियों के घुमावदार हो जाने से भी ऐसे क्षेत्र बने हैं. दियारा नाम मिट्टी के बने दिए से लिया गया लगता है जो बीच में गहरा होता है. दियारा भूमियों में बाढ़ के समय पानी भर जाता है.

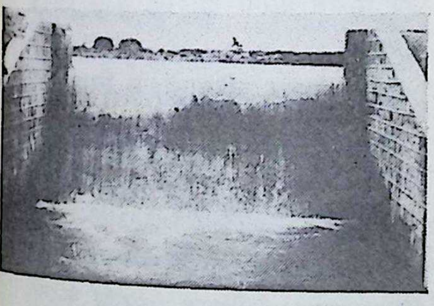

चित्र–5.

नालों पर पक्का निर्माण करके आंशिक जल संरक्षण किया जा सकता है.

कभी-कभी बाढ़ समाप्त होने पर भी पानी भरा रह जाता है. अतः खराब जल निकास के फलस्वरूप भूमि काफी दिनों तक बेकार पड़ी रहती है. पानी सूख जाने पर करैल दियारा भूमियों में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जाती हैं. कभी-कभी खड़ी फसलों में दरारें पड़ कर फसल की जड़ फाड़ डालती हैं. हल्की नमी पर भी इनके कण चिपकने लगते हैं और कृषि कार्य में बाधा पड़ती है. केवल गंगा नदी की दियारा भूमि पश्चिम उत्तर प्रदेश से लेकर

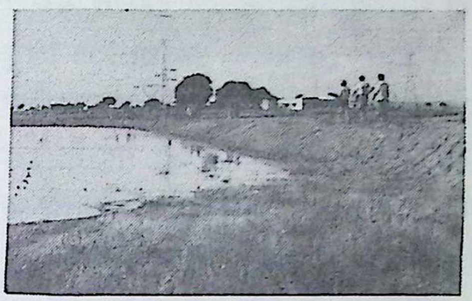

चित्र–6.

बंधियां बनाकर वर्षा जल एकत्रित करें.

पश्चिम बंगाल (डेल्टा को छोड़कर) तक में 82 लाख हेक्टेयर में पाई जाती हैं. अकेले उत्तर प्रदेश और बिहार में 24 लाख हेक्टेयर दियारी भूमि है.

यद्यपि वर्षा ऋतु में यह क्षेत्र जल भराव के कारण बेकार रहता है किन्तु रबी से ले कर मानसून आने तक इसमें फसलोत्पादन किया जा सकता है. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के तत्वाधान में चलाई जा रही अखिल भारतीय दियारा भूमि अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत कुछ तकनीकें विकसित की गई हैं. इसके अनुसार थोड़े लागत के साधन जुटाकर समय से बुआई करके ऐसी भूमियों से गेहूं, चना सरसों की बहुत अच्छी फसल ली जा सकती है बशर्ते सिंचाई व उर्वरक की कमी न पड़े. जौ, मसूर, कुसुम, मटर, सूर्यमुखी, अलसी की रबी फसलें भी ली जा सकती हैं.

चित्र–7.

लाल, घटिया भूमि पर अच्छी फसल ली जा सकती है.

जहां बाढ़ का कम पानी चढ़ता है वहां मूंग, उर्द, बाजरा की खेती करने की तकनीक भी विकसित की गई है.

कृषि योग्य बेकार पड़ी भूमियों में अधिकांश अच्छे कृषि उत्पादन लिएं जा सकते हैं. आवश्यकता है लगन, श्रम, धन एवं योजनाबद्ध कार्य करने की. ऐसी भूमियां कुछ ही वर्षों में लाभकारी उत्पादन देने लगेंगी.

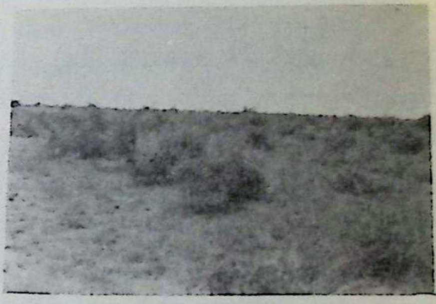

चित्र–8.

बंजर भूमि बनना एवं सुधार कर खेती

[डा० तिवारी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मृदा विज्ञान विभाग में अनेक वर्षों से कार्यरत हैं.]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेकरी पदार्थों को और भी पोषक बना सकता है सोयाबीन

□ एस०डी० कुलकर्णी □ एल०के० सिन्हा तथा □ एन० अली

कुपोषण भारत की सर्वाधिक गंभीर समस्याओं में से एक है. इसका एक मुख्य कारण सस्ते और सर्वसुलभ प्रोटीन आहार का उपलब्ध न होना है. इस समस्या से निपटने के लिए कई उपाय किए जा रहे हैं. चूंकि आजकल बेकरी पदार्थों की मांग शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में दिन प्रतिदिन बढ़ रही है, बेकरी पदार्थों के निमार्ण में सोयाबीन का मिश्रण इस समस्या के समाधान के लिए उचित समझा जा रहा है. इसे देखते हुए कुटीर उद्योग के माध्यम से सोयायुक्त बेकरी पदार्थों के उत्पादन की संभावना की जांच की गई है. इस संदर्भ में डबलरोटी के उत्पादन में लगाए जाने वाले अवयवों की कीमतों के आधार पर किए गए सर्वेक्षण विवरणों से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि विधि और उपकरण में बिना किसी मूलभूत परिवर्तन के कम अथवा बराबर की लागत से अधिक प्रोटीन तथा वसा युक्त बेकरी पदार्थों को कुपोषण से प्रभावित लोगों के लिए बनाया जा सकता है.

□ बेकरी पदार्थों जैसे डबलरोटी (ब्रेड), बन बिस्कुट इत्यादि का उपयोग गांवों और शहरों में सभी आय वर्ग के लोग करने लगे हैं. आज देश में बेकरी इकाईयों की संख्या 54,000 से ज्यादा है और इसकी गणना देश के बड़े संगठित खाद्य उद्योगों में की जाती है. चूंकि बेकरी पदार्थ जरूरतमंद लोगों द्वारा पौष्टिक आहार के रूप में काफी मात्रा में उपयोग में लाए जाते हैं. अतः यह आवश्यक समझा गया कि एक ऐसे स्रोत का पता लगाया जाए जिसमें अच्छी गुणवत्ता वाले प्रोटीन प्रचुर मात्रा में हों साथ ही वह कीमत में वृद्धि न करें.

इस मुद्दे को विभिन्न दृष्टिकोणों से परखा गया. प्राप्त निष्कर्ष की विस्तृत जानकारी इस लेख में संयोजित की गई है.

बेकरी पदार्थों का उत्पादन

हमारे देश में वर्ष 1973-74 से 1983-84 के दौरान बेकरी पदार्थों का उत्पादन करीब 200 प्रतिशत बढ़ा है और भविष्य में इसके और बढ़ने की संभावना है सारणी–1. अन्य बेकरी पदार्थों की तुलना में ब्रेड का हिस्सा हमेशा बढ़ता जा रहा है तथा इसकी प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष उपलब्धता 2.3 किलोग्राम अंकित की गई है. ब्रेड जो किफायती भी है, समस्त आय वर्गों के लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाती है.

भारत में सैंडविच ब्रेड की मांग सबसे ज्यादा है, हांलाकि दूसरे प्रकार की ब्रेडों, जैसे मिल्क ब्रेड, भूरे ब्रेड, मीठे ब्रेड का भी उत्पादन होता है. साधारणतया ब्रेड का उत्पादन एक मानक तरीके और सूत्र के द्वारा किया जाता है जिसे क्रमशः चित्र–1 और सारणी–2 में दर्शाया गया है. ब्रेड के निर्माण में आटे की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है. इसलिए ब्रेड की गुणवत्ता विभिन्न प्रकार के गेहूं के आटे पर निर्भर करती है. चूंकि गेहूं के आटे में प्रोटीन काफी कम होता है और इसमें मानव के लिए उपयोगी एक अमीनों अम्ल लाइसिन, की भी कमी पाई जाती है, इसलिए मौजूद प्रोटीन की गुणात्मकता निम्न श्रेणी की होती है. अतः इस ब्रेड और अन्य बेकरी उत्पादों की पोषकता वृद्धि के लिए यह जरूरी है कि इसमें ऐसा प्रोटीन मिलाया जाए जिसमें काफी मात्रा में लाइसिन हो. चूंकि ब्रेड जनसाधारण का खाद्य पदार्थ है अतः प्रोटीन की गुणात्मकता वृद्धि से हमारी जनसंख्या के पोषण स्तर में सुधार किया जा सकता है.

सोया क्यों मिलाएं

किसी भी खाद्यान्न में उचित गुणात्मकता वाले प्रोटीन युक्त पदार्थ का मिश्रण करके उसके पोषकता स्तर में वृद्धि की जा सकती है. चूंकि मिश्रण की सक्षमता मिलाए गए पदार्थों के विभिन्न उपयोगी गुणों पर निर्भर करती है, किसी विशेष प्रकार के खाद्य उत्पादन के लिए जब मिश्रण करना हो, यह कार्य कठिन हो जाता है.

अतः बेहतर परिणामों के लिए, मिलाए

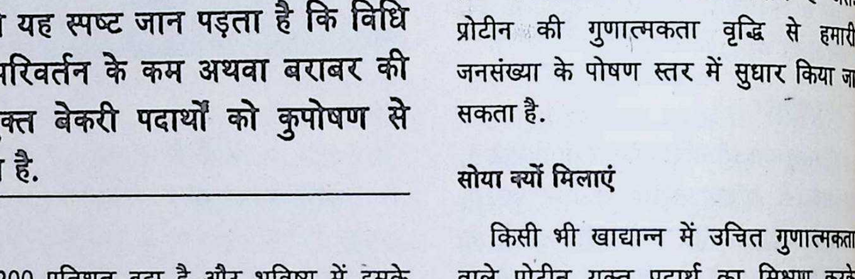

चित्र–1. ब्रेड बनाने की विधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी–1 भारत में बेकरी पदार्थों का उत्पादन*

क्रम सं.	पदार्थ	विभिन्न वर्षों में उत्पादन 1000 टन			
		वर्ष 1973-74	1978-79	1983-84	1988-89
1.	ब्रेड	319.60 (58.32)	574.00 (67.24)	1029.70 (67.24)	1848.31 (71.18)
2.	बिस्कुट	155.50 (28.38)	240.30 (26.36)	371.40 (24.25)	574.00 (22.11)
3.	अन्य	72.90 (13.30)	97.50 (10.69)	130.40 (8.51)	174.41 (6.72)
	कुल	548.00 (100.00)	911.80 (100.00)	1531.50 (100.00)	2569.72 (100.00)

नोट : कोष्ठक के अन्दर के अंक बेकरी उत्पादन का प्रतिशत दर्शाते हैं

*अज्ञात : 1986, बेकरी टेक्नोलोजी एंड मेनुफेक्चर, एस बी पी कमिकल इंजीनियरी सीरीज न० 72, स्माल बिजनेस पब्लिकेशन्स, दिल्ली.

जाने वाले स्रोत में उचित गुणों वाले प्रोटीन के साथ-साथ वांछित उपयोगी गुण भी होने चाहिए ताकि बनाए गए पदार्थ में उच्च श्रेणी का प्रोटीन हो एवं साथ ही इसकी गुणवत्ता में भी कोई कमी न आने पाए. इस तथ्य की जानकारी हेतु किए गए पूर्व अनुसंधानों से पता चलता है कि ब्रेड के निर्माण में जब 15 और 20 प्रतिशत सोयाबीन, विंग्ड बीन, जैकबीन और मूंगफली के आटे का मिश्रण किया गया तो सोयायुक्त ब्रेड की पोषकता, गुणवत्ता और लोगों में ग्राह्यता अन्य स्रोतों से बने ब्रेड के मुकाबले अधिक पाई गई.

बेकरी पदार्थ में सोयाबीन मिलाने के कुछ अतिरिक्त लाभ भी हैं जैसे : (1) लाइसिन की मात्रा अधिक होने से प्रोटीन की गुणवत्ता को बढ़ाता है; (2) वसा रहित दुग्ध पाउडर की जरूरत नहीं पड़ती; (3) ब्रेड के अन्दरूनी हिस्से/आन्तरिक भाग को ज्यादा सफेद बनाता है; (4) ब्रेड ज्यादा दिन तक सुरक्षित रहती है; (5) बेकरी यंत्रों में बदलाव की जरूरत नहीं है; (6) आटे की पानी सोखने की क्षमता बढ़ती है तथा इसके गूंथने में कम समय लगता है. इन सभी लाभों को ध्यान में रखते हुए बेकरी पदार्थों में सोयाबीन का मिश्रण पोषकता के स्तर में वृद्धि का एक सही तरीका जान पड़ता है.

कितना मिलाएं

सोयाबीन युक्त बेकरी पदार्थों के उत्पादन में समान गुणवत्ता के लिए मिश्रण की सही मात्रा निश्चित करना जरूरी है. सोयाबीन मिश्रण के लिए तीन प्रकार के सोया आटे जैसे पूर्णतः वसा युक्त (18-22 प्रतिशत वसा), मध्यम वसा युक्त (5-8 प्रतिशत वसा) और कम या बिना वसा (0.5-1 प्रतिशत वसा) का इस्तेमाल किया जा सकता है. विगत अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि पूर्ण वसा वाला सोया आटा बिना वसा वाले आटे की तुलना में अधिक उपयोगी है तथा ब्रेड निर्माण में समान गुणवत्ता के लिए इनका क्रमशः 24 प्रतिशत व 18 प्रतिशत तक इस्तेमाल किया जाता है. लेकिन ब्रेड सूत्र में सोडियम स्टीरियोल-2 लेकटीलेट का 0.5 प्रतिशत की मात्रा में उपयोग जरूरी है. साधारणतः यह देखा गया है कि 12 प्रतिशत सोयाबीन के साथ

सारणी–2. ब्रेड का मानक सूत्र और 100 किलोग्राम आटा बैच के अवयवों का लागत मूल्य

क्रम संख्या	पदार्थ	मात्रा (किलोग्राम में)	अनुमानित लागत (रुपए में)
1.	मैदा	100.00	450.00
2.	पानी	64.00	–
3.	चीनी	4.00	28.00
4.	नमक	2.00	4.50
5.	वनसपति	4.00	88.00
6.	खमीर	1.20	26.40
7.	बिना वसा वाला दूध पावडर	4.00	120.00
8.	रसायन	0.35	100.00
		179.55	816.90

नोट : एक 100 किलोग्राम आटा/बैच से 400 ग्राम के 400 ब्रेड तैयार किए जा सकते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी–4. प्रोटीन और वसा तत्वों का अनुमानित मात्रा और समान सूत्र पर सोया आटा के विभिन्न मिश्रण तैयार किए गए 400 ग्राम ब्रेड का लागत मूल्य

सोया (प्रतिशत)	गेहूं (प्रतिशत)	प्रोटीन (ग्राम में)			वसा (ग्राम में)			लागत मूल्य (रुपए)
		पूर्ण वसा सोया आटा	मध्यम वसा सोया आटा	कम वसा सोया आटा	पूर्ण वसा सोया आटा	मध्यम वसा सोया आटा	कम वसा सोया आटा	
0	100	30.5	30.5	30.5	14.8	14.8	14.8	2.04
3	97	32.6	33.3	33.6	15.2	15.0	14.7	1.93
6	94	34.6	36.2	36.6	17.4	15.3	14.6	1.95
12	88	38.9	41.8	42.7	19.9	15.8	14.5	2.00
15	85	40.9	44.2	45.8	21.4	16.1	14.4	2.02
20	80	44.4	49.3	50.9	23.6	16.5	14.3	2.06
24	76	47.2	53.1	54.9	15.3	16.9	14.2	2.10

नोट : 100 किलोग्राम आटा/बैच के लिए अनुमानित

बनाईं हुई ब्रेड अच्छी गुणवत्ता और ग्राह्यता की होती है तथा इसका उपयोग उचित जान पड़ता है. साथ ही सोया आटे के बनाने के तरीके पर भी मिश्रण स्तर निर्भर कर सकता है. यह भी सिद्ध हो गया है कि बिना सोडियम स्टीरियोल-2 लैकटीलेट मिलाए भी 5 प्रतिशत सोया मिश्रण से अच्छी ब्रेड बनाई जा सकती है.

सोया–ब्रेड का आर्थिक एवं पोषकता मूल्यांकन

सोया और गेहूं के विभिन्न मिश्रणों के सारणी–3 पर आधारित अनुमानित पोषक स्तर (प्रोटीन और वसा तत्व) के अनुसार साधारण ब्रेड की तुलना में 15 प्रतिशत समायोजन वाले ब्रेड के प्रोटीन तत्वों और कुछ हद तक वसा तत्वों में कम खर्चे पर काफी अधिक वृद्धि की जा सकती है सारणी–4. इसलिए सोया आटे के मिश्रण से निर्मित ब्रेड तथा बेकरी पदार्थों के जरिए प्रोटीन एवं कैलोरी कुपोषण की रोकथाम कम खर्चे में की जा सकती है.

ब्रेड के पोषक तत्वों में वृद्धि के लिए गेहूं का आटे का सोया आटे के साथ मिश्रण लाभदायक साबित हुआ है और इस कार्य को आगे बढ़ाया जा सकता है. सोया मिले ब्रेड के उत्पादन के विभिन्न चरणों का भारतीय परिवेश में एक मानक ढंग विकसित करने की आवश्यकता है और इस दिशा में केन्द्रीय कृषि इन्जीनियरी संस्थान, भोपाल की सोयाबीन संसाधन एवं उपयोग परियोजना के अंतर्गत कार्य किया जा रहा है. □

सारणी–3. प्रोटीन/वसा इकाईयां और पोषण अनुमान के लिए इस्तेमाल किए गए सोया आटे और गेहूं आटे का लागत मूल्य

आटा	प्रोटीन* (प्रतिशत)	वसा* (प्रतिशत)	मूल्य (रुपए किलोग्राम)
मैदा सोया आटा	12.20	1.90	4.50
पूर्ण वसा	38.60	19.50	8.00
मध्यम वसा	49.80	5.40	8.00
कम वसा	52.88	0.50	8.00

*गोपालन, सी०, रामास्वामी, बी० वी० और बालसुब्रामणियन, एस०सी० 1981, न्यूट्रिटिव वैल्यू आफ इंडियन फूड्स, नेशनल इंस्टिट्यूट आफ न्यूट्रिशन (भारतेय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्) हैदराबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठोस पदार्थ की संरचना का एक नया रूप क्रिस्टल-कल्प (आभासी क्रिस्टल)

□ डा० राधे श्याम तिवारी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में आयोजित संगोष्ठी 'विज्ञान की नई दिशाएं' में प्रस्तुत आठ चुने निबंधों में से चार 'भारत का वैज्ञानिक पुर्नजागरण काल' लेखक डा० श्रवण कुमार तिवारी, 'आनुवंशिक इंजीनियरी, एक परिचय' लेखक डा० रवि शंकर पाण्डेय और मानवेन्द्र त्रिपाठी, 'मूलकण भौतिकी के कुछ नए आयाम' लेखक चन्द्र प्रकाश सिंह और 'मानसून का दीर्घावधि पुर्वानुमान' लेखक डा० युगलदास चट्टोपाध्याय आप पत्रिका के क्रमशः मार्च 1990, अप्रैल 1990, मई 1990 और अक्तूबर 1990 के अंकों में पढ़ आए हैं. प्रस्तुत लेख इस कड़ी का अगला निबंध है.

□ सन् 1912 ई० में वॉन लावे ने क्रिस्टलो द्वारा एक्स किरणों के विवर्तन की खोज की थी. इस खोज से पदार्थ-संरचना के अध्ययन को एक नई दिशा मिली. विवर्तन के अध्ययन के आधार पर यह समझा गया कि संपूर्ण पदार्थ संरचना को दो रूपों में देखा जा सकता है, क्रिस्टलीय या रवादार संरचना और अक्रिस्टलीय या रवाहीन संरचना. क्रिस्टलीय पदार्थों से प्राप्त विवर्तन की विशेषता यह है कि इसका विवर्तन-पैटर्न बिन्दुओं के एक सुनियोजित और आवर्ती क्रम के रूप में दिखाई देता है. इस विवर्तन-पैटर्न से ज्ञात होता है कि क्रिस्टल संरचना में एक सममिति पाई जाती है. इसके विपरीत, अक्रिस्टलीय पदार्थों से प्राप्त विवर्तन-पैटर्न में विवर्तन की तीव्रता बिन्दुवत न होकर बिखरी हुई (डिप्यूज) होती है. इस तरह विवर्तन पैटर्न के आधार पर पदार्थ-संरचना का यह वर्गीकरण पिछले दशक के मध्य तक माना जाता रहा है. सन् 1984 में सेंख्टमान और उनके सहयोगियों ने एक ऐसे पदार्थ संरचना का पता लगाया जो क्रिस्टलीय और अक्रिस्टलीय दोनों ही प्रकार की संरचना से भिन्न थी.

इन वैज्ञानिकों ने अतिशीघ्र-शीतलन की प्रक्रिया से अलुमीनियम और मैंगनीज की एक मिश्र धातु बनाई. इस मिश्र धातु से प्राप्त इलेक्ट्रान—विवर्तन-पैटर्न में एक निराली विशेषता पाई गई. इसमें प्रदर्शित होने वाली सममिति क्रिस्टलीय पदार्थों के लिए तो वर्जित मानी ही जाती थी, यह बिन्दुवत विवर्तन-तीव्रता वाली थी जो अक्रिस्टलीय पदार्थों में भी संभव नहीं है. इस खोज ने वैज्ञानिकों के सामने एक नई चुनौती खड़ी कर दी. कुछ समय तक ऐसा प्रयास चलता रहा कि इस नई संरचना को क्रिस्टलीय संरचना के द्वारा ही समझाया जा सके. किन्तु बाद में अध्ययन से, विशेषतः इलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप से प्राप्त चित्रों से इस नई संरचना की विशेषताओं को और भी स्पष्ट किया गया और इसे पदार्थ-संरचना के एक तीसरे विशिष्ट वर्ग में रखना स्वीकार किया गया.

इस नई संरचना की विशेषताओं को समझने के पूर्व क्रिस्टलीय पदार्थों की संरचना के बारे में आरंभिक जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा. यदि हम नमक के एक क्रिस्टल की संरचना पर ध्यान दें तो पाएंगे कि सोडियम और क्लोरीन आयन एक घन

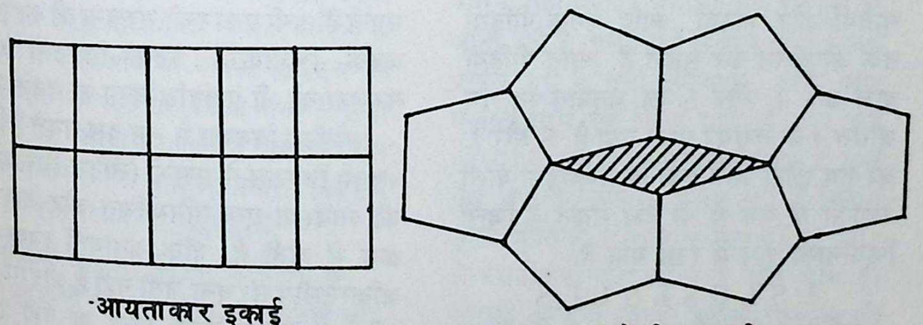

चित्र-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किनारों पर स्थित है. ये घन इकाइयां आपस में सुनियोजित ढंग से जुड़ कर नमक के क्रिस्टल का निर्माण कुछ उसी प्रकार करती है. जैसे ईंटों से कोई दीवार बनती है. इस बात को सरलता से समझा जा सकता है कि स्थान को पूरी तरह भरने के लिए यद्यपि कई डिजाइनों की ईंटों का चयन किया जा सकता है, किन्तु कुछ खास आकार वाली ईंटों से बनी दीवार में कुछ स्थान रिक्त रह सकता है जबकि कुछ के लिए रिक्त स्थान बिल्कुल नहीं बचेगा. यदि हम एक द्विआयामी उदाहरण के रूप में देखें तो चित्र-1 से स्पष्ट हो जाएगा कि आयताकार इकाई जिस तरह से स्थान भर देती है वैसा किसी पंचकोणीय आकृति से संभव नहीं है.

क्रिस्टलीय पदार्थों की संरचना में कुछ इसी प्रकार के एकांक सेल की उपस्थिति वर्जित है और स्वभावतः उससे जुड़ी सममिति (जैसे आइकोसाहीड्रल सममिति) भी विवर्तन पैटर्न में रवाहीन पदार्थों में अणुओं का समायोजन किसी आवर्ती क्रम में नहीं होता है (यद्यपि इनमें भी एक लघु दूरी की व्यवस्था (शार्ट रेंज आर्डर) पाई जाती है) क्रिस्टलीय संरचना में एक प्रकार की आवर्ती व्यवस्था होती है और यह बताया जा सकता है कि किस अणु से किस दूरी पर कौन-सा अणु स्थित होगा. अक्रिस्टलीय संरचना में कोई नियमितता नहीं होती (इसे यादृच्छिक संरचना कह सकते हैं).

आभासी क्रिस्टल की संरचना ऐसी है जिसमें लैटिस बिन्दु (अणु के स्थान—बिन्दु) एक निश्चित क्रम से व्यवस्थित होते हैं किन्तु यह आवर्ती क्रम नहीं होता. हम एक-आयामी एवं द्विआयामी उदाहरणें द्वारा समझा सकते हैं कि किस प्रकार कोई संरचना अयादृच्छिक (रेंडम) और अनावर्ती (नान-पीरियडिक) बन सकती है. एक-आयामी क्वासी-आवर्ती व्यवस्था को फिवोनासी-क्रम के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है. उन्नीसवीं सदी में सुप्रसिद्ध गणित फिवोनासी ने आदर्श रूप में खरगोशों की वंशवृद्धि के अंतर्गत वयस्क और बालक खरगोशों के अनुपात का आकलन किया था जिसका मान स्वर्णिम औसत (गोल्डन मीन) ⁴ = 6/8 के बराबर आता है.

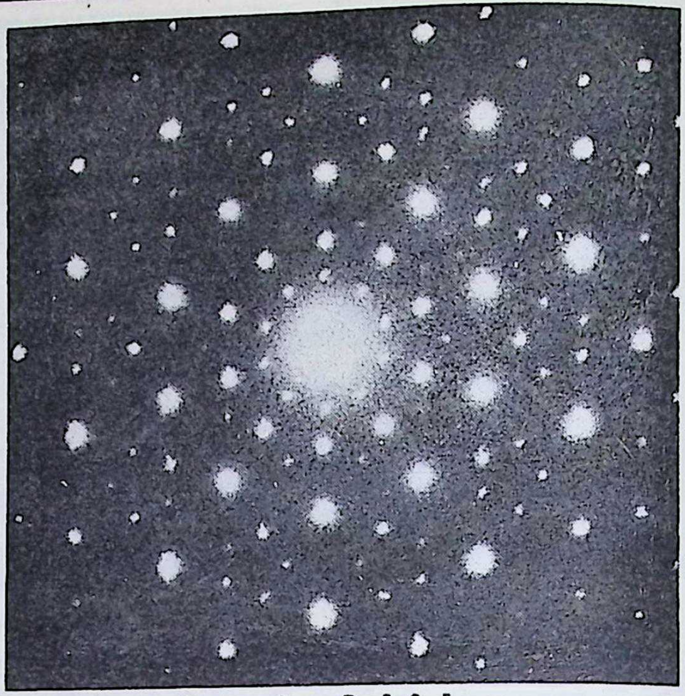

चित्र–2. इलेक्ट्रान विवर्तन पैटर्न

यदि वयस्क खरगोश नई पीढ़ी में एक वयस्क और एक बालक खरगोश के रूप में तथा एक बालक एक वयस्क खरगोश के रूप में परिवर्तित होता है तो अनेक पीढ़ियों के बाद जो क्रम प्राप्त होगा उसे ही फिवोनासी क्रम कहते हैं:

		L/s
L	पहली पीढ़ी	Yo = 7/8
LS	दूसरी पीढ़ी	1/1 = 1
LS L	तीसरी पीढ़ी	2/1 = 2
LS L LS ...	चौथी पीढ़ी	3/2 = 1.5
LS LLS LS L	पांचवीं पीढ़ी	5/3 = 1.66
LS L LS LS		
L LS L L S	छठवीं पीढ़ी	8/5 = 1.60

L और S से बने क्रम को हम इसी प्रचार सातवीं और आठवीं...आदि अनेक पीढ़ियों तक आकलित कर सकते हैं. अनंत पीढ़ियों वाले क्रम L और S का अनुपात स्वर्णिम औसत ⁴ के बराबर पाया गया है. S और L को हम छोटी और बड़ी दो लम्बाइयों वाली रेखाओं के रूप में भी देख सकते हैं जिन्हें फिवोनासी क्रम में रखा गया है:

L S L S S L S L L S

इस एक-आयामी संरचना की विशेषता यह है कि बिन्दुओं के बीच का अंतराल सुनियोजित ढंग का और अनावर्ती है. यही संरचना एक-आयामी क्वासी-क्रिस्टल या आभासी क्रिस्टल की संरचना को प्रदर्शित करती है.

द्विआयामी क्वासी क्रिस्टल को पेनरोज नामक वैज्ञानिक द्वारा, सन् 1976 में, दी गई संरचना द्वारा प्रदर्शित किया जाता है. इस संरचना में दो प्रकार के, चौड़े तथा पतले समान्तर-षटफलकों (प्रकोष्ठों) की सहायता से द्विआयामी तल को विभाजित किया जाता है. द्विआयामी क्रिस्टलीय संरचना के लिए केवल एक प्रकार के प्रकोष्ठ (एकक प्रकोष्ठ) की आवश्यकता पड़ती है, जबकि पेनरोज संरचना में दो प्रकार के प्रकोष्ठों की आवश्यकता पड़ती है जो आपस में एक विशेष मैचिंग नियम के अंतर्गत ही जुड़ सकते हैं. इसी प्रकार की संरचना की कल्पना करके त्रिआयामी क्वासी-क्रिस्टलों की संरचना को भी प्रदर्शित किया जा सकता है.

उपर्युक्त विवरण से हम देख सकते हैं कि क्वासी क्रिस्टल में अणुओं (लैटिस-बिन्दुओं) की व्यवस्था एक सुनियोजित और आवर्ती क्रम में होती है. चूंकि अनावर्ती व्यवस्था अक्रिस्टलीय संरचना जैसी नहीं है और किसी दूरी पर लैटिस-बिन्दु होगा या नहीं इसे निश्चित रूप से बताया जा सकता है. इस कारण इस प्रकार की संरचना को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्वासी-लैटिस और उस पदार्थ को क्वासी क्रिस्टल कहा जाता है. क्वासी क्रिस्टल से प्राप्त एक इलेक्ट्रान विवर्तन-पैटर्न चित्र-2 में दिखाया गया है. इस चित्र से विदित होता है कि दशा-दिशाओं में विवर्तन बिन्दु समान रूप से स्थित हैं. यह विवर्तन-पैटर्न क्वासी क्रिस्टल को पंचधा सममिति (फाइव-फोल्ड सिमिट्री) प्रदर्शित करता है. एक दिशा में यदि बिन्दुओं की स्थिति देखें तो पाएंगे कि वे आवर्ती क्रम में नहीं है. क्रिस्टल द्वारा प्राप्त विवर्तन पैटर्न में विवर्तन बिंदु आवर्ती क्रम में स्थित होते हैं और इस प्रकार की सममिति नहीं दर्शाते हैं. क्वासी क्रिस्टल से प्राप्त विवर्तन को सैद्धान्तिक आधार पर भी आकलित किया जा सकता है. ऐसा आकलन करके देखा गया है कि आकलित और प्रायोगिक विवर्तन-पैटर्नों में अत्यधिक समानता पाई जाती है. इस प्रकार के आकलन के लिए जिस प्रकार के महत्वपूर्ण माडल का उपयोग किया गया है उसे उच्च आयामी लैटिस माडल कहा जाता है. इस माडल के अंतर्गत क्वासी-लैटिस छः आयामी आकाश में आवर्ती है. जब ऐसे लैटिस को त्रि-आयामी आकाश में प्रक्षेपित करते हैं तो वह अनावर्ती दिखाई देता है. इस तथ्य को हम एक द्विआयामी उदाहरण द्वारा समझा सकते हैं. द्विआयामी आवर्ती व्यवस्था को चित्र- 3 में दिखाया गया है. इसमें अब एक अक्ष इस प्रकार खींचा गया है जो मूल बिन्दू को छोड़ कर किसी अन्य बिन्दु से नहीं गुजरता. इस अक्ष के समान्तर एक रेखा स द खींचते हैं. यदि पट्टी अ ब और स द के भीतर के बिंदुओं को अक्ष अ ब पर प्रक्षेपित करें तो उनकी व्यवस्था फिबोनासी-क्रम जैसी होगी जो एक-आयामी क्रिस्टल को प्रदर्शित करती है. जिस तरह द्विआयामी आवर्ती लैटिस के प्रक्षेप से एक-आयामी क्वासी क्रिस्टल की उपस्थिति को प्रदर्शित किया गया है उसी प्रकार छः आयामी आवर्ती क्रिस्टल को प्रक्षेपित करके त्रि-आयामी क्वासी क्रिस्टल को प्रदर्शित किया जा सकता है.

द्विआयामी आवर्ती लैटिस के प्रक्षेप से एक-आयामी क्वासी क्रिस्टल लैटिस की प्राप्ति

क्वासी क्रिस्टल की संरचना की विशिष्टता ने शोध का एक नया क्षेत्र खोल दिया है. सर्वप्रथम इस संरचना की खोज एलुमीनियम और मैगनीज की मिश्र धातु में हुई जिसे द्रुत-शीतलन क्रिया द्वारा प्राप्त किया गया था. पिछले पांच वर्षों में 50 से अधिक ऐसी मिश्र धातुएं खोजी गई हैं जिनमें इस प्रकार की संरचना देखने को मिलती है. क्वासी क्रिस्टलों के अध्ययन में एक कठिनाई यह थी कि इनका आकार माइक्रोन (10-6 मीटर) लम्बाई में सीमित था. एक्स-किरण विवर्तन के लिए तथा क्वासी क्रिस्टल के गुणों के अध्ययन के लिए भी बड़े आकार के क्वासी क्रिस्टल की आवश्यकता महसूस की जाती रही है. इस दिशा में हाल ही में अच्छी प्रगति हुई है तथा लीथियम, तांबा और एलुमीनियम की मिश्र धातु से कुछ बड़े आकार के क्वासी क्रिस्टल बनाए गए हैं. कुछ ऐसे क्वासी क्रिस्टल बनाए गए हैं जिनमें ऊष्माभौतिकी (थर्मोडायनेमिक्स) की दृष्टि से स्थायित्व पाया जाता है और साथ ही उसकी सरंचना आदर्श क्वासी क्रिस्टल की भांति है. इन पदार्थों में पाए जाने वाले भौतिक गुणों विशेषतः विद्युतीय गुणों के

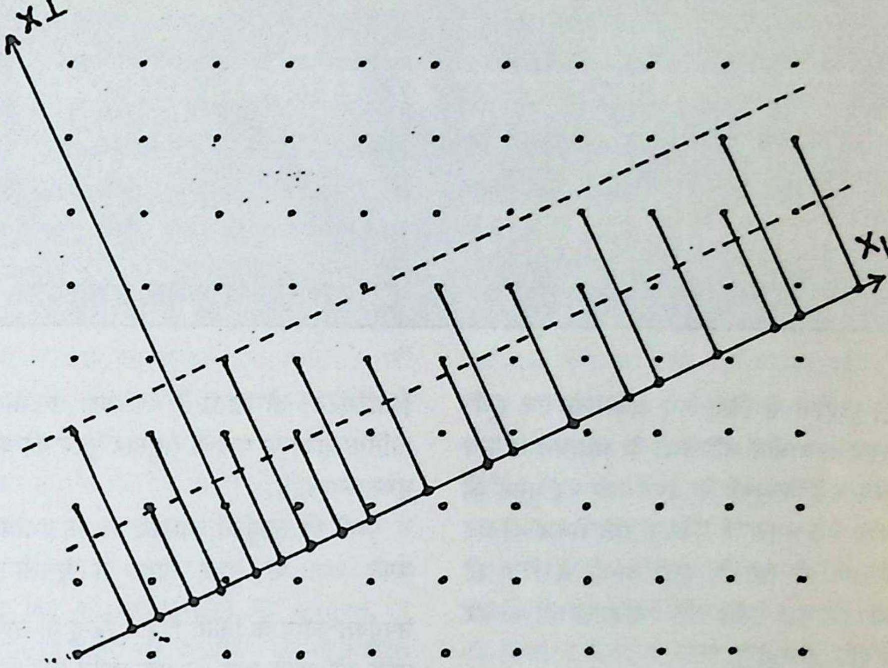

चित्र-3

अध्ययन से क्वासी क्रिस्टल की विशिष्टता को सही ढंग से निर्धारित करने की संभावना ज्ञात होती है. इस प्रकार के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो सकेगी कि क्वासी क्रिस्टल के गुण किस प्रकार से क्रिस्टलीय एवं अक्रिस्टलीय पदार्थों के गुणों से भिन्न हैं.

अब तक के अध्ययन से यह बात प्रमाणित हुई है कि क्वासी क्रिस्टल, क्रिस्टलीय एवं अक्रिस्टलीय संरचनाओं के बीच की एक आवश्यक कड़ी हैं. इस संरचना की खोज से पदार्थ-संरचना को समझने में एक क्रांति आई है. उदाहरण के लिए क्वासी क्रिस्टल में प्राप्त की गई खोजें क्रिस्टलीय संरचना की विशेषताओं को समझने में भी सहायक सिद्ध हुई हैं. क्रिस्टलीय, क्वासी-क्रिस्टलीय और अक्रिस्टलीय संरचनाओं में क्या संबंध है इसे समझने की दिशा में भी प्रयास चल रहे है. इस जानकारी का लाभ निश्चय ही पदार्थ-वैज्ञानिकों को प्राप्त होगा जो पदार्थ की संरचना और उसके गुणों का पारस्परिक संबंध ज्ञात करने और उसका उपयोग करने की दिशा में प्रयास कर रहे हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भू-वैज्ञानिक घड़ियां—7

दिन की लंबाई में परिवर्तन से काल-निर्धारण

□ डा॰ विजय कुमार उपाध्याय

□ दूरबीनों से किए गए अध्ययनों एवं सूर्य-ग्रहण के प्राचीन अभिलेखों के अध्ययन से पता चलता है कि पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने की गति में 5×10^{-22} रेडियन प्रति सेकंड की दर से ह्रास हो रहा है. दूसरे शब्दों में दिन की लंबाई में 1.5 सेकंड प्रति एक लाख वर्ष की दर से वृद्धि हो रही है.

इन्हीं अध्ययनों से यह भी पता चला है कि चन्द्रमा की माध्य गति नियमित रूप से घट रही है. साथ ही चन्द्रमा पृथ्वी से लगातार दूर हटता जा रहा है. पृथ्वी से चन्द्रमा के दूर हटने की गति 5 सेंटीमीटर प्रति वर्ष है. जीवाश्म वैज्ञानिक (पेलिओंटोलौजिकल) साक्ष्यों से मालूम हुआ है कि पृथ्वी से चन्द्रमा के दूर हटने की उपर्युक्त गति लगभग विगत 50 करोड़ वर्षों से ऐसी ही रही है. पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन गति एवं चन्द्रमा के पृथ्वी के चारों ओर अपने परिक्रमा पथ पर घूमने की गति में परिवर्तन का कारण पृथ्वी तथा चन्द्रमा द्वारा एक दूसरे की सतह पर उत्पन्न ज्वारीय बल है.

ज्वारीय बल के प्रभाव को सरलता से समझने के लिए हम यह कल्पना करें कि पृथ्वी की सम्पूर्ण सतह गहरे पानी के एक आवरण से ढकी हुई है. चूंकि पृथ्वी तथा चन्द्रमा के बीच का आकर्षण बल दोनों के बीच की दूरी पर निर्भर करता है, अतः पृथ्वी की सतह का जो भाग चन्द्रमा के सामने पड़ता है वहां अधिक आकर्षण बल के कारण सब से अधिक ऊंची तरंगे उठती हैं. फलस्वरूप पृथ्वी पर उपस्थित समुद्र घूर्णन के एक दीर्घ वृत्तज (एलिप्सॉयड) में विकसित हो जाता है. इस दीर्घ वृत्तज का बड़ा अक्ष चन्द्रमा की दिशा में व्यवस्थित (ओरिएंटेड) हो जाता है. यह अक्ष चन्द्रमा के मासिक परिक्रमा पथ के अनुसार पूरब की ओर घूमता जाता है.

पृथ्वी भी उपर्युक्त ज्वारीय बल के प्रभाव में अपने अक्ष पर पूरब दिशा में घूमती है. उपर्युक्त ज्वार के किसी विशेष बिन्दु के सापेक्ष पृथ्वी को अपने अक्ष पर एक घूर्णन पूरा करने में एक चान्द्र दिवस लगता है जिसका मान लगभग 24 घंटे 50 मिनट होता है. किसी विशेष स्थान पर दो उच्च ज्वारों के बीच का कालान्तर 12 घंटे 25 मिनट होता है. उसी स्थान पर निम्न ज्वार (लो टाइड) दो उच्च ज्वारों के मध्य काल पर आता है. ये वे अवसर हैं जब उस स्थान पर समुद्र तल उस विशेष चक्र के लिए उच्चतम तथा निम्नतम रहता है.

इस प्रकार ज्वार-शिखर (क्रेस्ट) की एक श्रृंखला पृथ्वी की सतह के चारों ओर पश्चिमवर्ती दिशा में गतिमान होती है. ये ज्वार चन्द्रमा की दैनिक गति के दौरान समुद्र की तलहटी के घर्षण के कारण चन्द्रमा से पीछे छूटते जाते हैं. चन्द्रमा का संक्रमण (ट्रांजिट) काल तथा उच्च ज्वारों के बीच की कालावधि कभी बराबर नहीं होती. इन दोनों के बीच का समयान्तर अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग होता है. इस समयान्तर का निर्धारण अध्ययन के आधार पर ही किया जा सकता है.

सूर्य भी समुद्र में ज्वार पैदा करता है परन्तु यह कम प्रभावी होता है. किसी भी पिंड द्वारा ज्वार उत्पन्न करने वाला बल उसकी दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है. यही कारण है कि यद्यपि सूर्य का पिंडमान चन्द्रमा की तुलना में बहुत ज्यादा है, परंतु उसके द्वारा उत्पन्न ज्वारीय बल चांद की तुलना में बहुत कम है क्योंकि सूर्य की पृथ्वी से दूरी चांद से पृथ्वी की दूरी की तुलना में कई गुनी अधिक है. ज्वार उत्पन्न करने वाले उपर्युक्त दोनों बल अलग-अलग स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं. दोनों बलों द्वारा उत्पन्न ज्वारों का समय चन्द्रमा की कला (फेज) पर निर्भर करता है. वृहत् ज्वार

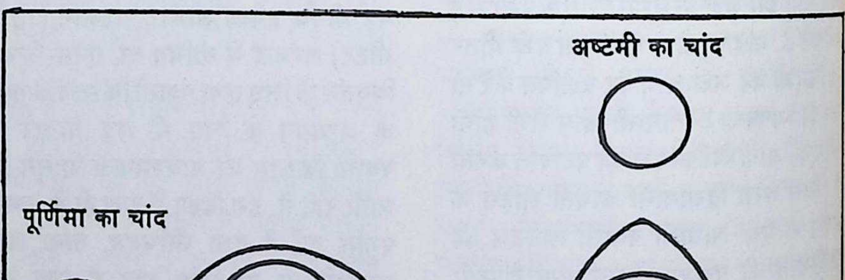

चित्र–1 वृहत् ज्वार पूर्णिमा के दिन और लघु ज्वार अष्टमी के दिन आता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्प्रिंग टाइड) प्रतिपदा (न्यू मून) या पूर्णिमा (फुल मून) के दिन होता है. ऐसा इस कारणवश होता है कि इस स्थिति में चन्द्रमा तथा सूर्य पृथ्वी पर उपस्थित समुद्र को एक ही दिशा या विपरीत दिशा में आकर्षित करते हैं तथा चान्द्र एवं सौर ज्वार एक दूसरे को प्रबलित (रिइन्फोर्स) करते हैं. अष्टमी के आस पास चांद जब लगभग आधा रहता है तो लघु ज्वार (नीप टाइड) आता है. इस स्थिति में पृथ्वी के सापेक्ष चांद तथा सूर्य आकाश में एक दूसरे से 90° की कोणीय दूरी पर रहते हैं, तथा एक के द्वारा उत्पन्न ज्वार दूसरे के बल द्वारा अंशतः निष्क्रिय (न्यूट्रलाइज) कर दिया जाता है (चित्र–1).

समुद्री तल-सतह की तरह पृथ्वी की सतह भी चन्द्रमा तथा सूर्य के ज्वारोत्पादक बल के द्वारा विरुपित (डिफॉर्मड) होती है. हालांकि यह विरुपण समुद्री सतह की तुलना में बहुत ही कम होता है. फलस्वरूप समुद्र तल में उठने वाला ज्वार समुद्र तथा भूपटल में उठने वाले ज्वार के अन्तर का प्रतिनिधित्व करता है. पृथ्वी द्वारा अपने अक्ष पर घूर्णन के कारण विषुवतीय उभार उत्पन्न होता है. इस उभार का घूर्णाक्ष दोनों पिंडों को जोड़ने वाली रेखा पर लंब नहीं होता है जिसके कारण चन्द्रमा द्वारा ज्वार उत्पादन की क्रिया जटिल हो जाती है. एक दूसरा बल भी है जो पृथ्वी द्वारा उस बिन्दु की चारों ओर भ्रमण के कारण पैदा होता है जो पृथ्वी-चन्द्रमा संहति (सिस्टम) का केन्द्र है. यह बल चन्द्रमा द्वारा उत्पन्न ज्वार को प्रबल (रिइन्फोर्स) कर देता है, क्योंकि यह बल उसी रेखा में क्रियाशील रहता है जो दोनों पिंडों को जोड़ती है. ज्वार के उपर्युक्त प्रबलीकरण (रिइन्फोर्समेंट) का आवृति काल 27.3 दिन होता है तथा यह बल चन्द्रमा की विपरीत दिशा में अधिक प्रभावी होता है.

समुद्री जल की सतह तथा स्वयं भूपटल में उत्पन्न ज्वार पृथ्वी के अक्ष पर घूर्णन की गति में अवरोध (ब्रेक) पैदा कर उसे शनैः शनैः कम करता है. फलस्वरूप दिन की लंबाई बढ़ती जाती है. प्राचीन ग्रहण-काल के अभिलेखों के अध्ययन से पता चलता है कि पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन काल में 0.0015 सेकंड प्रति शताब्दी की दर से वृद्धि हो रही है. यद्यपि यह वृद्धि दर बहुत ही नगण्य मालूम पड़ती है परंतु धीरे-धीरे अन्तर इतना अधिक हो जाता है कि कुछ ही शताब्दियों में फर्क सष्ट रूप से मालूम पड़ने लगता है. ऐतिहासिक काल में ही ग्रहणों के समय में बहुत अन्तर हो गया है. आधुनिक काल के वैज्ञानिकों ने पुरातन काल में घटित होने वाले पूर्ण सूर्य ग्रहणों के समय तथा स्थान की गणना की. इन गणनाओं के बाद पाया गया कि ग्रहण के वास्तविक समय तथा स्थान गणना द्वारा निकाले गए समय तथा स्थान से नहीं मिलते हैं. उदाहरणार्थ दो हजार वर्ष पूर्व पड़ने वाला पूर्ण सूर्यग्रहण गणित द्वारा निकाले गए समय से तीन घंटे पूर्व घटित हो चुका था तथा उसका स्थान गणना द्वारा निकाले गए स्थान से 45° पश्चिम देशान्तर पर था. इन गणनाओं में यदि दिन की अवधि बढ़ने की उपर्युक्त दर (0.0015 सेकंड प्रति शताब्दी) को भी शामिल कर लिया जाए तो स्थान तथा समय का हिसाब ठीक बैठता है.

भूसतह पर ज्वारीय घर्षण के कारण ही पृथ्वी का घूर्णन काल बढ़ता जाता है. अब चूंकि पृथ्वी-चन्द्र संहति (सिस्टम) कोणीय संवेग परिरक्षित रहना चाहिए अतः जैसे ही पृथ्वी की घूर्णण गति कम होती है साम्य बनाए रखने के लिए चांद इससे दूर हटता जाता है. पृथ्वी के केन्द्र से चन्द्रमा के केन्द्र तक की वर्तमान औसत दूरी 384404 किलोमीटर है. यह मान पृथ्वी की विषुवतीय त्रिज्या का लगभग 60.25 गुना है. महीने के अलग-अलग समय पर पृथ्वी से चांद की दूरी उपर्युक्त औसत मान से अलग-अलग होती है. इसका कारण यह है कि पृथ्वी के चारों और चन्द्रमा का परिक्रमा पथ उत्केन्द्रिक (एक्सेंट्रिक) है.

पृथ्वी से चांद की अल्पतम दूरी 356400 किलोमीटर तथा अधिकतम दूरी 466700 किलोमीटर है. जब पृथ्वी से चांद की दूरी पृथ्वी की त्रिज्या की लगभग ढाई गुनी थी तो महीने की लंबाई (अर्थात पृथ्वी के चारों ओर चांद द्वारा चक्कर लगाने का समय) आज की तुलना में एक चौथाई (अर्थात आज का लगभग $7\frac{1}{2}$ दिन) तथा दिन की लंबाई आज की तुलना में एक चौथाई से भी कम (अर्थात लगभग 6 घंटे) थी. ज्वारों द्वारा घर्षण के कारण पृथ्वी के घूर्णन वेग में कमी आती गई जिसके कारण दिन की लंबाई बढ़ती चली गई. इसका नतीजा यह हुआ कि पृथ्वी-चन्द्रमा संहति के संवेग परिरक्षण हेतु चन्द्रमा पृथ्वी से दूर हटता गया जिससे महीने की लंबाई बढ़ती गई. परंतु महीने की तुलना में दिन की लंबाई अधिक तेजी से बढ़ रही है.

वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि दिन तथा महीने की लंबाई तब तक बढ़ती रहेगी जब तक दोनों का काल मान बराबर नहीं हो जाता. उस स्थिति में दिन तथा महीने की लंबाई दोनों ही आज के 47 दिनों के बराबर होगी. वैसी स्थिति में पृथ्वी-चन्द्रमा संहति साम्यावस्था में पहुंच जाएगी. भविष्य के उस काल बिंदु पर पृथ्वी का सिर्फ एक ही गोलार्द्ध चांद के सामने रहेगा तथा दूसरा गोलार्द्ध चांद की विपरीत दिशा में रहेगा. यह ठीक वैसे ही होगा जैसे आज चांद का एक ही गोलार्द्ध पृथ्वी के सामने रहता है. उस काल में चांद के आकर्षण बल से उत्पन्न ज्वार पृथ्वी की घूर्णन गति में कोई परिवर्तन नहीं ला पाएगा. परंतु सूर्य द्वारा उत्पन्न ज्वार अपना कार्य पूर्ववत करता रहेगा. नतीजा यह होगा कि पृथ्वी चन्द्रमा समूह के इतिहास की पुनरावृत्ति उल्टे क्रम में होगी अर्थात चांद अब पृथ्वी से दूर हटने के बजाए उसके निकट आना प्रारंभ करेगा. अन्त में यह भी आशंका है कि वह पृथ्वी से टकराकर चूर-चूर हो जाएगा.

चार्ल्स डार्विन के पुत्र जॉर्ज डार्विन ने उन्नीसवीं शताब्दी में संसार के समक्ष अपनी एक परिकल्पना प्रस्तुत की थी. उसके अनुसार चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई है. जॉर्ज डार्विन के मतानुसार चांद के पृथ्वी से छिटककर अलग होने के पूर्व पृथ्वी अपने अक्ष पर सिर्फ चार घंटे में एक घूर्णन पूरा कर लेती थी. उस काल में पृथ्वी द्रवावस्था में थी. आज जैसे समुद्र का पानी चांद के आकर्षण बल के कारण प्रभावित होता है, उसी प्रकार जब पृथ्वी द्रव अवस्था में थी तो उस पर सूर्य के आकर्षण बल के द्वारा ज्वार उठते थे. द्रव पृथ्वी पर सूर्य के आकर्षण बल के कारण उत्पन्न दो लगातार ज्वारों के बीच का समयान्तराल पृथ्वी के अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्ष पर एक घूर्णन में लगे समय के बराबर था. उपर्युक्त दोनों समयान्तरालों के बराबर होने के कारण पृथ्वी की सतह पर उत्पन्न ज्वार की ऊंचाई बढ़ती चली गई तथा अन्त में इसका कुछ भाग पृथ्वी से छिटककर बाहर हो गया. यही छिटका हुआ भाग कालान्तर में संकुचित होकर चांद बना तथा पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लनाने लगा. चांद के पृथ्वी से छिटक कर निकलने से जो गड्ढा बना वही आज का प्रशान्त महासागर है. पृथ्वी पर उत्पन्न दो लगातार ज्वारों के बीच का समयान्तराल तथा पृथ्वी के घूर्णन काल के बराबर होने से ज्वार की ऊंचाई कैसे बढ़ती गई, इसे एक साधारण उदाहरण द्वारा बहुत ही आसानी से समझा जा सकता है. यदि कोई व्यक्ति एक कटोरे में पानी लेकर चलना शुरू करे तो उस पानी में तरंगें उठने लगती हैं जिससे पानी की सतह कटोरे की दीवार पर हिलती-डुलती दिखाई देती है. यदि संयोगवश पानी की सतह का दोलन-काल तथा कटोरे को लेकर चलने वाले व्यक्ति द्वारा एक कदम चलने का समय बराबर हो तो पानी की सतह में उत्पन्न तरंग की ऊंचाई लगातार बढ़ती जाएगी तथा अन्ततः पानी का कुछ भाग छिटक कर कटोरे के बाहर गिर जाएगा. (चित्र–2)

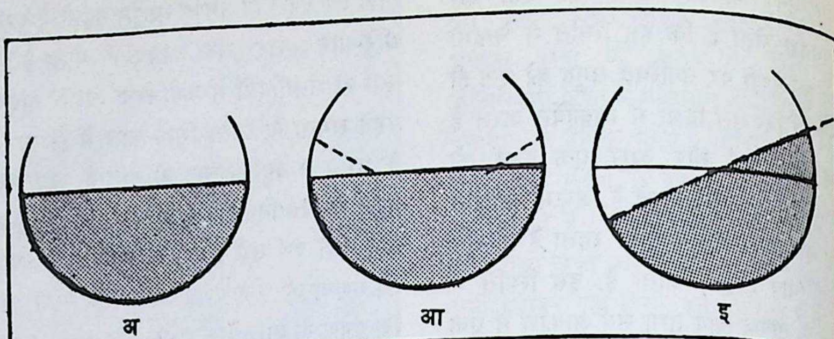

चित्र–2. अ–कटोरे में भरा हुआ जल, आ–चलने के कारण जल में तरंगें उठ रही हैं इ–जल छलक कर कटोरे से बाहर निकल गया

हाल्डेन नामक वैज्ञानिक ने दिन की लंबाई लगातार बढ़ते जाने का एक जैविक प्रमाण प्रस्तुत किया है. आज कल पाए जाने वाले कुछ प्रवाल जो उस तरह के समुद्रों में रहते हैं जहां ऋतु के अनुसार तापक्रम बदलते हैं. ऐसे प्रवालों में वार्षिक वलय (रिंग) पाए जाते हैं. इन में से कुछ प्रवाल ऐसे हैं जिनमें दैनिक विकास वलय भी साथ-साथ निर्मित होते हैं. आज कल पाए जाने वाले ऐसे प्रवालों के प्रत्येक वार्षिक वलय में 365 दैनिक विकास वलय होते हैं. साइलुरियन काल में अर्थात आज से लगभग 42 करोड़ वर्ष पूर्व के प्रवाल कुछ चट्टानों में पाए गए हैं. उनमें भी वैसे ही वार्षिक तथा दैनिक विकास वलय देखे जा सकते हैं. परन्तु आज के प्रवालों की तुलना में एक अन्तर इनमें सष्ट दिखाई देता है. उस समय के प्रवाल के प्रत्येक वार्षिक वलय में दैनिक वलयों की संख्याा 420 है. इससे प्रमाणित होता है कि पृथ्वी की अपने परिक्रमा पथ पर वार्षिक गति तो नहीं बदली परन्तु उसकी दैनिक घूर्णन गति में अन्तर आ गया है अर्थात आज जहां साल में 365 दिन होते हैं, उस साल में 420 दिन होते थे. तात्पर्य यह कि उस समय दिन की अवधि आज की तुलना में छोटी थी. इसी प्रकार जीवाश्मित प्रवालों के वार्षिक वलय के अध्ययन से पता चलता है कि लगभग 40 करोड़ वर्ष पूर्व साल में दिनों की संख्या 400 थी, जबकि आज से 30 करोड़ वर्ष पूर्व एक वर्ष में 390 दिन होते थे. क्रिटेशियस काल में, अर्थात आज से लगभग 8 करोड़ वर्ष पूर्व एक वर्ष में दिनों की संख्या 370 होती थी. इस प्रकार के अध्ययनों के आधार पर भूवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि विगत 1.5 अरब वर्षों में दिन की लंबाई लगभग दुगुनी हो गई है. सारणी–1 में विभिन्न भूवैज्ञानिक कालों के दौरान दिन की लंबाई के आंकड़े दिए गए हैं जो खगोलवैज्ञानिक एवं जीवाश्मवैज्ञानिक विधियों द्वारा मालूम किए जाते हैं.

सारणी–1. विभिन्न भूवैज्ञानिक कालों के दौरान दिन की लंबाई के आंकड़े

कालानुक्रमिकी	खगोल वैज्ञानिक विधियों द्वारा निर्धारित दिन की लंबाई	जीवाश्म वैज्ञानिक विधियों द्वारा निर्धारित दिन की लंबाई
वर्तमान काल में	24 घंटे	24 घंटे
8 करोड़ वर्ष पूर्व	23 घंटे 40 मिनट	23 घंटे 39 मिनट
30 करोड़ वर्ष पूर्व	22 घंटे 45 मिनट	22 घंटे 27 मिनट
40 करोड़ वर्ष पूर्व	22 घंटे 20 मिनट	21 घंटे 50 मिनट
42 करोड़ वर्ष पूर्व	22 घंटे 15 मिनट	20 घंटे 49 मिनट

सारणी–1 से यह स्पष्ट है कि दोनों विधियों द्वारा निकाले गए दिन की लंबाई में थोड़ा अन्तर है. इस अन्तर का कारण यह हो सकता है कि प्रारंभ में जब पृथ्वी द्रवावस्था में थी तो इसकी सतह पर सिर्फ सूर्य के आकर्षण का ही प्रभाव पड़ा हो क्योंकि चन्द्रमा तो उस काल में उपस्थित नहीं था. चन्द्रमा की उत्पत्ति तो लगभग 13 करोड़ वर्ष पूर्व हुई. अकेले सूर्य के प्रमाण के कारण दिन की लंबाई धीमी गति से बढ़ी, तथा चन्द्रमा की उत्पत्ति के बाद यह दर 1.5 सेंकड प्रति एक लाख वर्ष हो गई. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षरों की कहानी

□ राजेन्द्र कुमार राय

चर्चित पुस्तक: अक्षरों की कहानी; लेखक: गुणाकर मुले; प्रकाशक: ज्ञान विज्ञान प्रकाशन, सी-4 बी/123, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058; प्रथम संस्करण: 1989; पृष्ठ: 100; मूल्य: 10 रुपए.

□ अक्षर ....., तरह-तरह की पुस्तकें, तरह-तरह के अक्षर दुनिया. में अब तक करोड़ों पुस्तकें छप चुकी हैं, हजारों रोज छपती हैं और सबके मूल में हैं अक्षर. यह पुस्तक व यह समीक्षा भी, अक्षरों की ही देन हैं. इन्हीं अक्षरों के महत्व पर प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है.

अक्षरों की खोज मनुष्य की सबसे बड़ी खोज कही जा सकती है. इसकी खोज के बाद ही मनुष्य अपने विचारों को लिखकर रखने लगा. अक्षर कब बनाए गए, कहां बने और किसने बनाए पुस्तक इन सबसे एक दिलचस्प साक्षात्कार कराती है.

अक्षरों से लिपि बनती है. यह समीक्षा पुस्तक व पत्रिका सभी जिस लिपि में छपी हैं, उसे 'देवनागरी' कहते हैं. यह हमारी राष्ट्रलिपि है. हमारे देश में और भी लिपियां हैं, जितनी भाषाएं उतनी लिपियां. लेकिन लिपियों का यह अंतर केवल ऊपरी दिखावा है. वास्तव में आज के भारत की सारी लिपियों ने प्राचीन भारत की एक ही मूल लिपि से जन्म लिया है. इस मूल लिपि को आज हम ब्राह्मी लिपि के नाम से जानते हैं. दुनिया की और वस्तुओं की तरह लिपियों का भी विकास होता रहा है. लिपियां खत्म भी होती रही हैं. लिपियों के बारे में जानकारी 'कितनी लिपियां?' नामक अध्याय में दी गई है.

आज से लगभग 2250 साल पहले हमारे देश पर मौर्य सम्राट अशोक का शासन था. अशोक ने लोगों को आदेश देने के लिए एक तरीका खोज निकाला था. उस समय संचार का कोई माध्यम नहीं था. इस लिए अशोक ने अपनी नई नीति के आदेश पत्थरों पर खुदवाए देश भर में. यही हैं अशोक के अभिलेख. अशोक ने अपने ये लेख जिस लिपि में खुदवाए हैं, उसे आज हम ब्राह्मी लिपि के नाम से जानते हैं. अशोक ने स्वयं इस लिपि को यह नाम नहीं दिया था. अशोक के काफी बाद में लिखे गए कुछ बौद्ध और जैन ग्रंथों में लिपियों की सूचियां मिलती हैं. लिपियों की इस सूचि में पहला नाम ब्राह्मी लिपि का है. इसलिए आधुनिक विद्वानों ने मान लिया है कि अशोक के समय से चली आ रही हमारे देश की प्रमुख लिपि का नाम ब्राह्मी है.

अशोक के कोई दो सौ साल पहले उत्तर-पश्चिमी भारत में 'खरोष्ठी लिपि' ने जन्म लिया था. इसके अक्षर पश्चिम एशिया की 'आरमेई लिपि' के आधार पर बने थे. यह लिपि दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी जाती थी. अशोक के बाद लगभग छह सौ साल तक 'खरोष्ठी' लिपि का इस्तेमाल होता रहा. लेकिन ब्राह्मी लिपि को पढ़ पाना संभव हुआ अभी कोई डेढ़ सौ साल पहले ही. ब्राह्मी लिपि के विकास की मनोरंजक कहानी 'ब्राह्मी लिपि' व 'ब्राह्मी लिपि की खोज' नामक अध्याय में दी गई है. सर्वप्रथम 1838 में एक अंग्रेज विद्वान जेम्स प्रिन्सेप ने अशोक के इस ब्राह्मी लिपि के अक्षरों को पहचाना. तभी यह पता चला कि अशोक के अभिलेखों की भाषा 'प्राकृत' है.

सन् 1920 के बाद एक नई सभ्यता की खोज हुई, इसे 'सिंधु' या 'हड़प्पा सभ्यता' का नाम दिया गया. आज सिंघु सभ्यता की लिपि एक बड़ी पहेली बनी हुई है. पिछले सात दशकों से दर्जनों विद्वान इसे पढ़ने की कोशिश में जुटे हैं, परन्तु अभी तक इस लिपि को पढ़ा नहीं जा सका है. पुरालिपियों को पढ़ते समय सबसे अधिक कठिनाई का सामना तब करना पड़ता है जब लिपि और भाषा दोनों ही अज्ञात होती है. हजारों साल गुजर जाते हैं, देश के लोग, संस्कृति और धर्म बदल जाते हैं. लोग पुरानी भाषा व लिपि को भूल जाते हैं. फिर नए सिरे से उन्हें खोजना एक पहेली बन जाती है. यह सब बातें 'सिंध सभ्यता की लिपि' नामक अध्याय में कही गई है.

लिपि के जन्म के बारे में पुस्तक कहती है कि दुनिया की सबसे पुरानी लिपि को जन्म देने वाले सुमेरी लोग थे. ईराक देश से बहती हुई को नदियां दजला तथा फरात—फारस की खाड़ी में गिरती हैं. इन दो नदियों के बीच के प्रदेश को मेसोपोटामिया कहते हैं. इन नदियों के मुहाने के प्रदेश का पुराना नाम सुमेर था और यहां रहने वाले लोग सुमेरी कहे जाते थे.

आज की वर्णमालात्मक लिपियां एक दिन का करिश्मा नहीं है. विकास होते-होते पुरानी लिपियां ही वर्णमाला की स्थिति पर आ पहुंची हैं. संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आज से तीन हजार साल पहले वर्णमालात्मक लिपियां बननी शुरू हो गई थीं. यह जरूरी नहीं कि सभी प्राचीन लिपियां चित्रलिपियों से शुरू होकर अंत में वर्णमाला के स्तर तक पहुंच ही गई हों. वर्णमाला की स्थिति पर पहुंचने से पहले ही बहुत सारी प्राचीन लिपियां समाप्त हो चुकी थीं, जैसे, मिस्र की प्राचीन लिपि और मेसोपोटामिया की कीलाक्षर लिपि. परन्तु संसार में एक लिपि आज भी इस नियम का अपवाद बनी हुई है. आज भी वह लिपि चित्रात्मक या भावचित्रात्मक स्वरूप की है. उसमें आज भी हजारों संकेत हैं. वह लिपि है—चीनी लिपि.

आज से करीब चार हजार साल पहले चीनी लिपि जन्म ले चुकी थी—चित्र संकेतों और भाव संकेतों के रूप में. पर तब से आज तक इस लिपि में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है. चीनी लिपि में कुल मिलाकर लगभग 50 हजार चिन्ह हैं. इनमें से छह-सात चिन्हों का ज्यादा इस्तेमाल होता है. इसलिए किसी भी व्यक्ति को चीनी भाषा को जानने के लिए इतने लिपि संकेत सीखने ही पड़ते हैं. इसी कारण चीनी भाषा को दुनिया की सबसे कठिन भाषा माना जाता है. चीनियों ने एक वर्णमालात्मक लिपि को जन्म नहीं दिया, इसका प्रमुख कारण है उनकी भाषा की विशेषता. चीनी भाषा एकाक्षरी है, इसलिए चीनी लिपि भी एकाक्षरी बन गई है.

बिना किसी बाहरी प्रभाव के भी स्वतंत्र रूप से किसी सभ्यता का उदय और विकास हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है. इस बात का उदाहरण है मध्य अमरीका की प्राचीनमय सभ्यता. लोगों ने न केवल एक लिपि बल्कि एक अच्छी सभ्यता को भी जन्म दिया था. हाल में ही इस लिपि को समझने में सोवियत वैज्ञानिकों ने सफलता प्राप्त की है.

ऐसे ही दुनिया भर की भाषाओं और लिपियों की जानकारीं पुस्तक के सोलह अध्यायों—अक्षरों का महत्व, कितनी लिपियां, ब्राह्मी लिपि, ब्राह्मी लिपि की खोज, सिंधु सभ्यता की लिपि, लिपि का जन्म, मिस्र की प्राचीन लिपि, यूनानी लिपि, चीनी लिपि, आरमेई लिपि, मय सभ्यता की लिपि, ब्राह्मी लिपि का विकास और विस्तार, कुटिला विस्तार, नागरी लिपि, विदेशों में भारतीय लिपि और अक्षरों का भविष्य में—बंटी है.

पुस्तक पाकेट बुक आकार में है. कहीं-कहीं प्रूफ की गलतियां भी दिखती हैं. पुस्तक का आवरण, संपादन और छपाई साधारण है. पुरानी लिपियों का चित्रण अच्छा बन पड़ा है. यह पुस्तक ज्ञान-विज्ञान प्रकाशन द्वारा वैज्ञानिक विषयों पर प्रकाशित श्रृंखला की एक कड़ी है. विज्ञान के विद्यार्थियों के अलावा आम पाठकों के लिए भी यह पुस्तक मनोरंजक है. □

समय

□ राजेन्द्र कुमार राय

चर्चित पुस्तक: समय; लेखक: रामचन्द्र तिवारी; प्रकाशक: विज्ञान भारती, 36-सी कनाट प्लेस, नई दिल्ली-110001, पृष्ठ: 48, मूल्य: 16 रुपए.

□ मनुष्य ने जब यह देखा कि सूर्य की उपस्थिति से दिन और उसकी अनुपस्थिति से रात होती है तो वह समय का सूक्ष्मतर मान स्थिर करने लगा. सबसे पहले उसने समय को दिन और रात में विभाजित किया, फिर रात में उगने वाले चांद को छोटा बड़ा होते देखकर महीना या मास स्थिर किया.

जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया मनुष्य का जीवन भी अधिकाधिक कार्यकुशल व पेचीदा होता गया. पेचीदगी बढ़ने के साथ-साथ समय के सूक्ष्म व अधिक सही ज्ञान के लिए कुशल साधन की आवश्यकता हुई. इस आवश्यकता की पूर्ति की लिए मनुष्य ने तरंह-तरह के प्रयोग शुरू किए, दीपक घड़ी बनाई गई और जल घटिका में किसी बड़े पात्र में पानी को बूंद-बूंद गिराकर पानी के स्तर के घटाव से समय बीतने का हिसाब लगाया. आज समय को मापने के लिए परमाणु घड़ियां उपलब्ध हैं.

इसी 'समय' पर विज्ञान भारती प्रकाशन ने 'समय' शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की है. इस पुस्तक द्वारा इस प्रकाशन ने वैज्ञानिक विषयों पर प्रकाशित पुस्तक श्रृंखला की एक कड़ी जोड़ी है. पुस्तक चार अध्यायों—क्षण और शताब्दी, सौर परिवार में समय, पुराने और नए कैलेण्डर तथा समय-मापक अग्नि से परमाणु तक—में बंटे है.

रेडियो कार्बन घड़ी के बारे में एक जगह लिखा है कि समय-मापन विद्या में एक नया आविष्कार, जो रेडियो कार्बन घड़ी कहलाता है, पुराने इतिहास के काल निश्चय के लिए नाभिकीय भौतिकी के सिद्धान्तों का उपयोग है. रेडियो कार्बन घड़ी की चालक ऊर्जा उस कार्बन-14 से आती है जो हजारों वर्ष पहले पृथ्वी के वायुमण्डल में से गुजरती अंतरिक्ष किरणों द्वारा बनाया गया था. जब अंतरिक्ष किरणें वायुमण्डल की ऊपरी सतहों में नाइट्रोजन के परमाणुओं से टकराती हैं तो कुछ नाइट्रोजन रेडियो सक्रिय कार्बन-14 में परिवर्तित हो जाती हैं. यह कार्बन-14 वायुमण्डल की आक्सीजन से मिलकर कार्बन डाइआक्साइड बनाती है. पौधे जब तक जीते हैं अपने खाद्य सामान्य कार्बन डाइआक्साइड भी सोखते हैं. जब जीव-जंतु इन पौधों को खाते हैं तो यह कार्बन-14 उनके ऊतकों की रचना में भी पहुंच जाता है. जब पौधा या जंतु मर जाता है, तो भी उसके शरीर में उपस्थित कार्बन-14 रेडियो सक्रिय कण उत्सर्जित करता रहता है. इसकी शक्ति गाइगर काउण्टर से नापी जा सकती है. समय बीतने के साथ इस विकिरण की ज्ञात दर में कमी होती है. ताजा कार्बन-14 के साथ इस दुर्बल पड़े विकिरण की तुलना करके पौधे या जंतु पदार्थ का काल निश्चित किया जा सकता है. इसके लिए इन पदार्थों का अपने मौलिक रूप में सुरक्षित रहना आवश्यक नहीं है. लेकिन यहां इस द्योतक विधि के आविष्कारक डा॰ विलियर्ड एफ॰ लिबी और रेडियो कार्बन घड़ी के बारे थोड़ी और जानकारी लेखक को देनी चाहिए थी. इस विधि के विकास के लिए डा॰ लिबी को 1958 का रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार मिला था.

परमाणु घड़ी के बारे में पुस्तक कहती है कि पहली परमाणु घड़ी सन् 1949 मे बनाई गई थी. इस घड़ी में 'अमोनिया' का अणु उपयोग किया गया था क्योंकि यह अपनी पिरामिडी रचना के कारण लोलक की भांति कार्य करता है. अमोनिया एक गैस है. इसमें एक नाइट्रोजन परमाणु और तीन हाइड्रोजन परमाणु होते हैं. अमोनिया के एक अणु का इसमें उपयोग किया जाता है. यह अणु नाइट्रोजन परमाणु की एक निश्चित दूरी के बीच प्रति सेकन्ड 2387 बार कम्पित होते हैं. नाइट्रोजन परमाणु अपने दांए-बांए कम्पनों द्वारा ऊर्जा भेजता है जो क्वार्टज क्रिस्टल की तरह विद्युत घड़ी में भेजी जाती है. आजकल की परमाणु घड़ियों में 'सीजियम' का गैसीय रूप उपयोग में लाया जाता है. यह घड़ी अमोनिया घड़ी से ज्यादा शुद्ध होती है. इसके 300 वर्षों में केवल एक सेकंड आगे पीछे होने की संभावना है.

ऐसी ही कई और रोचक बातों की जानकारी यह पुस्तक देती है. जैसे—महीने बारह ही क्यों होते हैं? हम सप्ताह में एक दिन विश्राम क्यों करते हैं? नक्षत्र समय क्या होता है? प्रकाश का समय कैसे बढ़ाया जाता है? आप तारों से अपनी घड़ी कैसे मिलाएं? मोमबत्ती घड़ी कैसे बनाएं? आरम्भिक घड़ियां कैसी थी? और रेलवे द्वारा कौन सी समय प्रणाली का उपयोग किया जाता है, आदि.

अंत में समय के बारे में पुस्तक कहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—नित्य प्रति के जीवन में और विज्ञान में भी समय का महान महत्व इस बात में है कि वह दो घटनाओं के बीच काल का अंतराल नापता है. हम यह नहीं कह सकते हैं कि कोई घटना समय के कारण होती है. केवल यही कि जब वह होती है तो समय हमें उसे-और वह कितना देर रहती है, यह देखना संभव करता है. इस प्रेक्षण से हमें अवधि, गति और परिवर्तन का ज्ञान होता है.

पुस्तक को बोधगम्य बनाने के लिए पर्याप्त मात्रा में चित्र दिए गए हैं. कागज की क्वालिटी छपाई व कलर पृष्ठ साधारण हैं अंत में दिए गए तकनीकी शब्दों के अंग्रेजी पर्याय भी उपयोगी हैं. संपादन साधारण है. बच्चों और छात्रों के लिए पुस्तक उपयोगी है. □

जल-कृषि

□ राजेन्द्र कुमार राय

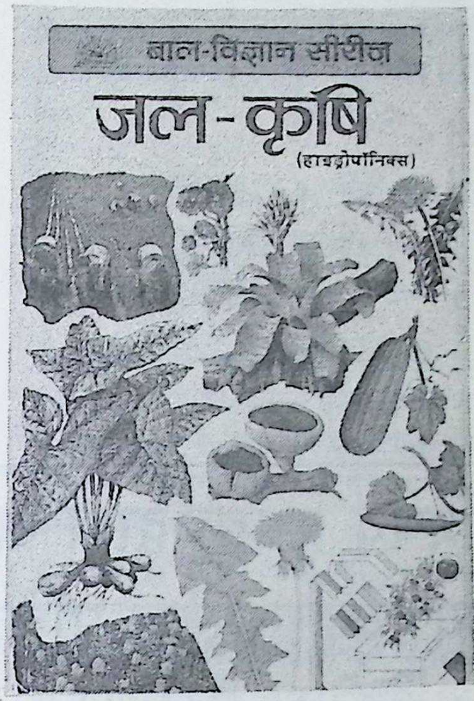

चर्चित पुस्तक: जल-कृषि (हाइड्रोपानिक्स); लेखक: दिनेश मणि; प्रकाशन: पुस्तकायन, 2/4240; अंसारी रोड नई दिल्ली-110002; पृष्ठ: 48; मूल्य: 25 रुपये.

□ हिन्दी विज्ञान साहित्य में कृषि जैसे विषय पर रुचिकर और लोकप्रिय पुस्तकों का एक तरह से अभाव ही है. बालकों के लिए तो अच्छी पुस्तकें नहीं के बराबर कही जा सकती हैं. ऐसे में पुस्तकायन प्रकाशन द्वारा कृषि पर प्रकाशित कुछ पुस्तकों का यह कदम स्वागत योग्य है.

पुस्तक चर्चित पुस्तक की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह वस्तुतः आज ऐसे विज्ञान साहित्य की ही आवश्यकता है जिसका उपयोग वे सामान्य पाठक कर सकें जिन्होंने विज्ञान का विशेष अध्ययन तो नहीं किया, किन्तु उसके बारे में जानना चाहते हैं. चर्चित पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हो सकती है तथा सहायक पाठ्य पुस्तक का काम कर सकती है.

पुस्तक छः अध्यायों में बंटी है वे हैं हाइड्रोपोनिक्स क्या है, पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व, जल कृषि की विधियां तथा आवश्यक सामग्री पोषण मिश्रण, पौधे उठाने की विधि व जल कृषि का भविष्य. पहले अध्याय में जल-कृषि की उत्पत्ति के बारे में बताया गया है. जल-कृषि के जनक कहलाने का श्रेय अमेरिका के डा० विलियम एफ० गेरिक को जाता है. यद्यपि सन् 1929 तक इस विधि द्वारा पौधों को उगाने का तरीका प्रयोगशाला तक ही सीमित था. गेरिक ने अपने प्रयोगों में टमाटर के पौधे को 25 फुट की ऊंचाई तक उगाने में सफलता प्राप्त करके यह सिद्ध कर दिया कि यह तकनीक बड़े स्तर पर खेती करने के लिए भी उपयोगी हो सकती है. जल संबंधों का पहले पहल उपयोग 1860 में एक जर्मन कृषि रसायन नोप और एक वनस्पति वैज्ञानिक सेक्स ने किया था. लेकिन व्यवसायिक स्तर पर जल संबंधों को फसल उगाने के लिए प्रयुक्त करने का श्रेय गेरिक को है.

वास्तव में जल-कृषि बिना मिट्टी के विभिन्न रासयनिक पोषक विलयनों में पौधों को उगाने की एक वैज्ञानिक कला है. जल-कृषि के कुछ फायदे भी हैं, जैसे पौधों को घर में भी उगाया जा सकता है और वर्ष भर फसलें ली जा सकती हैं. उन स्थानों पर जहां कृषि योग्य भूमि का अभाव हो वहां भी जल-कृषि की जा सकती है. जल-कृषि पर अनेक सफल प्रयोग सेंट्रल एक्सपेरीमेंट फार्म, ओटावा (कनाडा), यूनिवर्सिटी आफ प्राग (चेकोस्लोवाकिया) और बालियो लेवोरेटरी, हैलसिकी में पाए हैं. भारत में पहला हाइड्रोपोनिक्स 1946 में पश्चिम बंगाल के लिम्पोग में स्थापित किया गया था. और डगलस वह व्यक्ति था जिसने जल-कृषि से संबंधित प्रयोग किए. उसके द्वारा प्रयुक्त विधि ही बाद में 'बंगाल पद्धति' के नाम से प्रसिद्ध हुई.

चर्चित पुस्तक में चित्रों का आधार छोटा व कम करके थोड़ी सामग्री दी गई होती तो अच्छा रहता, जैसे पृष्ठ 13, 17, 33, 34, 37 व 41 का उपयोग थोड़ी सामग्री देने से भी किया जा सकता है.

जल-कृषि की तीन विधियां विशेष रूप से प्रयोग में लाई जा रही हैं—जल या विलयन संवर्ध, बालू संवर्ध और कंकड़ संवर्ध. जल संवर्ध में पौधों की जड़े पानी में लटकती रहती हैं व जल के [illegible] पोषक तत्व तथा खनिज घुले [illegible] हैं. इन्ही पौधों की जड़े अपने मूल रोमों की सहायता से ग्रहण करती हैं. बालू संवर्ध में पौधों को बालू में उगाया जाता है. बालू ऐसी होनी चाहिए कि वह नमी को सोख सके, साथ ही इसमें हवा का आदान प्रदान भी ठीक हो. कंकड संवर्ध में पौधों बजरी या कंकड से उगाए जाते हैं और घोल नीचे से दिया जाता है. इसे अर्ध-सिंचित विधि भी कहते हैं. ये सब बातें जल-कृषि की विधियां और आवश्यक सामग्री नामक अध्याय में दी गई

जल-कृषि के भविष्य नामक अध्याय में लिखा है कि यह एक नया विज्ञान है. कुछ वर्षों से भारत में भी जल-कृषि की नई संभावना विकसित हुई हैं. अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वसनीय होने के नाते इसकी बंगाल पद्धति काफी लोकप्रिय हो रही हैं. यह सस्ती व सरल तकनीक है. जल-कृषि द्वारा बहुफसली एवं सघन खेती विश्व के सामाजिक ढांचे में आश्चर्यजनक परिवर्तन ला सकती है.

पुस्तक में जल-कृषि पर नए अनुसंधानों के बारे में थोड़ी और अधिक जानकारी दी गई होती, तो अच्छा रहता है, जैसे न्यूयार्क (अमेरिका) स्थित कारनेल विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिकों ने एक नई प्रौद्योगिकी विकसित की है. यह प्रौद्योगिक जीवाणु आधारित है. 1970 में जनरल इलेक्ट्रिक की एक परियोजना के अंतर्गत पर्यावरण नियंत्रित कांच गृह (ग्रीन हाउस) में बिना मिट्टी के टमाटर उगाए गए थे. पर्यावरण नियंत्रित कांच गृहों में रोशनी की जगमाहट के बीच पैदा हुए इन टमाटरों का स्वाद वैसा ही थी जैसा गर्मियों में खेतों में उगाए गए टमाटरों का होता है. कृषि वैज्ञानिक विलियम जे० जेवेल की इस नई विधि में पौधे भूमि के बजाए गंदे जल में उगाए जाते हैं. पानी वाले पौधों का इस्तेमाल करके जल-मल को भी इस विधि द्वारा स्वच्छ किया जा सकता है. ऐसे दो दर्जन से अधिक संयंत्र अमेरिका में काम कर रहे हैं.

पुस्तक का आवरण आकर्षक है. कागज की क्वालिटी व छपाई साधारण है. कई जगह संपादन की जरूरत है. कई जगह वास्तव में जल-कृषि बिना मिट्टी के कृषि के बारे में जागरुक पाठकों को तो पुस्तक शायद अधिक उपयोगी न लगे, पर छात्र और विज्ञान में रुचि रखने वाले आम पाठकों के लिए इसमें अच्छी जानकारी है. पुस्तक का उद्देश्य भी यही है. □

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित
अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1991
व्हिटेकर पुरस्कार
दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से संबंधित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए.
(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जाएगा.
(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है.
(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है.
(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1991 से दिसम्बर 1991 माह के बीच प्रकाशित हो.
(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक हो.
(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते.

लेख निम्न पते पर भेजें–

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे पहचानते हैं हम परिचितों की आवाज ?

□ श्यामलाल धीमान

□ हम परिचितों की आवाज को शोर-शराबे के बीच भी पहचान लेते हैं. भले ही आवृत्ति एक ही हो, और प्रबलता की दृष्टि से अनेक व्यक्तियों की आवाज, गुणता की दृष्टि से हरेक मनुष्य की आवाज भिन्न होती है. दो व्यक्तियों की आवाजों का गुणता की दृष्टि से समान होना लगभग असंभव है और ऐसा केवल संयोग से ही हो सकता है. हम ध्वनि की गुणता के आधार पर ही विभिन्न व्यक्तियों की आवाजों में विभेद पैदा करके ही उन्हें पहचानते हैं.

यह ध्वनि की गुणता क्या है? वास्तव में ध्वनि की गुणता उसकी जटिलता में निहित है. यह जटिलता विभिन्न संनादी ध्वनि तरंगों के असंख्य संयोगों के फलस्वरूप पैदा होती है. संनादी ध्वनि तरंगों की आवृत्तियां स्वर-तंत्र की मूल आवृत्ति के एक, दो, तीन आदि सम या विषम गुणज में होती है. यदि विभिन्न संनादियों को उनके क्रम और तीव्रता (अथवा आयाम) के अनुसार किया जाए तो असंख्य अलग-अलग संयोग बनते हैं. पुनः यदि हम एक संयोग को एक मनुष्य का स्वर मानें तो असंख्य मनुष्यों को ऐसे स्वर प्रदान किए जा सकते हैं. हमारी दृष्टि से चाहे दो मनुष्यों की आवाज हूबहू मिलती हो, परन्तु वास्तविकता में वे एक समान कभी नहीं हो सकती है.

अब हम यह विवेचना करेंगे कि एक ही आवृत्ति और तीव्रता के होते हुए भी आखिर क्यों दो वाद्य-यंत्रों की आवाजें एक जैसी नहीं होती. उनके सुर समान होते हुए भी लय समान नहीं होती. मान लीजिए कि वायलिन और पियानो एक ही सुर यानी आवृत्ति की ध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं, और उनकी यह आवृत्ति 440 हर्ट्ज है. अब यदि हम दोनों वाद्ययंत्रों की ध्वनि तरंगों के लिए समय-विस्थापन ग्राफ खींचे तो चित्र–(क) की भांति ग्राफ प्राप्त होता है. स्पष्टतया यह ग्राफ दोनों वाद्य-यन्त्रों के लिए भिन्न-भिन्न है, जो

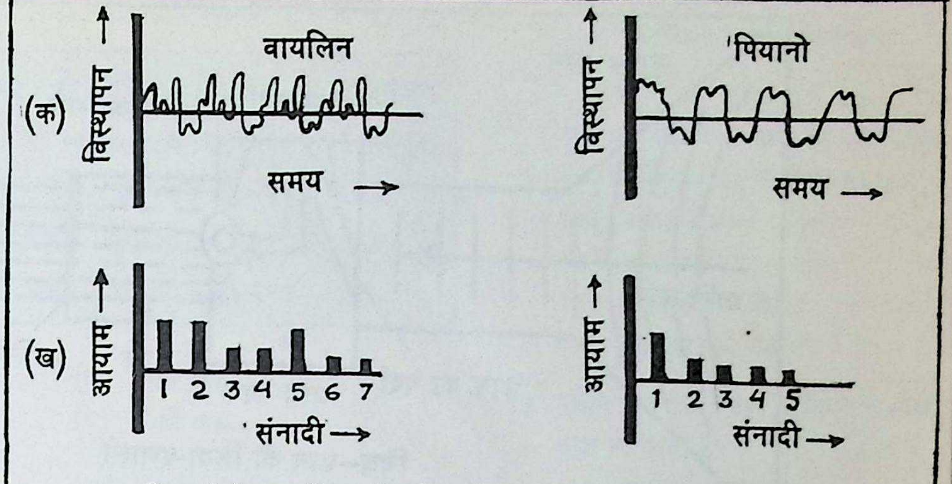

चित्र-(क) वायलिन और पियानो के लिए मूल 440 हर्ट्ज आवृत्ति पर समय-विस्थापन ग्राफ. (ख) संगत अधिस्वरक और उनके आयाम

इन वाद्य-यंत्रों की मूल आवृत्ति 440 हर्ट्ज पर संनादियों के क्रम और उनकी तीव्रता में विभेद के कारण है. चित्र–(ख) में जहां वायलिन के लिए प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम संनादी ध्वनि की लय उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं, वहीं पियानो के लिए प्रथम और द्वितीय संनादी ही इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं. तृतीय एवं चतुर्थ संनादी भी ध्वनि की लय अर्थात् उसकी जटिलता को बढ़ा देते हैं. परन्तु इन संनादियों का आयाम कम होने के कारण लयबद्धता में कमी आ जाती है. चित्र से स्पष्ट है कि वायलिन में उत्पन्न संनादियों की संख्या और आयाम पियानो के सापेक्ष अधिक हैं, अतः वायलिन में सुर की लयबद्धता (सही कहें तो धुन) 440 हर्ट्ज पर पियानो के सापेक्ष अधिक है यानी कि वायलिन में ध्वनि तरंगें पियानो की ध्वनि तरंगों के सापेक्ष अधिक जटिल हैं. इस प्रकार, स्पष्ट है कि संनादियों की उपस्थिति से ही ध्वनि में गुणता पैदा होती है. इस गुणता के कारण ही हम विभिन्न वाद्य-यंत्रों और व्यक्तियों की आवाजों में विभेद पैदा कर सकते हैं. □

हम ध्वनि कैसे सुनते हैं ?

□ श्यामलाल धीमान

□ हम अपने कानों से 20 हर्ट्ज से लेकर 20,000 हर्ट्ज आवृत्ति तक की तरंगे सुन सकते हैं. वायु में ध्वनि की गति 330 मीटर प्रति सेकंड होती है, इसलिए इन आवृत्तियों के संगत ध्वनि तरंगों की लंबाई 1.65 सेंटीमीटर से लेकर 16.5 मीटर तक होती है. ध्वनि तरंगों, जो यांत्रिक तरंगे भी कहलाती हैं, को सुनने की प्रक्रिया अनुनाद के सिद्धान्त पर आधारित है. अनुनाद की परिघटना तभी घटित होती है जब बाह्य ध्वनि तरंगों की आवृत्ति आंतरिक कान की स्वाभाविक आवृत्ति के बराबर हो जाए. इसको समझने के लिए यदि हम गिटार के किसी तार को झंकरित करके पियानो के पास लाएं तो पियानो की संगत तार भी कंपन करना शुरू कर देता है. यह अनुनाद के कारण होता है. इस स्थिति में गिटार और पियानो के तारों की स्वाभाविक आवृत्तियां बराबर हो जाती हैं. इस प्रकार-एक तार के कंपन करने से दूसरा तार भी कंपन करने लगता है. कान में यह प्रक्रिया कैसे होती है– आइए इस पर चर्चा करें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

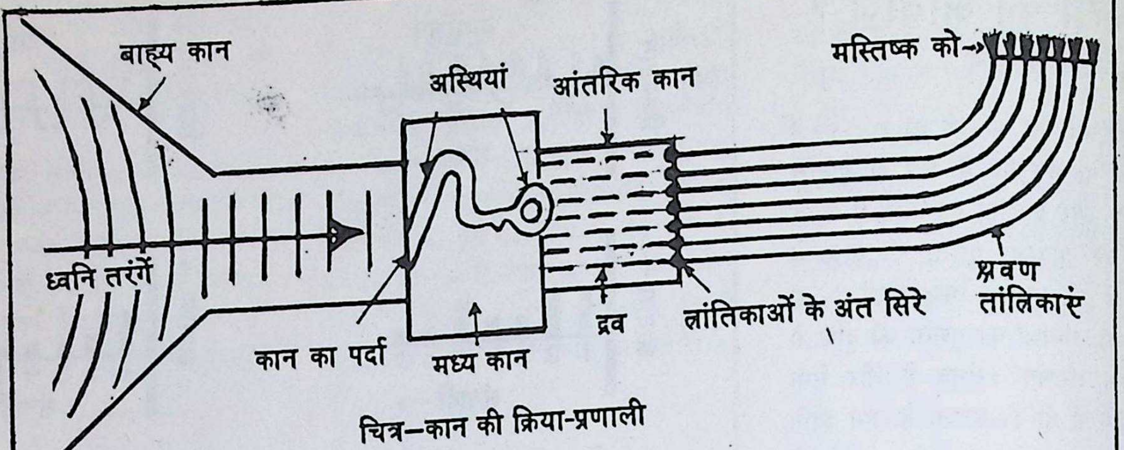

चित्र—कान की क्रिया-प्रणाली

हमारे कान के तीन मुख्य भाग होते हैं—बाह्य, मध्य और आंतरिक कान. ध्वनि तरंगे सबसे पहले बाह्य कान में प्रवेश करती हैं तथा एक नली के जरिए मध्य कान तक पहुंचती हैं और कान के पर्दे से टकराती है. पर्दा अनुनाद के कारण कंपन करने लगता है. यह पर्दा आगे सुग्राहक अस्थियों से जुड़ा होता है. इसलिए ध्वनि कंपन इन अस्थियों से होते हुए आंतरिक कान तक पहुंचते हैं. यहां ये कंपन एक तरल पदार्थ में प्रवेश करते हैं जिससे उसमें भी कंपन उत्पन्न हो जाते हैं. द्रव में कंपन शुरू होते ही उससे संबद्ध श्रवण तंत्रिकाओं के आखिरी सिरे उत्तेजित हो जाते हैं और उनमें आवेग उत्पन्न हो जाता है. इन आवेगों को ही हम संकेत या सिग्नल कहते हैं. यह आवेग जब मस्तिष्क में पहुंचते हैं तो हमें ध्वनि सुनाई देने लगती है.

अब प्रश्न है कि हमारा कान विभिन्न आवृत्ति की ध्वनियों के अनुनाद की परिघटना द्वारा कैसे ग्रहण करता है? इसके लिए हमारे आंतरिक कान में विभिन्न लंबाई वाले लगभग 4500 तंतुक होते हैं. इन तंतुकों की स्वाभाविक आवृत्तियां अलग-अलग होती हैं. कान का पर्दा जब ध्वनि तरंगों को इन तंतुकों तक भेजता है, तो केवल वे ही तंतुक दोलायमान होते हैं जिनकी स्वाभाविक आवृत्तियां पर्दे पर टकराने वाली ध्वनि तरंगों की आवृत्तियों के बराबर होती है. इस प्रक्रिया में तंतुकों के कंपन करने की दशा में उनका समस्वरित होना कहा जाता है.

हमारे कान हल्की से हल्की और तीव्र से तीव्र ध्वनियों को समान रूप से सुनने में समर्थ हैं. हल्की से हल्की सुरसुराहट, जिसकी तीव्रता मात्र 10^{-9} अर्ग प्रति सेंटीमीटर सेकंड होती है, कान द्वारा अच्छी तरह सुनी जा सकती है. इसको सुनने के लिए कान के पर्दे को 6×10^{-11} सेंटीमीटर तक हिलना पड़ता है. यह दूरी हाइड्रोजन परमाणु के व्यास का भी दशमांश है. आधुनिक प्रौद्योगिकी से भी अभी तक एक ऐसा दोलन यंत्र विकसित किया जा सकता है जिसकी संवेदनशीलता की तुलना प्रकृति के इस छोटे से यंत्र से की जा सके. □

एजेंट कृपया ध्यान दें

पत्रिका की बिक्री करने वाले एजेंटों से निवेदन है कि वे कृपया पत्रिका की प्रतियों का आर्डर अग्रिम दें. संबंधित अंक के प्रकाशन से कम से कम एक महीने पहले आर्डर कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए. इसके लिए यह आवश्यक है कि आर्डर की गई प्रतियों का मूल्य (कमीशन काट कर) पहले ही कार्यालय में जमा करा दिया गया हो. पत्रिका का अंक प्रकाशित हो जाने के बाद आर्डर में वृद्धि नहीं की जा सकती है. कृपया अपने आर्डर में निकटतम रेलवे स्टेशन का उल्लेख अवश्य करें ताकि पार्सल भेजने में सुविधा हो और आपको प्राप्त करने में विलंब न हो. कृपया ध्यान रहे कि आप उतनी ही प्रतियों का आर्डर दें जितनी आप आसानी से बेच सकते हैं, क्योंकि एक बार आर्डर की गई पत्रिकाओं को वापस लेने की व्यवस्था नहीं है.

उत्पादन अधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

□ ब्रह्मा नन्द वर्मा

वस्तुपरक बहुविकल्पी प्रश्नों की इस कड़ी में भौतिक विज्ञान तथा रसायन विज्ञान से संबंधित ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के स्तर के प्रश्न प्रस्तुत किए जा रहे हैं, प्रत्येक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए हैं. सही उत्तर का चुनाव करके उत्तर तालिका से मिलान कीजिए. मूल्यांकन 26-30 सही-सर्वोत्तम; 20-25 सही-उत्तम; सही-अच्छा; 10-14 सही-सामान्य.

1. शुष्क सेल में ऊर्जा विद्यमान होती है :
(क) यांत्रिक रूप में
(ख) विद्युत रूप में
(ग) रसायनिक रूप में
(घ) भौतिक रूप में.

2. रेडियोधर्मी पदार्थ निम्नलिखित में से किसे उत्सर्जित नहीं करते :
(क) प्रोटॉन
(ख) इलेक्ट्रॉन
(ग) गामा किरणें
(घ) हीलियम नाभिक.

3. शुष्क सेल में विध्रुवक का कार्य करता है :
(क) प्लास्टर ऑफ पेरिस
(ख) कॉपर सल्फेट
(ग) मैंगनीज डाइआक्साइड
(घ) अमोनियम क्लोराइड.

4. प्रकाश वैद्युत सेल :
(क) विद्युत का संचय करता है
(ख) प्रकाश का संचय करता है
(ग) विद्युत को प्रकाश में बदलता है
(घ) प्रकाश को विद्युत में बदलता है.

5. पोटैशियम परमैंग्नेट के घोल के बैंगनी रंग का कारण है :
(क) मैंगनस आयन
(ख) मैगनेट मूलक
(ग) पोटैशियम आयन
(घ) आक्सीजन

6. पोटैशियम नाइट्रैट जिस नाम से जाना जाता है, वह है :
(क) इंडियन साल्ट पीटर
(ख) सुपर फास्फेट ऑफ लाइम
(ग) मोहर साल्ट
(घ) चिली साल्ट.

7. कार्बन प्रकृति में शुद्ध अवस्था में पाया जाता है :
(क) ग्रेफाइट के रूप में
(ख) हीरा के रूप में
(ग) पीट के रूप में
(घ) काजल के रूप में.

8. वह लोहा जिसमें कार्बन की प्रतिशत मात्रा सबसे कम होती है, कहलाता है :
(क) ढलवां लोहा
(ख) इस्पात
(ग) कच्चा लोहा
(घ) लोह स्टील.

9. पैट्रोलियम को कहा जाता है :
(क) पेट्रोल
(ख) खनिज तेल
(ग) कच्चा तेल
(घ) गैसोलीन.

10. कैल्सियम हाइड्राइड का व्यापारिक नाम है :
(क) स्लेक्ड लाइम
(ख) हाइड्रोलिथ
(ग) कालगन
(घ) लाइम.

11. यदि किसी लेंस का आधा भाग काले कागज से ढक दिया जाए तो :
(क) प्रतिबिंब की चमक आधी रह जाएगी
(ख) प्रतिबिंब नहीं बनेगा
(ग) कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा
(घ) प्रतिविंब का आकार आधा हो जाएगा.

12. पानी के अंदर बना वायु का उभयोत्तल बुलबुला किस प्रकार व्यवहार करेगा :
(क) उत्तल लैंस
(ख) अवतल लैंस
(ग) अवतलोत्तल लैंस
(घ) इसमें से कोई नहीं.

13. फ्लेमिंग के दाहिने हाथ के नियम से दिशा ज्ञात की जाती है :
(क) प्रत्यावर्ती धारा की
(ख) सरल धारा की
(ग) प्रेरित धारा की
(घ) किसी भी धारा की.

14. कमरे का विद्युत तापक बनाने के लिए प्रयोग करेंगे :
(क) कॉपर का तार
(ख) लैड का तार
(ग) नाइक्रोम का तार
(घ) एल्युमिनियम का तार.

15. पहिया किस प्रकार के लीवर का उदाहरण है :
(क) प्रथम श्रेणी
(ख) द्वितीय श्रेणी
(ग) तृतीय श्रेणी
(घ) उपर्युक्त में से किसी का नहीं.

16. मरीचिका बनने का कारण है :
(क) विवर्तन
(ख) व्यक्तिकरण
(ग) परावर्तन
(घ) पूर्ण आंतरिक परावर्तन.

17. व्हीट स्टोन ब्रिज का प्रयोग किया है :
(क) वोल्टेज मापने के लिए
(ख) प्रतिरोध मापने के लिए
(ग) विकिरण मापने के लिए
(घ) विद्युत धारा मापने के लिए.

18. कांच का अपवर्तनांक न्यूनतम होता है :
(क) बैंगनी रंग के लिए
(ख) हरे रंग के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) नीले रंग के लिए
(घ) लाल रंग के लिए.

19. सल्फ्यूरिक अम्ल को रखने के लिए किस धातु से बना बर्तन सबसे उपयोगी होता है :
(क) कॉपर का
(ख) एल्युमिनियम का
(ग) कांच का
(घ) मिट्टी का.

20. किसके धातुकर्म के लिए पफल भट्ठी इस्तेमाल की जाती है :
(क) टिन
(ख) लैड
(ग) कॉपर
(घ) जिंक.

21. निम्नलिखित में से किसका गलनांक सबसे कम है :
(क) सोडियम
(ख) पोटेशियम
(ग) लीथियम
(घ) लैड.

22. आर्दता होती है :
(क) वाष्पीकरण की दर
(ख) संघनन की दर
(ग) जलवाष्प अंश की माप
(घ) वाष्पीकरण एवं संघनन की दरों का अंतर

23. बड़े पैमाने पर जर्मेनियम प्राप्त किया जाता है :
(क) कार्नोटाइट से
(ख) कोयले की राख से
(ग) समुद्री जल से
(घ) एनोडमड से.

24. निम्नलिखित में से किसके मात्रक नहीं होते :
(क) प्रतिबल
(ख) विकृति
(ग) श्यानता गुणांक
(घ) पृष्ठ तनाव.

25. फलों को पकाने के लिए कौन सी गैस प्रयोग की जाती है :
(क) एसिटिलीन
(ख) मीथेन
(ग) एथिलीन
(घ) प्रोपेन.

26. ड्यूटीरियम के नाभिक में होता है :
(क) केवल एक प्रोटॉन
(ख) एक प्रोटॉन तथा तथा दो न्यूट्रॉन
(ग) एक प्रोटॉन तथा एक न्यूट्रॉन
(घ) एक प्रोटॉन तथा तीन न्यूट्रॉन.

27. हड्डियों को उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है. क्योंकि इनमें :
(क) नाइट्रोजन होती है
(ख) फॉस्फोरस होता है
(ग) सोडियम होता है
(घ) पोटैशियम होता है.

28. निम्नलिखित में से कौन-सी गैस स्वयं तो जलती नहीं किन्तु जलाने में सहायक होती है :
(क) ओजोन
(ख) मीथेन
(ग) नाइट्रोजन
(घ) आक्सीजन.

29. निम्नलिखित में से कौन-सी तरंग अंतरिक्ष में नहीं मिलती है :
(क) कॉस्मिक किरणें
(ख) एक्स-किरणें
(ग) ध्वनि तरंगे
(घ) रेडियो तरंगे.

30. लाऊडस्पीकर में ऊर्जा परिवर्तन का कौन-सा क्रम सही है :
(क) ध्वनि से यांत्रिक, यांत्रिक से विद्युत
(ख) विद्युत से यांत्रिक, यांत्रिक से ध्वनि
(ग) ध्वनि से विद्युत, विद्युत से ध्वनि
(घ) ध्वनि से विद्युत, विद्युत से यांत्रिक.

उत्तर:

1. (ग); 2. (क); 3. (घ); 4. (ग); 5. (क); 6. (क); 7. (ख); 8. (ग); 9. (ख); 10. (ख); 11. (क); 12. (ख); 13. (ग); 14. (ग); 15. (ख); 16. (घ); 17. (ख); 18. (घ); 19. (ग); 20. (घ); 21. (ख); 22. (ग); 23. (ख); 24. (ख); 25. (ग); 26. (ग); 27. (ख); 28. (घ); 29. (ग); 30. (ख).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SOMETHING MISSING?

You really can't afford to miss!

If you aren't receiving everyissue of Latest PROJECT Information India's fastest growing magazine on projects, technologies, finance & management , then you are missing vital facts & valuable information which you can't afford to miss.

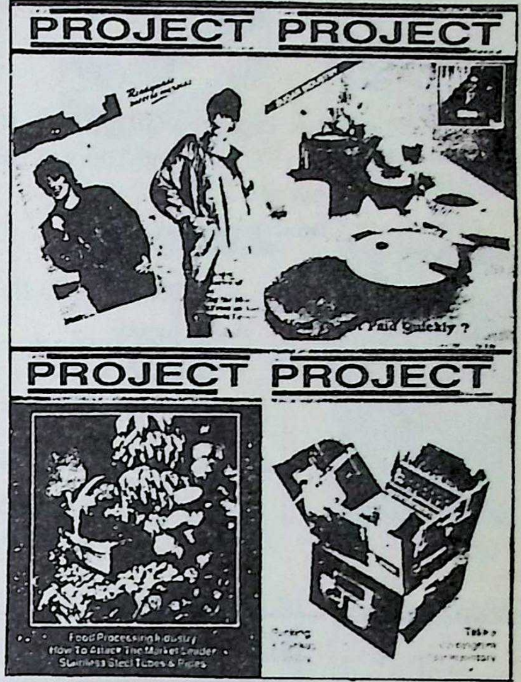

Act Immediately! Subscribe Now!!

- Only subscribers receive EVERY copy of **Latest PROJECT Information** by post at their door-step.

- Only subscribers have quick and consistent information at hand about technologies, projects, management, finance, business law, international trade, the industry leaders and the important trends in the **national** and **international** market place.

If staying abreast of new technology in every area of industry is **important** to you and the future of your company, you should not miss any issue of **Latest PROJECT Information.**

Fill up this coupon and send it to us with cheque, money order, demand draft or postal order for Rs. 85.00 / 160.00* favouring ***Dominique Data Links (P) Ltd.*** and we will rush you the copies of **Latest PROJECT Information** for one/two years (packing & forwarding included).

YES

I/We don't want to miss vital facts and valuable information. Please enroll my/our subscription for ONE/TWO YEAR (S) and rush me the copies of **Latest PROJECT Information** by post. I /we enclose a cheque / money order / demand draft / postal order for **Rs. 85.00 / 160.00 *** towards my/our subscription charges.

Name____________________
Company____________________
Department or Position ____________________
Address____________________
Street____________________
Station ____________________ PIN __________

Signature____________________ Date__________

Please fill clearly (BLOCK LETTERS) and send coupon to:

Circulation Manager
Latest PROJECT Information
27, South Patel Nagar, (UCO Bank Bldg.) New Delhi-110 008.
Phones : 583705, 5735995

*** Please add Rs. 10/- on an outside Delhi Cheque. All payments favouring: Dominique Data Links (P) Limited**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOLDEN GOA

Exciting Package Tour Only Rs. 799/- Per Head On Twin Sharing Basis For 4 Days-3 Nights

INCLUDING

* Return Bus Ticket To Goa & Back By Luxury Bus From Bombay
* 2 Full Days' Sightseeing Tours of North & South Goa
* Continental Breakfast
* River Cruise With Folk Dances

For Advance Reservations, Please Contact :

HOTEL AZAVEDO'S

(NEAR CALANGUTE BEACH, CALANGUTE, GOA)

CORRESPONDENCE ONLY TO BOMBAY OFFICE :

203, Gulab, P. D'Mello Road, Bombay-400 001
Ph : Off : 2615321, 2619849, 6403834

FREE **FREE** **FREE**

Sales/Purchase Classified Advertisements Published Free in Colour & Chemicals Weekly

Yearly Subscription Rs. 300/-

Contact :

COLOUR & CHEMICALS WEEKLY

203, Gulab, 237 P. D'Mello Road, Bombay-400001
Tel : 2615321, 2619849

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

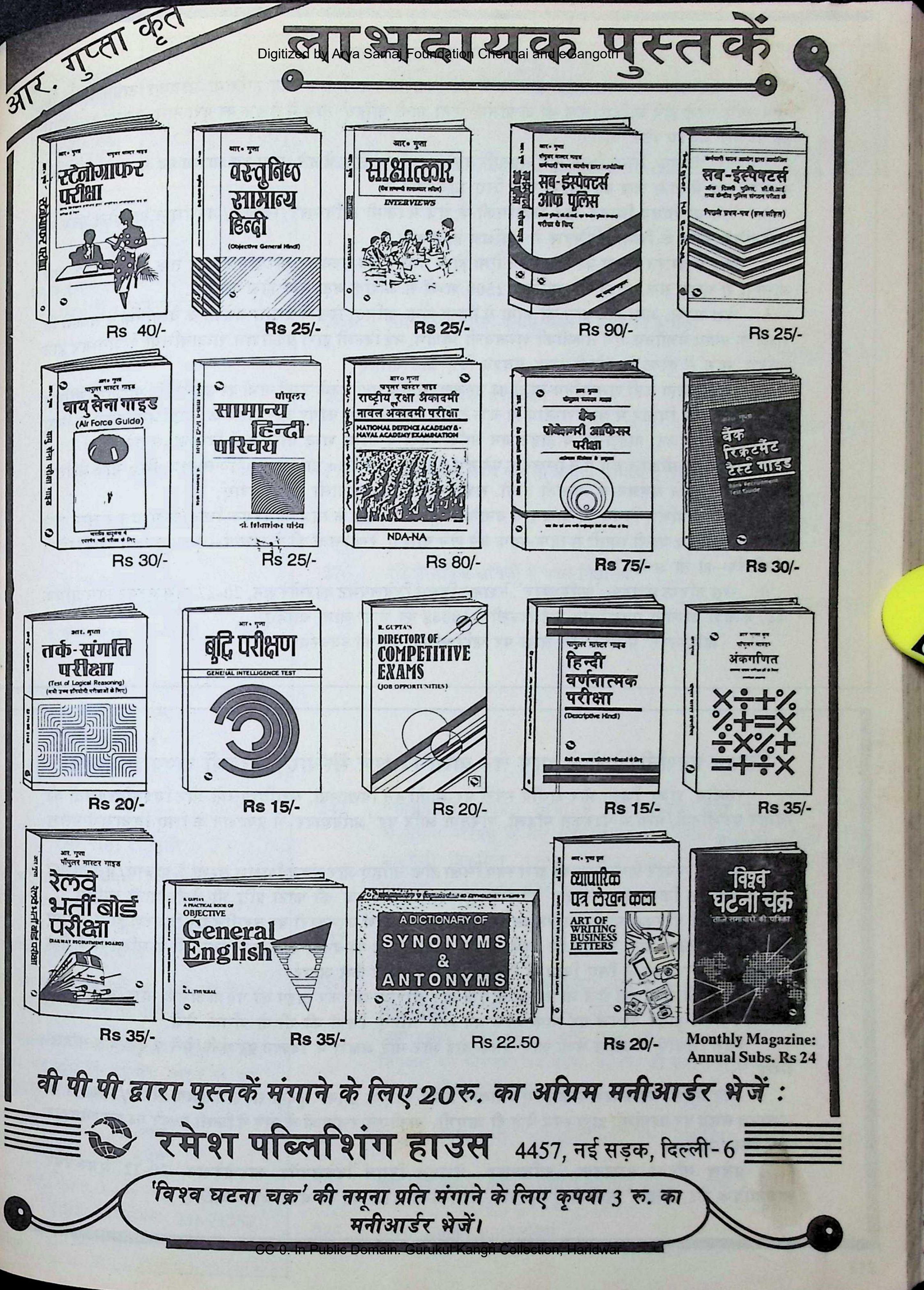

CC 0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों से निवेदन

1. 'आविष्कार' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किए या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक का पूरा नाम, पता व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी आविष्कार/विकास/अनुसंधान या खोज कार्य के सार्वजनिक रुचि के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकता है.

4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रस्तुत अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में जहां कहीं रासायनिक तत्वों का उल्लेख आता है वहां उनके उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए जो आज रसायन विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय हो चुके हैं जैसे तांबे के लिए कॉपर और जस्ते के लिए जिंक, सीसे के लिए लेड और आक्सीजन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि. तांबा व सीसा शब्द कोष्ठक में दिए जा सकते हैं.

7. मापों को संक्षिप्त रूप में न लिखकर पूरे रूप में लिखें. जैसे कि० ग्रा० के लिए किलोग्राम, मि० मी० के लिए मिलीमीटर. इससे समझने में आसानी होगी. सभी माप मीट्रिक प्रणाली में दिए जाएं.

8. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि—हो तो अच्छा है.

9. लेख वरिष्ठ संपादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

10. 'आविष्कार' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.

विज्ञान प्रदर्शनी/मेलों में भाग लेने वाली शिक्षण संस्थाएं/विद्यार्थी कृपया ध्यान दें

राष्ट्रीय, राज्य, जिला और क्षेत्रीय स्तरों पर आयोजित विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विज्ञान प्रदर्शनियों/मेलों में पुरस्कृत मॉडलों, युक्तियों आदि पर 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए विचारार्थ प्रलेख आमंत्रित हैं.

प्रलेख पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थी द्वारा स्वयं लिखा होना चाहिए और संबद्ध शिक्षण संस्था के प्राचार्य/प्रधानाचार्य द्वारा अग्रसारित किया जाना चाहिए. साथ में 'पुरस्कार प्रमाण पत्र' की फोटो प्रति भी भेजी जानी चाहिए.

प्रलेख में पुरस्कृत मॉडल, युक्ति आदि को बनाने की संपूर्ण जानकारी का तरतीबवार विवरण होना चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए कि उक्त माडल, युक्ति आदि को बनाने का विचार विद्यार्थी के मस्तिष्क में कैसे उपजा और उसे बनाने के लिए विद्यार्थी ने तकनीकी जानकारी कैसे जुटाई.

प्रलेख की दो प्रतियां भेजें जो कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप की गई हों अथवा साफ-साफ लिखी हों. चित्र सफेद ड्राइंग कागज पर साफ-साफ बने होने चाहिएं. चित्रों की भी दो प्रतियां भेजें.

जिस लिफाफे में प्रलेख भेजा जाए उसके बाईं ओर मोटे अक्षरों में 'विज्ञान प्रदर्शनी/मेले में पुरस्कृत मॉडल' लिखें.

जिन प्रलेखों को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाएगा उनकी सूचना संबद्ध शिक्षण संस्था/विद्यार्थी को उपयुक्त समय पर कार्यालय द्वारा स्वयं भेज दी जाएगी. अस्वीकृत रचनाओं के बारे में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा.

प्रलेख वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन.आर.डी.सी. NRDC

आविष्कार

जून 1991

वर्ष 21, अंक 6

प्रबंध निदेशक
एन०के० शर्मा
प्रमुख (आई०पी०पी० एवं इ०)
एम०पी० भटनागर

वरिष्ठ सम्पादक
डी०एन० भटनागर
सम्पादन सहायक
राघवेंद्र कुमार शर्मा
आर०के० अन्थवाल

उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन
मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा

व्यावसायिक चित्रकार
के०के० थपलियाल
वरिष्ठ चित्रकार
नवनीता भौमिक

विज्ञापन प्रतिनिधि
रमा रानी त्रिपाठी

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■ लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरूरी है.

एक प्रति : 3 रुपए
वार्षिक मूल्य : 30 रुपए

फोन: 6432580, 6419929, 6419945, 6419947, 6418615 टेलेक्स: 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'

इस अंक में

263 पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में वृक्षों की भूमिका
—कमलाकान्त पाठक

268 जैव-प्रौद्योगिकी और कृषि
—के० आर० नारायणन

271 बायोमास से काठ कोयला बनाना : समस्याएं तथा सम्भावनाएं
—के० प्रभाकर तथा
आर० सी० महेश्वरी

276 रेडियो-सक्रिय खनिजों से काल निर्धारण
—डा० विजय कुमार उपाध्याय

245 व्योमविहार

247 समाचारिकी : कृत्रिम त्वचा से नई आशाएं. वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के गए महानिदेशक डा० श्रीकृष्ण जोशी. पहली कृत्रिम मांसपेशी विकसित. राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी. नया द्वि-फोक्सी लेंस. बांझपन दूर करने का सफल प्रयोग.

249 संक्षिप्तियां

250 विज्ञान के विविध आयाम : सावधान—अब उभरेगा पर्यावरणीय उपनिवेशवाद. पूर्वी यूरोप के परिवर्तनों से तीसरी दुनिया पर विपरीत पर्यावरणीय प्रभाव की संभावना. एड्स रोग और सारी दुनिया का दुःख दर्द. सिकुड़ते वन बिगड़ता पर्यावरण. ओजोन की छतरी में छेदः अब लगेंगे पैबंद भी. जैव-प्रौद्योगिकी : कितनी आशा कितनी दिलासा.

280 विज्ञान साहित्य चर्चा : गणित की पहेलियां. पुरातात्विक उत्खनन अनुसंधान.

283 क्या और कैसे ? कैसा है हमारा वफादार साथी—हाथी.

285 अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कारक . . .

आपका आविष्कार एक बालक के समान है, जिसे चाहिए सुरक्षा और सहारा

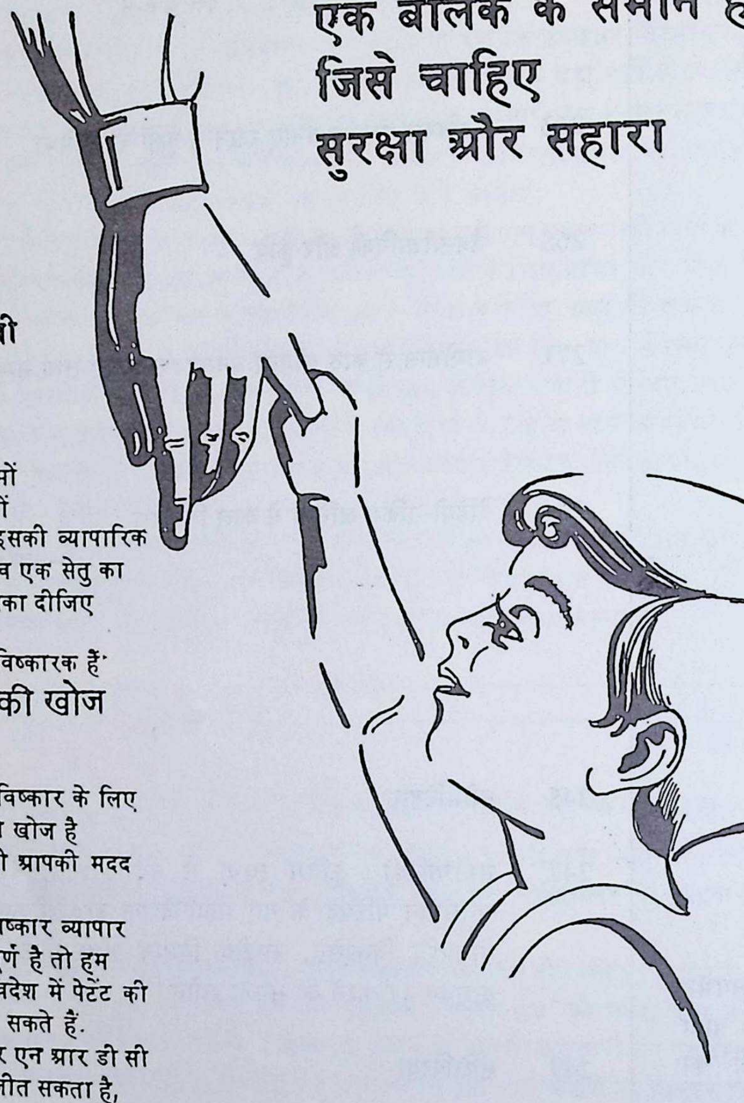

आइए
एन आर डी सी
के साथ बढ़िए

हमें अपने
विचारों और उद्यमों
उद्यमों व परिणामों
आविष्कार और इसकी व्यापारिक
उपयोगिता के बीच एक सेतु का
काम करने का मौका दीजिए

यदि आप एक आविष्कारक हैं
और अवसर की खोज में हैं,
या फिर अपने आविष्कार के लिए
आपको बाजार की खोज है
तो एन आर डी सी आपकी मदद
कर सकता है.
यदि आपका आविष्कार व्यापार
की संभावना से पूर्ण है तो हम
इसे भारत और विदेश में पेटेंट की
सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं.
आपका आविष्कार एन आर डी सी
का पुरस्कार भी जीत सकता है,
जो साल में दो बार, सराहनीय
आविष्कारों के लिए दिया जाता है.
एन आर डी सी आपके आविष्कार
पर आधारित पायलट संयंत्रों/
प्रोटोटाइपों के विकास के लिए
वित्तीय सहायता भी दे सकता है.
हम आपके आविष्कार के
व्यापारीकरण के लिए उद्यमी की
पहचान कर सकते हैं.

देर न कीजिए आज ही लिखिए !

एन आर डी सी
NRDC

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र
कैलाश कालोनी एक्स्टेंशन
नई दिल्ली-110048
फोन. : 6419945, 6432121, 6432627
टेलीग्राम : अनुसंधान विकास
टेलेक्स—031-71358

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❑ पीयूष पाण्डेय

आविष्कार के 'व्योमविहार' स्तंभ में हम इस बार आपका परिचय जुलाई 1991 माह के आकाश में उपस्थित तारामंडलों से करा रहे हैं. पहले की तरह आप निर्देशों का पालन करते जाएं और तारों, ग्रहों तथा नक्षत्रों से परिचय करते जाएं. आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है.

❑ कोरी आंखों से दिखलाई देने वाले पांचों ग्रह जुलाई माह के सन्ध्याकाश में होंगे. उनकी मास मध्य की स्थितियां हमारे मानचित्र में प्रदर्शित की गई हैं.

एकदम पश्चिमी क्षितिज पर सिंह राशि में बुध तथा बृहस्पति हैं. उनके बाद इसी राशि में मघा नक्षत्र के समीप मंगल और शुक्र ग्रह हैं तथा, पांचवां ग्रह शनि दूसरे क्षितिज पर मकर राशि में स्थित है.

पूरे जुलाई मास में बुध ग्रह संध्याकाश में दिखाई देगा. 25 जुलाई को इसकी सूर्य से कोणीय दूरी-सर्वाधिक-27 अंश के लगभग होगी. अतः यह अवस्था बुध को खोजने के लिए अत्यन्त उपयुक्त होगी. इस मास यह ग्रह मिथुन, कर्क से होता हुआ सिंह में प्रवेश करेगा. शुक्र ग्रह पूरे मास सिंह राशि के क्षेत्र में रहेगा.

चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं. कृष्ण पक्ष अष्टमी जुलाई 5 को, अमावस्या जुलाई 12, शुक्ल पक्ष अष्टमी जुलाई 18 तथा पूर्णिमा जुलाई 26 को है. जुलाई 11 को होने वाला पूर्ण सूर्य ग्रहण भारत में दिखाई नहीं देगा.

वर्षा ऋतु के इस महीने में हमें तारों ग्रहो की बादलों में लुकाछिपी के बीच यदा-कदा उनके दर्शन संध्याकाश में होते रहेंगे. व्योमविहार के पिछले अंक में हमने ग्रहों की दूरियों एवम् उनमें एक गणितीय क्रम के होने की चर्चा की थी. इस अंक में हम आपको ग्रहो के बारे में कुछ अन्य आंकड़े दे रहे हैं. ग्रहों के चन्द्रमाओं की संख्या के बारे में हम इतना कहना चाहेंगे कि हमने यहां ग्रहों के कुल ज्ञात चन्द्रमाओं की वह संख्या दी है जिनकी बाद में अन्य प्रेक्षणों द्वारा पुष्टि हो चुकी है. आपको याद होगा कि वॉयजर अभियानों द्वारा हुई खोज-बीन से गुरु, शनि और यूरेनस के चन्द्रमाओं की संख्या में एक चौंका देने वाली वृद्धि हो गई थी.

एक अन्य ध्यान देने योग्य बात है कि शुक्र और यूरेनस की अपनी धुरी पर घूर्णन की दिशा

सौर मण्डल : कुछ आंकड़े

पिण्ड	सूर्य से औसत दूरी		कक्षा में परिभ्रमण का काल (नक्षत्र-काल)	संयुति काल	अक्षीय घूर्णन काल	कक्षा की उत्केन्द्रता	कक्षा का क्रान्ति वृत्त से झुकाव	व्यास (विषुवतीय)	विषुवत का कक्षातल से झुकाव	घनत्व (सापेक्षिक)	धरातलीय गुरुत्वाकर्षण	ज्ञात चन्द्रमाओं की संख्या
	दस लाख किलोमीटर	खगोलीय माप में	दिन/वर्ष	दिन	दिन/घंटे	—	अंश	किलोमीटर	अंश	पानी=1	पृथ्वी=1	—
सूर्य	—	—	—	—	25.38 दि	—	—	1400000	—	1.4	28	—
चन्द्र	—	—	27.322 दि	29.53	27.322 दि	0.055	5.15	3476	6.68	3.33	0.165	—
बुध	57.9	0.387	87.969 दि	115.88	58.65 दि	0.2056	7.00	4878	0.	5.42	0.38	—
शुक्र	108.2	0.723	224.701 दि	583.92	243.01 दि (विपरीत)	0.0068	3.39	12100	–2	5.25	0.88	—
पृथ्वी	149.6	1.000	365.256 दि	—	23.9345	0.0167	—	12756	23.45	5.52	1	1
मंगल	227.9	1.524	686.980 दि	779.94	24.623 घं	0.0934	1.85	6796	23.98	3.94	0.38	2
बृहस्पति	778.3	5.203	11.862 व	398.88	9.841 घं	0.0485	1.30	143800	3.08	1.314	2.34	16
शनि	1427.0	9.539	29.458 व	378.09	10.233 घं	0.0556	2.49	120000	29.0	0.69	0.92	17
यूरेनस	2869.6	19.1819	84.014 व	369.66	15·5 घं	0.0472	0.77	52290	97.92	(1.19)	0.79	15
नैप्च्यून	4496.6	30.0578	164.793 व	367.49	15.8 घं	0.0086	1.77	49500	28.80	1.66	1.12	8
प्लूटो	5900.0	39.44	247.7 व	366.73	6.387 घं	0.250	17·2	(2400–3800)	???	(0.6-1.7)	(0.44)	1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

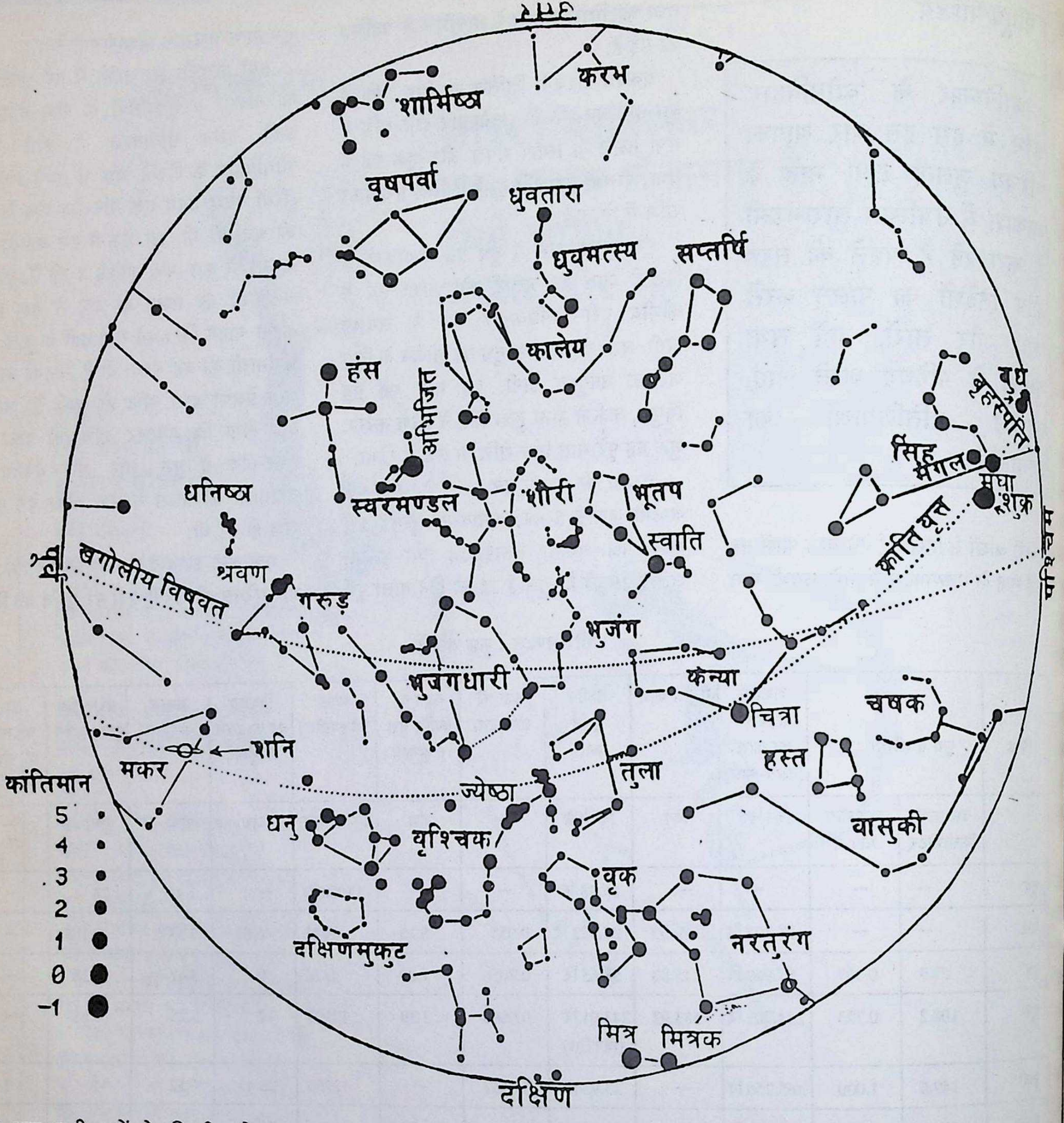

जो अन्य सभी ग्रहों के विपरीत है. परन्तु यूरेनस के घूर्णन की एक अन्य विशेषता यह भी है कि उसकी विषुवत रेखा उसके कक्षातल से लगभग 98 अंश का कोण बनाती है, यानि, उसका घूर्णन अक्ष उसकी कक्षा के लम्बवत् नहीं अपितु लगभग समतल में है.

अब एक दृष्टि ग्रहों के कक्षातल के क्रान्ति वृत्त से झुकाव पर डालें. क्रान्ति वृत्त यानि पृथ्वी का कक्षातल बुध और प्लूटो को छोड़कर शेष सभी ग्रहों के कक्षा तल के झुकाव बहुत कम हैं. अतः कहा जा सकता है कि वे लगभग पृथ्वी के ही कक्षातल में परिभ्रमण करते हैं. परन्तु बुध की कक्षा का झुकाव 7 अंश तो प्लूटो का 17.2 अंश है.

हमने कोष्ठकों में जो आंकड़े दिए है उनमें 10 प्रतिशत से अधिक का विचलन हो सकता है. दूरस्थ प्लूटो के बहुत से आंकड़ों पर यह बात लागू होती है. पहले प्लूटो का आकार अधिक आंका गया था अतः बुध को सबसे छोटा ग्रह माना जाता था. परन्तु अभी कुछ वर्ष पहले किए गए नए प्रेक्षणों से पता चला है कि बुध ग्रह सभी ग्रहों से छोटा ग्रह है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्रिम त्वचा से नई आशाएं

आस्ट्रेलियाई चिकित्सक डा॰ मार्क आइजनबर्ग द्वारा विकसित कृत्रिम त्वचा संवर्धन व रोपण तकनीक दुनिया भर के उन लाखों लोगों के लिए वरदान साबित हो सकती है जो किसी अग्नि दुर्घटना या फिर आत्मदाह की घटना के बाद अस्पताल में जिंदगी और मौत के बीच झूल रहे होते हैं. अभी प्रयुक्त विधियों में त्वचा रोपण के लिए आवश्यक त्वचा मरीज के शरीर से ही निकाली जाती है.

नई तकनीक के इस्तेमाल से अब रोगी को इस अपेक्षाकृत लंबी व वेदनापूर्ण प्रक्रिया से नहीं गुजरना पड़ेगा क्योंकि कृत्रिम त्वचा किसी अन्य व्यक्ति के शरीर से प्राप्त त्वचा-कोशिकाओं को संवर्धित करके तैयार की जाती है. आस्ट्रेलिया में एक रोगी पर कृत्रिम त्वचा का अत्यधिक सफलपूर्वक रोपण किया जा चुका है.

इस विकास के बाद अब आस्ट्रेलिया में एक त्वचा-बैंक खोलने की योजना है जिसमें त्वचा संवर्धित करके भंडारित की जाएगी जो आवश्यकता पड़ने पर आस्ट्रेलिया व अन्य देशों के लिए तुरंत उपलब्ध होगी.

इस विधि में दूसरे व्यक्ति की बाह्य त्वचा—(एपिडर्मिस)—से प्राप्त कोशिकाओं को कृत्रिम अंतरत्वचा पर विलेपित किया जाता है. इसके तुरंत बाद इस मिश्रित त्वचा संवर्ध में वृद्धि शुरू हो जाती है और कुछ ही हफ्तों में यह एक डाक-टिकट के आकार से बड़ी चादर जितना हो जाता है. सिडनी के प्रिंस ऑफ वेल्स अस्पताल के कोशिकानुवंशिकी (साइटोजेनिटिक्स) प्रयोगशाला में किए गए अध्ययनों में देखा गया है कि मिश्रित त्वचा संवर्ध बढ़ते-बढ़ते संवर्धन पात्र के आधार में पूरी फैल गई जिससे यह नतीजा निकाला गया कि इस संवर्ध को और जगह मिल जाए तो यह और भी बढ़ सकती है

परंपरागत उपचार पद्धति में 50 प्रतिशत से ज्यादा जले हुए मामले में, जब व्यक्ति की जिंदगी खतरे में होती है, सुअर की त्वचा के जेनोग्राफ्ट या पशु त्वचा रोपण का अस्थाई आवरण के रूप में इस्तेमाल किया जाता है. यह एक संतोषजनक तरीका नहीं है क्योंकि 10 से 20 दिनों के अंदर शरीर रोपित त्वचा को अस्वीकृत कर देता है और फिर इसकी जगह नई त्वचा रोपित करनी पड़ती है. इसी पद्धति से उपचार में दो साल तक लग जाते हैं और इस बीच कई बार तब तक शल्यक्रिया करनी पड़ती है जब तक जले हुए भाग मे मरीज के शरीर की ही त्वचा रोपित की जा सकने की स्थिति में न आ जाए.

गंभीर रूप से जले लोगों में जब शरीर में 10 से 20 प्रतिशत त्वचा ही बची रहती है रोगी के शरीर की त्वचा को संवर्धित किया जाता है. इस संवर्धित स्वत्वचा रोपण की वृद्धि में एक महीने की लंबी अवधि भी लग सकती है. ऐसे में मरीज को जिंदा रखने के लिए पुनः पशु त्वचा रोपण की आवश्यकता पड़ती है. ये इलाज काफी लंबे खिंचते हैं और इनमें लाखों रुपए खर्चा आता है.

अब कृत्रिम त्वचा संवर्धन तकनीक से व्यापक उपचार में भी एक महीने से ज्यादा समय नहीं लगेगा और परंपरागत उपचार पद्धतियों के दसवें हिस्से खर्चा आएगा.

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के नए महानिदेशक

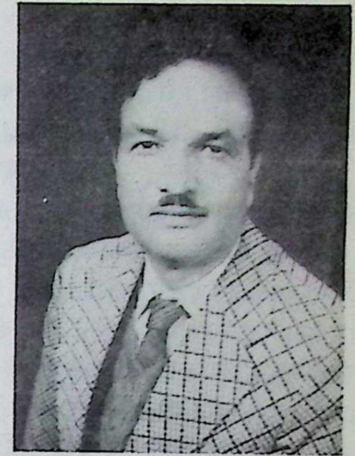

—डा॰ श्रीकृष्ण जोशी

प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी पद्मश्री डा॰ श्रीकृष्ण जोशी ने 18 अप्रैल, 1991 को वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के नए महानिदेशक का पदभार ग्रहण किया. पचपन वर्षीय डा॰ जोशी इस परिषद् के 11वें महानिदेशक हैं. इससे पहले वे राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला के निदेशक थे. उत्तर प्रदेश के पिथौरागढ़ जिले के अनारपा गांव में जन्मे डा॰ जोशी शुरू से ही एक मेधावी छात्र रहे. इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एम॰ एस-सी॰ भौतिकी (1957) में प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए उन्हें विश्वविद्यालय का वर्द-विद्यांत स्वर्ण पदक दिया गया था.

उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1962 में 'एक्स-किरणों के विसरित प्रकीर्णन (डिफ्यूज स्कैटरिंग) के अध्ययन' विषय पर पी-एच॰डी॰ प्राप्त की. वे 1957 से 1967 तक इसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे. इसी दौरान वे अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के अभ्यागत प्राध्यापक भी रहे. सन् 1967 में उन्होंने रुड़की विश्वविद्यालय में भौतिकी विभाग के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष का पद संभाला और 1986 में राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला, नई दिल्ली के निदेशक बने.

इस बीच उन्होंने कई पुरस्कार व सम्मान प्राप्त भी किए जिनमें उल्लेखनीय हैं. होनोलूलू, अमेरिका के वाटुमल मेमोरियल फाउंडेशन का वाटुमल स्मारक पुरस्कार, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का भौतिक विज्ञान के लिए शांतिस्वरूप भटनागर पुरस्कार व रजत जयंती पुरस्कार और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (अरिओम आश्रम ट्रस्ट पुरस्कार) का मेघनाथ साहा पुरस्कार.

इसके अलावा उन्होंने सी॰वी॰ रमन शताब्दी पदक (1988) व अन्य कई पदक भी प्राप्त किए हैं. वे अनेक वैज्ञानिक संगठनों के महत्वपूर्ण पदों पर भी रहे हैं. इसी वर्ष उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली कृत्रिम मांसपेशी विकसित

शरीर में मांसपेशियों के अकड़ जाने या फिर नष्ट हो जाने से जहां एक ओर मांसपेशियों का क्षरण यानी मस्कुलर डिस्ट्राफी और बहु ऊतक दृढ़न यानी मल्टीपल-स्क्लैरोसिस जैसे रोग पनपते हैं वहीं इससे आंखें भी बुरी तरह प्रभावित होती हैं. मांसपेशियों के ढीले पड़ने से आंखों में वस्तु का प्रतिबिंब सही नहीं बन पाता है और इस प्रकार से आंखे कमजोर हो जाती हैं. मांसपेशियों के कारण हुई इस गड़बड़ी को ध्यान में रखते हुए अब जापान के वैज्ञानिकों ने ऐसी कृत्रिम मांसपेशी का विकास किया है जो प्राकृतिक मांसपेशी के बदले काम करेगी. यह मांसपेशी एक विशेष प्रकार के पौलीमर जेल द्वारा तैयार की गई है. परीक्षणों में पाया गया है कि यह पहली कृत्रिम मांसपेशी हालांकि काफी धीमी गति से कार्य करती है परन्तु है भरोसेमंद.

जापान के टोकियो नगर के समीप स्थित इबारकी विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों की एक टोली ने इस मांसपेशी का विकास किया है. फिलहाल यह मांसपेशी हल्के विद्युत आवेश द्वारा संचालित होती है, परन्तु इसे प्राकृतिक मांसपेशियों के समान गति देने के प्रयास जारी हैं. इसके लिए ये वैज्ञानिक उस नुकते की तलाश में हैं जो रासायनिक ऊर्जा को सीधे गतिज ऊर्जा में परिवर्तित कर दे. इस तरह से कृत्रिम मांसपेशी प्राकृतिक मांसपेशी की तरह कार्य करना शुरू कर देगी और उसे विद्युत आवेश की आवश्यकता नहीं पड़ेगी.

कृत्रिम मांसपेशी में एक विशेष प्रकार का पौलीमर प्रयुक्त किया गया है जिसे पी एम ए ए कहते हैं. इस पदार्थ में संकुचन तभी होता है जब विद्युत आवेश दिया जाता है. इस पदार्थ से तैयार कृत्रिम मांसपेशी में संकुचन की दर सामान्य परिस्थितियों में 0.4 सेंटीमीटर प्रति घंटा है. यदि भार 5-6 ग्राम है तो यह दर 0.1 सेंटीमीटर प्रति घंटे रह जाती है. जैसे-जैसे भार बढ़ता जाता है, संकुचन की दर भी बढ़ती जाती है. वैज्ञानिकों के अनुसार अतिरिक्त भार उठाने के लिए पौलीमर में विद्युत आवेश बढ़ाना होता है.

जापानी वैज्ञानिकों के इस दल ने अंतरराष्ट्रीय रासायनिक सम्मेलन में इस बात की घोषणा की कि वे इसी दिशा में ऐसी पारगम्य झिल्ली के विकास में लगे हुए हैं जो सूक्ष्म रंध्रों में द्रव्य को समाने में सक्षम हो. साथ ही उसमें उतनी क्षमता हो कि 15 वोल्ट के सीधे विद्युत विभव पर तत्काल सिकुड़ जाए. इन वैज्ञानिकों के अनुसार यह सिद्धांत इतना प्रभावकारी होगा कि चिकित्सा जगत में क्रांति आ जाएगी. इसे शरीर में स्थापित कर देने पर रक्त में इंसुलिन की मात्रा सामान्य बनाने में मदद मिलेगी जो मधुमेह के रोगियों के लिए वरदान सिद्ध होगी. तब इन रोगियों को अपने आप इंसुलिन लेने से मुक्ति मिल जाएगी.

अभी ये वैज्ञानिक कृत्रिम मांसपेशी की गतिशीलता बढ़ाने के लिए पौलीमर में सुधार के लिए कार्यरत हैं. यही नहीं यह दल कृत्रिम हड्डी के विकास में भी लगे हैं.

नया द्वि-फोक्सी लेंस

अमेरिका के वैज्ञानिकों ने द्वि-फोक्सी लेंस विकसित किया है जो मोतियाविंद के रोगियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है. इन रोगियों का अपना प्राकृतिक लेंस निकाल दिया जाता है और उसकी जगह आमतौर से अति परिष्कृत प्लास्टिक का लेंस लगा दिया जाता है. इस लेंस से रोगी को दूर की वस्तुओं को ही देखने में मदद मिलती है, नजदीक की नहीं. नजदीक की वस्तुएं देखने के लिए रोगी को चश्मा लगाना पड़ता है.

अब पहली बार 'बाइनरी टेक्नोलॉजी' का व्यावसायिक रूप में इस्तेमाल किया गया है जिससे नेत्र चिकित्सा से जुड़ी कई पद्धतियों में सुधार आने की संभावना बढ़ी है.

यह नया लेंस आम लेंस से भिन्न है. जहां आम लेंस में प्रकाश की किरणें वस्तु की

राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के तत्वावधान में रोहतक, हरियाणा के महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में दिनांक 9 व 10 मार्च, 1991 को 'राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी' आयोजित की गई. विषय था 'द्रव्य की ठोस अवस्था'.

गोष्ठी में हिमाचल, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और महाराष्ट्र राज्यों के 28 वैज्ञानिकों से प्राप्त शोध-पत्र प्रस्तुत किए गए.

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति ब्रिगेडियर ओ० पी० चौधरी की अध्यक्षता में उद्घाटन सत्र का आरंभ करते हुए डा० ओम प्रभात अग्रवाल ने गोष्ठी ऐसी शोध गोष्ठियों के इतिहास का परिचय कराते हुए यह मत प्रकट किया कि अब देश में वैज्ञानिकों का ऐसा अच्छा खासा वर्ग है जिसकी धारणा है कि मौलिक चिंतन एवं उसका प्रभावी संप्रेषण स्वभाषा में ही संभव है—अंग्रेजी में नहीं.

गोष्ठी के संयोजक डा० सुरेन्द्र पाल सिंह ने 'द्रव्य की ठोस अवस्था' का महत्व समझाते हुए ठोस द्रव्य से बने ट्रांजिस्टर के आविष्कार से लेकर आज के वैज्ञानिक जगत में हो रहे अतिचालकता तक के शोधकार्यों का संक्षिप्त परिचय दिया.

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली के भूतपूर्व निदेशक डा० अजित राम वर्मा ने 'हीरा—एक विलक्षण पदार्थ' विषय पर अत्यधिक रोचक भाषण दिया और राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली में हीरे पर हो रहे विभिन्न शोधकार्यों से श्रोताओं को अवगत कराया.

समापन सत्र में घोषणा की गई कि इस गोष्ठी में प्रस्तुत किए गए दो श्रेष्ठ शोध-पत्रों पर बाद में एक-एक हजार रुपए का पुरस्कार दिया जाएगा. विज्ञान और वैज्ञानिकों को जन जीवन के नजदीक लाने में इन गोष्ठियों की भूमिका महत्वपूर्ण है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारदीवारी से परिवर्तित होती है वहीं इस लेंस में परिवर्तन की प्रक्रिया के कारण प्रकाश तरंगे वस्तु के किनारों पर चारों ओर फैल जाती हैं. इस तरह से वस्तु का प्रतिबिंब आंख में कहीं अधिक प्रभावी ढंग से बनता है.

पिछले 40 वर्ष से चले आ रहे लैंस का अब जाकर नया रूप मिला है. जिसका लाभ मोतियाबिंद के रोगियों को मिलेगा. हालांकि प्राकृतिक लेंस की बराबरी करना तो संभव नहीं है परंतु फिर भी यह नया लेंस काफी हद तक प्रभावशाली सिद्ध हो रहा है.

बांझपन दूर करने का सफल प्रयोग

एडिनबरा स्काटलैंड के यूनिवर्सिटी मेडिकल स्कूल के शरीर क्रिया वैज्ञानिक डा० रोगर गोस्डन और उनके सहयोगियों ने एक प्रयोग में बाहर संसेचित अंड को गर्भाशय में रोपित करने में सफलता हासिल की है. इस प्रयोग की सफलता से बांझ महिलाओं के लिए एक नई किरण जागी है.

इसके लिए पहली बार शिशु चूहों के अंडाशय का उपयोग किया गया है. वैज्ञानिकों ने एक सप्ताह शिशु चूहे के अंडाशय को पहले बाहर निकाला और अत्यंत निम्न ताप पर रखा. वैज्ञानिकों का कहना है कि इस अवस्था में अंडाशय एकदम सुप्तावस्था में होता है, अतः उनकी जनन शक्ति को प्रभावित किए विना उन्हें निम्न ताप पर सुरक्षित रखा जा सकता है. चिकित्सकों ने डिंब वाहनियों पर लगे असंख्य अंडों को अलग किया.

चिकित्सकों का कहना है कि जब डिंब वाहनियों को अंड सहित बांझ वयस्क चूहे में स्थानांतरित कर दिया जाता है तो वे एक अवस्था के बाद कार्य करना शुरू कर देते हैं बल्कि यह भी पाया गया कि डिंब वाहनियां वयस्क में अपेक्षाकृत तेजी से वृद्धि करने लगती हैं. कुछ ही सप्ताहों में इनमें कार्य करने की क्षमता आ जाती है, और वे सामान्य अंगों की भांति कार्य करने लगते हैं. इस तरह से एक बांझ चूहा बच्चे जनने की अवस्था में आ जाता है.

गोस्डन और उनके सहयोगियों ने इस तरह से मातृत्व में एक महत्वपूर्ण और सफल प्रयोग कर दिखाया है. उनका कहना है कि इसी प्रकार पालतू जीवों, पशुओं तथा पक्षियों में भी सफलता पाई जा सकती है. संभव है भविष्य में मानव भी इस प्रयोग का लाभ उठा सके.

संक्षिप्तियां

❑ स्वीडन के वैज्ञानिकों द्वारा दो दशकों के अनुसंधान कार्य के बाद विकसित मैंडेलिक एसिड एमाइड आधारित प्रतिकर्षी (रेपेलेंट) मच्छरों, जुंओं, किलनी आदि के विरुद्ध काफी असरदार बताया जाता है. मच्छरों की विभिन्न जातियों पर किए गए परीक्षणों में यह पीत ज्वर फैलाने वाले मच्छरों के विरुद्ध ज्यादा असरदार पाया गया है. यह उत्पाद अब जल्दी ही पहले स्वीडन और फिर यूरोपीय देशों में बिक्री हेतु उपलब्ध होगा.

❑ नेशनल बिल्डिंग्स आर्गेनाइजेशन के श्री ओ०पी० रत्रा द्वारा विकसित 'पौलीक्रीट' से बने मैनहोल के ढक्कनों की तीसरी दुनिया के देशों में काफी मांग है. स्टील के बजाए प्लास्टिक तंतुओं (फाइबर्स) से बने ये ढक्कन देश के कई शहरों की व्यस्त सड़कों पर पिछले आठ सालों से सही-सलामत हैं. लोहे के ढक्कनों की तरह इनकी चोरी का डर नहीं है और स्टील के ढक्कनों की तरह इनमें जंग लगने की समस्या भी नहीं है. अपेक्षाकृत सस्ते और लंबी अवधि तक उपयोगी इन ढक्कनों के उत्पादन की प्रौद्योगिकी प्राप्त करने में कोलम्बिया, पनामा, वेनेजुएला, पेरू और श्रीलंका ने रुचि दिखाई है.

❑ बंबई की एक कंपनी ने देश में पहली बार सौर परावर्त्तक कांच के उत्पादन की प्रौद्योगिकी विकसित की है, जिसमें देश में ही निर्मित विशेष गुणवत्ता के चादर कांच (शीट ग्लास) की सतह पर उच्च निर्वात में बहुत पतला धात्विक विलेप करके इसे तैयार किया जाता है. भवनों, वाहनों आदि में प्रयुक्त ये कांच 3 से 6 मिलीमीटर की मोटाइयों और विभिन्न आकारों में उपलब्ध होंगे. स्वदेशी प्रौद्योगिकी के विकास के बाद अब रंगीन कांचों और सौर नियंत्रित फिल्मों के आयात में कमी आएगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावधान – अब उभरेगा पर्यावरणीय उपनिवेशवाद

□ अनिल अग्रवाल
सुनीता नारायण

□ नई दिल्ली स्थित एक स्वतंत्र पर्यावरण-नीति अनुसंधान संस्थान 'विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र' (सी० एस० ई०) ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम तथा विश्व संसाधन संस्थान नामक एक अमेरिकी संस्था पर आरोप लगाया है कि ये संस्थाएं विकासशील देशों, खासतौर से भारत, चीन तथा ब्राजील द्वारा इस धरती के गर्म होने की समस्या में नकारात्मक योगदान देने के बारे में गलत सूचनाएं प्रसारित कर रही हैं

वैज्ञानिकों ने पाया है कि धरती के वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड, मीथेन तथा क्लोरोफ्लुअरो कार्बनों की मात्रा बढ़ रही है. अब सभी लोग इस तथ्य को स्वीकार कर रहे हैं कि ये गैसें सूर्य की गर्मी को धरती पर ही कैद कर रखेगीं जिससे 'ग्रीन हाउस' प्रभाव पैदा होगा और धरती का तापमान बढ़ता जाएगा. सबसे ज्यादा भय की बात यह है कि इससे विश्व की जलवायु में जो अस्थिरता आएगी उससे बाढ़ें और सूखा बढ़ेगा और ध्रुव-क्षेत्रों की बर्फ के पिघलने से भारत, बंगलादेश तथा मालदीव जैसे देशों के काफी हिस्से डूब जाएगें. जहां वैज्ञानिक इस बात को तो मान रहे हैं कि धरती के गर्म होने की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है, वहीं उनमें से कोई भी निश्चित तौर पर यह कहने की स्थिति में नहीं है कि इससे कौन-कौन से देश कितने प्रभावित होंगे.

लेकिन विकासशील देशों के माथे सारा दोष देने का काम शुरु हो गया है. विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र द्वारा हाल ही में जारी एक अध्ययन 'अ-समान विश्व में धरती का गर्म होना मामला पर्यावरणीय उपनिवेशवाद का' में कहा गया है कि अभी हाल तक लगभग सभी लोग यह मानते थे कि पश्चिम के विकसित देश ही विश्व में सबसे ज्यादा जीवाश्म ईंधन (पेट्रोल) का उपभोग करते हुए कार्बन डाइआक्साइड पैदा करते हैं जो कि धरती के गर्म होने का मुख्य कारण है. लेकिन अभी पिछले कुछ वर्षों से पश्चिमी देशों ने लगातार यह प्रचार करना शुरु किया है कि धरती के गर्म होने का काफी बड़ा कारण विकासशील देशों में होने वाले वन-विनाश, पशु-पालन तथा चावल की सिंचित खेती से निकलने वाली मीथेन गैस भी है. इस प्रचार के कारण अब सारी जिम्मेदारी विकासशील देशों पर आ गई है.

विश्व की जलवायु को अस्थिर करने में भारत की जो भूमिका संयुक्त राष्ट्र तथा अमेरिकी अध्ययन में दिखलाई गई है उसे चुनौती देते हुए भारत की स्वयंसेवी संस्थाओं ने दावा किया है कि यह अध्ययन तीसरी दुनिया विरोधी है. प्रस्तुत है नई दिल्ली स्थित एक स्वतंत्र पर्यावरण नीति अनुसंधान संस्थान 'विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र' द्वारा किए गए अध्ययन का सार-संक्षेप.

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू० एन० ई० पी०), संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू० एन० डी० पी०) तथा विश्व संसाधन संस्थान (डब्ल्यू० आर० आई०) ने संयुक्त रूप से एक रपट 'विश्व संसाधन 1990-91' प्रकाशित की है जिसमें पहली बार यह कहा गया है कि भारत, चीन तथा ब्राजील चोटी के उन पांच देशों में हैं जो कि धरती पर उसे गर्म करने वाली गैसों के निर्माण के लिए उत्तरदायी है.

विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र ने अपने अध्ययन में जिसमें प्रत्येक देश द्वारा गैसीय उत्सर्जन के विश्व संसाधन संस्थान द्वारा दिए गए आंकड़ों का ही उपयोग किया गया है. यह दिखलाया है कि धरती के वातावरण में जो कार्बन डाइआक्साइड एकत्र हुआ है उसमें से एक किलोग्राम जितनी मात्रा के लिए भी न तो चीन और न ही भारत जिम्मेदार है. इसके विपरीत विश्व संसाधन संस्थान संयुक्त राष्ट्र की रपट में कहा गया है कि भारत 47.6 करोड़ टन कार्बन डाइआक्साइड तथा 52 लाख टन मीथेन गैस के निर्माण के लिए जिम्मेदार है.

विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र के अध्ययन के अनुसार सारे विकासशील देश मिलकर वातावरण में मौजूद कुल कार्बन डाइआक्साइड के केवल 16 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी है जबकि विश्व संसाधन संस्थान संयुक्त राष्ट्र की रपट का कहना है कि इसमें तीसरी दुनिया की हिस्सेदारी 48 प्रतिशत की है. वास्तव में विकासशील देशों का मीथेन के निर्माण में कोई योगदान नहीं है जबकि उक्त अमेरिकी रपट उन्हें 56 प्रतिशत का जिम्मेदार घोषित करती है.

एक ही जैसी जानकारी और आंकड़ों पर आधारित होने के बावजूद आखिर दोनों रपटों के निष्कर्षों में इतना अंतर क्यों है? यह इसलिए कि संयुक्त-विश्व संसाधन संस्थान अध्ययन के निष्कर्ष उस स्पष्टतः गैरवाजिब गणितीय कलाबाजी पर आधारित हैं जो विज्ञान के मुखौटे में शुद्ध राजनीति है.

मानवीय क्रियाओं द्वारा भारी मात्रा में जो कार्बन डाइआक्साइड तथा मीथेन पैदा होती है वह ज्यादातर पृथ्वी के वातावरण द्वारा सोख ली जाती है. कार्बन डाइआक्साइड महासागरों

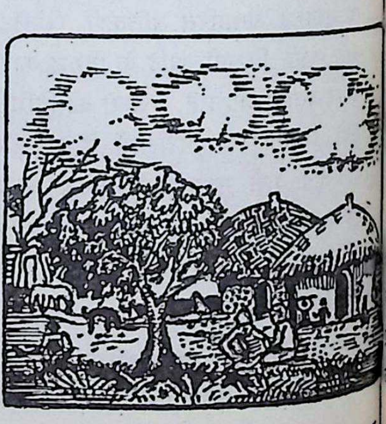

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तथा मीथेन धरती के क्षोभ मंडल (ट्रोपोस्फीयर) द्वारा आत्मसात कर ली जाती है. अतः असली मुद्दा यह नहीं है कि कौन सा देश कितनी कार्बन डाइआक्साइड और मीथेन पैदा करता है बल्कि मुद्दा यह है कि इन दोनों गैसों में से प्रत्येक की कितनी ऐसी मात्रा निर्मित होती है जो पृथ्वी के वातावरण को स्वच्छ करने की प्राकृतिक क्षमता से अधिक है. लेकिन विश्व संसाधन संस्थान ने भारत की जिम्मेदारी तय करने के लिए बड़े भोलेपन से पहले भारत के कुल मीथेन और कार्बन डाइआक्साइड के उत्सर्जन की गणना की तथा यह नहीं बतलाया कि इसमें से कितनी मात्रा प्राकृतिक रूप से धरती के द्वारा सोख ली जाती है. इसके बदले वह सिर्फ उसे जो गैसें निर्मित करता है उसकी मात्रा के आधार पर दोषी ठहराकर वातावरण को स्वच्छ करने की उसकी जिम्मेदारी बढ़ा-चढ़ाकर तय कर देता है.

प्रत्येक देश की जिम्मेदारी तय करने का यह तरीका बेहद अन्यायपूर्ण तो है ही उसे वैज्ञानिक धोखा-धड़ी भी कहा जाएगा. खुद अमेरिका का ही उदाहरण लें. संयुक्त राष्ट्र तथा विश्व संसाधन संस्थान की गणना के अनुसार अमेरिका की जो मानव द्वारा उत्सर्जित कुल कार्बन डाइआक्साइड का 14.4 प्रतिशत उत्सर्जित करता है, वातावरण में उसके एकत्र होने की जिम्मेदारी इतनी ही ठहरती है. दूसरे शब्दों में जबकि अमेरिका ने 450 करोड़ टन कार्बन डाइआक्साइड का निर्माण किया, उसके उत्सर्जकों की वातावरण में जमा होने वाली मात्रा केवल 9800 लाख टन रही, जबकि प्राकृतिक नाबदानों द्वारा 25,210 लाख टन गैसें सोख ली गई. लेकिन भारत जिसने कुल 10,770 लाख टन कार्बन डाइआक्साइड पैदा की, वातावरण में 4760 लाख टन एकत्र करने का दोषी हो गया जबकि 6010 लाख टन गैस पृथ्वी के वातावरण द्वारा सोख ली गई. इस तरह भारत को जिसकी आबादी अमेरिका से 3.4 गुना अधिक है, प्राकृतिक नाबदानों का जो हिस्सा मिला वह अमेरिका को मिले हिस्से का सिर्फ एक चौथाई है जबकि ये प्राकृतिक 'नाबदान' मानव की साझा धरोहर है.

धरती की जलवायु को डगमगाने के अपराध में किसकी भागीदारी कितनी है इसे निर्धारित करने का यह तरीका बहुत ही गैर वाजिब है क्योंकि वह उन्हीं देशों के पक्ष में जाता है जो वास्तव में सबसे प्रदूषक हैं. जितनी ज्यादा प्रदूषण आप पैदा करते हैं, प्राकृतिक (नावदानों) का उतना ही बड़ा हिस्सा आपको मिल जाता है. यह विकृति संयुक्त राष्ट्र तथा विश्व संसाधन संस्थान द्वारा गणना की गलत विधि अपनाने के कारण ही आई है.

विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र के अध्ययन में एक तर्क यह भी दिया गया है कि अमेरिकी यूरोपीय या बल्कि नई दिल्ली की सड़कों पर चलने वाली मोटरकारों से निकलने वाले विलासितापूर्ण धुएं की तुलना धान के खेतों से जो कि कुछ लोगों के जिंदा रहने के लिए आवश्यक है, निकलने वाली मीथेन गैस से या बंगलादेश या थाई मवेशीपालकों से करना बहुत ही अनैतिकतापूर्ण है.

स्थानीय पर्यावरण सरोकारों का मतलब ही यह है कि लोग धरती के पर्यावरण की रक्षा करते हुए तथा उसके साथ सामंजस्य रखते हुए जीना सीखें. पश्चिम के पर्यावरणवादी पर्यावरण की चिंता करने की बात तो करते हैं लेकिन उसके सम्यक बंटवारे के बारे में कुछ नहीं कहते हैं.

अध्ययन में यह भी इंगित किया है कि भारत तथा अन्य विकासशील देशों द्वारा वन-विनाश, मवेशीपालन तथा धान की खेती के द्वारा जिस मीथेन तथा कार्बन डाइआक्साइड के निर्माण की बात विश्व संसाधन संस्थान के अध्ययन में की गई है वह अपरिपक्व वैज्ञानिक जानकारी पर आधारित है तथा उसे जान-बूझकर बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया है. उसके सारे अनुमान धान के खेतों तथा मवेशी पालन से होने वाले कुछ थोड़ों से पश्चिमी पैमानों पर आधारित हैं तथा उन्हें सारी दुनिया पर लागू कर दिया गया है. मौजूदा वन-विनाश की दर के बारे में इस रपट द्वारा ब्राजील के वन-विनाश की जो दर बतलाई गई है उसे चुनौती देते हुए ब्राजील ने कहा है कि वह 300 से 400 गुना ज्यादा है. विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र के अध्ययन के अनुसार जो कुछ हमें यहां बतलाया जा रहा है वह न केवल अ-वैज्ञानिक है बल्कि उससे राजनीति की बू आती है.

जब तक कि कोई बेहतर जानकारी का आधार विकसित नहीं कर लिया जाता तब तक 'विकासशील देशों द्वारा ग्रीन हाउस गैसों' के उत्पादन की सही मात्रा की गणना असंभव है, उनकी उनके वातावरण में जमा होने में भागीदारी का पता लगाना तो दूर की बात है, लगता है कि विश्व संसाधन संस्थान संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रस्तुत इस सारे अध्ययन का उद्देश्य उन पश्चिमी देशों के घरेलू नीतिगत स्वार्थों का पृष्ठपोषण करना है जिनकी सरकारें अपने यहां के पर्यावरणवादियों को यह जंचा देना चाहती हैं कि सारा दोष सिर्फ उनकी ही सरकारों का नहीं है तथा जब तक बेचारे तीसरी दुनिया के देशों को भी इसमें शामिल नहीं किया जाता तब तक वे केवल अपने बल पर स्थानीय रूप से कुछ नहीं कर सकते हैं. चूंकि पश्चिमी देशों में पांच से पंद्रह प्रतिशत मत आजकल हरित राजनीतिक दलों को मिल रहे हैं. इन हरित मतों को प्राप्त करने के लिए पश्चिम के राजनीतिज्ञ अपने आप को एक दूसरे से ज्यादा हरित दिखलाने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं.

यह कितनी अजीब बात है कि भारत ने अभी तक विश्व संसाधन संस्थान के आंकड़ों को चुनौती नहीं दी है जबकि उसे अच्छी तरह पता है कि विकासशील देशों पर ओजोन-संधि जैसे ही एक विश्व जलवायु नियंत्रण करार पर हस्ताक्षर करने के लिए पश्चिमी देशों का दबाव बराबर बढ़ रहा है. इस बात पर तो सहमति हो भी गई है कि इसके बारे में वार्ताएं संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में होंगी. पश्चिम के पर्यावरणवादी पूरी कोशिश करेंगे कि इस तरह की संधि 1992 के पूर्व ही हो जब ब्राजील में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण तथा विकास सम्मेलन होगा.

विकासशील देशों में कई लोगों को शंका है कि इस संधि से, यदि उसमें गैर वाजिब शर्तें

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई तो, उनके तेल-उपभोग, बिजली-उत्पादन, मवेशी कार्यक्रम तथा सिंचित चावल की खेती आदि की प्रगति विपरीत रूप से प्रभावित होगी. जहां ओजोन संधि से भारत के केवल रेफ्रिजरेशन, खाद्य भंडारण तथा वातानुकूलन उद्योग प्रभावित होंगे वहीं प्रस्तावित विश्व जलवायु समझौते से तो हमारी लगभग प्रत्येक आर्थिक गतिविधि पर अंकुश लग जाएगा.

विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र के अध्ययन के अनुसार भारत जैसे देश को तीसरी दुनिया के हितों की रक्षा के लिए पूरे साहस और कल्पनाशीलता के साथ पहल करनी चाहिए. ओजोन संधि के बारे में हुई वार्ताओं ने दिखला दिया है कि भारत, चीन, ब्राजील तथा कुछ अन्य विकासशील देश विश्व जलवायु संधि के निर्माण में भी तीसरी दुनिया का पक्ष रखने में महत्वपूर्ण भूमिका खेलेंगे. यदि भारत या उसके जैसे अन्य महत्वपूर्ण विकासशील देश पश्चिमी दबाव के समक्ष झुक जाते हैं तो ऐसा करके वह न केवल अपनी मौजूदा तथा भविष्य की पीढ़ियों के हितों को नुकसान पहुंचाएगें बल्कि पूरी तीसरी दुनिया को इसके विपरीत परिणाम भुगतने होंगे.

यह बहुत जरूरी है कि हम धरती के पर्यावरण में अपने वाजिब हिस्से तथा विश्व की सांझा-विरासत में अपनी भागीदारी के लिए पूरा संघर्ष करें, तभी हमारा वह 'साझा भविष्य' सुरक्षित हो सकेगा जिसकी बात नार्वे की प्रधामंत्री ग्रोहार्लेम ब्रुटलैंड ने की है.

सबसे बड़ी दिक्कत तो यह है कि जहां तीसरी दुनिया के दृष्टिकोण से विश्व पर्यावरण के इन महत्वपूर्ण मुद्दों पर बहुत ही कम वैज्ञानिक अनुसंधान हो रहा है, वहीं तीसरी दुनिया के नेताओं में ज्यादातर ऐसे हैं जो पश्चिमी प्रसार-माध्यमों में अपना नाम प्रचारित करने की नीयत से पश्चिम के राजनीति प्रेरित आंकड़ों और जानकारियों को आंखें मीच कर जैसा का तैसा स्वीकार कर रहे हैं. **(सप्रेस द्वारा पेनोस पर्यावरण कक्ष एवं गांधी शांति केन्द्र के सहयोग से)** ❑

पूर्वी यूरोप के परिवर्तनों से तीसरी दुनिया पर विपरीत पर्यावरणीय प्रभाव की संभावना

❑ डा० वन्दना शिवा

❑ 'घास कुचली जाती है,
जब हाथी आपस में लड़ते हैं,
घास तब भी कुचली जाती है
जब वे प्यार करते हैं'

पूरब-पश्चिम के देशों के रिश्तों के संदर्भ में दक्षिण के देशों की स्थिति को अफ्रीका की उपरोक्त कहावत बहुत ही सही ढंग से व्यक्त करती है. महाशक्तियों की होड़ की सबसे ज्यादा कीमत तीसरी दुनिया के पर्यावरण तथा वहां के समुदायों ने ही चुकाई है. यूरोप का शीत-युद्ध हमेशा तीसरी दुनिया में वास्तविक और ज्वलंत युद्धों में बदला है. मध्य अमेरिका, उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य एशिया में 1945 के बाद से अब तक 200 लड़ाईयां लड़ी गई हैं.

अल-साल्वाडोर में वहां की उर्वर धरती पिछले बीस हजार वर्षों से वहां के पिपिल, ल्यूका तथा पोकोमान इंडियन आदिवासियों का पालन-पोषण कर रही है. आज यह सारा इलाका बम-वर्षा, धरती तपाने वाले सैनिक अभियानों तथा अग्निकांडों के कारण मृत हो गया है. वन तथा नदियां सूख गई हैं जबकि बाकी बचा देश उस खतरनाक तथा विवेकहीन औद्योगीकरण का शिकार हो गया है जिसके अंतर्गत हवाई जहाज कीटनाशक छिड़क कर मिट्टी और पानी को प्रदूषित कर रहे हैं तथा कारखाने अपना जहरीला कूड़ा जल-स्रोतों में फेंक रहे हैं.

महाशक्तियों में तनाव के अन्य मंच उत्तरी अफ्रीका तथा अफगानिस्तान रहे हैं. लेकिन अब दोनों महादेश मजे से हाथ मिलाकर घोषणा कर रहे हैं कि शीत-युद्ध समाप्त हो गया है और पूर्वी यूरोप में प्रजातंत्र की आंधी बह रही है. अब, जबकि हाथियों ने लड़ना बंद कर दिया है, क्या घास को कुछ सुकून नसीब होगा? या जब पहली और दूसरी दुनिया नए जोश के साथ उपभोक्तावाद को अपनाएगी तो तीसरी दुनिया की 'घास' और ज्यादा रौंदी जाएगी.

समूचे उत्तरी गोलार्द्ध में खुले बाजार पर आधारित जो प्रजातंत्र अपने पैर जमाएगा उसकी संभवतः तीसरी दुनिया को भारी पर्यावरणीय कीमत चुकानी होगी. सबसे पहले तो पूरब और पश्चिम दोनों ही खेमों में औद्योगीकरण की प्रेरक शक्ति सैनिक उद्योग संकुल रहे हैं. जब कि शांति-वार्ताएं जारी हैं, इन सामरिक-उद्योग संकुलों को बंद नहीं किया जा रहा है. जैसे ही औद्योगिक देश शस्त्र-बहुल शांति से हटकर निःशस्त्र शांति की तरफ उन्मुख हो रहे हैं. सैनिक साज-सामान के निर्माता-विक्रेता तीसरी दुनिया के देशों में वैकल्पिक बाजारों की तलाश में निकल पड़े हैं.

महाशक्तियों के अफगानिस्तान से हटते ही पड़ोस के कश्मीर में आग भड़क उठी और भारत तथा पाकिस्तान हथियारों के नए बाजार बन गए. इसी तरह अमेरिका ने यूरोप से हटाए गए अपने टैंक मिस्र को बेच दिए हैं. पूरब-पश्चिम के निःशस्त्रीकरण से विमोचित हथियारों के तीसरी दुनिया के देशों में खपाए जाने का खतरा बिल्कुल असली है. जब तक हथियारों के निर्माण तथा विक्रय पर रोक नहीं लगाई जाती तब तक महाशक्तियों के बीच होने वाली मित्रता से कोई फायदा नहीं होगा क्योंकि अब तनाव के बिंदु तीसरी दुनिया के देशों में स्थानांतरित होंगे और उनके कारण होने वाले पर्यावरण-विनाश की कीमत भी इन देशों को भुगतनी पड़ेगी.

दूसरे, चूंकि औद्योगिक प्रणाली सैनिक अनुसंधान और विकास पर आधारित है, खुद औद्योगीकरण ही स्थानीय समुदायों और पारिस्थितिकी प्रणालियों के लिए युद्ध की शक्ल अख्तियार कर लेता है. पारिस्थितिकी की दृष्टि से विनाशकारी प्रौद्योगिकी प्रकृति के खिलाफ जो जंग छेड़ती है वह, पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण सब जगह एक-सी होती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरब-पश्चिम के निःशस्त्रीकरण से विमोचित हथियारों के तीसरी दुनिया के देशों में खपाए जाने का खतरा बिल्कुल असली है. जब तक हथियारों के निर्माण तथा विक्रय पर ही रोक नहीं लगाई जाती तब तक महाशक्तियों के बीच होने वाली मित्रता से कोई फायदा नहीं होगा क्योंकि अब तनाव के बिंदु तीसरी दुनिया के देशों में स्थानांतरित होंगे और उनके कारण होने वाले पर्यावरण-विनाश की कीमत भी इन देशों को भुगतनी पड़ेगी.

पूरब के देशों में हुए पर्यावरण विनाश की बातें खूब की जा रही हैं. सोवियत रूस में अराल-सागर की मृत्यु इसका एक अच्छा उदाहरण है. रूस के दक्षिणी कपास उत्पादक इलाकों में सिंचाई करने के कारण अराल सागर में समाने वाली नदियां इतनी ज्यादा सूखती गईं कि अब इस समुद्र का 70 प्रतिशत पानी और उसकी 55 प्रतिशत सतह समाप्त हो गई है. जो थोड़ा बहुत पानी इस समुद्र में पहुंचता है वह कपास के खेतों के रासायनिक उत्सर्जित पदार्थों से प्रदूषित है. इन खेतों में उन्हीं उद्योगों द्वारा निर्मित शाकनाशियों और कीटनाशियों का उपयोग खुलकर किया गया जिन्हें राशेल कार्सन ने 'युद्ध की संतानें' कहा है.

अराल-समुद्र की मौत का उस पारिस्थितिकी के साथ घनिष्ठ संबंध है जो अति-सिंचाई तथा रासायनिक खेती से उत्पन्न होती है. यह वही पारिस्थितिकी है, जो सभी राजनीतिक तथा सामाजिक संदर्भों में फलती-फूलती है और इसीलिए उसके दर्शन हमें रूस में होते हैं और अमेरिका में भी. अमेरिका के केलिफोर्निया राज्य में स्थित सान जोकिन की खाड़ी की स्थिति अराल समुद्र जैसी ही है. जहां के पानी में नमक का घनत्व प्रति लीटर 1320 मिलीग्राम से भी ज्यादा बढ़ गया है और सेलेनियम विषाक्तता के कारण नजदीक के केस्टरसन वन्य-जीवन उद्यान के पक्षी या तो मर रहे हैं या विकृत-शरीरो के साथ जन्म ले रहे हैं. खुले बाजार पर आधारित प्रजातंत्र अभी तक ऐसा कोई रास्ता नहीं खोज पाए हैं जिसके द्वारा कार्पोरेट कंपनियों के मुनाफों की कीमत प्रकृति द्वारा चुकाए जाने को टाला जा सके. पूरब के देशों में अचानक खड़ी हुई इन पर्यावरण-समस्याओं के कारण हम और भी ज्यादा व्यापक समस्याओं की तरफ से आंखें नहीं मीच सकते जो पश्चिम की बाजार-अर्थ-व्यवस्थाओं के कारण उत्पन्न होंगी

वैसे, तीसरी दुनिया की बुनियादी पर्यावरणिक समस्याओं के प्रति पश्चिमी देशों ने भी पूरब की अपेक्षा कोई ज्यादा ध्यान नहीं दिया है. तीसरी दुनिया की पर्यावरणिक दृष्टि से विनाशकारी परियोजनाओं के लिए विशेषज्ञता तथा आर्थिक सहायता मुख्यतः उत्तर के विकसित औद्योगिक देशों से ही प्राप्त होती रही है. उसी के बल पर ये परियोजनाएं साकार हो पाती हैं. भारत में जहां टिहरी बांध के निर्माण में रूस मदद कर रहा है वहीं नर्मदा घाटी परियोजना को आर्थिक सहायता विश्व बैंक से प्राप्त हो रही है.

इन दोनों बांधों के निर्माण का स्थानीय जनता द्वारा विरोध किया जा रहा है, क्योंकि इनके तहत बनने वाले सरोवरों में उनकी उर्वर जमीनें डूब जाने वाली है. पर्यावरणविद् भी इन बांधों का विरोध कर रहे हैं क्योंकि उनके हिसाब से इनके कारण नदी-प्रणालियां नष्ट हो जाती हैं तथा अति-सिंचन से इन इलाकों की मिट्टी की जो उर्वरता नष्ट होगी वह उनके उद्देश्य को ही नष्ट कर देगी. वास्तव में अमेरिकी तथा सोवियत 'विशेषज्ञता' की मदद से भारत में अराल-समुद्र तथा पश्चिम अमेरिका का ही पारिस्थितिकी इतिहास फिर से लिखा जा रहा है.

अपने मतभेद के दिनों में भी, जबकि औद्योगीकरण की संस्कृति विकसित करने के मामले में पूरब और पश्चिम के देश एकमत रहे, तो अब जब वे दोनों ही नियमित औद्योगीकरणवाद को समानरूप से अपनाएंगे तो कल्पना की जा सकती है कि तीसरी दुनिया को क्या कुछ नहीं झेलना पड़ेगा.

जहां तक हमारा अनुमान है, उत्तर के देशों के इस नए औद्योगीकरण तथा उपभोक्तावाद की लागत, जिसमें पूर्वी यूरोप को 'साफ-सुथरा' बनाने की लागत भी शामिल होगी, तीसरी दुनिया को ही भुगतनी होगी. इस एकीकृत यूरोप के उत्पादक, जो कि उत्तरी देशों के पर्यावरण मानकों व शर्तों का पालन नहीं कर पाएंगे, अपने उत्पादन के प्रदूषक और खतरनाक चरणों को विकासशील देशों में स्थानांतरित कर देंगे. हम, दिनों-दिन उनके कूड़े और विषाक्तता के ढेरों में बदलते जाएंगे और एकीकृत उत्तरी यूरोप के देशों में आर्थिक वृद्धि की गति जैसे ही बढ़ेगी उनकी कच्चे माल की भूख को संतृप्त करने का काम भी तीसरी दुनिया के देशों को ही करना पड़ेगा. अविभाजित उत्तर के लिए स्वतंत्रता और समृद्धि के जिस भविष्य की कल्पना की जा रही है उसमें तीसरी दुनिया के देशों की यही भूमिका तय की गई है.

अपनी पुस्तक 'पेरेस्त्रोइका' में सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाचोव यह स्वीकार करते हैं कि सारी दुनिया में विद्यमान गहरे अंतर्विरोधों तथा उग्र मतभेदों के बावजूद विश्व एक-दूसरे पर निर्भर, परस्पर जुड़ा हुआ—तथा एकनिष्ठ है. इसके साथ ही वे यह भी इंगित करते हैं कि धरती के संसाधनों की स्थिति, पर्यावरण के सहयोगी खतरे तथा मानव के अस्तित्व के सरोकार सारी दुनिया की साझी समस्याएं हैं. लेकिन वे आगे कहते हैं, 'हम यह भी जानते हैं कि मध्यपूर्व एशिया, लातिनी अमेरिका, अन्य तीसरी दुनिया के क्षेत्र तथा दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका और यूरोप की अर्थव्यवस्थाओं के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं, खासतौर से कच्चे माल के संसाधनों के रूप में. इन संपर्क सूत्रों को काटना हम कभी नहीं चाहेंगे. ऐतिहासिक दृष्टि से निर्मित इन परस्पर आर्थिक हितों को तोड़ने की भी हमारी कोई इच्छा नहीं है.

पूरब तथा पश्चिम के बीच तनाव की समाप्ति के बाद इस बात की संभावना बढ़ी है कि इन उत्तरी देशों को कच्चे माल की पूर्ति के साथ ही तीसरी दुनिया के देश उसके कूड़े-दान का काम भी करें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे, तीसरी दुनिया की बुनियादी पर्यावरणिक समस्याओं के प्रति पश्चिमी देशों ने भी पूरब की अपेक्षा कोई ज्यादा ध्यान नहीं दिया है. तीसरी दुनिया की पर्यावरणिक दृष्टि से विनाशकारी परियोजनाओं के लिए विशेषज्ञता तथा आर्थिक सहायता मुख्यतः उत्तर के विकसित औद्योगिक देशों से ही प्राप्त होती रही है. उसी के बल पर ये परियोजनाएं साकार हो पाती हैं. भारत में जहां टिहरी बांध के निर्माण में रूस मदद कर रहा है वहीं नर्मदा घाटी परियोजना को आर्थिक सहायता विश्व बैंक से प्राप्त हो रही है.

दरअसल कच्चा माल आपूर्त करने की हमारी यह भूमिका उस औपनिवेशिक, विरासत का ही एक हिस्सा है जो बेहद गैरवाजिब शर्तों पर हमारे संसाधनों का शोषण अब भी जारी रखे हुए हैं. उत्तर के देशों को समृद्ध बनाए रखने के लिए यह पर्यावरणिक बोझ हम ढोते हैं.

लगभग आधी सदी पूर्व, औद्योगीकरण की प्रक्रिया में संसाधनों की जरूरत को ही उपनिवेशवाद की जड़ बतलाते हुए गांधीजी ने कहा थाः 'भगवान न करे भारत भी कभी पश्चिम की तरह औद्योगीकरण को अपनाए. मात्र एक ही राज्य-तंत्र (इंग्लैंड) के आर्थिक साम्राज्यवाद ने आज पूरी दुनिया को गुलामी की जंजीरों में बांध दिया है. यदि तीस करोड़ की आबादी वाला एक पूरा देश ही इस तरह के आर्थिक शोषण की राह पर चल पड़ा तो वह सारी दुनिया को उसी तरह उजाड़ देगा जिस तरह टिड्डी-दल किसी खेत को चट कर जाता है.

लगभग आधी सदी पूर्व औद्योगीकरण की प्रक्रिया में संसाधनों की जरूरत को ही उपनिवेशवाद की जड़ बतलाते हुए गांधीजी ने कहा था : 'भगवान न करे भारत भी कभी पश्चिम की तरह औद्योगीकरण को अपनाए. मात्र एक ही राज्य-तंत्र (इंग्लैंड) के आर्थिक साम्राज्यवाद ने आज पूरी दुनिया को गुलामी की जंजीरों में बांध दिया है. यदि तीस करोड़ की आबादी वाला एक पूरा देश ही इस तरह के आर्थिक शोषण की राह पर चल पड़ा तो वह सारी दुनिया को उसी तरह उजाड़ देगा जिस तरह टिड्डी-दल किसी खेत को चट कर जाता है.

इस समय जबकि उत्तर के देश एक एकीकृत बाजार तथा उत्पादन प्रणाली के रूप में संयुक्त हो रहे हैं, यह प्रश्न पूछना अप्रासंगिक नहीं होगा कि 'विश्व अर्थव्यवस्था' की कच्चे माल की सारी जरूरतों को पूरा करने के लिए तथा उसके द्वारा उत्सर्जित कूड़े तथा प्रदूषण को सोखने के लिए कितनी और 'तीसरी दुनियाओं' की जरूरत होगी.

इस समय विश्व की बीस प्रतिशत आबादी अस्सी प्रतिशत संसाधनों का उपयोग कर रही है और उसी से धरती तबाह हो चुकी है. यदि समूचे उत्तर के देश तथा तीसरी दुनिया के देशों का श्रेष्ठीवर्ग भी इसी विशिष्ट बीस प्रतिशत के ढंग से रहने लगा तो यह चीज इस धरती के पर्यावरण तथा दक्षिण के बहुसंख्यक गरीबों के बलिदान के बाद ही संभव होगी. इतना ही नहीं, उनके इस त्याग के बाद भी सारा दोष उनकी बढ़ती आबादी के माथे मढ़ा जाएगा. हाल ही में संयुक्त राष्ट्र द्वारा जनसंख्या पर प्रकाशित रपट में यही किया गया है.

पूर्वी यूरोप में प्रजातंत्र के नाम पर वास्तव में 'स्वतंत्र (प्रजातांत्रिक) बाजार' की धारणा जड़ पकड़ रही है. लेकिन स्वतंत्र बाजार में उनके हित शामिल नहीं होते जिनमें क्रय-शक्ति नहीं होती यानी गरीबजन तथा प्रकृति. इन दोनों को बाजार गौण मानता है. पर्यावरणिक दृष्टि से जो चीज ज्यादा उपयुक्त है वह है 'पारिस्थितिकी सम्मत प्रजातंत्र' की वह अवधारणा जो सारे जीव जगत के लिए वह प्रजातंत्र जो कि जिंदा रहने के अधिकार पर आधारित है, सुनिश्चित करती है जो केवल अमीरों के लिए ही नहीं बल्कि गरीबों के लिए भी तथा इंसानों ही नहीं धरती पर रहने वाले सारे जीवों के लिए भी होगा.

पारिस्थितिकी आंदोलन का पहला सबक यही है कि बाजार-आधारित प्रजातंत्र अपने आप 'पर्यावरणीय प्रजातंत्र' में नहीं परिवर्तित होता. जहां दूसरों की जान का सम्मान करने से कोई व्यापारिक मुनाफा नहीं होता वहीं मुनाफे से ही जीवन का संरक्षण भी सुनिश्चित नहीं किया जा सकता. **(सप्रेस/थर्ड वर्ल्ड नेटवर्क फीचर्स)** □

एड्स रोग और सारी दुनिया का दुःख दर्द

□ हरीश अग्रवाल

□ आधुनिक युग की प्लेग 'एड्स' ने संसार का पूरा चक्र लगा लिया है, अब शायद कोई ही देश इस रोग से बचा होगा. इसका जैसा बड़ा नाम है, उतना ही इसका विस्तार होता जा रहा है.

सम्भोग, समलैंगिकता तथा खराब खून दिए जाने से होने वाले इस रोग पर हाल में सान फ्रांसिस्को में छठा अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन संपन्न हुआ है. लगभग दस हजार प्रतिनिधियों को मालूम हुआ कि एड्स पर काबू करना इतना आसान नहीं है. इसकी रोकथाम के लिए बहुत बड़ा जाल बिछाना होगा, वेश्यालयों पर छापे मारने होंगे और अंतरराष्ट्रीय सैलानियों पर नियंत्रण रखना होगा.

शायद सान फ्रांसिस्को इस सम्मेलन के लिए सदा के लिए प्रसिद्ध हो गया. वैसे ही यह नगर संसार का 'गे सिटी' कहलाता है, तो एड्स के लिए सबका ध्यान यहां गया. लगभग 20 हजार लोगों ने एक प्रदर्शन किया, जिसमें सैंकड़ों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉक्टर शामिल हुए. प्रदर्शन में सबसे आगे पहिएवाली कुर्सियों पर एड्स रोगी तथा इसी रोग के कारण होने वाले त्वचा कैंसर रोगी थे. प्रदर्शनकारी नारे लगा रहे थे– ''हम सब इसमें शामिल हैं. चुप्पी का मतलब है मौत'' ये लोग चिल्लाते, सीटी बजाते, ढोल बजाते तथा इन्द्रधनुषी रंग के झंडे फहराते जा रहे थे, जिससे समलैंगिक अधिकार आंदोलन ने अपनाया हुआ है.

वास्तव में सम्मेलन में सबसे ज्यादा दबदबा इस बात का रहा कि एड्स रोगियों के साथ इतना अधिक भेदभाव क्यों बरता जा रहा है. इसके लिए अब तक कोई कारगर दवा या वैक्सीन विकसित नहीं हुई है. उनकी उपेक्षा की जाती है. समाज उन्हें घृणा की दृष्टि से देखता है. सम्मेलन में किसी बड़ी सफलता की घोषणा नहीं की गई. अनुसंधानकर्ताओं ने केवल इतना ही कहा कि सन् 2000 तक एड्स का कोई इलाज ढूंढ लिया जाएगा. धूम्रपान करने वाले के लिए खराब समाचार यह दिया गया कि उन्हें जल्दी और तेजी से एड्स हो सकता है. अब तक एड्स के इलाज के लिए ए जैंड टी तथा अन्य औषधियां इस्तेमाल होती आ रही हैं, लेकिन सम्मेलन में रहस्योदघाटन किया गया कि एक औषधि 'कम्पाउंड क्यू' ज्यादा कारगर सिद्ध हुई है. देखा गया कि 46 मरीजों में से आठ में रोग ठीक हो गया. उनमें नाटकीय परिवर्तन देखे गए.

'कम्पाउड क्यू' चीनी ककड़ी की जड़ से बनाया गया है. इसी तरह अन्य आयुर्वेद औषधियों का उल्लेख किया गया. लेकिन पश्चिमी देशों के वैज्ञानिकों का कहना था कि अभी इन औषधियों के परीक्षणों को अंतिम नहीं कहा जा सकता.

वास्तव में इस सम्मेलन को 'गुस्सा, निराशा, आशा तथा एकता के सम्मेलन की संज्ञा देना गलत न होगा.' डॉक्टरों तथा वैज्ञानिकों ने एक स्वर से कहा कि पिछले एक साल में 'एक्वायर्ड इम्यूनो डेफीशिएंसी सिंड्रोम' (एड्स) के उपचार के लिए कोई खास प्रगति नहीं हुई. न्यूयार्क के एक दल ने सष्ट किया कि उनका गुस्सा अनुसंधानकर्ताओं पर नहीं है बल्कि अमेरिकी सरकार तथा औषधि कंपनियों पर है, जो इस घातक रोग के विरुद्ध संघर्ष में असफल रहे हैं. दूसरी ओर कुछ सक्रिय कार्यकर्ताओं ने छह हजार डॉक्टरों तथा एक्टिविस्टों के एकता मार्च को अभूतपूर्व बताया और कहा कि डॉक्टर तथा अनुसंधानकर्ता हमारी तरफ हैं. अब हम कुछ वास्तविक प्रगति कर सकेंगे. सरकार की भी अब आंखें खुलेंगी कि उसे क्या करना चाहिए.

एड्स की रोकथाम के लिए सरकारें वैज्ञानिकों की ओर ताकती हैं कि वे शायद कोई टीका ईजाद कर देंगे. लेकिन मामला कुछ उलझता जा रहा है. सबसे ज्यादा जोर एड्स के रोगी या एड्स का कारण बनने वाले ह्यूमन इम्युनोडेफीशिएंसी वायरस (एच० आई० वी०) से ग्रसित लोग आजमा रहे हैं. वे कहते हैं कि उनके इलाज के लिए कुछ भी नहीं किया जा रहा. उनकी सामाजिक उपेक्षा की जा रही है और यहां तक कि उन्हें असतालों तक में प्रवेश नहीं मिलता. अब तक प्रभावशाली औषधियों की खोज में अरबों डालर खर्च किए जा चुके हैं, फिर भी इस रोग के लिए कोई कारगर इलाज नहीं है. ज्यादा से ज्यादा यह हुआ है कि रोगियों का जीवन थोड़ा लंबा हो गया है तथा पीड़ा कुछ कम हुई है. विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अनुमान लगाया है कि 60 से 80 लाख लोग एड्स विषाणु से ग्रसित हैं तथा सन् 2000 तक यह संख्या दो करोड़ तक पहुंच सकती है.

सम्मेलन में भारत की स्थिति पर चर्चा हुई और इस बात पर चिंता व्यक्त की गई कि भारतीय नगरों में रोग तेजी से फैल रहा है. आम जनता शिकार हो रही है. अनेक लोग अपना रोग छिपा रहे हैं. बम्बई में 10 प्रतिशत वेश्याएं एड्स विषाणु से ग्रसित हैं. एक नए अध्ययन के अनुसार विषाणु महिलाओं से पुरुषों में कम तेजी से संचारित होता है, पुरुषों से महिलाओं में ज्यादा तेजी से होता है. इसका अर्थ है कि पहले से ही ज्यादा पीड़ित और उपेक्षित महिलाओं को और अधिक एड्स होने का खतरा है.

भारत में एड्स की रोकथाम व नियंत्रण के

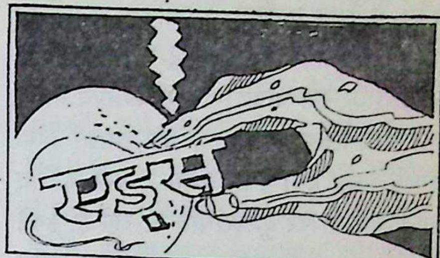

लिए एक मध्यकालीन योजना शुरु की गई है जिसके लिए 33 करोड़ रुपया निर्धारित किया गया है. स्वास्थ्य राज्यमंत्री ने हाल में रहस्योद्घाटन किया था कि देश में 44 एड्स रोगियों की पहचान हो चुकी है (पता नहीं ऐसे कितने होंगे जिनकी पहचान नहीं हुई है). कुल 4 लाख 80 हजार व्यक्तियों की जांच पड़ताल की गई जिनमें 2251 व्यक्ति इसके विषाणु से ग्रसित पाए गए. इन सबमें वे व्यक्ति भी शामिल थे जो यौन व्यभिचार करते हैं, जो पेशेवर खून देते हैं तथा सुई के द्वारा मादक पदार्थ शरीर में पहुंचाते हैं.

एड्स सम्मेलन में एड्स पीड़ितों ने जिस एक और महत्वपूर्ण बात पर जोर दिया वह थी उनके अधिकारों की सुरक्षा. ब्रिटेन के 15 स्वयंसेवी संगठनों ने एक मांग-पत्र में कहा था कि विषाणु तथा एड्स से पीड़ित लोगों के अधिकारों की रक्षा एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के द्वारा की जाए. इस मांग पर हस्ताक्षर करने वाले अधिसंख्य प्रतिनिधि सम्मेलन में नहीं आए क्योंकि उन्होंने अमेरिकी वीसा नियमों का विरोध करते हुए सम्मेलन का बहिष्कार किया. अमेरिकी सरकार ने एड्स विषाणु से ग्रसित लोगों पर उनके देश में आने पर रोक लगा दी थी. बाद में अमेरिकी सरकार ने विश्व स्वास्थ्य संगठन के दबाव पर सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के लिए दस दिन का वीसा दिया था. लेकिन अनेक प्रतिनिधि पहले ही बहिष्कार कर चुके थे.

ब्रिटेन के 15 संगठ्नों के घोषणा-पत्र में एड्स रोगियों के साथ 'अन्यायपूर्ण भेदभाव' से सुरक्षा के लिए कानून बनाने की मांग की गई. दलील पेश की गई कि इस भेदभाव से सुरक्षा के लिए केवल शिक्षा या उपदेश देना पर्याप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है. इस घोषणा-पत्र को मॉडल के रूप में ब्रिटेन में लागू करवाने की योजना बनाई जा रही है जिससे यह अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का रूप ले सके. इस घोषणा-पत्र में कतिपय मानव तथा राजनैतिक अधिकारों का हवाला दिया गया है, कहा गया है कि एड्स रोगियों के लिए इन अधिकारों पर कुठाराघात हो रहा है. इनमें गोपनीयता, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा के अधिकार शामिल हैं. यही नहीं अनेक अन्य अधिकारों का उल्लेख किया गया है, जैसे कहीं भी जाने आने की स्वतंत्रता, रोजगार, आवास, भोजन, चिकित्सा सहायता, कल्याण, विवाह तथा शिक्षा.

इन अधिकारों में एक बात बहुत विवाद पैदा करेगी और वह है गोपनीयता के अधिकार के संबंध में रोगी के रोग के बारे में डॉक्टरों द्वारा किसी तीसरे व्यक्ति से रहस्योद्घाटन न करना. ऐसा रोगी की रजामंदी पर ही किया जा सकता है. घोषणा-पत्र में यह भी मांग की गई है कि किसी भी रोगी को रोजगार से इन्कार या उसे बर्खास्त नहीं किया जा सकता.

लगता है कि अब सरकारों को दोहरे मोर्चे पर संघर्ष करना होगा—एक तो वह जो एड्स से पीड़ित हैं, दूसरा वह जो आम आदमी से संबद्ध है. दोनों ही मामूली नहीं हैं. पहले मोर्चे पर रोगियों की देखभाल करनी होगी, उनके अधिकारों की रक्षा करनी होगी और दूसरे पर ऐसी पैनी निगाह रखनी होगी जिससे एड्स प्रसार की रोकथाम और नियंत्रण हो सके. दोनों ही मोर्चे पर कड़ा संघर्ष है. पहले तो एड्स रोगियों की पहचान करना और उन्हें फिर आम जनता से पृथक रखना अपने आप में एक टेढ़ी खीर है. □

सिकुड़ते वन बिगड़ता पर्यावरण

□ डा० सुभाष शर्मा

□ आज के औद्योगिक युग में प्रकृति प्रदत्त संसाधनों की लगातार कमी हो रही है. सच पूछा जाए तो हम प्राकृतिक संसाधनों का तेजी से विनाश कर रहे हैं. प्राकृतिक संसाधनों के विनाश को आसानी से समझा जा सकता है. उदाहरण के लिए किसी तालाब में प्रतिवर्ष पैदा होने वाली मछलियों से अधिक मछलियां पकड़ी जाती हैं. इससे तालाब में मछलियों की लगातार कमी होने लगती है और किसी समय ये बिल्कुल ही समाप्त हो जाती हैं.

ठीक यही स्थिति आज वनों की भी है. जिस गति से वन क्षेत्र सिकुड़ रहा है उस गति से वनों का रखरखाव नहीं किया जा रहा. इससे साफ है कि आज वन क्रमशः विलुप्त होते जा रहे हैं. कुछ देशों में वनों के अनावश्यक रूप से काटने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है. इससे कुछ सीमा तक वनों की अंधाधुंध कटाई कम हुई है. लेकिन इधर पर्यावरण के प्रदूषण ने भी वनों को डसा है. वनों पर औद्योगिक प्रगति का दुष्प्रभाव पश्चिम जर्मनी में सन् 1982 में पहले-पहल देखा गया. उस वर्ष वहां कुल वन के लगभग 8 प्रतिशत पेड़ सूख गए. वर्ष 1983 में वहां के 34 प्रतिशत वृक्ष पीले पड़ गए और 1984 का ग्रीष्म आते-आते वहां मुरझाने वाले पेड़ों का प्रतिशत पचास तक पहुंच गया. यह वनों के क्रमशः विनाश की सच्ची कहानी है.

वैज्ञानिकों का कहना है कि मध्य और उत्तरी यूरोप में कोई को करोड़ हेक्टेयर भूमि में फैले वनों के क्षय के लिए कोयला व तेल जैसे ईंधनों को जलाने से निकलने वाले प्रदूषक तत्व जिम्मेदार हैं. रासायनिक प्रदूषणों ने पेड़ों की ठंड, सूखा, आंधी या कीटाणुओं से बचाव की शक्ति को धीरे-धीरे काफी कम कर दिया है जिससे ये धीरे-धीरे कमजोर होकर सूख जाते हैं. पश्चिम जर्मनी में भी ऐसा ही हुआ है.

प्रदूषण ने जहां शीतोष्ण वनों की प्रतिरोध शक्ति को कम किया है वहीं उष्ण कटिबंधीय वनों की नमी को भी कम किया है. आमतौर पर यह विश्वास किया जाता है कि इन वनों में वर्षा के कारण काफी नमी हो जाती है जिसके कारण इन्हें जलाना कठिन हो जाता है. लेकिन 1982 के अंत में तथा 1983 के शुरु में इंडोनेशिया के पूर्व कालीमंतन प्रांत तथा मलेशिया के सबाह प्रांत के वनों में भयंकर आग लग गई. सात स्थानों पर लगने वाली इस आग ने 35 लाख हेक्टेयर वनों को जला कर राख कर दिया. बाद में जब इस आग के कारणों को जानने के लिए अध्ययन किया गया तो पता चला कि कालीमंतन तथा सवाह प्रांतों में भूमि का लगातार क्षरण हो रहा था, वनों को काटकर जलाया जा रहा था तथा वनों का औद्योगिक स्तर पर इस्तेमाल किया जा रहा था. वैज्ञनिकों ने यह भी कहा कि वहां की भूमि में 1982 तथा 1983 में पड़े सूखे ने भूमि में नमी की मात्रा को कम कर दिया था जिससे वनों को भयंकर आग से नहीं बचाया जा सका. उधर आइवरी कोस्ट में भी 1983 के सूखे के बाद आग लगने से 4.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फैले वन जलकर राख हो गए. इसका कारण भी वहां की भूमि में सूखे के कारण कम हुई नमी को ही बताया गया. इसी प्रकार की आग ने घाना में भी भारी तबाही मचाई.

इधर मिट्टी का कटाव लगातार बढ़ रहा है और उधर नई मिट्टी का जमाव लगातार घट रहा है. वैसे पिछला अनुभव यह बताता है कि धरती की सतह पर विभिन्न पदार्थ जमते रहते हैं और इस जमाव को हवा या पानी पूरी तरह नहीं हटा पाते. लेकिन आज स्थिति एकदम बदल गई है. पृथ्वी की ऊपरी उपजाऊ तह लगातार पतली पड़ती जा रही है. इससे आने वाले वर्षों में कृषि उत्पादन पर भी बुरा प्रभाव पड़ सकता है. इससे वृक्षारोपण में भी कठिनाई होगी.

उधर तेजाबी वर्षा के कारण भी प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ा रहा है. जैसा कि सभी लोग जानते हैं कि औद्योगिक क्षेत्रों के आसपास वर्षा का पानी धरती पर पहुंचने से पहले ही तेजाब में परिवर्तित हो जाता है. ऐसा औद्योगीकरण के कारण वायुमंडल में फैली गैसों के कारण होता है. यदि अधिक तेजाबी वर्षा होने लगती है तो फिर तरह-तरह की हानियां होने लगती हैं.

तेजाबी वर्षा से किस प्रकार की हानि होती है इस सम्बन्ध में एक अध्ययन कनाडा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रेशवाटर इंस्टीट्यूट मेनीटोबा ने किया है. इसके अंतर्गत वैज्ञानिकों ने ओन्टेरियों के उत्तर-पश्चिम में स्थित एक छोटी सी झील के पानी में आठ साल तक तेजाब की मात्रा बढ़ाई और फिर इस झील के पानी के पी-एच का अध्ययन किया. इससे पता चला कि पी-एच जैसे ही 5.9 हुआ झील में एक प्रकार की मछली की संख्या तेजी से कम हो गई. एक अन्य प्रकार की मछली प्रजनन के अयोग्य हो गई तथा एक और किस्म की मछली बिल्कुल ही समाप्त हो गई. तेजाबीकरण के लगातार बढ़ाए जाने पर जैसे ही पी-एच 5.4 पर पहुंचा झील की सारी मछलियां प्रजनन के अयोग्य हो गईं. इस पी-एच पर यह झील केवल एक दशक में ही मछली विहीन हो जाएगी.

अमेरिका के पूर्व-उत्तर में तथा स्कैंडिनेविया में कई झीलों और नदियों में मछलियों के एकाएक गायब होने के पीछे भी औद्योगीकरण के कारण पानी का बढ़ता तेजाबीकरण है. धरती की ऊपरी सतह पर भी तेजाबी वर्षा का दुष्प्रभाव पड़ रहा है. इससे मिट्टी की रासायनिक संरचना बदल रही है और इसमें तेजाब की अधिक मात्रा एकत्र होती जा रही है जिसके कारण अनेक पौष्टिक तत्व विलुप्त होते जा रहे हैं.

एक संक्रामक रोग विशेषज्ञ पर्सीबल पाट ने 1775 में एक अध्ययन के दौरान धुएं निकालने वाली चिमनियों के आस-पास के क्षेत्रों में कैंसर के सबसे अधिक मामले पाए. उन्होंने कहा कि यह चिमनियों से निकले काले चूर्ण के कारण था. इसी प्रकार अनेक गैसें भी वायुमंडल में प्रदूषण फैला रही हैं. इनमें से कुछ गैसें पानी से मिलकर तेजाब बनाती हैं और यहीं से सामान्य वर्षा तेजाबी वर्षा में बदल जाती है. अंधाधुंध औद्योगीकरण के कारण बढ़ी तेजाबी वर्षा ने पूर्वी यूरोप में काफी बड़े क्षेत्रफल को ऊसर बना दिया है. स्वीडन के कुछ भाग में मिट्टी का तेजाबीकरण पिछले 60 वर्षों में दस गुना तक बढ़ गया है. यदि इसी तरह तेजाबी वर्षा बढ़ती रही तो फिर जमीन की ऊपरी सतह में तेजाब की मात्रा बढ़ जाने से यह ऊसर हो जाएगी और फिर इसे पुनः वृक्षारोपण के योग्य बनाने के लिए दशकों का समय लगेगा. तेजाबी वर्षा के कारण एलुमिनियम जैसे पदार्थ भी धरती में पहुंच रहे हैं. ये पेड़ पौधों के लिए काफी हानिकारक होते हैं.

देश में वनों की स्थिति

वनों के बारे में हमारे देश में भी लगातार लापरवाही बरती जा रही है. आज हमारे देश के 10-11 प्रतिशत क्षेत्र में ही प्राकृतिक वन शेष बचे हैं. वैसे आंकड़ेबाज वनों का कुल क्षेत्रफल 6.2 करोड़ हेक्टेयर बताते हैं जिसका अर्थ है कि हमारे 19.52 प्रतिशत क्षेत्र में वन हैं जबकि ऐसा नहीं है. अच्छे स्तर के वनों का क्षेत्रफल तो मुश्किल से 8 प्रतिशत ही है. उधर पिछले तीन दशकों में वनों का क्षेत्रफल बढ़ने या स्थिर रहने के बजाए 43 लाख हेक्टेयर कम हुआ है.

उपग्रह से प्राप्त चित्रों से पता चलता है कि 1973 से 1981 के मध्य हमारे वनों के क्षेत्रफल में 16 प्रतिशत की कमी आई है. उधर 80 करोड़ से अधिक लोगों और 9 करोड़ से अधिक पशुओं का लगातार दबाव भी वनों पर बना हुआ है.

आज यह स्थिति है कि हमारे 15,000 पेड़-पौधों तथा 75,000 पशु-पक्षियों की अनेक प्रजातियां विलुप्त हो गईं हैं. उधर वनों के कम होने से धरती का कटाव लगातार बढ़ रहा है. अनुमान है कि सत्तर के दशक में कटाव के कारण 600 करोड़ टन मिट्टी प्रति वर्ष के हिसाब से बह रही थी, जबकि धरती की ऊपरी ढाई सेंटीमीटर की तह के बनने में 500 से 1000 वर्ष लगते हैं. पिछले 17 वर्षों में मिट्टी का कटाव लगभग दो गुना हो गया है.

दूसरी ओर सन् 2000 तक हमारे देश में 13.7 करोड़ टन लकड़ी की कमी होगी जिसके लिए हमें 3.4 करोड़ हेक्टेयर में वन लगाने होंगे तथा इसके लिए लगभग 400 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष खर्च करना होगा. मेसाचुसेट्स के रिचर्ड हटन के अनुमान के अनुसार हमारे देश में वनों की कमी के कारण कोई 3.3 करोड़ टन कार्बन डाइआक्साइड वायुमंडल की ओर जा रही है जो कि कुल कार्बन डाइआक्साइड का 2 प्रतिशत है. कम से कम कार्बन डाइआक्साइड की निकलने वाली इस मात्रा को आधा तो किया ही जा सकता है, लेकिन वनों के संरक्षण के लिए अभी तक किया गया कार्य भविष्य के लिए विश्वास पैदा नहीं करता.

सभी जानते हैं कि वन वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड के चक्र को व्यवस्थित करने का काम भी करते हैं. अनुमान है कि पेड़-पौधों व धरती में कुल 2000 खरब टन कार्बन डाइआक्साइड समाई है जो वायुमंडल की कुल कार्बन डाइआक्साइड के लगभग तीन गुने के बराबर है. जब वनों को काटा जाता है तो जमीन के अन्दर का कुछ कार्बन आक्सीकृत होकर वायुमंडल में प्रवेश कर जाता है. इस प्रकार वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा लगातार बढ़ती जाती है. 1860 के आंकड़े बताते हैं कि तब कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा 260 भाग प्रति दस लाख भाग थी जबकि यही आज बढ़कर 346 भाग प्रति दस लाख भाग तक जा पहुंची है, यानी कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो कि काफी गम्भीर है. और तो और 1958 के बाद से भी कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में 9 प्रतिशत की वृद्धि हुई है. वर्ष

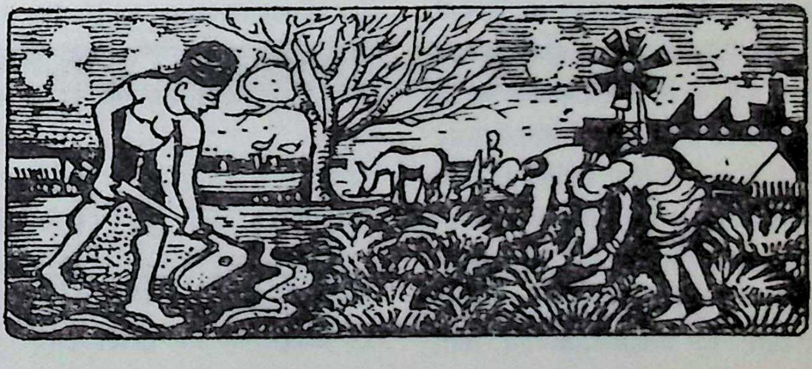

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1958 के बाद ही वैज्ञानिकों ने वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड की उपस्थिति के बारे में गहन अध्ययन प्रारंभ किए थे. सन् 1860 से आज तक वनों के कटने के कारण 90-280 खरब टन कार्बन डाइआक्साइड वायुमंडल में घुसी है जबकि कोयला, तेल या गैस को जलाने से 150-190 खरब टन कार्बन डाइआक्साइड ने वायुमंडल में प्रवेश किया. कोई चालीस वर्ष पहले तक वनों के काटने के कारण वायुमंडल में आने वाली कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा कोयले व तेल वगैरह के जलने से बनी कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा से कम थी. ऐसा कम औद्योगीकरण के कारण था, लेकिन आज स्थिति एकदम बदल गई है.

पिछले सालों में वनों के काटने के कारण वायुमंडल में प्रवेश करने वाली कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा घटती-बढ़ती रही है. अनुमान किया जाता है कि वनों के कम होने के कारण 1 खरब टन से 2.6 खरब टन के बीच कार्बन डाइआक्साइड प्रतिवर्ष वायुमंडल में पहुंचती रही है. इस बारे में वुड्स रिसर्च सेंटर, मेसाचुसेट्स के वैज्ञानिक रिचर्ड हटन ने जो अध्ययन किया है उससे पता चलता है कि कार्बन डाइआक्साइड का वायुमंडल में प्रवेश मुख्यतया उष्ण क्षेत्रों से ही हो रहा है. उनकी इससे सम्बन्धित की गई कुछ गणनाएं बताती हैं कि 1980 में अमेरिका, एशिया व अफ्रीका के उष्ण क्षेत्रों से क्रमशः 66.5 करोड़ टन, 62.1 करोड़ टन, व 37.3 करोड़ टन कार्बन डाइआक्साइड वायुमंडल में पहुंच गई. इस प्रकार कुल मिलाकर अमेरिका, एशिया व अफ्रीका के उष्ण क्षेत्रों से निकलने वाली कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा कुल का क्रमशः 40, 37 व 23 प्रतिशत है. कुल मिलाकर 5 देश ऐसे हैं जो कुल कार्बन डाइआक्साइड के आधे भाग को वायुमंडल में भेजते हैं. ब्राजील अकेला ही निर्गत कुल कार्बन डाइआक्साइड के 20 प्रतिशत भाग को वायुमंडल में भेजता है. इससे आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वहां वनों को किस तेजी से काटा जा रहा है.

वनों को काटने या जलाने से काफी कार्बन डाइआक्साइड वायुमंडल में प्रवेश करती है, यह निर्विवाद है. लेकिन शेष बचे वनों, वायुमंडल में बढ़ी कार्बन डाइआक्साइड और इसके कारण पृथ्वी के बढ़े ताप का भविष्य में जलवायु पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह भी देखने वाली बात होगी. वायुमंडल कार्बन डाइआक्साइड की बढ़ी मात्रा से पेड़-पौधों की बढ़वार अपेक्षाकृत तेजी से होगी. इससे वायुमंडल से कुछ कार्बन कम हो जाएगा जिससे पृथ्वी भविष्य में अपेक्षाकृत कम गर्म होगी. हरितगृह में इसी प्रकार से पौधों की वृद्धि को तेज किया जाता है. लेकिन दुविधा यह है कि आज तक कोई ऐसा प्रयोगात्मक तथ्य वैज्ञानिकों के हाथ नहीं लगा है जो यह सिद्ध कर सके कि हरितगृहों में जिस प्रकार से अधिक कार्बन डाइआक्साइड की उपस्थिति में पेड़-पौधे तेजी से बढ़ते हैं. उसी प्रकार की प्रक्रिया वायुमंडल में बढ़ी कार्बन डाइआक्साइड के कारण भी होगी.

उधर पर्यावरण विशेषज्ञ वैज्ञानिक जार्ज वुडवैल का कहना है कि वातावरण में लगातार बढ़ती जा रही कार्बन डाइआक्साइड तथा हरित-गृह प्रभाव पैदा करने वाली अन्य गैसों के कारण जब पृथ्वी गर्म होगी तब पेड़-पौधों में श्वसन की गति बढ़ सकती है. इससे ऐसी स्थिति आ सकती है जिसमें पेड़-पौधों द्वारा निर्गत कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा उनके द्वारा इस्तेमाल की गई कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा से अधिक होगी. इस प्रकार वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा लगातार बढ़ती चली जाएगी और पृथ्वी भी लगातार अधिक गर्म होती चली जाएगी. इस स्थिति का पेड़-पौधों पर भी दुष्प्रभाव पड़ेगा और उनकी बढ़वार क्रमशः खत्म हो जाएगी. अंत में वे सूख ही जाएंगे. यद्यपि अधिकांश पर्यावरण वैज्ञानिक वुडवैल के इस सिद्धांत से सहमति नहीं जताते फिर भी उनके पास आज कोई ऐसा सर्वमान्य सिद्धांत नहीं है जो स्पष्टतया यह बता सके कि पृथ्वी के गर्म होने का वनों पर क्या प्रभाव पड़ेगा.

अब यदि पृथ्वी को भविष्य में गर्म होने से बचाना है तो वायुमंडल की ओर जाने वाली कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा को कम करना पड़ेगा. आजकल की परिस्थिति में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में प्रभावशाली कमी करने के लिए कम से कम 11 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में नए वन लगाने होंगे. वैसे तो इन वनों के समग्र प्रभाव के बारे में कोई बहुत विश्वसनीय तकनीकी जानकारी वैज्ञानिकों के पास नहीं है फिर भी अनुमान किया जाता है कि वनों के इस क्षेत्रफल के कारण प्रति वर्ष 70 करोड़ टन कार्बन को वायुमंडल में जाने से रोका जा सकेगा यानी इससे उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों से निर्गत कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में 41 प्रतिशत की कमी आएगी. इसके साथ ही वनों के कटान को भी रोकना होगा.

यदि इस प्रकार ब्राजील, इन्डोनेशिया, कोलाम्बिया और आइवरी कोस्ट से निकली कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा आधी कर दी जाए तो समस्त उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों से निकली कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में 20 प्रतिशत की कमी आ जाएगी. इसके साथ यदि 11 करोड़ हेक्टेयर वनों के योगदान को भी जोड़ लिया जाए तो इससे उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों से निकलकर वायुमंडल में प्रवेश करने वाली कार्बन डाइआक्साइड में दो तिहाई की कमी होगी. लेकिन हम 11 करोड़ हेक्टेयर नए वन लगाने में कब तक सफल होंगे और वनों के कटान को कितना कम कर पाएंगे. इन प्रश्नों के जवाब हमारे पास नहीं हैं.

वनों की स्थिति यूरोप को छोड़कर सभी जगह सोचनीय है. विकासशील देशों में तो वनों को अंधाधुंध ढंग से काटा जा रहा है. और यदि यही क्रम चलता रहा तो वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड के लगातार बढ़ने से पृथ्वी धीरे-धीरे गरम होती चली जाएगी और जीवधारियों पर अज्ञात विपदाओं को पहाड़ टूट पड़ेंगे. □

ओजोन की छतरी में छेद: अब लगेंगे पैबंद भी

□ आर० के० अन्थवाल

□ क्या भविष्य में प्राणी जगत मानव की कारगुजारियों की बदौलत पराबैंगनी विकिरण से उत्पन्न रोगों से समाप्त हो जाएगा? धरती के वायुमंडल में, ओजोन की छतरी के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौजूद रक्षा-कवच के कमजोर पड़ जाने के कारण ये सवाल उठाए जा रहे हैं. लेकिन इस छतरी में छेद के लिए जो रसायन जिम्मेदार पाए गए हैं वे आज औद्योगिक कारोबार में और घरों में अपनी महत्वपूर्ण जगह बना चुके हैं. यही कारण है कि वैज्ञानिक इनके स्थानापन्नों (सब्सिट्यूट) की तलाश कर रहे हैं, ताकि इस छतरी को और ज्यादा क्षति न पहुंचे और प्रकृति की स्व-उपचार प्रक्रिया खुद ही इस छेद को बंद कर दे या कुछ अन्य उपायों द्वारा मानव इनमें पैबंद लगा सके.

प्रकृति ने सूर्य के खतरनाक पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) विकिरण से जीव-जंतुओं की रक्षा के लिए पृथ्वी की सतह से लगभग पंद्रह किलोमीटर ऊपर, समताप मंडल (स्ट्रेटोस्फियर) में ओजोन-परत के रूप में एक सुरक्षा-कवच बनाया हुआ है. लगभग 25 किलोमीटर मोटी यह परत पृथ्वी की जलवायु व मौसम-प्रणाली को भी नियंत्रित करती है. लेकिन मानव-निर्मित कुछ रासायनिक प्रदूषकों ने इस सुरक्षा कवच में छेद करके मनुष्य के साथ-साथ अन्य छोटे-बड़े जंतुओं व वनस्पतियों के जीवन को भी खतरे में डाल दिया है. अंटार्कटिक क्षेत्र में पाया गया यह छेद कोई छोटा-मोटा नहीं बल्कि बढ़ते-बढ़ते एक महाद्वीप जितना हो गया है. इससे सूर्य के पराबैंगनी विकिरण के धरती पर पहुंचने के कारण मनुष्य को त्वचा के कैंसर और आंखों की बीमारियों का खतरा बढ़ गया है. वैज्ञानिकों के अनुसार इस छेद में हर एक सेंटीमीटर की वृद्धि से लगभग चालीस हजार लोग पराबैंगनी विकिरण से उत्पन्न बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं. वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि अगर यह छेद बढ़ता गया तो उपर्युक्त खतरों के अलावा पृथ्वी की जलवायु व मौसम प्रणाली का नाजुक संतुलन बिगड़ सकता है, जिसके फलस्वरूप अनेक समस्याएं पैदा हो जाएंगी.

ओजोन-परत के विनाश के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं : क्लोरोफलोरो कार्बन यानी सी एफ सी यौगिक. इनका आविष्कार 1928 में हुआ. ये अक्रिय, गंधहीन, अज्वलनशील, जहर न फैलाने वाले तथा लंबी अवधि तक ज्यों के त्यों बने रहने वाले रसायन हैं. सी एफ सी परिवार के कई सदस्य हैं—जैसे सी एफ सी-11; -12; -113; -114; -115;, जिनके अलग-अलग उपयोग हैं. पिछले 60 वर्षों में इनके उपयोग का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है. ये मुख्य रूप से वातानुकूलन (एयरकंडीशनिंग) व प्रशीतन (रेफ्रिजरेशन) प्रणालियों में इस्तेमाल होते हैं. इनके अलावा ये छिड़काव यंत्रों में प्रणोदक (प्रोपेलेंट), दवाइयों में जीवाणुरोधक व इलेक्ट्रोनिक उद्योग में विलायक के रूप में तथा पैकेजिंग और ऊष्मारोधी बोर्ड बनाने में, फोम पैदा करने, आग बुझाने के उपकरणों आदि में इस्तेमाल होते हैं.

पिछले साल जून में ओजोन-परत की सुरक्षा के लिए लंदन में एक सम्मेलन हुआ था जिसके अनुसार सभी विकसित देश सन् 2000 तक सी एफ सी रसायनों का इस्तेमाल पूर्णतया बंद कर देने पर लगभग सहमत हो गए हैं. विकासशील देशों को इसके लिए दस वर्ष का अतिरिक्त समय दिया गया है. समय बहुत कम है इसलिए विश्व की कई प्रमुख कंपनियां व संस्थान सी एफ सी के बदले इस्तेमाल किए जा सकने वाले, पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित रसायनों के विकास में जुटी हैं. कुछ सफलताएं भी मिली हैं जिनसे अब आने वाले 10-20 वर्षों में ओजोन को नुकसान पहुंचाने वाले रसायनों के इस्तेमाल को पूर्णतया बंद करना संभव लगता है.

क्या हैं सी एफ सी के स्थानापन्न ?

पृथ्वी के निचले वातावरण यानी क्षोभमंडल (ट्रोपोस्फियर) में सी एफ सी बिना विघटित हुए लगभग सौ साल तक मौजूद रह सकते हैं. जब ये हवाओं के जरिए समताप मंडल में पहुंचते हैं तो वहां सूर्य के पराबैंगनी विकिरण द्वारा प्रकाशीय विघटन की प्रक्रिया में इनसे क्लोरीन के परमाणु मुक्त हो जाते हैं. ये परमाणु ही ओजोन के असली दुश्मन हैं. ये ओजोन को विघटित कर क्लोरीन मोनो आक्साइड और आक्सीजन बनाते हैं. क्लोरीन का एक परमाणु ओजोन के एक लाख अणुओं को नष्ट करने की शक्ति रखता है. इसलिए सी एफ सी के स्थानापन्नों के विकास में इस बात पर विशेष ध्यान रखा जा रहा है कि इनमें पहले तो क्लोरीन न हो और अगर हो भी तो वह ओजोन की परत तक न पहुंच पाए. स्थानापन्न दीर्घायु वाले न हों और क्षोभमंडल में ही विघटित हो सकने वाले हों.

अभी विकसित स्थानापन्न कार्बन, हाइड्रोजन, क्लोरीन और फ्लोरीन (जिन्हें हाइड्रोक्लोरोफ्लोरो कार्बन या एच सी एफ सी कहते हैं) या कार्बन, हाइड्रोजन और फ्लोरीन (जिन्हें हाइड्रोफ्लोरोकार्बन या एच एफ सी कहते हैं) से बने हैं. इन दोनों वर्ग के यौगिकों को हाइड्रोहैलोकार्बन कहा जाता है.

हाइड्रोक्लोरोफ्लोरोकार्बन (एच सी एफ सी) का तो सी एफ सी के कुछ सदस्यों के बदले व्यापक तौर पर इस्तेमाल होने लगा है. प्रशीतक (रेफ्रिजरेंट) व फुलाने वाले यानी 'ब्लोइंग एजेंट' के रूप में प्रयुक्त सी एफ सी-11 के विकल्प के रूप में एच सी एफ सी-123 का विकास किया गया है. एक अन्य प्रशीतक एच सी एफ-22 का तो बड़े स्तर की प्रशीतन (रेफ्रिजरेशन) प्रणालियों में व्यापक तौर पर इस्तेमाल होने लगा है. पर इसे घरेलू रेफ्रिजरेटरों में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता.

लेकिन एच सी एफ सी के उपयोग को पूर्णतया सुरक्षित नहीं पाया गया है. वैसे सभी हाइड्रोहैलोकार्बन वातावरणीय हाइड्रोक्सिल मूलक के साथ क्रिया करके क्षोभ मंडल में ही नष्ट हो जाते हैं जबकि एच सी एफ सी का कुछ अंश समताप मंडल तक पहुंच ही जाता है. अध्ययनों में एच सी एफ सी को भी ओजोन परत के लिए कुछ हद तक नुकसानदायक पाया गया है. लेकिन ये सी एफ सी के मुकाबले बहुत मामूली तौर पर नुकसानदायक है. इसलिए अभी तो जहां तक संभव हो वहां इन्हें सी एफ सी के बदले इस्तेमाल किए जाने पर आम सहमति है. लंदन सम्मेलन में अनौपचारिक रूप से तय हुई बात के अनुसार सन् 2020 से 2040 तक इनके इस्तेमाल को भी पूर्णतया बंद कर दिया जाएगा.

हाइड्रोक्लोरोफ्लोरोकार्बन (एच सी एफ सी) के बजाए हाइड्रोफ्लोरोकार्बन (एच सी एफ सी) का उपयोग सुरक्षित है क्योंकि इनमें क्लोरीन नहीं होती. इस समय प्रशीतक के रूप में प्रयुक्त सी एफ सी-12 के विकल्प के रूप में एच एफ सी-134ए पर काम चल रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन इसके साथ अभी एक समस्या है, प्रशीतन प्रणाली में आम तौर पर एक प्रशीतक (गैस या द्रव अवस्था में) और एक स्नेहक (लुब्रिकेंट) इस्तेमाल होता है. इन दोनों को आपस में मिलाया जाता है. खनिज तेल उत्तम परंपरागत स्नेहक माने जाते हैं. क्योंकि ये सस्ते होने के अलावा विभिन्न विस्कासिताओं में उपलब्ध होते हैं. लेकिन खनिज तेल और एच एफ सी-134ए आपस में नहीं मिलते इसलिए अब इस रसायन के लिए नया स्नेहक ढूंढना पड़ेगा.

सी एफ सी परिवार के प्रत्येक सदस्य का स्थानापन्न ढूंढना आसान नहीं है. इलेक्ट्रोनिक उद्योग में विलायक के रूप में प्रयुक्त सी एफ सी-113 के कई स्थानापन्न तैयार किए गए लेकिन इसके जैसा काम देने वाला स्थानापन्न अभी तक नहीं मिल पाया है. इनमें कुछ तो इतने तेज निकले कि उन्होंने इलेक्ट्रोनिक घटकों को ही नुकसान पहुंचा दिया.

इन हाइड्रोहैलोकार्बन को प्रारंभिक अध्ययनों में 'ग्रीन हाउस' प्रभाव को बढ़ाने में सहायक पाया गया है. 'ग्रीन हाउस' प्रभाव से पृथ्वी की सतह के तापमान बढ़ने से कई नई समस्याएं पैदा हो सकती हैं. नए स्थानापन्नों का इस दृष्टि से भी परीक्षण किया जा रहा है.

सस्ते स्थानापन्न

उपर्युक्त सभी स्थानापन्न सी एफ सी से 3 से 5 गुना मंहगे पड़ेंगे. इसलिए कुछ वैज्ञानिक सस्ते स्थानापन्न को अपनाने के पक्ष में हैं. इन वैज्ञानिकों के अनुसार प्रोपेन और ब्यूटेन जैसे हाइड्रोकार्बन अच्छे और सबसे सस्ते स्थानापन्न साबित हो सकते हैं. लंदन के साउथ बैंक पोलीटेक्नीक की एक प्रयोगशाला में एक साधारण रेफ्रिजरेटर लगभग एक साल से प्रोपेन से चल रहा है.

हम इन हाइड्रोकार्बनों को सी एफ सी के नए स्थानापन्न नहीं कह सकते क्योंकि पहले ये प्रशीतक या प्रणोदक के रूप में इस्तेमाल होते थे. सी एफ सी समूह के सदस्यों ने अमोनिया व सल्फर डाइआक्साइड के साथ-साथ इनका भी स्थान ले लिया था, पर अब बदली परिस्थितियों में इन हाइड्रोकार्बनों का इस्तेमाल उपयुक्त माना जा रहा है.

पहले रेफ्रिजरेटरों में प्रशीतक के रूप में प्रोपेन इस्तेमाल होती थी, लेकिन ज्वलनशील होने के कारण इसके बदले सी एफ सी का इस्तेमाल होने लगा. उस समय के रेफ्रिजरेटरों में 11 लीटर प्रशीतक की आवश्यकता पड़ती थी. इतनी बड़ी मात्रा में प्रोपेन का इस्तेमाल वाकई सुरक्षित नहीं था. लेकिन अब मशीनरी में बदलाव के बाद आज के रेफ्रिजरेटरों के लिए सिर्फ 10 मिली लीटर प्रशीतक पर्याप्त है. वैज्ञानिक इतनी मात्रा में प्रोपेन के उपयोग को सुरक्षित बताते हैं. बड़ी प्रशीतन प्रणालियों में इसका इस्तेमाल सुरक्षित नहीं बताया जा रहा है. प्रोपेन प्रति ग्राम के हिसाब से सी एफ सी से ज्यादा कार्यक्षम है इसलिए प्रोपेन के लिए विकसित रेफ्रिजरेटरों में तो इससे भी कम प्रोपेन की आवश्यकता पड़ेगी. इसके अलावा ये ऊर्जा भी कम खर्च करेंगे.

प्रशीतक के रूप में प्रयुक्त अमोनिया को भी विषैली व ज्वलनशील होने के कारण बदला गया था. अभी कुछ उपकरणों में इसका इस्तेमाल किया तो जा रहा है लेकिन अतिरिक्त सावधानियां बरतने के कारण ये उपकरण महंगे पड़ते हैं.

छिड़काव यंत्रों में सुधार के बाद पुनः ब्यूटेन के इस्तेमाल को किफायती व सुरक्षित बताया जा रहा है. सस्ते विकल्प के रूप में इलेक्ट्रोनिक उद्योगों में मुद्रित परिपथ बोर्ड (पी सी बी) की सफाई के लिए जल-आधारित मार्जक (क्लीनर) का विकास किया जा रहा है.

रासायनिक स्थानापन्नों के साथ-साथ वैज्ञानिक वैकल्पिक उपकरणों व प्रणालियों के विकास की दिशा में भी प्रयासरत् है. आने वाला समय रेफ्रिजरेटरों, वातानुकूलन-प्रणालियों आदि की दुनिया में परिवर्तन का है. अब देखना यह है कि इन सबसे ओजोन परत को उसका पुराना स्वरूप देने में कितना समय लगता है. □

जैव-प्रौद्योगिकी : कितनी आशा कितनी दिलासा

□ राजेन्द्र कुमार राय

□ आधुनिक विकास का प्रतीक बन कर आई जैव-प्रौद्योगिकी (बायो-टैक्नोलोजी) की आजकल पूरे विश्व में लहर सी चल रही है. चिकित्सा, कृषि, उद्योग, ऊर्जा और प्रदूषण नियंत्रण में जैव-प्रौद्योगिकी की क्रांति सी छाई है. कहा जा रहा है कि जिस प्रौद्योगिकी में ग्रामीण विकास के लिए अपार संभावनाएं हैं, वह जैव-प्रौद्योगिकी ही है. इसकी असीमित व्यावहारिक उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने सन् 1982 में 'राष्ट्रीय जैव-प्रौद्योगिकी बोर्ड' की स्थापना की. कई विश्वविद्यालयों, संस्थानों और प्रयोगशालाओं में भी इस पर अनुसंधान चल रहे हैं.

जैव-प्रौद्योगिकी है क्या बला? यह विज्ञान की कौन सी ऐसी शाखा है जो प्रत्येक जीती-जागती शह को तोड़-मरोड़ कर मनुष्य के फायदे लायक बना सकती है. इसका संबंध जीव विज्ञान से है. जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा आज सभी जीवधारियों के बीजकोष डी एन ए प्राप्त कर लेते हैं. परिणामस्वरूप, पशुओं, पौधों तथा सूक्ष्म जीवों में इच्छानुसार गुणों का समावेश किया जा सकता है या बिल्कुल ही नए किस्म के गुण पैदा किए जा सकते हैं, जैसे भेड़ और बकरी को जोड़कर एक ऐसा जानवर बनाया जा सकता है जो ऊन और दूध दोनों दे.

जैव वैज्ञानिकों का विचार है कि वे नए प्रकार के ऐसे पशुओं, फसलों और पौधों का विकास कर सकेंगे, जिनमें गए गुणों का सम्मिश्रण होगा. मौटे तौर पर जैव-प्रौद्योगिकी से तात्पर्य हर उस प्रौद्योगिकी से है जो उत्पादों या जीवों के निर्माण-सुधार या किन्हीं विशिष्ट अंगों, उद्देश्यों से सूक्ष्म जीवों के निर्माण के लिए जीवित अंगों या उसके हिस्सों का उपयोग करती है. तो क्या वास्तव में एक ऐसा युग आ रहा है, जिसमें जैव-प्रौद्योगिकी की मदद से दुनिया से गरीबी तथा भुखमरी मिटाई जा सकेगी? क्यों जैव-प्रौद्योगिकी की परिभाषा देते हुए उसके जन्मदाता, आम व्यक्ति को हम और दिलासा दिला रहे हैं कि इससे जीवन को और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेहतर बनाया जा सकता है. लेकिन कहीं यह मात्र कागजी पुलाव तो नहीं? क्योंकि यह सवाल काफी महत्वपूर्ण होता जा रहा है कि इतनी बड़ी धनराशि खर्च करके आम लोगों को क्या मिलने वाला है? उनके लिए यह प्रौद्योगिकी एक नई आशा है या सिर्फ झूठी दिलासा.

इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि जैव-प्रौद्योगिकी में विकास के लिए अपार संभावनाएं हैं. इसका चिकित्सा विज्ञान में इस्तेमाल देखें. मधुमेह (डायबिटीज) के इलाज में प्रयुक्त होने वाली दवा इन्सुलीन को ही लें. यह शरीर में प्राकृतिक तौर पर पेंक्रियास ग्रंथि द्वारा बनाई जाती है. दवा के रूप में पहले यह जानवरों की प्रेंक्रियास ग्रंथि से निकाल कर बनाई जाती थी जिसके कारण यह काफी महंगी पड़ती थी तथा कभी-कभार शरीर में एलर्जिक प्रक्रिया का कारण भी बन जाती थी. अब आनुवांशिक इंजीनियरी तकनीक द्वारा सूक्ष्म जीवाणुओं में इन्सुलीन बनाने वाले गुणसूत्रों (क्रोमोसोम) का स्थानांतरित कर के उन्हें इन्सुलीन बनाने के लिए प्रेरित किया जाता है. ये सूक्ष्म जीवाणु बहुत तेजी से बढ़ते हैं अतः इन्सुलीन का निर्माण भी तेजी से होता है. यह काफी सुरक्षित भी होती है.

इसी प्रकार सूक्ष्म जीवाणुओं के गुण सूत्रों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर के विभिन्न रोगों के लिए टीकों (वैक्सीनों) के उत्पादन के प्रयल किए जा रहे हैं. कुष्ठ, हिपेटाइटिस-बी तथा एड्स जैसी बीमारियों के लिए टीके के निर्माण का प्रयास प्रगति पर है. मलेरिया के लिए सुरक्षित टीका बना लेने का दावा कई अनुसंधानकर्ताओं ने किया है. वैज्ञानिकों का दावा है कि ये टीके, दवाओं की तुलना में सस्ते, सुलभ व अधिक प्रभावी होंगे.

वैज्ञानिकों को आशा है कि जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा आने वाले दशक में लगभग 28 विभिन्न प्रकार के नए टीके तैयार किए जा सकते हैं, जबकि पिछले सौ वर्षों में 10 से अधिक टीके उपयोग में नहीं लाए जा सके हैं. औषधियों को भी और अधिक प्रभावी बनाया जा सकेगा, मनुष्यों के अलावा पशुओं के लिए भी टीकों का विकास हो सकेगा. पशुओं को छूत की बीमारियों से बचाने के लिए इथियोपिया के एक वैज्ञानिक प्रो० टी० जे० भित्मा ने एक नए टीके का विकास किया है.

पौधों के ऊतकों का वैज्ञानिक तरीके से विकास यानी 'टिशु कल्चर' जैव-प्रौद्योगिकी की एक और महत्वपूर्ण देन है. इसके जरिए जिस तरह के पौधों की आवश्यकता होगी उनमें अपनी इच्छानुसार वृद्धि की जा सकेगी और उन्हें श्रेष्ठ भी बनाया जा सकेगा. हमारे देश में ऐसा प्रयोग इलायची के मामले में किया गया है. यह एक व्यावसायिक महत्व की फसल है तथा 65 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा उपलब्ध कराती है. इलायची की अधिक उपज देने वाली किस्मों का 'टिशु कल्चर' व्यावसायिक स्तर पर शुरू किया गया है.

कुछ जैव-प्रौद्योगिकीविदों का मानना है कि वे संपूर्ण अफ्रीका की 'कसावा' की फसल को 'विषाणु मुक्त' बना सकते हैं. अगर वे ऐसा कसावा तैयार करने में सफल हो जाते हैं जो विषाणुओं का प्रतिरोध करने में भली-भांति सक्षम हो तो सचमुच एक क्रांति हो जाएगी. लेकिन किसी एक पौधे के जीन को दूसरे पौधे में पहुंचाना कोई आसान काम नहीं है, क्योंकि उनमें ढेर सारे जीनों का ताना-बाना बुना रहता है. किस जीन में कौन सा गुण है, यह अलग-अलग जानना जरूरी है.

लेकिन बहुत सारी दिक्कतों के बाद भी तीसरी दुनिया के कुछ देशों के वैज्ञानिकों और उनकी सरकारों का विचार है कि पहली हरित क्रांति के कारण उर्वरकों और रासायनिक कीटनाशकों पर जो निर्भरता बढ़ी है उससे छुटकारा शायद इस नई प्रौद्योगिकी से मिल जाए. भारतीय कृषि वैज्ञानिक डा० एम० एस० स्वामीनाथन के अनुसार लगभग प्रत्येक विकासशील देश ने जैव-प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के लिए योजनाएं या कार्यक्रम बना रहे हैं. हमारे यहां जैव-प्रौद्योगिकी बोर्ड ने अनुसंधान के लिए आनुवंशिक प्रौद्योगिकी, प्रकाश-संश्लेषण तथा ऊतक संवर्धन के लक्ष्य निर्धारित किए हैं. फिलीपींस में हरित क्रांति के कारण चावल, मक्का तथा सब्जियों की जो परम्परागत किस्में लुप्त होने को हैं उनके लिए बीज-संग्रह और बैंक बनाने के कार्यक्रम चल रहे हैं.

आज वैज्ञानिक रोग फैलाने वाले जीवों (कीटों व पौधों) के हमले का जी तोड़ जवाब देना चाहते हैं. वैसे तो पारंपरिक तरीकों से भी अनुकूल फसल-प्रजातियों में रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता जगाई जा सकती है, जिनका अन्तःप्रजनन संभव न हो. इसी प्रकार वैज्ञानिक फसलों को कीटों के हमले से बचाने का प्रयास कर रहे हैं. इसका परिणाम यह होगा कि थोड़े दिनों में रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता समाप्त हो जाएगी और पर्यावरण पर उससे होने वाले दुष्प्रभाव भी नहीं पड़ेंगे लेकिन शोधकर्ताओं को इस बात की सावधानी रखनी पड़ेगी कि जीन-हस्तांतरण के चक्कर में कहीं लेने के देने न पड़ जाएं. यह भी हो सकता है कि खरपतवार की ही बाढ़ आ जाए, जैसे गन्ने व जॉनसन नामक जंगली पौधे की जीनें

बीज कंपनियों के रसायन-कंपनियों के साथ हुए इस गठजोड़ से स्वार्थों का टकराव पैदा होगा और उससे किसानों के हितों को नुकसान पहुंचेगा. तब इस धारणा का कोई अर्थ नहीं होगा कि जैव-प्रौद्योगिकी का लक्ष्य किसानों के लिए एक आत्मनिर्भर कृषि प्रणाली विकसित करना है. जैव-प्रौद्योगिकी से होने वाले फायदों की बातें सुनने में अत्यंत कर्णप्रिय है. परंतु जीन-हस्तांतरण में पैसों का धक्का लगे बगैर गाड़ी नहीं चलती. जैव प्रौद्योगिकी क्षेत्र में किए जाने वाले अनुसंधान बेहद खर्चीले होते हैं. इस समय इस अनुसंधान पर ज्यादातर धन बहुराष्ट्रीय कंपनिया ही लगा रही हैं. इसलिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक नीतियां ही यह तय करेंगी कि जैव-प्रौद्योगिकी का यह जादू सिर चढ़कर बोलेगा या भूखी दुनिया को दो वक्त की रोटी भी दिला पाएगा या नहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपस में एकदम से मिलती-जुलती हैं. यदि यह मान लें कि सब कुछ सही सलामत हो जाएगा तो भी जीन हस्तांतरण से तैयार हुई नई किस्म को किसानों तक पहुंचाने में 10 से 15 साल तक तो लग ही सकते हैं.

पर्यावरण में बढ़ते हुए संकट से विश्व के लगभग सभी देश उसकी चपेट में थोड़ा बहुत तो हैं ही. पर्यावरण को स्वच्छ रखने के लिए जैव-प्रौद्योगिकी को उपयोग में लाने की तैयारी भी चल रही है, जैसे रेगिस्तानी भूमि में कैक्टस की जीन वाली फसलों को उगाने का प्रयास किया जा रहा है. परती, लवणीय, बंजर तथा अकालग्रस्त भूमि में भी ऐसी फसलें उगाई जा सकती हैं जो हर परिस्थिति में लहलहाती रहें.

भारत में भ्रूण प्रत्यारोपण प्रौद्योगिकी का उपयोग करके उत्पादकता बढ़ाने के लिए पशु सुधार नाम से राष्ट्रीय स्तर पर एक योजना शुरू की गई है. इसका उद्देश्य श्रेष्ठ किस्म के प्रजनन द्रव्य के बीच भंडार या भ्रूणबैंक बनाकर व्यापक बुनियादी सुविधाएं जुटा कर भारतीय गायों और भैसों में भ्रूण प्रत्यारोपण प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करना है. गाय या भैंस अपने उत्पादक जीवन में केवल 6 या 7 बछड़े पैदा करती हैं. लेकिन भ्रूण प्रत्यारोपण द्वारा और अंडोत्सर्ग के जरिए उसी काल में 50 से 60 बछड़े पैदा हो सकते हैं. बड़े पैमाने पर श्रेष्ठ किस्म के पशुधन का विकास एक विशेष विधि है जिसे 'मोस्ट' कहते हैं. जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा शीघ्र ही वैज्ञानिक 20,000 लीटर प्रति लैक्टेशन दूध देने वाली गायों की नस्ल विकसित कर पाएंगे. आज एक अच्छी नस्ल की भारतीय गाय औसतन 2000 लीटर दूध प्रति लैक्टेशन देने की क्षमता रखती है.

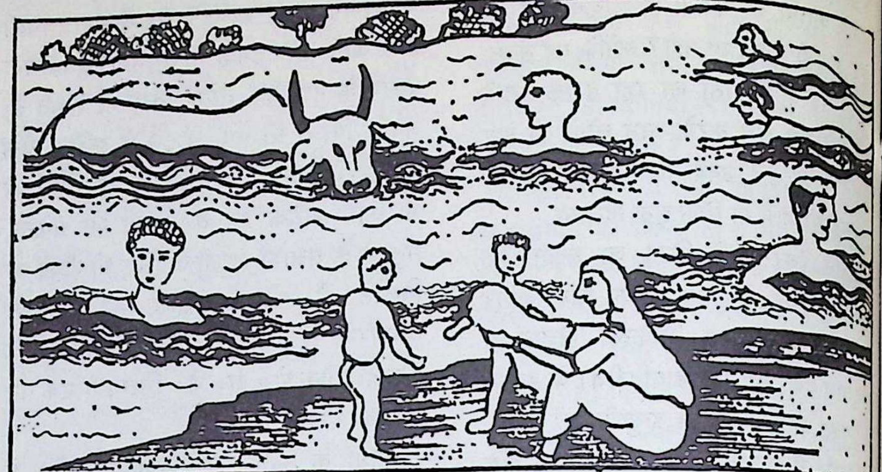

पैट्रोलियम भी हाइड्रोकार्बनों का ही एक मिश्रण है. यूफोर्बिएसी कुल के पौधों में 40 प्रतिशत तक हाइड्रोकार्बन पाए जाते हैं. एक हेक्टेयर में पेट्रो-पौधों के वृक्षारोपण द्वारा औसत 50 बैरल कच्चा तेल प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है. मुख्य बात तो यह है कि इन पौधों को कृषि के लिए अनुपयोगी व बेकार भूमि में या मरूस्थल जैसे क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है.

इससे इंकार नहीं किया जा सकता है कि जैव-प्रौद्योगिकी की नित्य नई विकसित होती विधाओं ने उन सबको संभावनाओं के दायरे में ला दिया है. जिसे आज से कुछ वर्ष पहले तक सोचा भी नहीं जा सकता था. लेकिन जहां जैव-प्रौद्योगिकी ने एक नई आशा जगाई है वहां इसका दूसरा पहलू भी है. इसके गलत उपयोग की संभावनाएं बहुत प्रबल हैं और इसे तीसरी दुनिया के देशों को नियंत्रित करने की नई तरकीब के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है.

वाली कंपनियों ने बीज निर्माण करने वाली कंपनियों पर अपना कब्जा जमाना आरंभ कर दिया है. 'शैल' नामक एक अंतरराष्ट्रीय कंपनी ने लगभग 70 बीज कंपनियों पर अपना कब्जा जमा लिया है. 'सीबा-गायगी' (स्विट्जरलैंड) ने अमेरिका व कनाडा की 31 से भी ज्यादा बीज कंपनियों पर अपना नियंत्रण बना रखा है. जबकि यहीं की 'सेंडोज' कंपनी का 36 बीज कंपनियों पर नियंत्रण है.

बीज कंपनियों के रसायन-कंपनियों के साथ हुए इस गठजोड़ से स्वार्थों का टकराव पैदा होगा और उससे किसानों के हितों को नुकसान पहुंचेगा. तब इस धारणा का कोई अर्थ नहीं होगा कि जैव-प्रौद्योगिकी का लक्ष्य किसानों के लिए एक आत्मनिर्भर कृषि प्रणाली विकसित करना है. जैव-प्रौद्योगिकी से होने वाले फायदों की बातें सुनने में अत्यंत कर्णप्रिय है. परंतु जीन-हस्तांतरण में पैसों का धक्का लगे बगैर गाड़ी नहीं चलती. जैव प्रौद्योगिकी क्षेत्र में किए जाने वाले अनुसंधान बेहद खर्चीले होते हैं. इस

तीसरी दुनिया के देशों को समय रहते अपनी प्राकृतिक संपदा को अमीर देशों के हाथ में जाने से रोकना होगा और इस प्रकार के अनुसंधान स्वयं करने होंगे ताकि उनके आनुवंशिक संसाधन उन्ही के काम आ सकें, नहीं तो तीसरी दुनिया के जीवाणुओं, शैवालों व फफूंदी से लेकर समुद्री प्राणी के साथ-साथ वनस्पतियों तक पर ये कंपनियां अपना कब्जा जमा लेंगी.

ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का विकास करने में भी जैव-प्रौद्योगिकी काफी महत्वपूर्ण है. कुछ पौधे, जो सौर ऊर्जा का कुछ अंश हाइड्रोकार्बन के रूप में संचित करने की क्षमता रखते हैं, 'पेट्रो पौधे' कहलाते हैं. वास्तव में खनिज

शोध का लाभ किसे ?

अगर इस जैव-प्रौद्योगिकी पर कब्जा बहुराष्ट्रीय कंपनियों का रहा तो आम लोगों को कुछ खास फायदा नहीं मिलने वाला. खेती को ही लें, रसायन तथा औषधि निर्माण करने

समय इस अनुसंधान पर ज्यादातर धन बहुराष्ट्रीय कंपनिया ही लगा रही हैं. इसलिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक नीतियां ही

(शेष पृष्ठ 279 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में वृक्षों की भूमिका

□ कमलाकान्त पाठक

□ आज की दुनिया की बड़ी समस्या है—पर्यावरण प्रदूषण. प्रकृति के असंतुलन ने मानव, पशु तथा पक्षियों सहित वनों पर भी अपना बुरा प्रभाव डालकर सम्पूर्ण पारिस्थिक तंत्र को ही अस्त-व्यस्त कर दिया है. इस सर्वघाती समस्या के समाधान के लिए पर्यावरण वैज्ञानिकों को शीघ्र समुचित उपाय खोज लेने होंगे. यदि समय रहते ऐसा न किया गया तो इस ग्रह पर विविध रूपों में पनपा जीवन अपना अस्तित्व तक न बचा पाएगा.

पारिस्थितिक असंतुलन के कारण

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्रकृति के सौन्दर्य को नष्ट करने का कार्य भी होता रहा है. हम अपने चतुर्दिक बिखरे अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य पर कभी ध्यान नहीं देते, केवल अपने स्वार्थ के लिए उसका शोषण करने के नए-नए उपाय खोजते रहते हैं. हमने वनों को काटकर बिना सोचे-समझे खतरनाक उद्योगों को लगाकर तथा अपनी जनसंख्या को अनियंत्रित ढंग से बढ़ाकर प्राकृतिक परिवेश को अत्यंत प्रदूषित कर दिया है.

आधुनिक पारिस्थितिक अनुसंधान इस संभावना की ओर संकेत कर रहे हैं कि जैव-मंडल पर अनवरत, एकतरफा और काफी हद तक अनियंत्रित प्रभाव डालकर हमारी सभ्यता शीघ्र ही मरुद्यानों को रेगिस्तानों में बदल देगी जिससे पृथ्वी पर सारे जीवन के विनाश का खतरा हो जाएगा.

पारिस्थितिक विशेषज्ञों के अनुसार इस समय अत्यंत सूखे, पूर्ण सूखे और अर्ध सूखे क्षेत्र पृथ्वी की सतह के 43 प्रतिशत क्षेत्र में फैले हैं. इन क्षेत्रों में 7 प्रतिशत रेगिस्तान मानव के द्वारा ही निर्मित हैं.

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में फैली सिन्धु घाटी की सभ्यता ने कृषि योग्य भूमि बनाने के निमित्त अपने आस-पास के सारे वन क्षेत्रों को धीरे-धीरे नष्ट कर डाला. परिणामस्वरूप, उसका पूर्ण विनाश हो गया और आज उसकी कहानी इतिहास के पृष्ठों तक ही सीमित होकर रह गई है.

प्रकृति में पाई जाने वाली हरितिमाओं का समन्वय वनस्पतियों के जीवन पर ही निर्भर है. हमारे चारों ओर फैले विशाल भू-भाग पर पर्वत श्रृंखलाओं, विशालकाय वृक्षों, लताओं एवं छोटी बड़ी झाड़ियों से पूर्ण वनस्पतियों का ही साम्राज्य है. प्रकृति प्रदत्त यह सुषमा वनस्पति जीवन पर ही आधारित है. चिरकाल से ही मनुष्य और सभी जीव-जंतु यथा, पक्षी, कीट, अनेक जलीय जीव आदि सभी पेड़-पौधों पर आश्रित हैं. इसीलिए वृक्षों को हमारे पुराणों में अत्यंत परोपकारी कहा गया है. 'वाराह पुराण' में लिखा है कि—

ईन्धनार्थं यदानीतं अग्निहोत्रं तदुच्यते।
छाया विश्राम पथिकैः पक्षिणां निलयेन च।।
पत्रमूल त्वगादिभिर्य औषधार्थं तु देहिनाम।
उपकुर्वन्ति वृक्षस्य पंचयज्ञः स उच्चते।।

अर्थात, वृक्षों के उपकार पांच महायज्ञ हैं. वे गृहस्थों को ईंधन देकर, पथिकों को छाया और विश्राम देकर, पक्षियों को घोंसले देकर तथा पत्तों, जड़ों और छालों से सारे जीवों को औषध देकर उनका उपकार करते हैं.

वृक्षों के पर्यावरणीय कार्य

एक सर्वश्रेष्ठ तथ्य यह है कि प्रकृति में पाए जाने वाले वृक्ष अपने जीवन रक्षार्थ प्रदूषण फैलाने वाले कारकों यथा, अंगाराम्ल वाष्प (कार्बन डाइआक्साइड गैस) को अपने में अवशोषित कर प्रकृति के जीव जंतुओं के लिए प्राणवायु (आक्सीजन) वातावरण को लौटा देते हैं. अगर वृक्षों का अस्तित्व न हो तो कल-कारखानों के इस युग में मनुष्य का प्रदूषण से बच पाना मुश्किल हो जाएगा. ऊंची-ऊंची चिमनियों से रात-दिन प्रदूषित एवं विषैली गैसें जिनमें कार्बन-मोनोक्साइड मुख्य हैं, वातावरण में उत्सर्जित हो रही हैं. इससे पर्यावरण का ताप बढ़ रहा है. पिछले पचास वर्षों में इसके ताप में एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है, पिछले सौ वर्षों में 24 लाख टन आक्सीजन वायुमंडल से समाप्त हो चुकी है तथा 36 लाख टन कार्बन डाइआक्साइड की वृद्धि हुई है.

कल-कारखानों के विकास से जहां एक ओर आर्थिक सम्पन्नता तो बढ़ रही है, वहीं दूसरी ओर जैव-मंडल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है. इसीलिए काफी समय पूर्व किसी दार्शनिक ने

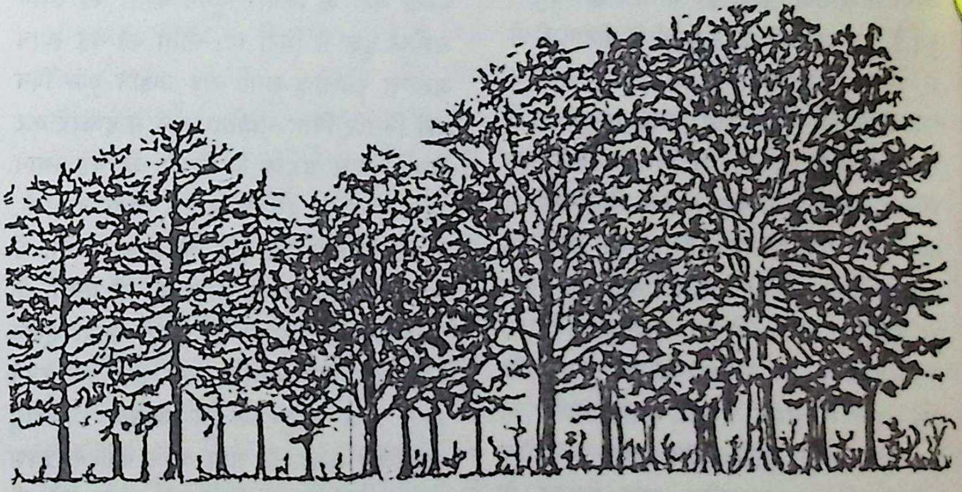

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा था, ''प्रकृति पर अपनी मानवीय विजयों के कारण हमें आत्म प्रशंसा में विभोर नहीं हो जाना चाहिए क्योंकि वह हर ऐसी विजय का हमसे प्रतिशोध लेती है. यह सही है कि प्रत्येक विजय से प्रथमतः वे ही परिणाम प्राप्त होते हैं जिनका हमने भरोसा किया था, पर द्वितीयतः और तृतीयतः उसके बिल्कुल ही भिन्न तथा अप्रत्याशित परिणाम प्राप्त होते हैं, जिनसे अक्सर पहले परिणाम का असर जाता रहता है.''

वन कटाई के दुष्परिणाम

आधुनिकतम सर्वेक्षण के अनुसार प्रतिवर्ष संसार की लगभग 6 करोड़ हेक्टेयर भूमि वृक्ष विहीन कर दी जाती है. अकेले भारत में ही 16 लाख हेक्टेयर भू-भाग के वनों को उजाड़ दिया जाता है. जैविकीविदों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि पौधों की किसी एक जाति के लुप्त होने से कीटों, जानवरों या अन्य पौधों की 10 से 30 तक जातियां विलुप्त हो सकती हैं. अति जीवितता की संभावनाओं के एक अध्ययन से ज्ञात होता है कि यदि यह प्रवृत्ति इसी तरह जारी रही तो सजीवों की एक बड़ी संख्या के जीवित बचे रहने की संभावना बहुत कम हो जाएगी. प्रकृति के नियमों का उल्लंघन कर मनुष्य अपने ही हाथों अपना तथा अन्य जीवों का पूर्ण विनाश करने पर तुला है.

बीसवीं शताब्दी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास तेजी से हुआ है. इस कारण पिछले 2000 वर्षों में जो जातियां विलुप्त हुईं, उनमें आधी से अधिक 1900 ई० के बाद ही विलुप्त हुई हैं. इस शताब्दी के उत्तरार्ध में वीरान क्षेत्रों में मनुष्य की बस्तियां बस जाने, जहरीले पदार्थों के व्यापक उपयोग, उनके वायुमंडल में उत्सर्जन और प्रकृति के निर्मम दोहन एवं शोषण की वजह से प्रजातियों के विलुप्तिकरण की गति तेज हो गई है. दूसरी ओर नई प्रजातियों के क्रम-विकास की गति बहुत कम हो गई है. जीव-शास्त्रियों के अनुसार पिछले 350 वर्षों में, 19 वीं सदी के मध्य तक, प्रति दस वर्ष में प्राणियों की एक प्रजाति या उपजाति नष्ट हुई. प्रकृति और प्राकृतिक साधनों के अन्तरराष्ट्रीय रक्षा संगठन के अनुमान के अनुसार अब औसतन हर वर्ष एक प्रजाति या उप जाति लुप्त हो जाती है. इस समय पक्षियों और जानवरों की लगभग 1000 प्रजातियों के लुप्त होने का खतरा है. वृक्षों की तेजी से विनाश के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति भी दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है. इस प्रकार यह निश्चित ही है कि अन्ततः कृषि पर आधारित स्थिर जीवन को भी एक दिन बहुत बड़ी विपदा का सामना करना पड़ेगा.

पेड़-पौधों की भूमिका

फल एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति तो पेड़-पौधे करते ही हैं, वे प्रकृति के जीवमंडल की कायम रखने का महत्वपूर्ण कार्य भी करते हैं. प्रकाश संश्लेषण की क्रिया का मनुष्य एवं जीव-जंतुओं के अस्तित्व से काफी गहरा संबंध है. वातावरण के विषैले पदार्थों को स्वयं पीकर वृक्ष अन्य जीवों के रक्षार्थ जैविक शक्ति प्रदान करते हैं और उनकी क्रियाओं का आपसी संतुलन कायम रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाते हैं. आइए, अब प्रदूषण को कम करने वाले कुछ मुख्य, मूल्यवान और महत्वपूर्ण वृक्षों के विषय में जानकारी प्राप्त करें.

अशोक

पर्यावरण को शुद्ध करने वाले वृक्षों में 'अशोक' वृक्ष का महत्वपूर्ण स्थान है. 'अशोक' शब्द का अर्थ है—दुःख से रहित अर्थात प्रेम का प्रतीक. सकंध पुराण में कहा गया है कि अपने विवाह के उपरान्त राम और सीता मिथिला में कोशी नदी के किनारे घूमने आए. वह स्थान अशोक वृक्ष से घिरा था. सीता को वह स्थान अत्यन्त रमणीक लगा और उन्होंने कुछ दिन वहां बिताए बिना अयोध्या जाने से इन्कार कर दिया. कोशी बराज के निकट का वह स्थान आज भी सीता वन के नाम से जाना जाता है. इतना ही नहीं इस वृक्ष की छाल के रस से अनेक दवाइयां बनाई जाती हैं, जो स्त्रियों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं. इसकी छाया सुखद और आरामदेह होती है. यह सदा हरा रहने वाला वृक्ष वायुमंडल में अधिक प्राणवायु उत्सर्जित करता है. लोग अपने घरों के प्रवेश द्वार पर इसे लगाते हैं जिससे उनके घरों की सुन्दरता तो बढ़ती ही है, आस-पास का वातावरण भी स्वच्छ होता है.

नीम

सदा हरा दीखने वाला यह वृक्ष वायु प्रदूषण को कम करने में सर्वाधिक सहायक है. चैत माह के आरंभ में, नीम की नई पत्तियां खाई जाती हैं जिससे त्वचा संबंधी रोगों से छुटकारा मिलता है. इसकी निबोलियों से निकाले गए तेल का मुख्य उपयोग साबुन और टूथपेस्ट बनाने में किया जाता है. इसकी लकड़ियां सख्त और टिकाऊ होती हैं. इसमें घुन नहीं लगता. दिल्ली में सड़कों के किनारे दोनों ओर नीम के वृक्ष पंक्तिबद्ध हैं जो पथिकों को छाया देते हैं. भारत में देवी मंदिरों के पास नीम का एक वृक्ष अवश्य लगाया जाता है.

पीपल

पर्यावरण के वायु प्रदूषण को कम करने में पीपल का सर्वोपरि स्थान है. यह सर्वाधिक प्राणवायु वायुमंडल में उत्सर्जित करता है. इसमें एक विशिष्ट गुण पाया जाता है. भवनों की दीवारों और छतों पर उगा हुआ पीपल का नन्हा पौधा वर्षा एवं वायु से पोषक पदार्थ ग्रहण कर जब तक जीवित रहता है तब तक उसकी जड़ें भूमि के अन्दर पहुंचकर मिट्टी से अपना पोषक तत्व प्राप्त करना प्रारंभ नहीं करतीं. मूल से पत्तियों तक यह वृक्ष औषधि विज्ञान में अत्यंत उपयोगी है. इसकी छोटी और कोमल शाखाओं का रस हृदय रोगों के लिए लाभदायक है. दूध जैसा दीखने वाला रस लाह के समान कार्य करता है. इसकी पत्तियों पर लाह के कीड़े भी पाले जाते हैं. हिन्दू धर्म में यह वृक्ष अत्यंत पवित्र माना गया है. इसकी पूजा की जाती है. सुप्रसिद्ध भारतीय ज्योतिर्विद 'वाराहमिहिर' ने इसकी पर्यावरणीय महत्ता को स्वीकारते हुए कहा है कि घर के आगे पीपल का वृक्ष लगाने से जीवन में उन्नति होती है तथा मन सदैव प्रसन्न रहता है. भगवान बुद्ध को पीपल के वृक्ष के नीचे ही बिहार के 'गया' नामक स्थान में ज्ञान की प्राप्ति हुई थी. इस वृक्ष को काटना तथा घरेलू उपयोग करना हिन्दू समाज में पाप माना जाता है. कुरुक्षेत्र के मैदान में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को संवाद के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौरान यह बताया था कि 'मैं वृक्षों में पीपल हूं'. मन्द पवन के झोंकों से इस वृक्ष के पत्ते हमेशा डोलते रहते हैं. ऐसा प्रतीत होता है मानो वे प्रकृति से बातें कर रहे हों. कविवर गोपाल सिंह नेपाली के शब्दों में :

पीपल के पत्ते गोल-गोल ।
कुछ कहते रहते डोल-डोल ।।

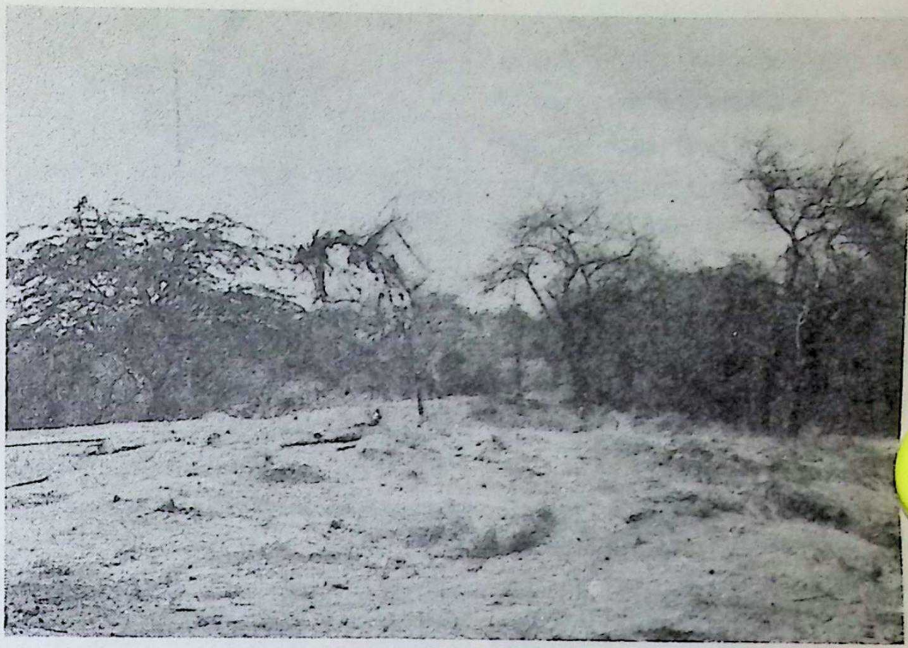

बरगद

इसे वट वृक्ष के नाम से भी जाना जाता है. वायु प्रदूषण को कम करने वाले वृक्षों में इसका अपना अलग स्थान है. इसकी विस्तृत एवं सघन छाया पशु, पक्षी एवं पथिक को शीघ्र ही आकृष्ट कर लेती है. इसके कोमल पत्ते कुष्ठ रोग में अत्यंत उपयोगी हैं. दूध के समान इसका रस अत्यन्त पौष्टिक होता है. इसका नित्य सेवन करने से पायरिया समाप्त हो जाता है और चेहरे पर चमक आ जाती है. इसकी टहनियों से रस्सियों के सदृश जड़ें निकलती हैं. कुछ जड़ें भूमि तक आकर मिट्टी में प्रवेश कर जाती हैं जिससे यह वृक्ष काफी दूर तक फैलता है. यही कारण है कि कई वनस्पति उद्यानों में वट वृक्ष मुख्य आकर्षण का केन्द्र है. मद्रास के अड्यार नामक स्थान पर ब्रह्मविद्या समाज (थियोसाफिकल सोसायटी) के उद्यान में एक पुराना वट वृक्ष है जो चालीस हजार वर्ग फुट में फैला हुआ है. यहां आने वाला कोई भी पर्यटक इस विशाल वृक्ष को देखे बगैर नहीं लौटता. वृन्दावन में भगवान श्रीकृष्ण भी बचपन में इसकी छाया में विश्राम लेते थे और ग्वालों के संग मक्खन खाते थे. इसी कारण इसकी एक जाति का नाम कृष्णवन्त भी है.

आम

इसे हमारे देश में एक अत्यन्त पवित्र वृक्ष माना गया है. किसी भी पूजन में इसके पल्लवों की अनिवार्य आवश्यकता होती है. इससे उत्सर्जित सुवास कई प्रकार के कीटाणुओं का नाश करती है. इसके पके फलों की गुठलियों के अन्दर के बीज का उपयोग फेफड़ों तथा हैजे के रोगियों के लिए उपयोगी कई दवाएं बनाने में किया जाता है. इसलिए यह कथन 'आम के आम गुठली के दाम' पूर्णतः सत्य है. आम्र मंजरियों की सुवास से मुग्ध कोयल वासन्ती कूक विश्व प्रसिद्ध है. धार्मिक यज्ञों के आयोजन में इसकी लकड़ियां जलाई जाती हैं. उसका धुआं तीव्र खांसी तथा गले की अनेक व्याधियों में फायदेमन्द है. इसकी छालों और फलों की गोंद को चूने के साथ मिलाकर लगाने से त्वचा संबंधी रोग दूर होते हैं. पर्यावरणीय दृष्टिकोण से यह वृक्ष जड़ से पत्तियों तक उपयोगी है.

आंवला

अपने में विशिष्ट गुण रखने वाला यह वृक्ष आसपास की वायु को तो शुद्ध करता ही है, साथ ही विभिन्न औषधियां भी इससे बनाई जाती हैं. इसके फलों में सर्वाधिक मात्रा में विटामिन 'सी' पाया जाता है. सुप्रसिद्ध दवा च्यवनप्राश आंवले से ही तैयार होती है जिसे कथाओं के अनुसार देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों ने महर्षि च्यवन को खिलाकर उनके वृद्ध शरीर में युवकों जैसी शक्ति ला दी थी. हाजमे की महत्वपूर्ण आयुर्वेदीय औषध 'त्रिफला' में भी इसी आंवले का एक भाग मिला होता है. इसके फलों से सुवासित केश तेल तथा शैम्पू बनाए जाते हैं. यदि 12 घंटे तक सूखे फलों को पानी में भिगोकर उस पानी से आंखों को धोया जाए तो नेत्र संबंधी कई रोग दूर हो जाते हैं. हिन्दू लोग अक्षम नवमी के दिन जाड़े की स्वच्छ वायु को ग्रहण करने के उद्देश्य से इसी वृक्ष के नीचे पूजा तथा भोजन करते हैं.

इमली

यह फैली हुई शाखाओं वाला एक दीर्घजीवी वृक्ष है. सदैव हरे-भरे रहने वाले इस वृक्ष का दक्षिण भारत में सर्वाधिक महत्व है. पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के अतिरिक्त इसके फलों का उपयोग चटनी, कढ़ी आदि बनाने में किया जाता है. इसके ताजे बीज का चूर्ण गोंद के साथ मिलाकर छिद्रों को भरने में सीमेंट जैसा काम करता है. बीजों से तेल भी निकाला जाता है जिसका वार्निश और पेंट बनाने में उपयोग किया जाता है. सड़कों के किनारे छाया एवं सुन्दरता के लिए इस वृक्ष को बड़ी संख्या में लगाया जाता है.

कदम्ब

इस वृक्ष की पत्तियां चौड़ी तथा अत्यन्त सुन्दर होती हैं जो परिवेशी वायु को शुद्ध करती है. जाड़े के दिनों में इसका आकर्षण बहुत बढ़ जाता है. हिन्दुओं द्वारा इसके फूल देवताओं पर चढ़ाए जाते हैं. इसमें शक्ति की देवी का निवास बताया गया है. इसकी छाल का काढ़ा बुखार के लिए एक उत्तम टॉनिक का कार्य करता है तथा पत्तियों को पानी में उबालकर कुल्ला करने से गले की खराश दूर होती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ाकड़

शीघ्र बढ़ने वाला तथा विस्तृत शाखाओं ाला यह वृक्ष बिहार और उत्तर प्रदेश में बसे लोकप्रिय है. इसकी छाया घनी और ारामदेह होती है. वायुमंडल की दूषित गैसों ो मात्रा कम करने में इसकी प्रमुख भूमिका . इस वृक्ष का प्रत्येक भाग औषधि के गुणों से रिपूर्ण है. इसकी छाल को पीसकर लगाने से वचा के व्रण निर्मूल हो जाते हैं. इसके क्वा से ले की बीमारियां दूर हो जाती हैं.

हुआ

सूखे तथा पहाड़ी क्षेत्रों में यह वृक्ष धिकाधिक संख्या में पाया जाता है. इसकी ोभा जाड़े में अत्यंत आकर्षक होती है. इसके ूल तथा फल स्वास्थ्य के लिए बहुत ाभदायक होते हैं. फूलों को सुखाकर देशी राब बनाई जाती है. इसके बीजों से तेल नेकाल कर साबुन बनाने के काम में लाया ाता है. कुछ लोग खाना बनाने में भी इस तेल ा उपयोग करते हैं. इस वृक्ष की छाल से नेकला दूध जैसा रस गठिया को ठीक करता . रेचक की तरह भी इसका उपयोग होता है. सकी लकड़ी बहुत मजबूत तथा टिकाऊ होती . पर्यावरण को स्वच्छ रखने में इसकी अपनी लग भूमिका है.

र्जुन

सड़कों के किनारे लगाया जाने वाला यह त्यंत महत्वपूर्ण वृक्ष है. यह परिवेश को बहुत ुन्दर आकर्षण प्रदान करता है. वातावरण को ुद्ध करते हुए अपनी अनूठी आभा के कारण ह सहज ही लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच ेता है. इसकी जड़ों का उपभोग दस्तों की ीमारी को ठीक करने के लिए किया जाता है. सकी छालों के रस से हृदय रोग के लिए त्यंत उपयोगी आयुर्वेदिक औषधि अर्जुनारिष्ट' बनाया जाता है. शरीर में ेटामिन 'बी' की कमी की पूर्ति इसके रस से ोती है. इसकी पत्तियों के रस को कान में ालने से उसका दर्द दूर हो जाता है. अधिक ानी लगने वाले क्षेत्रों में इसे लगाया जाता है. पस्करों तथा इमारतों के लिए इसकी लकड़ी हुत ही उपयोगी है.

आधुनिक कीटनाशकों का

यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि हम स्वदेशी का महत्व तभी समझ पाते हैं जब पश्चिम के देश उनकी तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं. नीम के बारे में भी यही बात सही है. नीम का महत्व हमारे देशवासी सभ्यता के आदिकाल से ही जानते हैं. गांवों में लोग आज भी नीम को भूल नहीं पाए हैं. लेकिन पश्चिम की खोजों को अपनाने की हड़बड़ी में हमारी सरकार तथा भारतीय वैज्ञानिकों ने इसे जरूर भुला दिया है. पश्चिम के देशों में नीम के प्रति दिलचस्पी लगातार बढ़ती जा रही है. अनेक देशों में इसके पौधे लगाए जा रहे हैं. दुनिया की अनेक प्रयोगशालाओं में इसके औषधीय और कीटनाशक गुणों पर शोध जारी है.

नीम का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी पुरानी हमारी सभ्यता है. पुरातत्व अन्वेषकों को मोहनजोदड़ो की खुदाई में मिली कुछ ताबीजों में नीम वृक्ष की आकृति बनी मिली है. भारतीय चिकित्सा के प्राचीनतम शास्त्रों चरक, सुश्रुत में भी इस वृक्ष के गुणों का वर्णन है. इस प्रकार नीम हमारे देश में प्राचीनकाल से ही लोकप्रिय वृक्ष रहा है.

नीम एक ऐसा वृक्ष है जिसके हर अंग—जड़, तना, फूल, पत्ती, फल सभी का औषधि एवं कीटाणुनाशक के रूप में तरह-तरह से उपयोग किया जाता है. छाया के मामले में यह आदर्श वृक्ष है. इसके पत्तों से होकर आने वाली हवा विशेष स्वास्थ्यप्रद समझी जाती है. नीम की लकड़ी मजबूत और टिकाऊ होने के कारण इसका उपयोग कृषि-यंत्रों, गृह निर्माण के अलावा गाड़ियों, जहाजों और मूर्तियां बनाने में होता है. कड़वा स्वाद होने के कारण इस वृक्ष में दीमक, घुन या कीड़े नहीं लगते.

नीम के बीजों में एक कड़वा तेल पाया जाता है. तीव्र दुर्गन्ध वाले इस तेल का रंग गहरा पीला होता है. 15.5 सेंटीमीटर पर इसका आपेक्षिक घनत्व 0.92 होता है. यह लगभग 10° सेंटीमीटर से 6° सेंटीमीटर पर बिना अपनी पारदर्शकता खोए जम जाता है. कभी-कभी नीम के वृक्ष से स्वयं ही एक स्राव निकलने लगता है जिसे नीम का मद या नीम का रस कहा जाता है. 15° सेंटीमीटर पर इस रस का आपेक्षिक घनत्व 1.58 होता है. इस रस का उपयोग लोग चर्मरोगों में लगाने के लिए या औषधि के रूप में पीने के लिए करते हैं.

नीम की पकी निमोली (फल) का स्वाद मीठा होता है. पक्षी इस फल को खूब खाते हैं. निमोली के बीजों को एकत्र करके इसका तेल निकाला जाता है. तेल का उपयोग औषधियों के लिए तथा खली का उपयोग जानवरों के खाने तथा कीटाणुनाशक के रूप में किया जाता है. नीम के तेल का उपयोग साबुन उद्योग में होता है. नीम के सूखे फल में यह तेल करीब 44 प्रतिशत होता है. नीम की खली एक उत्तम उर्वरक भी है. फलों की पौध रखने के पूर्व मिट्टी में नीम की खली मिलाई जाती है. इससे

जामुन

अधिक जल वाले क्षेत्रों में आसानी से उगने और बढ़ने वाले सदाबहार वृक्षों में जामुन का स्थान सर्वोपरि है. वायु की शुद्धता के साथ इससे हमें कई महत्वपूर्ण दवाइयां प्राप्त होती हैं. दक्षिण भारत में इसकी ऊंचाई लगभग 3000 मीटर तक पाई जाती है. इसके फलों का उपयोग सिरका बनाने में किया जाता है जो शरीर को शीतल रखने के साथ-साथ पाचन क्रिया में भी सहायक है. पके, काले और चिकने फलों को भी खाया जाता है. बरसात में होने वाली पेट की गड़बड़ी को ठीक करने में यह सहायता करता है. इसकी गुठलियों का चूर्ण मधुमेह की उत्तम दवा है. कुचले के सेवन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वोत्तम विकल्प नीम

पौधे को आवश्यक पोषण तो मिलता ही है, दीमक जैसे कीटों का भय भी समाप्त हो जाता है. नीम की खली में नाइट्रोजन 5 से 6 प्रतिशत, फास्फोरस 2 प्रतिशत तथा पोटाश 1 प्रतिशत तक होता है.

आधुनिक जहरीले कीटनाशकों की तुलना में नीम एक सर्वोत्तम कीटनाशक है. अनाज के भण्डारण, दीमकों से सुरक्षा से लेकर पेड़-पौधों की हर तरह की बीमारी में इसके विविध उपयोग आज भी लोग किया करते हैं. इस क्षेत्र में किसानों को यदि वैज्ञानिकों का सहयोग मिल जाए तो यह अकेला वृक्ष दुनिया भर के कीटनाशकों के कारखाने बंद करवा सकता है.

कीटनाशक के रूप में नीम सर्वथा हानिरहित है. आधुनिक कीटनाशक जब खेतों में डाले जाते हैं तो वे शत्रु-कीटों के साथ-साथ मित्र कीटों को भी मार डालते हैं जिससे प्राकृतिक असंतुलन पैदा होता है और कीटनाशकों की मांग लगातार बढ़ती जाती है. इसके अलावा आधुनिक कीटनाशक दीर्घजीवी होने के कारण आज सारी पृथ्वी और जलस्रोतों को प्रदूषित कर रहे हैं. परन्तु नीम ऐसा प्राकृतिक कीटनाशक है जो अपना काम करने के बाद शीघ्र ही विघटित हो जाता है तथा पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ा देता है.

नीम के औषधीय और कीटनाशक गुणों को देखकर ही दुनिया के अनेक देशों में नीम के वृक्षारोपण को प्रोत्साहन दिया गया है. फिलीपींस, सूडान, कीनिया, नाइजीरिया तथा

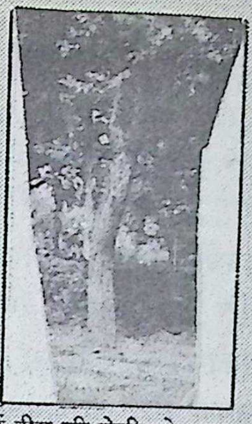

अमेरिका में नीम की खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है. नीम के रस को फसल पर छिड़कने से कीट दूर भाग जाते हैं और फसल नहीं खाते हैं. जैव-विज्ञान के जो सक्रिय घटक नीम की पत्तियों, फलों, छाल और बीजों में पाए गए हैं वे माइट और सूत्र कृमि, मूंग, मक्खी, पतंगे और टिड्डियों सहित करीब 125 प्रकार के कीटों को नियंत्रित करने की क्षमता लिए हुए हैं. नीम का शुद्ध सार तत्व मच्छरों के लारवों को मार सकता है. इस प्रकार यह मच्छर नियंत्रण के लिए भी अति उपयोगी है.– 'मारगोसन ओ' यौगिक नीम के बीजों से प्राप्त होता है. यह एक प्रभावकारी कीटनाशक है जो अमेरिका के बाजारों में मान्यता प्राप्त कर चुका है. नीम से प्राप्त होने वाला एक और यौगिक है 'अर्जदरेक्टी'. इसे सुरक्षित और उचित कीटनाशक माना गया है. इस यौगिक को कोलंबिया विश्वविद्यालय के क्यूबो तथा नाकानिशी ने 1978 में प्राप्त किया था. यह यौगिक अफ्रीका की टिड्डी 'शिस्टोसर्का ग्रेगेरिया' की शत-प्रतिशत रोकथाम में सक्षम है. इसी प्रकार एक अन्य टर्पीनायड 'पेलियान्ड्रियाल' पृथक किया गया है.

एशियाई विकास बैंक की मदद से मनीला स्थित अन्तरराष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्था ने नीम की खली व नीम के तेल के कीटनाशक के उपयोग की संभावनाओं का पता लगाने के लिए परियोजना बनाई है. संस्थान में पिछले सात वर्षों से चल रहे परीक्षणों में पाया गया है कि नीम के तेल व खली के उपयोग से बीमारियों से होने वाली फसल क्षति में 40 प्रतिशत की कमी आई है.

सूडान की राजधानी खार्तूम के कृषि शोध संस्थान में प्रोफेसर अहमद सादिक ब्रिटेन की 'केयर' नामक संस्था के सहयोग से पिछले 30 वर्षों से नीम के वृक्ष पर प्रयोग करते आ रहे हैं. नीम से बना कीटनाशक सूडान में इतना लोकप्रिय हो रहा है कि अब सरकार ने भी इसे प्रोत्साहन देना शुरू कर दिया है.

भारतीय मूल का वृक्ष पश्चिम के उन्नत देशों के लिए नई और अचरज भरी चीज हो सकती है, लेकिन हमारे गांवों का तो हर आदमी इसके महत्व से परिचित है. गांवों में आज भी बहुत बड़ी आबादी नीम का दातुन ही उपयोग करती है. विश्व स्वास्थ्य संगठन भी नीम के दातुन की भूरि-भूरि प्रशंसा कर चुका है. यह विडम्बना ही है कि आज हम आधुनिकता के जोश में तथा बहुराष्ट्रीय निगमों की विज्ञापनी चकाचौंध में नीम का दातुन तक भूलते जा रहे हैं. विदेशों में नीम के प्रति बढ़ती दिलचस्पी ने एक बार फिर यह सिद्ध कर दिया है कि हम अपने परंपरागत स्रोतों का महत्व तब तक नहीं समझ पाते जब तक उनके गुण विदेशी न गाने लग जाएं. **(प्रस्तुतिः विजय जी सौजन्य सप्रेस)** □

शरीर में एकत्र जहरीले पदार्थ को यह चूर्ण नष्ट कर देता है. इस वृक्ष पर तसर तथा रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं. सड़कों के किनारे तथा पार्कों में सुन्दरता के लिए इसे लगाया जाता है.

उपर्युक्त वृक्षों के अलावा पर्यावरण की रक्षा करने तथा आस-पास की सुन्दरता में वृद्धि करने वाले पेड़ भी लगाए जा सकते हैं. इनमें सुबबूल, गुलमोहर, सिरिस इत्यादि प्रमुख हैं.

ऋषियों की तपःस्थली, वन्य प्राणियों का विचरण स्थान तथा प्रदूषित वातावरण को पूर्ण स्वच्छ करने वाले वनों के विकास पर हमें पूर्ण ध्यान देना होगा. जैविक क्रियाओं के आपसी संतुलन को बनाए रखने के लिए हमें तन-मन से इस दिशा में कार्य करना होगा. महत्वपूर्ण सफलता अर्जित करने हेतु वनों को ही धरती की मुख्य साज-सज्जा मानकर प्रयास करने होंगे, क्योंकि :

''मिटेंगे तभी पर्यावरण प्रदूषण
जब वन होंगे धरती के आभूषण.''

(शेष पृष्ठ 270 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैव-प्रौद्योगिकी और कृषि

□ के० आर० नारायणन

एशियन पैसिफिक डिवेलपमेंट सेंटर के तत्वावधान में आयोजित 'एशियाई कृषि पर जैव-प्रौद्योगिकी की सार्वजनिक नीति के प्रभाव' विषयक एक संगोष्ठी के दौरान भूतपूर्व विज्ञान और प्रौद्योगिकी राज्य मंत्री श्री के० आर० नारायणन के उद्घाटन सम्बोधन के कुछ महत्वपूर्ण अंश जो जैव-प्रौद्योगिकी के हमारी कृषि पर सम्भावित प्रभावों से संबंधित हैं एक आलेख के रूप में यहां संकलित किए गए हैं ताकि हमारे पाठकों को उन विचारों की एक झलक मिल सके जो जैव-प्रौद्योगिकी के संदर्भ में हमारी कृषि नीति निर्धारित करने में किसी हद तक निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं. संकलन व प्रस्तुतिकरण किया है अरविंद मिश्र ने.

□ मानव ने अपना पहला उद्योग कृषि के रूप मे ही विकसित किया और शायद कृषि ही उसकी सांस्कृतिक अन्तःप्रेरणा की पहली अभिव्यक्ति भी है. एशिया मानव की इस कृषीय 'उपलब्धि' का आदि पालना है. अब मानव के हाथ लगी 'जैव-प्रौद्योगिकी' एक ऐसी नवीनतम उपलब्धि है, जो कृषि और उद्योग के क्षेत्रों में नयी क्रांति ला देगी.

मानव विकास को प्रायः प्रकृति पर उसके विजय के रूप में देखा जाता रहा है यानी अपनी आवश्यकताओं और उद्देश्यों की खातिर खुद मानव द्वारा प्राकृतिक शक्तियों पर नियंत्रण और संसाधनों का अनवरत दोहन. आज हम जान गए हैं कि हमारी वास्तविक प्रगति, प्रकृति को पराजित और उसके दोहन करते जाने में नहीं, बल्कि उसे कोमलता के साथ संरक्षित करने और उसके जटिल और सुकुमार सन्तुलन को परिरक्षित बनाए रखने तथा परस्पर सामंजस्य बनाए रखने में ही निहित है. शेक्सपियर ने कभी कहा था कि कला का मतलब है जो 'प्रकृति को कुछ अर्पण' कर सके, या 'प्रकृति में बदलाव और मूल सुधार' कर सके. किन्तु कला की स्वयं अपनी भी प्रकृति है. आज ठीक यही बात विज्ञान के संबंध में अधिक सार्थकता के साथ कही जा सकती है. विशेष रूप से नई जैविकी— आनुवंशिक अभियान्त्रिकी और जैव-प्रौद्योगिकी के बारे में. लेकिन जैसा कि शेक्सपियर ने कहा था, उसकी पृष्ठभूमि में–विज्ञान को ही निश्चिततः प्रकृति के रूप में देखना होगा–'महान सर्जक प्रकृति के रूप में'– जो अपने कृपालु स्वरूप में प्रकृति की ही गोद से ही निःसृत हो उससे तालमेल बनाते हुए रचनात्मक ऊर्जा के साथ मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है. यह अवधारणा हमारे मूल एशियाई दार्शनिक विचारों से भी साम्य रखती है. प्रकृति और पुरुष की परस्पर निर्भरता की जड़ और चेतन तथा जीवन के साझे मूल्यों के साथ धरती पर अस्तित्व बनाए रखने की हमारी मौलिक अवधारणाओं को ही नई अभिव्यक्ति देती है. संभावित जैवीय क्रांति मानव को विकास के एक ऐसे पथ पर अग्रसर करने को उद्यत होगी जो करोड़ों लोगों में, नई आशा और संभावनाओं का संचार करेगी, विशेषतया गरीब विकासशील देशों के उन लोगों में जिनका जीवन मुख्य रूप से कृषि उत्पादों पर ही निर्भर है.

अपने बहुआयामी और अन्तहीन उपयोगों में जैव-प्रौद्योगिकी का वही पक्ष हमारे लिए फौरी तौर पर अभीष्ट और औचित्य भरा है जो एशियाई क्षेत्र में कृषि के मौलिक मुद्दों को हल करें. यद्यपि इस तकनीक के औद्योगिक और ऊर्जा क्षेत्र के उपयोगों का भी कम महत्व नहीं है. जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि और उसी के सापेक्ष कम पड़तीं हमारी कृषि-भूमि ने हमारे लिए महान समस्या उत्पन्न कर दी है, भले ही भारत में हरित क्रांति और चीन में कृषि उत्पादन को प्रभावित करने वाले आंकड़े उपलब्ध हैं. प्राचीन काल से ही एशियाई क्षेत्र की जन संकुल भारक्रांत धरती बुरी तरह से दुही जाती रही. अब कृषि उत्पादनों की और अधिक वृद्धि, जैव तकनीक और हमारे पुरानी पद्धतियों के संश्लिष्ट स्वरूप के चलते ही संभव है. बढ़ी हुई दरों पर खाद्य सामग्री, ईंधन, चारा और अन्य जैवीय उत्पादों के लिए हमें जैव-प्रौद्योगिकी का सहारा लेना होगा. हमें एक सुचिंतित योजना के ढांचे में जैव-प्रौद्योगिकी का सुचारु रूप से तत्कालिक उपयोग सुनिश्चित करना है–एक व्यवहारिक अनुसंधान-विकास के मानवोपयोगी नजरिये के साथ.

फसलों की पैदावार बढ़ाने में पौधों की वृद्धि दर को प्रकाश संश्लेषण की अभिक्रिया से तीव्र करने के लिए वैज्ञानिकों ने वंशाणुवीय फेरबदल का भी प्रदर्शन किया है. एशियाई क्षेत्रों में जैव-प्रौद्योगिकी की इसी प्राविधि पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाना है. यह अभी भले ही कल्पना की दुनिया की बात लगे, किन्तु वंशाणु विनिमय से उदभूत फार्म सुअरों के अस्तित्व ने तेजी से बढ़ने वाली कम खाऊ, मास उपजाऊ पशु प्रजातियों के विकास की संभावना को बढ़ा दिया है. जैव-प्रौद्योगिकी के जरिए पशु प्रजनन अब एक व्यावहारिक उद्योग की रूपरेखा बन चुका है. भारत में, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्यूनोलाजी की प्रयोगशाला में गायों में भ्रूण अन्तरण की तकनीक से उन्नतिशील मवेशियों का प्रजनन बिना चीर फाड़ के संभव हो चला है. पौधों वनस्पतियों में ऊतक संवर्धन की प्रौद्योगिकी भी अब विश्व भर में आजमाई जा रही है. एशियाई देशों, विशेष कर विकासशील देशों में इस तकनीक के जरिए खजूर, नारियल, केला और कन्दों के संवर्धन उद्योग का श्रीगणेश किया जा सकता है. इससे शोभाकारी पौधों का उद्योग भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकसित हो सकता है. मुझे बताया गया है कि जैव संयंत्र में एक क्यूनिक सेंटीमीटर की अकेली हरित कोशिका से लाखों पादप आकार पा सकते हैं.

यह एक ऐसी जैव-प्रौद्योगिक क्रांति है जो हमारी समाप्तप्राय: वनसम्पदा को पुनरुस्थापित करेगी, बंजर और ऊसर भूमि क्षेत्रों को हरा-भरा बना देगी और हमारे कृषि वानिकी कार्यक्रमों में भी सहयोग करेगी.

आनुवंशिक अभियांत्रिकी से ऐसे पौधों और फसलों का विकास हो रहा है जो विपरीत पर्यावरणीय स्थितियों जैसे सूखे और अम्लीय-क्षारीय मृदा के प्रति सहनशील है. इस प्राविधि के चलते रोगों और नाशी जीवों के प्रतिरोध क्षमता वाली पौध प्रजातियों का विकास हो रहा है. ऐसी पौध प्रजातियां भी विकसित हो रही हैं जो नाइट्रोजन स्थायीकरण के लिए खुद अपने उर्वरक उत्पादित करती है. जैव-प्रौद्योगिकी के ये बढ़ते चरण एशियाई कृषि के लिए दूरगामी महत्व के हैं.

एक आकलन के अनुसार दक्षिण-पूर्व एशिया की 8.6 करोड़ हेक्टेयर भूमि अधिक अम्लीयता या क्षारीयता से प्रभावित है. नाशी जीवों और रोगों के कारण फसलों की एक बड़ी मात्रा विनष्ट हो रही है. हम लोग उर्वरकों के मामले में भयभीत करने वाली न्यून उपलब्धता की स्थिति में हैं जिसके आयात के लिए विकासशील देशों को मूल्यवान विदेशी मुद्रा का व्यय करना है. यही नहीं, रासायनिक कीटनाशी और उर्वरक मानव और उसके पर्यावरण के लिए दुष्प्रभावी है. ऐसा परिकलित किया गया है कि अमेरिका प्रतिवर्ष 6.5 अरब डालर की धनराशि कीट पतंग, खर पतवार—झाड़ झखाड़ नाशी रसायनों पर (अप) व्यय करता है. किन्तु विडम्बना यह है कि अब भी नाशी कीटों द्वारा विनष्ट की गई फसलों का परिमाप उतना ही है जितना कीटनाशी रसायनों के आविष्कार के पहले था. क्योंकि इधर नाशी कीट पतंगों ने रसायनों के प्रति सहनशीलता विकसित कर ली है और बदले में एक और नई मुसीबत खड़ी हो गई है. कीटनाशी और उर्वरक रसायनों से हमारी नदियां झील, सरोवर, कुएं और अन्य जल स्रोतों के बढ़ते प्रदूषण ने जन स्वास्थ्य का गंभीर संकट उत्पन्न कर दिया है. रासायनिक उर्वरकों द्वारा बढ़ती पर्यावरणीय समस्याओं के छुटकारे की आयातित प्रौद्योगिकी के चलते विकासशील देशों के सचिव विदेशी मुद्रा कोष पर बोझ बढ़ रहा है. कई संदर्भ में जीवन रक्षक और जीवन स्तर सुधारक यह 'जीवनदाई' महत्व का रासायनिक उद्योग बस केवल पर्यावरणीय विनाश के परिप्रेक्ष्य में 'एक बर्बर रासायनिक प्रौद्योगिकी' का स्वरूप पा जाता है. सचमुच कोई भी उद्योग 'बर्बर' बन सकता है, यदि वह रक्षा विधियों के समुचित आवरण में ढका न हो और मानव और पर्यावरण के प्रति खतरों से बचने के उपायों से लैस न हो. साथ ही कलात्मक और संस्कृति मूलक परिवेश से विधिवत प्रति सन्तुलित न किया गया हो.

एक सीमा तक जैव-प्रौद्योगिकी की नई विधियां रासायनिक उर्वरकों और कीट-खरपतवार-झाड़ झंखाड़ नाशियों के बुरे प्रभावों के प्रति वैकल्पिक मांगों को प्रस्तावित करती है. सूखा रोग और नाशी कीटों के प्रति सहनशील पौध और फसल प्रजातियां अब आनुवंशिक अभियान्त्रिकी की उपलब्धि सीमा के अन्तर्गत आ गई हैं. इसमें ऐसे पौधे भी सम्मिलित हैं जो खुद अपना उर्वरक तैयार कर सकते हैं. भारी मात्रा में कृषि व्यर्थों से नए संसाधनों के विकास की विशाल व्यावहारिक संभावनाएं परिलक्षित हुई हैं जो संयोगवश विकासशील देशों में विकेन्द्रित ग्रामीण औद्योगीकरण के नए आयाम प्रस्तुत करेगी. सबसे बड़ी उपलब्धि तो यह है कि पूरी तरह से दोषमुक्त न होने के बावजूद भी अपने कृषि सम्बन्धी उपयोगों में जैव-प्रौद्योगिकी पर्यावरण के लिए खतरनाक नहीं है और साथ ही उत्पादन व्ययों के घटाने वाली, पौधों तथा फसलों की उत्पादकता बढ़ाने वाली और पहले से ही बुरी तरह सीमित संसाधन 'भूमि' को कम घेरने वाली है.

आनुवंशिक अभियान्त्रिकी और जैव-प्रौद्योगिकी अब विश्व के विकसित औद्योगिक देशों की धरोहर बन चुकी है. इसके अधीन, विशेषकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में अनुसन्धान और विकास के अलावा उद्योग और उत्पादों का विक्रय भी संचालित हो रहा है. अभी हाल ही में इन कम्पनियों द्वारा जैव-औद्योगिक उत्पादों पर 'बौद्धिक सम्पत्ति के अधिकारों' के अधीन पेटेन्ट के दावे भी किए जाने शुरू हुए हैं. इन आविष्कृत उत्पादों में मुख्यतया जीवन रक्षक दवाएं, टीके, अनाज और पौध प्रजातियां, नए जीव या उच्च श्रेणी के जीव भी सम्मिलित हैं. सही नीति निरूपण करते हुए विकाशील देश एकल या समवेत प्रयासों के जरिए विकसित देशों की इस एकाधिकारिक मुहिम से जूझ सकते हैं. जहां तक उच्चतर जैव प्रारूपों के पेटेन्ट में छूट देने की बातें है यह विचार जैव उद्योगीय क्षेत्र के शोध और विकास के क्षेत्र में खतरों भरी बातें होंगी. यह निजी पूंजीगत व्यवसायीकरण की इस क्षेत्र में घुसपैठ साबित होगी. आनुवंशिक अभियान्त्रिकी के जरिए उच्चतर जैव रूपों के निर्माण के बौद्धिक सम्पाहित के अधिकार से किए गए पेटेन्ट के दावे बीते दिनों की दास प्रथा के एक नए जैव उद्योगीय संस्करण की याद दिलाएंगे. निश्चित रूप से ऐसी अपकृतियों, दिशाहीनता और नए सशक्त उद्योग की दुरुपयोगिता के प्रति चौकस रहना होगा जिससे किसी भी उद्योग प्रधान देश को ऐसे जोर आजमाइश का मौका विकासशील देशों के संदर्भ में न मिल सके.

और ऐसा तब तक संभव नहीं है, जब तक स्वदेशी और स्वदेश स्फूर्त अनुसंधान और विकास की तकनीक विकसित नहीं होती, जिसे आजकल दक्षिण-दक्षिण सहयोग का नाम दिया जा रहा है और जिसमें आन्तरिक संस्थानों में आपसी सहयोग और विकसित देशों से भी समानता और पारस्परिक सहयोग के आधार की अपेक्षा है.

यह सबसे जरूरी है कि जैव-प्रौद्योगिकी से जुड़े समस्त शोधपरक क्रियाकलाप हमारी तीसरी दुनिया के देशों में भी शुरू हो. यदि हम हाथ पर हाथ धरे यह इन्तजार करते रहे कि विकसित देशों के शोध और विकास के नतीजे अस्तित्व में आ जाएं या दूसरे शब्दों में कोई यदि 'पहिए' का आविष्कार हमसे पहले कर दे तो उसे दुबारा आविष्कृत करने की जरूरत ही कहां होगी—तो नई जैव-प्रौद्योगिकी का कारवां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें काफी पीछे छोड़ जाएगा. हम पहले भी कई प्रौद्योगिक क्रांतियों से अलग-थलग पड़ चुके हैं. यह सौभाग्य की बात है कि तीसरी दुनिया के कई देश जैसे भारत, ब्राजील, चीन, मैक्सिको, क्यूबा, मलेशिया, थाईलैंड, इन्डोनेशिया, फिलीपीन, इत्यादि आवश्यक ढांचा विकसित ही कर चुके हैं और साथ ही इन देशों में विज्ञान-प्रौद्योगिकी दक्षता का स्तर आत्मनिर्भरता के संदर्भ में एक सार्थक क्रियात्मक पहलू के विकास की राह पा चुका है. सरकारों को चाहिए कि जैव-प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने की दिशा में विवेकशील निर्णयों के जरिए इस क्षेत्र के शोध और विकास के प्रारूप को विशेष प्राथमिकता दें. यह खुशी की बात है कि इस सेक्टर में अधिक बड़ी लागतों की जरूरत भी नहीं है, जो कोई कुप्रभाव डाल सके. भारत में एक सक्रिय कार्यक्रम के जरिए आनुवंशिक अभियांत्रिकी एवं जैव-प्रौद्योगिकी के शोध अध्ययन को बढ़ावा देने की रूपरेखा बनाई गई है, और उनसे प्राप्त परिणामों को कृषि, उद्योगों, ऊर्जा स्वास्थ्य और पर्यावरण के फौरी आवश्यकता वाले क्षेत्रों में आजमाया जा सकेगा.

विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय के प्रयासों से सम्प्रति सर्व सुविधा सम्पन्न जैव-प्रौद्योगिकी विभाग भी अस्तित्व में आ चुका है. साथ ही हमारे पास आज कई प्रख्यात संस्थान जैसे नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ इम्यूनोलाजी, नई दिल्ली, विज्ञान संस्थान बंगलौर, आनुवंशिक अभियांत्रिकी इकाई और साथ ही कई केन्द्रों तथा, मदुराई कामराज विश्वविद्यालय, जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की भी आनुवंशिक अभियांत्रिकी की कई इकाइयां स्थापित हो चुकी हैं. कृषि क्षेत्र में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने ऐसे महत्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं जिनसे यहां हरित क्रांति की नींव पड़ी और साथ ही कृषि विकास के नए क्षितिज दृश्यमान हुए हैं. तिलहन प्रौद्योगिकी अभियान के तहत भारत का जैव-प्रौद्योगिकी विभाग ताड़ से तेल योजना पर कार्य कर रहा है. ऊतक संवर्धन तकनीक के जरिए इलाइची, बांस, धान, गन्ना, केला, चावल, यूकेलिप्टिस, चन्दन और आलू तथा कई अन्य पौध प्रजातियों की गुणवत्ता और उपज बढ़ाई जा रही है. साथ ही यह तकनीक खाद्य फसलों और नगदी फसलों के अलावा जैव भार और वनपुनुरुद्भवन की दिशा में भी आजमाई जा रही है. जैवीय उर्वरक, नाशी जीवों का जैवीय नियंत्रण, पालतू पशु-प्रजनन, रोधी टीके, जल सम्पदा संवर्धन—कुछ प्रमुख कार्यक्रम हैं जो कृषि के व्यापक क्षितिज पर उभरे हैं. प्रौद्योगिकी विकास की देहरी पर खड़े भारत में जैव-प्रौद्योगिकी के अधीन मानव विकास संसाधन का कार्यक्रम बहुत अहम है. इसके अन्तर्गत भारत और विदेशों में शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रावधान है और राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय पटल पर वैज्ञनिकों के बीच आपसी समन्वय और विचार विनिमय पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है.

राष्ट्रीय प्रयासों दक्षिण-दक्षिण सहयोग और विस्तृत अन्तरराष्ट्रीय सहयोग के उपरान्त हमें मानवता के लाभ में जैव-प्रौद्योगिकी के उज्जवल भविष्य की आभा झिलमिलाती दीखती है. मैं किसी जैव-औद्योगिक स्वर्ग का खाका नहीं खींच रहा हूं, बल्कि जब मैं विज्ञान और इस नई शाखा को पुष्पित-पल्लवित होने का चिन्तन करता हूं तो मुझे एक कवि की चंद पंक्तियां याद आ जाती हैं जो उसने किसी काल्पनिक भूभाग के लिए गाई हैं:

> जहां न मौत है और न ही ढलती उम्र
> गरीबों के पास है, जहां अकूत धन,
> कुएं जहां भरे हैं, सुराओं से
> रोटियां फलती हैं ज़हां पेड़ों पर,
> तन्दूरी सिके सुअरों की जमात जहां
> भागती फिरती और बुलाती है,
> अपनी मौज के लिए
> नित भक्षण करो हमारा.

लेकिन हां? आदम का कोई बगीचा बिना सांप के नहीं है. जैव-प्रौद्योगिकी के भी अपने खतरे हैं. अभी हमें जीवित प्राणियों के वंशाणुओं से खेलने के दूरगामी परिणामों की जानकारी नहीं है और न ही जीवन के अनबूझ अन्तिम रहस्यों से ही हम अभी परिचित हुए हैं. आदमी की अतृप्त लालसाओं और चिरन्तन प्यास के लिए हमें इस मुद्दे पर सावधान रहना होगा और गहराई से विचारना भी होगा ताकि हम संभावित परिणामों से समय रहते अगाह हो लें. हमें इन सवालों पर भी गंभीरता से विचार करना होगा कि क्या हमारा आखिरी रास्ता आदमी की अन्तहीन इच्छाओं की पूर्ति करना, अधिकाधिक उत्पादन और उपभोक्ता सामग्रियों की निर्बाध वृद्धि ही होगा, या फिर हमें अपनी सुरसा रूपी जनसंख्या और अनन्त लालसाओं को प्रतिबन्धित करना पड़ेगा. शायद ये सवाल आनुवंशिकी विदों और जैव उद्योगियों के लिए कुछ ज्यादा ही 'दार्शनिक' किस्म के हैं. लेकिन तब भी क्या हमारे आनुवंशिकी विद भौतिक शास्त्रियों की ही भांति विज्ञान की परिधि के उस अंतिम छोर पर कौतुक क्रीड़ा नहीं कर रहे जहां दर्शन और पराभौतिकी के समुचित क्षितिज का आभास होने लगता है?

हमें आशा करनी चाहिए कि हमारे प्राचीन एशियाई क्षेत्रों के वैज्ञानिक इन बातों को अपने दिमाग के वैचारिक कोनों में जीवन्त बनाए रखेंगे और अपने समर्पित प्रयासों एवं जैव-प्रौद्योगिकी के व्यवहारिक पहलू के माध्यम से जनता की ऊर्जा और उदर पोषण की मौजूदा फौरी जरूरतों का हल ढूंढ निकालेंगे. ☐

(पृष्ठ 267 का शेषांश)

हमें सदा स्मरण रखना चाहिए कि वृक्ष हैं, तो जीवन है. 'वृक्ष विहीन, जीव विहीन' को भी ध्यान में रखना होगा. अतः हमें सघन वृक्षारोपण के लिए तैयार हो जाना चाहिए तथा धरती पर शीघ्र ही नई हरित-क्रान्ति लाकर बिगड़ते परिवेश को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करना चाहिए.

बच्चे दो या तीन पैदा करें, पर वृक्ष पांच से पच्चीस की संख्या में लगाएं. धरती मां का बोझ हल्का कर हम वातावरण में नवजीवन का संचार कर दें, तभी 'मत्स्यपुराण' का यह श्लोक आज के युग में भी सार्थक हो सकेगाः

> ''दश कूप समावापी दशवापी समोह्रदः।
> दश ह्रदसमः पुत्रो दश पुत्र समोद्रुमः ॥''

अर्थात, दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र तथा दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठोस ईंधन

बायोमास से काठ कोयला बनाना : समस्याएं तथा सम्भावनाएं

□ के॰ प्रभाकर
□ आर॰ सी॰ महेश्वरी

ग्रामीण भारत के जन साधारण की आवश्यकताओं के संदर्भ में ऊर्जा संकट का अर्थ खाना पकाने के लिए जलावनी लकड़ी की कमी है. इस कमी को किसी हद तक कृषि अपशिष्ट, छीजन, छिलके, भूसी आदि जैसी बायोमास को काठ कोयले में बदल कर पूरा किया जा सकता है. क्या हैं इसकी समस्याएं और सम्भावनाएं ?

□ काठ कोयला बनाने की कला अत्यन्त प्राचीन है. हाल ही में घरेलू तथा औद्योगिक कार्यों में ईंधन के रूप में काठ कोयला के प्रति रुचि बढ़ी है, क्योंकि सभी प्रकार के ईंधनों तथा बिजली की कीमतों में वृद्धि हुई है. चूंकि प्रचलित ईंधनों के साधन तेजी से समाप्त हो रहे हैं और 50 वर्षों से अधिक इनके चलने की सम्भावना नहीं है, इसलिए ऊर्जा के विभिन्न नवीकरणीय स्रोतों के प्रति विशेष ध्यान दिया जा रहा है जिनमें बायोमास (जैवभार) मुख्य है.

सन् 1978 में प्रति व्यक्ति ईंधन लकड़ी का विश्व-उपभोग, जिसमें काठ कोयला सम्मिलित है, 0.37 घनमीटर आंका गया था. विकसित देशों में प्रति व्यक्ति ईंधन-लकड़ी का उपभोग केवल 0.13 घनमीटर था जबकि विकासशील देशों में यह 0.46 घनमीटर था. (सारणी—1). यद्यपि विकसित देशों में कुल मिला कर प्रतिव्यक्ति ऊर्जा का उपयोग अधिक है किन्तु लकड़ी ईंधन का उपयोग कम होता है. विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति ऊर्जा निवेश कम है किन्तु अधिकांश काठ कोयला तथा लकड़ी से प्राप्त होता है. विश्व की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या ईंधन पर निर्भर है जो उनके समस्त उपलब्ध साधनों का 20.6 प्रतिशत है.

भारत में ऊर्जा की स्थिति

भारत में ऊर्जा की स्थिति विभिन्न ऊर्जा स्रोतों का मिला-जुला दृश्य उपस्थित करती है. इसकी मूलभूत विशेषता प्रति व्यक्ति निम्न उपभोग है (प्रतिवर्ष 315 किलोग्राम कोयले के समतुल्य). इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि भारत एक ग्राम-प्रधान देश है जिसमें 5 लाख से अधिक गांव हैं. अतएव कुल ऊर्जा उपभोग का बहुत बड़ा भाग अव्यापारिक स्रोतों से प्राप्त होता है. ग्रामीण भारत में विभिन्न ऊर्जा स्रोतों का उपभोग इस प्रकार है: अव्यापारिक स्रोत यथा जलावनी लकड़ी (68.5 प्रतिशत), गोबर (8.3 प्रतिशत), कृषि अवशेष (3-4 प्रतिशत); व्यापारिक ऊर्जा स्रोत जैसे तेल (16.9 प्रतिशत), कोयला (2-3 प्रतिशत), तथा अन्य (3-4 प्रतिशत). इस प्रकार ग्रामीण ऊर्जा आवश्यकता की 80 प्रतिशत पूर्ति परंपरागत स्रोतों से होती है (सारणी—2). समान रूप से महत्वपूर्ण बात यह भी है कि 1953-54 में अव्यापारिक स्रोतों से जहां 68 प्रतिशत सम्पूर्ण ऊर्जा उपभोग की पूर्ति होती थी, वहीं अब घटकर 40 प्रतिशत रह गई है और ऐसा अनुमान है कि इस सदी के अन्त तक व्यापारिक ऊर्जा की मांग 90 प्रतिशत हो जाएगी.

भारत में जंगलों का कुल क्षेत्रफल 750 लाख हेक्टेयर है जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 22.8 प्रतिशत है. फायर वुड स्टडी कमेटी के अनुसार प्रतिवर्ष ईंधन लकड़ी की कुल आवश्यकता लगभग 1330 लाख टन आंकी गई है जबकि वार्षिक उपलब्धि केवल 490 लाख टन है. ईंधन लकड़ी की वार्षिक पूर्ति में यह विशाल अन्तर ग्रामीण क्षेत्रों की भयावह स्थिति बतलाता है और ऊर्जा समस्या के प्रति अधिक क्रांतिकारी कदम उठाने की आवश्यकता की ओर इंगित करता है. भारत में भोजन बनाने के ईंधन की आवश्यकता पूरी

सारणी—1. 1978 में विश्व में ऊर्जा का उपभोग

	व्यापारिक ऊर्जा (दस लाख गीग जूल में)	कुल ईंधन लकड़ी* (दस लाख घनमीटर)	ईंधन लकड़ी (कुल† का प्रतिशत)	जनसंख्या (दस लाख में)	प्रति व्यक्ति उपभोग (घनमीटर)
विश्व	256,594	1566	5.4	4258	0.37
विकसित विश्व	205,115	145	0.7	1147	0.13
विकासशील विश्व	51,479	1421	20.6	3111	0.46

*काठ कोयले में काम आने वाली लकड़ी सम्मिलित.
†कुछ क्षेत्रों में अव्यापारिक ऊर्जा के अन्य स्रोत सम्मिलित नहीं है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी–3. उपलब्धि पर कार्बनन ताप का प्रभाव

कार्बनन ताप अंश सेल्सियस	काठ कोयले का स्थिर कार्बन का प्रतिशत	रासायनिक विश्लेषण वाष्पशील पदार्थ का प्रतिशत	काठ कोयले की उपलब्धि प्रतिशत आर्द्रता
300	68	31	42
500	86	13	33
700	92	7	30

करने के लिए एकमात्र आशा 'बायोमास' है जसे बड़े पैमाने पर वनरोपण तथा फार्म वन वेद्या द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है. इसे पयोग करने के लिए पहले काठ कोयला में रिणित करना होगा.

ाठ कोयला क्या है ?

जब नियंत्रित दशाओं के अन्तर्गत लकड़ी ा 'कार्बनन' या तापांशन किया जाता है तो ो ठोस अवशेष बचा रह जाता है उसे काठ-कोयला' कहते हैं. कार्बनन या तापांशन क्रम के समय वायु के प्रवेश पर नियंत्रण रखा ाता है जिससे लकड़ी जलकर राख न होकर ासायनिक विधि से केवल अपघटित होकर ाठ कोयला बन जाए. तापांशन प्रक्रम एक ार चालू हो जाने पर स्वतः चालू रहता है ौर प्रभूत उष्मा निकलती है किंतु यह ापांशन तब तक चालू नहीं होता जब तक ाप को बढ़ा कर 300° सेल्सियस तक न कर देया जाए. काठ कोयला 500° सेल्सियस पर ाप्त होता है. इस प्रकार से बने काठकोयला में ुख्यतया कार्बन रहता है जिसके साथ कुछ ात्रा में अलकतरा जैसा अवशेष, लकड़ी की ाख, दहनशील गैसें, अलकतरा अनेक रसायन–जिनमें ऐसीटिक अम्ल तथा मीथेनाल मुख है तथा प्रचुर मात्रा में जल रहता है जो लकड़ी के सूखने तथा ताप अपघटन के समय ाष्प के रूप में बाहर निकल जाता है. सारणी–3 से काठ कोयला की लब्धि तथा संघटन पर कार्बन ताप का प्रभाव स्पष्ट हो जाएगा.

काठ कोयला के उपयोग

यद्यपि लकड़ी आसानी से जलकर उष्मा उत्पन्न करती है किन्तु काठकोयले का उष्मा मान समान भार की लकड़ी से लगभग दूना है. काठ कोयले के जलने पर बहुत कम धुआं निकलता है और इसका उपयोग छोटे या अधिक सक्षम चूल्हों में किया जा सकता है.

घरेलू कार्यों के लिए

काठ कोयले से भोजन पकाने तथा पानी गरम करने के लिए आवश्यक उष्मा प्राप्त होती है. ग्रिल बनाने तथा बारबेक्यू बनाने के लिए यह अधिक लोकप्रिय ईंधन है क्योंकि इससे भोजन में विशिष्ट गंध आ जाती है. जिससे भोजन अधिक स्वादिष्ट लगता है.

औद्योगिक उष्मन कार्यों में उपयोग

यह कोक तथा ईंधन तेल का स्थान ले रहा है क्योंकि ये दोनों ही अधिक खर्चीले हैं और इनका आयात करना होता है. काठ कोयले का उपयोगः (1) होप तम्बाकू तथा मछली जैसे उत्पादों को विशेष प्रकार के भट्टों या खलिहानों में सुखाने के लिए, (2) विभिन्न फसलों के अप्रत्यक्ष खाने के लिए जल को चूल्हों में गरम करके उसको चक्रित करने के लिए, (3) चूना तथा सीमेंट के उत्पादन में ईंधन के रूप में, (4) गैस उत्पादकों तथा शक्ति आपूर्तियों के लिए ईंधन के रूप में (न्यूनतम कार्बन की मात्रा 75 प्रतिशत तथा घनत्व 0.3 होना चाहिए), तथा (5) धातुओं को, विशेषतया लोहे को, उनके अयस्कों से निष्कर्सित करने के लिए किया जाता है. काठ कोयले के उपयोग से तैयार किया गया लोहा तथा इस्पात खनिज कोयले के उपयोग से तैयार माल से गुणता में अच्छा होता है. धातुकर्म में 80 प्रतिशत कार्बन से युक्त काठ कोयला काम में लाया जाता है.

अन्य उपयोग

काठ कोयले का उपयोग गढ़ने, आरेख बनाने तथा वाहित मल प्रणाली में होता है. उद्यान कृषि में काठ कोयले का चूर्ण तरकारी उद्योगों तथा गुलाब एवं बोगन् प्लिया जैसे पौधों के चारों ओर बुरकने के काम आता है जिससे इनके रंगों में काफी सुधार होता है. इसका अन्य महत्वपूर्ण उपयोग प्रदूषण नियन्त्रण में होता है किन्तु इसे चुने हुए रसायनों तथा भाप से उपचारित करना होता है तब इसे सक्रियित काठ कोयला कहते हैं. खाद्य के रूप में यह सुअरों तथा मुर्गियों को मोटा करने में प्रयुक्त होता है.

सारणी–2. ग्रामीण भारत में ऊर्जा की खपत

स्रोत	उपभोग प्रतिशत
अ-व्यापारिक स्रोत	
ईंधन लकड़ी	68.5
गोबर	8.3
कृषि-अपशिष्ट	3-4
व्यापारिक स्रोत	
तेल	16.9
कोयला	2-3
अन्य	3-4

काठ कोयला बनाने की विधियां

काठ कोयला बनाने की विधियों को तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकारों में श्रेणीबद्ध किया गया है—भूमि या गर्त भट्टा, स्थिर भट्टा तथा सुवाह्य भट्टा जिसमें ड्रम टाइप सम्मिलित है.

भूमि या गर्तभट्टा

यह अत्यन्त पुरानी विधि है और अनेक देशों में बड़े पैमाने पर प्रयुक्त की जाती है. गर्त की अपेक्षा मिट्टी का टीला अच्छा समझा जाता है क्योंकि मिट्टी का टीला बारम्बार काम में लाया जा सकता है जबकि गर्तों को कुछ ही बार काम में लाने के बाद लकड़ी के साधनों के अनुसार नवीन गर्त खोदने पड़ते हैं. यही नहीं, जहां जल स्तर सतह के निकट होता है या जल निकासी ठीक नहीं होती वहां गर्तों का उपयोग नहीं हो सकता.

फिर गर्तों के बारम्बार खोदे जाने से फसलों तथा चरागाहों को नुकसान पहुंचता है. अतः मिट्टी के टीले अधिक उपयोगी एवं व्यवहार्य हैं. मिट्टी के टीले विभिन्न क्षमताओं के हो सकते हैं. घनमीटर 30 घनमीटर क्षमता वाले टीले कम से कम 3 मीटर त्रिज्या वाले आधार की आवश्यकता होती है. इसी प्रकार से 90 घनमीटर तथा 100 घनमीटर क्षमता वाले टीलों के लिए 4 मीटर तथा 5 मीटर त्रिज्या वाले आधारों की आवश्यकता होगी. इन भट्टों में 20-40 सेंटीमीटर व्यास के लट्ठे प्रयुक्त होते हैं. 100 घनमीटर क्षमता के उत्पादन के लिए पूरा चक्र 24 दिनों तक का होता है. 100 घनमीटर क्षमता वाले टीले से 120 किलोग्राम प्रति घनमीटर की उपलब्धि होती है. 30-40 किलोग्राम प्रति घनमीटर की उपलब्धि सर्व सामान्य है. इन भट्टों का सबसे बड़ा दोष यह है कि इनमें उत्पादन में समय अधिक लगता है और वायु को नियंत्रित करने में कठिनाई होती है. जो लोग कभी-कभी धन कमाना चाहते हैं (जैसे किसान) व लघु क्षमता वाले टीले बना सकते हैं, किन्तु इनसे बचत नहीं होती क्योंकि इनमें बड़े-बड़े लट्ठे लगते हैं और उपलब्धि की कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती. इन मिट्टी के टीलों का उपयोग औद्योगिक कार्यों के लिए किया जा सकता है और ये पहाड़ी क्षेत्रों में उपयोगी है. ये टीले पुआल धान की भूसी जैसे कृषि-अपशिटों के लिए लाभप्रद नहीं है.

स्थिर भट्टे

स्थिर (स्थायी) भट्टे ईंटें, सीमेंट या मृत्तिका से बनाए जाते हैं. इसके तीन महत्वपूर्ण डिजाइन हैं:

1. **अर्जेन्टाइन भट्टा**: यह अर्धगोलाकार भट्टा है जिसका व्यास लगभग 6 मीटर होता है. ईंटों की माप 0.24 × 0.12 × 0.06 मीटर होती है. एक भट्टे में कुल 5500-6000 ईंटों की आवश्यकता पड़ती है जिसमें टूट-फूट भी सम्मिलित है. भट्टे में दो द्वार होते हैं जो आमने सामने होते हैं. लकड़ी को 1.00-1.30 मीटर लम्बे तथा 0.05 मीटर व्यास वाले टुकड़ों में काट लिया जाता है. भट्टे में लगभग 30 टन सूखी लकड़ी भरी जा सकती है (25 प्रतिशत आर्द्रता) भट्टे को संचालन के लिए दो व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है और कार्य-सूची के अनुसार भारण में 6 घंटे, जलने में 6-7 दिन, परिष्करण में 1-2 दिन, ठंडा होने में 3-4 दिन तथा बाहर निकालने में 3-4 दिन लगते हैं. 7 मीटर व्यास के भट्टे में 9-10 टन काठ कोयला बनाने में पूरे चक्र के लिए कुल मिलाकर 13-14 दिन पर्याप्त होते हैं.

लाभप्रद संचालन के लिए 10-14 भट्टों की श्रृंखला होनी चाहिए. इन भट्टों का दोष यही है कि ये अत्यन्त व्ययसाध्य होते हैं और इनके कृषि-अपशिष्टों तथा अन्य पत्तीदार जैव भार से काठ कोयला नहीं बनाया जा सकता. एक मास में केवल दो धान प्राप्त किए जा सकते हैं.

2. **ब्राजील के मधुमक्खी छत्ता भट्टे**: ये वृत्ताकार गुम्बद जैसी छत वाले होते हैं और सामान्य ईंटों से बनाए जाते हैं. वृत्ताकार दीवार पूरी तरह बाहरी हवा के सम्पर्क में रहती है. ब्राजीली बीहाइव भट्टे के आकार-प्रकार इस प्रकार हैं: व्यास 5 मीटर, भट्टे का कथित आयतन 48.94 घनमीटर, प्रभावी आयतन 45.31 घनमीटर, वायु के प्रवेशद्वार 18, धुआं के चट्टे-6, ईंधन के बहिर्द्वार 6, आपातकाल बहिर्द्वार 50 और कुल ईंटें चाहिए 8500. इस भट्टे को दो आदमी 8 दिनों में बना सकते हैं. इस भट्टे की जीवन अवधि-6 वर्ष तक है. इसका कार्बनन काल 9 दिन तथा प्रत्येक चक्र में 5 टन का उत्पादन होता है. लाभ के लिए 7 भट्टों की श्रृंखला होनी चाहिए. इसके अतिरिक्त भट्टों त[क] पहुंचने के लिए मार्ग, काठकोयला तथा लक[ड़ी] के संग्रहण के लिए स्थान, जल निकासी व[की] सुविधा आदि का होना आवश्यक है. ये भट्[टे] जंगली क्षेत्रों के लिए आदर्श हैं.

3. **मिसौरी भट्टे**: एक प्ररूपी मिसौरी भट्[टे] का आयतन 4 से 350 घनमीटर तक होता है[.] इसका अनुकूलतम मध्यम आयतन 18[0] घनमीटर है. यह आयताकार होता है जिसक[ी] लम्बाई 11 तथा चौड़ाई 7 मीटर होती है[.] इसकी दीवार लगभग 2.5 मीटर ऊंची होती है[.] महराबी छत की अधिकतम ऊंचाई फर्श के ऊपर 4 मीटर होती है. दीवालें लगभग 25[0] मिलीमीटर मोटी होती है. उष्ण जलवायु [में] मिसौरी भट्टे का चक्र-समय लगभग एक मा[ह] है जो इस प्रकार बंटा रहता है—भारण में [3] दिन, जलने में 7 दिन, ठंडा होने में 21 दि[न] तथा निकालने में 2 दिन. कुल समय 33 दि[न] है. भट्टे को 5-6 या इससे अधिक की श्रृंखल[ा] में समाहित किया जाता है. इसके मुख्य दोष [हैं] कि इसमें (स्थिर) उत्साह तथा कंक्रीट की बड़[ी] मात्रा प्रयुक्त होने के कारण लागत अधिक होती है और यह अचल (स्थिर) होता है. ईं[ट] के भट्टों से इसकी भिन्नता यह है कि इसे ध्वस्त करके फिर से बनाया नहीं जा सकता[.] अतएव भट्टों के समूह के ईर्द-गिर्द दस वर्ष तक लकड़ी की आपूर्ति होती रहनी चाहिए[.] भट्टे के लिए निपुण मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है और तनिक भी असावधानी से छत बैठ जाती है.

सुवाह्य भट्टे

1. **टी पी आई डिजाइन**: इसमें दो परस्पर जुड़े सिलिंडराकार काटें तथा एक शंकु के आकार का ढक्कन होता है. ढक्कन में बराब[र] दूरी पर भाप निकलने के लिए चार छिद्र हो[ते] हैं जिन्हें ठाठों से इच्छानुसार बंद किया ज[ा] सकता है. यह भट्टा आधार पर आठ प्रवेश बहिर्द्वार से युक्त चैनलों पर सधा रहता है[.] जारण के समय धुआं के चार चट्टे एकान्त[र] वायु चैनल पर लगा दिए जाते हैं. भट्टे के आकार-प्रकार सारणी—4 में दिए हुए हैं.

2. **ड्रम टाइप (ढोलाकार)**: इसमें 45 गैल[न] तेल के ड्रम में वायुवाहिनियां लगी होती [हैं]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्हें भट्टे की दीवाल में जाने दिया जाता है और उस समय बंद कर दिया जाता है जब भट्टे के भीतर बना हुआ काठ कोयला स्तर से ऊपर उठ जाता है.

यह विधि लघु पैमाने पर ग्रामीण उत्पादन के लिए या उन लोगों के लिए जो अपने उपयोग के लिए सीमित लकड़ी से काठ कोयला बनाने के इच्छुक हैं, सुविधाजनक है. भूसी डंठल जैसे कृषि अवशेषों को अप्रत्यक्ष रूप से जलाने की संस्तुति की जाती है.

सुवाह्य भट्टों में काठ कोयला बनाने के नियम

अधिकांश सुवाह्य भट्टों में काठ कोयला बनाने की प्रविधि एक सी है और एक ही सावधानियां बरतनी होती हैं जिससे उत्तम परिणाम मिल सकें अर्थात न्यूनतम समय में उतनी की लकड़ी से सर्वाधिक मात्रा में काठ कोयला प्राप्त हो. इस प्रकार के परिणाम प्राप्त करने के लिए निम्न नियमों का पालन करना चाहिए:

1. कार्बनन के लिए लकड़ी का चुनाव : कोई भी मजबूत लकड़ी काठ कोयला प्रदान करेगी किन्तु लकड़ी को इतना मजबूत होना चाहिए कि उसमें कीलें गड़ी रह सकें. लकड़ी जितनी ही शुष्क होगी उतनी ही अच्छी उपलब्धि होगी. एक ही भट्टे में कठोर तथा नम्र, बड़ी या छोटी लकड़ियों को नहीं मिलाना चाहिए. अतएव भट्टे में भरने से पूर्व लकड़ी का श्रेणीकरण आवश्यक है जिससे अधिकतम 7 घनमीटर क्षमता वाले भट्टे में 450-600 मिलीमीटर लम्बी तथा 200 मिलीमीटर व्यास वाली लकड़ियां भरी ज़ा सकें. भट्टे के पूरी तरह भरा होने पर कोयले की उपलब्धि सर्वाधिक होती है.

2. स्थान का चुनाव तथा तैयारी : स्थान का चुनाव आर्थिक तथा तकनीकी दोनों ही दृष्टि से किया जाना होता है. इसे छायादार होना चाहिए किन्तु निचली या पोली जमीन में कहीं होना चाहिए जहां वायुरुद्ध हो. मिट्टी सूखी, ढीली तथा ऐसी होनी चाहिए कि उसमें जल का प्रवेश आसानी से हो सके.

पथरीली जमीन अनुपयुक्त होती है क्योंकि इससे वायु निकल जाती है. इसी प्रकार चिकनी मिट्टी भी है क्योंकि भट्टे की दीवाल पर

सारणी—4. 1980-81 में जैव भार तथा कृषि-अवशेष की अनुमानित उपलब्धि

जैवभार/कृषि अवशेष	उपलब्धि हजार घनमीटर में
1. धान की भूसी	22,954
2. मूंगफली के छिलके	1,506
3. नारियल के छिलके	858
4. गन्ने की खोई	45,156.6
5. मक्का	6,804
6. ज्वार	10,504
7. बिनौला	1,330
8. बाजरा	5,418
9. रागी	739.5
फुटकर	
दालें	4,526.8
छोटे दाने	473.4

संघनित होने वाली नमी को यह नीचे जाने से रोकती है. गीली मिट्टी होने से यह ऊष्मा अवशोषित करके वाष्प बनाती है जिससे उपलब्धि घट जाती है. अच्छा यही होगा कि भूमि से लगभग 20 सेंटीमीटर ऊपर ईंट की नींव डाली जाए और यह भट्टे के आकार प्रकार से काफी बड़ी रहे. स्थान के निकट भुरभुरी मिट्टी या बालू उपलब्ध रहनी चाहिए जिससे जरूरत पड़ने पर भट्टे में वायु की आपूर्ति को सील किया जा सके.

3. समुच्चयन : लकड़ी का चट्टा बनाने के पहले या बाद में भट्टे के स्वरूप एवं कार्बनन प्रविधि के अनुसार भट्टे का समुच्चयन किया जा सकता है. इसमें सावधानी बरतनी होगी जिससे निचला भाग सीधा खड़ा रहे और अन्य भाग ठीक से मिल जाएं अन्यथा वायु रिसाव होने से गम्भीर कठिनाई उत्पन्न हो सकती है.

4. भारण : सिलिंडराकार भट्टों के लट्ठे के मोटे सिरे को सबसे ऊपर रखा जाता है. अच्छा हो कि लट्ठे के मोटे तथा पतले सिरे एकान्तर क्रम से व्यवस्थित किए जाएं. लट्ठे तब तक भरे जाते हैं जब तक लकड़ी ऊपरी रिम के ऊपर तक नहीं पहुंच जाती. पहले इस स्तर से ऊपर नहीं जाया जाता था किन्तु ऐसा करने से लाभ भी है. जब लकड़ी का कार्बनन होता है तो प्रथम अवस्था में यह काफी नीचे बैठती है और यदि भट्टा रिम के ऊपर तक नहीं भरा रहता तो भट्टे के ढक्कन तथा ढेर की चोटी के बीच स्थान छूट जाता है. कुछ भट्टों में, केंद्रीय चिमनी के चारों ओर भारण किया जाता है जो नींव से लेकर लकड़ी के ढेर की चोटी तक जाती है.

5. आग लगाना : आजकल के भट्टे नीचे से जलाए जाते हैं. इसके लिए या तो जलती चिंगारी केंद्रीय चिमनी में डाल दी जाती है और फिर ऊपर से सूखी लकड़ी डाली जाती है जिससे अग्नि ठीक से प्रज्वलित हो उठे या फिर नींव के मध्य में चिंगारी सरका दी जाती है जहां भारण के समय ही ज्वलनशील सूखी लकड़ी चुन दी जाती है. अन्य भट्टों में जलाने का कार्य केंद्रीय चिमनी द्वारा किया जाता है जो लकड़ी के टाल की चोटी के चट्टे के दो-तिहाई ऊपर रखी सूखी लकड़ी के ढेर से जोड़ती है.

सभी दशाओं में अग्नि तब लगाई जाए तब सारे छेद खुले हों जिससे आक्सीजन पाकर आग बढ़ सके और ऐसा वायु प्रवाह चालू हो जाए जो निरंतर चलता रहे. एक बार वायु प्रवाह उत्पन्न हो जाने पर भट्टे को एक दो घंटे के लिए छोड़ा जा सकता है. जब आग पूरी तरह जलने लगे तो सारे जोड़ों को मिट्टी का ढेर लगा कर वायुरुद्ध कर दिया जाए और केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु के प्रवेश द्वार तथा गैस के बहिर्द्वार खुले रखे जाएं. सारे जोड़ों, भट्टे के आधार, विभिन्न अनुमानों के असेम्बली ज़ोड़ी को वायुरुद्ध रखने की ओर ध्यान दिया जाए.

6. दक्ष कार्बनन : सर्वोत्तम गुणता वाले काठ कोयले की सर्वाधिक उपलब्धि लेने के लिए दो बातें आवश्यक हैं: (अ) इसे निम्न ताप पर जलाया जाए, तथा (आ) जो काठ कोयला तैयार हो जाए उसे आगे जलने से बचाया जाए.

7. कार्बनन की समाप्ति तथा भट्टे से माल निकालना : कार्बनन को बंद करने के लिए भट्टे के सारे छिद्रों को पूरी तरह बंद कर दिया जाता है. माल निकालने का कार्य धातु के खोल के ठंडा होने तक पूरा हो जाना चाहिए. यदि थोड़ी भी ऊष्मा रहती है तो जलना या दहन चालू रहता है. इससे जब पहली बार काठ कोयला निकाला जाता है तो एकाएक पूरे कोयले में आग लग जाती है. अतः यदि धातु की खोल का कोई भी भाग गरम हो तो भट्टे को नहीं खोलना चाहिए. यदि कहीं से हवा निकलती हो तो उसे ढूंढ कर बंद कर देना चाहिए. इसके बाद उपकरण को पूरी तरह ठंडा होने देना चाहिए. जब भट्टा खोला जाए और खाली किया जाए तो पास में कई बाल्टी पानी रहना चाहिए जिससे बची हुई आग को बुझाया जा सके.

8. पूर्ण कार्बनन में लगने वाला समय : 5-6 घनमीटर के भट्टों के लिए औसत मान इस प्रकार है :

1. भट्टों का समुच्चयन तथा लकड़ी का भारण 2-3 घंटे; (2) आग लगाने तथा कार्बनन में 16-24 घंटे; (3) भट्टे के ठंडा होने में 16-24 घंटे; तथा (4) भट्टे से माल निकालने में 2-5 घंटे. इस प्रकार कार्बनन के लिए लगभग 48 घंटे का समय मिल पाता है.

9. अवशमन (स्लैक) समय तथा भट्टा शृंखला : इस प्रकार स्पष्ट है कि समुच्चयन, भारण, जलाने व ठंडा करने के समूचे 48 घंटे के समय में एक भट्टे मे काम करने वाले मजदूर केवल 5-7 घंटे तक व्यस्त रहेंगे. अतएव अवशमन काल में मजदूरों से अधिकतम लाभ लेने के लिए 2-3 भट्टों के समूह होने चाहिएं.

10. काठ कोयला की उपलब्धि : चिनी गई लकड़ी के भार का 29-30 प्रतिशत काठ कोयला प्राप्त होता है जो लकड़ी के घनत्व पर निर्भर करता है.

सुवाह्य भट्टा टी पी आई डिजाइन के गुण तथा दोष

परम्परागत गर्त विधि की तुलना में सुवाह्य धातु के बने भट्टों के मुख्य गुण (लाभ) इस प्रकार हैं: (1) कच्चा माल तथा उत्पाद एक बन्द पात्र में रहते हैं; (2) अप्रशिक्षित व्यक्तियों को भी जल्दी और आसानी से प्रशिक्षित किया जा सकता है; (3) कम देख रेख की आवश्यकता; (4) 24 प्रतिशत तक दक्षता प्राप्त की जा सकती है; (5) इस विधि से बना सारा काठ कोयला बाहर निकाला जा सकता है; (6) इसी वर्षा ऋतु में भी चालू किया जा सकता है; (7) इसमें नाना प्रकार के कच्चे मालों का कार्बनन किया जा सकता है. कड़ी लकड़ी से लेकर जैव भार तक; (8) उत्पादन चक्र 2-3 दिन का होता है; तथा (9) इसे सरलता से विगाड़ कर दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है.

इसके मुख्य दोष हैं: (1) यांत्रिक कार्यशाला कुशलता का होना तथा उसी स्थान में उपकरण उपलब्ध होना; (2) कच्चे माल को विनिर्देशों के अनुसार काटना; और कम से कम 3 सप्ताह तक सुखाना; (2) जीवन काल लगभग तीन वर्ष है.

जैव भार का वर्गीकरण

जैव भार को निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. भूसी : जब धान की भूसी को जलाया जाता है तो अप्रत्यक्षतः 20-25 प्रतिशत काठ कोयला प्राप्त होता है (धूल के रूप में) यह घरेलू इस्तेमाल के लिए अच्छी होती है.

2. पत्तियां : सरकण्डे की पत्तियां, पुआल आदि के अप्रत्यक्ष जलने से 25-35 प्रतिशत काठ कोयला मिलता है. ये घरेलू इस्तेमाल के लिए उत्तम है.

3. डंठल : सरकण्डा, कपास, जूट आदि के डंठल इसके अन्तर्गत आते हैं.

4. लकड़ी : ओक, नीम, आम, बरगद आदि के तने अचल भट्टों तथा मिट्टी के टीलों के लिए उपयुक्त हैं. इनसे 30-40 प्रतिशत उपलब्धि होती है. ये व्यापारिक स्तर पर काठ कोयला तैयार करने के लिए उपयोगी हैं.

5. छिलके : नारियल के छिलके ड्रम टाइप तथा धातु के भट्टे के लिए उपयोगी पदार्थ हैं और घरेलू कार्यों के लिए इस्तेमाल में लाए जा सकते हैं. इन्हें सीधे जलाने से 30 प्रतिशत उपलब्धि होती है.

काठ कोयला बनाने में कठिनाइयां

काठ कोयला बनाने में सामने आने वाली कठिनाइयां इस प्रकार की हो सकती हैं:

(1) विभिन्न क्षेत्रों के अनुकूल भट्टे के डिजाइन में कठिनाई;

(2) फ्लूगैसों के पुनर्चक्रण द्वारा ताप नियंत्रण में कठिनाई;

(3) वर्ष भर कच्चे माल का न मिलना;

(4) कच्चे माल के आकार-प्रकार के कारण भट्टे का भारण में कठिनाई;

(5) कार्बनन तथा शीतलन की अवधि को उपयुक्ततम बनाए रखने में कठिनाई;

(6) वायु के चक्रण के नियंत्रण में कठिनाई;

(7) काठ कोयले का गुणता नियंत्रण;

(8) विभिन्न उपयोगों के लिए काठ कोयलों की छंटाई (श्रेणीकरण);

(9) लघुस्तर उत्पादन में इष्टिकाकरण (ब्रिकेटिंग या गुल्ले बनाना);

(10) सुवाह्य इस्पात भट्टे तथा स्थिर ईंट भट्टे में लगने वाली लागत;

(11) कच्चा माल तथा काठ कोयले का परिवहन;

(12) संग्रहण सुविधाएं; तथा

(13) प्रसार और प्रशिक्षण सुविधाएं न होना.

भट्टों के प्रभावशाली प्रबंध के लिए सड़कें, वाहन, संग्रहण, विपणन आदि की सुविधाएं चाहिए. ये भट्टे जंगली क्षेत्रों के लिए उत्तम हैं जहां लकड़ी की आपूर्ति लगातार होती रहती है. सम्प्रति ऐसे सुवाह्य भट्टों की आवश्यकता है जो अनुकूलतम उपलब्धि करा सकें तथा वहीं पर प्राप्य जैवभार तथा कृषि अवशेषों का उपयोग करके गैस उत्पन्न कर सके. ❑

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ू-वैज्ञानिक घड़ियां—8

रेडियो सक्रिय खनिजों से काल निर्धारण

□ डा० विजय कुमार उपाध्याय

□ अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान धिकांश भू-वैज्ञानिकों का यह मत था कि थ्वी की आयु काफी अधिक (कई अरब वर्ष) ोनी चाहिए, परन्तु उनके पास इसे प्रमाणित रने के लिए कोई सन्तोषजनक साक्ष्य नहीं ा. फलस्वरूप उन्हें दूसरे वैज्ञानिकों विशेषकर ौतिक शास्त्रियों से काफी विवाद का सामना रना पड़ता था, क्योंकि भौतिकशास्त्री गणित ारा यह प्रमाणित करने की स्थिति में थे कि ृथ्वी की आयु 2 करोड़ से 4 करोड़ वर्ष के ीच है.

भौतिकशास्त्रियों द्वारा की गई उपर्युक्त ाणना इस कल्पना पर आधारित थी कि पृथ्वी ारंभ में द्रवावस्था में थी जो ठंडी होकर ठोस न गई. पृथ्वी की आयु की गणना के लिए उन्होंने भूपटल की चट्टानों के तापमान को ापा तथा विकिरण द्वारा पृथ्वी के ठंडी होने की औसत दर मालूम की. इन आंकड़ों का उपयोग कर उन्होंने पृथ्वी की आयु निकाली. अपने कथन को अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए उन्होंने यह भी बताया कि ऊर्जा का ऐसा कोई स्रोत नहीं है जो 2 करोड़ वर्ष से अधिक समय तक सूर्य को गर्म रख सके, तथा यह कदापि सम्भव नहीं है कि पृथ्वी सूर्य से अधिक ुरानी हो.

इस प्रकार भौतिक शास्त्रियों के मतों के खंडन के लिए भू-वैज्ञानिकों के पास कोई ाक्तिशाली तर्क या आधार नहीं था. परन्तु सहसा हुए एक आविष्कार ने भू-वैज्ञानिकों के लिए एक रास्ता खोल दिया जिससे वे पृथ्वी की आयु संबंधी गुत्थी को संतोषजनक रूप में ुलझा सके एवं भौतिक शास्त्रियों के कुतर्कों का खंडन कर सके. सन् 1896 ई० में एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक हेनरी बेक्वेरल ने संयोगवश एक अप्रयुक्त फोटोग्राफिक प्लेट को डार्क रूम में यूरेनियम खनिज के एक टुकड़े के पास रख दिया. कुछ समय के बाद जब उसने उपर्युक्त फोटोग्राफिक प्लेट का उपयोग करना चाहा तो पाया कि वह अंशतः प्रयुक्त (एक्सपोज) हो चुकी थी. बेक्वेरल को आश्चर्य हुआ कि यह सब आखिर क्यों हुआ. क्योंकि डार्क रूम में फोटोग्राफिक प्लेट को काफी सुरक्षित ढंग से रखा गया था. बेक्वेरल ने कुछ और प्रयोग किए तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यूरेनियम के खनिज तथा कुछ दूसरे पदार्थ ऊर्जा की अदृश्य किरणें उत्पन्न करते हैं. इसी काल के आस-पास पोलैंड निवासी एक छात्रा जिसका नाम मेरी स्कलोडोस्का था, पेरिस में भौतिक शास्त्र पढ़ रही थी, तथा वहीं उसने पियरे क्यूरी नामक व्यक्ति से शादी कर ली थी. पति-पत्नी दोनों बेक्वेरल द्वारा पता लगाए गए तथ्य पर आगे शोध करने लगे. उन्होंने प्राकृतिक रूप से अदृश्य ऊर्जा-किरणों की उत्सर्जन संबंधी इस क्रिया का नाम रेडियो सक्रियता अथवा रेडियो धर्मिता रखा.

तत्वों की परमाणु-संरचना के अध्ययन के आधार पर हम यह जानते हैं कि किसी विशेष तत्व के नाभिक में उपस्थित न्यूट्रनों की संख्या ही उस तत्व के समस्थानिक को निर्धारित करती है. उदाहरण के लिए किसी तत्व को आक्सीजन कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके नाभिक में 8 प्रोटोन उपस्थित हों. यदि एक भी प्रोटोन कम या अधिक होता है तो हम इस तत्व को आक्सीजन नहीं कह सकते. जो आक्सीजन हम सांस से ग्रहण करते हैं उसके 99 प्रतिशत से अधिक भाग के प्रत्येक परमाणु के नाभिक में 8 प्रोटोन के अतिरिक्त 8 न्यूट्रान भी उपस्थित रहते हैं. चूंकि किसी भी तत्व का परमाणु-भार उसके नाभिक में उपस्थित प्रोटोन तथा न्यूट्रोन की संख्याओं का योग होता है, अतः आक्सीजन के भी अधिकांश परमाणुओं का परमाणु-भार 16 है. परन्तु जिस आक्सीजन को हम सांस से ग्रहण करते हैं उसके 0.2 प्रतिशत अंश के प्रत्येक परमाणु के नाभिक में 8 न्यूट्रोन के बदले 10 न्यूट्रोन उपस्थित रहते हैं. ऐसे आक्सीजन परमाणुओं को 0^{18} कहा जाता है. इस प्रकार आक्सीजन के दो समस्थानिक हुए —0^{16} तथा 0^{18}. यद्यपि दोनों समस्थानिकों के परमाणु भार अलग-अलग हैं. परन्तु उनके रासायनिक गुण एक समान हैं. दोनों में से कोई भी समस्थानिक रेडियोधर्मी नहीं है. ऐसे समस्थानिक स्थिर कहे जाते हैं. परन्तु प्रकृति में सभी तत्व के

सारणी—1 कुछ प्रमुख तत्वों के अर्द्ध जीवन काल

मूल तत्व	अन्त्य उत्पाद तत्व	अर्द्ध जीवन काल
पोटाशियम K^{40}	कैल्शियम Ca^{40}	1.47×10^{9}वर्ष
	आर्गन A^{40}	1.19×10^{10}वर्ष
रूबिडियम Rb^{87}	स्ट्रॉशियम Sr^{87}	4.70×10^{10}वर्ष
थोरियम Th^{232}	लेड Pb^{208}	1.39×10^{10}वर्ष
युरेनियम U^{235}	लेड Pb^{207}	7.13×10^{8}वर्ष
युरेनियम U^{238}	लेड Pb^{206}	4.51×10^{9}वर्ष
कार्बन C^{14}	नाइट्रोजन N^{14}	5.57×10^{3}वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्थानिक स्थिर नहीं होते. कुछ ऐसे तत्व हैं जिनके कुछ समस्थानिक स्थिर हैं तो कुछ अस्थिर, जबकि कुछ तत्व ऐसे हैं जिनके सभी समस्थानिक अस्थिर हैं. अस्थिर समस्थानिक रेडियो सक्रिय होते हैं, अर्थात उनका श्रय एवं परिवर्तन होता रहता है.

अब यह समझने के लिए कि परिवर्तन कैसे होता है रेडियोधर्मी समस्थानिकों से होने वाले उत्सर्जन (एमिशन) को जानना आवश्यक है. रेडियोसक्रिय पदार्थों से होने वाले उत्सर्जन को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है: (1) ऐल्फा कण जो दो प्रोटोन तथा दो न्यूट्रोन से निर्मित रहते हैं; (2) बीटा कण जो एक इलेक्ट्रान का बना रहता है; तथा (3) गामा किरणें जो एक्स किरणों के समान हैं परन्तु छोटी तरंग दैर्घ्य की होती है तथा इनकी बेधन शक्ति बहुत अधिक रहती है.

यह स्पष्ट है कि यदि कोई परमाणु ऐल्फा कण उत्सर्जित करता है तो वह पूर्व तत्व का परमाणु नहीं रह पाता क्योंकि वह एक ऐल्फा कण के रूप में दो प्रोटोन तथा दो न्यूट्रोन खो देता है. उदाहरणार्थ प्राकृतिक रूप से उपलब्ध प्लैटिनम का कुछ अंश अस्थिर समस्थानिक होता है जिसे प्लैटिनम-190 (Pt.-190) कहा जाता है. प्लैटिनम के सभी समस्थानिकों में 78 प्रोटोन रहते हैं अर्थात इसमें न्यूट्रोन की संख्या 112 है. यह समस्थानिक जब एक ऐल्फा कण उत्सर्जित करता है तो इसमें से दो प्रोटोन तथा दो न्यूट्रोन निकल जाते हैं. इस प्रकार शेष 76 प्रोटोन तथा 110 न्यूट्रोन बच जाते हैं. 76 प्रोटोन आस्मियम नामक तत्व के परमाणु के नाभिक में रहते हैं. इस प्रकार हम देखते हैं कि Pt^{190} परिवर्तित होकर Os^{186} बन जाता है. (चित्र–1).

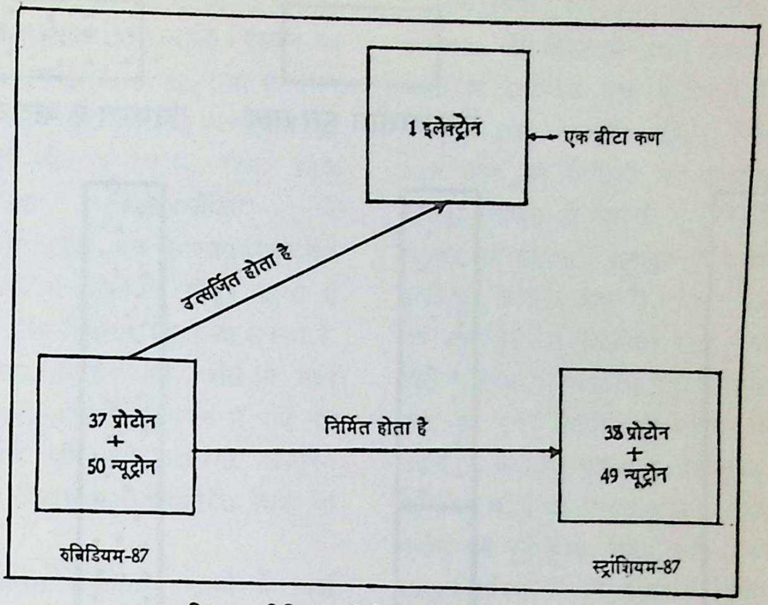

चित्र–2. रुबिडियम-87 के विखंडन से स्ट्रांशियम-87 का निर्माण

जब कोई रेडियोसक्रिय समस्थानिक, एव बीटा कण उत्सर्जित करता है तो यह नाभिकीय क्रिया होती है तथा कण नाभिक से निकलता है. हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि बीट कण एक इलेक्ट्रान है. जिसे थोड़ी जानकारी भ विज्ञान की है उसे मालूम है कि किसी भ परमाणु के नाभिक में इलेक्ट्रान उपस्थित नहीं रहता. बीटा कण नाभिक के चारों ओर स्थित इलेक्ट्रान के परिक्रमा पथ से भी नहीं निकलत है. तब एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है वि इलेक्ट्रान के साथ बीटा कण आया कहां से? यदि इलेक्ट्रान के परिक्रमा पथ से छिटककर बीटा कण आता है तो यह एक सरल रासायनिक क्रिया होती है तथा एक आयन क निर्माण होता है. परन्तु बात ऐसी नहीं है. य बीटा कण न्यूट्रोन के विखण्डन के कारण उत्पन्न होता है. इस प्रकार न्यूट्रोन के विखण्डन द्वारा बीटा कण के रूप में एक ऋणात्मक इलेक्ट्रोन के उत्पन्न होने से उस नाभिक प एक धन आवेश शेष बच जाता है, अर्थात ए न्यूट्रोन एक प्रोटोन में परिवर्तित हो जाता है इस प्रकार उस परमाणु के नाभिक में प्रोटो की संख्या में परिवर्तन आ जाता है जिसके कारण एक नए तत्व का निर्माण होता है उदाहरणार्थ रूबिडियम नामक तत्व में 3 प्रोटोन रहते हैं तथा इसका एक समस्थानि

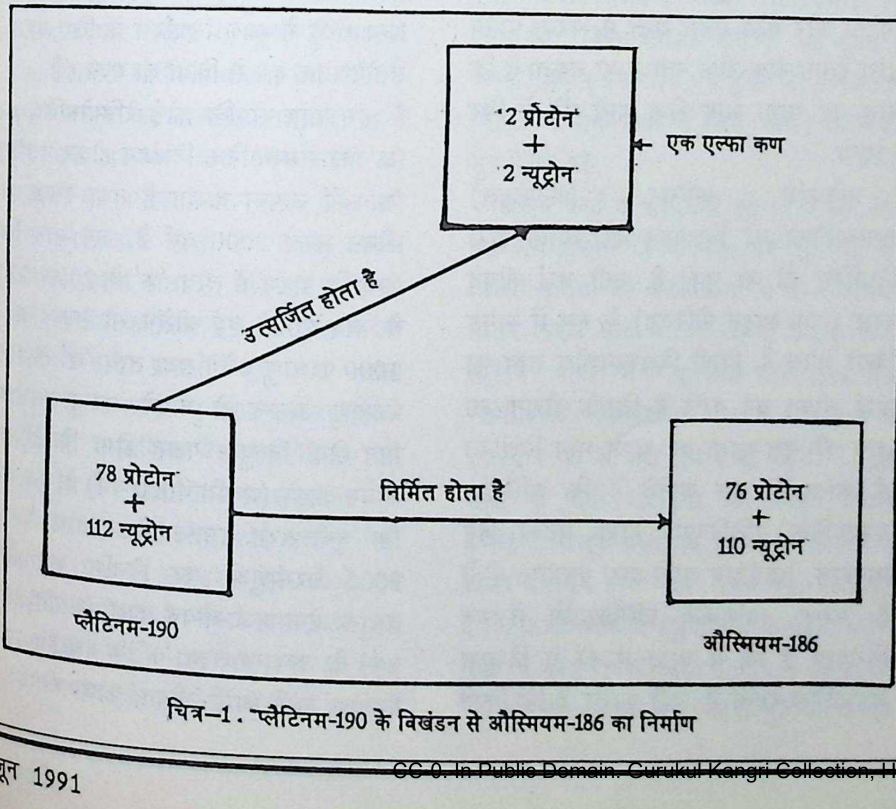

चित्र–1. प्लैटिनम-190 के विखंडन से औस्मियम-186 का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

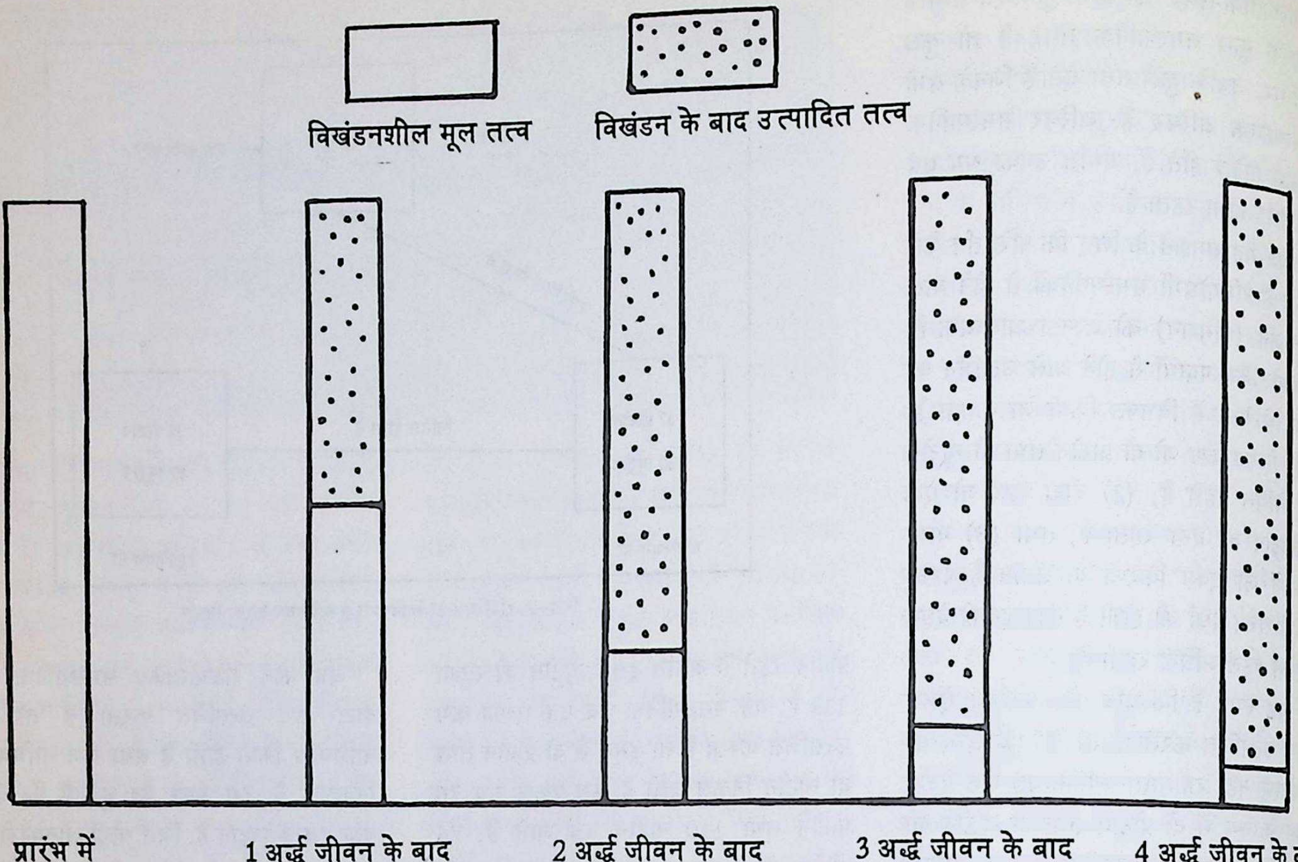

चित्र–3. विभिन्न अर्द्ध जीवन कालों के बाद मूल विखंडनशील तत्व एवं उससे उत्पादित नए तत्व की मात्रा

Rb^{87} प्राकृतिक रूप से उपलब्ध रूबिडियम में 25 प्रतिशत रहता है. यह समस्थानिक अस्थिर है तथा इसका एक परमाणु एक बीटा कण मुक्त करता है. इसका एक न्यूट्रोन एक प्रोटोन में परिवर्तित हो जाता है. इस प्रकार नए तत्व के नाभिक में 38 प्रोटोन हो जाते हैं तथा न्यूट्रोन 50 से घटकर 49 हो जाते हैं. इस नए तत्व का नाम है Sr^{87} (चित्र–2).

अब प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त प्रकार के रेडियो सक्रिय विखण्डन को समय माप के लिए भू-वैज्ञानिक घड़ी के रूप में किस तरह उपयोग में लाया जाए? प्रयोगों द्वारा यह पता लग चुका है कि किसी रेडियोसक्रिय पदार्थ की कोई विशेष मात्रा कितने समय में विखंडित हो जाएगी. विखण्डन की यह दर मापी जा सकती है, तथा अधिकांश समस्थानिकों के लिए मोटे तौर पर मालूम की जा चुकी है. इस विखण्डन की तुलना बालू घड़ी से अच्छी तरह की जा सकती है. यदि किसी बालू घड़ी को पूरी तरह भरकर उलट दिया जाए तो यह बताना कठिन है कि इसमें से बालू का कौन कण सबसे पहले गिरेगा और कौन सबसे अन्त में. परन्तु प्रयोग द्वारा इतना ठीक-ठीक बताया जा सकता है कि बालू का आधा भाग ठीक आधे घंटे में गिर जाएगा.

अधिकांश अस्थिर (अनस्टेबुल) समस्थानिकों की विखण्डन दर प्रयोगों द्वारा निर्धारित की जा चुकी है. उसी अर्द्ध जीवन काल (हाफ लाइन पीरियड) के रूप में व्यक्त किया जाता है. किसी विखण्डनशील तत्व का अर्द्ध जीवन वह काल है जिसके दौरान उस तत्व की मूल मात्रा का आधा भाग विखंडित हो जाता है. हम जानते हैं कि अधिकांश रासायनिक प्रतिक्रियाएं बाह्य घटकों जैसे तापमान, तथा दाब आदि द्वारा प्रभावित होती हैं. परन्तु, नाभिकीय प्रतिक्रियाओं में यह विशेषता है कि वे बाह्य घटकों से बिल्कुल अप्रभावित रहती हैं. यही कारण है कि किसी भी रेडियोसक्रिय समस्थानिक की विखंडन दर तथा अर्द्ध जीवन का उपयोग भू-विज्ञान तथा अन्य क्षेत्रों में काल निर्धारण के लिए बहुत ही संतोषजनक रूप में किया जा सकता है.

हम मान लें कि कोई रेडियोसक्रिय तत्व 'क' का समस्थानिक विखंडन होकर नए तत्व 'ख' को उत्पन्न करता है तथा इसका अर्द्ध जीवन काल 2000 वर्ष है. अब मान लिया जाए कि प्रारंभ में तत्व 'क' के 2000 परमाणु थे. जब 2000 वर्ष बीतेंगे तो तत्व 'क' के 1000 परमाणु बचेंगे तथा तत्व 'ख' के 1000 परमाणु उत्पन्न हो जाएंगे. परन्तु इससे यह मान लेना बिल्कुल गलत होगा कि दो अर्द्ध जीवन कालों (अर्थात 4000 वर्ष) के बाद तत्व 'क' पूरी तरह समाप्त होकर तत्व 'ख' के 2000 परमाणुओं का निर्माण कर लेगा. वस्तुतः एक अर्द्ध जीवन काल (अर्थात 2000 वर्ष) के उपरान्त तत्व 'क' के बचे हुए 1000 परमाणु उसी अर्द्ध जीवन काल की दर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विखंडित होते रहेंगे तथा दूसरे अर्द्ध जीवन काल (अर्थात प्रारंभ से 4000 वर्ष) के बाद तत्व 'क' के 1000 परमाणु विखंडित होकर सिर्फ 500 परमाणु बच जाएंगे तथा तत्व 'ख' के कुल 1500 (1000 + 500) परमाणु हो जाएंगे. उपर्युक्त कथन को चित्र—3 से अच्छी तरह समझा जा सकता है.

रेडियोधर्मी पदार्थों द्वारा काल-निर्धारण के लिए यह आवश्यक है कि मूल तत्व एवं विखंडन द्वारा उत्पादित तत्व एक बंद स्थान में सुरक्षित रहे हों. बंद स्थान का तात्पर्य यह है कि न तो मूल पदार्थ और न ही विखंडन द्वारा उत्पादित पदार्थ को न तो अपने स्थान से हटाया जाए और न ही उसमें बाहर से मिलाया जाए. इस प्रकार का बंद स्थान कोई मणिभ (क्रिस्टल) हो सकता है. इस प्रकार का मणिभ रवाकरण को बाद न तो आवश्यकता से अधिक तपाया गया हो और न रासायनिक विलयनों द्वारा प्रभावित हुआ हो, जिससे रेडियोधर्मी समस्थानिक न तो उससे बाहर निकला हो और न उसमें बाहर से घुसा हो. यूरेनियम-लेड विधि द्वारा काल के निर्धारण के लिए प्रायः जिरकन नामक खनिज के रवों का उपयोग किया जाता है. हालांकि जिरकन का रासायनिक सूत्र है $Zr\,Si\,O_4$ तथा साधारण तौर पर उसमें यूरेनियम की उपस्थिति की आशा नहीं की जा सकती. परन्तु इसके मणिभ-जालक (क्रिस्टल-लैटिस) में जिरकोनियम (Zr) को स्थानान्तरित कर पर्याप्त मात्रा में यूरेनियम मौजूद रहता है जिससे कि काल निर्धारण किया जा सकता है. जिरकन प्रायः ग्रेनाइट नामक शैल में अल्प मात्रा में पाया जाता है. जिरकन में पाए गए यूरेनियम-लेड की मात्रा जानकर उपर्युक्त ग्रेनाइट का निर्माण काल निर्धारित किया जा सकता है.

अलग-अलग रेडियोधर्मी तत्वों के अर्द्ध जीवन काल अलग-अलग होते हैं. कुछ तत्वों का अर्द्ध जीवन काल यदि कुछ सेकंड है तो कुछ दूसरे तत्वों का अरबों वर्ष. उदाहरणार्थ रेडोन का अर्द्ध जीवन काल 3.9—70 सेकंड है जबकि थोरियम का 1.39×10^{10} वर्ष. विभिन्न रेडियोसक्रिय तत्वों के अर्द्ध जीवन काल सारणी—1 में दिखाए गए है.

रेडियोधर्मी पदार्थों द्वारा वास्तविक समय के निर्धारण की दिशा में प्रथम प्रयास ब्रिटिश वैज्ञानिक रदरफोर्ड तथा अमेरिकी वैज्ञानिक बोल्टवूड द्वारा सन् 1916 ई० में किया गया. आज कल इन विधियों का उपयोग बहुत अधिक प्रचलित हो गया है. इन्हीं विधियों को आधार पर यह पता लगाया जा चुका है कि पृथ्वी की उत्पत्ति आज से लगभग 4.6 अरब वर्ष पूर्व हुई. भू-वैज्ञानिक काल पैमाने की विभिन्न इकाइयों के प्रारंभ तथा अन्त काल का पता भी इन्हीं विधियों से लगाया गया है. उदाहरण के लिए यह पता लग चुका है कि कैम्ब्रियन काल का आरंभ आज से लगभग 57 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ. रेडियोधर्मी पदार्थों द्वारा काल-निर्धारण में निम्नलिखित विधियों का उपयोग प्रायः अधिक होता हैः (1) आयोनियम-थोरियम विधि; (2) रूबिडियम स्ट्रॉशियम विधि; (3) यूरेनियम-थोरियम-लेड विधि; (4) पोटाशियम आर्गन विधि; तथा (5) कार्बन-14 विधि. ☐ (क्रमशः)

(पृष्ठ 262 का शेषांश)

यह तय करेंगी कि जैव-प्रौद्योगिकी का यह जादू सिर चढ़कर बोलेगा या भूखी दुनिया को दो वक्त की रोटी भी दिला पाएगा या नहीं.

हमारे समाज का आज का सच तो यह है कि वैज्ञानिक अध्ययनों द्वारा जिन लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है उनकी निष्पति उनके द्वारा होती है जिनका अपना कोई निहित स्वार्थ होता है. यदि इन प्रेरणाओं की अंतरराष्ट्रीय कंपनिया इसे नियंत्रित करेंगी तो उनके सारे प्रयासों का एक लक्ष्य होगा—ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना. इससे तो कोई भी सामाजिक बेहतरी होने से रही और तब इस जैव-प्रौद्योगिकी का हमारे ग्रामीण इलाकों के विकास के लिए कोई मतलब नहीं रह जाएगा. एक दो उदाहरण ऐसे भी हैं जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने नेक काम किए हों. अमेरिका की 'मर्क' नाम की दवा की एक कंपनी ने अफ्रीका के 28 देशों में फैली छूत की एक भयंकर बीमारी 'रिवर ब्लाइंडनेस' के लिए दवा 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' को मुफ्त दे दी हो. अब इसका अर्थ यह हुआ कि गरीब देश मिट्टी व पानी तक के लिए अमीर देशों का मुंह देखते रहें.

गरीब देशों के संसाधनों को भी अमीर देश इस जैव-प्रौद्योगिकी के नाम पर लूट रहे हैं. तीसरी दुनिया की वनस्पतियों से वे औषधियां तैयार करके स्वयं करोड़ों-अरबों डालर कमा लेते हैं. भारत में पाए जाने वाले एक पौधे 'रावौल्फिया सर्पेग्न्टाइना' नाम के पौधे से उच्च रक्तचाप की औषधि तैयार की जाती है. इस पौधों से बनी दवाइयों की बिक्री केवल अमेरिका में ही अस्सी के दशक में 26 करोड़ डालर प्रतिवर्ष होती रहीं. सबसे बड़ी बात यह है कि ये शोषणकारी बहुराष्ट्रीय कंपनिया बदले में न तो कोई रायल्टी देती हैं और न उससे बने 'पेटेन्ट' की जानकारी. तीसरी दुनिया के ही माल को अपनी मुहर लगाकर पश्चिमी उत्पाद के रूप में गरीब देशों के उपभोक्ताओं को बेच देती हैं.

आज तीसरी दुनिया के देशों के औद्योगिक प्रगति और अर्थव्यवस्था बहुराष्ट्रीय कंपनियों और विकसित देशों की मोहताज है और अगर जैव-प्रौद्योगिकी के पेड़ पर लगने वाले फल भी वही प्राप्त करेंगे तो तीसरी दुनिया के देश तब भी उन्हीं के मोहताज रहेंगे. इसलिए तीसरी दुनिया के देशों को समय रहते अपनी प्राकृतिक संपदा को अमीर देशों के हाथ में जाने से रोकना होगा और इस प्रकार के अनुसंधान स्वयं करने होंगे ताकि उनके आनुवंशिक संसाधन उन्ही के काम आ सकें, नहीं तो तीसरी दुनिया के जीवाणुओं, शैवालों व फफूंदी से लेकर समुद्री प्राणी के साथ-साथ वनस्पतियों तक पर ये कंपनियां अपना कब्जा जमा लेंगी. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणित की पहेलियां

❑ राजेन्द्र कुमार राय

चर्चित पुस्तकः गणित की पहेलियां; लेखकः गुणाकर मुले; प्रकाशकः राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1 बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; संस्करणः 1990; पृष्ठः 72; मूल्यः 8 रुपए.

❑ प्रस्तुत पुस्तक में गणित को मनोरंजक बना कर पहेलियों के रूप में पाठकों के सामने लाया गया है. यह इसकी विशेषता है कि पुस्तक बहुत थोड़ा गणित जानने वाले पाठकों के लिए भी काफी रुचिकर है. पुस्तक सात अध्यायों में बंटी है, जेनों की पहेलियां, अंकगणित की पहेलियां, ज्यामितीय पहेलियां, प्रायिकता सिद्धान्त की पहेलियां, विविध पहेलियां, अनन्त संबंधी और तार्किक गणित की पहेलियां. पुस्तक इस बात को बखूबी प्रमाणित करती है कि आमतौर पर एक कठिन व उबाऊ समझे जाने वाले विषय गणित को भी मनोरंजक रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है.

जेनों ने सर्वप्रथम गणित में दर्शन का समावेश किया था. जेनों की पहेलियां केवल साधारण व्यक्तियों के लिए ही नहीं, बल्कि गणितज्ञों और दार्शनिकों के लिए भी पिछले ढाई हजार साल से सिरदर्द बनी हुई हैं. इनकी थोड़ी बहुत व्याख्या की शुरुआत भी पिछली शताब्दी में ही शुरु हो पाई. परन्तु आज भी हम यह दावा करने की स्थिति में नहीं हैं कि इन्हें हमने पूर्ण रूप से हल कर लिया है.

जेनों की गति संबंधी चार पहेलियों में से एक पहेली कुछ इस प्रकार है: ''किसी भी क्षण एक गतिमान तीर या तो स्थिर है या फिर स्थिर नहीं है अर्थात गतिमान है. यदि इस क्षण का विभाजन संभव नहीं है तो तीर स्थिर है और यदि तीर गतिमान है तो क्षण का विभाजन संभव हो जाता है. काल क्षणों के समूह का नाम है. यदि एक क्षण में तीर स्थिर है तो फिर यह संपूर्ण काल में भी स्थिर है अतः यह हमेशा ही स्थिर रहेगा.''

हालांकि यह पहेलियां तार्किक गंभीरता का परिचय कराती हैं लेकिन अगर पाठक हतोत्साहित न हों तो यह काफी मनोरंजक लगेगी. अब शतरंज के जादू को ही देखें. प्राचीन काल में पर्शिया में शिरम नाम का एक बादशाह था. उसने शतरंज के आविष्कर्ता सेसा को उसकी इस खोज के लिए इनाम देने को बुलाया और कहा, ''तुम्हारी इस अद्भुत खोज के लिए मैं तुम्हें इनाम देना चाहता हूं. मांगो जो चाहे मांगो.'' सेसा ने अपना इनाम कुछ इस प्रकार मांगा 'हुजूर, इस पल्ले में 64 घर हैं (शतरंज की पटल पर 64 छोटे-छोटे चौकोण होते हैं), पहले घर के लिए आप मुझे गेहूं का केवल एक दाना दें, दूसरे घर के लिए 2 दानें, तीसरे घर के लिए 4, चौथे घर के लिए 8 दानें और इस प्रकार 64 घरों के साथ इनाम पूरा हो जाएगा.'' इससे बादशाह चिढ़ गया, और कहा, 'बस इतना ही'. खैर कल सुबह तक इनाम तुम्हें मिल जाएगा. फिर दरबार के एक पंडित को गणना करने का हुक्म दिया. पंडित ने हिसाब लगाया :

$1+2+4+8+16+32+64+128+256$

—64 घरों तक अर्थात

$1+2+2^2+2^3+2^4+2^5+2^6\text{------}2^{63}=2^{64}-1$

अर्थात 18,446,744,703,709,551,615 गेहूं के दाने. गेहूं के इतने दाने उस बादशाह के राज्य में तो क्या संपूर्ण पृथ्वी पर भी नहीं थे. बादशाह ने अपनी हार स्वीकार कर ली.

अंकगणित की पहेलियां अध्याय में (इसे बीजगणित की पहेली कहना ज्यादा उपयुक्त होगा) आयु संबंधी कुछ पहेलियां दी गई हैं. ऐसी ही एक पहेली है—एक आदमी से उसकी उम्र पूछी गई तो उसने उत्तर दिया, 'आज से तीन साल बाद की मेरी उम्र संख्या लीजिए. इसे 3 से गुणा कीजिए और तब आज से 3 वर्ष पूर्व की मेरी उम्र संख्या को इसे गुणा करके इसमें से घटा दीजिए. आप को मेरी उम्र का पता स्वयं चल जाएगा.

अब मान लीजिए कि उस व्यक्ति की उम्र य वर्ष है. तब उसके अनुसार

$= 3(य+3)-3(य-3)=य$

$3य+9-3य+9=य$

18=य या य=18, उस व्यक्ति की उम्र 18 वर्ष है.

फर्मा का प्रमेय—इस पहेली को सुलझाने वाले के लिए 1,00,000 मार्क का इनाम आज भी प्रतीक्षा कर रहा है. यह पहेली गणित शास्त्र में काफी वाद-विवाद के बाद भी अभी भी अनुत्तरित पड़ी है. प्राचीन ग्रीक गणितीय ग्रन्थों में एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, 'डायोफेन्टस का गणित संग्रह'. फर्मा (सन् 1601-1661) की मृत्यु के बाद उनके ग्रन्थ संग्रह में एक डायोफेन्टस की पुस्तक मिली, और एक पृष्ठ के हाशिए में लिखा मिला (लैटिन भाषा में). मैंने सिद्ध किया है कि $क्ष^{म}+य^{य}=झ^{म}$ संबंध प्राकृतिक संख्याओं के लिए (1, 2, 3, 4.,---) असंभव है. (क्ष, य, झ शून्य से भिन्न हैं और म, 2 से अधिक है) परंतु इस हाशिए में इतनी जगह नहीं है कि मैं यहां इसका प्रूफ दे सकूं. इसके बाद तीन सौ तीस साल गुजर गए, लेकिन अभी तक उस का हल नहीं खोजा जा सका है, जिसे स्थान की कमी के कारण फर्मा हाशिए पर नहीं लिख सके थे. सबसे बड़ी बात यह है कि गणित शास्त्र की यह एक बड़ी विशेषता है कि यदि कोई किसी संबंध को संभव मानता है तो इसके लिए प्रमाण उपस्थित करना पड़ता है और यदि असंभव मानता है तो इसके लिए भी प्रमाण देना पड़ता है.

अनंत श्रेणियां शताब्दियों तक गणितज्ञों के लिए पहेलियां बनी रही. पहली शताब्दी में ही हम इसकी व्याख्या कर पाए. सन् 1851 में गणितज्ञ बनार्ड बोल्ज़ानों ने 'अनंत की पहेलियां' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की. उदाहरण के तौर पर इस श्रेणी को देखें:

स=अ-अ+अ-अ+अ-अ+ -----------

यदि इस श्रेणी के सदस्यों को संघ बनाते हैं तो

स= (अ-अ)+(अ-अ)+(अ-अ)+ -----

=0+0+0+ -------

=0.

यदि एक अन्य तरीके से इस श्रेणी के सदस्यों को संघटित करते हैं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स=अ-(अ-अ)-(अ-अ)-(अ-अ) ....

=अ-0-0-0- ....

=अ

और एक अन्य तरीके से संघटित करने पर

स=अ(अ-अ+अ-अ+अ-अ+ ....)

=अ-स

अतः 2 स=अ

स=अ/2

अब प्रश्न यह है कि इस श्रेणी का सही मान क्या है? 0 या अ या अ/2? लेकिन इस श्रेणी का कोई एक निश्चित मान नहीं है. इस श्रेणी का मान 0 और अ के बीच दोलन करता रहता है. इस प्रकार की श्रेणी को 'दोलन श्रेणी' का नाम दिया गया है.

इसी प्रकार की कई और पहेलियां पुस्तक में हैं. विषय को बोधगम्य बनाने के लिए पर्याप्त मात्रा में चित्रों का समावेश किया गया है. संपादन अच्छा है, भाषा उत्तम और शैली प्रवाहपूर्ण है. पुस्तक का मूल्य काफी कम है और इसी से औसत पाठक की पहुंच के भीतर है. थोड़ा बहुत गणित जानने वाले पाठक भी इस पुस्तक का लाभ उठा सकते हैं. गणित के विद्यार्थियों के लिए तो पुस्तक संग्रहणीय है. ☐

पुरातात्विक उत्खनन, अनुसंधान

☐ जोगेन्द्र सक्सेना

चर्चित पुस्तकः भारतीय पुरातत्वम्-नवीनतमा उपलब्ध याः; भाषाः संस्कृत; लेखिकाः मधुबाला; प्रकाशकः स्वाति पब्लिकेशन्स; 34 सेन्ट्रल मार्केट, अशोक विहार, दिल्ली-110052; संस्करण 1989; पृष्ठः 12; चित्र फलकः 36, चित्र संख्या 52; मूल्य सजिल्दः 200 रुपए.

☐ भारत में पुरातत्व का इतिहास अधिक पुराना नहीं है. देश में पुरातत्व विषयक अध्ययन, उत्खनन तथा चतुर्मुख विकास कार्य विगत शताब्दी के उत्तरार्ध में उस समय से आरंभ हुआ जब प्रिंसेस महोदय ने ब्राह्मी, खरोष्ठी आदि लिपियों का अध्ययन कर भारतीय इतिहास और शोधकार्य को नई दिशा दी.

वेदों आदि आर्य ग्रन्थों में ऐतिहासिक खोज का कार्य इससे भी लगभग आधी शती पूर्व आरंभ हो गया था. इस खोज ने इन ग्रन्थों को ऐसे भंवर-जाल में फंसा दिया जिसमें पड़ कर उनकी विषयवस्तु गौण और इतिहास प्रमुख हो गया. आज इसी का परिणाम है कि हम किसी भी प्राचीन विषय पर लिखना चाहें तो पहले उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देकर फिर आगे बढ़ते हैं. हमारे प्राचीन ग्रन्थों में विषयवस्तु की प्रमुखता है और 'कब' गौण हमारे किसी भी ग्रन्थ में, यहां तक कि पुराणों में भी, यह कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि वे 'कब' और 'किसने' लिखे. उनके काल का पता केवल उनकी विषय वस्तु से चलता है. यही हमारी वह कमजोर नब्ज है जिसे दबाकर चतुर विदेशी विद्वान हमें आज भी चक्कर में डाले हुए हैं. वैसे इसमें हमारी अपनी कमजोरी है, फिर दोष किसको दें ?

भारत में पुरातात्विक सर्वेक्षण कार्य का श्री गणेश, और तत्सम्बंधी अध्ययन और विकास के क्रियाकलापों का सही रूप से आरंभ ईस्वी सन् 1862 में हुआ. इन सरगर्मियों का परिणाम ई० सन् 1902 में सामने आया जब लार्ड कर्जन के सत् प्रयत्नों से पुरातत्व संबंधी कार्यों के लिए विधान में व्यवस्था कर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की यथाविधि स्थापना हुई तथा सर जॉन मार्शल ने उसके महानिदेशक का पदभार वहन कर उसे सन् 1928 ई० तक सुशोभित किया.

सर जॉन मार्शल के विभागीय अध्यक्षता काल में अनेक स्थलों पर उत्खनन कार्य किया गया. पुरातात्विक सामग्री के लिए नियम बनाए गए और सनू 1904 में प्राचीन स्मारकों के संरक्षण के लिए अधिनियम पारित कि गया. उसी काल में सर मार्टीकर व्हीलर उत्खनन के क्षेत्र में भारतीय पुरातत्व को प्रेरणा प्रदान की, नई दिशा दी और पुरातत्व पद्धति का समारंभ किया.

इसमें संदेह नहीं कि स्थापित होने के बाद इन 128 वर्षों में भारतीय सर्वेक्षण विभाग बड़े महत्वपूर्ण उत्खनन कार्य किए हैं. कहना होगा कि इनमें सब से महत्वपूर्ण किंवा सर्वश्रे उत्खनन कार्य था मोहन-जो-दड़ो के जमीदे प्राचीन नगर को नए सूर्य के दर्शन कराना. क्रांतिकारी घटना 1922-23 की है और उस भारतीय पुरातत्व के परिदृश्य को बदलव रख दिया.

खेद का विषय है कि वैदिक वाङ्मय आधार पर स्थापित पाश्चात्य विद्वानों की भ्र धारणाओं का पुरावेत्ता आज तक मूलोच्छे नहीं कर पाए हैं. उन्होंने 2700 से 3000 व ईसा पूर्व की जो लक्ष्मण रेखा खींच दी उसका उल्लंघन करने की उसमें हिम्मत नह आर्य और सिंधु सभ्यता के मध्य की खाई व पाटने में वे असमर्थ हैं. 2700 ई० पूर्व की सिं सभ्यता के पहले लड़े गए महाभारत युद्ध व सप्रमाण काल 3101 ई० पूर्व उपलब्ध होने प भी पुरावेत्ता उसे मानने को तैयार नहीं शायद इसलिए उनके किसी विदेशी सजाती ने यह वात अभी तक नहीं लिखी है.

यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें त सष्ट हो जाएगा कि भारत सभ्य, सुसंस्कृ बाहर जाने वाले वे लोग, जो ईरान में पहुं कर 'आर्य' के नाम से प्रतिष्ठित हुए, वे ह मोहन-जो-दड़ो सभ्यता के जनक थे. वहां प पाई गई 300 मुहरे वहां बसने वाले अभिजा लोगों के, जो व्यापारी भी थे 'वुल चिन्ह' थे ज इंग्लैंड में 'कोट आफ आर्म्स' के नाम से जा जाते हैं. यही कारण है कि भारत की मूल आ सभ्यता के नगर मोहन-जो-दड़ो को 'सिं सभ्यता' नाम देकर दोनों को अलग-अलग क दिया गया है और इसी कारण दोनों में सभ प्रकार का साम्य होते हुए भी कड़ियों को ए दूसरे में बिठाना संभव नहीं हो पा रहा है औ पुरावेत्ता भ्रमजाल में उलझे हुए हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईरान में पढ़ाई जाने वाली पुस्तक के पाठ भाव यह है कि "कुछ हजार साल पहले र्य लोग हिमालय से उतर कर आए और ान की जलवायु अनुकूल पाकर वहां बस ए". ईरान के बादशाह 'मेहर' के साथ भिजात सूचक 'आर्य' का उपयोग करते हैं र 'आर्यमेहर' कहलाते हैं. पारसी में 'मेहर' र्य को कहते हैं. वहां के लोग अपने आप को र्यवंशी आर्य मानते हैं. अब स्थिति बदल ई है.

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसका आधार लोच्य पुस्तक है क्योंकि इसका विषय ही ऐसा जिसका हमारे अतीत से गहरा संबंध है. सकी विषयवस्तु आम लोगों के लिए दुरूह वश्य है किन्तु है अपने आप में बड़ी रोचक र महत्वपूर्ण. क्योंकि यह विषय वर्तमान को तीत से जोड़ने में सेतु का काम करता है. भी तक इस विषय पर जो कुछ लिखा गया है भी कुछ अंग्रेजी में है. हिन्दी में कुछ गिनी नी पुस्तकें हैं जबकि संस्कृत में तो यह भिनव प्रयास है जो अपने आप में अनूठा और गांतरकारी है. अछूते पथ पर सर्वप्रथम दार्पण करके लेखिका ने आगे आने वालों के नए मार्ग प्रशस्त करने का यह अभिनन्दनीय ाम किया है.

चर्चित पुस्तक के लिखे जाने से संस्कृत ाषा में पुरातात्विक सामग्री का जो पूर्णतया भाव था वह अंशांश में दूर हुआ है. दूसरे इस ान्त धारणा का भी खण्डन हुआ है कि पुरातत्व जैसे कठिन तकनीकी विषय पर संस्कृत भाषा में लिखना सम्भव नहीं. लेखिका ने इस विषय पर संस्कृत भाषा में लिख कर यह सिद्ध कर दिया है कि यदि कोई हिम्मत करे तो संस्कृत लिखने के लिए तकनीकी शब्दों की कोई स्वल्पता नही है.

पुस्तक की प्रस्तावना और कवर पर छपी जानकारी से पता चलता है कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक और घर का संस्कृतमय वातावरण लेखिका के प्रेरणा स्रोत रहे हैं. लेखिका को पुस्तक की सामग्री मिली अपने विभाग से जहां वे सर्वेक्षण और उत्खनन कार्य में सक्रिय रूप से संलग्न हैं तथा भाषा उन्हें एक प्रकार से घुट्टी में मिली अपने पितामह और पिताश्री से. पितामह पंडित देवी दयाल शर्मा मशहूर आलम पंचांग के स्वयिता थे और पिताश्री पंडित चूनी लाल प्रसिद्ध गणितज्ञ.

आलोच्य पुस्तक में लेखिका ने विषय संबंधी प्रायः सभी जानकारी उपलब्ध कराई है. प्रस्तावना में पुरातात्विक अन्वेषण, उत्खनन, कालमापन, स्मारकों का संरक्षण, पुरालेख, मुद्राओं, पुरातात्विक विधि व्यवस्था तथा संग्रहालयों पर रोचक ढंग से विहंगम प्रकाश डाला है. प्रागैतिहासिक काल नव पाषाण काल, प्राक्हड़प्पा एवं हड़प्पोत्तर काल, ताम्रयुग, लौह एवं ऐतिहासिक युग की गत चालीस वर्षों की विशेष उपलब्धियों को भी सरल भाषा में पाठकों के सामने रखा है. औद्धारिक पुरातत्व के विषय में विभागीय गतिविधियों का भी पुस्तक में उल्लेख है.

यह पुस्तक इसलिए भी रोचक बन गई है क्योंकि पंजाब व हरियाणा के उत्खननों व अन्वेषणों में लेखिका का विशेषतया भगवानपुर, दधेरी नगर, कठपालों व माण्डा की खुदाइयों में व्यक्तिगत योग रहा है. 52 चित्रों से सुसज्जित और पारिभाषिक शब्दावली से समवेत यह पुस्तक इस विषय से संबंधित लोगों के लिए संग्रहणीय है.

पुस्तक को सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने का प्रकाशक ने पूरा ध्यान रखा है इसमें कोई संदेह नहीं. किन्तु ऐसा करते समय वह इसके मूल्य के पहलू को नजरअंदाज कर गए हैं. 130 पृष्ठों और 52 चित्रों वाली (18 फलक, मोटे आर्ट पेपर पर) 200 रुपए मूल्य की इस पुस्तक को, पुस्तकालयों के अतिरिक्त, इस विषय से संबंधित व्यक्ति को भी स्वयं खरीद कर पढ़ना संभव नहीं. प्रकाशक ने यदि मूल्य की ओर ध्यान दिया होता तो इसके प्रस्तुतिकरण में तनिक हेर-फेर करके, बाह्य सज्जा में कमी किए बिना, लागत काफी कम की जा सकती थी. पुस्तक को लोकप्रिय बनाने के लिए इसका सस्ता 'पेपरबेक', संस्करण छापना भी इस दिशा में एक सरल और व्यावहारिक कदम हो सकता है. □

एजेंट कृपया ध्यान दें

पत्रिका की बिक्री करने वाले एजेंटों से निवेदन है कि वे कृपया पत्रिका की प्रतियों का आर्डर अग्रिम दें. संबंधित अंक के प्रकाशन से कम से कम एक महीने पहले आर्डर कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए. इसके लिए यह आवश्यक है कि आर्डर की गई प्रतियों का मूल्य (कमीशन काटकर) पहले ही कार्यालय में जमा करा दिया गया हो. पत्रिका का अंक प्रकाशित हो जाने के बाद आर्डर में वृद्धि नहीं की जा सकती. कृपया अपने आर्डर में निकटतम रेलवे स्टेशन का उल्लेख अवश्य करें ताकि पार्सल भेजने में सुविधा हो और आपको प्राप्त करने में विलंब न हो. कृपया ध्यान रहे कि आप उतनी ही प्रतियों का आर्डर दें जितनी आप आसानी से बेच सकते हैं, क्योंकि एक बार आर्डर की गई पत्रिकाओं को वापस लेने की व्यवस्था नहीं है.

उत्पादन अधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसा है हमारा वफादार साथी—हाथी

□ जोगेन्द्र सक्सेना

□ पृथ्वी पर घूमने वाले स्तनपायी जीवों में हाथी डीलडौल में सबसे बड़ा है. इस शानदार जानवर की सबसे बड़ी खूबी है डीलडौल में इतना बड़ा भारी भरकम और शक्तिशाली होते हुए भी पालतू बन सकता है और आदमी के लिए कई तरह के काम करता है.

अपने डीलडौल और नाक-नक्श के कारण हाथी वास्तव में एक अद्भुत प्राणी है. शरीर मनों टन वजन वाला, नाक अनोखी लंबी—सूंड कहलाने वाली, बाहर को निकले हुए दो बड़े-बड़े सफेद नुकीले दांत, पैर गोल खंबों जैसे और चाल धीर-गंभीर झूमती हुई सी—एक प्रकार की बेफिक्री और मदमातेपन का भाव लिए हुए. रजवाड़ों के दिनों में तो हाथी सवारी का प्रमुख आकर्षण रहता ही था किन्तु आज भी उत्सवों के अवसर पर इसकी जरूरत महसूस की जाती है. प्राचीनकाल से मुगलकाल तक यह सेना का प्रमुख अंग बना रहा.

हाथी का सबसे अनोखा और उपयोगी अंग है उसकी सूंड. यह हाथी के मस्तक से लेकर जमीन तक लटकती है. ऊपर से यह मोटी और नीचे आते-आते पतली होती चली जाती है. हाथी की लम्बी सूंड वास्तव में उसकी थूथन और नासिका या ऊपरी ओंठ का एक लंबोतरा रूप है. इस लंबी नासिका के दो सुराग उसके सबसे निचले सिरे पर जाकर खुलते हैं. वहां उसमें एक ऐसा क्रियाशील 'उपकरण' होता है जिसे आम भाषा में उसकी 'उंगली' कहा जाता है. यह ठीक भी है क्योंकि हाथी अपने इस उपकरण की सहायता से ही छोटी से छोटी वस्तु को भी धरती से उठा सकता है.

हाथी की यह उंगली वास्तव में उसके हाथ का काम करती है, क्योंकि यह इसका सबसे अधिक क्रियाशील, सशक्त और उपयोगी अंग है. यह उसकी सहायता से पेड़ों की टहनियां और पत्तियां तोड़कर और घास को तो उठाकर खाता ही है, अपने दोनों नासिका रंध्रों द्वारा सूंड की पोली नली में पानी भरकर और रबड़ की नली की तरह उसे मोड़ कर सारा पानी अपने मुंह में उडेल कर गुटक लेने में भी काम में लेता है.

भारतीय और अफ्रीकी हाथी

यद्यपि भारतीय और अफ्रीकी हाथियों के पूर्वज एक ही थे, फिर भी ये एक ही वंश की दो शाखाएं हैं और इन दोनों ही जातियों में

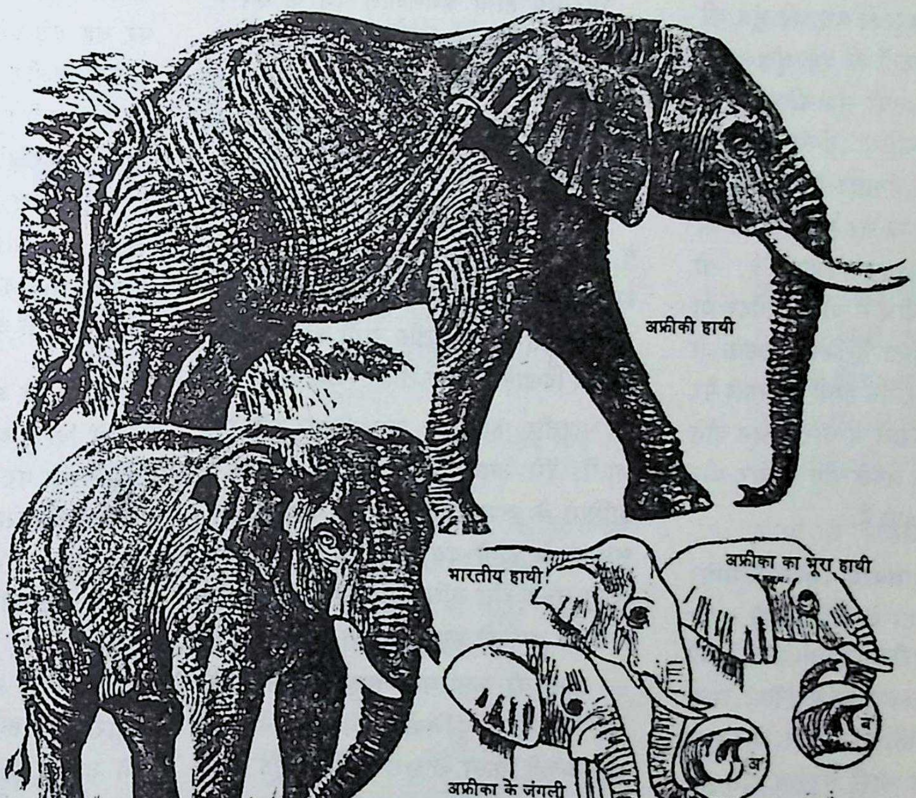

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पर काफी अंतर है. इनमें कुछ मुख्य भेद इस प्रकार हैं: भारत में सभी जगह पाए जाने वाले हाथी एक ही प्रकार के होते हैं, किन्तु अफ्रीका में गल्म और जुगली, दो प्रकार के होते हैं. ऊंचाई में भारतीय गजराज कंधे पर अधिक से अधिक दस फुट ऊंचा होता है. किन्तु अफ्रीका गज की ऊंचाई साढ़े ग्यारह फुट तक होती है. इसी प्रकार इनके कानों की चौड़ाई में भी अंतर होता है. भारतीय हाथी की तुलना में अफ्रीकी गज के कान अधिक चौड़े होते हैं.

अफ्रीकी हाथी के दांत भी भारतीय गज के मुकाबले में बड़े होते हैं. इनकी मादाओं के दांत भी लम्बे होते हैं जबकि भारतीय हथिनी के दांत या तो होते ही नहीं या होते भी हैं तो छोटे-छोटे.

इन दोनों जातियों के हाथियों की सूंडों में भी अंतर होता है. जहां भारतीय हाथी की सूंड कुछ चिकनी सतह की होती है और उसकी नोक पर एक ही 'उंगली' अथवा 'उपकरण' होता है, वहीं उसके अफ्रीकी बंधु की सूंड की सतह पर छल्लेनुमा शिकनों की एक श्रृंखला सी उभरी रहती है तथा उसकी सूंड की नोक पर एक की बजाए दो 'उंगलियां' होती हैं. इतना ही नहीं इनके सिरों की बनावट में भी भिन्नता होती है. अफ्रीकी हाथी का सर थोड़ा सामने की ओर उभरा हुआ गुम्बदनुमा होता है, तो भारतीय गजराज का बीच में थोड़ा नतोदर या अंदर को दबा हुआ होता है जिससे उसके दो गुम्बद बन जाते हैं. भारतीय हाथी के अगले पैर में पांच नाखून और पिछले में चार नाखून होते हैं तो अफ्रीकी हाथी के अगले पांव में चार और पिछले में तीन नाखून होते हैं.

ठंडे प्रदेशों के विशालकाय पशुओं (मैमथों) के मुकाबले गरम प्रदेशों के हाथी अपने शरीर को ठंडा रखने और शरीर पर चिपके कीटों की सफाई करने के लिए जलाशयों के निकट रहना अधिक पसंद करते हैं. ये नहाने के बहुत शौकीन होते हैं. इतने भारी भरकम होते हुए भी बड़ी कुशलता से जल में तैरते हैं और जल क्रीडाएं करते हैं.

हाथी का रंग वैसे तो आमतौर पर काली मिट्टी जैसा गहरा सलेटी ही होता है, किन्तु विशेष परिस्थितियों में ये सफेद रंग के भी पैदा हो जाते हैं. ये कोई अलग जाति के हाथी नहीं होते, केवल सूरजमुखी मनुष्यों के समान ही वे कुछ अलग से होते हैं.

भारतीय जाति के हाथी अपने देश के अतिरिक्त लंका, बंगलादेश, हिन्द चीन, स्याम, सुमात्रा और बोर्नियों में भी मिलते हैं. स्वयं भारत में यह उत्तर में उत्तर हिमालय की तराई वाले इलाकों में पूर्व में असम, अरुणाचल, आदि और दक्षिण में मैसूर के जंगलों में पाया जाता है. वहीं पर इसे पालतू बनाने के लिए पकड़ा भी जाता है. इसके विपरीत अफ्रीकी हाथी को अभी तक न तो पालतू ही बनाया जा सका है और न ही उसे तरह-तरह के करतब दिखाने के लिए प्रशिक्षित किया गया है. हां उसके बहुमूल्य दांतों के लिए उसका सफाया अवश्य किया जाता रहा है. लेकिन अब इनकी जनसंख्या को फिर से बढ़ाए जाने के उपाए किए जा रहे हैं.

भारतीय हाथी भ्रमणशील पशु के रूप में प्रसिद्ध है. इसे भारी-भारी वस्तुओं को सरकाने और भार ढोने के लिए प्रशिक्षित ही नहीं किया जाता बल्कि यह सवारियों और जुलूसों की शोभा बढ़ाता है और जंगलों में शिकारियों को अपनी पीठ पर बिठाकर शेर का शिकार करने में भी भाग लेता है. इतना ही नहीं यह जंगली हाथियों को फंसाने और प्रशिक्षित करने में भी सहायक होता है. भारतीय हाथी को सरकस में करतब दिखाने के लिए तैयार किया जाता है.

भारतीय हाथी में उपजातियां नहीं पाई जातीं. वैसे उसकी ही जाति के श्रीलंका के हाथियों के अवसर गजदंत नहीं रहते जबकि सुमात्रा के हाथी यद्यपि कद में छोटे होते हैं किन्तु उनके दांत अधिक लंबे रहते हैं. भारतीय हाथी से अफ्रीकी हाथी के दांत अच्छे होते हैं. इन दांतों की कलात्मक वस्तुएं, बिलियर्ड की गेंदें, पियानों की कुंजियों, बटन, खिलौने बनाने और अच्छी किस्म के छुरी-कांटों में मूंठ लगाने के लिए काम में लिया जाता है.

हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और

हाथी के बाहर निकले हुए दांत खाने के काम नहीं आते. खाने के लिए तो उनके मुंह के अंदर अलग ही दंत पंक्ति होती हैं और इसीलिए यह कहावत भी है कि 'हाथी के दांत खाने के और दिखाने के कुछ और होते हैं'. वैसे यह अपने इन कराल, तीखे दांतों को वृक्षों आदि की डालियों को तोड़ने, शत्रु पर आक्रमण करने और उससे रक्षा करने के काम में लेता है. वे उसके जबड़े के कर्तनक अर्थात काटने और चबाने के दांतों के परिवर्द्धित रूप के समान है. वैसे उसके खाने के दांत जो मुंह के अंदर छिपे रहते हैं, बड़े शक्तिशाली और अन्य जीवों के दांतों-दाढ़ों से बड़े होते हैं. सही मानों में इसके चर्वण यानी चबाने के दांत (मोलर) बड़े, लंबे और चपटे होते हैं और कई श्रृंखलाबद्ध चक्की के पाटों की तरह जमें रहते हैं जिसके बीच में घास, पात, टहनियां, फल और पेड़ों की छाल पिसकर लुगदी बन जाती है.

वैसे हाथी बड़ा सरल स्वाभाव, सौम्य और कोमल प्रकृति का प्राणी है. किन्तु बिगड़ जाने पर वह बड़े-बड़े वृक्षों को भी जड़ से उखाड़ फेंकता है और भारी भरकम होते हुए भी शत्रु की ओर बड़ी फुर्ती से दौड़ कर उसे अपनी सूंड में लपेट कर दांतों से ऊपर उछाल कर जमीन पर पटक देता है और पैरों से रोंद कर उसकी चटनी बना देता है हाल में ब्याई हथिनी पर शेर भी वार करने का साहस नहीं जुटा पाता. उस समय तो वह साक्षात काल बन जाती है.

हाथी की आंखे और घ्राण शक्ति चाहे तेज न हों किन्तु श्रवण शक्ति बड़ी तीव्र होती है. इसके बल पर वह हवा को सूंघ कर मीलों दूर से शत्रु का पता लगा लेता है और उससे किसी प्रकार का खतरा उपस्थित होने से पहले ही अपने झुंड को मुकाबला करने के लिए सजग कर तैयार हो जाता है. यह काम मुख्य तौर पर मुखिया का रहता है. बीच में बच्चे, उनके चारों ओर हथिनियां और सबसे अग्रिम पंक्ति में सामना करने के लिए हाथी रहते हैं. यह होती है उनकी व्यूह रचना. जंगलों में चलते या चरते समय भी उनकी कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था रहती है. चारों ओर चौकसी के लिए पहरेदार तैनात रहते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुपरक बहुविकल्पी प्रश्नों की इस कड़ी में विज्ञान की सामान्य बातों पर आधारित ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के स्तर के प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं. सही उत्तर का चुनाव करके उत्तर तालिका से मिलान कीजिए. मूल्यांकन 20-24 सही-सर्वोत्तम; 15-19 सही-उत्तम; 10-14 सही अच्छा; 5-9 सही-सामान्य.

❑ कौशल प्रताप सिंह

1. प्लांक नियतांक का विमीय सूत्र होता है:
   (क) $M^1L^{-2}T^{-3}$
   (ख) $ML^{-2}T^3$
   (ग) ML^2T^{-1}
   (घ) $M^{-2}L^{-2}T^{-3}$.

2. प्रकाश किसी संकीर्ण छिद्र या अवरोधों के तीक्ष्ण किनारों से गुजारने पर अपने सरल रेखीय पथ से विचलित हो जाता है, यह घटना कहलाती है:
   (क) विवर्तन
   (ख) परावर्तन
   (ग) अपवर्तन
   (घ) ध्रुवण.

3. लाल कांच के टुकड़े को गर्म करने पर वह अंधेरे में दिखाई देगा:
   (क) हरे रंग का
   (ख) नीले रंग का
   (ग) पीले रंग का
   (घ) काले रंग का.

4. कृत्रिम श्वसन में प्रयुक्त गैस है:
   (क) आक्सीजन
   (ख) ओजोन
   (ग) फ्रिआन
   (घ) नाइट्रस आक्साइड.

5. लोहे की गेंद पारे में:
   (क) डूब जाएगी
   (ख) तैरेगी
   (ग) ऊपर नीचे गति करती रहेगी.

6. ठंडे देशों में जाड़ों में कारों के रेडियेटर में जल के साथ मिश्रित किया जाता है:
   (क) एथीलिन ग्लाइकॉल
   (ख) नाइट्रोबेंजीन
   (ग) बेंजीनॉइड
   (घ) एल्कोहल.

7. प्रकाश वर्ष मानक है:
   (क) ईसवीं सन्
   (ख) वेग का
   (ग) दूरी का
   (घ) विक्रमी सम्वत का.

8. बर्फ में नमक मिलाने पर तापक्रम:
   (क) शून्य डिग्री सेल्सियस से कुछ बढ़ जाता है
   (ख) शून्य डिग्री सेल्सियस से कुछ घट जाएगा
   (ग) स्थिर रहेगा.

9. यदि पृथ्वी के व्यास के अनुदिश एक सुरंग बनाकर उसमें एक गेंद छोड़ दें तो:
   (क) गेंद पृथ्वी के केंद्र पर जाकर रुक जाएगी
   (ख) गेंद पृथ्वी के दूसरे सिरे तक पहुंच कर रुक जाएगी
   (ग) गेंद पृथ्वी के केंद्र के इधर-उधर सरल आवर्त्त गति करेगी
   (घ) गेंद पृथ्वी के दूसरे छोर पर पहुंचकर अनंत ब्रह्मांड में खो जाएगी.

10. चन्द्रमा पर ध्वनि का वेग है:
   (क) 440 मीटर प्रति सेकंड
   (ख) 332 मीटर प्रति सेकंड
   (ग) 0.00 मीटर प्रति सेकंड
   (घ) 0.2 मीटर प्रति सेकंड.

11. गुरुत्वाकर्षण नियतांक की विमा है:
   (क) न्यूटन-मीटर प्रति किलोग्राम^2
   (ख) न्यूटन प्रति मीटर^2 प्रति किलोग्राम^2
   (ग) न्यूटन मीटर^2 प्रति किलोग्राम^2.

12. दूरदर्शी तथा सूक्ष्मदर्शी संरचना परस्पर विपरीत हैं, यदि दूरदर्शी को उलट दिया जाए तो वह सूक्ष्मदर्शी का कार्य कर सकती है:
   (क) सर्वथा सत्य
   (ख) सर्वथा असत्य
   (ग) अनिश्चित.

13, निम्न में से कौन यह प्रकट करता है कि प्रकाश तरंगें अनुप्रस्थ होती हैं:
   (क) परावर्तन
   (ख) अपवर्तन
   (ग) ध्रुवण
   (घ) विवर्तन.

14. स्वरित्र की भुजाओं के मध्य कलांतर होता है:
   (क) π
   (ख) $\pi/2$
   (ग) $3\pi/2$
   (घ) $\pi/4$.

15. क्राम्पटन प्रभाव होता है:
   (क) α किरण का
   (ख) β किरण का
   (ग) धनात्मक किरण का
   (घ) एक्स किरण का.

16. पदार्थों में प्रतिरोध रहित धारा को कहते हैं:
   (क) चोकता
   (ख) प्रतिरोधकता
   (ग) अतिचालकता
   (घ) दुर्बल चालकता.

17. ट्रांजिस्टर में α तथा β में संबंध होता है:
   (क) $\beta = 1 - \alpha$
   (ख) $\beta = 1 + \alpha$

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) $\frac{\alpha}{1-\alpha}$

(घ) $\alpha = 2\beta - \alpha$

18. किस रूप में कार्बन सबसे अधिक सघन होता है:
(क) हीरा
(ख) काठ कोयला
(ग) प्रस्तर कोयला
(घ) काजल.

19. बेकेलाइट क्या है:
(क) अम्ल
(ख) क्षार
(ग) प्लास्टिक
(घ) नायलोन.

20. आक्सीजन जल में पूर्णतया घुलनशील है, तथ्य है:
(क) सत्य
(ख) असत्य
(ग) अर्धसत्य
(घ) कभी सत्य तो कभी असत्य.

21. 60 सेंटीमीटर लंबा तना हुआ तार मूल आवृत्ति 256 हर्ट्ज से कंपन करता है. यदि तार की लम्बाई घटाकर 15 सेंटीमीटर कर दी जाए और तनाव वही रहे तो तार के कंपनों की मूल आवृत्ति होगी:
(क) 64
(ख) 256
(ग) 512
(घ) 1024.

22. आइन्सटीन के अनुसार:
(क) $E = mv^2$
(ख) $C = E\,m^2$
(ग) $E = mc^2$
(घ) $C = \frac{1}{2}mv^2$.

23. यदि किसी पिंड का संवेग 50 प्रतिशत बढ़ जाता है तो इसकी गतिज ऊर्जा बढ़ेगी:
(क) 50%
(ख) 100%
(ग) 125%
(घ) 150%

24. यदि कोई अंतरिक्ष यात्री चन्द्रमा पर गाना गाए तो दूसरे अंतरिक्ष यात्री को गाने की ध्वनि:
(क) बहुत तीव्र सुनाई देगी
(ख) बहुत मन्द सुनाई देगी
(ग) नहीं सुनाई देगी
(घ) बार-बार सुनाई देगी.

उत्तर

1. (ग); 2. (क); 3. (क); 4. (क); 5. (ख); 6. (क); 7. (ग); 8. (ख); 9. (ग); 10. (ग); 11. (ग); 12. (ख); 13. (ग); 14. (ग); 15. (ग); 16. (ग); 17. (ग); 18. (क); 19. (ग); 20. (ख); 21. (घ); 22. (ग); 23. (ग); 24. (ग)

बिक्री एजेंटों की नियुक्ति
'आविष्कार' और 'ग्राम शिल्प' के लिए

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका आविष्कार तथा त्रैमासिक पत्रिका ग्राम शिल्प की बिक्री के लिए हर जिले में बिक्री एजेंट नियुक्त करने के लिए पत्र-पत्रिकाएं बेचने वाले एजेंटों से आवेदन पत्र आमंत्रित हैं.

एजेंटों के लिए आकर्षक कमीशन उपलब्ध है. विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

उत्पादन अधिकारी

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन

(भारत सरकार का उपक्रम)

20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048

ग्राम : 'अनुसंधान विकास' फोन : 6418615

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SOMETHING MISSING?

You really can't afford to miss!

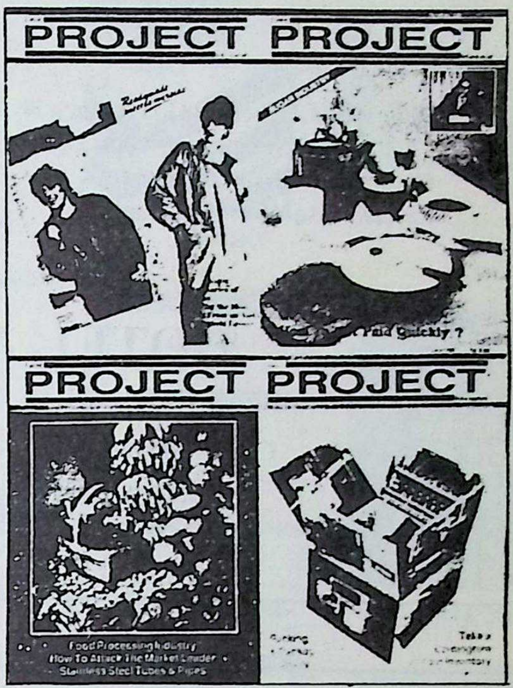

If you aren't receiving everyissue of Latest PROJECT Information India's fastest growing magazine on projects, technologies, finance & management , then you are missing vital facts & valuable information which you can't afford to miss.

Act Immediately! Subscribe Now!!

- Only subscribers receive EVERY copy of **Latest PROJECT Information** by post at their door-step.
- Only subscribers have quick and consistent information at hand about technologies, projects, management, finance, business law, international trade, the industry leaders and the important trends in the **national** and **international** market place.

If staying abreast of new technology in every area of industry is **important** to you and the future of your company, you should not miss any issue of **Latest PROJECT Information.**

Fill up this coupon and send it to us with cheque, money order, demand draft or postal order for Rs. 85.00 / 160.00* favouring ***Dominique Data Links (P) Ltd.*** and we will rush you the copies of **Latest PROJECT Information** for one/two years (packing & forwarding included).

YES

I/We don't want to miss vital facts and valuable information. Please enroll my/our subscription for ONE/TWO YEAR (S) and rush me the copies of **Latest PROJECT Information** by post. I /we enclose a cheque / money order / demand draft / postal order for **Rs. 85.00 / 160.00** * towards my/our subscription charges.

Name____________________
Company____________________
Department or Position ____________________
Address____________________
Street____________________
Station ____________ PIN ________

Signature____________ Date________

Please fill clearly (BLOCK LETTERS) and send coupon to:
Circulation Manager
Latest PROJECT Information
27, South Patel Nagar, (UCO Bank Bldg.) New Delhi-110 008.
Phones : 583705, 5735995

*** Please add Rs. 10/- on an outside Delhi Cheque. All payments favouring: Dominique Data Links (P) Limited**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOLDEN GOA

Exciting Package Tour Only Rs. 799/- Per Head
On Twin Sharing Basis For 4 Days-3 Nights

INCLUDING

* Return Bus Ticket To Goa & Back By Luxury Bus From Bombay
* 2 Full Days' Sightseeing Tours of North & South Goa
* Continental Breakfast
* River Cruise With Folk Dances

For Advance Reservations, Please Contact :

HOTEL AZAVEDO'S

(NEAR CALANGUTE BEACH, CALANGUTE, GOA)

CORRESPONDENCE ONLY TO BOMBAY OFFICE :

203, Gulab, P. D'Mello Road, Bombay-400 001
Ph : Off : 2615321, 2619849, 6403834

FREE FREE FREE

Sales/Purchase Classified Advertisements
Published Free in
Colour & Chemicals Weekly

Yearly Subscription Rs. 300/-

Contact :

COLOUR & CHEMICALS WEEKLY

203, Gulab, 237 P. D'Mello Road, Bombay-400001
Tel : 2615321, 2619849

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

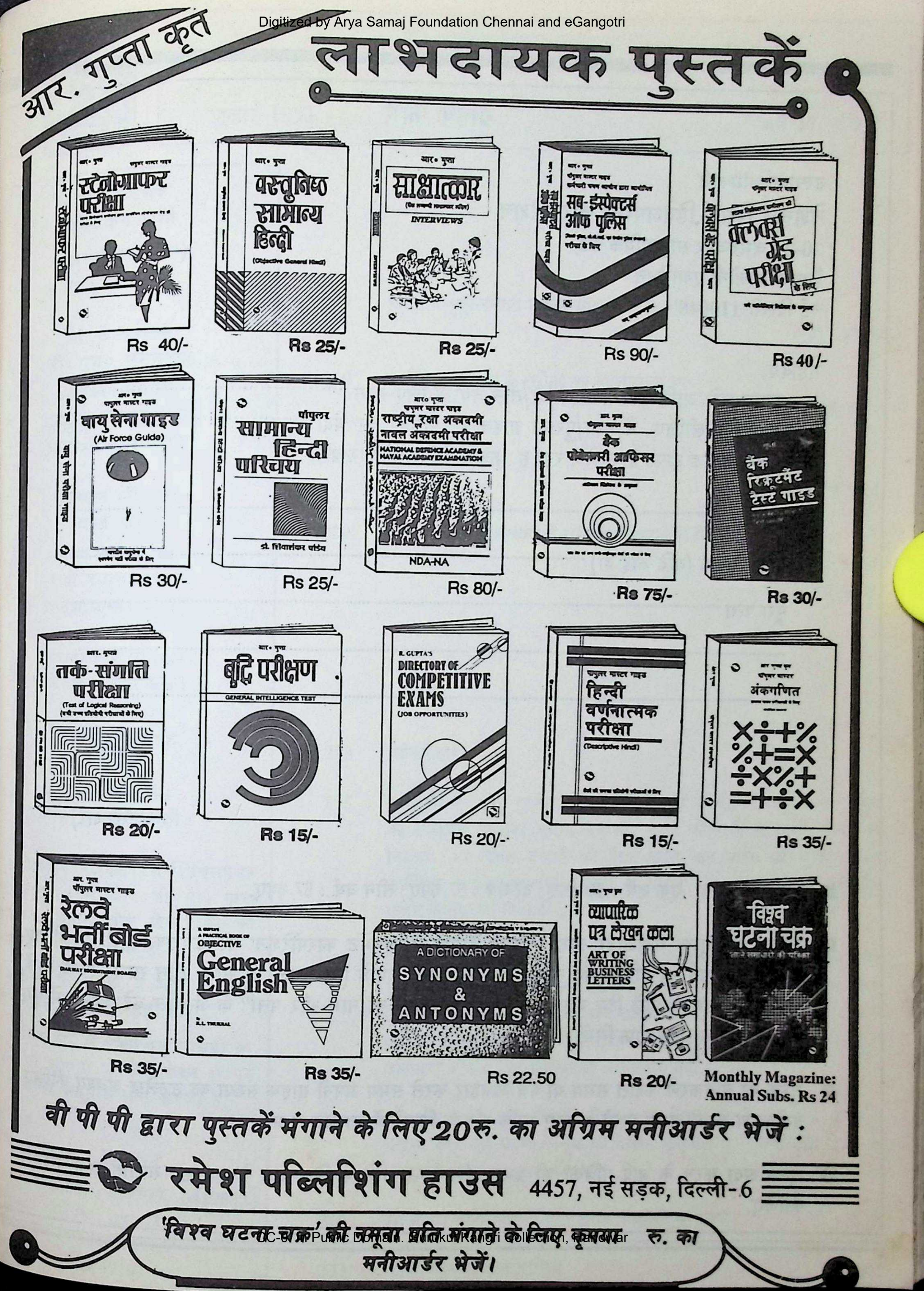

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राहक फार्म

उत्पादन अधिकारी
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र,
कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

महोदय,

कृपया मुझे आविष्कार का एक/दो/तीन वर्ष के लिए मास .... 199 से ग्राहक बना लीजिए. मैं नया/पुराना ग्राहक हूं. पत्रिका का चंदा .... रुपए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट द्वारा भेज रहा हूं. कृपया प्राप्ति स्वीकार करें.

नाम ....

ग्राहक संख्या (यदि कोई हो) ....

पूरा पता ....

....

....

भवदीय

....

(हस्ताक्षर)

- रियायती मूल्य : एक वर्ष : 30 रुपए; दो वर्ष : 57 रुपए; तीन वर्ष : 87 रुपए.
- पत्रिका का शुल्क मनीआर्डर द्वारा 'नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन' को उपरोक्त पते पर भेजिए. मनीआर्डर कूपन पर पत्रिका का नाम, शुल्क की राशि, अवधि (एक साल, दो साल, तीन साल) स्पष्ट लिखें. मनीआर्डर फार्म के पीछे दिए गए स्थान पर "भेजने वाले का नाम और पता" के अंतर्गत बड़े अक्षरों में पूरा नाम और पता साफ साफ लिखें.
- शुल्क का नवीकरण कराते समय या पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य कीजिए. नवीकरण काफी समय पहले कराइए ताकि पत्रिका मिलने में रुकावट न आए.
- शुल्क अदा करने के बाद पत्रिका की प्रथम प्रति प्राप्त करने के लिए कम से कम छः सप्ताह तक इंतजार कीजिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन.आर.डी.सी. NRDC

आविष्कार

जुलाई 1991 वर्ष 21, अंक 7

प्रबंध निदेशक
एन०के० शर्मा
चीफ इंजीनियर (मेट०)
एम० एन० गुप्ता
•
वरिष्ठ सम्पादक
डी०एन० भटनागर
सम्पादन सहायक
राघवेंद्र कुमार शर्मा
आर०के० अन्थवाल
•
उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन
मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा
•
व्यावसायिक चित्रकार
के०के० थपलियाल
वरिष्ठ चित्रकार
नबनीता भौमिक
•
विज्ञापन प्रतिनिधि
रमा रानी त्रिपाठी

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■ लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरूरी है.

एक प्रति : 3 रुपए
वार्षिक मूल्य : 30 रुपए

फोन: 6418615, 6419929, 6419945, 6419947, टेलेक्स: 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'
फैक्स : 091-11-6449401

इस अंक में

307 भारतीय सुदूर-संवेदन उपग्रह आइ आर एस–1 ए
—जौन चर्चिल

310 अन्तरिक्ष अन्वेषण के तरीकों का बदलता स्वरूप
—काली शंकर

315 भारत में राकेटरी
—केदारनाथ शुक्ल

320 प्रमोचन यानों के माध्यम से राकेटरी में तकनीकी विकास
—किशन सिंह एवं
—विजय कुमार

293 व्योमविहार

295 समाचारिकी : जन माध्यम हेतु वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद की तत्काल उपलब्ध सूचना प्रणाली. सूरज की गर्मी से नाशी जीवों का नियंत्रण. स्वचालित वाहनों की ईंधन-खपत कम करने की युक्ति. कृषि अपशिष्ट से कोयला. चीनी मिट्टी के अस्तर वाला चूल्हा. सूक्ष्म तरंगों से खजूर के तेल का निष्कर्षण.

298 विज्ञान के विविध आयाम : ईंधन के रूप में बायोगैस. जैव-चुम्बकत्व और मस्तिष्क-हृदय रोग निदान. खाद्य-पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिए विकिरणन. अनेक समस्याओं का समाधान करेगा बायोसैन्सर. खाड़ी युद्ध ने बो दिए हैं—खाद्य संकट के बीज. कृषि अपशेष का उपयोग : गन्ने की खोई से अखबारी कागज. क्या मुक्केबाजी अमानवीय नहीं.

326 क्या और कैसे ? क्या होते हैं लीमूर यानी निशाकपि ? क्या चन्द्र ग्रहण में चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण में सूर्य को देखना सुरक्षित है ? पानी ठंडा करने के लिए पात्र में बर्फ डालना क्यों बेहतर है ?

329 हम सुझाएं आप बनाएं : कुछ सरल उपयोगी युक्तियां

333 अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

INVITES

APPLICATIONS FROM TESTING AND CALIBRATION LABORATORIES
FOR THEIR ACCREDITATION
UNDER THE PROGRAMME ON NATIONAL COORDINATION OF
TESTING AND CALIBRATION FACILITIES (NCTCF)

ORGANISATIONS (GOVERNMENT OR PRIVATE) WHICH UNDERTAKES TESTING/CALIBRATION EITHER FOR ITS OWN PURPOSE OR FOR OTHERS ARE ELIGIBLE TO SEEK ACCREDITION.

FOR DETAILS, PLEASE WRITE TO :

Testing Laboratories

Adviser
Engineering and Technology
Department of Science & Technolgy
New Mehrauli Road,
New Delhi-110 016

Calibration Laboratories

Director
National Physical Laboratory
Dr. K.S. Krishnan Road
New Delhi-110 012

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीयूष पाण्डेय

आविष्कार के 'व्योमविहार' स्तंभ में हम इस बार आपका परिचय अगस्त 1991 माह के आकाश में उपस्थित तारामंडलों से करा रहे हैं. पहले की तरह आप निर्देशों का पालन करते जाएं और तारों, ग्रहों तथा नक्षत्रों से परिचय करते जाएं. आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है.

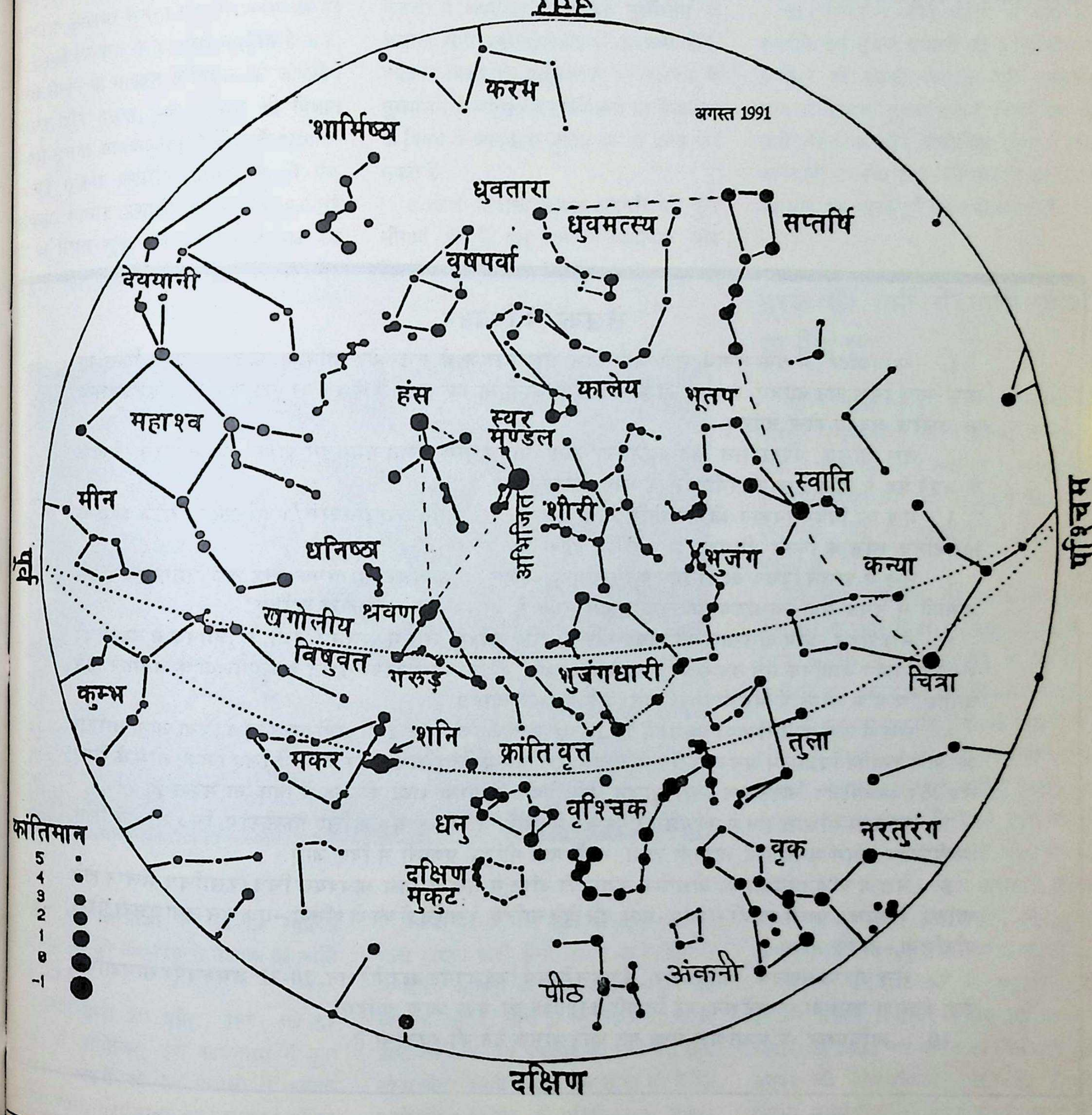

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❑ सूर्य के अत्यधिक समीप स्थित होने के कारण अगस्त के प्रथम सप्ताह से तीन ग्रह बुध, शुक्र और बृहस्पति हमारे संध्याकाश से पलायन कर रहे हैं. वैसे थोड़ा प्रयास करने पर संभवतः कुछ उत्साही व्योमविहारी शुक्र ग्रह को 12 अगस्त तक सूर्यास्त के तुरंत बाद खोज सकेंगे. मंगल ग्रह सिंह और कन्या की सीमा पर सन्ध्याकाश में है, परन्तु हमारे मानचित्र की परिधि से बस थोड़ा ही बाहर पश्चिमी क्षितिज पर है.

केवल एक ग्रह हमारे मानचित्र की सीमा के अन्दर है, वह है शनि, मकर राशि में.

इस मास चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं: कृष्ण पक्ष अष्टमी 3 अगस्त, अमावस्या 10 अगस्त, शुक्ल पक्ष अष्टमी 17 अगस्त एवम् पूर्णिमा 25 अगस्त को है.

इस मास के विशेष आकर्षणों में राशि चक्र में हैं सुन्दर कन्या, वृश्चिक और धनु राशियां जिनके स्वरूप को पहचानना अत्यन्त सरल है. अन्य आकर्षक तारामंडल, जो सहजता से पहचाने जा सकते हैं, उनमें प्रमुख हैं: सप्तर्षि, भूतप, हंस-स्वरमंडल—गरुड़ से बन रहा ग्रीष्म त्रिकोण

लेखकों से निवेदन

1. 'आविष्कार' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किए या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक का पूरा नाम, पता व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी आविष्कार/विकास/अनुसंधान या खोज कार्य के सार्वजनिक रुचि के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकता है.

4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रस्तुत अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में जहां कहीं रासायनिक तत्वों का उल्लेख आता है वहां उनके उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए जो आज रसायन विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय हो चुके हैं जैसे तांबे के लिए कॉपर और जस्ते के लिए जिंक, सीसे के लिए लेड और आक्सीज़न, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि. तांबा व सीसा शब्द कोष्ठक में दिए जा सकते हैं.

7. मापों को संक्षिप्त रूप में न लिखकर पूरे रूप में लिखें. जैसे कि० ग्रा० के लिए किलोग्राम, मि० मी० के लिए मिलीमीटर. इससे समझने में आसानी होगी. सभी माप मीट्रिक प्रणाली में दिए जाएं.

8. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि—हो तो अच्छा है.

9. लेख वरिष्ठ संपादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

10. 'आविष्कार' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन माध्यम हेतु वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद की तत्काल उपलब्ध सूचना प्रणाली

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद द्वारा जन माध्यम (मॉस मीडिया) के लिए एक तत्काल उपलब्ध सूचना प्रणाली प्रारंभ की गई है. इसकी स्थापना के दो मुख्य उद्देश्य हैं: एक, अच्छे लेखन के माध्यम से विज्ञान को लोकप्रिय बनाना और दूसरा, जन माध्यम की विज्ञान संबंधी सूचना आवश्यकताओं की पूर्ति करना.

यह सूचना प्रणाली आधार रूप से एक आंकड़ा आधार प्रणाली है. परिषद का नई दिल्ली स्थित मुख्यालय इस प्रणाली का केंद्र बिंदु बनाया गया है. परिषद की विभिन्न 40 राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में उप-केंद्र स्थापित किए गए हैं, जो केंद्र-बिंदु से नेटवर्क की भांति जोड़े गए हैं.

परिषद द्वारा 20 अप्रैल, 1991 को नई दिल्ली में आयोजित एक कार्यशाला में कुछ विज्ञान पत्रकारों को इस प्रणाली से अवगत कराया गया. कार्यशाला का उद्घाटन प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विजय तेंदुलकर ने किया. अपने भाषण में श्री तेंदुलकर ने विज्ञान संप्रेषण का विशेष उल्लेख करते हुए सर्जनात्मक लेखक की चर्चा की.

इस सूचना प्रणाली में प्रारंभ में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद की परियोजनाओं और वैज्ञानिकों के संबंध में समेकित आंकड़े उपलब्ध होंगे. 60 एम बी कैसटों में भंडारित ये आंकड़े मुख्यालय के अलावा सभी प्रयोगशालाओं में उपलब्ध होंगे. पत्रकार किसी भी प्रयोगशाला या परिषद के मुख्यालय से आवश्यक परियोजना या वैज्ञानिक के विषय में जानकारी मुद्रित रूप में प्राप्त कर सकते हैं.

तत्काल उपलब्ध सूचना प्रणाली की कुछ सीमाएं भी हैं. यह प्रणाली फ्लोपियो और डिस्कों के जरिए काम करेगी.

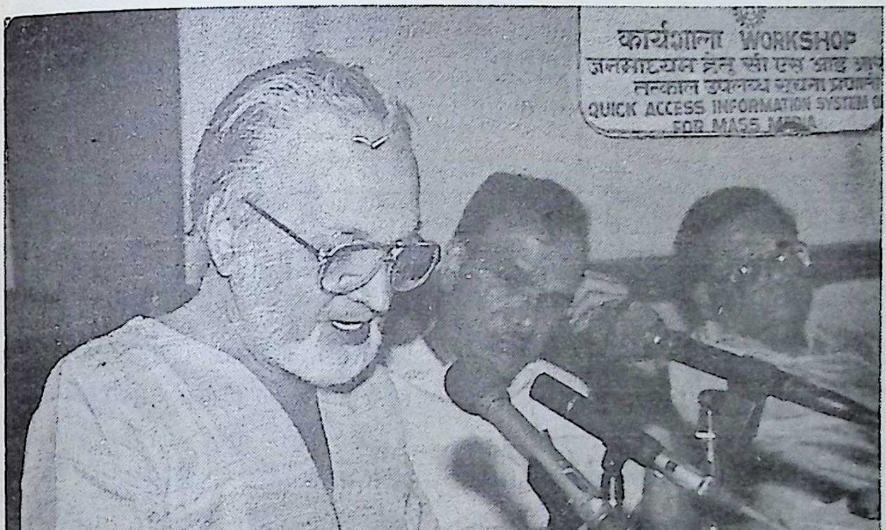

कैसटों को विभिन्न केंद्रों को डाक द्वारा ही भेजा जाएगा यानी इसमें उपग्रह या टेलीप्रिंटरों के जरिए आंकड़ों के तुरंत आदान-प्रदान की व्यवस्था नहीं है. साथ ही आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए पत्रकार को स्वयं केंद्र तक आना होगा. इसके अलावा एक सीमा यह है कि इसमें सिर्फ परिषद की परियोजनाओं संबंधी जानकारी उपलब्ध है, देश के अन्य वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक संस्थानों के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है.

इस अवसर पर वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद के भूतपूर्व महानिदेशक डा० ए०पी० मित्रा, नए महानिदेशक डा० एस०के० जोशी और संयुक्त सचिव (प्रशासन) श्री उमेश सहगल भी उपस्थित थे.

डा० मित्रा ने अपने भाषण में कहा कि हालांकि इस सूचना प्रणाली की अपनी सीमाएं हैं फिर भी इसकी स्थापना ऐसी एकीकृत तत्काल उपलब्ध सूचना प्रणाली जिसमें देश के सभी वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक संस्थाओं की जानकारी उपलब्ध होगी, की स्थापना की दिशा की ओर एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है.

सूरज की गर्मी से नाशी जीवों का नियंत्रण

केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान) के वैज्ञानिकों ने शुष्क क्षेत्रों के लिए एक ऐसी तकनीक विकसित की है जिसमें सूरज की गर्मी से मिट्टी में मौजूद रोगाणुओं और खर-पतवारों को मारा जा सकता है.

वैसे इस तकनीक का इजराइल और अमेरिका में पहले से ही इस्तेमाल हो रहा है. इसमें गर्मियों में एक रंगहीन व पारदर्शी प्लास्टिक की चद्दर को खेत के ऊपर फैलाया जाता है. यह चद्दर सौर ऊर्जा को सोखती है. गर्मियों में मिट्टी का तापमान पहले ही ज्यादा होता है. चद्दर द्वारा सोखी गर्मी से मिट्टी का तापमान और बढ़ जाता है जिससे इसमें मौजूद रोगाणुओं के अंडे नष्ट हो जाते हैं. शुष्क क्षेत्र में गर्मियों में तापमान 45 डिग्री सेल्सियस से भी ज्यादा पहुंच जाता है. तापमान में और वृद्धि रोगाणुओं के लिए घातक साबित हो सकती है.

संस्थान के वैज्ञानिकों के अनुसार एक हेक्टेयर के खेत को ढकने के लिए 50 माइक्रोन मोटाई की 2500 वर्ग मीटर की पौलीथीन की चद्दर की आवश्यकता पड़ती है. इसकी कीमत लगभग 4000 रुपए बताई जाती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15 दिन इस्तेमाल करने के बाद इसे पुनः इस्तेमाल किया जा सकता है.

वैज्ञानिकों द्वारा किए गए परीक्षणों में यह तकनीक मिट्टी में मौजूद कवकों, जो फसलों में अनेक किस्म के रोग फैलाने के लिए जिम्मेवार होते हैं, को नष्ट करने में भी प्रभावकारी पाई गई है.

वैज्ञानिकों के अनुसार इस पौलीथीन की चद्दर के इस्तेमाल से पहले जमीन की जुताई करके इसे चौरस करना चाहिए. यह काम सिंचाई से दो दिन पहले हो जाना चाहिए. गर्मियों में पलवार बिछाने का काम किया जाना चाहिए. 15 दिनों तक पलवार करने से मिट्टी में निचली परतों में मौजूद रोगाणु नष्ट हो जाते हैं. जबकि सिंचित मिट्टी में ऊष्मा का संवहन आसानी से होता है जिससे रोगाणुओं के अंडे नष्ट हो जाते हैं.

यह नई तकनीक शुष्क और अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र के किसानों के लिए वरदान साबित हो सकती है क्योंकि इसके बाद रासायनिक उपचार की आवश्यकता नहीं रहती. रासायनिक उपचार काफी महंगा पड़ता है और यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी है. इसके अलावा इसके इस्तेमाल के लिए तकनीक विशेषज्ञता भी जरुरी है.

स्वचालित वाहनों की ईंधन-खपत कम करने की युक्ति

कोची की एक कंपनी ने स्वचालित वाहनों की ईंधन प्रणाली के लिए एक चुंबकीय वर्धक यानी बूस्टर विकसित किया है जिससे ईंधन की खपत में कमी लाई जा सकती है. यह 'माइलेज बूस्टर' पेट्रोल के साथ-साथ डीजल चालित इंजनों के लिए भी उपयोगी है.

यह युक्ति हमारे देश के लिए बिल्कुल नई बताई जाती है. अभी एक सरकारी प्रयोगशाला में इस युक्ति पर परीक्षण कार्य चल रहा है.

युक्ति को ईंधन पंप या कार्बुरेटर और ईंधन की टंकी के बीच में फिट किया जाता है. जब ईंधन इस युक्ति से हो कर गुजरता है तो इसके (युक्ति के) उच्च चुंबकीय क्षेत्र के कारण हाइड्रोकार्बन के अणुओं और सिलिंडर की हवा की आक्सीजन के बीच पूर्ण बंधन संभव हो जाता है. इससे ईंधन का दहन ज्यादा अच्छे ढंग से होता है और परिणामस्वरूप इंजन की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है, और ईंधन की खपत में कमी आती है इसके अलावा ईंधन के अच्छे ढंग से दहन करा कर यह युक्ति प्रदूषण कम करने में भी सहायक है.

युक्ति दो माडलों में उपलब्ध होगी—एक पेट्रोल चालित वाहन के लिए और दूसरा डीजल चालित वाहन के लिए. युक्ति को पेट्रोल या डीजल चालित नावों, विद्युत-जनरेटरों, पंप सेटों और कृषि-उपकरणों में भी लगाया जा सकता हैं.

कृषि-अपशिष्ट से कोयला

जवाहरलाल नेहरू कृषि विद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश के कृषि इंजीनियरी कालेज के वैज्ञानिकों ने कृषि अपशिष्ट को कोयले में बदलने की एक नई प्रौद्योगिकी विकसित की है. यह प्रौद्योगिकी सरल तथा सस्ती है और गांवों व कस्बों, जहां ईंधन के रूप में लकड़ी व काठ कोयला इस्तेमाल हैं, के लिए उपयुक्त बताई जाती है.

इस प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से अब सूखी पत्तियों, भूसी, घास-फूस, सोयाबीन और दलहनों के डंठल जैसे विभिन्न कृषि-अपशिष्टों और यहां तक कि रद्दी कागज और फटे पुराने कपड़ों को कोयले में बदला जा सकता है.

वैज्ञानिक दल के प्रमुख डा० के० मी० टेकचंदानी के अनुसार आंशिक रूप से गीली पत्तियों को उत्सारित्र (एक्सट्रूडर) में से गुजार कर गोलियों में बदला जा सकता है. सुखाई गई कठोर गोलियां तो कोयले जैसी कठोर होती हैं लेकिन जलने पर पहले 8-10 मिनट तक काफी धुआं छोड़ती हैं. इसलिए इन वैज्ञानिकों ने कृषि अपशिष्ट से गोलियां तैयार करने से पहले इसे काठ कोयले में बदलने के लिए एक 'पायरोलाइजर' तैयार किया है. 'पायरोलाइजर' पुराने पीपे से बनाया गया है जो वायु दहन कक्ष का काम करता है. कृषि अपशिष्ट को इस कक्ष में भर कर दहन क्रिया

चीनी मिट्टी के अस्तर वाला चूल्हा

केंद्रीय कांच और सिरेमिक अनुसंधान संस्थान के उत्तर प्रदेश के खुर्जा स्थित टेक्नीकल बैकअप सर्पोट यूनिट ने ऐसे उन्नत चूल्हे बनाए हैं जिनका बार-बार इस्तेमाल के बाद आकार नहीं बिगड़ता और ताप में भी कमी नहीं आती है. इन चूल्हों की भीतरी दीवार में चीनी मिट्टी का अस्तर लगा होता है.

पहले से ही निर्मित चीनी मिट्टी के इन अस्तरों की यांत्रिक सामर्थ्य काफी उच्च है और ये लंबी अवधि तक उच्च ताप को सह सकते हैं.

अस्तर बनाने में कच्चे माल के रूप में साधारण मिट्टी, सुघट्य अग्नि-सह मिट्टी और सुघट्य मिट्टी का उपयोग किया गया है जो सस्ते में और आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं. इनके अलावा योगजो (एडिटिब्ज) के रूप में रेड क्ले ग्रॉग, फायर क्ले ग्रॉग, निम्न-कोटि का टैल्क, सिलिका और धान की भूसी जैसे कृषि अपशिष्ट भी इस्तेमाल होते हैं.

केंद्रीय कांच और सिरेमिक अनुसंधान संस्थान ने इन अस्तरों के व्यापारिक उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल, इनके डिजाइन और निर्माण की तकनीक को मानकीकृत किया है और फिर इसकी प्रौद्योगिकी जानकारी 1989-90 के दौरान 14 प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन कार्यक्रमों के जरिए ग्रामीण कुम्हारों को दी गई है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा काठ कोयले के चूरे में बदला जाता है और फिर ठंडा होने पर 'पेलेटाइजर' से चूरे को गोलियों में बदला जाता है.

एक 'पायरोलाइजर' में एक बारी में 10 किलोग्राम कृषि-अपशिष्ट डाला जाता है जिससे 5-6 किलोग्राम काठ कोयले का चूरा प्राप्त होता है.

जबलपुर के इन वैज्ञानिकों के अध्ययनों के अनुसार कृषि अपशिष्ट से 4000 से 5000 किलो कैलोरी प्रति किलोग्राम प्राप्त की जा सकती है, जो वास्तव में प्रयुक्त कृषि अपशिष्ट पर निर्भर करती है. गोलियां 15 मिनट तक ऊष्मा उपलब्ध करती हैं. यदि गोलियों में 25 प्रतिशत तक मिट्टी मिलाई जाए तो ऊष्मा धारण क्षमता को बढ़ाकर एक घंटे तक किया जा सकता है. लेकिन इससे ऊष्मा मान घट कर 3500 से 4000 किलो कैलोरी प्रति ग्राम हो जाता है.

डा॰ टेकचंदानी के अनुसार केवल मध्य प्रदेश में ही प्रतिवर्ष 30,000 टन सोयाबीन के डंठल और 10,000 टन जंगल पत्तियां कृषि-अपशिष्ट के रूप में उपलब्ध हैं. जिसे नई प्रौद्योगिकी द्वारा साफ तथा धुआं रहित ईंधन में बदला जा सकता है. यह ईंधन ऐसे गांवों और कस्बों के लिए खास तौर पर उपयोगी हो सकता है जहां द्रव पैट्रोलियम गैस और मिट्टी तेल की सुविधा नहीं है.

इस प्रौद्योगिकी को कुटीर-स्तर उद्योग में अपनाया जा सकता है लेकिन इसके साथ एक असुविधा यह है कि कृषि-अपशिष्ट साल में कुछ महीने ही उपलब्ध रहते हैं.

सूक्ष्म तरंगों से खजूर के तेल का निष्कर्षण

सूक्ष्म तरंगों (माइक्रोवेब्ज) के ओवन को गर्म करने में उपयोग के बारे में तो आपने सुना ही होगा. अब इनका खजूर के तेल के निष्कर्षण में भी उपयोग होने लगा है.

क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, त्रिवेंद्रम के वैज्ञानिकों के एक दल ने सूक्ष्म तरंगों द्वारा खजूर के फल से तेल निकालने में सफलता प्राप्त की है. इस विधि में खजूर के फल को कुछ समय के लिए सूक्ष्म तरंगों से उपचारित किया जाता है. इस उपचार से फल के डंठल और पेड़ की शाखा का मजबूत जोड़ भी कच्चा पड़ जाता है.

क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों द्वारा बेंच-स्तर पर किए गए अध्ययनों में पाया कि परंपरागत विधि में खजूर के तेल के निष्कर्षण और खजूर की गिरी के तेल के निष्कर्षण की प्रक्रिया जहां कई चरणों में पूरी होती है वहां सूक्ष्म तरंग विधि में इनमें से कुछ चरणों की आवश्यकता नहीं रह जाती है.

परंपरागत विधि में फल के डंठल को ढीला करने और तेल के निष्कर्षण के लिए 31.05 किलोग्राम प्रति वर्ग सेंटीमीटर वाष्प दाब को 45 मिनट तक इस्तेमाल किया जाता है.

आविष्कार के 7 अंक मुफ्त

पाठकों के बार-बार अनुरोध पर 'आविष्कार' की एक वर्ष की वार्षिक सदस्यता को बढ़ा कर अब तीन वर्ष तक की वार्षिक सदस्यता का प्रावधान कर दिया गया है.

यदि पाठक एक-एक अंक बाजार से खरीदें तो उन्हें एक वर्ष में 36 रुपए देने पड़ते हैं लेकिन एक वर्ष की वार्षिक सदस्यता लेने पर 2 अंक मुफ्त भेजे जाते हैं, यानी 30 रुपए में 12 अंक. इसी तरह दो वर्ष की वार्षिक सदस्यता पर 72 रुपए खर्च न करके केवल 57 रुपए में ही 24 अंक मिल जाते हैं, यानी 5 अंक मुफ्त और यदि पाठक 7 अंक मुफ्त लेना चाहते हैं तो तीन वर्ष का वार्षिक चन्दा 87 रुपए भेजें व आविष्कार के 7 अंक मुफ्त पाएं.

आप आज ही तीन वर्ष का वार्षिक चन्दा 87 रुपए 'बैंक डिमांड ड्राफ्ट' द्वारा एन॰ आर॰ डी॰ सी॰ के नाम भेजें व लगातार तीन वर्ष तक नियमित आविष्कार पढ़ने का आनन्द उठाएं.

यदि आपकी वार्षिक सदस्यता समाप्त हो गई है तो भी आप तीन वर्ष का चन्दा भेज कर आने वाले तीन वर्षों तक नियमित 'आविष्कार' पढ़ सकते हैं.

अपनी वार्षिक सदस्यता व पते में परिवर्तन (यदि कोई हो) के लिए लिखें :

उत्पादन अधिकारी

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन

(भारत सरकार का उपक्रम)

20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र

कैलाश कालोनी एक्सटेंशन

नई दिल्ली-110048

ग्राम : अनुसंधान विकास

फोन : 6418615

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंजन ईंधन के रूप में बायोगैस

❑ प्रो॰ ए॰ एन॰ माथुर एवं
❑ विरेन्द्र कुमार विजय

❑ पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के निश्चित अवधि तक उपलब्ध होने एवं निरन्तर बढ़ती कीमतों के कारण सभी देश अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के विकास एवं उपयोग की तरफ आकर्षित हो रहे हैं. वर्तमान में ऊर्जा के लिए कोयला, डीजल, पेट्रोल व प्राकृतिक गैस का ही अधिकतर उपयोग होता है. यदि इनकी खपत इसी दर से होती रही तो अगले कुछ ही दशकों में इन पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों की समाप्ति हो जाएगी. पैट्रोलियम पर आधारित अंतर्दहन इंजन, कृषि, उद्योग धन्धों एवं परिवहन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं. पारम्परिक ईंधनों के उपयोग से वातावरण प्रदूषित होता है जो जीवन पर प्रभाव डालता है. बिजली हर जगह उपलब्ध नहीं हो पाने के कारण भारत में कृषि कार्यों में अधिकतर डीजल इंजन का उपयोग किया जाता है. एक अनुमान के अनुसार यदि देश में कृषि कार्यों में डीजल की खपत वर्तमान दर से होती रही तो सन् 2000 तक यह 71 लाख टन तक पहुंच जाएगी.

सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जैव ऊर्जा, बायोगैस आदि ऐसे अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत हैं जिनके कभी समाप्त होने की संभावना नहीं है. साथ ही यह साधन सर्वत्र उपलब्ध हो जाते हैं. अपारम्परिक ऊर्जा के उपयोग से पैट्रोलियम की कमी की समस्या को कम किया जा सकता है. बायोगैस जिसे गोबर गैस भी कहते हैं सीधे ही अंतर्दहन इंजनों में ईंधन के रूप में उपयोग में लाई जा सकती है. भारत में बायोगैस के विस्तार व उसके उपयोग में लाने की अच्छी क्षमता है. एक आंकलन के अनुसार देश में उपलब्ध 25 करोड़ जानवरों से प्रतिवर्ष 57.5 करोड़ टन गोबर प्राप्त होता है. यदि इसका 66 प्रतिशत भी एकत्रित किया जा सके तो भी उससे प्राप्त होने वाली गैस की मात्रा 2242.5 घन मीटर प्रतिवर्ष होगी जो 1.166 करोड़ टन

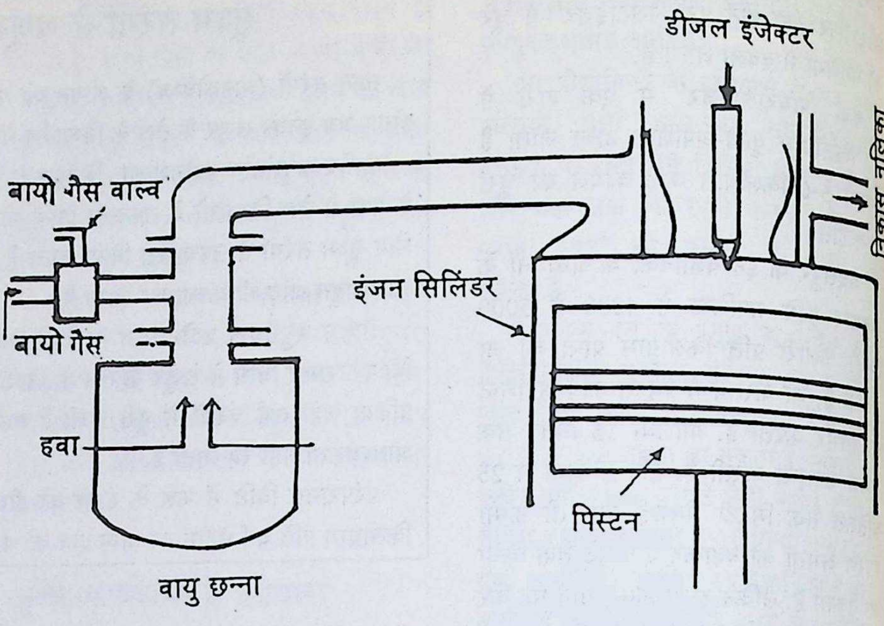

चित्र—1 बायो गैस चलित डीजल इंजन

डीजल के बराबर है. यदि इस बायोगैस का उपयोग किया जाए तो बहुत बड़ी मात्रा में डीजल पर खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा को बचाकर हम इस क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो सकते हैं.

बायोगैस संबंधित तथ्य

बायोगैस बहुत सुगम तरीके से पशुओं के गोबर, घास-फूस एवं अन्य जैविक पदार्थों को वायु की अनुपस्थिति में सड़ाने से प्राप्त होती है. बायोगैस में मुख्य रूप से मीथेन 60 प्रतिशत, कार्बन डाइआक्साइड लगभग 40 प्रतिशत एवं कुछ मात्रा में नमी व बहुत अल्पमात्रा में हाइड्रोजन सल्फाइड पाई जाती है. बायोगैस में मीथेन होने की वजह से ही यह ईंधन के रूप में उपयोगी है जो एक ज्वलनशील गैस है. बायोगैस साधारणतया खाना बनाने के काम में लाई जाती है. इसका उपयोग इंजन चलाने व लैम्प जलाने के लिए भी किया जाता है. करीब 25 किलोग्राम गोबर से 1 घनमीटर गैस प्राप्त होती है. इस गैस की उष्मा क्षमता लगभग 4700 किलो कैलोरी प्रति घनमीटर होती है.

इंजन ईंधन के रूप में बायोगैस

बायोगैस में मौजूद कार्बन डाइआक्साइड, नमी व हाइड्रोजन सल्फाइड इसके दहन में सहायता न करके इसकी दहन क्षमता को कम करते हैं. हाइड्रोजन सल्फाइड इंजन के भागों में जंग लगा देती है. अतः बायोगैस को इंजन ईंधन के रूप में काम लेने से पहले इन अनावश्यक अवयवों को हटाया जाना चाहिए. कार्बन डाइआक्साइड को पोटेशियम हाइड्रोक्साइड या सोडा पानी में से गुजार कर या स्क्रबर के द्वारा हटाया जाता है, जबकि हाइड्रोजन सल्फाइड को हटाने के लिए लोहे के टुकड़ों में से गैस को गुजारा जाता है जो रासायनिक प्रक्रिया कर इसे अब शोषित कर लेते हैं. पानी की वाष्प (नमी) को या तो संघनित कर या फिर कैल्शियम आक्साइड में से गुजार कर दूर करते हैं. इस प्रकार से साफ की गई गैस इंजन ईंधन के लिए उपयुक्त पाई जाती है. डीजल इंजन को बायोगैस से चलाने सम्बन्धी अध्ययनों में पाया गया है कि सुचारु रूप से चलाने के लिए बायोगैस में करीब 20 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड होना आवश्यक है.

अपने देश में कृषि कार्यों में मुख्यतया दो प्रकार के इंजन उपयोग में लाए जाते हैं. एक है पेट्रोल इंजन और दूसरा डीजल इंजन. डीजल अपेक्षाकृत सस्ते होने और सुगमता से उपलब्ध होने की वजह से आजकल डीजल इंजन ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक उपयोग में लाए जाते हैं. पेट्रोल इंजन तो पूर्णतया बायोगैस पर चलाया जा सकता है परन्तु डीजल इंजन को बायोगैस से चलाने के लिए बायोगैस के साथ-साथ थोड़ी मात्रा में डीजल की भी जरूरत पड़ती है. जब इस इंजन का कम्प्रेशन स्ट्रोक पूरा होता है तो बायोगैस इंजन सिलिन्डर में इस स्थिति में नहीं पहुंचती कि इसका अपने आप दहन हो जाए. इसलिए दहन के लिए थोड़ी मात्रा में डीजल का छिड़काव किया जाता है और इस प्रकार शक्ति मिलती है. प्रयोगों में पाया गया है कि बायोगैस द्वारा अधिकतम 80 प्रतिशत तक डीजल की बचत होती है. डीजल इंजन में करीब 0.5 घनमीटर बायोगैस प्रति अश्वशक्ति प्रति घंटा खर्च होती है, अर्थात एक पांच अश्वशक्ति इंजन को एक घंटे तक चलाने के लिए करीब 2.5 घनमीटर गैस की आवश्यकता पड़ती है.

काम करने लगता है. इसका मुख्य लाभ यह है कि बायोगैस नहीं होने पर भी इससे काम लिया जा सकता है.

बायोगैस से प्रदूषण में कमी

पैट्रोलियम ईंधनों की जगह बायोगैस को काम में लाकर वायुमंडल में प्रदूषण कम किया जा सकता है. पाया गया है कि बायोगैस की वजह से इंजन में दहन अच्छी तरह होता है जिससे कम प्रदूषित धुआं निकलता है. बायोगैस की वजह से इंजन की तापीय उपयोग क्षमता भी बढ़ जाती है. किर्लोस्कर इंजन लिमिटेड द्वारा दिए गए आंकड़ों के अनुसार जब इंजन पूर्ण रूपेण डीजल पर चलता है तो उसके द्वारा छोड़े गए धुएं की सघनता (घनत्व) 1.5 बोश्च इकाई होती है जबकि बायोगैस द्वारा संचालित डीजल इंजन द्वारा छोड़े गए धुएं की सघनता केवल 0.5 बोश्च इकाई होती है. आर्टिज (1918) ने इंजन को लम्बे समय तक बायोगैस पर चलाने के बाद पाया कि डीजल इंजन में बायोगैस के उपयोग से उसके कार्यकाल में वृद्धि होती है.

सारणी—विभिन्न कार्यों में गैस की खपत

कार्य		गैस की खपत मात्रा (घन मीटर में)
1. खाना बनाने	प्रति व्यक्ति प्रति दिन	0.24
2. रोशनी	100 कैन्डल पावर प्रति घंटा	0.13
3. डीजल इंजन	80 प्रतिशत डीजल की बचत प्रति अश्व शक्ति	0.50
4. बिजली	एक किलोवाट घंटा	0.65

बायोगैस से चलाने के लिए डीजल इंजन सुधार

डीजल इंजन को बायोगैस से चलाने के लिए इसमें हल्के से परिवर्तन करने पड़ते हैं. इंजन के इनलेट मेनीफोल्ड में वायु के साथ बायोगैस के जाने का प्रावधान बनाया जाता है. इंजन में डीजल की मात्रा नियंत्रित करने की व्यवस्था भी होती है. आजकल द्विईंधन इंजन भी बाजार में उपलब्ध हैं जिनमें बायोगैस और डीजल का उपयोग होता है. जब बायोगैस उपलब्ध नहीं होती तो उसका उपयोग कर लिया जाता है, पर जब बायोगैस उपलब्ध नहीं होती तो इंजन अपने आप पूरी तरह डीजल पर

इस प्रकार आज के समय में बायोगैस आंतरिक दहन इंजनों के लिए एक ऐसा सस्ता व गैर-पारम्परिक ईंधन है जिसे ग्रामीण क्षेत्रों में सुगमता से उपयोग में लाया जा सकता है. इसके उपयोग से पैट्रोलियम पर हमारी निर्भरता तो कम होगी ही, बढ़ते प्रदूषण को भी कम किया जा सकेगा और हमारी आत्मनिर्भरता बढ़ेगी. ❑

जैव-चुम्बकत्व और मस्तिष्क-हृदय रोग निदान

❑ चन्द्रभान शर्मा

❑ विद्युत और चुम्बकत्व का चोली दामन का साथ है. एक से दूसरे में परिवर्तन के उदाहरण जेनरेटर और मोटर हैं. बिजली के तारों की कुंडली के बीच चुम्बक घुमाने से विद्युत-धारा उत्पन्न होती है और यदि विद्युत-धारा युक्त कुंडली के मध्य चुम्बक रखा जाए तो वह मोटर की तरह चक्कर लगाने लगेगा. ऐसा नहीं है कि विद्युत केवल निर्जीव पदार्थों में ही होती है, वह जीवित पदार्थों में भी मौजूद है. पेड़ पौधों और जंतुओं में पाई जाने वाली विद्युत को जीव-विद्युत कहते हैं. मनुष्यों में सम्वेदना का संचार नाड़ियों में विद्युत संकेतों के संवहन से होता है. यही नहीं, हृदय और मस्तिष्क की क्रियाएं भी सूक्ष्म विद्युत-स्पंदनों द्वारा संचालित होती हैं.

यह सच है कि विद्युत और चुम्बकत्व को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता. जब विद्युत शरीर के सतत क्रियाशील अंगों, जैसे हृदय और मस्तिष्क के कोषों में होकर प्रवाहित होती है तो उस क्षेत्र में सूक्ष्म चुम्बकत्व भी उत्पन्न हो जाता है. इस चुम्बकत्व को जैव-चुम्बकत्व कहते हैं. जैव चुम्बकत्व का इतिहास लगभग 20 वर्ष पुराना है. यह अब वैज्ञानिकों के आकर्षण का केंद्र बन गया है क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क तथा हृदय में हो रही सामान्य व असामान्य प्रक्रियाओं से संबंधित विद्युतीय गतिविधि को सही-सही जाना जा सकता है. अब तक हृदय और मस्तिष्क की ये अनियमितताएं इलैक्ट्रोकोर्डियोग्राम तथा इलैक्ट्रोएनसिफेलोग्राम नामक यंत्रों से उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर मालूम की जाती है. इन यंत्रों को क्रमशः हृदय और मस्तिष्क से इलैक्ट्रोडों द्वारा जोड़ा जाता है. आन्तरिक विद्युतीय गतिविधि के ग्राफ, जिन्हें इलैक्ट्रोकोर्डियोग्राफ तथा इलैक्ट्रोएनसिफेलोग्राफ कहते हैं, या तो यंत्र के पर्दे पर देखे जा सकते हैं या फिर उन्हें कागज पर अंकित कर लिया जाता है. चिकित्सक इन्हें जांच कर बता सकते हैं कि ये अंग ठीक से कार्य कर रहे हैं या उनमें कोई रोग है. परन्तु इन दोनों की अपनी सीमाएं हैं. इलैक्ट्रोएनसिफेलोग्राफ से प्राप्त विद्युत संकेत मस्तिष्क के सभी विद्युत स्रोतों से आने वाली सूचनाओं का सम्मिश्रण होते हैं. इनसे यह सुनिश्चित करना कठिन होता है कि संबंधित स्रोत इलैक्ट्रोड से कितनी दूर हैं तथा उस संकेत की शक्ति कितनी है.

मानव अंगों में जैव-चुम्बकत्व का पता लगाने के बाद वैज्ञानिकों ने मैग्नेटोकार्डियोग्राम तथा मैग्नेटोएनसिफेलोग्राम नामक यंत्रों का विकास किया है. इनके विकास में वास्तव में विज्ञान की हाल के वर्षों में विकसित नई शाखाओं जैसे अतिचालकता तथा जैव-विद्युत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि का महत्वपूर्ण सहयोग है. इन यंत्रों द्वारा विद्युत के उद्गम का सही स्थान मालूम हो जाता है तथा उनकी सही शक्ति का अन्दाजा भी लगाया जा सकता है.

सन् 1911 में केमरलिंग ऑन्स नामक वैज्ञानिक ने सबसे पहले अतिचालकता का पता लगाया. सामान्य रूप से विद्युत के चालक धातु तीन प्रकार के होते हैं. पहले सुचालक–जिनमें होकर विद्युत आसानी से गुजर जाती है; दूसरे मध्य चालक जिनमें विद्युत बहुत कम मात्रा में प्रवाहित होती है और तीसरे कुचालक–जिनमें विद्युत बिल्कुल प्रवाहित नहीं होती. विद्युत चालन की क्रिया में वास्तव में धातु के इलैक्ट्रान विद्युत प्रवाह में बाधा उपस्थित करते हैं जिससे विद्युत का बहुत सा भाग ताप के रूप में नष्ट हो जाता है. कैमरलिंग ऑन्स ने देखा कि यदि किसी सुचालक का तापक्रम 4 डिग्री केल्विन तक कम कर दिया जाए तो विद्युत बिना किसी अवरोध के उसमें प्रवाहित होती है. इसी स्थिति को अतिचालकता कहते हैं. आजकल इस क्षेत्र में बहुत तेजी से कार्य हो रहा है तथा यह प्रयत्न किए जा रहे हैं कि ऐसे अतिचालकों का विकास किया जाए जो ऊंचे तापक्रमों पर भी इस गुण को प्रदर्शित कर सकें. अतिचालकों के अनेकों संभावित उपयोग हैं विशेष कर उद्योगों और चिकित्सा में.

अतिचालक पदार्थों पर आधारित है एक महत्वपूर्ण युक्ति-जॉसेफसन्स जंक्शन. इस युक्ति में अतिचालक पदार्थ की दो सतहों के बीच में किसी कुचालक की एक सतह लगा दी जाती है. इस युक्ति का लाभ यह है कि इसमें वोल्टेज का परिवर्तन बहुत तेज गति से होता है तथा विद्युत की खपत भी अत्यन्त कम होती है. यदि किसी अतिचालक तार के लूप में एक से अधिक जॉसेफसन्स जंक्शन लगा दिए जाएं तो वह उपकरण 'स्क्विड' (सुपरकंडक्टिंग क्वांटम इन्टरफियेरेन्स डिवाइस) कहलाता है. 'स्क्विड' द्वारा अत्यंत सूक्ष्म वोल्टेज परिवर्तनों को भी मापा जा सकता है. मैग्नेटोकार्डियोग्राम तथा मैग्नेटोएनसिफेलोग्राम में 'स्क्विड' के उपयोग से विद्युतीय परिवर्तनों से उत्पन्न सूक्ष्म चुम्बकीय संकेतों का आसानी से पता लगाया जाता है.

अमेरिका की फोर्ड मोटर कम्पनी के वैज्ञानिक जैम्स जिमरमान ने सबसे पहले 'स्क्विड' का निर्माण किया और उसमें सततः सुधार करते रहे. दुर्भाग्य से वे इसका कोई लाभदायक उपयोग नहीं खोज पाए. कहते हैं कि जिमरमान द्वारा विकसित 'स्क्विड' इतनी संवेदनशील थी कि जब भी वे अपनी प्रयोगशाला में धातु की कुर्सियों को इधर-उधर करते यह यंत्र इन परिवर्तनों को संकेतों द्वारा प्रदर्शित करता. जिमरमान के साथी यंत्र की इस प्रक्रिया को बड़े कौतुहल से देखते.

प्रकृति के नियम बड़े विचित्र हैं. जिमरमान द्वारा विकसित उपलब्धि की व्यवहारिक उपयोगिता का श्रेय जाना था इलिनाय विश्वविद्यालय के भौतिकशास्त्री डेविड कोहेन को. कोहेन ने कुछ वर्ष पूर्व ही उच्च ऊर्जा भौतिकी में अपना अध्ययन छोड़ जैव-विद्युत विषय से नाता जोड़ा था. वे हृदय की चुम्बकीय तरंगों को एक चुम्बक-निरपेक्ष कक्ष में चुम्बकीय प्रेरक कुंडली की मदद से मापने का प्रयोग कर रहे थे. उन्होनें मस्तिष्क की चुंबकीय तरंगों को मापने का प्रयास भी किया जो हृदय की तरंगों के मुकाबले में 500 गुणा कमजोर होती है.

इसी दौरान कोहेन के एक सहयोगी ने उन्हें जिमरमान द्वारा विकसित 'स्क्विड' के बारे में बताया और उनसे सम्पर्क स्थापित करने की सलाह दी. कोहेन ने जिमरमान को अपने यहां तंत्र सहित आने का निमंत्रण दिया. सन् 1970 वर्ष की पूर्व संध्या, कोहेन की चुम्बक निरपेक्ष प्रयोगशाला में यंत्र स्थापित हो चुका था. ज्यों ही जिमरमान ने कक्ष में प्रवेश किया तो कोहेन ने देखा कि यंत्र जिमरमान के हृदय के चुम्बकीय क्षेत्र को स्पष्ट रूप से दिखा रहा है. जिमरमान, कोहेन और एडगर ऐडिलसेक ने, जो कोहेन को इस कार्य में आर्थिक सहायता दे रहे थे तथा जिन्होंने उसे जिमरमान से मिलने की सलाह दी थी, सम्मिलित रूप से 'जनरल ऑफ एप्लाइड फिजिक्स' में इस प्रयोग के बारे में पहला लेख प्रकाशित किया. यह लेख ही विज्ञान की इस नई शाखा—जैव-चुम्बकत्व-की नींव था.

बाद में किए गए प्रयोगों से इन वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि फेफड़ों में अवरोध का पता भी चुम्बकीय पद्धति से किया जा सकता है. मैग्नेटोऐनसिफेलोग्राम की मदद से मिरगी के रोगी के मस्तिष्क में मौजूद प्रभावित तन्तुओं के स्थान का सही पता लगाया जा सकता है तथा उन्हें हटाकर रोगी को रोगमुक्त किया जा सकता है. मैग्नेटोऐनसिफेलोग्राम तथा मैग्नेटोकार्डियोग्राम से मस्तिष्क तथा हृदय की गति पर गंभीर आपरेशनों के दौरान लगातार निगाह रखी जा सकती है. चूंकि इन यंत्रों का विकास अभी हाल में ही हुआ है अतः ये परम्परागत यंत्रों के मुकाबले अधिक महंगे हैं. इन्हें सभी बड़े अस्पतालों में स्थापित किए जाने तथा कम खर्चीला बनाने में समय लगेगा. □

खाद्य-पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिए विकिरणन

□ डा॰ भोला नाथ चतुर्वेदी

□ खाद्य-पदार्थों को सुरक्षित रखने की मनुष्य की प्रवृत्ति बहुत पुरानी रही है क्योंकि खाद्य-पदार्थ, चाहे वे किसी भी रूप में हों, बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं. अनाज बोने से काटने तक की स्थिति में उसमें कीड़े लग जाने का डर रहता है. इसलिए तरह-तरह की कीटाणु-नाशक दवाएं उस पर छिड़की जाती हैं.

अचार तथा मुरब्बे इत्यादि को सुरक्षित रखने का तरीका तो बहुत पुराना है जिसकी जानकारी हमारे यहां की अधिकतर महिलाओं को है. जब खेत से कट कर अनाज बाजार में आता है, तब भी उसे सुरक्षित रखने की आवश्यकता होती है, और जब उसे भंडार-घर में रखा जाता है—चाहे वह घरेलू हो या खाद्य-निगम का हो—तो उसे सुरक्षित रखने की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है.

अनाज के सुरक्षित भंडारण के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के कीटाणु-नाशक रसायनों का विकास किया जा चुका है. लेकिन इनका असर थोड़े समय तक ही रहता है, ये महंगे भी होते हैं और प्रदूषण भी फैलाते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे वैज्ञानिकों का यह सतत प्रयत्न रहा है कि खाद्य-पदार्थों को सुरक्षित रखने का कोई सरल और सस्ता तरीका निकल जाए. एक तरीका निकाला भी गया है, लेकिन अभी लोग उसका निर्विघ्न उपयोग करने से कतरा रहे हैं, क्योंकि उसका संबंध परमाण्विक विकिरण से है. यद्यपि विकिरण से कैंसर जैसे रोगों का उपचार संभव हो गया है, लेकिन किसी खाद्य-पदार्थ का विकिरणन द्वारा सुरक्षित रखने पर लोग आसानी से भरोसा नहीं कर पा रहे हैं. अब यह तकनीक काफी विकसित हो गई है और वैज्ञानिकों को विश्वास है कि यह निरापद है. इस से डर केवल मनोवैज्ञानिक ही है.

लुई पाश्चर के नाम से सभी परिचित हैं जिसने रोगाणुओं के विनाश की पद्यति विकसित की थी और जिसे 'पास्चराइजेशन' नाम से जाना जाता है. वस्तुतः इसी तरीके से शुद्ध किया हुआ दूध हम पीते हैं. जब यह तरीका काम में लाया जाने लगा तब तो इसे भी लोगों ने संदेह की दृष्टि से देखा था. लेकिन चूंकि दूर के स्थानों तक दूध ले जाने से वह खराब हो जाता था इसका पास्चरीकरण करना जरूरी हो गया और क्योंकि लोग इस तरीके को संदेह की नजर से देखते थे, इसका इस्तेमाल छिपे-छिपे किया गया. काफी समय तक उपभोक्ता इस तरह के दूध को बिना उसके बारे में जाने हुए ही पीते रहे.

गामा किरणों द्वारा खाद्य-पदार्थों को कीटाणुरहित किया जाना आधुनिक विज्ञान की सबसे नई देन है. इसके द्वारा आलू, प्याज, मसाले तथा मछली इत्यादि को बहुत दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है. मछली ऐसा खाद्य-पदार्थ है जो बहुत जल्दी खराब हो जाता है लेकिन गामा किरणों द्वारा विकिरणित करने के बाद इसे काफी दिन सुरक्षित रखा जा सकता है. संसार के कृषि वैज्ञानिक प्रयास कर रहे हैं कि गामा किरणों द्वारा विकिरणित खाद्यान्न को पूरी तरह हानिरहित रखा जा सके.

यह सच है कि उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका तथा डेनमार्क आदि देशों में जहां तरह-तरह के खाद्यान्नों के विकिरणन द्वारा सुरक्षित बनाकर उपभोक्ताओं को देने का प्रयत्न किया जा रहा है, वहां के निवासी इन खाद्यान्नों को अभी तक पूरी तरह अपना नहीं पाए हैं. अमेरिका के चूजों को एक तरह की बीमारी से सुरक्षित रखने के लिए भी विकिरणन का तरीका अपनाया गया है और लोगों में किसी हद तक इस तरीके के प्रति गलत धारणाएं दूर भी हुई हैं. लेकिन जब यही तरीका दूसरे खाद्यान्नों के लिए प्रयुक्त किया जाता है तो लोग सशंकित हो जाते हैं. दक्षिणी अमेरिका में जहां आमों की पैदावार अधिक है तथा आम जल्दी खराब हो जाते हैं इस तरीके को सफलतापूर्वक अपनाया गया लेकिन लोगों का इस पर पूरा विश्वास न होने के कारण कुछ दिनों बाद इसे त्याग दिया गया. डेनमार्क में भी आलू की पैदावार के लिए इसका उपयोग किया गया लेकिन लोगों की शंका के कारण इसे छोड़ना पड़ा.

भारत में भी कुछ चुने हुए खाद्य-पदार्थों जैसे आलू, प्याज तथा मसालों इत्यादि को भाभा परमाणु संस्थान द्वारा इस तरीके से सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है लेकिन अभी यह कहना कठिन है कि जनता इस तरह के खाद्यान्नों का उपयोग करने में हिचकिचाहट नहीं दिखाएगी. इसके लिए यह जरूरी है कि

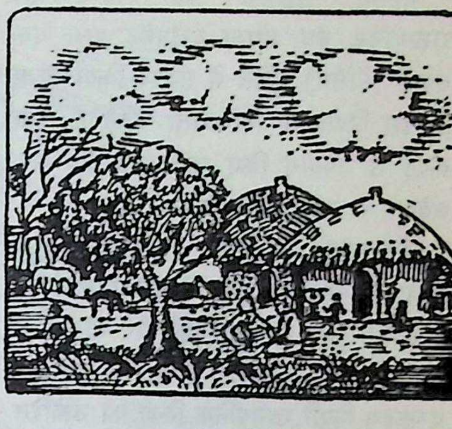

सरकार इस तरह के प्रयोगों के सुरक्षित होने की पूरी जिम्मेदारी ले.

संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या तथा उसी के साथ खाद्यान्नों की बढ़ती उपज को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि उन्हें पूरी तरह सुरक्षित रखने का उपाय ढूंढा जाए जिससे वह ज्यादा समय तक टिक सकें और वक्त पड़ने पर काम में आ सके. विकिरणन तरीका परमाणु युग की देन है. यदि इसे पूरी तरह सुरक्षित बनाया जा सके तो यह विश्व की खाद्यान्न समस्या को काफी हद तक दूर कर सकेगा तथा खाद्यान्नों को भंडारगृहों में रखने की कठिनाइयों से छुटकारा दिला सकेगा. ☐

अनेक समस्याओं का समाधान करेगा बायोसैन्सर

☐ विनीता सिंघल

☐ माइक्रोइलैक्ट्रानिक और जैव-प्रौद्योगिकी पर आधारित कुछ ऐसे आविष्कार हैं जो अभी विकास की प्रारंभिक अवस्था में हैं किन्तु जिनसे मानव कल्याण के लिए अनेक आशाएं हैं. इनमें से ही एक है बायोसेंसर अर्थात जैव-संवेदक. जैव-संवेदक वास्तव में रासायनिक रूप से सक्रिय ऐसी विद्युत युक्तियां हैं जो जैव-रासायनिक तत्वों को अलग करती हैं और प्राप्त सूचनाओं को वैद्युत संकेतों में बदलती हैं. जैव-संवेदक, जैव घटकों और एक भौतिक उपकरण के बीच का एक ऐसा संकर (हाइब्रिड) पदार्थ है जिसे तीव्रगामी विश्लेषण और मापन के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है. जैविक संसूचक या बायोडिटेक्टर का काम मिश्रणों में से विशिष्ट तत्व को अलग करना होता है. जैव-संवेदक का यह केंद्रीय कार्यकारी अवयव जैविक रूप से सक्रिय घटक, कोई प्रतिजीव (एन्टीबॉडी), बैक्टीरिया, पादप कोशिका अथवा कोई एन्जाइम हो सकता है. वैसे अधिकतर एन्जाइम को ही जैविक घटक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है.

जैव-संवेदक का एक महत्वपूर्ण भाग है उसका भौतिक घटक जो एक प्रकार का ट्रांस्ड्यूसर होता है. यह जैविक संसूचक द्वारा दिए गए संकेतों को एक नापने योग्य परिमाण में बदल देता है. यह एक मीटर की तरह होता है और जैविक संसूचक द्वारा दिए गए संदेश को एक संकेतक द्वारा अथवा बदलते हुए रंगों द्वारा प्रदर्शित करता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैविक संसूचक को स्व-संसक्ति, रासायनिक बंध अथवा एन्ट्रेपमेंट द्वारा एक संवेदी (सेंसिंग) युक्ति से संलग्न किया जाता है. इस क्रिया को निष्क्रियता कहते हैं. ऐसा करने से उपयोग किए जाने वाले जैव अणु संवेदक की सतह से चिपके रहते हैं.

जैव-संवेदी का प्रमुख घटक ट्रांसड्यूसर जैविक क्रियाओं को संकेत में परिवर्तित करता है जिससे उन्हें सुगमतापूर्वक और शीघ्रता से मॉनीटर किया जा सकता है जैसे कि जब कुछ एन्जाइम किसी रासायनिक क्रिया को उत्प्रेरित करते हैं तो काफी मात्रा में उष्मा निकलती है. इन क्रियाओं को मॉनीटर करने वाले ट्रांस्ड्यूसर से तापमापक का उपयोग किया जा सकता है. ऐसे ट्रांस्ड्यूसर का उपयोग किण्वन उद्योग में ग्लूकोज, लैक्टोज आदि का सान्द्रण ज्ञात करने के लिए करते हैं. केवल उन रासायनिक क्रियाओं को ही जिनमें उष्मा निकलती है को ही ट्रांस्ड्यूसर द्वारा मॉनीटर नहीं किया जा सकता, जिन क्रियाओं में पदार्थ का रंग बदल जाता है, उन क्रियाओं को भी ट्रांस्ड्यूसर से मॉनीटर किया जा सकता है.

जैव-संवेदक दो प्रकार से पहचान करने में सक्षम होते हैं. एक, सक्रिय रूप से और दूसरा निष्क्रिय रूप से. सक्रिय परिमाण में, जैव रासायनिक घटक और ट्रांस्ड्यूसर दोनों अनेक क्रियाओं में भाग लेते हैं जो किसी विश्लेषक की उपस्थिति के कारण होती है जैसे कि ग्लूकोज संवेदक में आक्सीजन. पानी और उत्प्रेरक एन्जाइम ग्लूकोज आक्सीडेस की उपस्थिति में ग्लूकोज, ग्लूकोनिक अम्ल में बदल जाता है. यहां ग्लूकोज एक विश्लेषक का काम करता है और ग्लूकोज आक्सीडेस संवेदक का जैव-रासायनिक भाग है.

निष्क्रिय परिमाण में पहचान मॉनीटर सीधे क्रियाओं में भाग नहीं लेता. ग्लूकोज का प्रकाशीय संवेदक इसका प्रमुख उदाहरण है.

जैव-संवेदक बनाने के लिए पादप अथवा जीव स्रोतों से प्राप्त ऊतक पदार्थों को सफलतापूर्वक जैव उत्प्रेरक घटकों के रूप मे प्रयुक्त किया जा सकता है. हाल में देखा गया है कि पौधे के कुछ विशेष भाग जैसे फल, फूल पत्तियों आदि में जैव उत्प्रेरक के विशेष गुण होते है. ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पौधे की वृद्धि, प्रजनन और खाद्य संसाधन से संबंधित सभी रचनाओं को प्राकृतिक रूप से एकत्रित किया जाता है और उनकी देखभाल की जाती है.

जैव-संवेदक अनेक क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध होंगे और इनसे अनेक समस्याओं का समाधान हो सकेगा. जैसे चिकित्सा के क्षेत्र में उन्हें किसी रोग के निदान के लिए अथवा किसी अंग विशेष की क्रियाओं का पता लगाने के लिए उपयोग किया जाता है. खाद्य उद्योग में उत्पादन के समय खाद्य पदार्थों के गुणों के विश्लेषण के लिए भी जैव-संवेदक उपयोगी सिद्ध हुए हैं. पर्यावरण में फैलते प्रदूषण की रोकथाम और जल में गंदगी का पता लगाने के लिए भी इनकी उपयोगिता देखी जा रही है. इसके अतिरिक्त विश्लेषिक रसायन, पशु-चिकित्सा विज्ञान और अनेक विस्फोटकों के संसूचन में भी इनके उपयोग से संबंधित अनुसंधान जारी हैं.

कैम्ब्रिज लाइफ साइंसेज में वैज्ञानिक मधुमेह के रोगियों के लिए ऐसे जैव-संवेदक विकसित करने में लगे हैं जो रक्त में ग्लूकोज का स्तर मॉनीटर करने में सक्षम होंगे. जैव-संवेदक को मानव शरीर में प्रविष्ट कराना पूर्ण रूप से सुरक्षित और विश्वसनीय है.

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैव-संवेदक नैदानिक विश्लेषणों, स्वास्थ्य की देखभाल, पशु-चिकित्सा विज्ञान, कृषि, औद्योगिक प्रक्रियाओं और प्रदूषण नियंत्रण आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण हैं. इनसे संबंधित अनेक चुनौतियां वैज्ञानिकों के सम्मुख हैं जिसके लिए जरूरत है अनुसंधान कार्यों में तेजी लाने की क्योंकि प्रगति अभी बहुत धीमी है. □

खाड़ी-युद्ध ने बो दिए हैं—खाद्य संकट के बीज

□ रेने वेल्वे

□ खाड़ी-युद्ध ने धरती के जिस अत्यंत महत्वपूर्ण और पुरातन प्राकृतिक संसाधन को खतरे में डाल दिया है वह पेट्रोल न होकर वहां की खाद्य फसलें हैं. गेहूं, बार्ली तथा अन्य कई फसलों की विविध किस्मों का मुख्य केंद्र मध्यपूर्व के देश ही हैं. यह वंशाणुगत विरासत ही इस युद्ध के कारण खतरे में है और चूंकि पश्चिम के देशों ने मध्यपूर्व के अनाज बीजों के भंडार अपने वंशाणु-बैंकों के तालों में बंद कर रखे हैं, किसानों के खेतों में जो किस्में इस समय उग रही हैं उन्हें बचाए रखने के उपाय तत्काल करना जरूरी हो गया है.

मध्यपूर्व के किसानों ने कृषि के क्षेत्र में हमेशा महत्वपूर्ण योगदान किया है लेकिन उन्हें इसका वाजिब श्रेय कभी नहीं मिला. गेहूं के अलावा वे राई, बार्ली, जौ, कई प्रकार की दालें, फल, मसाले तथा फलियां उगाते हैं. आज अरबी किसान इन विविध फसलों की किस्मों के संरक्षक हैं, जो कि न केवल क्षेत्र के लोगों की खुराक हैं बल्कि उनमें कीट-प्रतिरोध तथा सूखा, व्याधि तथा शीत प्रतिरोध जैसी कई वानस्पतिक विशिष्टताएं भी हैं.

लेकिन परंपरागत रूप से उगाई जाने वाली इन हजारों फसल-किस्मों का स्थान अब कुछ मुट्ठीभर नई, 'अधिक पैदावार' देने वाली तथा एक जैसी 'आधुनिक' किस्में लेती जा रही हैं. इनके लिए बनाई गई सिंचाई योजनाओं के कारण जो नुकसान हो रहा है वह उस विशाल इलाके के डूब में आ जाने से बढ़ गया है जहां परंपरागत ढंग से खेती की जाती है और अब इसी इलाके में युद्ध छिड़ने से सारा क्षेत्र वंशाणु विनाश की गिरफ्त में आ गया है. परंपरागत किस्मों तथा उनकी कुछ जंगली प्रजातियों के बीज नमूने तो दुनिया भर के वंशाणु बैंकों में सुरक्षित रखे गए हैं. लेकिन ये संग्रह अधूरे हैं. जिस तरह की विविधता यहां उपलब्ध है उसके एक छोटे से अंश का ही संग्रह किया जा सका है तथा उस संग्रहित नमूने के बारे में भी बहुत-सी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं है. कई कथित रूप से 'गौण' फसलों को स्थानीय रूप से काफी महत्वपूर्ण होने के बावजूद छोड़ दिया गया है.

मध्यपूर्व का सबसे बड़ा वंशाणु बैंक इजराइल में तेल अबीब से कुछ ही किलोमीटर के फासले पर स्थित है. अन्य बड़े वंशाणु बैंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेहरान (ईरान) तथा तुर्की के पश्चिमी तट पर स्थित हैं. लेकिन मध्यपूर्व की फसलों की विश्व की सम्पूर्ण मात्रा का बहुत ही छोटा हिस्सा उन किस्मों की खेती करने वाले देशों के पास है. इनके पास जंगली गेहूं की 10 प्रतिशत से कम, परिष्कृत गेहूं की 5 प्रतिशत, 2 प्रतिशत ओट (जई), 3 प्रतिशत बाजरा तथा बार्ली की 1 प्रतिशत किस्मों के बीज ही संग्रहित हैं. शेष वंशाणु बीज या तो उन विदेशी वंशाणु-बैंकों या अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थानों में रखे गए हैं जिनका नियंत्रण तथा वित्तीय आधार उत्तर के समृद्ध देशों के हाथों में है. सीरिया के अलेपो स्थित अर्द्ध-बंजर-क्षेत्रीय कृषि का अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र ऐसा ही एक संस्थान है जो कि तुर्की सीमा से लगा हुआ है तथा युद्ध क्षेत्र के फैलने की स्थिति में वह भी खतरे में पड़ सकता था.

मध्यपूर्व के जनन-द्रव्यों (जर्मप्लाज्म) के सबसे बड़े जखीरे उत्तर के देशों, खासतौर से इटली, जर्मनी तथा अमेरिका के सरकारी वंशाणु-बैंकों में पाए जाते हैं. हालांकि युद्ध से पीड़ित क्षेत्र के हिसाब से तो यह सुनने में अच्छी बात लगती है लेकिन वहां संग्रहित कई नमूनों की हालत के बारे में अनिश्चितता है तथा कई नमूनों की ठीक से पहचान भी नहीं की गई है. अमेरिका के सबसे बड़े वंशाणु-बैंक-कोलेरेडो स्थित राष्ट्रीय बीज भंडारण प्रयोगशाला में 1989 में की गई एक अधिकृत जांच से पता चला कि वहां एक तिहाई से भी कम नमूने स्वस्थ हालत में थे.

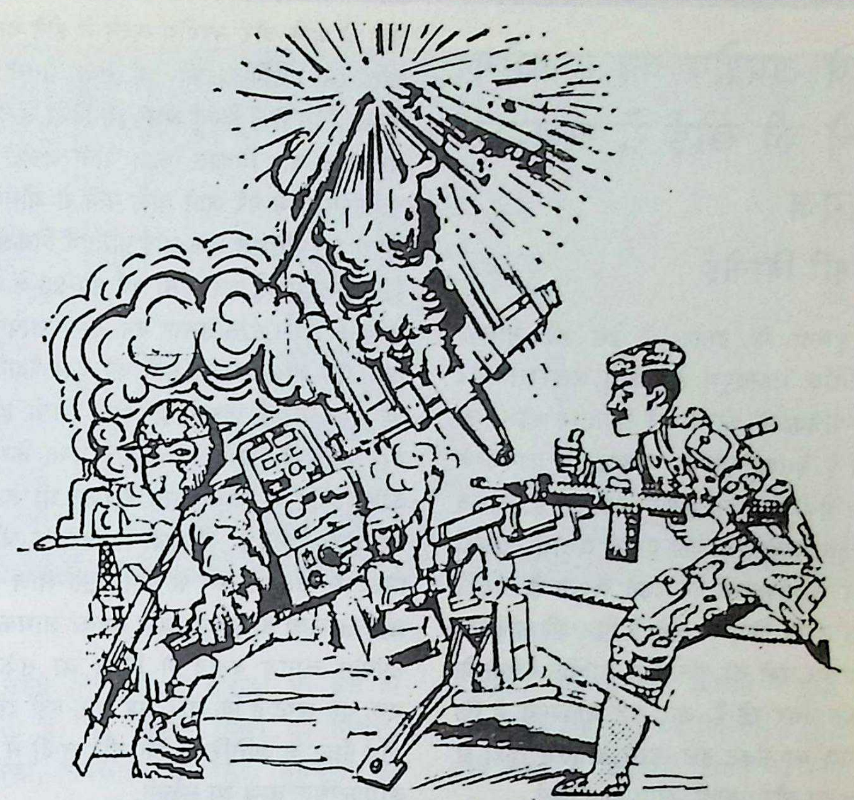

खाड़ी-युद्ध ने धरती के जिस अत्यंत महत्वपूर्ण और पुरातन प्राकृतिक संसाधन को खतरे में डाल दिया है वह पेट्रोल न होकर वहां की खाद्य फसलें हैं. चूंकि पश्चिम के देशों ने मध्यपूर्व के अनाज-बीजों के भंडार अपने वंशाणु-बैंकों के तालों में बंद कर रखे हैं, किसानों के खेतों में जो किस्में इस समय उग रही हैं उन्हें बचाए रखने के उपाय तत्काल करना जरूरी हो गया है.

इन तकनीकी समस्याओं के साथ कुछ राजनीतिक मसले भी जुड़े हुए हैं. ईराक के खिलाफ जो आर्थिक प्रतिबंध लगाए गए थे उनमें बीजों की आपूर्ति भी शामिल है तथा ईरान तथा अमेरिका के बीच मधुर संबंध न होने के कारण इस बात की उम्मीद भी नहीं की जा सकती कि ईरान को उसकी स्थानीय किस्में वापस मिल जाएंगी.

यदि थोड़ी देर के लिए मान लिया जाए कि युद्ध के दौरान मध्यपूर्व के वंशाणु-बैंक सीधे प्रहार के शिकार नहीं होंगे तो भी यदि इस क्षेत्र के देशों के बीच इसी ढंग से लड़ाईयां होती रहीं तो वहां वंशाणु-ह्रास की रफ्तार बढ़ जाएगी. यदि कृषि प्रणालियां गड़बड़ा गईं तो स्थानीय किस्मों के साथ उनसे संबंधित किसानो की जानकारी भी लुप्त हो जाएगी. जिन किसानों को उनकी जमीनें त्यागने के लिए कहा जाएगा उन्हें फिर से बुआई करने के लिए बीज खरीदने पड़ेंगे. युद्ध के महाविनाश की तुलना में देखने में यह नुकसान उतना नाटकीय भले ही न लगे लेकिन फसल विविधता पर उसका प्रभाव लगभग वैसा ही होगा.

अब जबकि खाड़ी-युद्ध समाप्त हो गया है, इस बात की सख्त जरूरत है कि स्थानीय किसानों की हर संभव मदद की जाए. खाद्यान्न सुरक्षा बहाल करने तथा वंशाणु ह्रास के दुष्परिणामों को टालने के लिए स्थानीय बीज आपूर्ति की स्थिति को फिर से जारी करना होगा. इसके लिए किसानों को उनके वंशाणु संसाधनों पर बेहतर नियंत्रण प्रदान करते हुए नई राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय संरक्षण रणनीतियां बनानी होंगी. समस्त विश्व में जलवायु परिवर्तन की चुनौती से हम पारंपरागत फसल-पौधों तथा उनकी रिश्तेदार वन्य-प्रजातियों के विशिष्ट गुणों को मिलाकर ही निपट सकते हैं. अंतिम विश्लेषण में तो ये वंशाणु-कूट संकेत ही उन तेल-क्षेत्रों की अपेक्षा कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण साबित होंगे, जिनके नियंत्रण के लिए ये देश इस वक्त आपस में लड़ रहे हैं **(सप्रेस द्वारा पेनोस, पर्यावरण कक्ष एवं गांधी शांति केंद्र के सहयोग से प्रस्तुत)** ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि अपशेष का उपयोग: गन्ने की खोई से अखबारी कागज

□ हरि विश्नोई

□ सूचना के प्रसार में प्रेस की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है. किन्तु अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं की कीमतें लगातार बढ़ती जा रही हैं. इसका एक कारण अखबारी कागज के दाम तेजी से बढ़ना बताया जा रहा है. कागज के इस बढ़ते मूल्य का दबाव अन्ततः पाठकों और उपभोक्ताओं पर पड़ने लगता है. यद्यपि कुछ उपाय किए जा रहे हैं फिर भी भारतीय समाचार पत्रों की दुनिया में आर्थिक बैचेनी के संकेत उभर रहे हैं. अतः यह आवश्यक है कि कागज का संकट हल करने के लिए तेजी से कुछ नए और प्रभावी उपाए किए जाएं.

हमारे देश में गन्ने की भरपूर उपज होती है और गन्ने की खोई को मुख्यतः ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है जबकि इसका उपयोग अखबारी कागज बनाने में बखूबी किया जा सकता है. सहकारी क्षेत्र की उर्वरक संस्था 'कृभको' में इस तरह की एक परियोजना पर विचार किया गया था कि गन्ने की खोई से अखबारी कागज बनाया जाए, किन्तु चीनी मिलों को खोई का विकल्प उपलब्ध कराया जाना जरूरी होगा ताकि उसे वे ईंधन के रूप में खोई के बदले इस्तेमाल कर सकें और कागज कारखानों को कच्चे माल के रूप में पर्याप्त मात्रा में खोई की उपलब्धता बनी रहे. कोयला, गैस तथा भाभड़ (फूंस) खोई का विकल्प हो सकती है.

उन्नत प्रौद्योगिकी और खोजबीन से अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि गन्ने की खोई द्वारा आयातित ग्लेज्ड किस्म का कागज बनाया जा सकता है. यद्यपि चीनी मिलों की खोई अत्यन्त महीन रेशे की तरह निकलती है, सुखाने की प्रक्रिया एवं उचित रख-रखाव के अभाव में लाखों टन गन्ने की खोई प्रतिवर्ष बर्बाद होती है जिसे बचाया जा सकता है. खोई को ठोस आकार प्रदान करने के बाद उसे पिंड बनाकर लाने ले जाने और उपयोग करने में होने वाली क्षति को यद्यपि काफी हद तक रोकने में सफलता मिली है किन्तु अभी इस दिशा में और अनुसंधान और विकास किया जाना जरूरी है. चीनी मिलों में पेरे जाने वाले गन्ने से औसतन 30 से 35 प्रतिशत तक खोई प्रतिवर्ष निकलती है. पिछले पिराई सत्र यानी वर्ष 89-90 में देश में कुल 1,64,626 हजार टन गन्ना उत्पादन हुआ था. आमतौर पर गन्ने की कुल पैदावार का एक तिहाई हिस्सा ही चीनी मिलों द्वारा पेरा जाता है, बाकी दो तिहाई गन्ना क्रेशर, कोल्हु आदि के काम आता है फिर भी आशा की जाती है कि 21 वीं सदी में भारतीय चीनी मिलों से प्रतिवर्ष कम से कम 330 लाख टन खोई उपलब्ध हो सकेगी और उसका लाभकारी उपयोग कागज बनाने में किया जा सकेगा. अतः यह स्पष्ट है कि खोई अब खोई नहीं रहेगी और ईंधन के अतिरिक्त रेशे और लुग्दी में भी अधिकाधिक काम आ सकेगी.

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम नेपा मिल्स लिमिटेड द्वारा 414 करोड़ रुपए की लागत से मुरादाबाद के पास अलीगंज में अखबारी कागज बनाने की एक इकाई लगाने की घोषणा की गई थी. 8.9 टन अखबारी कागज बनाने की वार्षिक क्षमता की यह इकाई देश में पहली होगी जो 50 प्रतिशत चिकना और 50 प्रतिशत सामान्य अखबारी कागज बनाएगी जिसमें गन्ने की खोई कच्चे माल के रूप में उपयोग की जाएगी. यह खोई उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों में चल रहे चीनी कारखानों से मिलेगी. इससे किफायती किन्तु अच्छा और सामान्य दोनों प्रकार का अखबारी कागज देश में उपलब्ध हो सकेगा जिससे विदेशी मुद्रा बचेगी. गन्ने की खोई के अतिरिक्त यूकेलिप्टिस, रासायनिक-यांत्रिक-लुग्दी तथा आयात किया हुआ गूदा भी कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जाएगा. किन्तु चिकने कागज में इसका अनुपात क्रमशः 40, 50 और 10 तथा सामान्य अखबारी कागज में 60 और 40 रहेगा.

इस प्रकार इस अकेले कारखाने को ही प्रति वर्ष 245 हजार टन गन्ने की खोई (50 प्रतिशत आर्द्रता) की आवश्यकता होगी. इसके अतिरिक्त एक सवाल यह भी है कि यह मिल चालू होने के बाद क्या कम से कम तीन वर्ष में पूर्ण क्षमता पर उत्पादन करने में समर्थ हो जाएगी? क्योंकि नेपा नगर में जो पहली इकाई चल रही है वह पिछले एक दशक में केवल एक वर्ष 87-88 में ही अपनी उत्पादन क्षमता का शत प्रतिशत उपयोग कर सकी है. अतः आवश्यकता इस बात की भी है कि अखबारी कागज उत्पादन के क्षेत्र में क्षमता-विस्तार तथा क्षमता उपयोग पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए.

यदि देखा जाए तो अखबारी कागज के

सारणी—स्थापित क्षमता और उत्पादन : नेपा मिल्स

वर्ष	स्थापित क्षमता (टन प्रतिवर्ष)	उत्पादन (टन प्रतिवर्ष)	क्षमता उपयोग (प्रतिशत)	मूल्य (करोड़ रुपए)
1955-65	30,000	5,453	परीक्षण उत्पादन	0.26
1965-66	30,000	30,348	10	3.20
1979-80	67,500	47,585	70	15.99
1980-81	67,500	51,285	76	19.51
1981-82	67,500	55,021	82	25.22
1982-83	67,500	57,310	85	29.11
1983-84	67,500	58,315	86	33.34
1984-85	67,500	64,921	96	40.39
1985-86	67,500	66,136	98	44.50
1986-87	67,500	66,971	99	53.95
1987-88	67,500	67,650	100	55.15
1988-89	67,500	62,150	92	57.23

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पादन में गन्ने की खोई देश में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकती है. किन्तु बड़े चीनी कारखानों तथा छोटी खांडसारी इकाइयों द्वारा ईंधन के रूप में उपयोग करने के लिए प्रतिवर्ष जितनी खोई की मांग रहती है यदि उसे जोड़ा जाए तो निःसन्देह प्रति हेक्टेयर गन्ने की औसत उपज में वृद्धि के उपाय करने होंगे तथा खोई की बरबादी को रोकना होगा.

उत्तर प्रदेश के राज्य नियोजन संस्थान अन्वेषण एवं उपयोग के प्रमाण ने भट्टियों के डिजाइन सुधार कर खांडसारी इकाइयों की समस्या हल कर दी है. अब गन्ने की गीली खोई को भी आसानी से उपयोग किया जा सकता है. इसके लिए सुधरी भट्टियां विकसित की गई हैं जिनके उपयोग से खोई सुखाने की समस्या नहीं रहती तथा भूमि और मजदूरी के साथ-साथ ईंधन की खपत में भी बचत होती है. फलस्वरूप इकाई को प्रतिकूल मौसम या वर्षा एवं कोहरा आदि में बंद नहीं करना पड़ता. साथ ही इन भट्टियों से काला धुआं भी नहीं निकलता जिससे पर्यावरण के प्रदूषण की सम्भावना कम रहती है. किन्तु इस प्रकार की खोजों की जानकारी सरलता से उपलब्ध होनी चाहिए. हमारी अर्थव्यवस्था में कृषि उपज वृद्धि का स्थान महत्वपूर्ण है, हरित क्रान्ति के बाद से कृषि उत्पादन में भरपूर वृद्धि हुई है किन्तु कृषि क्षेत्र में अपशिष्ट पदार्थों के उपयोग में नई प्रौद्योगिकी अपनाई जानी जरूरी है. चावल की भूसी से ईंट, सीमेंट जैसा पदार्थ, नारियल के रेशे से कायर आदि में सफलता मिली भी है. इसी प्रकार गन्ने की खोई का अधिकाधिक लाभकारी उपयोग भी चर्चा का विषय रहा है. सहकारी क्षेत्र में पेरे गन्ने की खोई से बिजली उत्पादन करने की दिशा में प्रयास चल रहे हैं. कारखानों के अलावा यह सस्ती बिजली आसपास के क्षेत्र के किसानों को भी उपलब्ध कराई जाएगी. अतः इस सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि अखबारी कागज के लिए भविष्य में गन्ने की खोई की भांति कोई अन्य कचरा भी ढूंढना होगा.

हमारे कृषि प्रधान देश में कृषि अपशेष का इस्तेमाल यदि उचित ढंग से किया जाए तो अरबों रुपए की बचत की जा सकती है. साथ

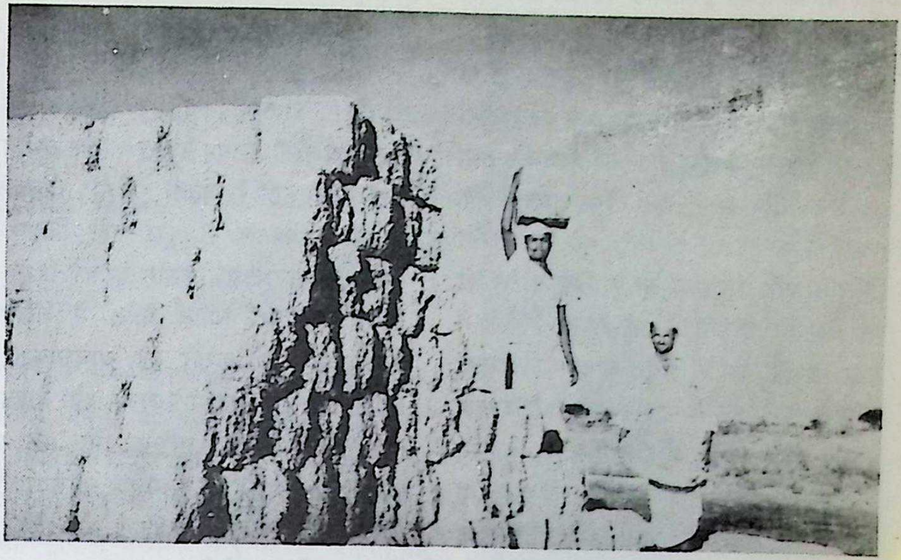

अखबारी कागज में आत्मनिर्भरता... गन्ने की खोई एक सरल उपाय

ही उसके निपटान की समस्या भी हल हो सकती है. गेहूं, भूसा, मक्का की गिल्ली, सरकंडा, नारियल का रेशा, मूंगफली का छिल्का, धान की भूसी आदि को विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जा सकता है.

गन्ने की खोई में करीब 50 प्रतिशत नमी होती है. सूखी खोई में करीब 65 प्रतिशत रेशा तथा 35 प्रतिशत गूदा होता है. हमारे देश में प्रतिवर्ष करोड़ों टन खोई उपलब्ध होती है जिसके द्वारा लाखों टन अखबारी कागज बनाया जा सकता है. बताया जाता है कि मांडिया मिल्स ने 90 प्रतिशत खोई का उपयोग करके लिखाई का कागज बनाने में सफलता प्राप्त की है. उसके बाद पैकिंग क्राफ्ट में खोई का इस्तेमाल काफी किया गया. अब चिकने अखबारी कागज बनाने की बारी है.

देश में अखबारी कागज बनाने वाली अधिकतर कागज मिलें मध्य प्रदेश, केरल, कर्नाटक तथा तमिलनाडु में हैं. क्रमश 76,500, 80,000, 75,000 तथा 50,000 टन प्रतिवर्ष क्षमता वाले इन कागज कारखानों से करीब 75 प्रतिशत अखबारी कागज की ही आपूर्ति हो पाती है, शेष अखबारी कागज विदेशों से आयात किया जाता है. एक मोटे अनुमान के अनुसार इस समय हमारे देश में प्रतिवर्ष करीब पौने आठ लाख टन अखबारी कागज की खपत है. जिस गति से हमारे देश में साक्षरता, आबादी और विकास में वृद्धि हो रही है उसे देखते हुए यह निश्चित है कि आने वाले समय में अखबारी कागज की मांग में वृद्धि होगी. विकसित देशों में प्रति व्यक्ति अखबारी कागज की खपत 5.6 किलोग्राम है. इसकी तुलना में भारत में केवल 0.56 किलोग्राम प्रति व्यक्ति खपत है जो 21वीं सदी में बढ़कर कम से कम एक किलोग्राम होने की आशा है.

नेशनल न्यूजप्रिंट एण्ड पेपर मिल्स लि० ने 1955 में, मैसूर पेपर मिल ने 1984 में, हिंदुस्तान न्यूज प्रिंट लि० ने 1982 में तथा तमिलनाडु न्यूजप्रिंट एण्ड पेपर्स लि० ने 1985 में उत्पादन शुरु किया था. वर्ष 86-87 के दौरान हमारे देश में अखबारी कागज का उत्पादन केवल 285 हजार टन था. अब इसका उत्पादन बढ़ाए जाने के प्रयास किए जा रहे हैं, किन्तु इसमें तेजी लाना आवश्यक है.

कागज उद्योग के अंतर्गत लुग्दी, कागज, गन्ना तथा अखबारी कागज को लिया गया है. किसी भी विकासशील देश के लिए निश्चय ही यह उद्योग महत्वपूर्ण होता है. पहली पंचवर्षीय योजना के शुरू में हमारे देश में चल रहे 17 कागज कारखानों की क्षमता मात्र 130 हजार टन थी, जबकि वर्ष 1987 में 288 इकाइयों की वार्षिक क्षमता 27.58 लाख टन हो गई. 1951 में 1.09 लाख टन कागज उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता था और वर्ष 1986 में यह 16 लाख टन हो गया था.

यदि आर्थिक पहलू और मार्केटिंग के मुद्दों पर नए सिरे से गौर किया जाए तो अपनी जरूरत भर का अखबारी कागज देश में बनाया जा सकता है. ध्यान देने योग्य बात है कि अखबारी कागज का कोटा देने की दीर्घकालीन नीति के बारे में सुझाव देने के लिए गठित की गई केलकर समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में कहा था कि देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध खोई के इस्तेमाल से देश में अखबारी कागज बनाया जाना चाहिए और तमिलनाडु न्यूजप्रिंट लि० ने इस दिशा में सफलता प्राप्त कर नया अवसर प्रदान किया था. केलकर समिति ने यह सुझाव इसलिए दिए थे क्योंकि उसने पाया था कि अखबारी कागज की मांग प्रतिवर्ष सात प्रतिशत की दर से बढ़ रही है.

केवल आयात पर निर्भर रहने से विदेशी मुद्रा खर्च होती है. यह प्रवृत्ति कागज उद्योग के हित में भी नहीं है. बढ़ती हुई मांग को केवल आयातित कागज से पूरा नहीं किया जा सकता. समाचार पत्र उद्योग के बड़े हिस्से को उचित दर पर पर्याप्त मात्रा में अखबारी कागज उपलब्ध कराने की आवश्यकता है ताकि समाचार पत्र-पत्रिकाओं को अखबारी कागज के इस्तेमाल में पूरी छूट मिल सके. यदि कागज ही उन्हें उचित मूल्य पर उपलब्ध होगा तो पाठकों पर बेवजह अर्थ बोझबढ़ने की संभावना भी कम होगी. ❑

क्या मुक्केबाजी अमानवीय नहीं ?

❑ डा० महेश कुमार शर्मा

❑ मुक्केबाजों में मुक्केबाजी के मुकाबलों के दौरान मस्तिष्क को पहुंचने वाली छोटी-छोटी क्षतियों के कारण ही अन्ततः उनमें पंच-ड्रंक रोग के लक्षण उभर आते हैं. पंच-ड्रंक रोग के बारे में सबसे पहले 1928 में बताया गया था. इस रोग से पीड़ित मनुष्य में मुख्य रूप से निम्न लक्षण उभर आते हैं: असपष्ट उच्चारित वाणी, अंगों की असमन्वित हरकत, असंतुलित चाल और क्षतिग्रस्त मानसिक बुद्धि का ठीक प्रकार से कार्य न करना.

वर्ष 1986 में इंग्लैंड में हैरो के क्लिनिकल रिसर्च सेन्टर के प्रोफेसर निक्होलास कौरसेलिस ने मुक्केबाजी से उत्पन्न तंत्रिका (न्यूरोलॉजिकल) तथा मानसिक परिणामों के विषय में काफी अध्ययन किया. मृत मुक्केबाजों के मस्तिष्कों के परीक्षण से उन्होंने पता लगाया कि मुक्केबाजों के मस्तिष्क में एक भिन्न और सष्ट प्रकार की क्षति हो जाती है जिससे उनके आचरण व व्यवहार में मनोभ्रंश अथवा उन्माद (डिमेन्शिया) जैसा परिवर्तन दिखाई देता है.

पंच-ड्रंक मुक्केबाजों के मस्तिष्क के विशिष्ट भागों विशेष रूप से मस्तिष्क-वृन्त (ब्रेन-स्टेम), अनुमस्तिष्क (सेरिबेलम) तथा प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था (सेरेब्रल कोर्टेक्स) के अंगों में अनेक तंत्रिका कोशिकाएं (न्यूरॉन) नष्ट हो जाती हैं. कोर्टेक्स की बड़ी विषम कोशिकाओं में मोटे तंत्रिका तंतु (न्यूरॉफाइब्रिल) हो जाते हैं जिन्हें टैंगल कहते हैं और जो उलझी हुई लटों के समान होते हैं. ये उन लोगों में भी पाए जाते हैं जो उन्माद यानी अल्जीमर रोग से पीड़ित रहते हैं. ऊपरी ब्रेन स्टेम के कृष्ण द्रव्य की कोशिकाओं को भी क्षति पहुंचती है. चाल को नियंत्रित करने वाली सेरिबेलम की कोशिकाएं— परकिंजे कोशिकाएं भी पंच-ड्रंक बॉक्सर में नष्ट हो जाती है. सेरेब्रल रीढ़ द्रव्य से भरे प्रमस्तिष्क गोलार्धों के मध्य स्थान, जिन्हें निलय (वेन्ट्रिकल) कहते हैं, बढ़ जाते हैं. आखिर में तंत्रिका ऊतकों (टिशू) के पर्ण जिन्हें सेप्टम कहते हैं और जो गोलार्धों को अलग करते हैं, पृथक हो जाते हैं अथवा फट भी जाते हैं.

अब तक अधिकतर पुरानी पीढ़ी के मुक्केबाजों की शव परीक्षा व चीर-फाड़ से ही विशेष रूप से दिमाग की खराबी का अध्ययन किया गया है. कुछ आलोचकों का कहना है कि बहुत अधिक शराब पीने, न्यूरोसाइफिलिस अथवा केवल वृद्धावस्था के कारण भी लोगों का मस्तिष्क खराब हो सकता है. परन्तु इनकी वजह से मस्तिष्क को हानि, मुक्केबाजी से उत्पन्न क्षति से भिन्न होती है.

मुक्केबाजी से किस प्रकार दिमाग को क्षति पहुंचती है, इसके कारण अभी भी ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं हैं. विश्वास किया जाता है कि साधारण और बहुत तेज घूंसा, दोनों के ही लगने से सिर का असममित चक्करदार त्वरण होता है. जब मस्तिष्क हड्डी की खोपड़ी में चक्करदार गति से घूमता है तो सेरिबेलम खोपड़ी के निचले भाग के खुले द्वार में बलपूर्वक प्रवेश करता है जबकि कोर्टेक्स के सामने ललाट और शंख की पालियां छिल और कुचल जाती हैं और उन्हें आघात पहुंचता है.

यह निष्कर्ष विशेष रूप से चौंकाने वाला है कि मुक्केबाजी में भाग लेना बन्द करने के बाद भी मुक्केबाजी का मस्तिष्क और उसकी मानसिक अवस्था अक्सर धीरे-धीरे खराब होती जाती है. मस्तिष्क में क्षति की शुरुआत के बारे में आपरेशन के दौरान माइक्रोस्कोप से देखने पर ही पता चलता है. मुक्केबाजी कोर्टेक्स के अधिकतर क्षेत्रों की, जिन्हे 'नीरव प्रदेश' कहते हैं, हानि पहुंचाती है और इसका सूक्ष्म प्रभाव मानवीय व्यवहार पर पड़ता है. सामने ललाट की पालि में हल्की चोट लग जाने से भी कोई व्यक्ति उन्माद के कारण सार्वजनिक स्थान पर उत्तेजनापूर्ण बकवास कर सकता है अथवा मन्द बुद्धि हो जाने से भावी योजनाओं के बारे में उसके सोचने का ढंग गलत हो सकता है. मस्तिष्क में बार-बार चोट लगने से धीरे-धीरे बुद्धि भ्रष्ट होने पर, अन्त में मनुष्य को पागलपन का दौरा भी पड़ सकता है.

एक आधुनिक तकनीक—कम्प्यूटरित टोमोग्राफी से अब मस्तिष्क का परीक्षण किया जाने लगा है. यह तकनीक दिमाग के सूक्ष्म अनुप्रस्थ अंगों का क्रमवीक्षण (स्कैन) द्वारा जांच करती है. इससे शौकिया युवा मुक्केबाजों के मस्तिष्क में भी क्षति के चिन्ह मिले हैं जिनमें प्रत्यक्ष रूप से दिमागी खराबी के कोई बाहरी लक्षण दिखाई नहीं देते हैं. कम्प्यूटरित

(शेष पृष्ठ 328 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय सुदूर-संवेदन उपग्रह —आइ आर एस-1 ए

□ जौन चर्चिल

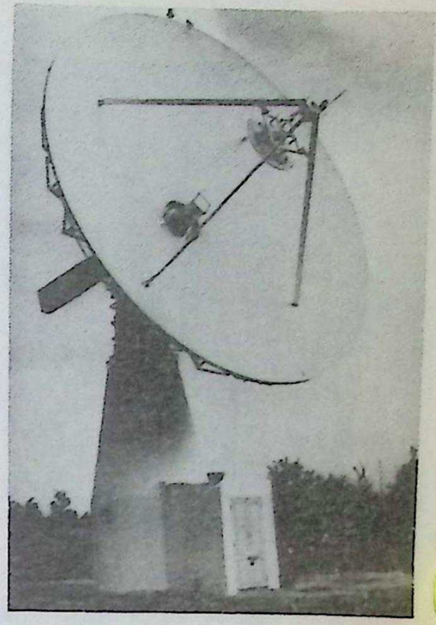

हैदराबाद के समीप शादनगर में नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी का भू-केंद्र, जिसमें आइ आर एस–1 ए द्वारा भेजे गए आंकड़ों को ग्रहण करने की सुविधा है.

□ अंतरिक्ष सदैव से ही मनुष्य के लिए रहस्यमय रहा है और अंतरिक्ष विज्ञान भी उतना ही प्राचीन है जितना कि स्वयं मानव. भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान का इतिहास हमें वैदिक काल ले जाता है. वेदों में आकाश में घटित विभिन्न घटनाओं और ग्रहों का विस्तृत विवरण देखने को मिलता है.

यद्यपि अंतरिक्ष विज्ञान हमारे लिए नया नहीं है फिर भी भारत आधुनिक अंतरिक्ष क्लब का सदस्य देर से बना है. कुछ साल पहले तक इस क्लब की सदस्यता अमेरिका, सोवियत संघ, फ्रांस और जापान जैसे गिने चुने विकसित देशों तक ही सीमित थी.

सन् 1961 में सोवियत संघ के यूरी गगारिन को अंतरिक्ष में जाने वाले पहले मानव का श्रेय प्राप्त हुआ. इस घटना ने दुनिया के तमाम लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया. दुनिया भर में इस घटना की प्रशंसा हुई. इसके आठ वर्ष पश्चात, 1969 में अमेरिका के नील आर्मस्ट्रोंग ने अंतरिक्ष और वह भी चन्द्रमा पर जब पहला कदम रखा, निश्चय ही वह मानव जाति के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी. लोगों ने अंतरिक्ष की ओर न केवल प्रशंसा से बल्कि आशाओं से भी निहारा.

भारत में अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरूआत

अनेक देश. यह अनुभव करने लगे कि अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रमों के जरिए मानव जाति के कल्याण के लिए काफी कुछ किया जा सकता है. इसके बाद अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति हुई. इस बीच, भारत ने भी बाह्य अंतरिक्ष के अन्वेषण की एक छोटी-सी शुरूआत की. लेकिन बहुतों ने इसे भारत का महंगा शौक समझा और इस बारे में शंका व्यक्त की कि क्या भारत वाकई किसी अंतरिक्ष कार्यक्रम को शुरू करने का खर्चा उठा सकता है. इसका उत्तर भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के कर्णधार स्व० डा० विक्रम साराभाई ने यह कह कर दिया कि "कुछ ऐसे हैं जो किसी विकासशील देश के अंतरिक्ष कार्यक्रम की प्रासंगिकता पर संदेह करते हैं. हमारा उद्देश्य अस्पष्ट नहीं है और न ही हम आर्थिक रूप से मजबूत उन देशों से होड़ करने की भ्रांति में है जो चन्द्रमा या अन्य ग्रहों के अन्वेषण कार्य में लगे हैं. लेकिन हम निश्चयी हैं कि यदि हमें राष्ट्रीय स्तर पर तथा राष्ट्रों के समुदाय में कोई अर्थपूर्ण भूमिका निभानी है तो हमें उन्नत प्रौद्योगिकियों के उपयोग के मामले में दूसरे स्थान पर नहीं रहना होगा.

इसलिए जब भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम औपचारिक रूप से आयोजित किया गया तो इसका उद्देश्य अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शुरूआत करना, उसका विकास

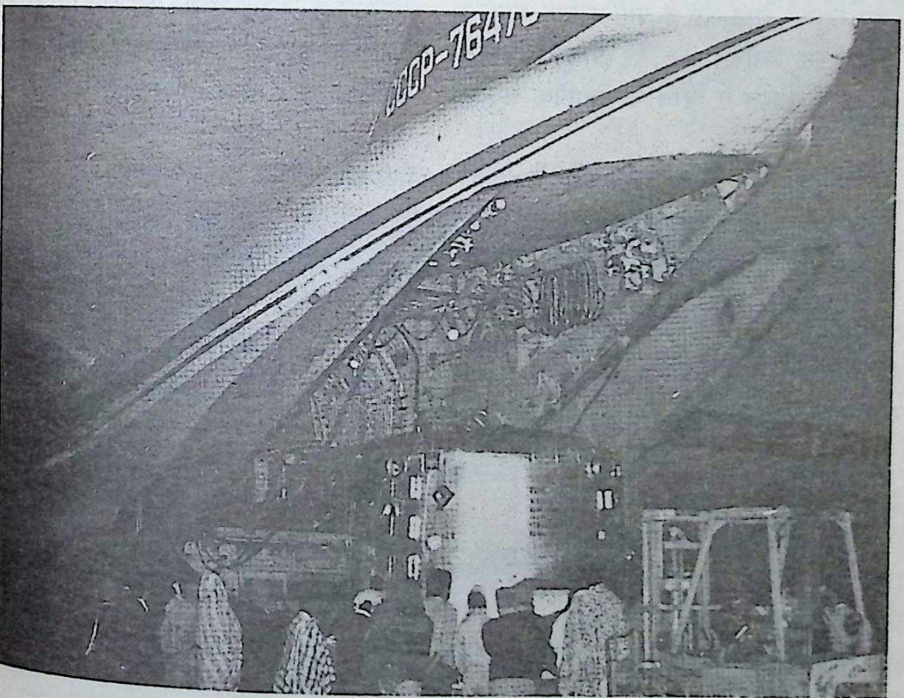

आइ आर एस–1 ए उपग्रह को सोवियत संघ के बाइकोनूर अंतरिक्ष केंद्र ले जाने की तैयारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

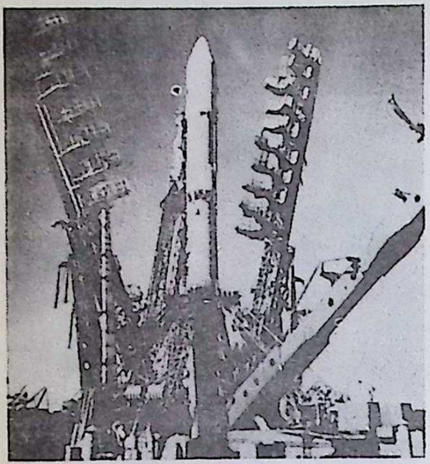

उपग्रह प्रमोचन राकेट 'वास्तोक' द्वारा अंतरिक्ष में छोड़े जाने को तैयार आइ आर एस–1 ए

करना और फिर इसमें दक्षता हासिल करना था ताकि देश के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए इसकी क्षमताओं का उपयोग किया जा सके.

वर्ष 1957 में जब सोवियत संघ द्वारा विश्व का प्रथम उपग्रह छोड़ा गया था तो भारत ने इसे देखने के लिए पहले ही नैनीताल, उत्तर-प्रदेश में एक प्रकाशिक अनुवर्तन केंद्र (आप्टिकल ट्रैकिंग स्टेशन) की स्थापना कर दी थी. इसके अगले वर्ष टाटा फंडामेंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, बंबई ने प्लास्टिक के गुब्बारे छोड़ने शुरू कर दिए जिनका उद्देश्य उन्नतांश की परिस्थितियों के संबंध में आंकड़े एकत्र करना था.

भारत में अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यकलापों की वास्तविक शुरूआत सन् 1961 में हुई जब इन कार्यकलापों को परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत लाया गया. इसके ठीक अगले वर्ष भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान परिषद् की स्थापना की गई. इसके साथ ही भारत में प्रयोगात्मक कार्यकलापों के लिए बाह्य अंतरिक्ष के उपयोग के प्रयास शुरू हो गए.

थुम्बा-राकेट प्रमोचन केंद्र

विशेषज्ञों के एक दल ने राकेट प्रमोचन केंद्र की स्थापना के लिए थुम्बा को चुना. थुम्बा केरल में त्रिवेन्द्रम शहर से उत्तर की ओर 16 किलोमीटर की दूरी पर स्थित बिल्कुल शांत इलाका है. पृथ्वी की चुंबकीय भूमध्य रेखा पर स्थित यह स्थान शीघ्र ही प्रयोगात्मक कार्यों के लिए आदर्श स्थान बन गया.

सौभाग्य से इस क्षेत्र में नौ-परिवहन की गतिविधियां बड़े स्तर पर नहीं थी. आधुनिक भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान की औपचारिक शुरूआत सेंट जोसेफ चर्च की एक पुरानी और जीर्ण-शीर्ण इमारत में हुई. भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान का पथ प्रदर्शक कार्य दूर दराज के इसी धार्मिक स्थान पर शुरु हुआ. लगभग 20 भारतीय युवा वैज्ञानिकों के एक तकनीकी दल ने अमेरिका में निर्मित नाइके अपाची साउडिंग राकेट के हिस्से-पुर्जों को जोड़ा. इसमें नीतभार (पेलोड) के रूप में स्थानीय रूप से विकसित सोडियम वाष्प का उपयोग किया गया. इस राकेट को 21 नवम्बर, 1963 को छोड़ा गया था.

इस प्रकार भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान कार्य का श्रीगणेश हुआ और इसके साथ-साथ जन्म हुआ थुम्बा भूमध्यरेखीय राकेट प्रमोचन केंद्र का.

थुम्बा की अवस्थिति के महत्व को समझाते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रयोगात्मक कार्यों के लिए इस प्रमोचन केंद्र को प्रायोजित किया बदले में भारत ने विश्व के वैज्ञानिक समुदाय को प्रयोगात्मक कार्यों हेतु इस केंद्र को समर्पित किया. इसके पश्चात संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी और जापान ने थुम्बा राकेट प्रमोचन केंद्र की सुविधाओं का इस्तेमाल किया और साउडिंग राकेट के एक दर्जन से भी अधिक विभिन्न प्रकार के प्रयोग किए.

थुम्बा में हुई छोटी-सी शुरूआत के पश्चात गत तीन दशकों में भारत ने अपने अंतरिक्ष कार्यक्रम में असाधारण प्रगति की. सन् 1969 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने अंतरिक्ष विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी और अंतरिक्ष अनुप्रयोगों के क्षेत्र में देश की बढ़ती कार्यकलापों के प्रबंध एवं कार्यान्वयन के लिए योजना तैयार की. संगठन का मुख्यालय बंगलौर में बनाया गया और यहीं–भारतीय उपग्रहों—आर्यभट्ट एपल संचार उपग्रह तथा रोहिणी और भास्कर-1 व 2 का निर्माण हुआ.

सुदूर संवेदन उपग्रहों की ओर

उपग्रह पर आधारित सुदूर संवेदन के संभावित अवसरों और लाभों को देखते हुए भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने बहुत से वृहत् और गहन प्रकृति के कार्य किए जिनमें हवाई उड़ाने और भास्कर-1 व 2 जैसे प्रायोगिक उपग्रह मिशन भी शामिल हैं. इसके अलावा इसरो ने विभिन्न एजेंसियों से भी घनिष्ठ संपर्क स्थापित किए.

बंगलौर स्थित भू-केंद्र में एस-बैंड टेलीमेट्री और टेलीकमांड का एक दृश्य

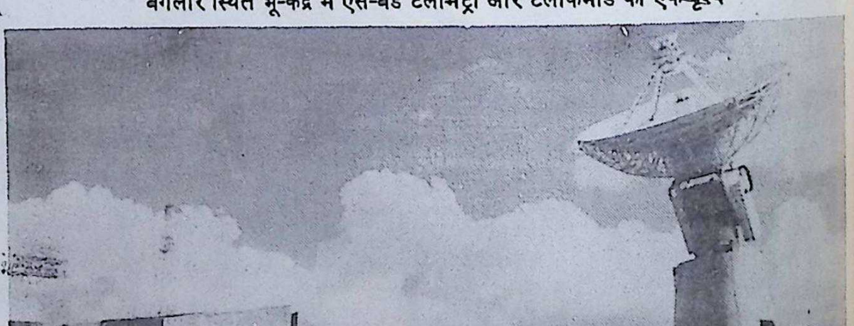

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आइ आर एस-1 ए का प्रक्षेपण

भारत का पहला सुदूर संवेदन उपग्रह 'आइ आर एस-1 ए' 17 मार्च 1988 को सोवियत संघ के बाइकोनूर अंतरिक्ष केंद्र से सोवियत प्रमोचित 'वास्तोक' द्वारा 904 किलोमीटर की ध्रुवीय सौर तुल्यकारी कक्षा में स्थापित किया गया. इसका ईंधन समेत भार 975 किलोग्राम था. इसमें मोनोप्रोपेलेंट हाइड्राजीन ईंधन प्रयुक्त किया गया जिसका भार 80 किलोग्राम था.

आइ आर एस-1 ए के उपयोग

अब आइ आर एस-1 ए ने अंतरिक्ष में तीन साल पूरे कर लिए हैं जो भारतीय अंतरिक्ष इतिहास में एक नया मील का स्तंभ है. इसरो के अध्यक्ष प्रोफेसर यू०आर० राव ने इस बात पर बल देते हुए कहा कि "इस वर्ग के उपग्रह के लिए यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है क्योंकि ये सामान्यतः बैटरी से कार्य करते हैं. उन्होंने कहा कि उम्मीद है आइ आर एस-1 ए अभी कुछ और समय तक कार्य करेगा.

अभी तक आइ आर एस-1 ए भारतीय उपमहाद्वीप के 50 से भी अधिक (प्रत्येक 22 दिन में एक बार) चक्कर लगा चुका है. इस उपग्रह ने तीन लाख से भी अधिक उच्च गुणवत्ता के चित्र उपलब्ध किए हैं. प्रोफेसर राव के अनुसार ये चित्र किसी भी दृष्टि में अमेरिकी लैंडसैट जैसे उन्नत उपग्रहों से लिए गए चित्रों से कम नहीं हैं.

आइ आर एस-1 ए कृषि, सूखे की चेतावनी, ऊसर भूमि के प्रबंध, जल संसाधनों, महासागर संसाधनों, शहरी भूमि के उपयोग, खनिज संसाधनों तथा समुद्री व अंतर्देशीय मत्स्य पालन से संबद्ध देश की 80 प्रतिशत से भी उपग्रह चित्रों की आवश्यकता की पूर्ति करता है.

आइ आर एस-1 ए की अब तक की एक सबसे बड़ी सफलता किसी क्षेत्र में भूमिगत जल की उपलब्धता का निर्धारण करना है. इससे कुओं की खुदाई में सफलता की दर में 45 से 90 प्रतिशत की वृद्धि हुई है. आइ आर एस-1 ए के आंकड़ों की सहायता से राजस्थान व गुजरात में लगभग 20,000 कुएं खोदे जा चुके हैं.

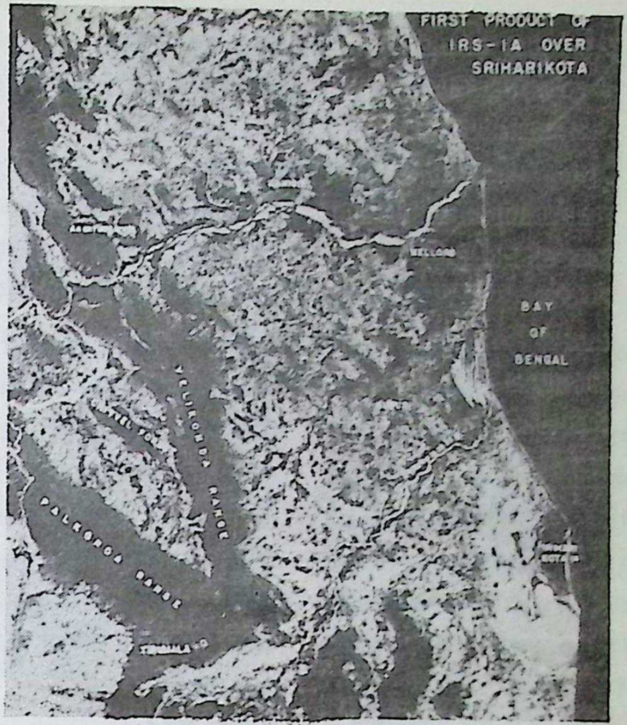

आइ आर एस–1 ए से प्राप्त पहला फोटोचित्र, जो हैदराबाद के समीप शादनगर स्थित नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी के भू-केंद्र द्वारा प्राप्त किया गया.

उपग्रह से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर कर्नाटक के सूखा ग्रस्त कोलार व बीजापुर जिलों सहित विभिन्न राज्यों के 18 जिलों को एकीकृत विकास के लिए चुना गया है.

देश में भूमि उपयोग और भूमि के आच्छादन संबंधी कई परियोजनाएं चल रही हैं जिनमें सिंचित व असिंचित भूमियों, विवृत (ओपन) व संवृत (क्लोज्ड) वनों, औद्योगिक क्षेत्रों, नगरीय बस्तियों आदि के वर्गीकरण के लिए सुदूर संवेदन आंकड़ों का उपयोग किया जा रहा है. जिला स्तर पर भूमि के उपयोग और भूमि के आच्छादन के मानचित्रण पर एक राष्ट्रीय परियोजना इस वर्ष के अंत तक तैयार हो जाएगी, जिससे कृषि जलवायवीय क्षेत्र आधारित योजना संभव हो सकेगा.

प्रोफेसर राव के अनुसार आइ आर एस-1 ए द्वारा भेजे गए चित्रों की सहायता से देश में पहली बार ग्राम स्तर पर व्यर्थ भूमि की विस्तृत सूची तैयार की गई है. नक्शों से पता चलता है कि लगभग आधी व्यर्थ भूमि को फिर से कृषि योग्य बनाया जा सकता है. राज्य स्तर की विभिन्न एजेंसियों द्वारा इस नक्शों का इस्तेमाल किया जा रहा है.

उपग्रह से प्राप्त आंकड़ों का बाढ़ों के मानीटरन और पुनर्वास कार्यों में लगातार उपयोग हो रहा है. देश में सभी बड़े शहरों के बेतरतीब फैलाव पर अध्ययन कार्य चल रहा है, जिसमें आइ आर एस-1ए के आंकड़ों का इस्तेमाल किया जा रहा है. बंगलौर में आइ आर एस के आंकड़ों की सहायता से रिंग रोड के संरेखण में लागत व समय दोनों में बचत हुई है. कृषि के क्षेत्र में दूरस्थ नियंत्रण से धान जैसी फसलों के क्षेत्रफल तथा उत्पादन का अनुमान लगाने में सहायता मिली है. हाल ही मे खाड़ी युद्ध के दौरान फारस की खाड़ी में तेल के बिखराव के मानीटरन में भी आइ आर एस-1 ए इस्तेमाल किया गया है.

आई आर एस-1 ए के समान एक अन्य भारतीय उपग्रह आइ आर एस-1 बी का निर्माण किया गया है. आजकल इसरो के बंगलौर केंद्र में इसमें अंतिम परीक्षण किए जा रहे हैं. यह उपग्रह अब जल्दी ही अंतरिक्ष में स्थापित किया जाएगा जिससे भारतीय उपमहाद्वीप के सुदूर संवेदन कार्य निर्बाध रूप से चलते रहेंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्ष अन्वेषण के तरीकों का बदलता स्वरूप

□ काली शंकर

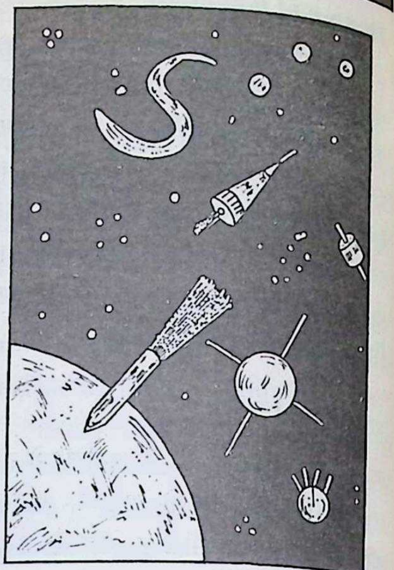

चित्र-1. अंतरिक्ष

□ सुदूर नक्षत्रों तथा ग्रहों के विषय में खोज करने की मनुष्य की उत्कंठा उतनी ही पुरानी है जितनी मानव सभ्यता. झिलमिलाते तारों और प्रकृति के अनेक रहस्यों ने मनुष्य को अपनी पृथ्वी से हटकर अन्तरिक्ष के रहस्यों की ओर आकर्षित किया. मनुष्य के अंतरिक्ष में उड़ने का उल्लेख ईसा से 2000 वर्ष पहले हिन्दू वेदों में, भागवत में, पारसी और प्रारंभिक मिस्र के साहित्य में और यूनान के कुछ अभिलेखों में भी मिलता है. यह दूसरी बात है कि इन प्राचीन काव्यों में मनुष्य के द्वारा अंतरिक्ष में उड़ने के तरीकों की वैज्ञानिक दृष्टि से पुष्टि नहीं की जा सकती.

अन्तरिक्ष अन्वेषण के प्रयोगात्मक प्रयासों का उल्लेख 1452 के आसपास मिलता है. इन तथ्यों के अनुसार लियोनार्डो द विंसी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हवाई जहाज का एक माडल बनाने का गम्भीर प्रयास किया. इस प्रयास में दूसरे व्यक्ति रूस के कोन्सटैन्टिन सिवोल्कोवोस्की थे जिन्होंने 1898 में पहली बार मानव के द्वारा अन्तरिक्ष उड़ान को बड़ी गंम्भीरता पूर्वक सोचा. सन 1903 में सिवोल्कोवोस्की ने 'इनवेस्टीगेशन आफ वर्ल्ड सेस बाई रिएक्टिव इन्स्ट्रूमेन्टस' नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने अंतरिक्ष में राकेट के द्वारा जाने की बात का जिक्र किया. उसके बाद लगभग 25 वर्ष बाद कोन्सटैन्टिन के सुझावों को अमेरिका के राबर्ट एच० गोडार्ड तथा हंगरी में जन्मे जर्मनी के हर्मन ओबर्थ ने विकसित किया.

अंतरिक्ष अन्वेषण के आधुनिक तरीकों की अगर हम पिछले कुछ दशकों से पहले के तरीकों से तुलना करें तो हमें बहुत बड़ा अन्तर दिखाई देगा. आज हम पृथ्वी के गुरुत्व से बाहर सूर्य और नक्षत्रों, पृथ्वी को घेरे हुए गैसों तथा पदार्थों और जैविक कणों का और भी अधिक सूक्ष्मता से अवलोकन कर सकते हैं. आज हम ब्रम्हाण्ड की अनेक दूरियों पर स्थित प्रकृति के दृष्टिगोचर सूक्ष्म और विशेष रहस्यों का पता करने के नए तरीकों और तकनीकों का उपयोग कर रहे हैं. इन नई तकनीकों और तरीकों ने मानव की दूर दृष्टि की क्षमता बढ़ाकर अंतरिक्ष अन्वेषण को एक नई दिशा प्रदान की है.

अंतरिक्ष क्या है ?

भौतिक रूप से अंतरिक्ष वह क्षेत्र है जहां पृथ्वी का वायुमंडल समाप्त हो जाता है. अंतरिक्ष की यह भौतिक सीमा 1000 किलोमीटर से 2000 किलोमीटर के बीच आती है. इस ऊंचाई पर अंतरिक्ष का दाब नगण्य हो जाता है तथा इसे पूर्ण निर्वात कहा जा सकता है. पृथ्वी पर इस प्रकार के निर्वात की परिस्थिति बनाने के लिए काफी धन खर्च करना पड़ता है. वास्तव में अंतरिक्ष की सीमा निर्धारण का कार्य एक विवादास्पद विषय है. चूंकि अंतरिक्ष अन्वेषण का सीधा संबंध अंतरिक्ष पर्यावरण के जैविक प्रभावों से है जिसमें जाकर मनुष्य को काम करना पड़ता है. इसलिए इस विषय को ध्यान में रखते हुए अंतरिक्ष की जैविक परिभाषा भौतिक परिभाषा से अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक है. सन् 1951 में स्ट्रंगहोल्ड और हैबर इत्यादि ने यह सुझाव दिया कि पृथ्वी के वायुमंडल की समाप्ति तथा अन्तरिक्ष का प्रारम्भ विभिन्न ऊंचाइयों पर विभिन्न जैविक प्रभावों के आधार पर किया जाना चाहिए. इन विभिन्न ऊंचाइयों को उन्होंने कार्यात्मक सीमाओं की संज्ञा दी है.

पृथ्वी पर सारे प्राणियों को शक्ति प्राप्त करने के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होती है. पृथ्वी पर रहने का अभ्यस्त आदमी पृथ्वी से 3 किलोमीटर की ऊंचाई पर आक्सीजन की कमी का अनुभव करता है. इन ऊंचाइयों पर उसे सांस लेने में परेशानी महसूस हो सकती है, सर दर्द हो सकता है और कार्य करने की क्षमता कम हो सकती है. वह काम करने की एकाग्रता भी खो सकता है. 15 किलोमीटर की ऊंचाई पर मनुष्य आक्सीजन की कमी पूर्णरूप से महसूस करता है यहां यह ध्यान देने की बात है कि इस ऊंचाई पर आक्सीजन पूरी तरह से खत्म नहीं हो जाती बल्कि यहां पर वातावरण में आक्सीजन की मात्रा केवल 21 प्रतिशत रह जाती है. मनुष्य द्वारा इस ऊंचाई पर अत्यधिक कमी महसूस करने का कारण है दाब की अत्यधिक कमी. दाब की कमी के कारण हमारे फेफड़े इस आक्सीजन को अपने अन्दर नहीं ले पाते. यहां हमारे शरीर के अन्दर तथा वातावरण के दाब में काफी अन्तर आ जाता है. इसलिए इस आक्सीजन को हमारा शरीर इन ऊंचाइयों पर तभी ग्रहण कर सकता है जब इस आक्सीजन को समुचित दाब प्रदान किया जाए.

अंतरिक्ष की अन्य ऊंचाइयों पर मानव शरीर पर अन्य अनेक तरह के प्रभाव भी पड़ते हैं. लेकिन जैविक दृष्टि से अंतरिक्ष की सीमा 3 किलोमीटर से ही प्रारम्भ हो जाती है.

क्या है अंतरिक्ष अन्वेषण ?

मूल रूप से अंतरिक्ष अन्वेषण में दो बातें आती हैं. पहली बात यह है कि हम किस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पता लगाएं कि अंतरिक्ष के आक्रामक वातावरण में मानव शरीर जैसी मशीन काम कर पाएगी अथवा नहीं. दूसरी बात यह है कि हमारा अंतरिक्ष कैसा है, अंतरिक्ष में क्या-क्या है, कौन-कौन से ग्रह हैं तथा किस-किस में जीवन है. पूरे ब्रम्हाण्ड में कितने सौर मंडल हैं इत्यादि. अभी तक मनुष्य केवल चन्द्रमा के तल पर उतरने में ही सफल हुआ है. अन्य ग्रहों की सतह पर उतरने के लिए तो अभी अनेक अन्वेषण ही किए जा रहे हैं. इन ग्रहों तक हम कब पहुंचेंगे यह केवल अनुमान का विषय है.

अंतरिक्ष अन्वेषण के तरीके

अंतरिक्ष अन्वेषण की प्रक्रिया के दौरान मनुष्य ने अनेक साधनों का उपयोग किया. प्रारम्भ में तो सबसे बड़ी समस्या यह थी कि अंतरिक्ष में जाया कैसे जाए और तो और हमारे प्रारंभिक अंतरिक्ष के ज्ञान के प्रति उदासीनता और अनिश्चितता ने हमें काफी समय तक इसी गलतफहमी में रखा कि अंतरिक्ष में तो हम कभी भी जा सकते हैं तथा इसके विषय में तो सोचने की आवश्यकता ही नहीं है. अंतरिक्ष के आक्रामक पर्यावरण का आभास मनुष्य को उस समय हुआ जब पहली बार 1803 में एक गुब्बारे में उड़ते हुए तीन व्यक्तियों में दो व्यक्ति आक्सीजन की कमी से बेहोश हो गए. अंतरिक्ष अन्वेषण के लिए अनेक प्रकार के तरीकों को उपयोग में लाया गया. इनमें गुब्बारों से लेकर राकेट और उपग्रह सभी शामिल थे. इन तरीकों के उपयोग में जो एक बात विशेष रूप से जानकारी में आई वह यह थी कि अंतरिक्ष अन्वेषण से संबंधित आंकड़े इकठ्ठा करने वाले उपकरणों तक मनुष्य की सीधी पहुंच नहीं थी. इसलिए बाद में अंतरिक्ष अन्वेषण के लिए अंतरिक्ष स्टेशनों का सहारा लिया गया. उसके बाद पुनः प्रयोजनीय यानों का भी उपयोग किया गया.

गुब्बारे

अंतरिक्ष अन्वेषण में सबसे पहले हवा से भरे हुए गुब्बारों का उपयोग किया गया. गुब्बारा वह पहला उपकरण था जो पृथ्वी की सतह से उड़ा. पहला गुब्बारा पृथ्वी से 5 जून 1783 को अंतरिक्ष में भेजा गया. इसके बाद 19 सितम्बर 1783 को एक दूसरा गुब्बारा प्रथम जैविक प्रयोग के लिए छोड़ा गया. इसमें तीन जानवर —एक मुर्गा, एक बत्तख तथा एक भेड़ प्रथम अंतरिक्ष यात्री के तौर पर भेजे गए. यह गुब्बारा 500 फुट की ऊंचाई तक गया. 22 मार्च 1874 को एक गुब्बारा 23,000 फुट की दूरी तक गया.

अपने स्वभाव के अनुसार कोई भी गुब्बारा वायुमंडल सीमा के बाहर नहीं जा सकता. यह केवल समताप मंडल तक ही पहुंच सकता है. अंतरिक्ष और वायुमंडल के अन्वेषण में यह काफी उपयोगी उपकरण के रूप में पिछले कई सालों से उपयोग में लाया जाता रहा है. सन् 1931 में दो व्यक्ति पिकार्ड और किफर गुब्बारों की मदद से 51795 फुट की ऊंचाई तक पहुंच गए. इसमें एक केबिन बनाया गया था जिसका दाब मनुष्य की आवश्यकता के अनुसार रखा गया था. सन् 1932 में ये व्यक्ति गुब्बारे की मदद से 54120 फुट तक पहुंच गए. 1933 में सेटल और फोर्डनी 61237 फुट तक पहुंच गए.

प्रारम्भ में इन गुब्बारों के निर्माण में प्लास्टिक का उपयोग हुआ लेकिन उसके बाद

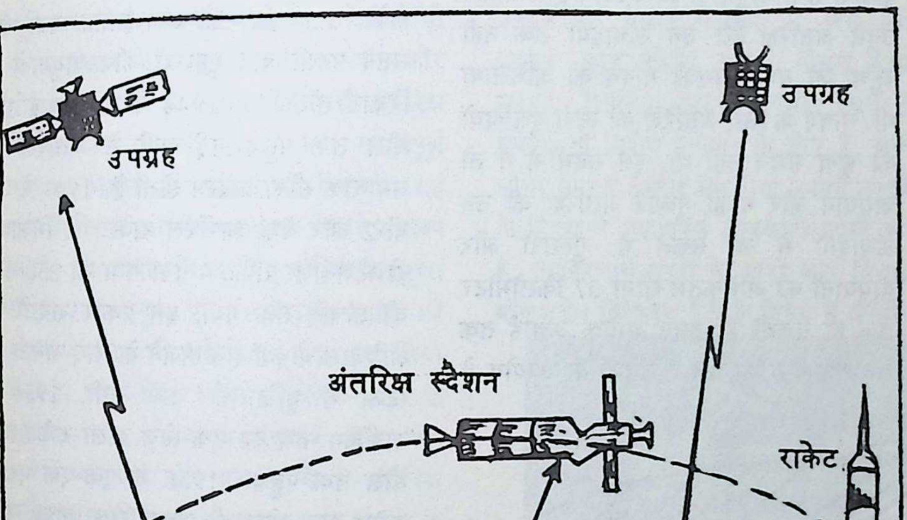

चित्र—2. अंतरिक्ष अन्वेषण के विभिन्न तरीके

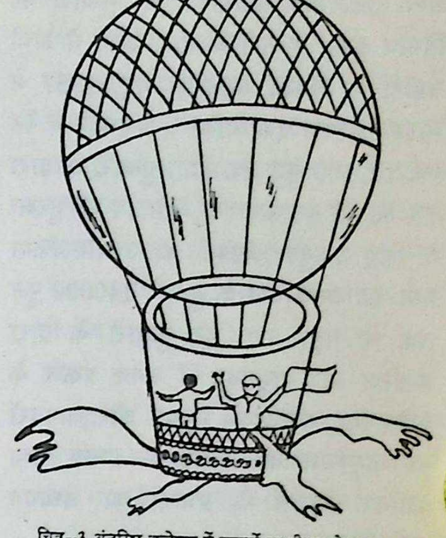

चित्र—3. अंतरिक्ष अन्वेषण में गुब्बारों का भी उपयोग हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रबड़ के गुब्बारे बनने लगे. फिर नाइलोन और अन्य रासायनिक पदार्थों से भी गुब्बारों का निर्माण हुआ. गुब्बारों के द्वारा ऊंची से ऊंची उड़ानों के रिकार्ड बढ़ते ही गए. 1957 में साइमन नामक एक व्यक्ति एक गुब्बारे में बैठ कर 102500 फुट तक गया. गुब्बारों के द्वारा तय की गई इन ऊंचाइयों में मानव की सुरक्षा के लिए दाबयुक्त केबिनों का उपयोग किया गया था. उसके बाद के गुब्बारे 140000 फुट तक भी पहुंच गए. इन गुब्बारों के द्वारा अंतरिक्ष और वायुमंडल में अनेक प्रकार के प्रयोग किए गए. इनमें मनुष्यों और जानवरों पर वायुमंडल की ऊंचाई के प्रभाव तथा कास्मिक किरणों के प्रभावों का अध्ययन शामिल था.

वायुयान

गुब्बारों द्वारा अंतरिक्ष के अध्ययन के साथ-साथ वायुयानों के द्वारा भी अंतरिक्ष और वायुमंडल के विषय में अन्वेषण किए गए. वायुयान की पहली उड़ान राइट बन्धुओं के द्वारा 17 दिसम्बर 1903 को सम्पन्न हुई. यह वायुयान 120 फुट ऊंचाई तक उड़ा तथा वायुमंडल में 12 सेकंड तक रहा. सन् 1914 में वायुयानों को युद्ध के लिए विशेष रूप से उपयोगी समझा गया. 1936 में ऐसे-ऐसे वायुयानों का निर्माण हुआ जो गुब्बारों की ऊंचाई तक पहुंचने लगे. धीरे-धीरे इनकी ऊंचाई तथा गति में वृद्धि होने लगी. ब्रिटिश वायुयान चालक वायुयानों के द्वारा 1936 और 1937 में क्रमशः 49944 फुट तथा 53937 फुट तक पहुंच गए. प्रारम्भ में वायुयान खुले रूप में बनाए जाते थे इसलिए गुब्बारों की भांति इनमें भी पायलट दाबयुक्त सूट पहन कर जाने लगे, तथा अंतरिक्ष अन्वेषण आसान हो गया. वायुयान के द्वारा 131000 फुट की ऊंचाई तक जाना सम्भव हो सका.

गुब्बारों के द्वारा अंतरिक्ष विज्ञान की दूसरी शाखा सुदूर संवेदन के कार्य करने में भी काफी आसानी हुई. अंतरिक्ष उड़ानों की विभिन्न परिस्थितियों की समानताओं का अध्ययन वायुयानों द्वारा किया गया है. वायुयानों द्वारा ही अंतरिक्ष में अनेक पदार्थों के गुणों का अध्ययन सम्भव हुआ, जिनका उपयोग बाद में अंतरिक्ष स्टेशनों के निर्माण में किया गया.

राकेट

कुछ समय तक अंतरिक्ष अन्वेषण के लिए गुब्बारों तथा वायुयानों का उपयोग हुआ लेकिन उनसे अंतरिक्ष की उन ऊंचाइयों तक नहीं पहुंचा जा सका जिसकी मानव को अभिलाषा थी. मानव के लिए अंतरिक्ष की ऊंची बुलन्दियों को छूना संभव नहीं था. इस संदर्भ में न तो वायुयान और न ही गुब्बारे अंतरिक्ष की उन ऊंचाइयों में जा सकते थे. गुब्बारों और वायुयानों की अधिकतम सीमा 37 किलोमीटर तक हो सकती है. इससे अधिक ऊंचाई तक अंतरिक्ष में जाना केवल राकेटों के उपयोग से ही सम्भव था. राकेटों की एक विशेषता यह रही है कि इन पर वायुमंडल की वायुगतिकी के प्रभावों का कोई असर नहीं पड़ता क्योंकि ये अपने साथ आक्सीजन और ईंधन लेकर चलते हैं. हवाई जहाज वायुमंडल की उन्हीं सीमाओं पर जा सकते हैं जहां पर आक्सीजन उपलब्ध रहती है. इसका कारण यह है कि अपनी यात्रा के दौरान हवाई जहाज वायुमंडल की आक्सीजन का उपयोग करके ऊर्जा पैदा करता है.

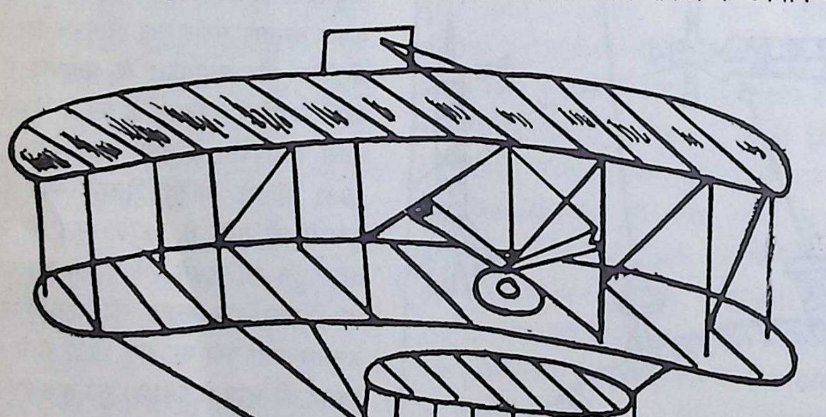

चित्र–4. पुराने समय का वायुयान

राकेटों के विकास में विश्व की तीन विभूतियों का जिक्र आता है. ये हैं सिवोल्कोवोस्की, औबर्थ और गौडार्ड. इनमें सिवोल्कोवोस्की राकेटों के संकल्पनात्मक विश्लेषण के गुरु कहे जाते हैं. गोडार्ड ने राकेटों का वास्तविक रूप में विकास किया. वस्तुतः आधुनिक राकेटों के विकास में उनकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है.

सन् 1942 में वी-2 नामक पहला जर्मन राकेट 114 मील की ऊंचाई तक गया और उसने पहली बार गुब्बारों और वायुयानों के रिकार्ड तोड़ दिए. 1944 में यह ऊंचाई 120 मील तक पहुंच गई जहां से अंतरिक्ष की समान्तक सीमा प्रारम्भ होती है. 1949 में एक वी-2 और बैक कार्पोरल राकेट को मिलाकर दो स्टेजवाला राकेट बनाया गया जो 250 मील की ऊंचाई तक गया. इस प्रकार राकेटों को अधिक ऊंचाइयों तक भेजने के लिए राकेटों की स्टेजों में वृद्धि की जाने लगी. 1954 में वाइकिंग नाम का एक स्टेज़ वाला राकेट 258 मील तक पहुंचा. 1955 में एक-एक एरोबी राकेट 193 मील की ऊंचाई तक पहुंचा. आज बहु-स्टेज वाले राकेटों की मदद से मनुष्य अंतरिक्ष में हजारों मील की ऊंचाइयों तक पहुंच गया है. बाद में तो चन्द्र उड़ानों और अंतराग्रही उड़ानों के लिए भी उच्च शक्ति वाले राकेटों का उपयोग किया गया. उच्च शक्ति वाले राकेटों में अमेरिका के एटलस-सेन्टोर, टिटान, एटलस, रूस का प्रोटान, जापान का एन-राकेट, योरोपीय अंतरिक्ष संस्था का एरियन तथा चीन के लांग मार्च राकेट मशहूर हैं.

अंतरिक्ष अन्वेषण के क्षेत्र में वास्तविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

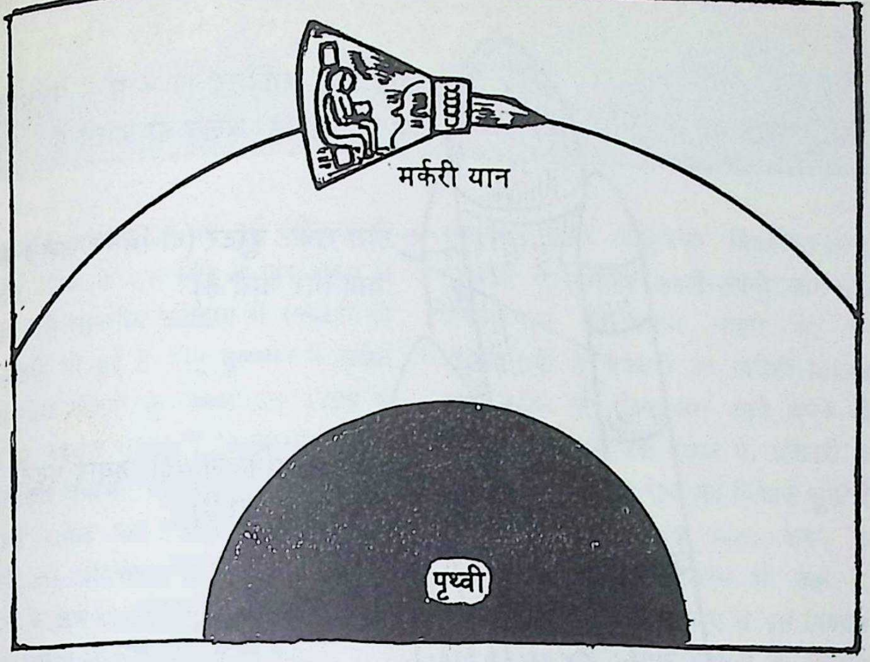

चित्र—5. मर्करी यान के द्वारा अंतरिक्ष अन्वेषण

भूमिका राकेटों ने ही निभाई है. राकेटों ने ही अनेक प्रकार के उपग्रह, अंतरिक्ष स्टेशन और प्रोब में अंतरिक्ष में स्थापित किए हैं. अंतरिक्ष के अध्ययनों में भी इन्होने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है. राकेटों की विशेषता यह रही है कि ये अंतरिक्ष अन्वेषण के लिए अल्प अवधि की ऊंचाइयों के लिए अधिक उपयुक्त पाए गए हैं. मनुष्य पर अंतरिक्ष के प्रभावों को जानने के लिए भी राकेटों का ही सहारा लिया गया है. इसके लिए राकेटों में अनेक प्रकार के जानवर और उपकरण रखकर भेजे गए. राकेटों का एक दोष यह है कि ये अंतरिक्ष अन्वेषण संबंधित आंकड़े केवल अल्प अवधि के लिए बहुत अधिक कीमत पर उपलब्ध कर पाते हैं. यही नहीं इन आंकड़ों की पुनरावृत्ति के लिए पुनः दूसरा राकेट अंतरिक्ष में भेजना पड़ता है.

कृत्रिम उपग्रह

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, अंतरिक्ष अन्वेषण में राकेटों के उपयोग से बहुत अल्प अवधि के लिए ही आंकड़े प्राप्त होते हैं. इस कमी को पूरा करने तथा कम कीमत पर आंकड़ों की पुनरावृत्ति के लिए मनुष्य ने कृत्रिम उपग्रहों का सहारा लिया. कृत्रिम उपग्रह कई प्रकार के होते हैं: जैसे संचार उपग्रह, सुदूर संवेदन उपग्रह, मौसम विज्ञानी उपग्रह, वैज्ञानिक उपग्रह इत्यादि. प्रथम तीन उपग्रह तो विशेष प्रयोजन के लिए हैं, लेकिन चौथा उपग्रह अर्थात वैज्ञानिक उपग्रह अंतरिक्ष के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं. उदाहरणार्थ पृथ्वी के चारों ओर विद्यमान वॉन एलेन विकिरण पेटी के विषय में अमेरिकी उपग्रह एक्स्पलोरर के द्वारा पता लगाया गया. अंतरिक्ष में निभिन्न प्रकार के अन्य विकिरणों कि जैसे कास्मिक किरण विकिरण, अल्ट्रावायलेट विकिरण इत्यादि के विषय में भी उपग्रहों के द्वारा ही पता लगाया. कृत्रिम उपग्रहों को अंतरिक्ष में भेजने का सिलसिला 4 अक्टूबर 1957 से प्रारम्भ हुआ जब रूस ने पहला कृत्रिम उपग्रह सुतनिक-1 अन्तरिक्ष में भेजा. इसके बाद तो अनेक उपग्रह अंतरिक्ष में भेजे गए.

प्रोब

कृत्रिम उपग्रहों की भांति अंतरिक्ष अन्वेषण के लिए अनेकों अंतरिक्ष प्रोब भी अंतरिक्ष में भेजे गए. ये प्रोब किसी विशेष ग्रह अथवा तारे के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजे गए. उपग्रहों की अपेक्षा प्रोब अंतरिक्ष में काफी दूरी तय करते हैं. अक्टूबर 1958 में प्रथम चन्द्र प्रोब पायनियर भेजा गया था जिससे चन्द्रमा के विषय में जानकारी प्राप्त की गई. सर्वेयर, ल्यूना इत्यादि प्रोब भी चन्द्रमा पर भेजी गई. इसी प्रकार अन्य ग्रहों की खोज तथा उनमें जीवन की उपस्थिति का पता लगाने के लिए तरह-तरह के प्रोब भेजे गए. प्रोब में केवल उपकरण होते हैं इनमें मानव नहीं होता.

अंतरिक्ष स्टेशन

धीरे-धीरे मनुष्य की अंतरिक्ष अन्वेषण के प्रति उत्सुकता इतनी बढ़ी कि उसे अन्तरिक्ष

चित्र—6. अमेरिकी स्पेश शटल की तरह का यान 'होटोल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वेषण में सीधे भाग लेना पड़ा. इसलिए अंतरिक्ष स्टेशनों का युग आया. इनमें बैठकर मानव अधिक समय तक अंतरिक्ष में चक्कर लगाने लगा. इन स्टेशनों ने अंतरिक्ष अन्वेषण को एक नई दिशा प्रदान की. अंतरिक्ष स्टेशन एक विशाल प्रयोगशाला की तरह अंतरिक्ष में तरह-तरह के प्रयोग कर सकता है. इनमें तरह-तरह के उपकरण लगाए जाते हैं. अंतरिक्ष स्टेशनों की श्रृंखला में सैल्युट-7, स्काईलैब और मीर अंतरिक्ष स्टेशन प्रमुख हैं. मीर रूस का सबसे विशाल और आधुनिकतम स्टेशन है. अमेरिका ने अंतरिक्ष में एक स्थाई अंतरिक्ष स्टेशन बनाने की योजना बनाई है जिसमें विश्व के कई देश भाग ले रहे हैं.

अंतरिक्ष स्टेशनों की विशेषता यह है कि इनके द्वारा कई साल तक अंतरिक्ष के चक्कर लगाते रहते हैं. इनमें काफी अर्से तक अंतरिक्ष अन्वेषण के कार्य किए जा सकते हैं. इनमें अंतरिक्ष यात्री हर समय मौजूद रहते हैं.

पुनः प्रयोजनीय प्रमोचन यान

अंतरिक्ष अन्वेषण एक मंहगा कार्य है. राकेटों के द्वारा अंतरिक्ष अन्वेषण में यह पाया गया कि एक राकेट अंतरिक्ष में एक ही बार जाता है और उसके बाद नष्ट हो जाता है. इसका दुबारा उपयोग नहीं किया जा सकता. काफी समय से वैज्ञानिक एक ऐसे प्रमोचन यान के निर्माण की योजना बना रहे थे जिसे एक के बजाए कई बार उपयोग में लाया जा सके. इस प्रकार के यानों को पुनः प्रयोजनीय यान कहते हैं जिसका अर्थ है बार-बार उपयोग किया जाने वाला. अमेरिकी स्पेस शटल एक पुनः प्रयोजनीय यान था. स्पेस शटल की पहली उड़ान 12 अप्रैल 1981 को सम्पन्न हुई. स्पेस शटल पृथ्वी से एक राकेट की भांति उड़ता है तथा वापसी मे यह पृथ्वी पर एक वायुयान की भांति उतरती है. इससे अंतरिक्ष अन्वेषण का कार्य अपेक्षाकृत सस्ता पड़ता है.

अमेरिका के अलावा अन्य देश भी पुनः प्रयोजनीय यानों के निर्माण में लगे हैं. पुनः प्रयोजनीय यानों की महत्वपूर्ण श्रृंखला में कुछ प्रमुख नाम हैं: ब्रिटेन की 'होटोल' शटल, फ्रांस की 'हर्म्स' शटल, अमेरिका की नई स्पेस शटल

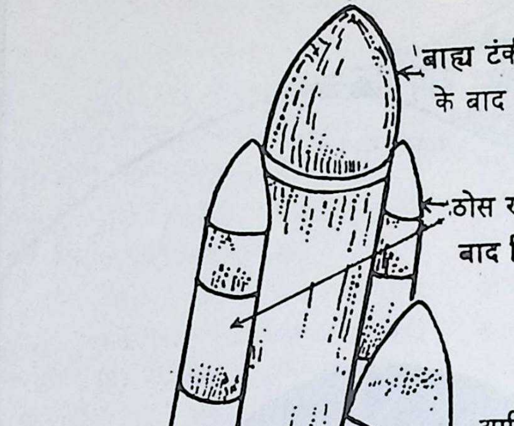

चित्र—7. स्पेश शटल प्रमोचन यान

'स्पेसप्लेन', जर्मनी का 'सैंगर' तथा जापान की स्पेस शटल 'होप'.

पुनः प्रयोजनीय यान अंतरिक्ष में 300 से 900 किलोमीटर पर पृथ्वी का चक्कर लगाते हैं तथा वहीं से ये अंतरिक्ष अन्वेषण के कार्य करते हैं. यहीं से ये छोटे-छोटे राकेटों के द्वारा बड़े-बड़े उपग्रह अधिक ऊंचाई की कक्षा में भेजते हैं. इन यानों के अंतरिक्ष यात्री विशेष प्रकार के उपकरणों की सहायता से मुक्त अंतरिक्ष में आकर अनेक प्रकार के अंतरिक्ष अन्वेषण के कार्य करते हैं. पुनः प्रयोजनीय यान अंतरिक्ष में एक से दो सप्ताह तक रहकर पृथ्वी पर वापस आ जाते हैं.

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंतरिक्ष अन्वेषण का कार्य जो गुब्बारों से प्रारम्भ हुआ वह वायुयानों, राकेटों, उपग्रहों, प्रोबों और अंतरिक्ष स्टेशनों के दौर से गुजरते हुए अब स्पेस शटल जैसे पुनः प्रयोजनीय यानों तक पहुंच गया है. इस दिशा में हो रही प्रगति से यह संकेत मिलता है कि जल्दी ही अंतरिक्ष में स्थायी स्टेशन का निर्माण होगा जहां रह कर मनुष्य कई तरह के वैज्ञानिक अनुसंधान और शायद कुछ प्रकार के पदार्थों का उत्पादन कर सकेगा जो पृथ्वी पर संभव नहीं है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में राकेटरी

☐ केदारनाथ शुक्ल

☐ आज से लगभग 27 वर्ष पूर्व राकेटरी की शुरुआत केरल के एक छोटे से गांव तुम्बा में हुई थी. वैसे भारतीय इतिहास में राकेटरी की चर्चा पहले भी हुई है. टीपू सुलतान ने राकेट का उपयोग अंग्रेजों के विरुद्ध सन् 1799 में किया था. स्वतंत्र भारत में 21 नवम्बर 1963 को नाइके-अपाच नामक एक द्विखण्डीय परिज्ञापी राकेट को प्रक्षेपित कर आधुनिक राकेटरी का श्रीगणेश किया गया. प्रस्तुत है राकेटरी के क्षेत्र में हुए विकासात्मक कार्यों एवं कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियों की समीक्षा.

सन् 1957 के सफल रूसी सुतनिंक प्रयोग ने सारे विश्व को चकित कर दिया था. प्रतिक्रियास्वरूप 1970 के पूर्व ही चन्द्रमा पर एक अमेरिकी नागरिक को उतारने की घोषणा वहां के राष्ट्रपति ने की तथा 1960 से अपोलो जैसी महत्वपूर्ण परियोजना वहां प्रारंभ की गई. इस प्रकार भारत में राकेटरी का कार्यक्रम प्रारंभ होने के पूर्व ही सोवियत रूस और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका अंतरिक्ष में अपने-अपने नेतृत्व स्थापित कर चुके थे.

उस समय तक यूरोपीय राष्ट्रों का कोई महत्वपूर्ण अंतरिक्ष कार्यक्रम नहीं था किन्तु वैज्ञानिक अनुसंधान तथा नई-नई खोजें उनकी पुरानी परम्परा रही हैं. इसके अतिरिक्त उनके पास औद्योगिक अवसंरचना का एक मजबूत आधार भी था. फ्रांस ने 1962 में एक अंतरिक्ष प्राधिकरण स्थापित कर अपना भावी कार्यक्रम निर्धारित कर लिया था. चीन में राकेटरी सामान्यतया उसके सैनिक कार्यक्रमों के साथ जुड़ी है. उसने लघु तथा मध्यमस्तर के अंतरमहाद्वीपीय प्रक्षेपण छोड़ लिए थे. जापान के पास भी अपना अंतरिक्ष कार्यक्रम था.

इन सभी की तुलना में हमें अपना राकेटरी का कार्यक्रम लगभग शून्य से प्रारंभ करना पड़ा. उस समय हमारे पास न तो औद्योगिक अवसंरचना थी और न तो प्रशिक्षित मानव संसाधन. इसके अतिरिक्त विकसित राष्ट्र राकेटरी से संबंधित अपनी-अपनी जानकारी अपने पास ही रखना चाहते थे. इन परिस्थितियों में राकेटरी का स्वदेशी विकास बहुत कठिन था, किन्तु हम उससे अपने को अलग भी तो नहीं रख सकते थे. राकेटरी के विकास के साथ-साथ राष्ट्र का विकास जुड़ा है तथा विकासात्मक कार्य स्वतः करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प भी नहीं है. अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के माध्यम से इस विशाल देश को एक दक्ष संचार निकाय के अंतर्गत लाया जा सकता है जिससे हम पिछड़े एवं अगम्य स्थलों तक सुगमता से पहुंच सकते हैं. इसके अतिरिक्त प्राकृतिक संसाधनों का समुचित प्रबंध कर सकते हैं. वास्तव में इस औद्योगिक क्रांति के लिए राकेटरी भी एक साधन है.

राकेट की कार्य विधि चित्र–1 में दिखाई गई है. यह नोदक के तीसरे नियम एवं संवेग के सिद्धान्त पर आधारित है. आप नोदक एवं गैस के एक नियत द्रव्यमान पर विचार करें. गरम गैसों का प्रधार निर्वात से निकलता. है यह राकेट पर क्रियात्मक बल है. गरम गैसों का प्रधार राकेट को आगे की तरफ बढ़ाता है. यही प्रतिक्रिया बल है. ये क्रिया एवं प्रतिक्रिया बल राकेट के आंतरिक बल होते हैं. किसी बाह्य बल की अनुपस्थिति में राकेट की सकल राशि स्थिर होती है. द्रव्यमान केंद्र के सापेक्ष गरम गैसों का प्रधार पीछे की तरफ संवेग करता है और राकेट एक समान संवेग से आगे की तरफ बढ़ता है.

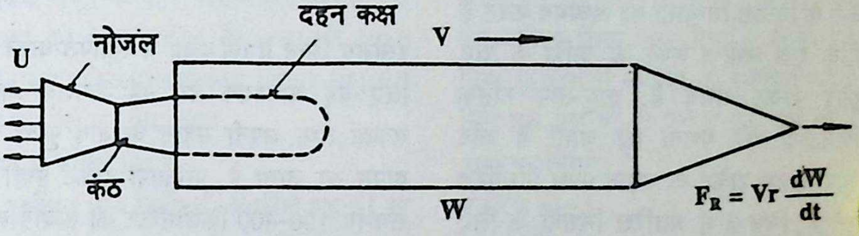

सापेक्ष वेग

$Vr = U - V$, द्रव्यमान, $\frac{W}{g}$

राकेट प्रणोद

$\frac{Vr}{g}\frac{dW}{dt}$, $Vr = gI_{sp}$, विशिष्ट आवेग, I_{sp}

न्यूटन के संवेग के नियमानुसार,

$$\frac{W}{g}\frac{dV}{dt} = \frac{Vr}{g}\frac{dW}{dt}$$

या, $$\frac{Wdv}{dt} = gI_{sp}\frac{dW}{dt}$$

या, $$\int_{V_F}^{V_1} dV = gI_{sp}\int_{W_F}^{W_1}\frac{dW}{W} \Rightarrow \Delta V = gIsp\ ln\frac{W_1}{W_F}$$

विशिष्ट द्रव्यमान अनुपात, $\frac{W_1}{W_F}$

चित्र–1. राकेट का सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उल्लेखनीय है कि अंतरिक्ष उड़ान के लिए एकल खण्ड द्वारा आवश्यक ΔV अभी उपलब्ध प्रौद्योगिकी के द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती. हमें बहुखण्डीय राकेटों की आवश्यकता पड़ती है. प्रणोदक का विशिष्ट आवेग उनकी किस्मों पर निर्भर होता है. रासायनिक प्रणोदक ठोस, द्रव एवं निम्नतापी अवस्था में पाए जाते है. ठोस प्रणोदकों से 250 सेकंड का विशिष्ट आवेग प्राप्त होता है. N_2O_4 एवं UDMH के मिश्रण से यह आवेग 100 सेकंड तक मिल सकता है जबकि निम्नतापी प्रणोदकों से यह 450 सेकंड तक संभव है.

अंतरिक्ष मिशन, उड़ान प्रपथ एवं अनुकरण

साधारण शब्दों में किसी अंतरिक्ष मिशन की परिभाषा एक नियत प्रदाय भार को किसी विशिष्ट कक्षा में स्थापित करने हेतु उसके कक्षीय एवं द्रव्यमान के पदों में की जाती है. एक बार लक्ष्य परिभाषित हो जाने पर हम राकेट के विविध विन्यासों का अध्ययन करते हैं क्योंकि एक अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बहुतेरे राकेट संभव हैं. वायु-ताप गतिक अभिलक्षणों की गणना की जाती है और तदुपरांत हम राकेट के उड़ान प्रपथ निर्धारित करते हैं. चित्र-2 में अंतरिक्ष मिशनों के लिए कल्पित प्रपथ दिखलाया गया है. वायुमण्डल एवं मौसम विज्ञान के लिए परिज्ञापी राकेट छोड़े जाते हैं. परिज्ञापी राकेट प्रमोचन यान से

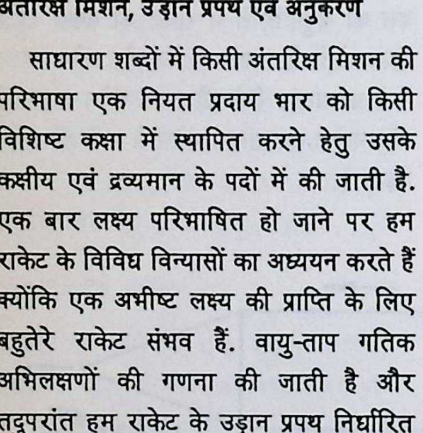

चित्र–2. अंतरिक्ष मिशन के लिए एक कल्पित प्रपथ

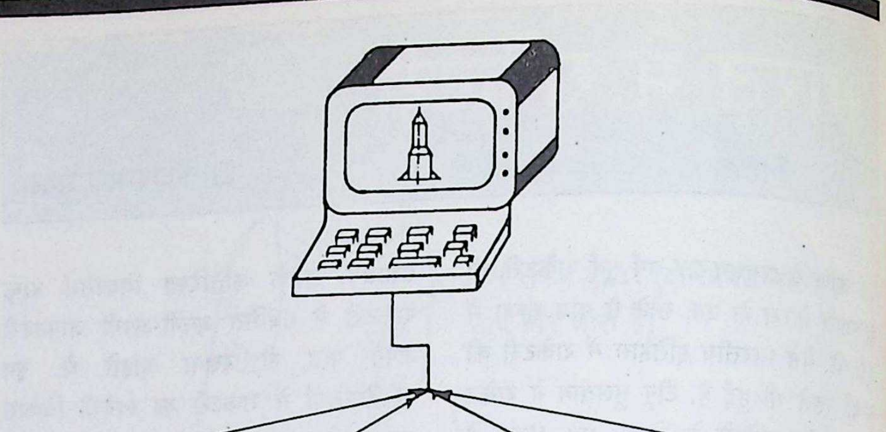

चित्र–3. समाकलित प्रमोचन–अभिकल्पना

इसलिए भिन्न हैं कि कक्षा में स्थापित करने के लिए यह आवश्यक वेग नहीं उपलब्ध करा सकता तथा अपनी उड़ान के बाद पृथ्वी पर वापस आ जाता है. परिज्ञापी राकेट पृथ्वी से लगभग 100-400 किलोमीटर की ऊंचाई तक जाते हैं. पृथ्वी से लगभग 500 किलोमीटर तक की न्यूनतम ऊंचाई की कक्षा में प्रदाय भार (उपग्रह) को स्थापित करने वाले मिशन को निम्न भूकक्षीय मिशन कहते हैं. 500 किलोमीटर से 2000 किलोमीटर तक की न्यूनतम ऊंचाई की कक्षा सूर्य तुल्यकाली मिशनों की होती है तथा 36,000 किलोमीटर की ऊंचाई पर भूतुल्य काली मिशनों के प्रदाय भार (उपग्रह) पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं.

राकेटरी में बहु विषयक जानकारियों का समावेश होता है. सभी से सामंजस्य स्थापित करने के लिए एक उच्च कोटि की प्रबंध संहिता की आवश्यकता पड़ती है. चित्र-3 में आप देखेंगे कि विविध प्राधिकरणों की प्राथमिक गणनाओं के पश्चात् मिशन, संरचना, दत्त, मिशन प्रचालन एवं निष्पादन से संबंधित सूचनाएं एक दत्त प्रणाली में पहुंचती हैं और फिर उनसे संरुपण, नोदन प्रणाली, निष्पादन एवं एविओनिकी का विश्लेषण किया जाता है जिसके आधार पर यान का विन्यास निर्धारित होता है. इस सकल प्रक्रम को समाकलित प्रमोचक-अभिकल्पना कहते हैं.

संरचना, ताप अवरोधी निकाय एवं प्रणोदक का कुल द्रव्यमान पूरे यान के द्रव्यमान के तीन चौथाई से भी ज्यादा होता है. अन्य उपनिकायों में एविओनिकी, नोदन प्रणाली आदि आते हैं. प्रयास यह किया जाता है कि प्रमोचन यान का द्रव्यमान इष्टतम हो जिससे हम अधिक से अधिक प्रदाय भार उसकी निर्धारित कक्षा में स्थापित कर सकें. हल्के एवं उच्च सामर्थ्य वाले बहुत से पदार्थ जो सुगमता से उपलब्ध हैं, उन्हें राकेट के निर्माण में प्रयुक्त करते हैं. उदाहरण के लिए स्टेनलेस स्टील, मैगनीशियम, और एलुमिनियम मिश्र धातुएं, मैराजिंग स्टील, बेरेलियम, टाइटेनियम, कार्बन रेशा आदि.

परिज्ञापी राकेट

भारतीय राकेटरी का प्रारंभ एक द्विखण्डीय परिज्ञापी राकेट के प्रक्षेपण से हुआ. इसरो के परास केन्द्रों–केरल में तुम्बा, आंध्र प्रदेश में श्रीहरिकोटा एवं उड़ीसा में बालासोर–से आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक एक हजार से अधिक परिज्ञापी राकेट प्रक्षेपित हो चुके हैं. विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र (वी एस एस सी) का मुख्य उद्देश्य राकेटरी के अनुसंधान एवं विकास से संबंधित है. इसने रोहिणी नाम से सुपरिचित विविध प्रकार के राकेटों का विकास किया है. इसमें सबसे छोटा एक खण्डीय राकेट है जिसे आर एच 125 कहते हैं. यह 7 किलोमीटर के प्रदायभार को 10 किलोमीटर ऊंचाई तक ले जाने में सक्षम है. दूसरी तरफ 100 किलोमीटर के प्रदायभार को 350 किलोग्राम की ऊंचाई तक ले जाने में सक्षम 1.4 टन द्रव्यमान वाला द्विखण्डीय राकेट आर एच 560 है. चित्र-4 में रोहिणी श्रृंखला के विविध राकेटों को प्रतीकात्मक रूप से प्रदर्शित किया गया है. इसके मुख्य अभिलक्षण सारणी में वर्णित है.

इस श्रृंखला में एक अन्य राकेट आर एच 300 मार्क-2 है जिसे श्रीहरिकोटा से 78.5 के उन्नयन कोण पर प्रेक्षित किया गया. यह 56 किलोग्राम के प्रदाय भार को 158 किलोमीटर की ऊंचाई तक ले जाने में सक्षम रहा.

रोहिणी परिज्ञापी राकेट परियोजनाओं को संक्षेप में आर एस आर परियोजना से जानते हैं. इसके अंतर्गत विविध राष्ट्रों के वैज्ञानिकों को वायुमण्डलीय प्रयोगों के लिए आवश्यक साधन सुलभ कराए जाते हैं. विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के राष्ट्रों ने यहां से अपने-अपने प्रयोग किए हैं. वैज्ञानिक अनुसंधान राष्ट्रीय सीमा के अंतर्गत बांधे नहीं जा सकते. विविध राष्ट्रों के बीच पारस्परिक सहयोग को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण से 2 फरवरी 1968 को तुम्बा राकेट प्रक्षेपण केन्द्र संयुक्त राष्ट्र संघ को समर्पित कर दिया गया.

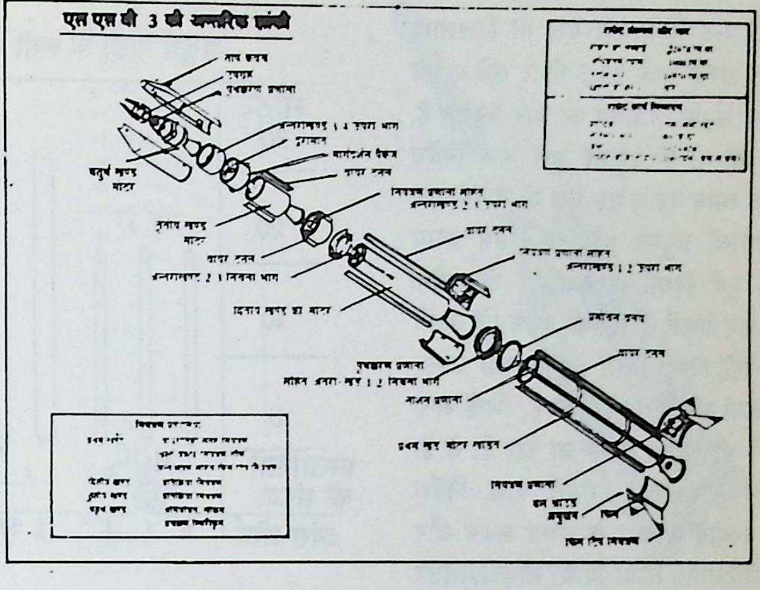

निम्न भू-कक्षीय मिशन

प्रमोचन यान किसी भी अंतरिक्ष प्रणाली का एक प्रमुख अंग होता है. इसके बिना हम अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में आत्म निर्भरता की कल्पना भी नहीं कर सकते. प्रमोचन यान की जटिल प्रौद्योगिकी में आत्म निर्भरता हेतु राष्ट्र ने विविध चरणों में प्रमोचन यान के विकास का दायित्व लिया. इस दिशा में पहला प्रयास निम्न भू-कक्षा में उपग्रहों को स्थापित करने के लिए एस एल वी–3 एवं ए एस एल वी जैसे यानों का निर्माण है.

एस एल वी–3

यह राष्ट्र का पहला प्रमोचन यान है जिसकी अभिकल्पना एवं विकास 1973 में प्रारंभ हुआ. 17 टन भार का 23 मीटर लम्बा चार खण्डों वाला यह ठोस राकेट 18 जुलाई 1980 को प्रमोचित किया गया. इसके द्वारा 40 किलोग्राम भार के रोहिणी उपग्रह को पृथ्वी की निम्न कक्षा में स्थापित किया गया. चित्र–5 में एस एल वी–3 की आंतरिक झांकी दिखलाई गई है. एस एल वी–3 की पहली सफल प्रयोगात्मक उड़ान के बाद अन्य दो विकासात्मक उड़ानें हुईं. लगातार दो बार की प्रमोचन सफलता ने राकेटरी की अभिकल्पना एवं निर्माण में हमारी दक्षता स्थापित की.

ए एस एल वी

भारतीय राकेटरी के विकास का दूसरा चरण ए एस एल वी की अभिकल्पना एवं विकास से प्रारंभ होता है. इसकी अभिकल्पना 150 किलोग्राम भार के उपग्रह को पृथ्वी की

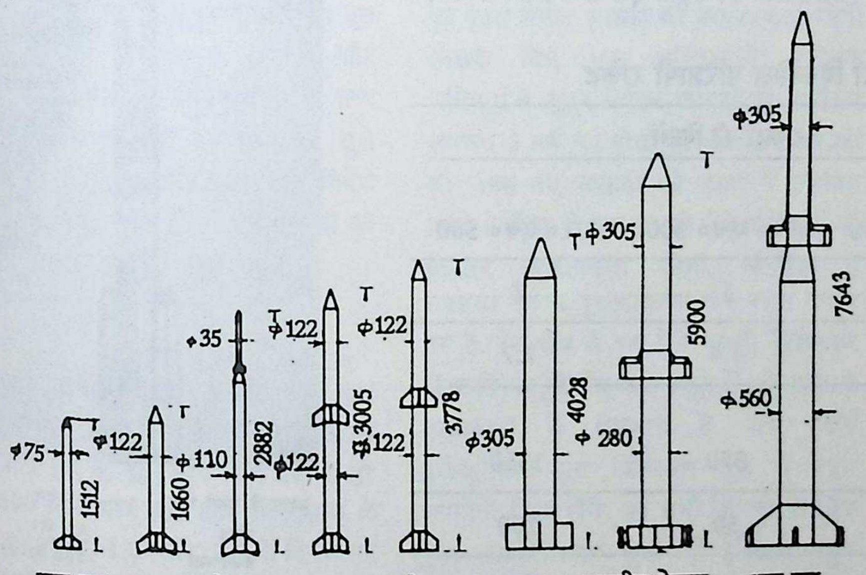

चित्र–4. रोहिणी परिज्ञापी राकेट श्रृंखलाएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

निम्न कक्षा में स्थापित करने के उद्देश्य से की गई है. चित्र-6 में ए एस एल वी दिखलाया गया है. 5 खण्डों वाले 23.5 मीटर लंबे ए एस एल वी का उड़ान के समय का भार 39 टन है. एस एल वी–3 में प्रयुक्त खुले पाश निर्देश प्रणाली के स्थान पर ए एस एल वी में बंद पाश निर्देश प्रणाली प्रयुक्त हुई. इससे हम प्रदाय भार को पूर्व निर्धारित कक्षा में ठीक-ठीक स्थापित कर सकते हैं. इसकी प्रथम दो उड़ानें असफल रहीं किन्तु उसमें प्रयुक्त कुछ उन्नत प्रौद्योगिकियां प्रमाणित हो चुकी हैं, जिन्हें अन्य मिशनों में भी प्रयुक्त किया जा रहा है. ये हैः स्ट्रेप ऑन प्रौद्योगिकी; संवृत पाश निर्देश प्रणाली; वल्वीय आकार के उष्मा कवच और संबंधित जेटिसनिंग क्रिया विधि; माइक्रोप्रोसेसर पर आधारित जांच पड़ताल तंत्र; और ऊर्ध्वाधर समाकलन.

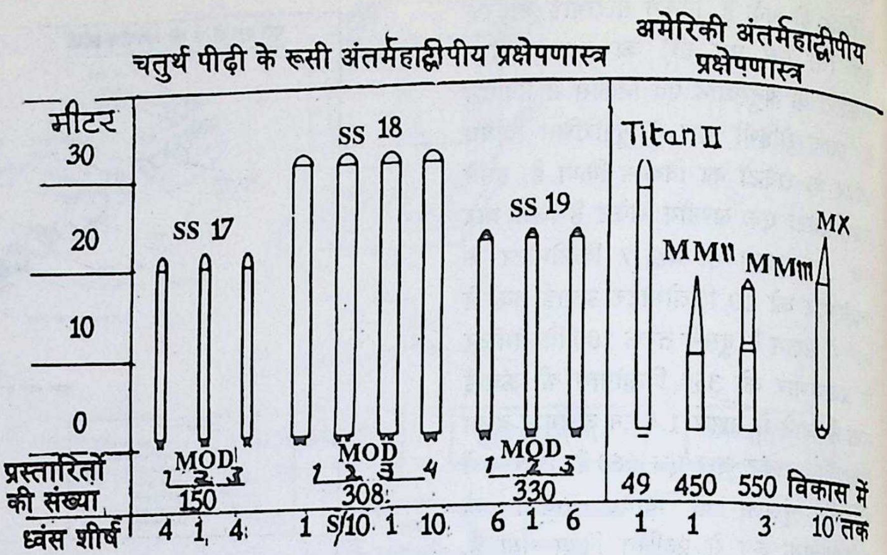

विकसित राष्ट्रों के कार्यक्रम

फ्रांस ने 38 किलोग्राम के आस्ट्रीक्स उपग्रह को अपने डायमंड प्रमोचक से नवम्बर 1965 को कक्षा में स्थापित किया. डायमंड एवं उसके अन्य व्युत्पन्नों से 10 वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक उपग्रह स्थापित किए जा चुके हैं. इसने जर्मन उपग्रह डायल/वीका को भी सफलतापूर्वक कक्षा में स्थापित किया. 1975 में फ्रांस ने अपने अंतरिक्ष कार्यक्रम में परिवर्तन किया और उसी वर्ष स्थापित यूरोपीय अंतरिक्ष प्राधिकरण (इ एस ए) का एक सक्रिय सदस्य बना. आज उसका बहुउद्देशीय एरियन प्रमोचक विश्व के शक्तिशाली प्रमोचकों में से एक है.

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और सोवियत रूस के निम्न भू-कक्षीय कार्यक्रम विशेष रूप से अंतरमहाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों में परिणित हो चुके हैं. टाइटन–2 यान और अन्य प्रक्षेपणास्त्र एम एम-2 एवं एम एम-3 अमेरिकी प्रक्षेपणास्त्र हैं. उसके एक अन्य प्रक्षेपणास्त्र एम एक्स का विकास हो रहा है. सोवियत रूस के पास एस एस श्रृंखला के 17, 18 और 19 प्रक्षेपणास्त्र हैं. सोवियत रूस एवं अमेरिकी प्रक्षेपणास्त्रों की तुलनात्मक क्षमता चित्र-7 में प्रदर्शित की गई है.

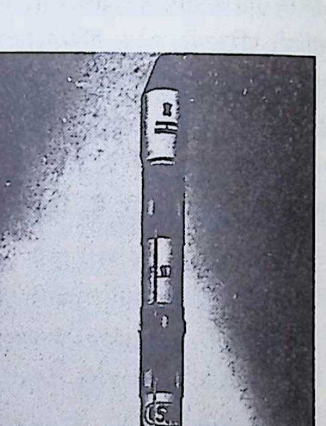

उड़ान के समय भार	:	275 टन
ऊंचाई	:	42 मी॰
प्रक्षेप्य भार	:	1000 कि॰ग्रा॰
कक्षा	:	900 कि॰ मी॰ सूर्य तुल्य कक्षी

चित्र-7 : पी एस एल वी का एक दृश्य

सारणी—वी एस एस सी द्वारा विकसित परिज्ञापी राकेट

अभिलक्षण	राकेटों की किस्में		
	आर॰ एच॰ 200	आर॰ एच॰ 300	आर॰ एच॰ 560
खण्डों की संख्या	2	1	2
लम्बाई, मीटर	3.6	4.4	7.7
उड़ान के समय द्रव्यमान (किलोग्राम)	108	370	1350
प्रदाय भार (किलोग्राम)	90	50	100
ऊंचाई	80	50	350
प्रयोग	मौसम विज्ञान	मध्य वायुमण्डल	आयन मण्डल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य तुल्य कक्षीय मिशन

अंतरिक्ष में सुदूर संवेदन संबंधी कार्य वैज्ञानिक परीक्षणों, भू-सर्वेक्षण तथा मौसम विज्ञान के अध्ययन के लिए प्रारंभ हुआ था. अमेरिकी उपग्रह-लैण्ड सैट और फ्रांसिसी उपग्रह-स्पाट भू-सर्वेक्षण से संबंधित सूचनाएं सुलभ करा रहे हैं. फ्रांस का सुदूर संवेदन उपग्रह-स्पाट उसके एरियन यान से 22 फरवरी 1986 को कक्षा में स्थापित हुआ. मई 1986 से उपग्रह संक्रियात्मक हो चुका है. स्पाट के दत्तों को व्यापारिक स्तर पर सुलभ कराने के लिए फ्रांस ने 'स्पाट-प्रतिबिम्ब' नामक संस्था स्थापित की है. इसे फ्रांस, स्वीडन और बेल्जियम के बैंकों एवं कंपनियों का सहयोग प्राप्त है. इसकी अमेरिका शाखा 'स्पाट प्रतिबिम्ब निगम' है. 1986 में इसे 120 लाख फ्रैंक (फ्रांसिसी मुद्रा) का लाभ हुआ था.

यान का विच्छेद दृश्य

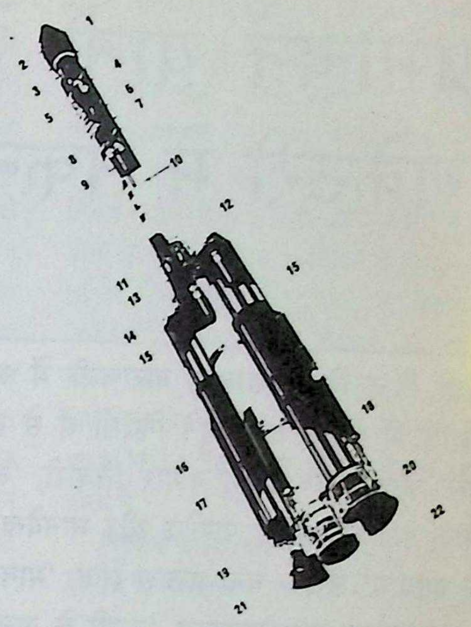

अपने ही प्रमोचन यान से भारत जैसे विशाल राष्ट्र के लिए सुदूर संवेदन उपग्रह कक्षा में स्थापित करना बहुत महत्व का है. इसे दृष्टि में रखते हुए पी एस एल वी की अभिकल्पना एवं विकास प्रारंभ हुआ. 275 टन भार के 42 मीटर लंबे इस प्रमोचक का उद्देश्य 1000 किलोग्राम भार के अंतरिक्ष यान को सूर्यतुल्य काली कक्षा में स्थापित करना है. चित्र-8 में पी एस एल वी को चित्रित किया गया है. पांच खण्डों वाले पी एस एल वी यान में स्ट्रेप ऑन, खण्ड-1 और खण्ड-3 में ठोस प्रणोदक प्रयुक्त होता है, तथा खण्ड-2 और खण्ड-4 में द्रव प्रणोदक. खुले पाश एवं संवृत पाश दोनों प्रकार की निर्देश प्रणालियां इसमें कार्यरत हैं. पी एस एल वी को शीघ्र ही प्रमोचित होने की संभावना है.

भविष्य

भारतीय प्रमोचकों के विकास का क्रम चित्र-— में दिखलाया गया है. पी एस एल वी यान में यदि हम दो और स्ट्रैप ऑन बढ़ा दें तो इससे 600 किलोग्राम एवं 800 किलोग्राम के उपग्रह को क्रमशः 135 और 102 के दिगंश पर भू-स्थायी कक्षा में स्थापित कर सकते हैं. यह कक्षा दूर संचार के लिए उपयोगी है. इसमें लगभग 50 भू-स्थायी उपग्रह पहले से ही विद्यमान हैं तथा इस कक्षा में स्थान प्राप्त करने के लिए होड़ लगी है. अपने ही यान से अपना उपग्रह भू-कक्षा में स्थापित करने का एक कार्य जी एस एल वी की अभिकल्पना एवं जी एस एल वी पर प्रारंभिक अध्ययन चल रहा है.

निरक्षरता उन्मूलन में अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी का उपयोग, संचार एवं दूरदर्शन आदि से प्राप्त अभी तक के अनुभवों से यह स्पष्ट है कि राष्ट्र को वृहत संचार उपग्रहों की आवश्यकता पड़ेगी जिसके लिए एक शक्तिशाली प्रमोचक अनिवार्य है. सुदूर संवेदन उपग्रहों का कार्यक्रम लगभग 3 वर्ष का होता है. अतः इन उपग्रहों की जगह नए उपग्रहों को कक्षा में स्थापित करने के लिए पी एस एल वी जैसे प्रमोचकों की निरंतर आवश्यकता पड़ेगी. अंतरिक्ष में उपलब्ध नगण्य गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र बहुत महत्व का है. इस क्षेत्र में हम ऐसे पदार्थ, विशेषकर क्रिस्टलों का निर्माण कर सकते हैं जो पृथ्वी के वातावरण में असम्भव हैं. यह पदार्थ इलैक्ट्रोनिकी एवं चिकित्सा क्षेत्र में बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे. इन सभी मिशनों के लिए पुनः उपयोगी यान मूल्य की दृष्टि से बहुत प्रभावकारी प्रमाणित होगा.

अंतरिक्ष कार्यक्रम में शैक्षणिक संस्थाओं को सम्मिलित करने के दृष्टिकोण से भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन 'रिस्पाण्ड' का कार्यक्रम चला रहा है. इसके अंतर्गत अंतरिक्ष अनुसंधान परियोजनाओं को वित्तीय सहायता दी जाती है. इसके अतिरिक्त भारतीय वैज्ञानिकी संस्थान, बैंगलोर एवं बम्बई और मद्रास स्थित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों में अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी कक्ष कार्य कर रहे हैं. इन प्रौद्योगिक कक्षों का प्रसार विश्वविद्यालयों में भी सम्भव है. इससे राकेटरी के क्षेत्र में परस्पर सहयोग बढ़ेगा तथा हम उच्च कोटि के विशेषज्ञ तैयार कर पाएंगे. □

READ
POPULATION OF INDIA:
1991 Census Results and Methodology/ Ashish Bose Rs. 50
India's Population: Heading Towards a Billion (An Analysis of 1991 Census Provisional Results)/ Mahendra K. Premi Rs. 60
Demography Diversity of India: 1991 Census State and District Level Data - A Reference Book/ Ashish Bose Rs. 175
Post Free, (In India only) If full money sent in advance
D K P D (P) Ltd
1, Ansari Road, Darya Ganj, New Delhi-2. Ph: 3261465, 3278368

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमोचन यानों के माध्यम से राकेटरी में तकनीकी विकास

□ किशन सिंह एवं
□ विजय कुमार

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में आयोजित संगोष्ठी 'विज्ञान की नई दिशाएं' में प्रस्तुत आठ चुने निबंधों में से छः 'भारत का वैज्ञानिक पुर्नजागरण काल' लेखक डा० श्रवण कुमार तिवारी, 'आनुवंशिक इंजीनियरी, एक परिचय' लेखक डा० रवि शंकर पाण्डेय और मानवेन्द्र त्रिपाठी, 'मूलकण भौतिकी के कुछ नए आयाम' लेखक चन्द्र प्रकाश सिंह, 'मानसून का दीर्घावधि पुर्वानुमान' लेखक डा० युगलदास चट्टोपाध्याय, 'काशी के जल स्रोत: सर्वेक्षण एवं प्रदूषण' लेखक डा० गिरीश चन्द्र चौधरी और 'ठोस पदार्थ की संरचना का एक नया रूप क्रिस्टल-कल्प' लेखक डा० राधेश्याम तिवारी. आप पत्रिका के क्रमशः मार्च 1990, अप्रैल 1990, मई 1990, अक्तूबर 1990, फरवरी 1991 और मई 1991 के अंकों में पढ़ आए हैं. प्रस्तुत है इस कड़ी का अगला लेख.

□ हमारे देश में सन् 1963 में थुंबा नामक स्थान पर परिज्ञापी राकेटों को प्रमोचित करने की सुविधा स्थापित की गई जहां से प्रारंभ में आयातित व फिर स्वदेशी राकेट छोड़े गए. बाद में सन् 1967 से इस केंद्र के इर्द-गिर्द राकेट अनुसंधान व विकास से संबंधित कार्यों को संगठित किया गया. परिज्ञापी राकेटों के विकास से उत्साहित होकर हमारे वैज्ञानिकों ने प्रमोचन यानों के विकास में दक्षता प्राप्त करने का विचार किया और 1968 में इस कार्य को संपन्न करने के लिए उपग्रह यान विकास परियोजना प्रारंभ की गई. तब से थुंबा का अंतरिक्ष संस्थान विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र के नाम से जाना जाने लगा.

इन यानों का कार्य उपग्रहों को उनकी निश्चित कक्षा में स्थापित करना है. भिन्न-भिन्न उपयोगों के अनुसार इन्हे भिन्न-भिन्न कक्षाओं में स्थापित किया जाता है. व्यावसायिक व व्यावहारिक दृष्टिकोण से एक उपग्रह से कई आवश्यकताओं को पूरा करना होता है. जिसके लिए इनमें कई उपकरण लगाए जाते हैं. उपग्रह की प्रणालियों का चयन इस प्रकार किया जाता है जिससे उसका अधिकतम उपयोग व भार न्यूनतम हो. पृथ्वी की भिन्न कक्षाओं में स्थित ये उपग्रह दूर-संचार, दूरदर्शन, सुदूर संवेदन, तुरंत सूचना और मौसम विज्ञान से संबंधित सूचनाओं को देश के कोने-कोने में उपलब्ध कराते हैं. इन अलग-अलग तरह के उपग्रहों को उनकी कक्षाओं में स्थापित करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपग्रह प्रमोचन यानों की आवश्यकता होती है. सारणी–1 में इनकी संक्षिप्त जानकारी दी गई है.

वैज्ञानिकों ने भारत में उपलब्ध तकनीकी साहित्य व अपने वैज्ञानिक ज्ञान के बल पर जिस पहले प्रमोचन यान का विकास शुरू किया उसे एस एल वी–3 के नाम से जाना जाता है. अनेकानेक प्रयोगों, अध्ययनों व परीक्षणों के बाद सन् 1979 में इसे प्रमोचित किया गया. अब तक इसकी चार उड़ाने हो चुकी हैं. इस की क्षमता बढ़ाने व यानों के लिए आवश्यक तकनीकी क्षेत्रों में विकास कार्यों को करने के उद्देश्य से एस एल वी को नए यान का रूप दिया गया. इसे संवर्धित उपग्रह प्रमोचन यान (ए एस एल वी) कहते हैं. ये दोनों ही प्रयोगात्मक व विकासीय यान हैं. भारत के उपयोगी उपग्रहों को प्रमोचित करने के उद्देश्य से ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचन यानो (पी एस एल वी) व भू-तुल्य उपग्रह प्रमोचन यान (जी एस एल वी) की परियोजनाओं को हाथ में लिया गया. जहां ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचन यान विकास की अंतिम चरण तक पहुंच रहा है. वहां भू-तुल्य उपग्रह प्रमोचन यान के डिजाइन पर अभी अध्ययन चल रहे हैं. इन यानों की

सारणी–1. विभिन्न सेवाओं के लिए उपग्रह

उपयोग	कक्षा कि०मी०	मिशन अवधि	नीत भार	उपग्रह भार टन	उदाहरण
खगोलिकी वैज्ञानिकी	500-1000	1-2 वर्ष	दूरबीन		आर्यभट्ट, रोहिणी
प्रयोगिक अंतरिक्ष यान	500	≃ 1 वर्ष		40-160 किलो	रोहिणी
भू-प्रेक्षण संचार	500	≃ 1 वर्ष	टी०वी० कैमरे, माइक्रोवेव, रेडियोमीटर	40-700 किलो	भास्कर
संसाधन	36,000 भू-तुल्य कक्षा	≃ 2 वर्ष	सी-बैण्ड प्रेषानुकार	670 किलो –2 टन	एपल, इन्सेट
सर्वेक्षण	700 सूर्य तुल्य कक्षा	> 2 वर्ष	बहुस्पेक्ट्रमी, क्रमवीक्षण, सी०सी०डी०	1 से 2 टन	आई आर एस I ए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य-मुख्य बातें व उनके आरेख सारणी–2 में प्रदर्शित हैं.

यान की मुख्य उप-प्रणालियां

प्रमोचन यान उपग्रह को निर्धारित कक्षा में पहुंचाने के लिए उसे एक निश्चित वेग प्रदान करते हैं. यह वेग राकेट में उपयुक्त नोदक के विशिष्ट आवेग (Isp), जो कि उसके निष्पादन का माप दण्ड है, व द्रव्यमान अनुपात पर निर्भर करता है. इसे निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त करते हैं:

$$\Delta V = gIsp \log \frac{W_i}{W_f}$$

जहां ΔV-प्राप्त वेग, g-गुरुत्वाकर्षण, W_i उत्थापन पर यान का भार व W_f पूर्ण ज्वलन की स्थिति में यान का भार होता है. स्पष्ट है कि यान की क्षमता बढ़ाने के लिए उच्च विशिष्ट आवेग वाले नोदकों व उच्च द्रव्यमान का अनुपात प्राप्त करने के प्रयत्न किए जाने चाहिए. उच्च द्रव्यमान अनुपात प्राप्त करने के उद्देश्य से यान को उच्च विशिष्ट प्रतिबल वाली धातुओं से बनाते हैं. राकेट को कई खण्डों में विभक्त करना भी इसी उद्देश्य से होता है. इसके अतिरिक्त प्रमोचित उपग्रह के भार, उपलब्ध नोदक व संरचना पर प्रमोचन यान का उत्थापन भार व उसके आयाम निर्भर करते हैं.

प्रमोचन यान का कार्य उपग्रह को सही-सही कक्षा में पहुंचाना है. विभिन्न उपग्रहों के लिए कक्षा यर्थाथिता के मापदंड भिन्न होते हैं. अतः यह आवश्यक है कि उपग्रह प्रमोचन यानों की उड़ान नियंत्रित हो. इसके अतिरिक्त उड़ान पथ के आस-पास के जान माल की सुरक्षा व उपग्रह की सुरक्षा की दृष्टि से यान में अन्य प्रणालियों का होना भी आवश्यक है. यान की सभी प्रणालियां सामूहिक रूप से व योजनाबद्ध क्रम से कार्य करके उपग्रह को कक्षा में पहुंचाती है. प्रमोचन यान की उप-प्रणालियां निम्न हैं:

नोदन प्रणाली; नियंत्रण तंत्र; निर्देशन व नियंत्रण प्रणाली; ताप कवच; पृथक्करण प्रणाली; विनाश तंत्र; और यान संरचना. यान की विभिन्न प्रणालियां चित्र–1 में दिखाई गई है.

नोदन प्रणाली–यह यान को आगे बढ़ाने की शक्ति प्रदान करती है. इसमें नोदक दहन कक्ष में जलकर, नोजल द्वारा यान से बहिष्कार होता है और इस तरह न्यूटन के तीसरे गति संबंधी नियम के सिद्धान्त पर यान को गतिक ऊर्जा प्रदान करता है. इस सिद्धान्त को चित्र–2 में दिखाया गया है. अभी तक इस क्षेत्र में दो प्रमुख प्रणालियों को काम में लाया गया है. ठोस नोदन व द्रव नोदन प्रणाली. द्रव नोदन प्रणाली को भी भू-संचयी व निम्नतापी नोदन प्रणालियों में विभक्त किया जा सकता है. ठोस नोदन प्रणाली के मुख्य अंग-नोदन, मोटर खोल, नोजल, प्रज्वालक आदि हैं. द्रव नोदन प्रणाली के अंग–नोदक टंकी, इंजन, निपीडन प्रणाली, टरबोपम्प, नाभिकीय जोड़ आदि हैं.

ठोस नोदन प्रणाली में ईंधन (एलुमीनियम) व आक्सीकारक (अमोनियम पर-क्लोरेट) प्रमुख रसायन हैं. इन्हें बंधक में मिलाकर प्लास्टिकनुमा ठोस पदार्थ बनाते हैं, इसे नोदक ग्रैन कहते हैं.

द्रव नोदन प्रणाली में द्रवित ईंधन व आक्सीकारक को अलग-अलग टंकियों में भरा जाता है. इन्हें निपीडन या पम्पन द्वारा दहन कक्ष में भेजते हैं. जहां यह जलकर ग्रस्ट उत्पन्न करता है. यह प्रणाली काफी जटिल है परन्तु उच्च निष्पादितता, प्रचालन सुविधा प्रणाली के लचीलेपन आदि विशेषताओं के कारण इसका प्रमोचन यानों के क्षेत्र में विशिष्ट उपयोग हैं.

यान के उत्थापन के समय उसके भार का मुख्य हिस्सा नोदक भार का होता है. यह यान में 80-90 प्रतिशत का हिस्सेदार है. बचे हुए भार में भागीदार राकेट पिंड, नोदन प्रणाली के अंग-इंजन, घटक, प्रज्वालक, नियंत्रण तंत्र, उपकरण कक्ष, पृथक्करण व विनाश तंत्र आदि हैं.

नियंत्रण तंत्र–यह अभिवृत्ति की त्रुटियों को दूर करने व यान संचालन के लिए आवश्यक पार्श्व बल प्रदान करता है. इसके तंत्र इंजन/नोजल, अन्तराचरण या वायुगतिकीय पंखुड़ियों में लगे रहते हैं. इसके विभिन्न प्रकारों में प्रक्षाग्र नियंत्रण तंत्र, द्वितीयक अंतःक्षेपण प्रणोद संदिश नियंत्रण तंत्र, प्रतिक्रिया नियंत्रण तंत्र व इंजन गिम्बल मुख्य हैं. पहले प्रकार को केवल वायुमंडलीय उड़ान के दौरान ही काम में लाया जा सकता है. आजकल आमतौर पर ठोस व द्रव नोदन मोटरों के नोजल को गिम्बल करके पार्श्व बल प्राप्त करते हैं. तकनीकी दृष्टि से यह प्रणाली काफी जटिल है. प्रतिक्रिया नियंत्रण तंत्र में कई छोटी-छोटी राकेट मोटरें होती हैं. जिन्हें जरूरत के हिसाब से प्रज्वल्लित करके पार्श्व बल प्राप्त करते हैं. द्वितीयक अतःक्षेपण प्रणोद संदिग्ध नियंत्रण तंत्र प्रथम खण्ड की मोटरों में प्रचलित है. इसमें अतिरिक्त द्रव या गैस को नोजल में अंतःक्षेपित करके निर्वात गैस विक्षेप द्वारा पार्श्व बल प्राप्त होता है.

निर्देशन व नियंत्रण प्रणाली–यह राकेट का दिमाग है. वास्तविक काल में यान की स्थिति

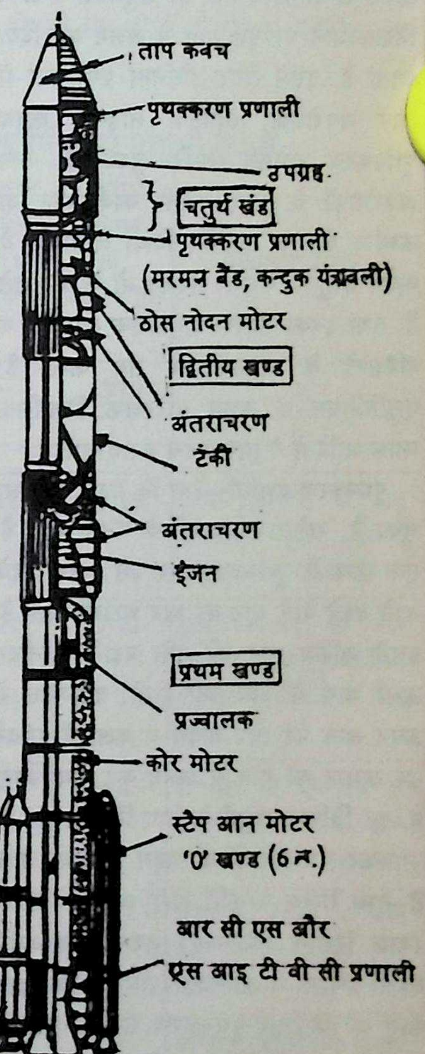

चित्र–1 यान की विभिन्न प्रणालियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पता करके, अभिवृत्ति की त्रुटियों को दूर करके व पूर्व निश्चित या संवृत पाश उड़ान की आवश्यकताओं के अनुसार गणना करके यह नियंत्रण तंत्रों को उचित आदेश देता है. इस तरह यह ठीक पथ पर यान की उड़ान सुनिश्चित करता है. उपकरण कक्ष में इसका भी समुच्चय होता है. इस जगह अन्य उपकरणों में यान विद्युत सप्लाई, दूर मापी व दूर आदेश, अनुवर्तन, अनुक्रमक आदि होते हैं. निदेशन व नियंत्रण प्रणाली के अंग दर जाइरोस्कोप, जड़त्वीय मापन यंत्र, अभिकलक, स्वतः चालक आदि हैं.

ताप कवच–यह यान उत्थापन पर राकेट मोटरों के शोर व वायुमंडलीय उड़ान के दौरान वायुघर्षण जनित ताप से उपग्रह व यानों के ऊपरी खण्डों को बचाता है. वायुमंडल से ऊपर निकल आने पर इसे यान से अलग कर दिया जाता है. इसमें स्थित विभिन्न प्रणालियों में ताप अवरोधक, ध्वानिक लाइनर, कवच पृथक्करण प्रणाली आदि मुख्य हैं. ताप अवरोधकों के लिए पतली कार्क शीट या ऊष्मीय लेप का उपयोग किया जाता है. ये कवच धातु या संयुक्त संरचनाओं के बने होते हैं. तथा इनका संरुपण वायुगतिक अध्ययनों व परिक्षणों के आधार पर तय करते हैं. एलुमिनियम व ऊष्मा परिरक्षक फिनालिक ग्लास आदि से ये ताप कवच बनाए जाते हैं.

पृथक्करण प्रणाली–जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राकेट कई खण्डों के बनाए जाते हैं. एक खण्ड के पूर्ण-ज्वलन पर उसे अलग करके आगे बढ़ने वाले यान का भार घटाया जाता है. इससे अक्रिय भार की गति बढ़ाने में नोदन ऊर्जा व्यर्थ में व्यय नहीं होती. वायुमंडल से ऊपर आने पर ताप कवच व कक्षा में पहुंचने पर उपग्रह को यान से अलग कर दिया जाता है. इन विभिन्न कार्यों के लिए निम्न प्रकार की पृथक्करण प्रणालियों को काम में लाया जाता है–नम्य रैखिक आकृति डोरी, कन्दुक यंत्रावली (बाल रिलीज मेकेनिस्म) मरमन बैंड आदि. पहली प्रणाली में अग्निकी (पायरोटेनिक) द्वारा धातु को काटकर पृथक्करण सम्भव करते हैं. दूसरी प्रकार में गेंद व यांत्रिक संरुपण द्वारा भागों को जोड़कर रखा जाता है. बाल को

भारतीय प्रमोचन यानों के आंकड़े

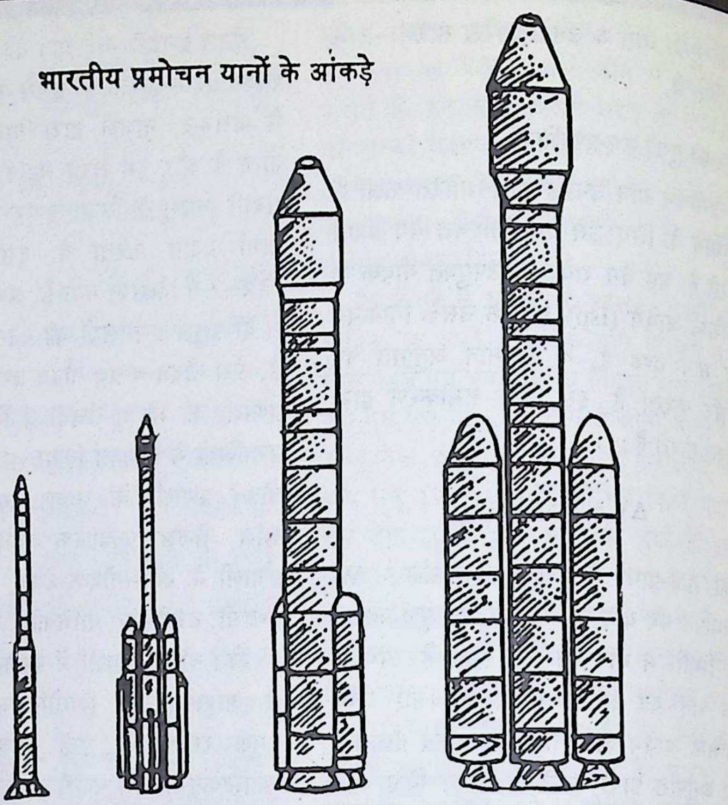

पैरामीटर	एस एल वी	ए एस एल वी	पी एस एल वी	जी एस एल वी (प्रयोगात्मक)
यान का व्यास मीटर	1.0	1.0	2.8	2.8
ऊंचाई मीटर	23.0	24.0	45.0	46.0
उत्थापन भार टन	17.0	39.0	280	530.0
उपग्रह भार	40	160	1000	2500-3500
उपग्रह कक्षा कि० मी०	400	400	900	जी टी ओ
निर्देशन प्रणाली	खुला पाश नियंत्रण	द्वितीय खण्ड से संवृत पाश तंत्र	→	
नोदन प्रणाली 0	ठोस	ठोस	ठोस	ठोस
1	ठोस	ठोस	ठोस	ठोस
2	ठोस	ठोस	ठोस	द्रव
3	ठोस	ठोस	गैस	निम्नतापी या द्रव
4	ठोस	ठोस	द्रव	—

खांचे में से निकाल देने पर दोनों भाग अलग हो जाते हैं. मरमन बैंड प्रणाली में कई घटकों की स्ट्रेप तनाव द्वारा दो भागों के जोड़कर रखा जाता है.

विनाश तंत्र–राकेट में मुख्य रूप से नोदक होते हैं. ये विस्फोटक, विषाणु होते हैं. इनसे विस्फोट, वायु, जल व भू-प्रदूषण आदि के खतरे बने रहते हैं. यान का प्रमोचन सुदूर नियंत्रण द्वारा निर्जन स्थान से करते हैं. इसका उड़ान पथ निश्चित करने में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि यह आबादी वाले स्थान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर से न उड़े. इन सावधानियों के उपरान्त भी तकनीकी कुसंक्रिया के कारण इसके अपने पथ से भटक जाने की आशंका बनी रहती है. इस स्थिति का सामना करने के लिए यान में विनाश तंत्र का समावेश किया जाता है. इसका कार्य रेंज सुरक्षा अधिकारी से निर्देश मिलने पर यान को अंतरिक्ष में ही नष्ट कर देना है.

यान संरचना—राकेट का बाहरी पिंड-राकेट मोटरों के खोल, अंतराचरणों तथा ताप कवच द्वारा संरचित होता है. ये संरचनाएं उड़ान के दौरान उत्पन्न हुए विभिन्न बलों जैसे-वायुगतिकीय बल, थ्रस्ट, हवा के थपेड़ों को तो झेलती ही हैं, प्रहस्थन, परिवहन व समाकलन के दौरान उत्पन्न हुए भारों को भी झेलती हैं. राकेट के अन्य उपकरणों का समुच्चय इन्ही संरचनाओं पर किया जाता है. राकेट के अक्रिय भार में इनका योगदान अधिकतम होता है, अतः पूरी कोशिश रहती है कि इष्टिम अभिकल्पना की संरचना बनाई जाए जिनसे भार न्यूनतम हो. इसी उद्देश्य से इनके लिए उच्च विशिष्ट प्रतिबल की धातुओं को चुना जाता है. राकेट संरचनाओं में उपयुक्त पदार्थों के गुण सारणी—3 में दिए गए हैं. डिजाइन के समय सुरक्षाक (फैक्टर आफ सेफ्टी) न्यूनतम यानी 1.2—2.3 के बीच रखा जाता है जबकि भू-स्थित संरचनाओं में यह 4-10 के बीच होता है.

राकेटरी के क्षेत्र में तकनीकी विकास

प्रमोचन यानों के तकनीकी विकास का मापदण्ड उपग्रह भार, कक्षा के विवरण व उसकी यर्थाथता, यान विश्वसनीयता, प्रचालन लागत, खण्डों की संख्या आदि से लगाया जा सकता है. भारतीय उपग्रह प्रमोचन यान एस एल वी ए एस एल वी, पी एस एल वी व जी एस एल वी बहुखण्ड हैं. इन यानों के महत्वपूर्ण आंकड़े सारणी-2 में दिए गए हैं. सारणी से स्पष्ट है कि एस एल वी की ठोस नोदन प्रणालियों से बढ़कर भी एस एल वी के दो खण्डों में द्रव नोदन प्रणाली व जी एस एल वी के एक खण्ड में निम्नतापी नोदन प्रणाली होगी. राकेट के आकार व भार बढ़ने से नियन्त्रण तंत्रों पर पार्श्व बल की आवश्यकताएं बढ़ जाती है. इन कारणों से व सही-सही कक्षा प्राप्त करने की आवश्यकताओं के कारण यान में जटिलताएं बढ़ जाती हैं. सही कक्षा प्राप्त करने के लिए वास्तविक समय में यान की स्थिति, दिशा जानकर तुरंत यान संचालन से संबंधित निर्देश व उनका कार्यान्वन आवश्यक होता है. ए एस एल वी, पी एस एल वी व जी एस एल वी में इस तरह का प्रावधान है. यह कार्य सर्वशपाश निर्देशन प्रणाली द्वारा पूरा होता है.

ए एस एल वी के विकास के दौरान ऊर्ध्वाधर समाकलन, स्ट्रेप आन प्रणाली, उभरे हुए ताप कवच, यान अभिकल्क, ओटो पायलट व जड़त्वीय तंत्रों के विकास कार्य किए गए. पी एस एल वी के दौरान बड़े-बड़े राकेटों के प्रहस्थन, उनमें द्रव नोदक भरने व उड़ान पूर्व जांच पड़ताल की बढ़ी हुई तकनीकी आवश्यकताओं के अनुभव होंगे. जी एस एल वी में विश्व स्तर की निम्न तापी नोदन प्रणाली के होने से भारत प्रमोचन यानों के क्षेत्रों मे विश्व स्तर पर पहुंच जाएगा. साथ ही भारतीय प्रमोचन यान कार्यक्रम जो अभी प्रायोगिक व विकासीय चरणों में है, शीघ्र ही संचालन चरणों में पहुंच जाएगा और तब देश अपने उपग्रह प्रमोचनों के क्षेत्र मे स्वावलंबी हो जाएगा.

नोदन प्रणाली

ठोस नोदन प्रणाली के तकनीकी मापदण्डों में नोदक प्रकार व विशिष्ट आवेग, नोदक खण्डों की संख्या, एक मोटर में कुल नोदक का भार, नोदक ग्रेन व्यास व भार, लागत, नोजल का आकार आदि हैं. एस एल वी व ए एस एल वी में पी बी ए एन पर आधारित संयुक्त नोदक को काम में लाया गया. ऊपरी चरणों के लिए वी एस एस सी में ही नोदक विकसित किया

सारणी—3. रॉकेट संरचना में उपयोगी मुख्य धातुओं के गुण

धातु/पदार्थ	चरम सामर्थ्य यू टी एस किलों/मी. मी^{2}	घनत्व ग्राम/सी.सी.	विभाजन सुदृढ़ता किलो एम एन/एम$^{-3/2}$	विशिष्ट सामर्थ्य मी. मीटर$\times 10^6$	संविरचना के गुण
केवलार ऐपोक्सी	176	1.35	—	130.0	
ग्लास ऐपोक्सी	123	2.0	—	61.5	
कार्बन स्टील 12 सी डी वी-6	100	7.8	142	13-18	ऊष्मा उपचार के बाद अधिक विकृति, ऊष्मा उपचार के बाद वैल्डन,
मेराइंजीग स्टील एम-250	185	8.0	100	17-27	ताप उपचार के बाद न्यूनतम विस्तार, मशीनन में आसानी वैल्डन के लिए अच्छा,
टाइटेनियम मिश्र धातु	100	4.47	—	22.4	टी आई जी एवं एफ बी वैल्डन सम्भव, तीखे, साफ व कठोर मशीनन, औजार
एल्यूमिनियम मिश्र धातु	45	2.8		16.21	रिवेटींग, वैल्डन व सभी मशीनन प्रक्रमों के लिए उचित
माइल्ड स्टील	40	7.8	> 200	1.0	साधारण मशीनन के गुण

*यह माइल्ड स्टील की तुलना में दिया गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया. पी एस एल वी व जी एल वी में एच टी पी वी नोदक को काम में लाया जाएगा. इसके लिए आवश्यक रसायनों को भारतीय स्रोतों से प्राप्त किया जा रहा है. इस तरह ठोस नोदक के क्षेत्र में देश पूर्णतया स्वावलंबी है.

एस एल वी व ए एस एल वी की मोटरों में अधिकतम 10 टन नोदक ही है जबकि पी एस एल वी व जी एस एल वी के प्रथम खण्डों में यह क्रमशः 125 व 150 टन होगा. इन मोटरों के प्रत्येक खण्ड में नोदक भार 25 टन व ग्रेन व्यास 2.8 मीटर है. जबकि एस एल वी में ये मात्र 3 टन व 1 मीटर थे. अधिक व्यास के नोदक ग्रेन को ढालने, ऊष्मा उपचार, ग्रेन निरीक्षण व अनष्टता के परीक्षणों, ग्रेन प्रहस्थन व परिवहन आदि में कई कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं.

पी एस एल वी यान के दो मुख्य नोदन खण्डों के लिए पहली बार द्रव नोदन प्रणाली को चुना गया है. इस यान में संचय योग्य नोदकों का उपयोग किया गया है. इन नोदकों से क्रमशः 295 व 305 Isp प्राप्त किया जा सकता है. तकनीकी दृष्टि से इस प्रणाली के मुख्य अंगों में अनेक तरल घटक टरबाइन, पम्प, गैस बोतल, ईंजन, इन्जेक्टर आदि होते हैं. इनका क्षरण मुक्त होना आवश्यक है. ये सभी परिशुद्ध घटक हैं. इसके अतिरिक्त इंजन शीतलन भी तकनीकी दृष्टि से महत्वपूर्ण व कठिन कार्य है. द्रव नोदन खण्ड के परीक्षण व प्रमोचन से पूर्व उसमें आवश्यक नोदकों व गैसों के भरने का प्रक्रम अत्यन्त जटिल है. इन सब क्षेत्रों में पी एस एल वी के दौरान दक्षता प्राप्त कर ली गई है.

जी एस एल वी यान में निम्नतापी नोदन प्रणाली का उपयोग होगा. अधिक विशिष्ट आवेग (करीब 450 सेकंड) के कारण इसका उपयोग ऊपरी खण्डों में काफी लाभदायक रहता है. Lox/LH_2 साधारण नोदक हैं. ये शून्य से काफी नीचे ताप पर ही द्रव अवस्था में होते हैं तथा आपस में असर्शज्वली हैं. अतः इसी प्रणाली को साकार रूप देने के लिए आवश्यक है कि विशेष धातुओं का विकास किया जाए जो बहुत कम ताप सहन कर सकें. इस नोदन प्रणाली के लिए निम्न क्षेत्रों में तकनीकी विकास आवश्यक है—अतिशीत द्रवों के संचयन, प्रहस्थन व परिवहन के प्रक्रम व उपकरण, प्रज्वालक, इन्जेक्टर, उच्च घूर्णन वाले टरबोपम्प घटकों, ट्यूबों से बने प्रणोद कक्ष की संविरचना, इंजन परीक्षण से संबंधित प्रक्रम आदि. इन क्षेत्रों में कार्य शुरू हो चुके हैं तथा जी एस एल वी के दौरान इस तरह का विकसित हो जाने पर नोदन के क्षेत्र में भारत विश्व स्तर पर पहुंच जाएगा.

यान निर्देशन व नियंत्रण प्रणाली

वैमानिकी से संबंधित यंत्रों पर सातवें दशक के अन्तिम वर्षों में विकास कार्य शुरू किए गए. एस एल वी यान में इनमें से कुछ यन्त्रों का उपयोग पहली बार किया गया. इस यान में जड़त्वीय मापन यूनिट द्वारा अभिवृत्ति व दर जाइरोस्कोप द्वारा कोणीय वेग का मापन करके प्रोग्रामक व अनुरूप आटो-पायलट द्वारा नियंत्रक तंत्रों को आदेश दिए गए. इस तरह से कोणीय वेग की त्रुटियों व पूर्व निश्चित पिच कार्यक्रम का कार्यान्वन किया गया. इस तरह की निर्देशन योजना में यान की वास्तविक स्थिति को नजरन्दाज कर लिया जाता है. एस एल वी यान में जड़त्वीय मापन यूनिट, दर जाइरोस्कोप के साथ ही साथ त्वरण मापी, आन बोर्ड कम्प्यूटर अंकीय आटो पायलट होते हैं. ये मिलकर यान का नौसंचालन करते हैं. इस प्रणाली को संवृत पाश नियंत्रण प्रणाली कहते हैं. यह यान की वास्तविक स्थिति की गणना वास्तविक समय में करके नियंत्रण तंत्रों व मुख्य इंजनों को इस तरह से यह आदेश देती है कि उपग्रह को सही कक्षा में पहुंचाने की कोशिश अन्तिम क्षणों तक जारी रहे. ए एस एल वी में ये उपकरण जड़त्वीय रूप से स्थायी मंच पर रखे गए हैं जबकि पी एस एल वी जी व एस एल वी में ये संवेदक संरचना पर ही लगे होंगे. इस तरह की प्रणाली में आन बोर्ड कम्प्यूटर पर गणना कार्य बढ़ जाते हैं, परंतु चल हिस्सों की संख्या कम व उपकरणों की अतिरिक्तता के कारण इसकी विश्वसनीयता बढ़ जाती है.

ताप कवच

एस एल वी में यह फिनालिक ग्लास कम्पोजाइट व मधुवृत्ताकार संरचना से बनाया गया है. धातु की अपेक्षा इसकी विशिष्ट प्रतिबल क्षमता उत्तम है. विश्व में, बड़े यानों के ताप कवच एलुमीनियम धातु के बने होते हैं. आजकल केवलार रेशों से इस तरह की संरचना बनाने पर विकास कार्य चल रहे हैं. ए एस एल वी व पी एस एल वी में भी ताप कवच धातु के ही बनाए गए हैं. इनकी संरचना हवाई जहाज के फ्यूजलेज जैसी ही है.

एस एल वी व ए एस एल वी में आयातित कार्क शीत को आसंजक द्वारा ताप कवच की बाहरी सतह पर चिपकाया गया है. यह अपक्षरण प्रक्रम द्वारा वायु घर्षण जनित ताप से उपग्रह को बचाता है. पी एस एल वी के लिए ऊष्मीय रोगन का उपयोग किया जा रहा है. इसके मुख्य गुणों में—आसानी से लगाना, हर मौसम में उपयोगी, कार्क की तरह छाल उतरने की सम्भावना न होने से उत्तम विश्वसनीयता मुख्य है. यह रोगन स्वदेश में ही विकसित कर लिया गया है. एस एल वी व ए एस एल वी में ध्वानिक लाइनर का कोई प्रबंध नहीं है परंतु पी एस एल वी में इसका होना जरूरी है क्योंकि इसकी बड़ी-बड़ी ठोस नोदन मोटरों से इतना शोर होता है कि ये उपग्रह के नाजुक इलेक्ट्रोनिक यंत्रों को क्षतिग्रस्त करने में सक्षम होते हैं.

यान नियंत्रण प्रणाली

इसका चयन राकेट के आकार, भार, वायुमंडलीय उड़ान के दौरान गति तथा अनुक्रिया की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है. एस एल वी में ए एस एल वी जिस प्रणाली का उपयोग किया गया है इसके मुख्य अंगों में प्रवर्तक (एक्युएटर) सर्वो वाल्व, द्रव-चालित उपकरण हैं. इस अनुभव के आधार पर पी एस एल वी के तीन खण्डों के लिए आवश्यक द्रव-चालित उपकरणों प्रवर्तक विकसित किए जा रहे हैं. इन खण्डों व प्रथम खण्ड की प्रतिक्रिया नियंत्रण तंत्र की मोटरों को गिम्बल करने का प्रावधान है. द्वितीय खण्ड की मोटर में गिम्बल के लिए आवश्यक शक्ति उसके गैस जनित में उत्पन्न गैस से ही प्राप्त की जाती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एस एल वी की प्रणाली में स्ट्रान्शियम पर-क्लोरेट द्रव को चार प्रथम खण्ड के नोजल में चार छिद्रों द्वारा अंतःक्षेपित्र करके पार्श्व बल प्राप्त किया गया. इसके द्वारा 1.5 टन बल उत्पन्न किया जा सकता था. ए एस एल वी के स्ट्रेप-आन व कोर मोटर में इस तरह की प्रणाली को काम में लाया गया. इसके वाल्व साधारण परिनालिका वाल्व हैं जबकि पी एस एल वी में कन्दुक वालक्रू यंत्रावलि वाला वाल्व काम में लाया जाएगा. इस में अंतःक्षेपक को 24 छिद्रों से अंतःक्षेपित किया जा सकेगा. यह 35 टन तक का पार्श्व बल उपलब्ध कर सकता है. इस यान में जरूरत खत्म होने पर बचे हुए द्रव के सन्निक्षेप करने की भी व्यवस्था होगी.

एस एल वी के लिए दो तरह की प्रणालियों को विकसित किया गया हैः नोदक व एकांगी नोदक नियंत्रण तंत्र. द्वि-नोदक की 250,50,10 किलोग्राम बल की व 25,5 व 1 किलोग्राम की एकांगी नोदक मोटरों को विकसित किया गया. इन तंत्रों को द्वितीय व तृतीय खण्डों में उपयोग किया गया. नोदक तंत्र से अधिक Isp प्राप्त की जा सकती है. ए एस एल वी में प्रथम खण्ड व तृतीय खण्ड में एकांगी नोदक तंत्रों का द्वितीय खण्ड में द्वि-नोदक तंत्र का उपयोग किया गया है. पी एस एल वी यान में इस तरह के तंत्र को प्रथम खण्ड के लोटन नियंत्रण व चतुर्थ खण्ड में छोटी-छोटी मोटरों द्वारा शक्ति व शक्ति रिक्त उड़ान के नियंत्रण में उपयोग किया गया है. चतुर्थ खण्ड के साथ जुड़े थ्रस्ट मुख्य टंकियों से ही नोदक लेते हैं. उत्तम नोदकों व इंजन के कारण प्राप्ति Isp भी अधिक है.

पृथक्करण प्रणाली

एस एल वी व ए एस एल वी यानों में खण्डों के पूर्ण ज्वलन के उपरान्त यान के ऊपरी खण्ड को नोदक रहित खण्ड से अलग कर लिया जाता था. इनके प्रथम दो खण्डों में इसी तरह का प्रावधान है. पी एस एल वी पृथक्करण प्रक्रम ज्वलंत मोटर के उपरांत के दौरान पूरा करने की योजना है. इसके अतिरिक्त नोजल के अलग हुए अंतराचरण से शीघ्र से शीघ्र निकलने व पृथक हुए हार्ड वेयर के भार व उसकी मोटर थ्रस्ट के कारण दो खण्डों के टकराव की सम्भावनाओं को खत्म करने की आवश्यकताओं के कारण पृथक्करण प्रक्रम काफी जटिल हो जाता है. पी एस एल वी के प्रथम खण्ड का पृथक्करण एफ एल एस सी व पश्च गतिक राकेट मोटरों के ज्वलन द्वारा प्राप्त करते हैं. इसके साथ ही द्वितीय खण्ड की यूलेज मोटरों का ज्वलन करके यह सुनिश्चित करते हैं कि द्रव खण्ड धनात्मक त्वरण की अवस्था में ही रहे. इस यान में मरमान बैण्ड व कन्दुक यंत्रावली का ऊपर के चरणों के पृथक्करण में उपयोग हो रहा है.

पी एस एल वी में ताप कवच पृथक्करण व अलगाव महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रक्रम शक्ति युक्त उड़ान के दौरान प्राप्त किया जाता है. इस में अग्निकी व अलगाव स्प्रिंग का उपयोग किया गया है.

विनाश तंत्र

सभी यानों में एफ एल एस सी प्रणाली का ही उपयोग किया जा रहा है. विभिन्न खण्डों के विनाश के लिए भिन्न-भिन्न चार्ज की मात्रा है. इन तंत्रों में सुरक्षा की युक्तियों को बढ़ा दिया गया है.

यान संरचना

परिज्ञापी राकेटों के दौरान आयातित इस्पात से मोटर खोल बनाए गए, इसी धातु का उपयोग एस एल वी, ए एस एल वी तथा पी एस एल वी की स्ट्रेप-आन मोटरों में किया जा रहा है. पी एस एल वी की प्रथम खण्ड के मोटर खोल को मेंराइजींग स्टील से बनाया जा रहा है. इस धातु में उच्च विशिष्ट सामर्थ्य, विभाजन सुदृढ़ता में आसानी, ताप उपचार के बाद उसका विस्तार परिवर्तन न्यूनतम होता है. इस धातु को देश में विकसित कर लिया गया है तथा इसके मोटर खोल संविरचना से संबंधित तकनीकों को विकसित करके कई मोटर खोल खण्डकों को बना लिया गया है. अन्तराचरणों के लिए एलुमीनियम धातु को काम में लाया गया तथा इनकी संविरचना के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों का सहयोग लिया गया.

द्रव नोदन प्रणाली में नोदक टैंक, गैस बोतल व नोदन इंजन संविरचना तकनीकी की दृष्टि से महत्वपूर्ण है. पी एस एल वी के द्वितीय खण्ड का टैंक एलुमीनियम की पतली चद्दर का बना है. इसे बीच में से दो भागों में भी बांटा गया है. इसके अतिरिक्त रसायनिक पेषण द्वारा अनावश्यक धातु को हटाकर टैंक का भार कम किया गया है. पी एस एल वी के चतुर्थ खण्ड का नोदक टैंक व द्वितीय व चतुर्थ खण्डों की गैस बोतलें टाइटेनियम धातु की बनी है. इस धातु का पहली बार भारत में उपयोग हो रहा है. इस के निर्माण व संविरचना में मुख्य इलेक्ट्रोन किरण पुंज वेल्डिग, टाइटेनियम बिलेट फोजिग आदि से संबंधित तकनीकी विकास कार्य हैं.

रेशा कांच व केवलार रेशों से संयुक्त संरचनाएं आन्तरिक सुविधाओं में बनाई जा रही है. ए एस एल वी तथा एस एल वी की तृतीय व चतुर्थ खण्ड की मोटरें व पी एस एल वी तृतीय खण्ड की मोटर यहीं तैयार किया गया. इन मोटरों की संविरचना में खोल कुंडलन व ऊष्मा उपचार से संबंधित तकनीकों का विकास करना होता है.

प्रमोचन यानों पर विकास कार्य शुरू करते समय आवश्यक कच्चे माल (रसायनों, धातुओं), संविरचना प्रक्रमों, सुविधाओं, परीक्षण सुविधाओं, इलेक्ट्रोनिकी, वांतरिक्ष गुणता की बैटरियों, अग्निकी उपकरणों, परिशुद्ध यांत्रिक घटकों का नितान्त अभाव था. अन्तरिक्ष संस्थान के निरंतर व अथक प्रयासों से इन क्षेत्रों में आवश्यक तकनीकी विशेषज्ञता हासिल कर ली गई है. इनमें से कुछ तकनीकें औद्योगिक संस्थानों को हस्तांतरित भी कर दी गई हैं. ये संस्थान अब आवश्यकतानुसार हार्डवेयर उत्पादित करने लगे हैं. इस केन्द्र ने औद्योगिक संस्थानों के साथ ही साथ शैक्षणिक संस्थानों को प्रमोचन यानों से संबंधित कार्यों में भागीदार बनाया है. पिछले वर्षों में मिली सफलता के आधार पर यह विश्वास किया जा सकता है कि भारत कुछ ही वर्षों में अपने उपग्रह अपने ही यानों व सुविधाओं द्वारा कक्षा में स्थापित कर पाएगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या होते हैं लीमूर यानी निशाकपि?

□ जोगेन्द्र सक्सेना

□ जीवों की दुनिया बड़ी विचित्र है, तरह-तरह के जीव तरह-तरह की शक्लें—अच्छी, बुरी, भोली, भोंडी और डरावनी. लंगूर हमारा जाना पहचाना नाम है. इन्हीं से इतर प्राइमेट्स या प्रधान भागीय वर्ग के जीवधारियों का भी एक अलग वंश वृक्ष है जिसका मानव विकास की सीढ़ी के अंत में सबसे नीचे स्थान है. 'लीमूर, ऐ-ऐ, टार्सियार, आदि अर्द्धवानर या वानरसम प्राणियों की विभिन्न प्रशाखाएं हैं और यह सबसे पुरातन और आदिम शाखा मानी जाती है.

इस प्रधानवर्गीय वंश के ये प्राणी स्तनपोशी जीव हैं और इनकी जातियां, प्रजातियां अब प्राचीन दुनिया यानी अफ्रीका में सीमित हैं. इनमें से भी असली लीमूर तो एकमात्र मलागासी (पुराना मेडेगास्कर) और कोमोरो में ही पाए जाते हैं. लीमूर वर्ग के असली जीवों के पांच नमूने प्रमुख हैं: (1) असली लीमूर, (2) स्लो लीमूर या लोरिस, (3) गैलागो या बुश-बेबी, (4) माउज लीमूर, और (5) इंद्रिस, सिफाका तथा आबाही.'' अन्य वर्ग हैं ऐ-ऐ और टार्सियार.

अपनी विकास प्रक्रिया के दौरान जिन लीमूरों ने चारों हाथों-पैरों से चलना सीख लिया है वे ही 'असली लीमूर' के नाम से जाने जाते हैं. अन्य एशिया में मिलते हैं. असली लीमूर अन्य प्रधान स्तनपोशी जीवों में अलग लगते हैं. ये बिल्ली के आकार के होते हैं और ऊमी समूर की-सी रोमावली के लिए प्रसिद्ध हैं. इनके दोनों हाथों-पैरों में चार-चार उंगलियां होती हैं किन्तु कुछेक के अंगूठे की जगह की उंगली में नाखून न होकर चंगुला रहता है. सभी जाति के लीमूर वृक्षों पर रहने वाले जीव हैं.

इनमें से एक जाति के लीमूरों की लंबी पूंछ स्लेटी छल्लेदार होती है. ये छल्ले संख्या में दस-बारह बड़े सुंदर काले रंग के होते हैं. यह देखने में लंबा-चौड़ा लगता है. इसके जबड़े चौड़े और मुंह आगे को निकला थूयन जैसा लगता है. इसके विपरीत दूसरी जाति के लीमूरों की दुम केवल एक ही रंग की होती है. इन्हीं में से एक अन्य लीमूर रफेड कहलाता है. इसकी खाल का समूर अत्यंत घना होता है और दुम लंबी तथा झाड़ू जैसी होती है. इसका सिर कुत्ते जैसा और कानों पर बालों का गुच्छा तथा गर्दन पर घने बालों का कालर जैसा होता है.

छल्लेदार पूंछ वाला लीमूर

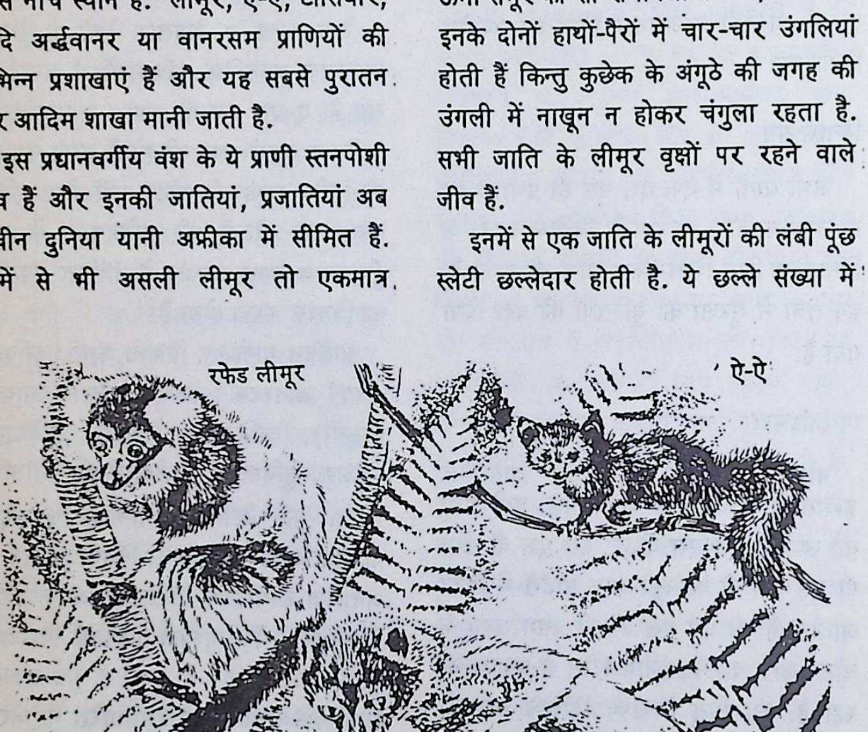
रफेड लीमूर

ऐ-ऐ

सिफिका लीमूर

लीमूर बंदी जीवन का आदी न होने के कारण चिड़ियाघरों में देखने को नहीं मिलता शायद इसलिए कि वहां रखने पर यह जीवित नहीं रहता. लीमूर का भोजन मिला जुला होता है क्योंकि यह फल, बीज, कीट, पंतगे, चिड़ियों के अंडे और मांस आदि सभी कुछ भक्षण कर जाता है. इनमें से कुछ लीमूर दिवाचर, दिन में सक्रिय रहने वाले, और कुछेक निशाचर यानी रात में उछल-कूद मचाने वाले होते हैं.

स्लो-लीमूर या लोरिस बड़ा कोमल होता है. अपने नाम को सार्थक करता यह सुस्त तो होता ही है. इसकी पाटो, स्लेंडर या नाजुक (कोमल) आदि और अन्य जातियां भी होती हैं. इन सभी जीवों की खाल पर समूर होता है बड़ा मुलायम, ऊन जैसा. इनकी आंखें बड़ी-बड़ी और हाथ-पैर की लम्बाई प्राय बराबर रहती है. इनमें नाजुक लोरिस सब से छोटे आकार का और बड़ा शर्मीला होता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कदाचित एक चूहे के डील-डौल का होगा. ये सभी जीव अफ्रीका से लेकर बंगाल, असम, बर्मा, स्याम, मलय अन्तरीय और पूर्वी द्वीप समूह तक पाए जाते हैं.

गैलागो केवल अफ्रीका में ही सीमित है. यह भी छोटा से छोटा चूहे जैसा और बड़ा बिल्ली के आकार का एक वानरसम वृक्षवासी तथा रात में विचरण करने वाला जीव है. यह स्लो-लीमूर से अपेक्षाकृत फुर्तीला होता है.

माउस लीमूर अपने नाम के अनुरूप चूहे जैसा छोटा होता है. असली लीमूर के समान यह भी मालागासी में पाया जाता है. इस जीव का शरीर केवल 13 सेंटीमीटर का किन्तु पूंछ उससे बड़ी 15 सेंटीमिटर लम्बी होती है. अच्छे मौसम में जब खाने-पीने की बहुतायत होती है तब यह नन्हे जीव अपनी पूंछ के मूल में वसा को एकत्रित कर लेते हैं, और खराब मौसम में जब भोजन-पानी मिलना कठिन हो जाता है, उन दिनों ये पेड़ों के गहरे कोटरों में घुसकर सो जाते हैं. उस समय पूंछ की जड़ में जमी चर्बी उनके भोजन की कमी पूरी करती रहती है.

इन लीमूरों के अंतिम वर्ग के सदस्य **इंद्रिस, सिफिका या आबाही** कहलाते हैं. ये लीमूर समूह के जीवों के उन्नतम नमूने माने जाते हैं. **इंद्रिस और आबाही** के शरीरों पर ऊन जैसी रोमावली होती है. इनमें **इंद्रिस** के पिछले पैर अगले पैरों से पर्याप्त बड़े होते हैं. **आबाही** के शरीर की रोमावली इतनी मुलायम और घनी होती है कि उसके कारण वह ऊनी लीमूर भी कहलाता है. इसकी दुम शेष सारे बदन से अधिक लंबी और आंखे बड़ी-बड़ी होती हैं.

सिफाका इन दोनों से काफी बड़ा होता है. इसकी खाल की रोमावली ऊनी न होकर बालदार होती है और प्रायः सफेद चितकबरे रंग पर लाल और पीले रंगों के धब्बे होने से उसकी छटा देखने योग्य होती है. इस जीव का मुंह लोमड़ी जैसा कुछ आगे को निकला होता है. यह अन्य अर्द्धवानरों के समान रात्रि में नहीं घूमता. इसका सुबह, शाम का वक्त काफी व्यस्त रहता है और दौड़-धूप में गुजरता है. इसकी दुम अच्छी लंबी होती है.

अर्द्धवानर समूह के वर्ग का **ऐ-ऐ** एक विख्यात प्राणी है. कारण, सन् 1790 में जब

टर्सियस स्पेक्ट्रम

इसे खोज कर पहले-पहल यूरोप लाया गया तो प्राणिशास्त्री इसे देख कर अचम्भे में पड़ गए. गिलहरी की सी लम्बी और घने बालों से ढकी पूंछ, चूहे की तरह आगे निकला हुआ मुंह, बड़ी गोल-गोल आंखें, प्रायः गोलाकार सिर, तेज नाखून वाली उंगलियां, कुतर कर खाने वाले तेज दांत, बिल्ली जैसा डीलडौल, किसे हैरत में नहीं डाल देगा. अपने अन्य साथी जीवों के समान यह भी पेड़ों पर रहता है और भोजन के लिए केवल रात को ही निकलता है. प्रसव के समय बच्चों के लिए पेड़ पर ही घोंसला बनाता है. यह कीड़े-मकोड़ों का भोजन करता है और बड़े-बड़े कानों से पेड़ के अंदर बिल बनाकर रहने वाले कीड़ों का पता लगाकर लम्बे थूयन से उनको बाहर खींच कर चट कर जाता है.

टार्सियर—इसी वर्ग का एक दूसरा अनूठा प्राणी है. कुल मिलाकर देखने में यह अपने किस्म का एक अलग ही नमूना है. उल्लू जैसी बड़ी-बड़ी गोल चौंका देने वाली आंखों को देखकर कोई भी अचम्भे में पड़ सकता है. इसे देखने से लगता है कि कुदरत ने इसे इतना अनूठा बनाने में अपनी कला की इतिश्री कर दी है. डीलडौल में यह एक बड़े चूहे जैसा होता है—गोल सिर, काफी बड़े कान, अगले पैरों से पिछले पैर बहुत लम्बे, ऊपर से अच्छे मांसल किन्तु नीचे मोर जैसे पतले पंजेदार, छोटी-सी थूयन आगे को निकली हुई. इसका सिर भारी होते हुए भी गर्दन इतनी लचीली होती है कि यह अपने शरीर को कष्ट दिए बिना चारों ओर उसे घुमा सकता है और पीछे की ओर भी देख सकता है. 'ऐ-ऐ' के समान यह जीव भी वृक्षों में छिपकर रहता है और रात्रि में अपने भोजन के लिए निकलता है.

प्रधानभागीय वंश के विकास क्रम में जीवशास्त्री इस जीव की प्रशंसा सबसे प्राचीन मानते हैं. यह प्राणी मलागासी के अतिरिक्त बोर्नियो, जावा, सुमात्रा, सेलीबीज, फिलीपीन आदि द्वीपों पर भी पाया जाता है. ❑

क्या चन्द्र ग्रहण में चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण में सूर्य को देखना सुरक्षित है ?

❑ वीरेन्द्र शर्मा

❑ चन्द्रमा अपनी कलाएं बदलता रहता है पूनम का हो या ईद का या फिर दूज का चांद, चांद को लोग देखते ही हैं और वो भी नग्न आंखों से. क्योंकि चांद की कांति इतनी नहीं होती कि इसका प्रकाश दृश्यपटल को क्षति पहुंचाए. पूर्णिमा का चांद न देखो तो भी दिखलाई दे जाता है. एक खिली हुई थाली स्वतः ही हमारी दृष्टि को बांध लेती है.

चन्द्र ग्रहण के दौरान तो चन्द्र कांति और भी घट जाती है. अतः चन्द्र ग्रहण के दौरान चांद को ताकना पूर्णतया सुरक्षित है. परन्तु सूरज के साथ यह बात नहीं है. सूर्य ग्रहण न पड़ रहा हो तो भी सूरज को ताकते रहने का मतलब है 6000 केल्विन के सतही तापमान वाले पिंड से निकलने वाले दृश्य प्रकाश को दृश्य पटल पर केंद्रित होने और खतरनाक अदृश्य अंश को आंख में प्रविष्ट होने का मौका देना.

हम जानते हैं कि हमारी आंख एक कैमरे की तरह काम करती है. आंख में साधारण सूक्ष्मदर्शी की तरह ऊतकों का बना एक उत्तल लेंस होता है, जिसकी फोकस दूरी (फोकस व प्रकाशीय केंद्र के बीच की दूरी) समंजनीय या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तनशील होती है.

आकाशीय पिंडों को निहारते समय यह दोहरा उत्तल लेंस एक दम से पतला हो जाता है और इसकी उत्तलता भी घट जाती है. परन्तु दूर-दराज के पिंडों से, आने वाला समूचा दृश्य व अदृश्य प्रकाश दृष्टि पटल (रेटिना) पर समकेंद्रित हो जाता है.

सौर प्रकाश के आंख के काले पर्दे पर संकेद्रण से दृष्टिपटल के झुलस जाने का खतरा पैदा हो जाता है. एक स्वतः स्फूर्त अनुक्रिया, जो हमें सूरज की ओर ताकने से तथा ताकते रहने से बचाए रखती है, भी ठप्प हो जाती है. सूर्य ग्रहण के दौरान यह अनुक्रिया एकदम घट जाती है. सूर्य ग्रहण के दौरान चांद के सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाने से सूर्य के कुछ हिस्से के ढक जाने के बावजूद भी सौर-कांति खतरनाक स्तर तक बनी रहती है. अनुक्रिया के अभाव में सौर विकिरण बेरोकटोक आंख में प्रवेश करता है. यह विकिरण लेंस से वर्तन के बाद दृष्टिपटल पर संकेन्द्रित होकर आंख के पर्दे को उसी प्रकार झुलसा सकता है जैसे लेंस के दूसरी ओर रखे कागज पर सूरज की किरणें संकेंद्रित करने पर फोकस बिंदु वाला भाग झुलस जाता है. अधिक गर्म होने पर कागज आग पकड़ सकता है.

सूर्य ग्रहण के दौरान सूर्य को देखने से और ताकते रहने से दृष्टिपटल हमेशा के लिए नष्ट हो सकता है. अतः देखने के लिए सुरक्षात्मक उपाय अपनाए जाने चाहिएं. बेहतर तो यही है कि एक अच्छे दूरदर्शी के जरिए सौरबिंब को एक सफेद पर्दे पर देखा जाए, प्रक्षेपित किया जाए या फिर खतरनाक सौर विकिरण खासकर अदृश्य व हानिकारक पराबैंगनी अंश को रोकने वाले चश्में पहने जाएं. चश्मों का चयन भी किसी नेत्र विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार करना चाहिए. ☐

पानी ठंडा करने के लिए पात्र में बर्फ डालना क्यों बेहतर है?

☐ वीरेन्द्र शर्मा

☐ पानी से भरे पात्र में ऊष्मा की मात्रा बर्फ की अपेक्षा कहीं ज्यादा होती है. बर्फ को पिघलने के लिए शून्य सेल्सियस पर ही गुप्त ऊष्मा चाहिए, ताकि अणुओं के बंध टूट सकें.

यह आवश्यक ऊष्मा उस पानी से ही निकलती है जो बर्फ के संपर्क में आता रहता है. प्रति एक ग्राम बर्फ को पिघलाने में संपर्कित पानी से अस्सी कैलोरी ऊर्जा निकल जाती है. ऊर्जा के निकलने से पानी भारी होकर पात्र की पेंदी में आने लगता है. अणुओं की औसत चाल घट जाती है. जो पानी ठंडा होकर नीचे बैठता रहता है उसके स्थान पर आसपास का पानी आकर बर्फ को घेर लेता है. इस प्रकार पानी के अंदर संवहनी धाराएं पैदा हो जाती हैं. यह सिलसिला तब तक चलता है जब तक सारी बर्फ पिघल नहीं जाती.

पात्र को जल पर रखने से पेंदी में मौजूद जल से ही ऊष्मा निकल पाती है. अंततः पात्र में नीचे का पानी जमकर बर्फ बन सकता है. लेकिन ऐसा होने में काफी समय लग जाएगा. तब तक बर्तन बर्फ में काफी धंस जाएगा.

चार डिग्री सेल्सियस से नीचे पहुंचने पर पानी फैलने लगता है. ठंडा होने पर आयतन में भी वृद्धि होने लगती है. पानी का यह असामान्य प्रसार पेंदी पर बल डालेगा जिससे बर्तन टूट भी सकता है. बर्फ ऊष्मा की कुचालक होती है जिससे संवहनी धाराएं नहीं बन पातीं. बस पात्र की पेंदी का जल ठंडा होकर रह जाता है. इसके अलावा पेंदी व बर्फ के बीच वायु की पतली परत में से जल वाष्प ठंडी होकर जम सकती है.

पात्र बर्फ में धंस भी सकता है. जैसे-जैसे बर्फ पिघलेगी पात्र व इसमें मौजूद पानी से ऊष्मा लेकर पात्र भार जन्य दबाव से बर्फ में धंसता जाएगा. दबाव बढ़ने से गलनांक भी थोड़ा गिर जाता है जो पात्र को धंसने में और मदद कर सकता है. यह प्रयोग आप खुद भी करके देख सकते हैं. बर्तन की पेंदी का क्षेत्रफल जितना कम होगा बर्तन उतना ही तेजी से धंसेगा.

यदि आपके घर में फ्रिज है तब तो बर्फ की क्रेट हिमकारी कक्ष यानी फ्रिजर से निकाल कर उस पर पानी से भरी छोटी शीशी, कटोरी या गिलास रखकर आप स्वयं देखिए कि बर्फ में धंसने की गति किसकी ज्यादा है? और पानी की मात्रा किसमें कितनी है? ☐

(पृष्ठ 306 का शेषांश)

टोमोग्राफी क्रमवीक्षण तकनीक अभी इतनी सुग्राही नहीं है कि वह एक दम शुरुआत की मस्तिष्क की क्षति को पहचान सके. मुक्केबाजी पर ब्रिटिश मेडिकल ऐसोसिएशन की हाल की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि मुक्केबाजी से तंत्रिका कोशिकाएं एक बार नष्ट हो जाने से वे दुबारा कभी भी ठीक नहीं हो सकती और अपभ्रष्ट क्रियाएं धीरे-धीरे अन्दर बढ़ती जाती है.

विश्व की अनेक राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं में मुक्केबाजी खेल को शामिल किया जाता है. रिंग में मुक्केबाजों के उत्तेजक प्रदर्शन से मनोरंजन के साथ-साथ, मुक्केबाजों द्वारा विश्वस्तरीय रिकार्ड बनाए जाते हैं और विजेता मुक्केबाजों को तमगों और पुरस्कारों से सुशोभित किया जाता है. परन्तु इस जोखिम भरे खेल के कारण, पंच-ड्रंक बीमारी की वजह से शौकिया और पेशेवर मुक्केबाजों के मस्तिष्कों को जो अपरिवर्तनीय क्षति पहुंचती है, इस बारे में विचार कर और मानव कल्याण को ध्यान में रखते हुए क्या विश्व के सभी देशों के खेल आयोजकों का यह कर्तव्य और उत्तरदायित्व नहीं हो जाता कि वे मुक्केबाजी के खेल को प्रतियोगिताओं में सम्मिलित न करें.

इस खतरनाक और अमानवीय खेल पर प्रतिबन्ध लगाने की दिशा में पहल करने के लिए संसार के समाज सेवी संगठनों और मानव कल्याण संस्थाओं को आगे आना चाहिए. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ सरल उपयोगी युक्तियां

□ पीयूष पांडेय एवं
□ राकेश कुमार मित्तल

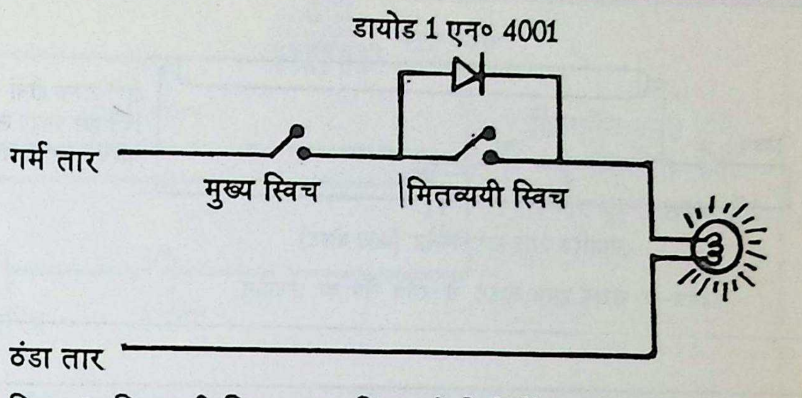

चित्र–2: मितव्ययी स्विच, मुख्य स्विच की श्रेणी में जुड़ा ऐसा स्विच जिसके समान्तर क्रम में एक डायोड लगा हो.

□ इस बार इस स्तम्भ में हम कुछ ऐसी सरल युक्तियां प्रस्तुत कर रहे हैं जो सरल तो हैं ही, कम खर्चीली भी हैं. इनके सिद्धान्त समझना भी सरल है. ये सभी युक्तियां, हम आशा करते हैं, हमारे सुधी पाठक बनाएंगे और इनसे लाभान्वित होंगे.

यह हो सकता है हमारे कुछ विवेकशील पाठक यह आरोप लगाएं कि इन युक्तियों में मौलिकता का अभाव है, सीधे-सीधे भौतिकी के कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख कर दिया गया है (जैसे नीचे दी गई युक्ति संख्या 2) अथवा यहां दिए संगीतमय घंटी के परिपथ के बारे में यह कहा जा सकता है कि इस तरह की 'किट' अथवा बनी बनाई घंटियां बाजार में उपलब्ध हैं. इस संबंध में हमारा निवेदन केवल इतना है कि विज्ञान के सुपरिचित सिद्धान्तों को व्यवहार में लाना तथा इस हेतु युक्तियां सुझाना ही हमारा उद्देश्य है.

विद्युत घंटी के परिपथ के बारे में भी बिना किसी मौलिकता का दावा किए हम यह बताना चाहते हैं कि बहुप्रचलित संगीतमय घंटी के ही परिपथ को स्वयम् बनाकर तथा उसमें अपेक्षित संशोधन कर हम आपके लिए यहां प्रस्तुत कर रहे हैं:

1. फ्यूज सूचक

किसी ऐसे विद्युत उपकरण को चालू कर देने के कारण जो शार्ट-सर्किट हो गया था आपके बिजली के बोर्ड में लगे कई फ्यूजों में से एक फ्यूज उड़ गया है, अथवा हो सकता है आपका मुख्य फ्यूज ही उड़ गया हो. अब आप एक एक कर फ्यूजों को निकालकर यह ढूंढने में लगे हैं कि उनमें से कौन सा खराब हुआ है. क्या ही अच्छा होता यदि आपको विना फ्यूज निकाले ही पता चल जाता कि कौन सा फ्यूज उड़ गया है. प्रस्तुत युक्ति कुछ ऐसी ही है.

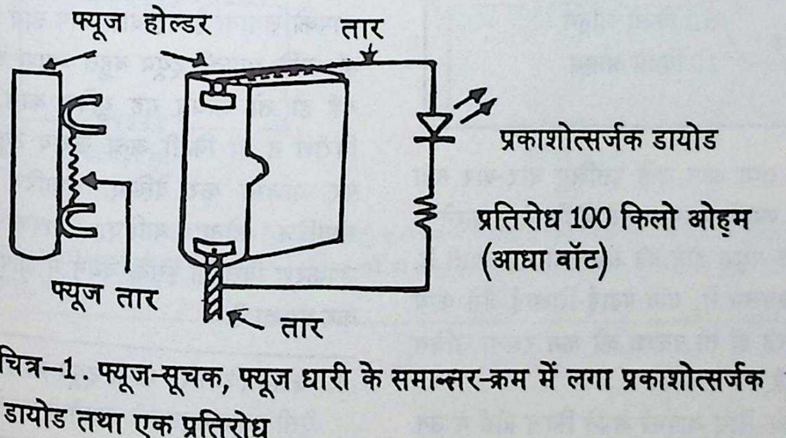

चित्र–1. फ्यूज-सूचक, फ्यूज धारी के समान्तर-क्रम में लगा प्रकाशोत्सर्जक डायोड तथा एक प्रतिरोध

प्रत्येक फ्यूज होल्डर के दो भाग होते हैं, एक तो वह जो खींचने पर बाहर निकल आता है तथा जिसमें फ्यूज वायर बांधा जाता है. इसका दूसरा भाग आपके विद्युत बोर्ड पर कसा रहता है. आपको इसी कसे हुए भाग पर एक प्रकाशोत्सर्जक डायोड (लाइट एमिटिंग डायोड अथवा एल०ई०डी०) और एक सौ किलो ओह्म को आधे वाट उष्मा क्षयता का प्रतिरोध चित्र में दिखाए अनुसार लगाना है. प्रकाशोत्सर्जक डायोड को इस प्रकार लगाएं कि यह फ्यूज होल्डर के बगल में अथवा ठीक नीचे रहे. इसके तारों को कुचालक स्लीव अथवा टेप लगाकर निरापद बना लें ताकि भूले भटके हाथ पड़ जाने पर भी बिजली का झटका न लगे.

आप प्रत्येक फ्यूज के लिए एक-एक ऐसी युक्ति लगाएं और मुख्य फ्यूज के लिए भी. हां, इतना ध्यान रहे कि मुख्य फ्यूज में मेन-स्विच बंद करने पर भी बिजली आती रहती है. अतः रबर के दस्ताने को पहन कर तथा कुचालक हत्थे वाले सुरक्षित पेचकस की मदद से ही आप यह कार्य करें. अच्छा होगा यदि आप युक्ति स्वयं बनाकर उसे स्थापित करने के लिए किसी कुशल बिजली के मिस्त्री की सहायता लें.

अब जब भी कोई फ्यूज उड़ेगा तो उसके साथ का प्रकाशोत्सर्जक डायोड प्रकाशित हो उठेगा. यदि आपने खराब उपकरण तथा उस फ्यूज से संबद्ध उपकरणों को बंद न किया हो! कारण आप स्वयं खोजिए. हां, हम आपको यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

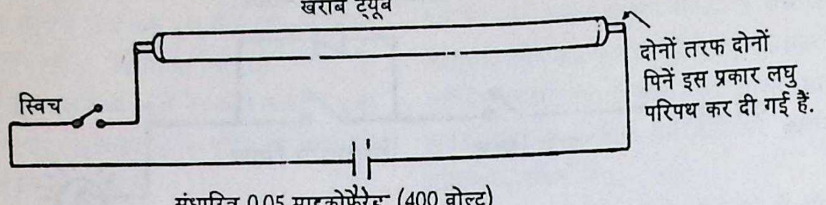

चित्र–3. खराब ट्यूब लाइट से रात्रि लेंप का उपयोग

घटकों की सूची

ट्र	ट्रांसफार्मर 7 टी आर अथवा समतुल्य 7	डेल्टा का (7-0-7 वोल्ट)	$स_4$	0.01 माइक्रोफैरड 10 वोल्ट
			$स_5$	0.047 माइक्रोफैरड 10 वोल्ट
			$स_6$	33 माइक्रोफैरड 10 वोल्ट
क	कुंजी, स्पीकर (छोटा) 8 ओहम		**प्रतिरोध (सभी $\frac{1}{4}$ वाट)**	
	$ट_1$, $ट_2$ ट्रांजिस्टर बी सी 147		$प_1$	470 ओहम
			$प_2$	1 किलो ओह्म
	एकीकृत परिपथ		$प_3$	2.2 किलो ओह्म
	555(2) तथा 7493		$प_4$	2.2 किलो ओह्म
			प $प_1$	10 किलो ओह्म
	डायोड		$प_5$	10 किलो ओह्म
	$ड_1$, $ड_2$,	1 एन॰ 400 1	$प_6$	10 किलो ओह्म
	$ड_3$	प्रकाशोत्सर्जक डायोड	$प_7$	4.7 किलो ओह्म
		अथवा एल ई डी	$प_8$	1.2 किलो ओह्म
	संधारित्र		$प_9$	2.2 किलो ओह्म
	$स_1$	1000 माइक्रोफैरड 25 वोल्ट	$प_{10}$	4.7 किलो ओह्म
	$स_2$	400 माइक्रोफैरड 10 वोल्ट	$प_{11}$	8.2 किलो ओह्म
	$स_3$	5 माइक्रोफैरड 10 वोल्ट	$प_{12}$	10 किलो ओह्म

अवश्य वता दें कि आप प्रकाशोत्सर्जक डायोड को किसी भी दिशा में, यानी उसकी कोई भी टांग किसी भी क्रम में लगा सकते हैं (घटकों का मूल्य लगभग दो रुपए)

2. मितव्ययी स्विच

आपका बिजली का बिल इसलिए अधिक आ रहा है क्योंकि घर के सदस्य, विशेषकर बच्चे जहां तहां सभी कमरों के बल्ब चालू कर देते हैं तथा आप उन्हें इसलिए बार-बार नहीं बुझाते क्योंकि आप जानते हैं कि ऐसा करने से बल्ब के फ्यूज होने की संभावना बढ़ जाती है. ऐसी अवस्था में, यदि पढ़ाई-लिखाई जैसे कार्य न हो रहे हों तो प्रकाश को कम रखना उचित रहता है.

इसके लिए आपको अपने स्विच बोर्ड में उन स्विचों की श्रेणी में एक-एक मितव्ययी स्विच स्थापित करना होगा जिससे नियंत्रित होने वाले बल्ब आदि में व्यय होने वाली बिजली में आप कटौती करना चाहते हैं.

मितव्ययी स्विच मात्र एक सामान्य स्विच है जिसके समान्तर एक डायोड लगा दिया जाता है. यहां दिखाए डायोड से आप दो सौ वाट तक के बल्ब को नियंत्रित कर सकते हैं. कमरे से बाहर जा रहे हों तो मितव्ययी स्विच को 'खोल' दें यानी उसके संपर्क बिंदु अलग-अलग हो जाएं तो धारा डायोड के जरिए जाने के कारण बल्ब से मिलने वाला प्रकाश आधा हो जाएगा. निश्चय ही इस युक्ति का उपयोग आप केवल प्रत्यावर्ती धारा परिपथों में ही कर सकते हैं. इस युक्ति का उपयोग बल्ब के अलावा ट्यूबलाइट अथवा बिजली के पंखे जैसे अन्य उपकरण पर न करें.

3. खराब ट्यूब लाइट का रात्रि लैम्प

ऐसी खराब ट्यूब लाइट जो फिलामेंट के झड़ जाने के कारण न जलती हो अथवा एक तरफ काली पड़ जाने के कारण झपझपाती हो और आपके लिए त्याज्य हो गई हो, एक रात्रि लैम्प के रूप में कम प्रकाश देने के लिए उपयोग की जा सकती है.

आपको केवल इतना करना है कि ट्यूब लाइट के दोनों छोरों पर निकली पिनों को 'शार्ट' कर चित्र में दिखाए अनुसार 0.05 माइक्रोफैरड (400 वोल्ट) का संधारित्र ट्यूब लाइट की श्रेणी में लगा दें. न स्टार्टर की जरूरत, न 'चोक' कुण्डली की आवश्यकता, बस तैयार हो गया आपका 'नाइट-लैम्प'. अब इसे कमरे में किस प्रकार कैसी पट्टी पर आपको लगाना है यह बात आप स्वयं तय करें. हां, यदि आपकी ट्यूब बहुत ज्यादा खराब हो गई हो तो शायद यह युक्ति काम न करे. निराश न हों किसी अन्य खराब ट्यूब-लाइट पर आजमा कर देखिए. संधारित्र ए॰सी॰ संधारित्र होना चाहिए. आपका रेडियो उपकरण वितरक इसके चयन में आपकी मदद कर सकता है.

4. खराब फिलामेंट वाली ट्यूब का उपयोग

ऐसी ट्यूबलाइट को उपयोगी बनाने के लिए आपको पिछली युक्ति के अनुसार उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

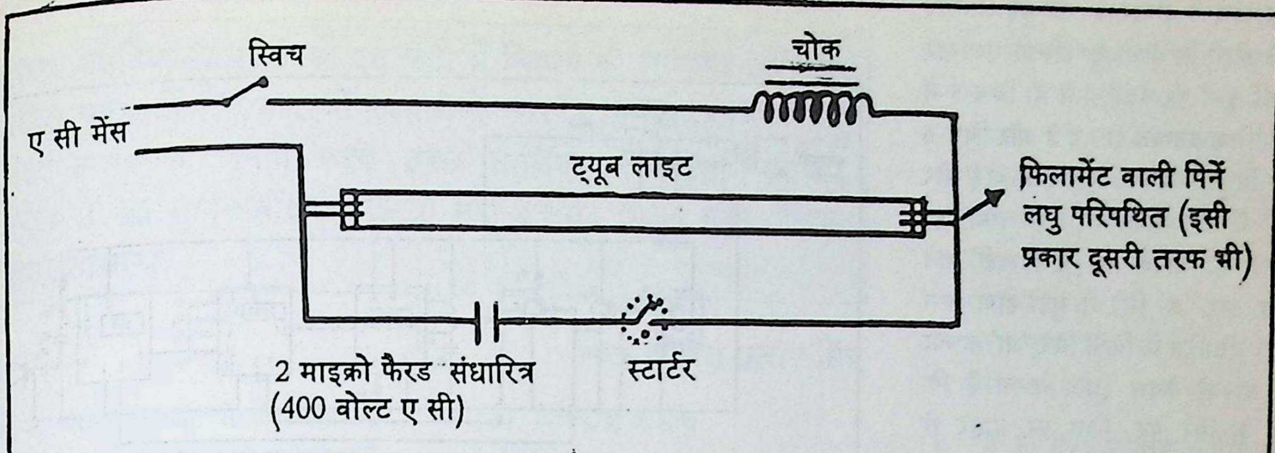

चित्र–4 : ए सी संधारित्र के उपयोग से खराब ट्यूबलाइट जलाना

फिलामेंट वाली पिनों को दोनों तरफ अलग-अलग शॉर्ट करना है, परन्तु इस बार छोटे संधारित्र के बजाए एक बड़ा 2 माइक्रोफैरेड का ए सी संधारित्र (400 वोल्ट ए सी के लिए, उस प्रकार का जैसा पंखों में लगा होता है) लगाना है. चोक और स्टार्टर भी यथावत् लगे रहेंगे. ए सी संधारित्र को चित्र-4 में दिखाए तरीके से परिपथ में लगाएं. इस युक्ति को बनाने के बाद विभिन्न खराब ट्यूब लाइटों पर इसे आजमाएं, अधिकांश प्रकाशित हो उठेंगी. हमने स्वयं इसे आजमाकर देखा कि एक तरफ से खराब ट्यूबलाइट जो काली पड़ चुकी थी तथा झपझपाकर जलती थी वह भी इस युक्ति से प्रकाशित हो उठी.

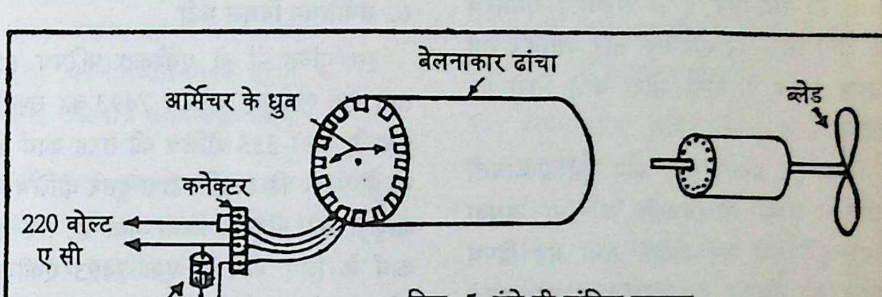

चित्र–5. पंखे की यांत्रिक बनावट

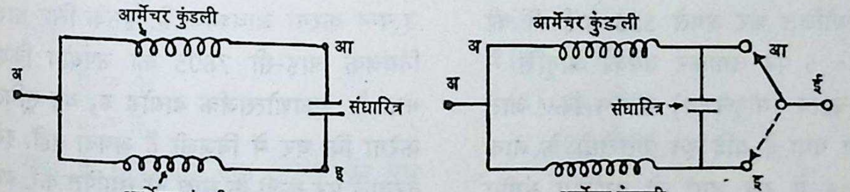

चित्र–6 (क) पंखे में प्रत्यावर्ती धारा 'अ' तथा ('आ' अथवा 'इ') के बीच लगाया जाती है, जिससे पंखा सामान्य दिशा में घूमता है. (ख) 'अ' तथा 'इ' बिन्दुओं को एक द्विपथ स्विच से जोड़कर पंखे की दिशा इच्छानुसार की जा सकती है. धारा 'अ' तथा 'ई' के बीच लगाई जाएगी.

5. एग्जॉस्ट अथवा स्वच्छ वायु पंखा

आजकल बाजार में कुछ इस प्रकार के पंखे आने लगे हैं जिन्हें आप दोनों दिशाओं में घुमा सकते हैं. ऐसा पंखा यदि किसी खिड़की अथवा रोशनदान में लगा हो तो उसका उपयोग इच्छानुसार उससे कमरे की वायु बाहर फेंकने अथवा बाहर की स्वच्छ वायु भीतर लाने के लिए कर सकते हैं. परन्तु यहां बताई विधि का उपयोग कर आप किसी भी ए सी पंखे को उभयदिश् बना सकते हैं.

सबसे पहले ए सी पंखे की संरचना को समझ लें. इसमें बीच में एक घूर्णक अथवा रोटर होता है तथा उसी के अक्ष में बाहर पंखे के ब्लेड जुड़े होते हैं. इसका किसी वैद्युतिक तार से सीधा सम्पर्क नहीं होता. पंखे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेलनाकार ढांचे में दीवार से सटी हुई आर्मेचर कुण्डलियां होती हैं. ये दो कुण्डलियां एकान्तर क्रम में कई ध्रुवों पर बंधी होती हैं. चित्र-5 में पंखे की यांत्रिक बनावट दी गई है और चित्र-6 में उसका विद्युत परिपथ. चित्र-6 में बाईं ओर भाग 'क' में तीन सिरे 'अ', 'आ' तथा 'इ' दिखाए गए हैं. आपके पंखे में बिजली लाने वाला एक तार 'अ' सिरे से जुड़ा होगा तथा दूसरा तार संधारित्र के किसी सिरे 'आ' अथवा 'इ' से. आपको केवल इतना करना है कि संधारित्र के सिरे पर, जिस पर बाहर से बिजली लाने वाला कोई भी तार न बंधा हो, एक तार बांधकर उसे भी पंखे से बाहर निकाल दें और संधारित्र से जुड़े बिजली के तार को एक द्विपथ स्विच के (जैसा सीढ़ियों में दोनों तरफ से प्रकाश जलाने-बुझाने के लिए लगाया जाता है) मध्य सिरे 'ई' से जोड़ना है. संधारित्र के दोनों सिरों पर एक-एक तार बांधकर उसे द्विपथ स्विच के दोनों छोरों वाले सिरों पर जोड़ना है.

अब इस प्रकार जब आप इसे प्रत्यावर्ती धारा से जोड़ेंगे तो बिजली 'अ'-'आ' अथवा 'अ'-'इ' सिरों पर लगेगी तथा यह द्विपथ स्विच की स्थिति पर निर्भर करेगा. इससे आपका पंखा इच्छानुसार दोनों दिशाओं में घुमाया जा सकेगा. निश्चय ही आपको यह कार्य करते समय अपेक्षित सावधानियां बरतनी होंगी जैसे कुचालक आवरण वाले तारों का उपयोग करना तथा यह देखना कि कोई 'नंगा' सिरा पंखे के ढांचे को स्पर्श न कर रहा हो. स्विच को सुरक्षात्मक तरीके से किसी लकड़ी

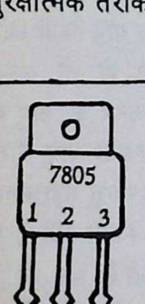

चित्र–7. एकीकृत परिपथ 7805 वोल्टता नियंत्रक का सामने का दृश्य

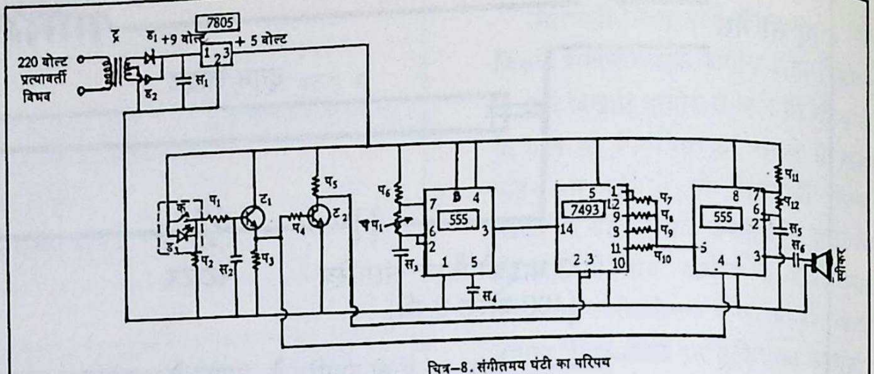

चित्र–8. संगीतमय घंटी का परिपथ

के बोर्ड पर स्थापित करना, इत्यादि.

6. संगीतमय विद्युत घंटी

इस युक्ति में दो एकीकृत परिपथ 555 तथा एक एकीकृत परिपथ 7493 का उपयोग हुआ है. दोनों 555 दोलित्र की तरह कार्य कर रहे हैं. पहले की आवृत्ति द्वारा दूसरे दोलित्र की आवृत्ति को मौडुलेट किया गया है, पर इस कार्य के लिए बीच में एक 7493 एकीकृत परिपथ को आवृत्ति विभाजक के रूप में इस्तेमाल किया गया है. आई सी 7493 की पिन सं० 14 में लगाई गई मूल आवृत्ति के $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{8}$, तथा $\frac{1}{16}$ वें विभाजन क्रमशः पिन सं० 12, 9, 8 तथा 11 पर प्रकट होते हैं जिन्हें चार प्रतिरोधों $प_7$, $प_8$, $प_9$ तथा $प_{10}$ द्वारा संयोजित कर अगले 555 आई सी की पिन सं० 5 पर लगाकर उसकी आवृत्ति में उतार चढ़ाव (मौडुलेशन) उत्पन्न किए जाते हैं. देखा गया है यदि इन प्रतिरोधों के मान 4:1:2:4 में रखे जाएं तो कर्णप्रिय संगीत उत्पन्न होता है. इसके लिए हमने इनके मान क्रमशः 4.7, 1.2, 2.2 तथा 4.7 किलो ओह्म चुने हैं. आप चाहें तो स्वयं फेर बदल कर दूसरी 'धुनें' भी प्राप्त कर सकते हैं. 'धुन' की गति पहले दोलित्र की आवृत्ति से निर्धारित हो रही है जो परिवर्ती प्रतिरोध प $प_1$ द्वारा घटाई-बढ़ाई जा सकती है. इस संयोजन से पहले दोलित्र की अधिकतम आवृत्ति 10 चक्र प्रति सेकंड तक की जा सकती है.

दूसरे दोलित्र की आवृत्ति लगभग 1600 चक्र प्रति सेकंड रखी गई है. ट्रांजिस्टर $ट_1$ तथा $ट_2$ की मदद से क्रमशः दूसरे दोलित्र तथा आवृत्ति विभाजक 7493 को 'रीसेट' किया गया है ताकि कुंजी 'क' दबाने पर हमेशा एक ही जैसी 'धुन' आरम्भ से सुनाई दे. ट्रांजिस्टर $ट_1$ से जुड़े संधारित्र $स_2$ का मान निर्धारित करेगा कि एक बार कुंजी दबाने पर घंटी कितनी देर तक बजती रहेगी. इसे कम या अधिक करने के लिए आप प्रतिरोध $प_1$ अथवा संधारित्र $स_2$ के मान में थोड़ा बहुत फेर बदल अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं. चूंकि 7493 एक टी टी एल एकीकृत परिपथ है अतः इसके निये नियंत्रित 5 वोल्ट सरल धारा (डी सी) उत्पन्न करना आवश्यक है. इसके लिए धारा नियंत्रक आइ-सी 7805 का उपयोग किया गया है. प्रकाशोत्सर्जक डायोड $ड_3$ यह सूचित करेगा कि घर में बिजली है अथवा नहीं. इसे दरवाजे पर कुंजी के साथ ही स्थापित करें. यह आगन्तुक की सुविधा के लिए है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुपरक बहुविकल्पी प्रश्नों की इस कड़ी में विज्ञान की सामान्य बातों पर आधारित ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के स्तर के प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं. सही उत्तर का चुनाव करके उत्तर तालिका से मिलान कीजिए. मूल्यांकन 21-25 सही-सर्वोत्तम; 15-20 सही-उत्तम; 10-14 सही अच्छा; 5-9 सही-सामान्य.

❑ कौशल प्रताप सिंह

1. जल के भीतर विस्फोट से बना गैस का बुलबुला आवर्त्तकाल T से दोलन करता है जो $P^a d^b E^c$ के अनुक्रमानुपाती है, जहां P स्थैतिक दाब है, d जल का घनत्व है, E विस्फोट की कुल ऊर्जा है, a, b तथा c के मान होंगेः
(क) $a = -\frac{5}{6}$
$b = \frac{1}{2}$
$c = \frac{1}{3}$
(ख) $a = \frac{2}{3}$
$b = \frac{4}{8}$
$c = \frac{1}{3}$
(ग) $a = \frac{5}{6}$
$b = \frac{1}{2}$
$c = \frac{1}{3}$
(घ) $a = 0$
$b = 4$
$c = 3$.

2. पृथ्वी से छोड़े गए एक प्रक्षेप्य का पथ परवलयाकार है. प्रक्षेप्य की गति/पथ के उच्चतम बिंदु पर न्यूनतम है, कथनः
(क) सत्य है
(ख) असत्य है
(ग) अनिश्चित है.

3. एक कण एक समान गति से वृत्ताकार पथ पर चक्कर लगाता है, कण का त्वरण हैः
(क) वृत्त की परिधि के साथ
(ख) स्पर्श रेखा के साथ
(ग) त्रिज्या के साथ.

4. एक व्यक्ति घूमते स्टूल पर भुजा फैलाए बैठा है, अचानक वह भुजाएं सिकोड़ लेता है, ऐसे मेंः
(क) उसका कोणीय वेग घट जाएगा
(ख) जड़त्व आघूर्ण घट जाएगा
(ग) कोणीय वेग नियत रहेगा
(घ) कोणीय संवेग बढ़ जाएगा.

5. यदि पृथ्वी की त्रिज्या 1 प्रतिशत सिकुड़ जाए, लेकिन द्रव्यमान वही रहे तो पृथ्वी तल पर गुरुत्वीय त्वरणः
(क) घट जाएगा
(ख) वही रहेगा
(ग) बढ़ जाएगा.

6. संलग्न आरेख में प्रदर्शित व्हीटस्टोन ब्रिज में 'ख' व 'घ' के मध्य विभवांतर होगाः
(क) 2 वोल्ट
(ख) .2 वोल्ट
(ग) .02 वोल्ट
(घ) 2.2 वोल्ट.

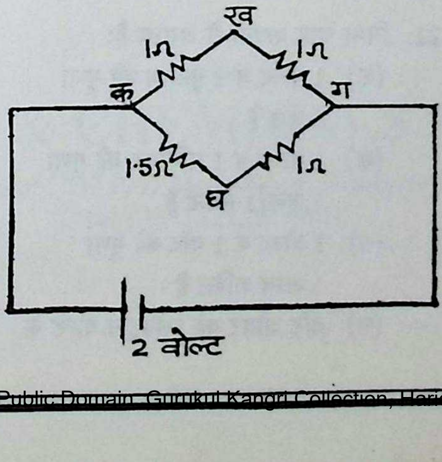

7. r त्रिज्या के एक चालक वृत्ताकार लूप में स्थाई धारा i बहती है, यह एक समान चुंबकीय क्षेत्र B_0 में इस प्रकार रखा जाता है कि B_0 लूप के तल के लंबवत है. लूप पर लगने वाला चुंबकीय बल हैः
(क) $i r B_0$
(ख) $2\pi i r B_0$
(ग) शून्य
(घ) $\pi i r B_0$.

8. 0° सेल्सियस पर जल से भरी एक बोतल चन्द्रमा पर ले जाई गई, यदि चन्द्रमा की सतह पर बोतल का डाट खोल दिया जाए तोः
(क) जल जम जाएगा
(ख) जल उबलने लगेगा
(ग) जल हाइड्रोजन तथा आक्सीजन में विघटित हो जाएगा.

9. प्रत्येक गैस आदर्श गैस का व्यवहार करती हैः
(क) निम्न दाब व उच्च ताप पर
(ख) उच्च दाब व निम्न ताप पर
(ग) सामान्य ताप व दाब पर.

10. 5 लीटर बैंजीन का भारः
(क) जाड़ों की अपेक्षा गर्मी में अधिक होता है
(ख) गर्मी की अपेक्षा जाड़ों में अधिक होता है
(ग) गर्मी तथा जाड़ों दोनों में समान होता है
(घ) उक्त में से कोई नहीं.

11. निम्न चार तारें एक ही पदार्थ की बनी हुई हैं. इन पर समान तनाव लगाने पर किसमें अधिक वृद्धि होगीः
(क) लम्बाई = 50 सेंटीमीटर
व्यास = 0.5 मिलीमीटर
(ख) लम्बाई = 100 सेंटीमीटर
व्यास = 1 मिलीमीटर
(ग) लम्बाई = 200 सेंटीमीटर
व्यास = 2 मिलीमीटर.

12. वर्षा की बूंदों के गोलाकार होने का कारण हैः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) पृष्ठ तनाव
(ख) श्यानता
(ग) वायुदाब
(घ) गुरुत्व.

3. एक घर के ऊपर तूफान है, तूफान के कारण घर की छत पर बल है:
(क) नीचे की ओर
(ख) ऊपर की ओर
(ग) शून्य.

4. एक गैस के आयतन में 10^3 न्यूटन/मीटर^2 नियत दाब पर 0.25 मीटर^3 का प्रसार होर्ता है, किया गया कार्य होगा:
(क) 2.5 अर्ग
(ख) 250 जूल
(ग) 250 वॉट
(घ) 250 न्यूटन.

5. यदि कोई अंतरिक्ष यात्री चन्द्रमा पर हाइड्रोजन गैस से भरा गुब्बारा छोड़ता है तो वहः
(क) ऊपर जाएगा
(ख) नीचे आएगा
(ग) स्थिर रहेगा
(घ) फूट जाएगा.

6. एक दीवार विभिन्न पदार्थों, परन्तु समान मोटाई की दो परतों क, ख से बनी है. क की उष्मा चालकता ख से दुगुनी है, स्थाई उष्मीय साम्यावस्था में दीवार के सिरों का तापान्तर 36° सेल्सियस है, परत अ के सिरों का तापांतर है:
(क) 6° सेल्सियस
(ख) 12° सेल्सियस
(ग) 18° सेल्सियस
(घ) 24° सेल्सियस.

7. दो पतले लेंस संपर्क में रखे हैं तथा संयोजन की फोकस दूरी 80 सेंटीमीटर है. यदि एक लेंस की फोकस दूरी 20 सेंटीमीटर हो तो दूसरे लेंस की क्षमता होगी:
(क) 1.66 डाइआप्टर
(ख) 4.00 डाइआप्टर
(ग) −1.00 डाइआप्टर
(घ) −3.75 डाइआप्टर.

18. ठीक बराबर द्रव्यमान के सर्वसम दो धातु गोलक लिए गए हैं, एक को +q धन आवेश दिया गया तथा दूसरे को ठीक उतना ही −q कूलाम ऋण आवेश. इनके द्रव्यमान आवेशन के पश्चात भिन्न-भिन्न हैं, यह कथनः
(क) सत्य है
(ख) असत्य है
(ग) विषम परिस्थितियों में ही सत्य है.

19. चित्र में अ तथा आ के मध्य तुल्य धारिता 1μF है, संधारित्र C की धारिता होगी:
(क) $\frac{32}{9}$μF
(ख) $\frac{9}{32}$μF
(ग) $\frac{23}{32}$μF
(घ) $\frac{32}{23}$μF.

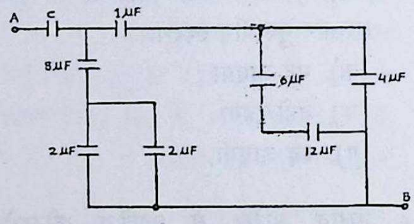

20. यदि तंत्रिका में विद्युत धारा प्रवाहित की जाए तो मनुष्यः
(क) हंसना आरंभ कर देता है
(ख) रोना आरंभ कर देता है
(ग) उत्तेजित हो जाता है
(घ) उक्त में से कोई नहीं.

21. निम्न चार कथनों में असत्य है:
(क) 1 वोल्ट व 1 कूलाम की गुणा 1 जूल है
(ख) 1 वोल्ट व 1 एम्पियर की गुणा 1 जूल/1 सेकंड है
(ग) 1 वोल्ट व 1 वॉट की गुणा 1 अश्व शक्ति है
(घ) वॉट ओवर को इलेक्ट्रान वोल्ट के पदों में भी पाया जाता है.

22. दोनो सिरों पर खुली बेलनाकार नली की मूल आवृत्ति n है, नली को उर्ध्वाधर स्थिति में रखकर जल में डुबोया गया है जिससे कि आधी नली जल में रहे, अब वायु स्तंभ की मूल आवृत्तिः
(क) n/2 होगी
(ख) 3n/4 होगी
(ग) n होगी
(घ) 2n होगी.

23. ध्वनि की गति तीव्रतम होती है:
(क) वायु में
(ख) जल में
(ग) निर्वात में
(घ) स्टील में.

24. जब प्रकाश वायु से कांच में जाता है:
(क) तो तरंग दैर्घ्य बढ़ती है
(ख) तरंग दैर्घ्य घटती है
(ग) आवृत्ति बढ़ती है
(घ) कुछ नहीं बढ़ता.

25. तापमान .... पर वायु में ध्वनि की चाल 27° सेल्सियस तापमान के मान की अपेक्षा दो गुनी हो जाएगी:
(क) 54° सेल्सियस
(ख) 327° सेल्सियस
(ग) 927° सेल्सियस
(घ) −123° सेल्सियस.

उत्तर तालिका

1. (ख); 2. (क); 3. (ग); 4. (ख);
5. (ग); 6. (ग); 7. (ख); 8. (ख);
9. (क); 10. (ग); 11. (क); 12. (क);
13. (ख); 14. (ख); 15. (ख);
16. (ख); 17. (ग); 18. (क);
19. (घ); 20. (ग); 21. (ग); 22. (ग);
23. (घ); 24. (ख) 25. (ग)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOLDEN GOA

Exciting Package Tour Only Rs. 799/- Per Head
On Twin Sharing Basis For 4 Days-3 Nights

INCLUDING

* Return Bus Ticket To Goa & Back By Luxury Bus From Bombay
* 2 Full Days' Sightseeing Tours of North & South Goa
* Continental Breakfast
* River Cruise With Folk Dances

For Advance Reservations, Please Contact :

HOTEL AZAVEDO'S

(NEAR CALANGUTE BEACH, CALANGUTE, GOA)

CORRESPONDENCE ONLY TO BOMBAY OFFICE :

203, Gulab, P. D'Mello Road, Bombay-400 001
Ph : Off : 2615321, 2619849, 6403834

FREE FREE FREE

Sales/Purchase Classified Advertisements
Published Free in
Colour & Chemicals Weekly

Yearly Subscription Rs. 300/-

Contact :

COLOUR & CHEMICALS WEEKLY

203, Gulab, 237 P. D'Mello Road, Bombay-400001
Tel : 2615321, 2619849

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SOMETHING MISSING?

You really can't afford to miss!

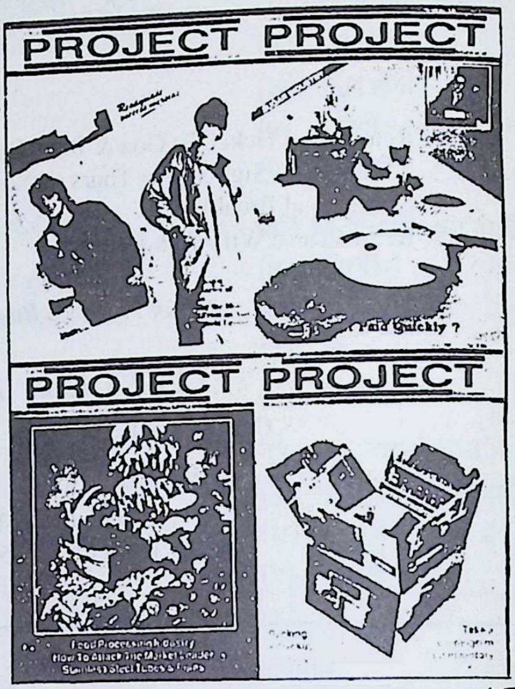

If you aren't receiving everyissue of
Latest PROJECT Information
India's fastest growing magazine on projects, technologies, finance & management , then you are missing vital facts & valuable information which you can't afford to miss.

Act Immediately!
Subscribe Now!!

- Only subscribers receive EVERY copy of **Latest PROJECT Information** by post at their door-step.

- Only subscribers have quick and consistent information at hand about technologies, projects, management, finance, business law, international trade, the industry leaders and the important trends in the **national** and **international** market place.

If staying abreast of new technology in every area of industry is **Important** to you and the future of your company, you should not miss any issue of **Latest PROJECT Information.**

Fill up this coupon and send it to us with cheque, money order, demand draft or postal order for Rs. 85.00 / 160.00* favouring ***Dominique Data Links (P) Ltd.*** and we will rush you the copies of **Latest PROJECT Information** for one/two years (packing & forwarding included).

YES

I/We don't want to miss vital facts and valuable information. Please enroll my/our subscription for ONE/TWO YEAR (S) and rush me the copies of **Latest PROJECT Information** by post. I /we enclose a cheque / money order / demand draft / postal order for **Rs. 85.00 / 160.00** * towards my/our subscription charges.

Name__________
Company__________
Department or Position __________
Address__________
Street__________
Station __________ PIN __________

Signature__________ Date__________

Please fill clearly (BLOCK LETTERS) and send coupon to:
Circulation Manager
Latest PROJECT Information
27, South Patel Nagar, (UCO Bank Bldg.) New Delhi-110 008.
Phones : 583705, 5735995

*** Please add Rs. 10/- on an outside Delhi Cheque.All payments favouring: Dominique Data Links (P) Limited**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AYWAR YUSHIAL PRESENTS

PUZZLE PACK

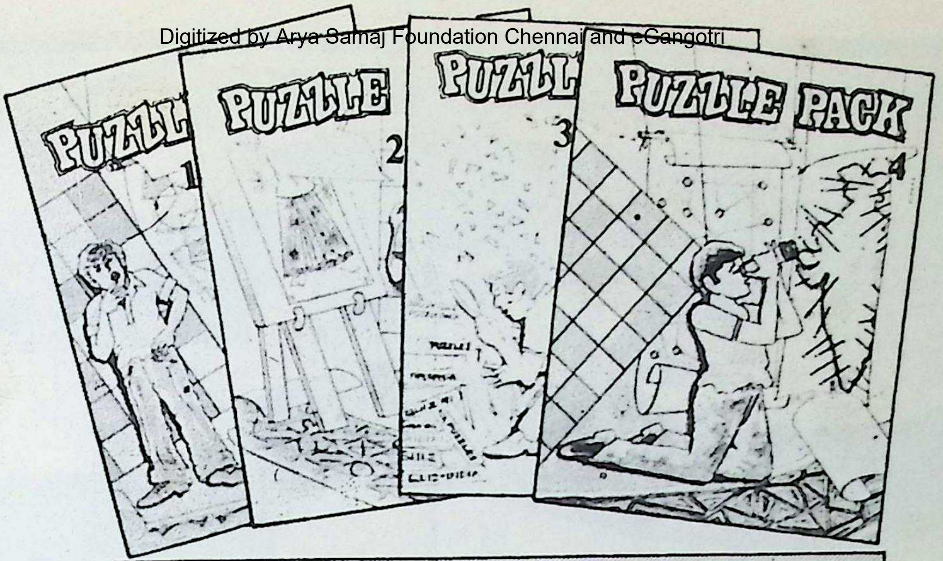

LIFE ITSELF IS A PUZZLE

Here, success is always achieved by those who have intelligence, developed brain and ability to take right decision at right time for Solving puzzles of life.

Any body can easily get through the exams by cramming text-books but in this way one does'nt get guarantee of having a successful life.

To achieve success it is very essential that a regular practice should be made to develop the brain and to Sharpen the intelligence.

For wonderful assistance in this matter
Diamond Publications presents— a useful set of 4 Books

PUZZLE PACK

DIAMOND
KNOW-FUN
BOOKS

With the concept of KNOWLEDGE, coated with FUN
It is not easy to tell what these books contain except to say 'A LOT'
So hurry and pick your favourite pack from the nearest Book shop.
Price : For each Book Rs. 5.00

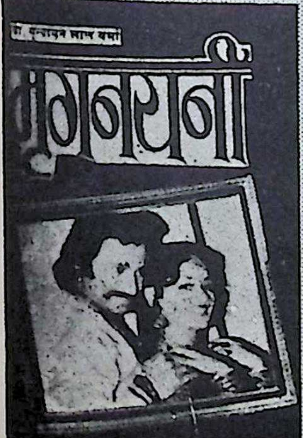

मृगनयनी

साहित्यकार श्री वृन्दालाल वर्मा जी की सर्वश्रेष्ठ एवं बहुचर्चित रचनाओं में से एक है। इसका देश एवं विदेश की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और समस्त पाठक वर्ग की नजरों में इसने सम्मान और आदर का दर्जा प्राप्त किया है।

मूल्य 25/- डाक व्यय अलग

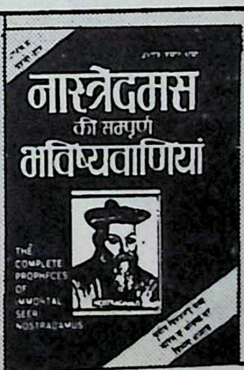

नास्त्रेदमस
की सम्पूर्ण भविष्यवाणियाँ

सारे संसार को चौंका देने वाली विश्व की अनेक महान हस्तियों श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री राजीव गांधी, महारानी लक्ष्मी बाई, हिटलर कैनेडी बन्धु, नेपोलियन, इत्यादि के बारे में अचूक एवं सटीक भविष्यवाणियाँ।

टी.वी. के रंगीन पर्दे पर शीघ्र ही दिखाई जाने वाली अमर कृति

महामात्य **चाणक्य** मूल्य 12/- डाक व्यय 3/-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

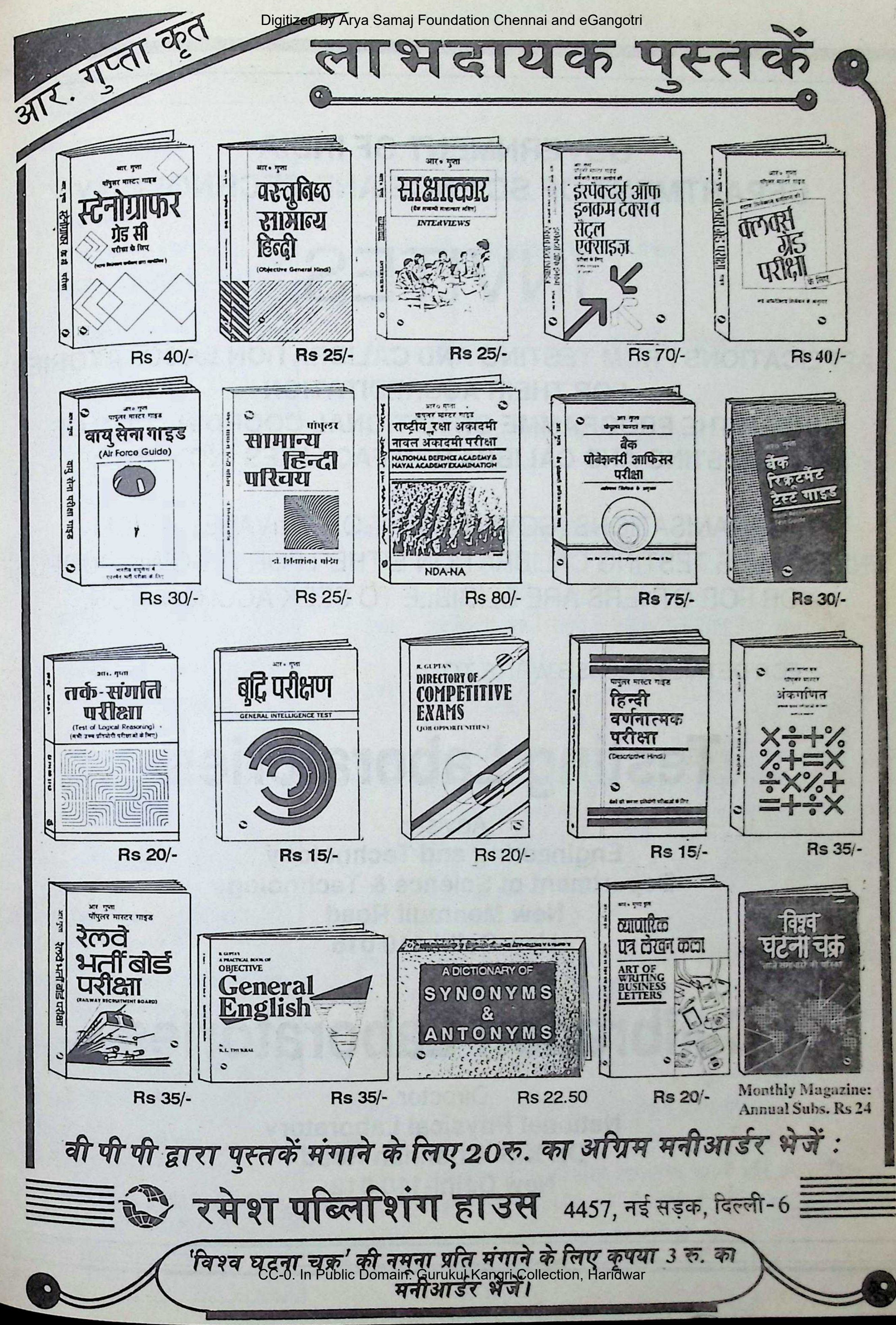

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

INVITES

APPLICATIONS FROM TESTING AND CALIBRATION LABORATORIES FOR THEIR ACCREDITATION UNDER THE PROGRAMME ON NATIONAL COORDINATION OF TESTING AND CALIBRATION FACILITIES (NCTCF)

ORGANISATIONS (GOVERNMENT OR PRIVATE) WHICH UNDERTAKES TESTING CALIBRATION EITHER FOR ITS OWN PURPOSE OR FOR OTHERS ARE ELIGIBLE TO SEEK ACCREDITION.

FOR DETAILS, PLEASE WRITE TO :

Testing Laboratories

Adviser
Engineering and Technology
Department of Science & Technology
New Mehrauli Road
New Delhi-110 016

Calibration Laboratories

Director
National Physical Laboratory
Dr. K.S. Krishnan Road
New Delhi-110 012

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन.आर.डी.सी
NRDC

आविष्कार

सितम्बर 1991

वर्ष 21, अंक 9

प्रबंध निदेशक
एन०के० शर्मा
चीफ इंजीनियर (मेट०)
एम० एन० गुप्ता

•

वरिष्ठ सम्पादक
डी०एन० भटनागर
सम्पादन सहायक
राघवेंद्र कुमार शर्मा
आर०के० अन्थवाल

•

उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन
मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा

•

व्यावसायिक चित्रकार
के०के० थपलियाल
वरिष्ठ चित्रकार
नबनीता भौमिक
विज्ञापन प्रतिनिधि
एन०के० चोपड़ा

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■ लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरूरी है.

एक प्रति : 3 रुपए
वार्षिक मूल्य : 30 रुपए

फोन: 6418615, 6419929, 6419945, 6419947, टेलेक्स: 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'
फैक्स : 091-11-6449401

इस अंक में

409 तड़ित और संबंधित अनुसंधान के क्षेत्र
—डा० जगदीश राय

416 विशाल अफ्रीकी घोंघा—नाशीजीव या विदेशी मुद्रा का स्रोत
—डा० जगदीप सक्सेना

422 आयोनियम-थोरियम विधि से काल-निर्धारण
—डा० विजय कुमार उपाध्याय

425 शैथिल्यहीन ट्रायक परिपथ
—पीयूष पांडेय

390 आविष्कार मंच : चित्रों के निर्माण में सीलिंग वैक्स का उपयोग

392 व्योमविहार

395 समाचारिकी : अब देश में बनेगी एड्स की औषधि. रक्त में औषधि की सांद्रता मापने की नई युक्ति. प्रोफेसर तलवार को फ्रांस सरकार का सर्वोच्च सम्मान. एन आर डी सी द्वारा सघन फिल्म संकर सूक्ष्म परिपथ प्रौद्योगिकी का लाइसेंस जारी. पौलीएस्टर आधारित एक्स-किरण फिल्मों के उत्पादन के लिए स्वदेशी प्रौद्योगिकी. धान के बीजों की सीधे बोआई के लिए ट्रैक्टर चालित युक्ति.

398 विज्ञान के विविध आयाम : नए बोसान कणों की खोज. कचरे के ढेर में बदल रहा हिमालय. पारिस्थितिकी के सिद्धान्तों पर आधारित एक नए अर्थशास्त्र की आवश्यकता. मिलन संदेश : डिम्ब का शुक्राणुओं को. पेशियों को जानिए, खेल क्षमता पहचानिए. बंगलादेश में चक्रवात से तबाही क्यों ?

425 हम सुझाएं आप बनाएं : शैथिल्यहीन ट्रायक परिपथ

427 क्या और कैसे ? यदि स्रोत पराध्वनिक वेग से गति करे तो क्या ध्वनि सुनाई देगी ? क्या होगा यदि ध्वनि स्रोत ध्वनि वेग से श्रोता से दूर गति करे ?

429 प्रायोजित प्रतियोगिता—9/91

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रों के निर्माण में सीलिंग वैक्स का उपयोग

❑ आवश्यकता आविष्कार की जननी है और यह सही ही है. जब मनुष्य को आवश्यकता होती है तो उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए रास्तों की तलाश करता है. तलाश की इसी प्रक्रिया में उसे कुछ ऐसे साधन या माध्यम मिल जाते हैं जिनको वह अपने ढंग से प्रयोग में लाता है और उससे वांछित लाभ या सुविधा प्राप्त कर लेता है. इस प्रकार प्राप्त लाभ की प्रक्रिया को ही मेरी समझ से आविष्कार करना कहा जाता है और जो चीज सामने आती है वह आविष्कार होती है.

रेखाओ और रंगों के माध्यम से विचारों और भावनाओं को अभिव्यक्त करने की बहुत पुरानी विधा है चित्रकला. चित्रकला में कागज पर जलरंग अथवा तैल रंग से चित्र बनाए जाते हैं. कपड़े के कैनवस पर तैल रंग से चित्र बनाए जाते हैं. परन्तु अच्छा कागज, अच्छा कैनवस, अच्छे रंग और ब्रुश इतने महंगे हो गए हैं कि आम चित्रकार के सामने एक समस्या खड़ी हो गई है. इस समस्या से निबटने के लिए ही वे नए-नए माध्यमों की खोज कर रहे हैं. फलस्वरूप चित्र बनाने के नए माध्यमों का आविष्कार भी हुआ है.

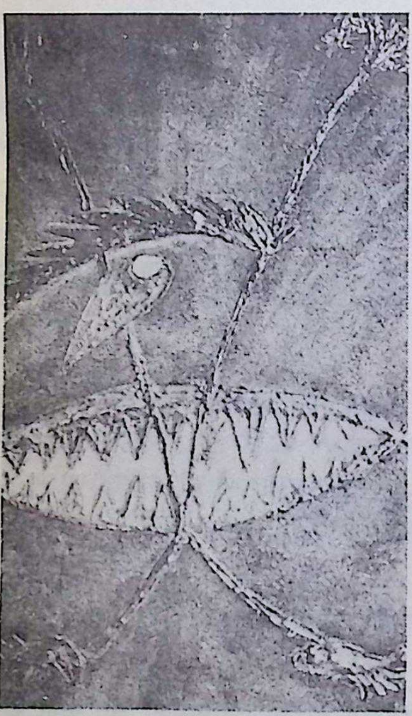

विद्रोह

मैं यहां केवल एक आविष्कार का वर्णन करना चाहूंगा, वह है सीलिंग वैक्स और स्ट्रॉ बोर्ड. सीलिंग वैक्स वह पदार्थ है जिसका उपयोग डाकघरों में, कार्यालयों में रजिस्ट्री या पार्सल किए जाने वाले पैकेटों को सील करने के लिए किया जाता है. इसे पैकेटों आदि पर मोमबत्ती से गर्म करके पिघला कर टपका दिया जाता है और फिर उस पर सील लगा दी जाती है. यह पदार्थ आमतौर पर लाल रंग की छड़ी के आकार में बाजार में मिलता है.

इस पदार्थ को मन चाहे ढंग से रंग के स्थान पर उपयोग करके चित्रों का निर्माण किया जा सकता है. इस पदार्थ का चरित्र यह है कि एक विशेष तापमान पर यह तरल रहता है और ठण्डा होने पर तुरन्त सख्त हो जाता है. इस सख्त पदार्थ से मैं तैल रंगों की भांति चित्रों का निर्माण सन् 1966 से कर रहा हूं और इस पदार्थ के उपयोग में भी पारदर्शिता कैसे लाई जाए इस पर शोध कर रहा हूं. सीलिंग वैक्स से चित्रों के निर्माण की प्रक्रिया जब तक नहीं बताऊंगा, स्थिति समझने में कठिनाई होगी, अतः विवरण प्रस्तुत है :

मैं स्ट्रॉ बोर्ड (सीता टैक्स) के पृष्ठ भाग को सतह के रूप में प्रयुक्त करता हूं. इस सतह को सरेस से पोत कर पहले बेस तैयार करता हूं, फिर उस पर रेखा से खाका बनाता हूं. तब अपने मुख्य विषय को चाकू की सहायता से ढालता हूं. सीलिंग वैक्स को एक कटोरी में आंच पर रखता हूं. जब वह पिघलता है तभी उसे चाकू से उठा-उठा कर चित्रांकन करता हूं. ऐसा करते समय बहुत तेज प्रक्रिया अपनानी पड़ती है क्योंकि ज्यादा देर आंच खाने पर सीलिंग वैक्स का रंग लाल से भूरा और फिर मटमैला-पीला सा होने लगता है. परन्तु मेरे चित्रों में भूरापन न आने पाए इसलिए उसके तापमान को भी नियंत्रित रखना पड़ता है और कृति निर्माण करते हुए चाकू भी तीव्रगति से चलाना पड़ता है. स्ट्रॉ बोर्ड की खुरदरी सतह सीलिंग वैक्स को जकड़ कर पकड़ लेती है. इसका टैक्स्चर भी सीलिंग वैक्स में निर्मित आकृति को अपना सहयोग प्रदान करता है. इस

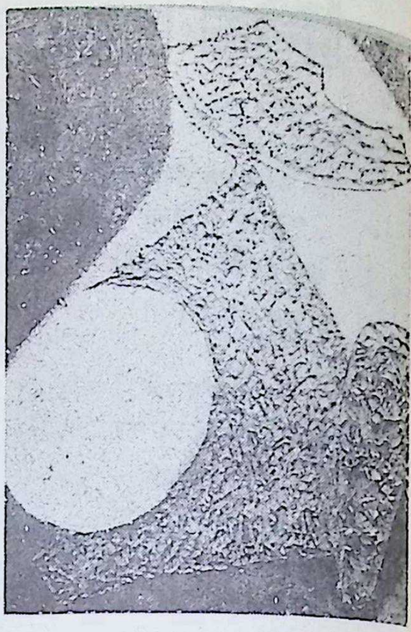

पूर्वज

प्रकार जो आयाम उभरता है उसे शब्दों में कहा जाए तो मैं कहूंगा कि स्वप्निल प्रभाव फ्रेम की बांहों में सिमटकर अंगड़ाइयां लेने लगता है. चित्रकार एक प्रकार से अपने चित्र का निर्माता भी होता है और सम्पादक भी, यह मेरी अपनी मान्यता है.

मैंने एक और आविष्कार किया है. इस

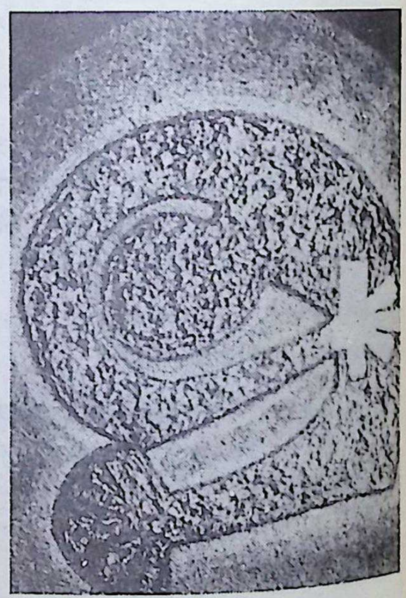

शांति का दिखावा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल रंग के सीलिंग वैक्स में दूसरे रंगों का मिश्रण करके अन्य रंग का प्रभाव पैदा करने में भी मैंने सफलता प्राप्त कर ली है.

मगर मेरे सीलिंग वैक्स के चित्र आम तैल रंग और जलरंग के चित्रों जैसे नहीं होते. हो भी नहीं सकते. इसीलिए ऐसे चित्र सैकड़ों चित्रों में दूर से ही पहचाने जा सकते हैं. मेरे चित्र प्रतीक की भाषा में बोलते हैं. उनका चरित्र खुरदरा होता है. विषय सामाजिक और वर्तमान के होते हैं. वर्तमान, जो सार्वभौमिक हो. अतः ये चित्र आधुनिक कला की श्रेणी में आते हैं. आधुनिक क्या है? कोई भी कला शैली जो अपनी परम्परा से जरा हटती है, वह आधुनिक हो जाती है. आधुनिक शब्द का चलन भारत में लगभग 1942 के आसपास हुआ है. इससे पूर्व भारतीय कला राजपूत शैली, मुगल शैली, पहाड़ी शैली, कांगड़ा शैली आदि के नाम से जानी जाती थी. इन शैलियों में रचित चित्र काव्य या आख्यायिकाओं पर आधारित होते थे. उनका अपना एक व्याकरण होता था. इधर 1942 या 1945 के आसपास रचित चित्रों के निर्माण के व्याकरण में अन्य धाराओं को शिथिल करते हुए संयोजन और फलक को बांटने वाली धारी पर जोर दिया जाने लगा. साथ ही, समाज की स्थिति को आंकने और उसे अपनी कृतियों में स्थान देने की भावना भी पनपी और यहीं से कला आधुनिक होने लगी. आधुनिक कला की एक और विशेषता है—वह है उसका व्यक्तिवादी होना. जिस प्रकार संयुक्त परिवार का विघटन हुआ है उसी प्रकार कला भी व्यक्तिवादी हुई है. सीलिंग वैक्स के चित्र व्यक्तिवादी चित्र हैं. ये चित्र कलकत्ता, दिल्ली, अमृतसर, जयपुर, भुवनेश्वर, कानपुर, लखनऊ आदि स्थानों पर होने वाली अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में प्रदर्शित हो चुके हैं और कला प्रेमियों ने क्रय भी किए हैं. पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है.

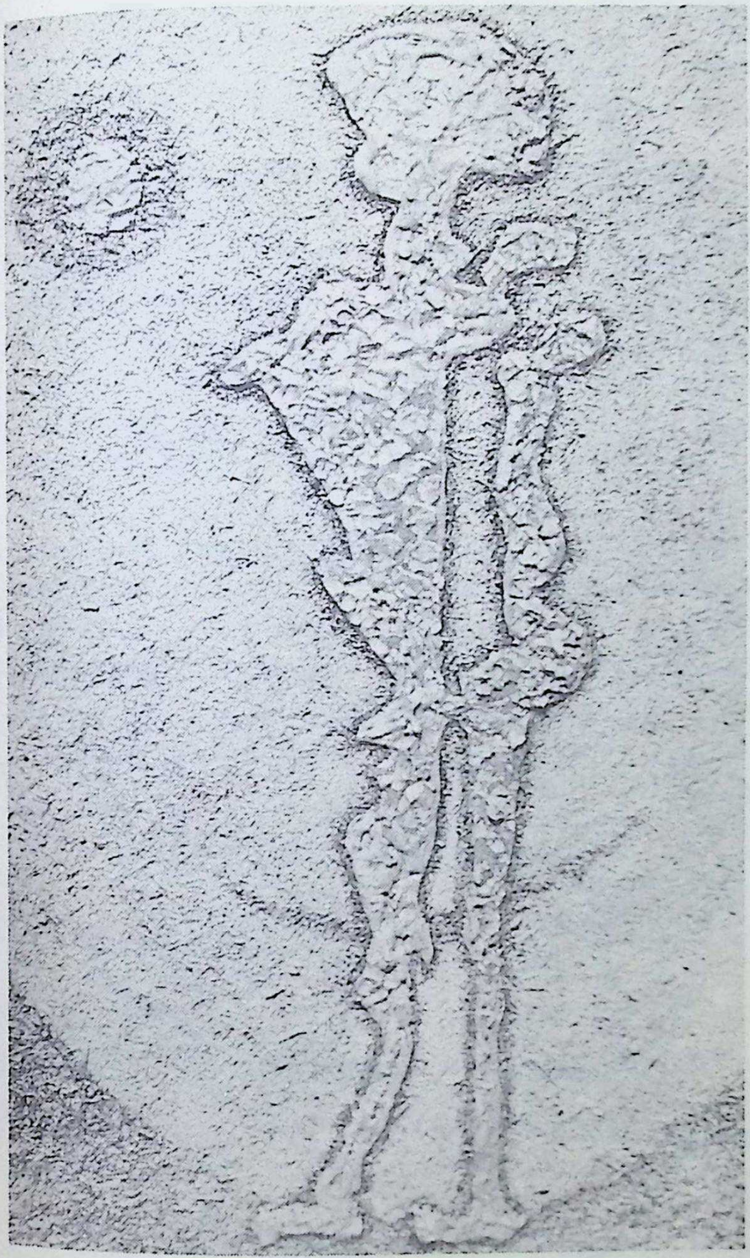

यहां मैं अपने कुछ चित्र दे रहा हूं. इन्हें देखकर आपको मेरे कथन का कुछ आभास मिल जाएगा. इधर मेरे चित्रों में आतंक विषय हावी हो रहा है. 'आतंक'—दफ्तरों में अफसर का आतंक, पुलिस का आतंक, प्रदूषण का आतंक और अशांति का आतंक; और भी इसी तरह के आतंक हैं. हमारा जीवन आतंक से घिरा है. यह आतंक सदियों से चला आ रहा है. अंग्रेजों से भी हम आतंकित थे. उस समय किसी विशेष होटल, बाजार या सिनेमाघर में हम प्रवेश नहीं कर सकते थे. इंडिया गेट पर उस समय किसी हिन्दुस्तानी का प्रवेश वर्जित था. आज इस पर कोई विश्वास नहीं करेगा. पर था ऐसा ही. अब इस आतंक को प्रतीकों के माध्यम से चित्रों में स्थान मिल रहा है.

मैंने बताया न कि सीलिंग वैक्स से चित्रों के निर्माण करने का आविष्कार कला सामग्री की आवश्यकता के कारण हुआ और चित्रकला में इसी प्रकार के और भी आविष्कार हुए हैं. आशा है अन्य चित्रकार भी अपने अपने नए प्रयोगों की जानकारी पाठकों को देंगे.

घनश्याम रंजन

65, कैंट रोड, उदय गंज,

लखनऊ-226001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❑ पीयूष पाण्डेय

आविष्कार के 'व्योमविहार' स्तंभ में हम इस बार आपका परिचय अक्तूबर 1991 माह के आकाश में उपस्थित तारामंडलों से करा रहे हैं. पहले की तरह आप निर्देशों का पालन करते जाएं और तारों, ग्रहों तथा नक्षत्रों से परिचय करते जाएं. आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है.

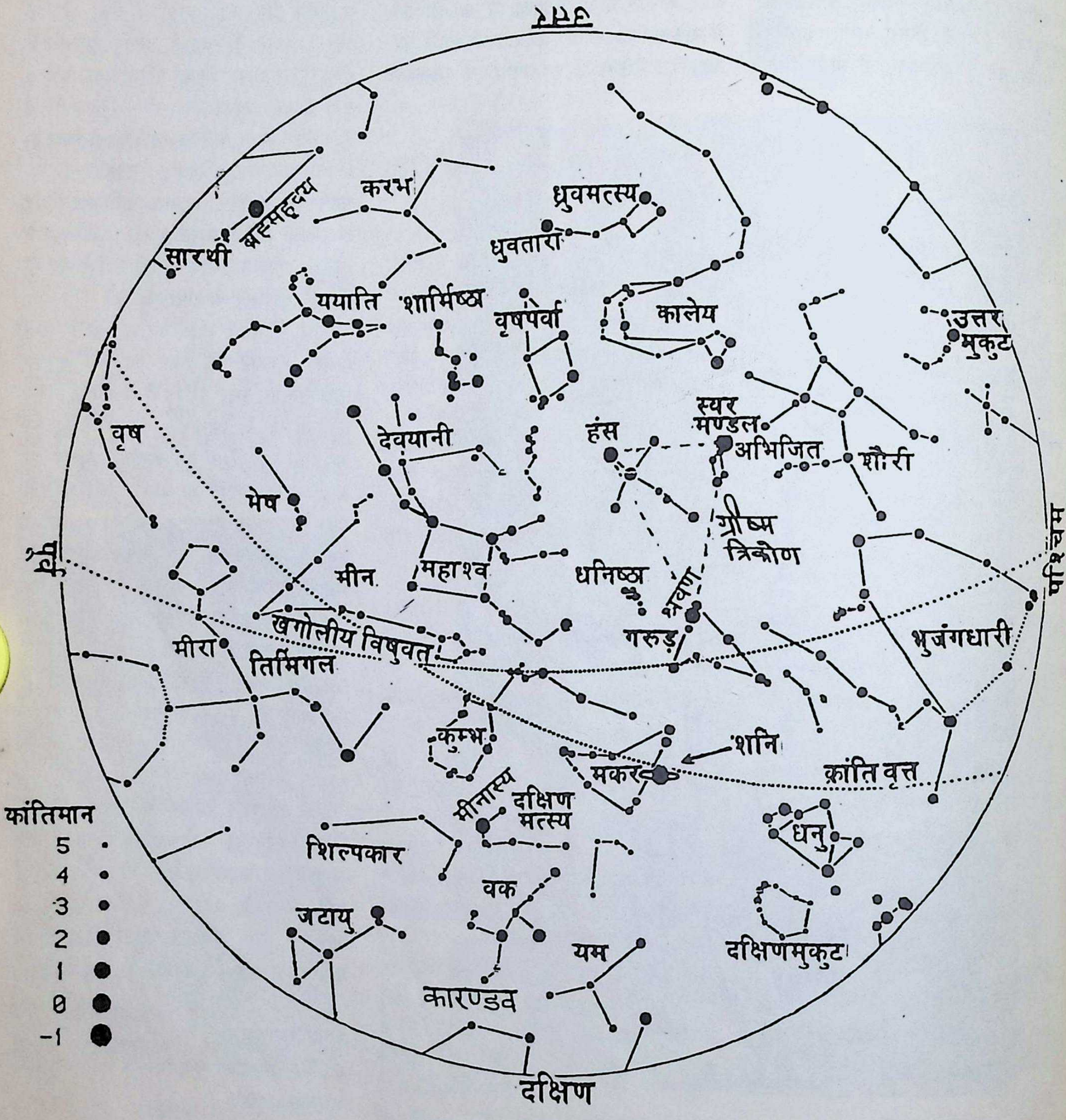

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ वर्षा की समाप्ति और शरद ऋतु के आगमन ने आकाश को अत्यन्त निर्मल बना दिया है. व्योमविहार के लिए यह अत्यन्त उपयुक्त समय है. इस मास के संध्याकाश के प्रमुख आकर्षण हैं: धनु राशि, ग्रीष्म त्रिकोण के तीन तारामण्डल—हंस, गरूड़ और स्वरमण्डल, शर्मिष्ठा, ययाति, महाश्व आदि.

ग्रहों की स्थितियां इस प्रकार हैं: हमारे संध्याकाश में इस मास केवल एक ग्रह शनि है जिसकी स्थिति मानचित्र में मकर राशि में प्रदर्शित की गई है. दिनांक 26 अक्तूबर से बुध ग्रह भी संध्याकाश में प्रवेश कर रहा है तब वह तुला राशि में होगा जो हमारे मानचित्र की परिधि के बाहर है.

शुक्र तथा बृहस्पति ग्रह ऊषाकाश में हैं और मंगल ग्रह पूरे मास आकाश के उसी क्षेत्र में, जिसमें सूर्य है, स्थित होने के कारण दिखाई नहीं देगा. शुक्र ग्रह इस मास ऊषाकाश में सिंह राशि के क्षेत्र में है तथा बृहस्पति भी इसी राशि में है.

इस मास चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं: इस मास दो कृष्ण पक्ष अष्टमियां पड़ रही हैं दिनांक 1 तथा 30 को, अमावस्या दिनांक 8, शुक्ल पक्ष अष्टमी दिनांक 15, तथा पूर्णिमा दिनांक 23 अक्तूबर को है.

इन पंक्तियों को लिखे जाने के दिनों में जुलाई मास में एक पूर्ण सूर्य ग्रहण हुआ था जो दिनांक 11-12 जुलाई को पड़ा था तथा भारत में नहीं दिखाई दिया था. इस सूर्य ग्रहण के

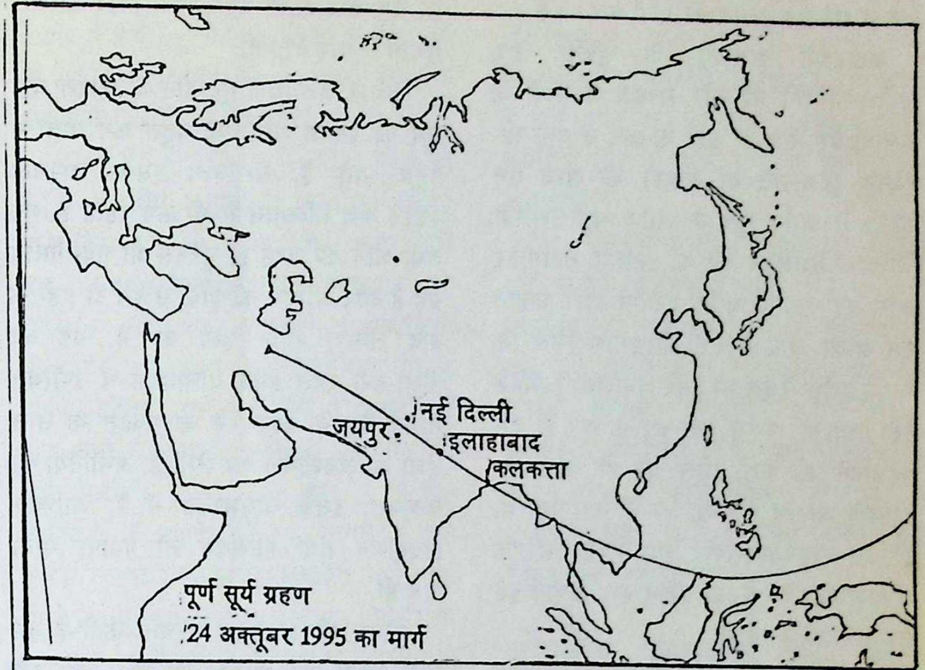

पूर्ण सूर्य ग्रहण
24 अक्तूबर 1995 का मार्ग

संबंध में यह प्रचारित किया गया था कि यह इस शताब्दी का अन्तिम पूर्ण सूर्य ग्रहण था. आविष्कार के पाठकों को हम वस्तुस्थिति बताना चाहेंगे.

दरअसल वह मध्य अमेरिका के लिए इस शताब्दी का अन्तिम सूर्य ग्रहण था. पूरी पृथ्वी के लिए नहीं. इस शताब्दी के बीतने से पूर्व अभी छः सूर्य ग्रहण और होने हैं, उनकी तिथियां, पूर्ण ग्रहण की अवधि, दिखलाई देने का क्षेत्र सारणी—1 में दिया गया है. इनमें से दो ग्रहण भारत से भी देखे जा सकेंगे, वे हैं 24 अक्तूबर 1995 तथा 11 अगस्त 1999 के ग्रहण. संयोग से 24 अक्तूबर 1995 को दीपावली का पर्व पड़ रहा है अतः चाहें तो ग्रहण के मार्ग में पड़ने वाले स्थानों में ग्रहण की अल्पावधि के समय कुछ 'दिये' दिन में भी जलाए जा सकते हैं. इस ग्रहण का मार्ग ईरान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत में दिल्ली और जयपुर के बीच से होता हुआ, इलाहाबाद होकर कलकत्ता को लगभग छूता हुआ फिर दक्षिण पूर्व एशिया की ओर मुड़ जाएगा. इलाहाबाद में पूर्ण ग्रहण की अवस्था लगभग एक मिनट की होगी, कलकत्ता में इससे लगभग 30 सेकंड अधिक. अधिक जानकारी हम आपको कुछ समय बाद देंगे.

यूरेनस

व्योमविहार के पिछले अंकों में हम कोरी आंखों से आकाश में दिखाई देने वाले पांचों ग्रहों की चर्चा कर चुके हैं. आपकी सुविधा के लिए हम उन अंकों के मास यहां दे रहे हैं, बुधः आवि॰ अगस्त 1991; शुक्रः आवि॰ दिसम्बर 1990; मंगलः आवि॰ अक्तूबर 1990; बृहस्पतिः आवि॰ मार्च 1991; शनिः आवि॰ अक्तूबर 1990. इस मास हम सूर्य से दूरी के

इस शताब्दी के शेष पूर्ण सूर्य ग्रहण

दिनांक	पूर्ण ग्रहण की अवस्था (मिनट)	कहां दिखाई देगा
30 जून 1992	5.3	दक्षिण एटलांटिक महासागर
3 नवम्बर 1994	4.4	दक्षिण अमेरिका
24 अक्तूबर 1995	2.2	दक्षिण एशिया
9 मार्च 1997	2.8	उत्तर पूर्व एशिया
26 फरवरी 1998	4.1	कोलम्बिया
11 अगस्त 1999	2.4	मध्य यूरोप तथा दक्षिण एशिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम में छठे ग्रह यूरेनस की चर्चा कर रहे हैं.

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक खगोलशास्त्रियों को सौर मण्डल में पृथ्वी के अलावा बस पांच ही ग्रहों के बारे में पता था. यूरेनस (प्रजापति या अरुण) की खोज सन् 1781 में जर्मन मूल के अंग्रेज खगोलशास्त्री विलियम हर्शेल ने की थी. सोलह सेंटीमीटर व्यास की एक परावर्तक दूरबीन द्वारा उन्होंने इसे खोजा. बाद में ऐसे भी प्रमाण मिले कि शायद हर्शेल से पूर्व भी दूसरे खगोलशास्त्रियों ने इसे देखा हो, परन्तु एक ग्रह के रूप में इसे पहचानने का श्रेय हर्शेल को ही जाता है. हालांकि आरम्भ में हर्शेल को भी नहीं पता था कि वह चलायमान पिण्ड क्या है, वे उसे एक धूमकेतु मान बैठे थे, दो महीने बाद उन्होंने इसे ग्रह के रूप में पहचाना.

दूरबीन से देखने पर यूरेनस एक धुंधला नीले-हरे रंग का पिण्ड नजर आता है. यूरेनस के 15 चन्द्रमा अब तक ज्ञात किए जा चुके हैं जिनमें से पांचवां सन् 1948 में खोजा गया था. वोएजर यान द्वारा इसकी खोजबीन करते हुए 1985-86 में शेष दस चन्द्रमा खोजे गए थे. स्वयं हर्शेल ने इसके दो चन्द्रमा खोज लिए थे.

सूर्य से लगभग 19 खगोलीय माप की दूरी पर स्थित यह ग्रह उसकी एक परिक्रमा 84 वर्ष में करता है. इसका अपनी धूरी पर घूमने का काल 15.5 घंटा है. यूरेनस की एक बड़ी विचित्रता यह है कि इसकी विषुवत रेखा इसके कक्षातल से लगभग 98° पर झुकी हुई है या दूसरे शब्दों में इसका घूर्णन अक्ष लगभग इसके कक्षातल में स्थित है जबकि और ग्रहों के घूर्णन अक्ष उनके कक्षातल के लम्ब के अधिक समीप होते हैं. इस कारण इस ग्रह के दोनों ध्रुव क्रमशः 42-42 वर्ष के लिए सूर्योन्मुख होते हैं अर्थात एक गोलार्ध में 42 वर्ष के लिए सूर्य का प्रकाश रहता है तो दूसरे में इस दौरान लगातार रात्रि रहती है. इसी विलक्षणता के ही कारण अपनी कक्षा में चलते हुए हमें पृथ्वी से देखने पर यह ग्रह कभी तो घड़ी की सुइयों की तरह घूमता दिखाई देता है, तो 21 वर्ष बाद ऊपर से नीचे की ओर, फिर 21 वर्ष बाद घड़ी की सुइयों की विपरीत दिशा में और फिर 21 वर्ष और बीतने पर नीचे से ऊपर की ओर घूमता दिखाई देता है.

सूर्य से अत्यधिक दूर होने के कारण यहां सूर्य का प्रकाश और गर्मी बहुत कम मात्रा में पहुंच पाते हैं. सम्भवतः इसका तापमान –216 अंश सेल्सियस से भी कम रहता है. गुरु तथा शनि की तरह ही यूरेनस भी एक गैसीय ग्रह है और आकार की दृष्टि से इन दो ग्रहों के बाद तीसरा स्थान इसी का है. ग्रह की नीली-हरी रंगत इसके वातावरण में उपस्थित मीथेन गैस के कारण है जो प्रकाश के लाल अंशों का अवशोषण कर लेती है. अमोनिया भी सम्भवतः इसके वायुमण्डल में है, आण्विक हाइड्रोजन तथा हीलियम तो पर्याप्त मात्रा में हैं ही.

यूरेनस की आंतरिक संरचना कैसी है हमें अभी इसके बारे में कुछ भी ठीक-ठीक नहीं पता है. एक अनुमान यह है कि इसके गैसीय आवरण के नीचे लगभग 16 हजार किलोमीटर व्यास की ठोस क्रोड है जिस पर बर्फ की पर्त जमी हुई है.

सन् 1977 में यूरेनस द्वारा एक धुंधले से तारे का अवगूहन या 'अकल्टेशन' होना था. यह बात पहले से ज्ञात थी. अवगूहन बिल्कुल सूर्य ग्रहण जैसी अवस्था है. जैसे सूर्य ग्रहण के समय चन्द्रमा सूर्य को ढक लेता है उसी प्रकार चन्द्रमा कभी किसी ग्रह के सामने गुजर कर उसे छिपा लेता है अथवा इसी प्रकार किसी तारे के सामने आ जाता है. इसी तरह ग्रह भी अपनी अपनी कक्षाओं में गमन करते हुए पृथ्वी से देखने पर कभी ऐसी स्थिति में आ जाते हैं कि वे किसी तारे को छिपा लेते हैं. इस सभी घटनाओं को अवगूहन या 'अकल्टेशन' कहा जाता है. इन घटनाओं के अध्ययन से ग्रह के वायुमण्डल के बारे में जानकारी मिलती है, उसकी कक्षा की गणना कुछ और शुद्धता से करना सम्भव हो जाता है तथा साथ ही साथ ग्रह के व्यास के बारे में भी सूचना मिलती है.

यूरेनस द्वारा सन् 1977 वाले अवगूहन की घटना का प्रेक्षण विश्व की कई वेधशालाओं से एक साथ लिया जा रहा था. यह देखा गया कि अवगूहन होने से बहुत पूर्व पांच बार उस तारे के प्रकाश में क्षणिक कमी आई मानों वह पांच बार बुझ कर जला हो और अवगूहन होने के बाद जब तारा यूरेनस के पीछे से पुनः प्रकट हुआ तो फिर पांच बार इसी घटना की पुनरावृत्ति हुई. इससे यह पता चला कि यूरेनस के इर्द-गिर्द शनि जैसे ही वलय हैं, जिन्हे पृथ्वी से दूरबीन से सीधे तो नहीं देखा जा सकता परन्तु अवगूहन की घटना द्वारा उनकी उपस्थिति परोक्ष रूप से ज्ञात होती है. बाद में यह देखा गया कि ऐसे वलयों की संख्या ग्यारह है. शनि के वलयों की तुलना में इनकी चौड़ाई बहुत कम है. ये वलय ठोस चकतियां नहीं हैं, बल्कि प्रत्येक ढेर सारे छोटे छोटे काले बर्फीले कणों से मिलकर बना है और प्रत्येक कण अपनी स्वतंत्र कक्षा में ग्रह की परिक्रमा करता है. वलयों के बीच में रिक्त स्थान है. वलयों के समीप घूमते हुए उपग्रह इन वलयों के वृत्ताकारों को यथावत बनाए रखने में सहायक होते हैं. ऐसे चन्द्रमाओं को 'गडरिए' या 'शैफर्ड' भी कहते हैं क्योंकि ये अपने गुरुत्वाकर्षण के कारण वलयों के छोटे कणों को पथच्युत होने से रोकते हैं.

पुनः वियुति या 'अपोजीशन' के समय यूरेनस का कान्तिमान 51/2 के लगभग होता है और निर्मल अंधियारे आकाश में हमारी आंखे 6 कान्तिमान तक के तारे देख सकती हैं. अतः ऐसे अवसर पर अनुभवी आंखे इसे बिना दूरबीन के भी तलाश सकती हैं. सन् 1991 में जुलाई मास की 4 तारीख को यूरेनस वियुति की अवस्था में था. आजकल यह ग्रह धनु राशि में स्थित है. □

विज्ञापन
का
उत्तम माध्यम
'आविष्कार'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब देश में बनेगी एड्स की औषधि

भारतीय रसायन प्रौद्योगिकी संस्थान, हैदराबाद के वैज्ञानिकों ने एड्स रोग के इलाज में प्रयुक्त औषधि ए जेड टी के संश्लेषण की एक नई विधि विकसित की है जिसके बाद अभी आयात की जाने वाली यह अत्यधिक महंगी औषधि अपेक्षाकृत काफी कम दाम में देश में उपलब्ध होने लगेगी.

एड्स के वायरस यानी ह्यूमन इम्यूनोडेफिशिएंसी वायरस के किसी व्यक्ति के शरीर में घर बनाने का मतलब है, देर-सबेर उसकी मृत्यु निश्चित है. क्योंकि विस्तृत अनुसंधानों के बावजूद अभी तक कोई ऐसी प्रभावकारी औषधि विकसित नहीं हो पाई है जो एड्स के रोगी को इस भयावह रोग से मुक्ति दिला सके.

अभी तक ए जेड टी ही एकमात्र ऐसी औषधि है जो एड्स के इलाज में प्रयुक्त हो रही है. लेकिन इसके इस्तेमाल से सिर्फ रोगी की तकलीफ ही कम हो पाती है और उसकी जिंदगी में कुछ और साल जुड़ जाते हैं. अमेरिका, कनाडा आदि संपन्न देशों में यह औषधि काफी प्रचलित है. लेकिन है यह बहुत महंगी. इससे एड्स के एक रोगी के साल भर के इलाज में 10,000 अमेरिकी डालर यानी लगभग 2,56,500 रुपए खर्चा आता है. यह खर्चा निश्चय ही गरीब देशों के साधारण हैसियत के एड्स रोगियों की पहुंच के बाहर है. ऐसे में देश में ही इस औषधि का उत्पादन और अपेक्षाकृत कम दाम में उपलब्ध होना वाकई महत्वपूर्ण उपलब्धि है.

अमेरिका और कनाडा के बाद भारत ए जेड टी उत्पादित करने वाला विश्व का तीसरा देश हो जाएगा. देश में इसका उत्पादन 'सिपला कंपनी' करेगी और इसे दूसरे देशों को निर्यात भी किया जाएगा. देश मे यह लागत मूल्य पर ही उपलब्ध की जाएगी.

ए जेड टी वैसे कैंसर के इलाज के लिए जानी जाती है. इसे 1964 में अमेरिका के मिशिगन कैंसर इंस्टिट्यूट द्वारा खोजा गया था. 1985 में अमेरिका के नेशनल कैंसर इंस्टिट्यूट के वैज्ञानिकों ने पाया कि ए जेड टी एड्स के इलाज में उपयोगी हो सकती है.

भारत में एड्स संक्रमण के मामले बढ़ते जा रहे हैं. भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् द्वारा किए गए सर्वेक्षण में अधिक खतरे वाले वर्ग के अंतर्गत वेश्याओं, स्वछंद यौनाचार वाले व्यक्तियों, समलैंगिक व्यक्तियों, हीमोफीलिया के रोगियों, इंजेक्शन से नशीली दवा लेने के आदि व्यक्तियों तथा खून बेचने और बार-बार खून प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की जांच की गई. फरवरी 1991 तक कुल 8,20,207 व्यक्तियों की जांच की गई जिनमें 4,778 व्यक्ति एड्स वायरस से संक्रमित पाए गए. इनमें से 60 व्यक्तियों, जिनमें 13 विदेशी थे, में एड्स रोग विकसित हो चुका था. निश्चय ही कुल संक्रमित व्यक्तियों की संख्या इससे कहीं ज्यादा होगी क्योंकि अभी तो सर्वेक्षण के अंतर्गत बहुत कम लोगों की ही जांच हो पाई है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान से यह संख्या 300,000 से 400,000 के बीच होगी. ऐसे में देश में ही ए जेड टी का उत्पादन निश्चय ही समयोचित है.

रक्त में औषधि की सांद्रता मापने की नई युक्ति

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद के महानिदेशक डा० ए०एस० पेंटल और उनकी सहयोगी डा० अशीमा आनन्द ने एक ऐसी नई युक्ति विकसित की है जिससे रक्त का सैंपल लिए बिना ही रक्त में अंतक्षोपित (इंजेक्टेड) औषधि की सांद्रता का पता लगाया जा सकता है.

डा० पेंटल के अनुसार इस नई युक्ति के चिकित्सा क्षेत्र में उपयोग की बहुत संभावनाएं हैं क्योंकि इसके इस्तेमाल से श्रमसाध्य प्रक्रियाओं और मंहगे विश्लेषणात्मक उपकरणों से मुक्ति मिल जाएगी.

रक्त में अंतक्षेपण के बाद औषधि की सांद्रता को ऊष्म प्रतिरोधक (थर्मिस्टर) जैसी ताप मापक युक्ति से रक्त के ताप को माप करके पता किया जा सकता है. ऊष्म प्रतिरोधक एक छोटी सी युक्ति है जिसे कैथेटर के जरिए रक्त वाहिका में प्रविष्ट कराया जाता है. यह युक्ति ताप को लगातार रिकार्ड करती जाती है और तापमान का प्रोफाइल उपलब्ध कराती है.

डा० पेंटल ने बताया कि बिल्लियों में किए गए प्रयोगों में उन्होंने पाया कि रक्त के तापमान का प्रोफाइल रक्त में औषधि के सांद्रण के समान होता है. उन्होंने बताया कि समान भौतिक गुणधर्मों वाली विभिन्न अंतक्षेपित औषधियों का तापमान-प्रोफाइल भी समान होता है. इससे विभिन्न औषधियों के सांद्रण के मापन के लिए अलग उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती.

प्रोफेसर तलवार को फ्रांस सरकार का सर्वोच्च सम्मान

फ्रांस सरकार ने भारतीय वैज्ञानिक प्रोफेसर जी०पी० तलवार को अपने सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'आफिशियर द ला लीजन द ओनियर' से सम्मानित किया है. यह सम्मान यदा कदा ही किसी विदेशी नागरिक को दिया जाता है. प्रोफेसर तलवार यह सम्मान प्राप्त करने वाले पहले भारतीय वैज्ञानिक हैं. वे इस समय राष्ट्रीय रोघ क्षमता विज्ञान संस्थान के निदेशक हैं.

प्रोफेसर तलवार को भारत में रोघ क्षमता विज्ञान की मजबूत नींव रखने का श्रेय दिया जा सकता है. उनके अनुसंधान संबंधी योगदानों में तीन स्वदेशी टीकों का विकास प्रमुख माना जाता है. कुष्ठ रोग रोधी टीके पर आजकल दिल्ली के दो बड़े अस्पतालों और कानपुर देहात में, जहां एक समुदाय में कुष्ठ रोग के मामलों की दर काफी ऊंची है, चिकित्सीय परीक्षण चल रहे हैं. यह टीका बहु-औषधि उपचार के अलावा इस्तेमाल किया जाता है. यह टीका रोगी के स्वास्थ्य में सुधार की गति को तेज कर देता है और यह रोगी की प्रतिरक्षात्मक अनुक्रिया को बेहतर बनाने में भी सहायक है. इस टीके की सबसे बड़ी विशेषता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन आर डी सी द्वारा सघन फिल्म संकर सूक्ष्म परिपथ प्रौद्योगिकी का लाइसेंस जारी

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) ने मैसर्स एल्फा इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, तमिलनाडु के साथ सघन फिल्म संकर सूक्ष्म परिपथों (थिक फिल्म हाइब्रिड माइक्रोसर्किट्स) के उत्पादन की प्रौद्योगिकी के लाइसेंस के लिए एक समझौते के ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए हैं. एल्फा इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, तमिलनाडु इलेक्ट्रोनिक्स कारपोरेशन और एक अप्रवासी भारतीय का संयुक्त उद्यम है.

सघन फिल्म संकर सूक्ष्म परिपथों की प्रौद्योगिकी का विश्व भर में इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगों में व्यापक तौर पर उपयोग हो रहा है और भारत में इसकी मांग तेजी से बढ़ रही है. इन परिपथों की मांग का क्षेत्र काफी विस्तृत है. उपभोक्ता से लेकर औद्योगिक, रक्षा, अंतरिक्ष और दूर संचार इलेक्ट्रोनिक्स में इनकी अच्छी मांग है.

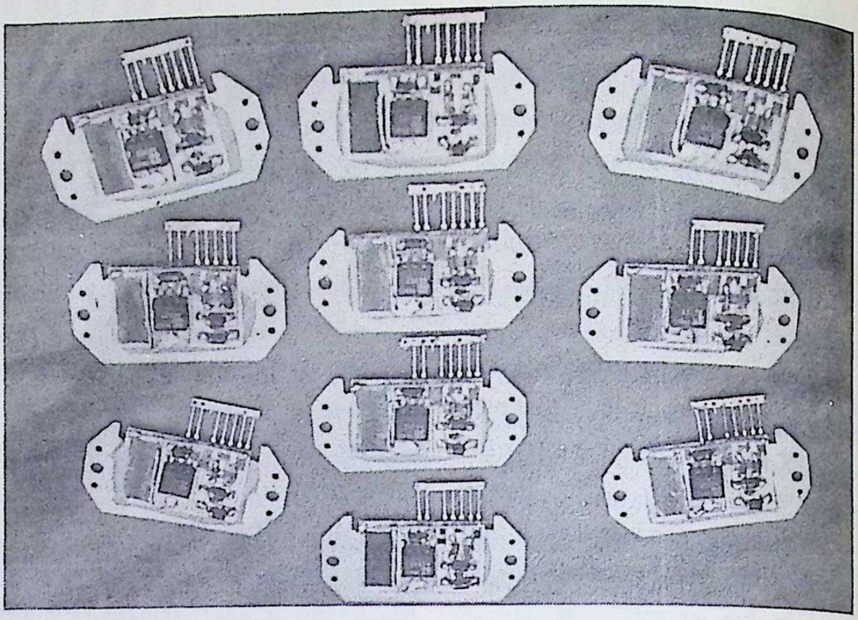

सघन फिल्म संकर सूक्ष्म परिपथ

सघन फिल्म संकर सूक्ष्म परिपथों को उच्च शुद्धता के सिरेमिक पदार्थों पर आवरण छपाई (स्क्रीन प्रिंटिंग) द्वारा पूरे इलेक्ट्रोनिक परिपथों को छाप करके तैयार किया जाता है. सूक्ष्म परिपथों का परिष्कृत लेसर सूक्ष्म समंजक (ट्रिमर्स) की मदद से आवश्यक विशिष्टताओं के अनुसार सूक्ष्म समस्वरित (फाइन ट्यून्ड) किया जाता है.

सघन फिल्म संकर सूक्ष्म परिपथों की तकनीकी जानकारी वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद की पिलानी स्थित संघटक प्रयोगशाला केंद्रीय इलेक्ट्रोनिकी इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान ने विकसित की है. इनके उत्पादन की तकनीकी जानकारी मिनी सर्किट्स, बंगलौर और गुजरात कम्यूनिकेशंस एंड इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, बड़ौदा को दी गई है और दोनों पार्टियों द्वारा इन सूक्ष्म परिपथों का उत्पादन किया जा रहा है.

समझौते के ज्ञापन पर एन आर डी सी के प्रबंध निदेशक श्री एन०के० शर्मा और एल्फा इलेक्ट्रोनिक्स के प्रबंध निदेशक श्री प्रेम कुमार ने हस्ताक्षर किए. विदेशी सहयोग की अपेक्षा यह प्रौद्योगिकी काफी सस्ती पड़ेगी.

यह है कि इसके इस्तेमाल से उन रोगियों का इलाज भी संभव हो जाता है जो औषधियों के प्रतिरोधी हो गए हैं यानी जिन पर औषधियों का असर नहीं होता है.

प्रोफेसर तलवार द्वारा विकसित दूसरा टीका स्तनधारी वर्ग के नर जंतुओं को उनकी मैथुन क्षमता को प्रभावित किए बिना बांध्य करने में सक्षम है. 'टलसुर' नामक यह टीका बेकार पशुओं की संख्या में वृद्धि को रोकने में सहायक हो सकता है. इसका एक अन्य उपयोग भी है. टीके लगने से मादा को गर्भाधान करने की क्षमता खो चुके सांड की सहायता से मादा के कामोन्माद होने का पता लगाया जा सकता है. कृत्रिम गर्भाधान के लिए मादा के कामोन्माद होने के समय का ठीक ठीक पता होना महत्वपूर्ण है.

प्रोफेसर तलवार ने स्त्रियों के लिए एक मानव संतति निरोधक टीका भी विकसित किया है. यह टीका गर्भावस्था के लिए निर्णायक गर्भावस्था हार्मोन यानी कोरियोनिक गोनेडोट्रोपिन हार्मोन को निष्प्रभावित कर देता है. अनेक देशों में किए गए परीक्षणों में इस टीके का उपयोग सुरक्षित पाया गया है. विश्व में यह ऐसा पहला टीका है जो स्त्रियों में नैदानिक परीक्षणों के दूसरे चरण में प्रविष्ट कर चुका है. भारत में ये परीक्षण पिछले वर्ष तीन केंद्रों में शुरु किए गए थे.

प्रोफेसर तलवार और उनके सहयोगियों ने सरल एवं अत्यधिक परिशुद्ध नैदानिक किट भी विकसित किए हैं. इनमें से गर्भावस्था, टायफाइड तथा अमीबियासिस का पता लगाने और रक्त वर्ग की जांच करने वाले किटों के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए प्रसिद्ध भारतीय कंपनियों को लाइसेंस दिया जा चुका है.

'टुलसर' के व्यापारिक उत्पादन का लाइसेंस मैसर्स कर्नाटका एंटीबायोटिक्स एंड फार्मेस्यूटिकल लिमिटेड, जो सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम है, को दिया गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौलीएस्टर आधारित एक्स-किरण फिल्मों के उत्पादन के लिए स्वदेशी प्रौद्योगिकी

बंबई की एक कंपनी ने पौलीएस्टर आधारित एक्स-किरण फिल्मों के उत्पादन की एक स्वदेशी प्रौद्योगिकी विकसित की है. एक्स-किरण फिल्में चिकित्सा क्षेत्र के अलावा उद्योगों में भी इस्तेमाल होती हैं. औद्योगिक एक्स-किरण फिल्मों का इस्तेमाल पाइप लाइन के जोड़ों और संरचनात्मक वेल्डनों के उसी स्थान पर निरीक्षण में किया जाता है और इसमें रेडियोधर्मी समस्थानिक एक्स-किरण स्रोत के रूप में इस्तेमाल होते हैं.

विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने इस नई प्रौद्योगिकी को स्वीकृति प्रदान कर दी है और अब महाराष्ट्र में औरंगाबाद के समीप वैलुज में 80 करोड़ रुपए की अनुमानित लागत का एक संयंत्र स्थापित किया जा रहा है. कंपनी को 20 करोड़ रुपए की मशीनरी व उपकरण भी आयात करने पड़ेंगे. फिल्मों के व्यापारिक उत्पादन के दो साल में शुरू होने की आशा है.

कंपनी के पायलट-संयंत्र द्वारा तैयार की गई पौलीएस्टर-आधारित फिल्मों को एक्स-किरण चिकित्सकों तथा कुछ प्रमुख अस्पतालों द्वारा व्यापक रूप से जांचा-परखा जा चुका है.

इस परियोजना को स्वीकृति प्रदान करके सरकार ने पहली बार निजी क्षेत्र को एक्स-किरण फिल्मों के उत्पादन की अनुमति दी है. अभी देश में सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम—फोटो फिल्मस लिमिटेड—ही एक्स-किरण फिल्मों, जो एसिटेट आधारित है, का उत्पादन कर रही है, विश्व में कोडक, डू पॉन्ट, आगफा और फूजी नामक गिनी-चुनी कंपनियों के पास ही पौलीएस्टर आधारित एक्स-किरण फिल्में बनाने की प्रौद्योगिकी उपलब्ध है.

पौलीएस्टर आधारित फिल्मों को परंपरागत एसिटेट आधारित फिल्मों के मुकाबले 10 गुना तेजी से 'प्रोसेस' किया जा सकता है. अपेक्षाकृत स्पष्ट व अच्छे परिणाम देने के कारण ये एसिटेट-आधारित फिल्मों का स्थान लेती जा रही है.

धान के बीजों की सीधे बोआई के लिए ट्रैक्टर-चालित युक्ति

तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के कृषि औजार एवं मशीनरी अनुसंधान केंद्र ने एक ऐसी ट्रैक्टर-चालित युक्ति विकसित की है जिससे धान के बीजों की सीधे-सीधे बोआई की जा सकती है.

इस युक्ति से खेत मे समान रूप और पंक्तिबद्ध तरीके से बीज बोए जा सकते हैं जो कि हाथ से छितर कर की गई बोआई से संभव नहीं है. युक्ति से बीज मिट्टी के अंदर उचित गहराई में बो दिए जाते हैं जबकि छितरने से बीज मिट्टी की सतह पर ही गिरते हैं.

यह युक्ति धान उगाने वाले उन क्षेत्रों के किसानों की समस्याओं को कम करने में उपयोगी हो सकती है जहां नहरों से सिंचाई की जाती है और धान की रोपाई के बजाए सीधे-सीधे बीज बोना ज्यादा पसंद किया जाने लगा है. इसका कारण यह है कि मानसून के गड़बड़ाने और सिंचाई के पानी में कमी से रोपाई प्रभावित होती है.

इस युक्ति में बीजों के लिए एक पात्र होता है जो बीजों को मापने की एक प्रणाली से जुड़ा होता है. इस प्रणाली के दोनों ओर 18 जुड़वां प्याले लगे होते हैं. युक्ति में बीजों की बुआई की दर को बदलने की भी व्यवस्था है.

पाठकों के लिए सूचना

पत्रिका की प्रतियां अब ए०एच० व्हीलर के रेलवे बुक स्टालों पर भी उपलब्ध हैं. कई बड़े शहरों में अन्य पत्रिका-विक्रेताओं से भी पत्रिका प्राप्त की जा सकती है. अन्य शहरों में जहां अभी बिक्री एजेंट नहीं हैं नए एजेंट बनाए जा रहे हैं ताकि पाठकों को पत्रिका प्राप्त करने में आसानी हो. सम्पर्क करें.

—उत्पादन अधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नए बोसान कणों की खोज

❑ राजेन्द्र कुमार राय

❑ सन् 1954 में बारह यूरोपीय देशों ने कण भौतिकी के अध्ययन के लिए (जेनेवा में) 'सर्न' नामक एक प्रयोगशाला की स्थापना की. उद्देश्य था—परमाणु के अंदर विद्यमान, ब्रह्माण्ड के निर्माण में आधारभूत उपादान माने जाने वाले पदार्थ के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों और ऊर्जा को नियंत्रित करने वाले नैसर्गिक नियमों की खोज और अध्ययन. आज इस प्रयोगशाला में 3000 से अधिक उच्च प्रतिभाशाली वैज्ञानिक काम करते हैं.

इस प्रयोगशाला में एक इतालवी भौतिक वैज्ञानिक कार्लो रूबिया एक महत्वपूर्ण शोध परियोजना पर काम कर रहे हैं जिसका उद्देश्य डब्लू और जेड कणों की खोज है. डब्लू और जेड उस अत्यंत सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवपरमाण्विक कण वर्ग में आते हैं जिन्हें वेक्संर बोसान के नाम से जाना जाता है.

वेक्टर बोसान की सरल व्याख्या सर्न प्रयोगशाला एक वैज्ञानिक राइन हार्ड बड कुछ इस प्रकार करते हैं—"वैज्ञानिक अभी इस बात को नहीं समझ पाए हैं कि दो पिंड (जैसे पृथ्वी और सूर्य अथवा परमाणु के अंदर विद्यमान प्रोटान और इलेक्ट्रान) एक दूसरे के बीच किसी वास्तविक सम्पर्क के बिना भी एक दूसरे को किस प्रकार आकर्षित या विकर्षित कर सकते हैं." डब्लू और जेड बोसान कण उस क्रांतिकारी अवधारणा के अंग हैं, जिसे कुछ भौतिक वैज्ञानिकों ने सातवें व आठवें दशक में प्रस्तुत किया था. इस परिकल्पना के अनुसार विद्युत चुंबकीय शक्ति और तथाकथित न्यूक्लीयर क्षीण बल जो रेडियोधर्मी क्षय का कारण है—दो अलग अलग बल नहीं, एक ही 'इलेक्ट्रोन बल' की विभिन्न स्थितियां हैं. अगर यह परिकल्पना सत्य है तो ब्रह्मांड को नियंत्रित करने वाली चार शक्तियां नहीं, बल्कि तीन हैं. दो और शक्तियां हैं—गुरुत्व और सुदृढ़ नाभिकीय बल, (स्ट्रांग न्यूक्लियर फोर्स) जो परमाणु के नाभिक को स्थिर रखती हैं.

नए सिद्धांत ने प्रतिपादित किया है कि नाभिकीय क्षीण बल डब्लू और जेड बोसान कणों से प्रेषित होता है. ये कण हर समय हमारे चारों ओर प्रकट होते रहते हैं. लेकिन ये इतने सूक्ष्म तथा अल्पजीवी होते हैं कि सामान्य स्थितियों में उन्हें लक्षित नहीं किया जा सकता है. 1976 में कार्लो रूबिया ने इस पर कार्य शुरू किया था. सर्न प्रयोगशाला ने उन्हीं दिनों एक सुपर प्रोटान सिंक्रोटोन (एस पी एस) का निर्माण पूरा किया था. यह सात किलोमीटर परिधि की एक विशाल, गोलाकार, भूमिगत सुरंग थी जिसमें प्रोटान पुंज को प्रकाश की गति से बस, कुछ ही कम—लगभग 300,000 किलोमीटर प्रति सेकंड की गति से संचरित किया जा सकता है. रूबिया ने सर्न को प्रस्ताव किया कि एस पी एस गोलाकार सुरंग में गतिमान प्रोटानों का टकराव दूसरी दिशा से उतनी ही गति से आते प्रति प्रोटान (एंटीप्रोटान) पुंज से करवाया जाए. एंटी प्रोटान पर धनात्मक विद्युत आवेश के स्थान पर ऋणात्मक विद्युत आवेश होता है. इस का अस्तित्व क्षणिक होता है, क्योंकि जब यह सामान्य पदार्थ के कण से टकराता है तो वे दोनों ही शुद्ध ऊर्जा में बदल कर लुप्त हो जाते हैं, जिसे फिर से नए कणों में परिवर्तित किया जा सकता है.

दो अवपरमाण्विक कणों की इस नई खोज ने ब्रह्माण्ड को नियंत्रित करने वाली शक्तियों के संबंध में प्रचलित वैज्ञानिक अवधारणाओं को एक नई दिशा दी.

रूबिया का तर्क था कि अगर प्रोटान और एंटी प्रोटान कणों को काफी तीव्र गति से टकराया जाए तो उनसे 540 अरब इलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा उत्पन्न होगी, जो अब तक किए गए किसी भी प्रयोग से लगभग दस गुना अधिक होगी. प्रोटान और एंटीप्रोटान की 10 करोड़ मुठभेड़ों में से औसतन एक मुठभेड़ में दुर्लभ बोसान कण को देख पाना संभव होना चाहिए. चार मंजिले भवन जितना बड़ा एक परिष्कृत डिटेक्टर, प्रोटान तथा एंटीप्रोटान के टकराव का विस्तृत विवरण दर्ज करने के लिए तैयार किया गया.

यह कार्यक्रम काफी महत्वपूर्ण था. एक तो यह सुनिश्चित नहीं था कि डब्लू और जेड बोसान कणों का अस्तित्व है ही. फिर दूसरी समस्या यह थी कि प्रयोग के लिए अरबों एंटीप्रोटान कहां से प्राप्त होंगे ? हालांकि इनका निर्माण प्रयोगशाला में किया जा सकता है लेकिन उन्हें सुरक्षित रख पाना संभव नहीं है. एंटीप्रोटान निर्वात कक्ष की दीवारों का स्पर्श करते ही वे चारों तरफ फैलकर लुप्त हो जाते हैं.

1978 में रूबिया और 130 वैज्ञानिकों के एक दल ने बोसान कणों की खोज का काम शुरू किया. इस विषय पर इसके पूर्व किसी ने अनुसंधान नहीं किया था, अतः वैज्ञानिकों की इस टीम को कई नए विशिष्ट उपकरण तैयार करने थे. कई कठिनाईयों के बाद सितम्बर 1982 के अंत तक सारी तैयारी पूरी कर ली गई. एक माइक्रोप्रोसेसर ने इलेक्ट्रानिक काउंट डाउन शुरू किया. एंटीप्रोटोनों को एक नई वैज्ञानिक सिमोन वान डी० मीर की एक नई प्रणाली 'स्टोचेस्टिक कूलिंग' के आधार पर एकत्र किया गया. कणों के पहले समूह, सुरंग में छोड़े गए तो वे भीमकाय चुंबकों द्वारा निर्देशित और सुविस्तृत विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों द्वारा तीव्र गति से परिचालित होने लगे. प्रति सेकंड प्रोटान और एंटी प्रोटान की औसत 40,000 मुठभेड़ें हो रही हैं. एक विशेष कंप्यूटर से इन आंकड़ों को एकत्र किया गया.

प्रति चार सेकंडों के अंतराल पर ही शायद एक टकराव हो सकता था, जिससे डब्लू और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेड बोसान कणों के देखे जाने की संभावना थी. इन्हें एक मेगाटेक (एक ऐसा पटल, जिस पर टकराव का द्विआयामी स्वरूप अंकित होता है) पर पुनरारेखित करने की योजना भी बनाई गई. वैज्ञानिक चौबीसों घंटे मेगाटेक पर उभरने वाले बहुरंगी बिन्दुओं और रेखाओं की बहुरूपदर्शी छवियों का अध्ययन कर रहे थे. लेकिन समस्या यह थी कि जब डब्लू और जेड बोसान कण प्रकट होंगे तो उन्हें पहचाना कैसे जाएगा. वैज्ञानिक कंप्यूटर पर उभरती छवियां देखते रहे और प्रतीक्षा करते रहे. लेकिन अदृश्य बोसान कणों का कोई चिन्ह नहीं नजर आया. लगभग चार सप्ताह बाद 1,50,000 संभावित बोसान कणों की छवियां कंप्यूटर पर उभर रही थी, जिनमें छः विशेष तरह की दिख रहीं थी. ये डब्लू बोसान कण थे. 25 जनवरी 1983 को रूबिया ने एक संवाददाता सम्मेलन में यह घोषणा की कि प्रकृति में डब्लू बोसान कण मौजूद हैं. इससे बीस साल पुराना इलेक्ट्रोवीक सिद्धांत प्रामाणिक सिद्ध हो गया.

फिर हुआ जेड बोसान कणों के खोजने का कार्य. जेड कण डब्लू कणों की अपेक्षा काफी दुर्लभ थे क्योंकि इन कणों पर कोई विद्युत आवेश नहीं होता. सर्न में हुई मुठभेड़ों के टेप को एक अति परिष्कृत स्कैनिंग उपकरण पर चलाया गया. एक माह के अध्ययन के बाद वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कई मुठभेड़ों में वास्तविक जेड भी मौजूद थे. इस खोज के लिए कार्लो रूबिया और सिमोन वान डी० मीर को भौतिक विज्ञान का नोवेल पुरस्कार मिला.

सर्न प्रयोगशाला में वैज्ञानिक एस पी एस के अपेक्षाकृत बड़े इलेक्ट्रान पोजिट्रान कोलाइडर (एल०ई०पी०) पर काम कर रहे हैं. डब्लू और जेड बोसान कण का हमारे दैनिक जीवन में क्या प्रभाव पड़ेगा? इसके पूर्व माइकल फैराडे ने ही दो नैसर्गिक शक्तियों को एक साथ संयोजित करने का मौलिक काम किया था और उसके फलस्वरूप कई बड़े आविष्कार सामने आ गए. संभव है डब्लू और जेड इक्कीसवीं सदी में ऐसे उत्पादों को संभव बना दें, जो आम जनता के लिए उपयोगी हों ☐

कचरे के ढेर में बदल रहा हिमालय

☐ जन शर्मा

☐ यह जानते हुए कि उनके देश की ख्याति विश्व के सबसे ऊंचे कूड़ेदान की हो गई है, नेपाली पर्वतारोहण संघ अब चाहता है कि उसे हिमालय पर्यावरण कोष के लिए अंतरराष्ट्रीय समर्थन प्राप्त हो. आगामी जनवरी में नेपाली पर्वतारोहण संघ अपना स्वच्छ हिमालय अभियान शुरू करेगा जिसके तहत उसके शिखरों से वहां टनों वजनी कूड़ा-करकट हटाया जाएगा जो पर्वतारोही तथा सैलानी वहां छोड़ जाते हैं. नेपाल में जो 270,000 पर्यटक हर वर्ष आते हैं उनमें से एक तिहाई पर्वतारोहण तथा पहाड़ों पर घूमने आते हैं.

नेपाली राज्य तंत्र ने, जो इस समय आर्थिक विपत्तियों का सामना कर रहा है, पर्यटन द्वारा वर्ष 1987-88 में 6.4 करोड़ डॉलर की विदेशी मुद्रा अर्जित की जबकि उसे वर्ष 1961-62 में इसके द्वारा केवल 78,000 डॉलर की आय हुई थी. पर्यटन अब नेपाल का विदेशी मुद्रा कमाने का प्रमुख स्रोत बन गया है. पूर्व में ब्रिटिश तथा भारतीय सेनाओं में भरती नेपाली गोरखों द्वारा घर भेजी गई राशि से उसे सबसे ज्यादा विदेशी मुद्रा प्राप्त होती थी.

पर्यटन में हुई इस वृद्धि की कीमत नेपाल को प्रदूषण, वन-विनाश तथा हिमालय के नाजुक पर्यावरण को हो रही क्षति के रूप में चुकानी पड़ रही है. नेपाली पर्वतारोहण संघ के अध्यक्ष टेकचंद्र पोखरेल के मुताबिक एक पर्वतारोही अभियान पहाड़ों पर 500 किलोग्राम से भी ज्यादा कूड़ा फेंक कर जाता है. ''माउंट एवरेस्ट तथा उसके नीचे आधार शिविर के आसपास अंदाजन 50 टन से ज्यादा कूड़ा बिखरा हुआ है.'' इस कूड़े में कारें, बोतलें, बक्से, टॉइलेट पेपर, डिब्बे-डिब्बियां जैसी पेकैजिंग सामग्री, तम्बू, आक्सीजन सिलिंडर यहां तक कि लाशें तक शामिल हैं.

सर एडमंड हिलेरी ने, जिन्होंने सबसे पहले 1952 में शेरपा तेनसिंह के साथ एवरेस्ट पर विजय प्राप्त की थी, कहा है : ''दुनिया में बहुत ही कम ऐसी जगहें होंगी जिनका पर्यटन के कारण इतना गंभीर रूप से दुरुपयोग हुआ होगा. उनके हिसाब से एवरेस्ट 'कचरे के ढेर' में बदल गया है और वह फिर से जीवंत हो सके इसके लिए जरूरी है कि उसे पांच वर्ष के लिए पर्वतारोहण के लिए प्रतिबंधित कर दिया जाए.'' लेकिन हो इससे ठीक उल्टा रहा है. चालू मौसम में सात पर्वतारोही दल इस शिखर पर चढ़ने की कोशिश कर रहे हैं. तीन बार एवरेस्ट पर चढ़ चुके पारतेंवा शेरपा ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैलानियों की लगातार वृद्धि की कीमत नेपाल को अब प्रदूषण, वन-विनाश तथा हिमालय के नाजुक पर्यावरण को हो रही क्षति के रूप में चुकानी पड़ रही है. नेपाल में हर वर्ष करीब दो लाख सत्तर हजार सैलानी आते हैं, उनमें से एक-तिहाई पर्वतारोहण तथा पहाड़ों पर घूमने जाते हैं. जहां नेपाल सरकार को पर्यटन से करोड़ों डॉलर की विदेशी मुद्रा मिलती है वहीं इन पर्यटकों से हिमालय का पर्यावरण तेजी से बदलता जा रहा है और वह अब कचरे के ढेर में बदल रहा है. नेपाली पर्वतारोहण संघ इससे चिंतित होकर जल्द ही अपना 'स्वच्छ हिमालय' अभियान शुरू कर रहा है जिसके तहत शिखरों से वह टनों वजनी कूड़ा-करकट हटाया जाएगा जो पर्वतारोही तथा सैलानी वहां छोड़ जाते हैं.

बतलाया कि हिलेरी 1953 में जो आक्सीजन सिलिंडर एवरेस्ट पर छोड़ आए थे वह अब भी वहां जस-का-तस पड़ा हुआ है.

नेपाली पर्वतारोहण संघ का कहना है कि हिमालय पर घूमना-फिरना नियंत्रित करने के लिए परमिट जारी किए जाने चाहिए तथा बे-मौसम और कुछ कम लोकप्रिय शिखरों पर आरोहण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए. पर्यटक कंपनियों का दबाव कुंवारे शिखरों पर भी अपने पैर फैलाने के लिए बढ़ रहा है, हालांकि तिब्बत में चल रही अस्थिरता के कारण इससे चीन के नाराज हो जाने का खतरा है. नेपाल ने 1989 में पर्वतारोहण शुल्क में बीस प्रतिशत की वृद्धि कर दी और अब एवरेस्ट पर चढ़ने की अनुमति के लिए 3000 डॉलर लगभग (एक लाख रुपए) देने होते हैं. संघ का कहना है कि इसकी दस प्रतिशत राशि पर्वतों की सफाई पर खर्च की जानी चाहिए. पोखरेल का एक सुझाव यह भी है कि पर्वतारोहियों से चढ़ाई शुरू करने के पहले ही कुछ राशि जमा राशि के रूप में रखवा ली जानी चाहिए जो यदि वे अपना सारा कचरा खुद समेट लाते हैं तो उन्हें वापस लौटा दी जा सकती है.

एवरेस्ट राष्ट्रीय उद्यान द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के मुताबिक आधे से ज्यादा लॉज वाले कूड़े में से ऐसे आइटमों को अलग नहीं छांटते जिनका फिर से उपयोग किया जा सकता है. सारा कूड़ा, यहां तक कि मर्करी की बैटरियां तथा मल-मूत्र तक, नदियों और स्रोतों में बहा दिया जाता है जिससे वे पानी से फैलने वाली बीमारियों का कारण बनते हैं. हालांकि पर्यटक नेपाल में उपयोग की जाने वाली जलाऊ लकड़ी के बहुत थोड़े हिस्से का ही उपयोग करते हैं, अभियानों के दौरान वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के उपयोग की कोशिशें शुरू हो गई हैं. अन्नपूर्णा चोटी के पास घांटुंग की लॉजों में 'बैक बाइलरों' का उपयोग एक साथ पानी गर्म करने तथा खाना पकाने के लिए किया जा रहा है जिससे प्रति सप्ताह लगभग 2000 किलोग्राम जलाऊ लकड़ी की बचत हो रही है. सौर ऊर्जा तथा पवन चक्कियों के द्वारा बिजली पैदा करने के अलावा छोटी पन-बिजली परियोजनाएं भी अधिकाधिक रूप से लोकप्रिय हो रही हैं.

पर्वतारोहियों और सैलानियों के दलों के लिए अपने साथ केरोसीन ले जाना जरूरी कर दिया गया है ताकि वे जलाने के लिए लकड़ी का उपयोग न करें. मगर अकेले सैलानियों पर, जो 60 प्रतिशत होते हैं, यह नियम लागू नहीं होता. वैसे इस नियम का पालन भी स्थानीय अधिकारी ठीक से नहीं करवा पाते. **(सप्रेस द्वारा पेनोस, पर्यावरण कक्ष एवं गांधी शांति केंद्र के सहयोग से)** □

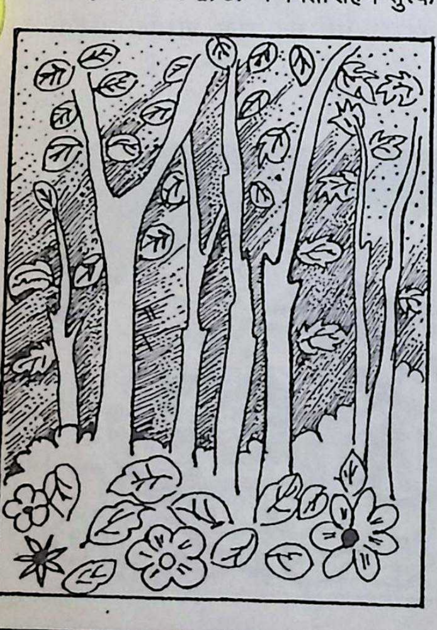

पारिस्थितिकी के सिद्धान्तों पर आधारित एक नए अर्थशास्त्र की आवश्यकता

□ मार्टिन खोर कोक पेंग

□ आर्थिक गतिविधियों तथा विकास के मौजूदा नमूने का विश्व-पारिस्थितिकी पर लगभग विनाशकारी असर पड़ा है. उसी का यह दुष्परिणाम हुआ है कि वह भविष्य की आर्थिक गतिविधियों के आधार को क्षति पहुंचाते हुए आर्थिक तथा उत्पादन प्रणालियों के भंग हो जाने का खतरा पैदा कर रहा है. अब यह सभी के लिए आवश्यक हो गया है कि वे पर्यावरण संकट की भयावहता को पूरी तरह से समझें तथा एक विषय के रूप में संशोधन करें ताकि वर्तमान प्रवाह को पलटा जा सके.

खुली बाजार व्यवस्था में विभिन्न फर्मों के बीच प्रतियोगिता सर्वत्र पाई जाती है. अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए फर्मों को अपने बाजार तथा उत्पादन का विस्तार हर हालत में करना पड़ता है. चूंकि आय का वितरण असमान है, विश्व-संसाधनों का एक बहुत बड़ा हिस्सा मुट्ठी भर संपन्न लोगों के लिए अनावश्यक तथा विलासिता की वस्तुओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौजूदा आर्थिक सिद्धान्तों तथा नीतियों ने चूंकि, प्राकृतिक संसाधनों की कमी तथा पर्यावरण संकट के मुद्दों की उपेक्षा की है, वे अब पुरानी पड़ गई हैं. अतः पारिस्थितिकी के सिद्धान्तों पर आधारित एक नए अर्थशास्त्र की तत्काल जरूरत है.

उत्पादन में झोंका जाता है, जबकि विश्व की बहुसंख्यक जनता की बुनियादी आवश्यकताएं ही नहीं पूरी हो पा रही हैं. असमान सामाजिक ढांचों पर आधारित उत्पादन वृद्धि, जिसका मूल कारण फर्मों की विस्तार करने की मजबूरी है, और जो निम्नतम आर्थिक लागतों तथा मोटे मुनाफे के सिद्धांतों द्वारा तय होती है, के चलते प्रत्येक उत्पादक फर्म ने विश्व के दुबारा उपयोग में लाए जा सकने योग्य तेल, कोयला, खनिज, वन तथा मछलियों जैसे संसाधनों के संग्रहों को भारी मात्रा में चट कर डाला है. उसी के कारण बहुमूल्य मिट्टी तथा वंशाणु विविधता का क्षय तथा वायु, जल तथा मिट्टी का प्रदूषण भी हुआ है.

बढ़ते हुए प्रदूषण तथा विषाक्तता ने जीवन की गुणवत्ता बल्कि खुद जीवन को ही खतरे में डाल दिया है. भूमि तथा जल के प्रदूषण तथा बीज-किस्मों तथा मिट्टी की उर्वरता की कमी से कृषि तथा खाद्यान्न-उत्पादन का अस्तित्व भी संकट में है. फिर प्राकृतिक संतुलन के गड़बड़ाने से जलवायु का संतुलन भी डगमगा गया है और अब धरती के तापमान में वृद्धि की संभावना कृषि-उत्पादन और सागर-जीवों को तो विपरीत रूप से प्रभावित करेगी ही, उससे बाढ़ जैसे प्रकोपों में भी बढ़ोत्तरी होगी.

तीसरी दुनिया के देशों में पारिस्थितिकी असंतुलन गंभीर स्वास्थ्य (पानी के प्रदूषित होने आदि) के अलावा बाढ़ तथा सूखे जैसे प्राकृतिक प्रकोपों तथा अकाल तथा कुपोषण जैसी सामाजिक समस्याओं का कारण भी बन रहा है. पारिस्थितिकी असंतुलन ही आर्थिक उलट-पलट तथा कमी का एक बड़ा कारण बना है क्योंकि मछलियों की उपलब्धता तथा कृषि उत्पादन घट रहा है तथा वनों की बरबादी के कारण वनवासियों तथा ग्रामवासियों को भारी तकलीफें झेलनी पड़ रही हैं.

यदि अर्थशास्त्र में हम मात्रा मीट्रिक आय की गिनती न करते हुए जीवन की गुणवत्ता के मुद्दे को भी शामिल करें तो पारिस्थितिकी कमी ने कई लोगों की जीवन की गुणवत्ता को निश्चय ही प्रभावित किया है. अतः इस बात की सख्त जरूरत है कि हम अर्थशास्त्र के विषय, अवधारणा तथा क्रियान्वय-संचालन में भी संशोधन करें तथा उसमें उत्पादन की प्रक्रिया में पारिस्थितिकी का महत्व तथा जिस तरह वे प्रक्रियाएं पारिस्थितिकी को क्षति पहुंचाती हैं, इसका भी हिसाब लगाएं.

प्राकृतिक संसाधन आर्थिक प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं लेकिन आर्थिक सिद्धांतों तथा तर्कों में इस तथ्य की अधिकांशतः उपेक्षा ही होती है. कुछ तो इसलिए कि आमतौर से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग मूल्य विनिमय की दृष्टि से यानी आर्थिक लागत और मूल्य के हिसाब से कम कर के ही आंका जाता है. उत्पादन की पारिस्थितिकी—लागत, जिसमें प्रदूषण, बरबादी, संसाधनों का दूषित होना भी शामिल होता है, को मूल्य निर्धारण तथा 'आर्थिक लागत निर्धारण' के साथ ही नहीं कूता जाता. बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों की बढ़ती किल्लत तथा उसी वजह से उनका बढ़ता हुआ वास्तविक मूल्य उस मूल्य-निर्धारण प्रणाली में समुचित रूप से प्रतिबिंबित नहीं होता जहां मांग और पूर्ति तुलनात्मक रूप से कम दोहन-लागत तथा निर्माताओं के अ-सुसंगत प्रबंधन के मुताबिक तय की जाती है.

आधुनिक अर्थशास्त्र की एक अन्य कमजोरी यह है कि वह हमेशा सफलता को कुल राष्ट्रीय आय या आय के सालाना प्रवाह के आधार पर मापता है. यह वार्षिक प्रवाह प्राकृतिक संसाधनों की एक निश्चित मात्रा का उपयोग करते हुए विश्व के उन संसाधनों-भंडारों का क्षय करता है जो कि विश्व की प्राकृतिक पूंजी या वास्तविक प्राकृतिक संपदा है.

सकल राष्ट्रीय आय (आय का प्रवाह) जितना ज्यादा होगी उतना ही ज्यादा कमी दुबारा जीवित न किए जा सकने वाले प्राकृतिक संसाधनों की भी होगी. दूसरे शब्दों में जितनी तेज रफ्तार लघु-अवधि वृद्धि की होगी उतनी ही तेजी से हमारी उस प्राकृतिक पूंजी का क्षय भी होगा जो कि हमारे कायम रहने वाले दीर्घावधि आय-प्रवाह के लिए आवश्यक है. हम लोग वर्तमान प्रगति को अधिकतम बनाए रखने के लिए आगामी पीढ़ियों की आय और संपदा का बलिदान कर रहे हैं. आधुनिक अर्थशास्त्र में इस अंतर्विरोध को ठीक से नहीं समझा जा रहा है.

इसलिए यह बहुत जरूरी है कि अर्थशास्त्र की विषय वस्तु में पारिस्थितिकी की इन अंतर्दृष्टियों का समावेश कर पारिस्थितिकी के सिद्धांतों के आधार पर अर्थशास्त्र में क्रांतिकारी सुधार किया जाए. प्राकृतिक संसाधनों के वास्तविक मूल्य (या उपयोग-मूल्य) के साथ ही उत्पादन के कारण होने वाली पारिस्थितिकी तथा आर्थिक लागतों का भी पूरा हिसाब लगाया जाए.

खुद आर्थिक व्यवस्था तथा आर्थिक नीतियों में आमूल परिवर्तन करते हुए पुनर्जीवित न किए जा सकने वाले संसाधनों के उपयोग को न्यूनतम करते हुए हमें संसाधन-संरक्षण की गति को अधिकतम करना होगा. इनके अलावा संसाधनों के प्रदूषण को भी न्यूनतम करते हुए दुनिया के उन समृद्ध हिस्सों में सामान्यतः निवेश तथा उपभोग में कमी लानी होगी तो संसाधनों के कायम रहने वाले उपयोगों से अपनी संगत नहीं बिठला पा रहे हैं.

लेकिन पारिस्थितिकी के सिद्धांत कहीं आसमान से नहीं टपक पड़ेंगे. उन्हें सामाजिक न्याय के सिद्धांतों तथा गरीबों की बुनियादी तथा वास्तविक आवश्यकताओं के साथ जोड़ना होगा. सारी दुनिया में आय की विषमताओं में कमी लानी होगी ताकि दुनिया के ज्यादा समृद्ध हिस्सों (उत्तर तथा दक्षिण) में कायम न रहने योग्य उपभोग को सख्ती से नियंत्रित किया जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके. विश्व के गरीब मुल्कों में रहन-सहन के हालातों में सुधार की अब भी बहुत जरूरत है. यह काम समृद्ध इलाकों में उपभोग को कम करने से बचे हुए संसाधन इन देशों को उपलब्ध करवा कर ही किया जा सकता है. लेकिन यहां भी हमें यह देखना होगा कि हमारे तरीके पारिस्थितिकी सम्मत हों. **(सप्रेस/थर्ड वर्ल्ड नेटवर्क)** ☐

मिलन संदेश : डिम्ब का शुक्राणुओं को

☐ चन्द्रभान शर्मा

☐ नए जीव की उत्पत्ति नर और मादा के संयोग से होती है. यद्यपि यह सत्य है कि प्रारंभिक प्रजातियों के पौधों और जन्तुओं में नर और मादा अंग अलग-अलग नहीं होते उनमें संतति का विकास कोशों के विभाजन से होता है, रीढ़ की हड्डी वाले जीवों में, जिनमें मनुष्य भी एक है, मैथुन संतानोत्पत्ति का एकमात्र साधन है. इस प्रक्रिया में नर के शुक्राणु मादा की योनि में संचित कर दिये जाते हैं. एक सामान्य स्खलन में शुक्राणुओं की संख्या 3 अरब के आसपास होती है. इनमें से केवल 200 के लगभग प्रतिस्पर्धी डिम्बवाहिनी नलिकाओं में प्रवेश कर तेजी से ऊपर की ओर तैरते हैं.

पुरुष के प्रजनन कोश शुक्राणुओं की भांति डिम्ब स्त्री का प्रजनन कोश है जो डिम्बग्रंथियों में तैयार होता है. प्रति माह एक परिपक्व डिम्ब पुटक (फोलीकिल) से अलग हो डिम्ब-वाहिनी नलिका से नीचे गर्भाशय की ओर उतरता है. मार्ग में ही डिम्ब और शुक्राणुओं का मिलन होता है. चूंकि डिम्ब केवल एक शुक्राणु को धारण कर सकता है इसलिए इन प्रतियोगियों में फिर एक बार संघर्ष होता है. हर प्रकार से योग्य व सबल शुक्राणु ही डिम्ब के बाहरी आवरण को छेद कर अन्दर प्रवेश करता है. ऐसा होते ही डिम्ब के आवरण में परिवर्तन आ जाता है और कोई अन्य प्रतिस्पर्धी शुक्राणु उसमें प्रवेश नहीं कर सकता.

डिम्ब व शुक्राणु के एकीकरण को निषेचन कहते हैं. निषेचित डिम्ब डिम्बवाहिनी नलिका से नीचे उतर गर्भाशय की भित्तियों में आश्रय ले लेता है जहां उसके विकास के लिए रक्त के रूप में भोजन की समुचित व्यवस्था रहती है. लगभग 30 घंन्टे की विश्रान्ति के बाद निषेचित डिम्ब भ्रूण के रूप में विकसित होने लगता है तथा नौ महीने के गर्भस्थ-काल के पश्चात् संसार में प्रवेश करता है.

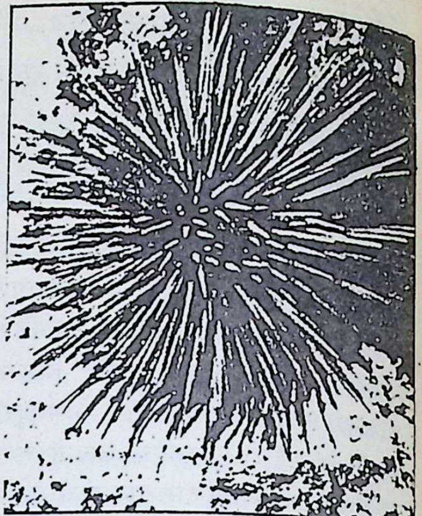

सी अर्चिन या समुद्री सेही

स्त्री संतानोत्पादन तंत्र

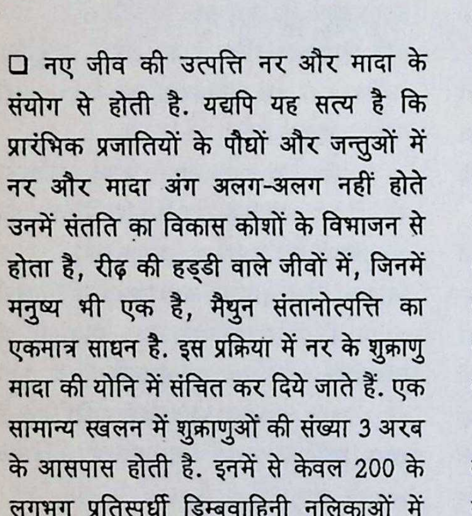

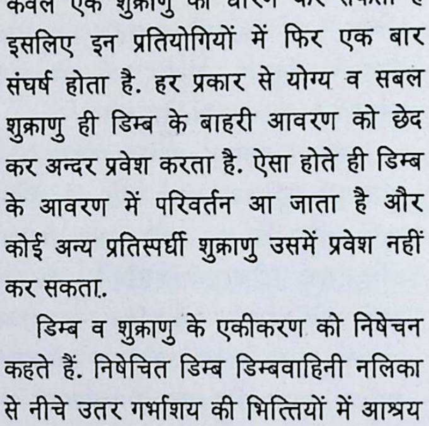

उत्पादन अंगों की स्थिति

सीधी सी दिखने वाली यह प्रजनन क्रिया वास्तव में इतनी सीधी-सादी नहीं है. अब भी कितने ही ऐसे प्रश्न शेष हैं जिनका उत्तर वैज्ञानिकों के पास नहीं है. हाल में ही वैज्ञानिक इनमें से एक को हल करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं. समस्या है : शुक्राणुओं को डिम्बवाहिनी नलिकाओं में तेजी से चढ़ने की प्रक्रिया को कौन प्रेरित करता है. केवल कुछ घंटे हुए शुक्राणु ही इस दौड़ में भाग क्यों लेते हैं तथा क्या डिम्ब उन्हें ऐसा करने के लिए कोई संदेश भेजता है.

पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय के प्रजनन-विज्ञान शास्त्री ग्रिगोरी कॉफ के अनुसार ''क्या स्तनपोषी जीवों में शुक्राणु डिम्ब द्वारा आकर्षित होते हैं, एक काफी पुराना प्रश्न है. समुद्री प्राणी 'सी अर्चिन' में ऐसा होना पाया गया है. अभी हमारे सामने यह सुझाव भी आया है कि ऐसा मनुष्यों में भी होता है.''

इस सुझाव का आधार 'प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइन्सेज' के अप्रैल 1991 अंक में प्रकाशित एक लेख है जिसमें उसके लेखक डेविड गारबर्स ने, जो टेक्सास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

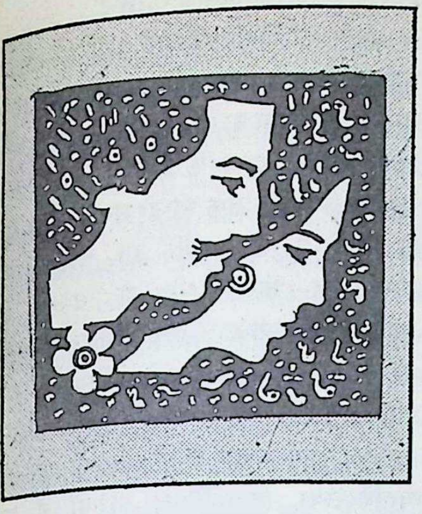

विश्वविद्यालय के डलास स्थित साउथवेस्टर्न मेडिकल सेन्टर से सम्बन्धित हैं, 'सी अर्चिन' में डिम्ब और शुक्राणुओं के पारस्परिक संचार पर प्रकाश डाला है. सन् 1981 में गारबर्स और उसके सहयोगियों ने 'सी अर्चिन' के डिम्बों से स्रवित एक ऐसे प्रोटीन का पता लगाया जो शुक्राणुओं की गतिशीलता में वृद्धि करता था. अब प्रश्न यह था कि क्या वास्तव में मानव डिम्ब भी इसी प्रकार का कोई पदार्थ स्रवित करते हैं. गारबर्स ने प्रारंभ में 'सी अर्चिन' के प्रोटीन को आधार मान कर मानव डिम्ब द्वारा स्रवित संभावित पदार्थ की खोज करने का प्रयत्न किया परन्तु वे सफल न हो सके क्योंकि स्वयं 'सी अर्चिन' की विभिन्न प्रजातियों में ही इस प्रोटीन की रचना अलग-अलग थी. फिर मनुष्य द्वारा निर्मित पदार्थ का इसके समान होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता था.

गारबर्स और उसके एक अन्य सहयोगी माइकेल आइजेनबैक ने एक साधारण से प्रयोग की रुपरेखा बनाई. उन्होंने 40 स्त्रियों के डिम्ब-पुटकों से पुटक द्रव एकत्रित किया और उसे एक विशेष रसायन-अनुचलन कक्ष (कक्ष जिसमें किसी कोश या जीव को किसी रासायनिक पदार्थ की ओर या उससे दूर जाने के लिए प्रेरित किया जाता है) के ऊपरी भाग में रखा. इसके निचले भाग में शुक्राणुओं को रखा गया. जांच करने पर देखा गया कि पचास प्रतिशत मामलों में शुक्राणुओं कीं एक अच्छी खासी संख्या ऊपर की ओर आकर्षित हो पुटक द्रव में सम्मिलित हो गई है. इससे उत्साहित हो आइज़ेनबेक ने यहां तक परिकल्पना कर डाली कि शायद संतानोत्पत्ति न कर पाने वाली दम्पति में शुक्राणु तथा डिम्ब के बीच के सम्पर्क-सूत्र में कोई व्यवधान उत्पन्न हो जाता होगा.

इन परीक्षणों से यह पता लगता है कि कोई ऐसा पदार्थ अवश्य है जो शुक्राणुओं को आकर्षित करता है. परन्तु वह क्या है, कहां है और कैसे कार्य करता है इसका परिक्षणकर्ताओं को कोई ज्ञान नहीं है. उन्हें अभी यह ज्ञात करना है कि शुक्राणुओं को आकर्षित करने वाला संकेत डिम्ब से आता है या पुटक द्रव से, जिसमें परिपक्व डिम्ब उपस्थित रहते हैं.

इन सभी अनिश्चितताओं के बावजूद अनुसंधानकर्ताओं ने कुछ बातें सामने रखी हैं. उनके अनुसार इस सांकेतिक रसायन पदार्थ का एक उद्देश्य केवल कुछ चुने हुए शुक्राणुओं को पूरे समूह में से छांटना है जो डिम्ब निषेचन के लिए पूरी तरह सक्षम हों. इसका कार्य शुक्राणु के व्यवहार और डिम्ब-क्षरण (ओव्यूलेशन) के समय में एकरूपता लाना भी हो सकता है. ऐसा भी पाया गया है कि कुछ स्तनपोषी जीवों के शुक्राणु डिम्बवाहिनी नलिकाओं के सिरों पर उस समय तक निष्क्रिय पड़े रहते हैं जब तक कि डिम्ब-क्षरण क्रिया आरंभ नहीं होती. इसके आरंभ होते ही वे पुनः सक्रिय होकर डिम्ब को निषेचित कर देते हैं.

शुक्राणुओं को 'मिलन संदेश' देने वाले इस अज्ञात परन्तु प्रभावी पदार्थ को अलग कर उसका पूरा अध्ययन करने की दिशा में वैज्ञानिकों को अभी काफी प्रयत्न करना होगा. ❑

पेशियों को जानिए, खेल क्षमता पहचानिए

❑ सुभाष लखेड़ा

❑ हमारी शारीरिक पेशियों का एकमात्र कार्य संकुचन करना है. इनके संकुचनों पर ही हमारी खेल संबंधी तथा अन्य सभी शारीरिक गतियां आश्रित हैं. हमारे शरीर के विभिन्न हिस्से पेशियों से ही आपस में जुड़े रहते हैं और इन हिस्सों को गतिशील करने के लिए पेशियों का संकुचन द्वारा छोटा होना आवश्यक है. जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति का दिल, फेफड़े, मनोवैज्ञानिक और प्रेरक योग्यताएं दूसरों से भिन्न होती हैं, ठीक उसी तरह पेशी क्रियाओं की दृष्टि से भी वह दूसरों से भिन्न होता है. पेशी क्रियाओं के विभिन्न पहलुओं को मोटर (प्रेरक) कॉर्टिक्स, मोटर तंत्रिकाओं (न्यूरॉन्स) और पेशी तन्तुओं से बने 'संपूर्ण पेशी प्रभावकारी तंत्र' के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है.

दरअसल, हमारे मस्तिष्क की नियंत्रण प्रणाली अपना कार्य पेशियों के माध्यम से सम्पन्न करती है. मस्तिष्क की नियंत्रण प्रणाली मस्तिष्क के मोटर कॉर्टिक्स नामक क्षेत्र में अपने द्वारा निश्चित शारीरिक गतियों संबंधी आवेग उत्पन्न करती है. मोटर कॉर्टिक्स में उत्पन्न आवेग या संदेश प्रेरक तंत्रिकाओं के माध्यम से उनसे संबंधित पेशियों तक पहुंचते हैं. शरीर की किसी पेशी द्वारा की जाने वाली गति मोटर कॉर्टिक्स के किसी क्षेत्र विशेष में पैदा होने वाली विद्युत धाराओं के उद्दीपन से सुनिश्चित होती है. ये विद्युत आवेग पेशियों तक उनसे जुड़ी प्रेरक तंत्रिकाओं के माध्यम से पहुंचते हैं. हमारी रीढ़ रज्जु (स्पाइनल कार्ड) से प्रेरक इकाइयां अपने द्वारा नियंत्रित किए जाने वाले शारीरिक हिस्सों के समीप बाहर निकलती हैं.

प्रत्येक शारीरिक पेशी बहुत सी प्रेरक इकाइयों से बनी होती है. एक प्रेरक इकाई का निर्माण किसी एक प्रेरक तंत्रिका एवं उसके द्वारा नियंत्रित पेशी तन्तुओं से होता है. किसी प्रेरक तंत्रिका से नियंत्रित होने वाली पेशी तन्तुओं के संख्या से ही यह निर्धारित होता है कि उनमें पैदा होने वाले संकुचनों को किस सीमा तक परिष्कृत किया जा सकता है. हमारी आंखों को नियंत्रित करने वाली किसी भी प्रेरक तंत्रिका से मात्र तीन से लेकर छह तक पेशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्तु जुड़े रहते हैं जबकि टांगों की गति को नियंत्रित करने वाली प्रेरक तंत्रिकाओं में से प्रत्येक से औसतन दो सौ के लगभग पेशी तन्तु जुड़े रहते हैं. यही कारण है कि हम आंखों में टांगों की अपेक्षा कहीं अधिक परिष्कृत और सूक्ष्म गतियां पैदा कर सकते हैं.

पेशियों द्वारा पैदा किया जाने वाला बल एवं वेग 'साइज सिद्धांत' से निर्धारित होते हैं. इस सिद्धांत के अनुसार पेशी संकुचन के लिए प्रेरक इकाइयों का उपयोग उनमें मौजूद प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं के साइज के अनुसार होता है. प्रेरक तंत्रिकोशिकाएं धातुओं के तारों की तरह वैद्युत धारा का चालन करती हैं और तारों के सदृश्य ही जिस तंत्रिकोशिका का व्यास जितना बड़ा होता है वह उसी अनुपात में वैद्युत धारा का चालन करती है. हमारा शरीर धीमी और कमजोर गतियों को पैदा करने के लिए कम व्यास वाली प्रेरक तंत्रिकोशिकाओं का उपयोग करता है और गति की तीव्रता एवं शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होने पर और अधिक बड़े व्यास की तंत्रिकोशिकाओं को उपयोग में लाता है. सबसे छोटी प्रेरक तंत्रिकाओं में पांच आवेग प्रति सेकण्ड की विद्युत धारा उनसे जुड़ी पेशियों में धीमी एवं क्षीण गति पैदा करती है. अत्यधिक तीव्रता से सम्पन्न होने वाले सर्वाधिक शक्तिशाली पेशी संकुचनों के दौरान सर्वाधिक बड़ी तंत्रिकाओं में विद्युत धारा की दर सत्तर आवेग प्रति सेकण्ड तक पहुंच जाती है.

हमारे शरीर अथवा मस्तिष्क की नियंत्रण प्रणाली धीमी से लेकर तीव्रतम और यदाकदा से लेकर निरन्तर सम्पन्न की जाने वाली गतियों को पैदा करने के लिए दो तरह के पेशी तन्तुओं का उपयोग करती है. इन्हें तीव्र स्फुरण (फास्ट ट्विच) या स्प्रिन्ट तन्तु तथा मंद स्फुरण (स्लो ट्विच) या इन्ड्योरेन्स तन्तु कहते हैं. कोई भी प्रेरक तंत्रिका इनमें से सिर्फ किसी एक तरह के तन्तुओं को नियंत्रित करती है. दरअसल, किसी भी प्रेरक तंत्रिका का साइज उससे नियंत्रित होने वाली पेशी तन्तुओं की किस्म को निर्धारण करता है. इन्ड्योरेन्स तन्तु छोटी प्रेरक तंत्रिकाओं से और स्प्रिन्ट तन्तु बड़ी प्रेरक तंत्रिकाओं से नियंत्रित होते हैं.

चूंकि प्रेरक तंत्रिकाओं का आकार ही उनसे जुड़ने वाले तन्तुओं की किस्म को निर्धारित करता है अतः किसी भी व्यक्ति के शरीर में इन पेशियों का आनुपातिक संघटन उस व्यक्ति में आनुवंशिक रूप में मौजूद बड़ी एवं छोटी प्रेरक तंत्रिकाओं के सापेक्ष अनुपात पर निर्भर करता है. यही कारण है कि एक स्प्रिन्टर, उदाहरणार्थ सौ मीटर का धावक, बनाया नहीं

जाता बल्कि पैदा होता है. उसमें जन्म से ही बड़ी प्रेरक तंत्रिकाएं और उनसे संबद्ध स्प्रिन्ट पेशियों की उच्चतम प्रतिशतता होती है. इसके विपरीत एक सफल मैराथन धावक में जन्म से ही छोटी प्रेरक तंत्रिकाओं एवं इन्ड्योरेन्स पेशी तन्तुओं के ऊंची प्रतिशतता होती है जो धीमी प्रेरक इकाइयों का निर्माण करते हैं.

मनुष्य की किसी भी ऐसी पेशी का संघटन मिश्रित होता है जिसमें स्प्रिन्ट एवं इन्ड्योरेन्स तन्तुओं की संख्या बराबर भी हो सकती है और किसी एक ही तरह के तन्तुओं का प्रतिशत शून्य से लेकर सौ तक भी हो सकता है. शरीर के अंगों में कभी-कभी इन तन्तुओं की भिन्न-भिन्न संख्या भी हो सकती है. उदाहरणार्थ, एक क्रास कन्ट्री स्किपर के कन्धों की त्रिकोणिका (डैल्टाइड) पेशियों में शत प्रतिशत स्प्रिन्ट तन्तु हो सकते हैं जो 'पोलिंग' का तेज कार्य करती हैं और उसकी टांगों की चतुर्शिरिस्का (क्वाड्रीसैप्स) पेशियों में शत प्रतिशत इन्ड्योरेन्स तन्तु हो सकते हैं जिन्हें 'किकिंग' और 'ग्लाइडिंग' का कार्य निरन्तर धीमी गति से करना होता है. स्प्रिन्ट और इन्ड्योरेन्स, दोनों ही प्रकार के पेशी तन्तुओं में कुछ विशिष्ट गुणधर्म होते हैं जो उन्हें परिभाषित करते हैं.

स्प्रिन्ट पेशी तन्तु में इन्ड्योरेन्स पेशी तन्तु की तुलना में तीन गुणा तेजी से दस गुणा शक्तिशाली 'संकुचन' पैदा होता है. साथ ही, यह संकुचन से विश्रामवस्था में भी तेजी से आ जाती है. चूंकि इनका व्यास इन्ड्योरेन्स तन्तुओं से बड़ा होता है अतः ये अपेक्षाकृत अधिक पेशी तनाव पैदा करने की योग्यता रखते हैं. दरअसल, किसी पेशी में पैदा होने वाला तनाव उसके तन्तुओं के अनुप्रस्थ काट क्षेत्र (क्रॉस सैक्शन एरिया) पर निर्भर करता है. स्प्रिन्ट पेशी तन्तु का व्यास इन्ड्योरेन्स तन्तुओं की अपेक्षा प्रशिक्षण से बढ़ाया जा सकता है. यही वजह है कि इन्ड्योरेन्स खिलाड़ियों को समान भार-प्रशिक्षण कार्यक्रम के बावजूद अपनी पेशी साइज को बढ़ाने में कठिनाइयां आती हैं जबकि अधिक स्प्रिन्ट पेशी वाले खिलाड़ी अपने पेशी साइज में तेजी से वृद्धि कर पाते हैं.

स्प्रिन्ट पेशियां इन्ड्योरेन्स पेशियों की तुलना में अत्यधिक मात्रा में शक्ति पैदा करने के लिए अत्यधिक तेजी से ऊर्जा पैदा करने में सक्षम होती हैं. ऊर्जा उत्पादन के लिए इनका प्रमुख जैव-रासायनिक ईंधन स्रोत शर्करा है जो इनमें ग्लाइकोजन (ग्लूजोज अणुओं से बना एक बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अणु) के रूप में मौजूद रहता है. यद्यपि ऊर्जा आपूर्ति के लिए स्प्रिन्ट पेशियां इन्ड्योरेन्स पेशियों की तुलना में ग्लाइकोजन का भंजन दस गुणा तेजी से कर सकती हैं, इन्हें इसके लिए कीमत चुकानी पड़ती है. ये तंतु ईंधन का दहन तो तीव्रता से करते हैं किन्तु इस कार्य को ये अपूर्ण रूप से करते हैं. फलस्वरूप, ग्लाइकोजन भंजन का अवशेष लैक्टिक अम्ल के रूप में बच जाता है. इन पेशियों में लैक्टिक अम्ल के जमाव के कारण उनकी आन्तरिक वातावरण की अम्ल में वृद्धि होने से ऊर्जा उत्पादन के लिए घटित होने वाली जैव-रासायनिक प्रतिक्रियाएं पहले मंद होती हैं और फिर एक सीमा के बाद पूर्णतया रुक जाती हैं. फलस्वरूप, ऐसी पेशियां 'संकुचन' नहीं कर पाती हैं. यही वजह है कि स्प्रिन्ट पेशियां केवल अल्प समय तक ही कार्य कर सकती हैं.

इन्ड्योरेन्स पेशी तन्तु स्प्रिंट तन्तुओं के विपरीत कम शक्ति वाले धीमी गति के कार्यों को करते हैं किन्तु ये अधिक लंबे समय यानि मैराथन दौड़ जैसे दो घंटे से अधिक समयावधि के कार्यों में उपयोगी हैं. ये तन्तु अपने ईंधन का दहन पूर्ण रूप से करते हैं अतः ये लैक्टिक अम्ल के जमाव जैसे अपूर्ण चयापचय (मैटाबालिज्म) के कारणों से होने वाले हानिकारक प्रभावों से बचे रहते हैं. इन्ड्योरेन्स तन्तु स्प्रिन्ट पेशी तन्तु से रचनात्मक दृष्टि से भिन्न होता है. ऐसी जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं के लिए जो ईंधन का पूर्ण दहन करती हैं, ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है जो तन्तुओं के अन्दर 'माइटोकॉन्ड्रिया' (सूत्र कणिकाओं) में पहुंचती है. इन्ड्योरेन्स तन्तु में स्प्रिन्ट तन्तु की तुलना में बारह गुणा अधिक माइटोकॉन्ड्रिया होते हैं. निरन्तर लंबे समय तक कार्य करने की क्षमता को आधार देने की दृष्टि से इन्ड्योरेन्स तन्तुओं में स्प्रिन्ट तन्तुओं की तुलना में 'आक्सीजनी रक्त' की आपूर्ति भी अधिक होती है. इन तन्तुओं की कोशिकाएं स्प्रिन्ट तन्तु कोशिकाओं की तुलना में तीन गुणा अधिक आक्सीजन भंडारित कर सकती हैं. श्रम की दृष्टि से सामान्य से लेकर मध्यम स्तर तक के कार्यों के लिए शरीर इन्ड्योरेन्स पेशियों का ही उपयोग करता है. चूंकि ये सदैव धीमी गति से सीमित ऊर्जा पैदा करते हैं अतः ये ईंधन के रूप में वसा का उपयोग करके शरीर की सीमित ग्लाइकोजन मात्रा का बचाव कर सकती हैं. लंबे समय के खेलों में इन्ड्योरेन्स पेशियों के इस गुण से प्रशिक्षित खिलाड़ी लाभ उठाते हैं. इन पेशी कोशिकाओं की वसा भंडारण क्षमता स्प्रिन्ट कोशिकाओं से तीन गुणा अधिक होती है.

शक्ति एवं सामर्थ्य की दृष्टि से शरीर के लिए वह स्थिति आदर्श है जब उसमें ऐसे पेशी तन्तु हों जिनमें इन्ड्योरेन्स तन्तुओं की तरह लंबे समय तक कार्य कर सकने की क्षमता के साथ-साथ स्प्रिन्ट तन्तुओं की तरह तीव्र गति से उच्च बल पैदा करने के गुण हों. वास्तव में इस तरह के तन्तु भी पेशियों में पाए जाते हैं. इन्हें मध्यवर्ती तन्तु कहते हैं. इनमें अधिक एवं बड़े माइटोकॉन्ड्रिया, अधिक आक्सीजन भंडारण क्षमता और वसा की अधिक मात्रा पाई जाती है.

सभी खेल स्प्रिन्ट और इन्ड्योरेन्स तन्तुओं का अलग-अलग तरह से उपयोग करते हैं. 'जॉगिंग' बिना स्प्रिन्ट तन्तुओं के उपयोग किए संभव है तो मुक्केबाजी में किए जाने वाले प्रहार (पंच) के दौरान इन्ड्योरेन्स पेशियों का कोई महत्वपूर्ण उपयोग नहीं होता. अधिकांश खेलों के दौरान हमारी इन दोनों ही तरह की पेशियों को कुछ न कुछ कार्य करना पड़ता है जिसका अनुपात प्रत्येक खेल में एवं किसी एक ही खेल के समय कालों में बदलता रहता है. उदाहरणार्थ, फुटबाल में एक अग्रिम खिलाड़ी धीमी गति से खेल की शुरूआत कर सकता है. खेल की तीव्रता में वृद्धि होने पर वह अधिकाधिक इन्ड्योरेन्स पेशियों का उपयोग करने लगता है ताकि वह किसी समय विशेष के दौरान मैदान में आराम से चक्कर लगा सके. तत्पश्चात, वेग एवं शक्ति के लिए उसे आवश्यकता पड़ने पर अपनी अनाक्सीजनी प्रभाव सीमा को लांघ कर अपने स्प्रिन्ट तन्तुओं का उपयोग भी करना पड़ता है. यदि आनुपातिक दृष्टि से उसके शरीर में बहुत कम स्प्रिन्ट पेशियां हों तो वह उनका उपयोग तब तक नहीं कर पाएगा जब तक कि वह अपने टांगों की सभी इन्ड्योरेन्स तन्तुओं का उपयोग न करने लगे. फलस्वरूप, ऐसा खिलाड़ी वेग या शक्ति की दृष्टि से ऊंचा प्रयास नहीं कर पाएगा. यदि, संभावना के अनुरूप इस अग्रिम खिलाड़ी के टांगों में स्प्रिन्ट तन्तुओं का प्रतिशत ऊंचा है, तो ऐसे तन्तु आवश्यकता पड़ने पर उस खिलाड़ी को उसकी खेल स्थिति के अनुरुप तेजी से अधिक ताकत देने में सहायक होंगे. इस तीव्र गति का घाटा यही है कि इसे लंबे समय तक नहीं बनाए रखा जा सकता. खिलाड़ी चाहे कितना ही प्रशिक्षित क्यों न हो, इस तीव्र गति एवं शक्ति को पैदा करने वाले उसके पेशी तन्तु तेजी से 'थकावट' का शिकार हो जाते हैं.

हमारी पेशियों के तन्तुओं को उनके संयोजी ऊतक (कनेक्टिव टिशू) आपस में बांधे रखते हैं. ये संयोजी ऊतक पेशियों के दोनों सिरों पर संघनित होते हैं जिन्हें हम कंडरा (टैन्डन) कहते हैं. कंडरा पेशियों को अस्थियों से जोड़ती हैं. संयोजी ऊतक पेशियों की लोच या लचीलापन निर्धारित करती हैं उदाहरणार्थ, टांगों की पिंडलियों की उपरिस्थ पिंडिका पेशियों में संयोजी ऊतकों का अंश अधिक होता है जो इन्हें बहुत लचीला बना देता है. जब एक धावक 'स्प्रिंटिंग' के दौरान जंघा पिण्डिका पेशियों और उन्हें पैरों से जोड़ने वाली लंबी, लचीली एकिलिज कंडराओं को बलपूर्वक लंबा करता है, वह पेशियों के खिंचे हुए संयोजी ऊतकों में गतिज ऊर्जा की बहुत अधिक मात्रा भंडारित करता है. इससे उसके वेग में एवं पेशियों के सक्रिय संकुचनों में पर्याप्त वृद्धि होती है. कोई भी धावक जिसकी उपरिस्थ पिंडिका पेशियों और एकिलिज कंडराओं में लचीलेपन का अभाव होता है, अत्यधिक तेज गति से नहीं दौड़ सकता है. दूसरी ओर जंघाओं की दीर्घतमा (सार्टोरियस) पेशियों में संयोजी ऊतक कम होते हैं अतः वे अपेक्षाकृत कम लचीली होने के कारण अधिक गतिज ऊर्जा का भंडारण करने में अक्षम होती हैं.

चाहे कोई भी पेशी कितनी ही लचीली क्यों न हो, अधिकतम खिंचाव की अवस्था में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोच रहित एवं कठोर हो जाती है. ऐसी अवस्था में सम्पूर्ण पेशी इकाई को संरचनात्मक शक्ति कंडराएं प्रदान करती हैं. यह शक्ति पेशी संकुचन की अधिकतम शक्ति से चार गुना अधिक होती है. पेशी गति की सीमाएं हीं 'संधि लोच' को निर्धारित करती हैं. बास्केट बाल, फुटबाल एवं टैनिस जैसे खेलों में जिनमें खिलाड़ियों को अपनी गति की दिशा एवं त्वरण में तेजी से परिवर्तन करने होते हैं, अत्यधिक संधि लोच खेल प्रदर्शन क्षमता को घटाता है. दूसरी तरफ संधि लोच के अत्यल्प होने से जिमनास्टों एवं फिगर स्केटरों का खेल कुप्रभावित होता है. इसी तरह कुछ संधियों की लचक खेल विशेष की दृष्टि से अधिक महत्व रखती हैं, उदाहरणार्थ, तैराकी में स्कन्धों की लचक एवं टैनिस में कूल्हों की लचक का बहुत अधिक महत्व है.

किसी पेशी से संबंधित कंडराएं हड्डी पर जिन बिन्दुओं पर जुड़ती हैं, उनसे ही पेशी की उत्तोलकता (लीवरेज़) निर्धारित होती है. खेलों की दृष्टि से पेशियों की उत्तोलकता का अत्यधिक महत्व है क्योंकि यह किसी पेशी की कार्य निष्पादन क्षमता को घटा या बढ़ा सकती है. लंबी कूद और बाधा दौड़ के दौरान टांगों की उपस्थि पिंडिका पेशियों की उत्तोलकता का एवं गोला फेंक जैसे खेलों में भुजा के पिछले भाग की त्रिशिरस्का पेशी (ट्राइसैप्स) की उत्तोलकता का अत्यधिक महत्व हैं.

लोच एवं उत्तोलकता के अतिरिक्त खेलों की दृष्टि से पेशियों का तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष उनका विस्तार है. किसी पेशी का व्यास जितना अधिक होता है वह उतनी ही अधिक गति एवं शक्ति पैदा कर सकती है. अधिकतम-व्यास वाली पेशियां विस्फोटक बल पैदा कर सकती हैं. यही कारण है मुक्केबाजों, भारोत्तोलकों, स्पीड स्केटरों, जिमनास्टों एवं साइकिल धावकों के शरीर की वे पेशियां अधिक मोटी होती हैं जिन्हें बल पैदा करना होता है. किसी भी पेशी का अधिकतम बढ़ाया जा सकने वाला व्यास आनुवंशिक घटकों पर निर्भर करता है और इसका पेशी की लंबाई से सीधा संबंध है. यदि कोई अंग बहुत लंबा है तो यह आवश्यक नहीं है कि उससे संबद्ध पेशी भी लंबी हो. एक लंबे अंग से संबद्ध छोटी पेशी का व्यास चूंकि अधिक बड़ा नहीं हो सकता, अतः वह लंबी पेशी की तुलना में अधिक शक्ति पैदा नहीं कर सकती.

संपूर्ण पेशियों की कार्यक्षमता संबंधी विशेषताओं एवं गुणों का खेलों की दृष्टि से बहुत महत्व है. इन विशेषताओं एवं गुणों को समझने के लिए पेशी संकुचन के दौरान बल एवं गति के बीच के संबंधों की जानकारी आवश्यक है. इन संबंधों को बल-गति वक्र नामक चार्ट की सहायता से समझा जा सकता है.

वास्तव में बल-गति वक्र किसी पेशी की सम्पूर्ण कार्य क्षमता का वर्णन करता है और शरीर की प्रत्येक पेशी का यह वक्र अलग-अलग होगा जो यह बता सकता है कि पेशी विशेष की कार्यक्षमता खेल विशेष के लिए पर्याप्त है या नहीं. प्रशिक्षण के द्वारा किसी पेशी के बल-गति वक्र में सुधार किया जा सकता है यानि किसी निश्चित गति के लिए पेशी द्वारा पैदा किए जाने वाले बल की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है.

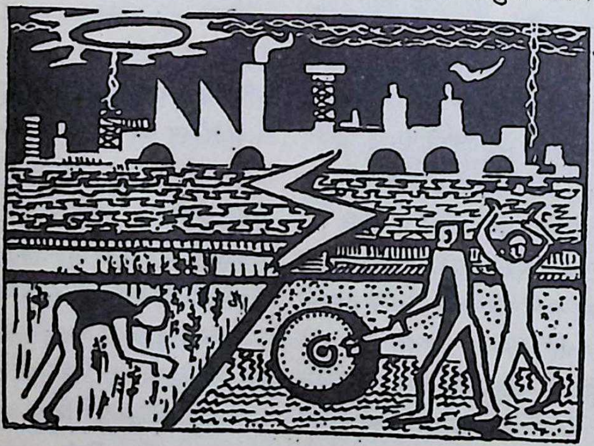

कुल मिलाकर, किसी पेशी की कार्यक्षमता की तीन प्रमुख विशेषताएं गति, बल और त्वरण हैं और ये पेशी के तन्तुओं की किस्म, उसके बल-गति वक्र, उसके तापमान, साइज एवं प्रत्यास्थता (लचक) पर निर्भर हैं.

पेशी गति की वजह से ही साइकिल चालक निरन्तर 120 परिक्रमण प्रति मिनट की दर से पैडल घुमाता है, मुक्केबाज 60 मिलिसेकण्ड में 'पंच' करता है और एक कम दूरी का धावक (स्प्रिन्ट) पच्चीस मील प्रति घंटा की रफ्तार से दौड़ता है. किसी संपूर्ण पेशी में स्प्रिन्ट तंतुओं की मात्रा (संख्यात्मक) का प्रतिशत जितना अधिक ऊंचा होता है उसकी गति उतनी ही अधिक तेज होती है और वह श्रांति से भी उतनी ही शीघ्रता से उबरने की योग्यता रखती है.

मानव शरीर में तेजी से त्वरण के लिए, जैसा कि 100 मीटर की दौड़ के प्रथम पच्चीस मीटर में टांगों की पेशियों से पैदा होता है, पेशियों में स्प्रिन्ट तंतुओं की संख्या अधिक होनी चाहिए. किसी भी अवरोध पर ऊंचे गति के बल-गति वक्र होने चाहिएं और पेशियां उचित तापक्रम पर होनी चाहिएं. आराम के दौरान पेशी का तापमान 37 डिग्री सेल्सियस होता है. शरीर में 'गरमाहट' पैदा करके यह 43 डिग्री तक पहुंचाया जा सकता है. इस तापमान पर पेशी की शक्ति में 50 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है. तापमान में वृद्धि के कारण पेशी का लचीलापन बढ़ जाता है और पेशी और अधिक विश्राम अवस्था में आ जाती है. फलस्वरूप, इसकी गति संबंधी नम्यता में वृद्धि हो जाती है और इसकी टूट-फूट की संभावनाएं कम हो जाती हैं.

बड़ी पेशियां छोटी पेशियों की तुलना में अधिक बल आरोपित करती हैं क्योंकि उनका अधिकतम व्यास बड़ा होता है और कोई भी पेशी अपना अधिकतम बल उस अवस्था में आरोपित करती है जब उसका व्यास अधिकतम हो. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगलादेश में चक्रवात से तबाही क्यों ?

❑ हरीश अग्रवाल

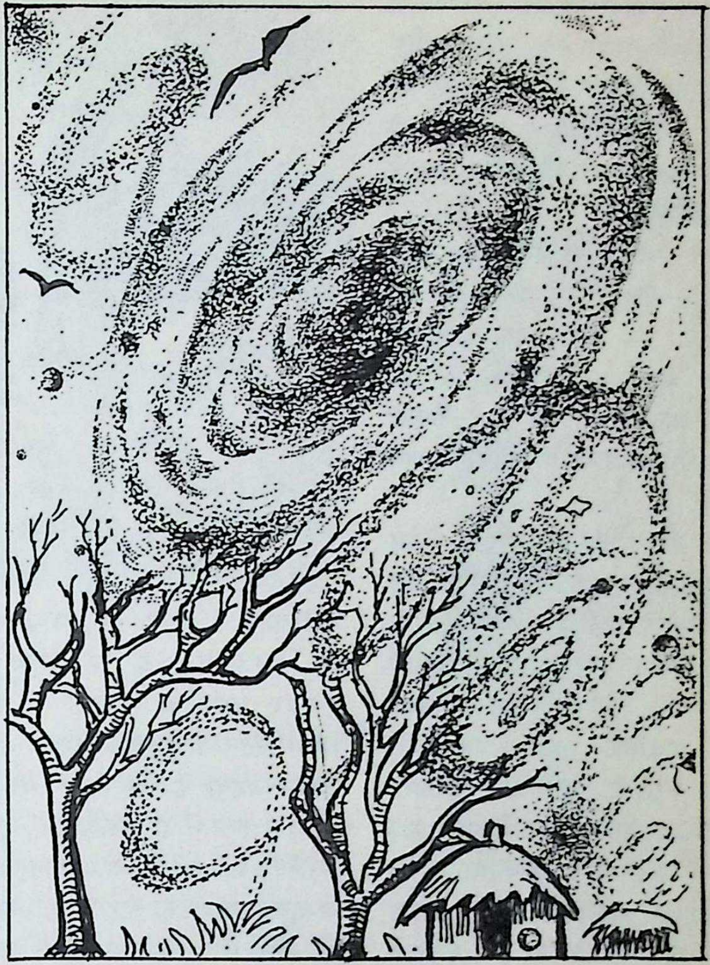

❑ बंगलादेश में तूफान और बाढ़ का एक ऐसा सिलसिला शुरू हुआ है जो खत्म होने में नहीं आ रहा. मई और जून में कई बार समुद्री तूफान आए, जिनमें लगभग पांच लाख लोगों की जानें गईं. गरीब लोग तट पर रहते हैं और सबसे ज्यादा मार उन्हीं को सहनी पड़ती है. देखा गया है कि जितनी बड़ी आपदाएं होती हैं, उतनी ही अनिश्चित मात्रा मरने वालों की होती है. गरीबों के मरने और उन्हीं को सबसे ज्यादा तूफान और बाढ़ की मार सहने के दो कारण हैं—पहला तो यह कि इन्ही लोगों को डेल्टा के बाहरी द्वीपों पर खेती के लिए जमीन मिलती है, जहां वर्ष दो वर्ष में चक्रवात की पहली मार सहनी पड़ती है. दूसरे नदी के मुहाने पर बसे निवासियों को सबसे कमजोर तटबंध मिलते हैं जो उनकी कोई सुरक्षा नहीं कर पाते.

लेकिन जिस तरह के चक्रवात इस वर्ष आए हैं, उनमें किसी प्रकार के भी तटबंध नहीं रुक पाते. अब तक इस क्षेत्र में 2500 शरणस्थलों के बनाने की योजना थी, लेकिन उनमें लगभग 250 ही बन पाए. ये शरणस्थल ऊंचे स्थानों पर ऊंचे मकान होते हैं.

अब तक प्राप्त समाचारों के अनुसार बंगलादेश में चक्रवात तथा बाढ़ की सुरक्षा के लिए योजनाएं तो बनीं, लेकिन उन पर अम्ल नहीं हुआ. तटीय इलाकों तथा द्वीपों पर रहने वाले लोगों के प्रति सरकारी रवैया उदासीन रहा. लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व बाढ़ कार्रवाई योजना बनी. 1987 तथा 88 में आई बाढ़ों के बाद यह योजना बनी थी. ये बाढ़ें बहुत भीषण थीं, जिनसे आधा देश जलमग्न हो गया था. गंगा तथा ब्रह्मपुत्र नदियों में मानसून का पानी भी बहकर आया. यहां उल्लेखनीय है कि सालाना बाढ़ से एक-चौथाई देश जलमग्न हो जाता है.

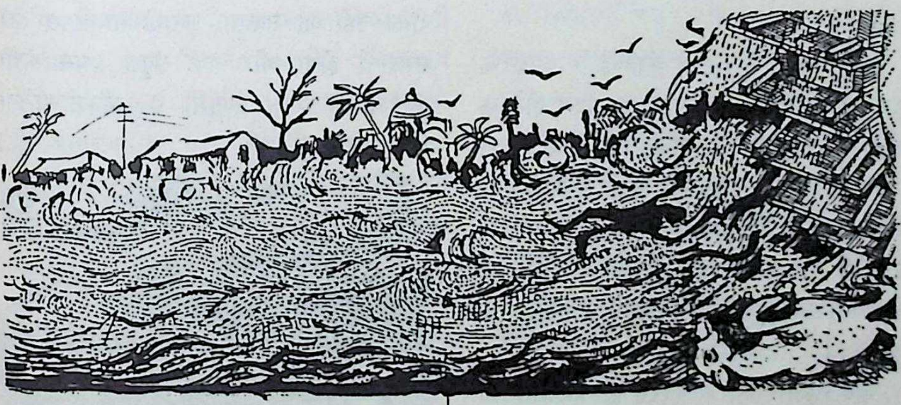

जैसा पहले कह आए हैं चक्रवातों से लोगों की सुरक्षा को बंगलादेश में सबसे निम्न प्राथमिकता मिली है. गत नवंबर में एक डच विशेषज्ञ ने 'न्यू साइंटिस्ट' को बताया था कि तटीय बांधों की ओर कोई ध्यान नहीं देता. चक्रवात नियमित रूप से आते हैं और ये हजारों लोगों की जान ले सकते हैं. लेकिन ये राजधानी तक नहीं आते और न विदेशी राजदूतों के उद्यानों को उजाड़ते हैं.

बार-बार यही लगता है कि बंगलादेश में गरीब लोगों की सुरक्षा की ओर कम तथा कृषि की सुरक्षा की ओर ज्यादा ध्यान दिया गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिकों तथा सरकार का बल कृषि पर ही है. सरकार अपने नगरों तथा 'हरित क्रांति' खेतों की सुरक्षा चाहती है, जो चावल की ज्यादा उपज देने वाली किस्में उगाते हैं. ये किस्में परम्परागत किस्मों की अपेक्षा बाढ़ से ज्यादा प्रभावित होती हैं.

तीन साल पहले पद्मा नदी की बाढ़ से बंगलादेश का तीन-चौथाई भाग नष्ट हो गया था तथा एक करोड़ दस लाख की जनसंख्या का चौथाई भाग बेघर हो गया था. हजारों एकड़ धान के खेत बह गए थे, सैकड़ों पुल टूट गए थे तथा पावर व टेलीफोन लाइनें उखड़ गई थीं.

बंगलादेश पर न इतिहास और न भूगोल की कृपा रही है. यह संसार में सबसे कम विकसित देशों में है. भारी जनसंख्या के बोझ के कारण यह हमेशा दबा रहता है. इसकी भौगोलिक स्थिति, जलवायु तथा पर्यावरण सभी बातें प्राकृतिक तथा मानव-निर्मित आपदाएं पैदा करते हैं, जिनमें बाढ़, चक्रवात, ज्वारीय लहरें तथा सूखा शामिल हैं. मई 1985 में बंगाल की खाड़ी में उठे चक्रवात से देश का दक्षिणी तट तबाह हो गया. ग्यारह हजार लोगों का समूचा तटीय द्वीप समुद्र में समा गया.

चक्रवात या 'साइक्लोन' किसे कहते हैं? मौसम विशेषज्ञ कहते हैं कि यह वायुमंडल में एक तीव्र चकरी होती है, जिसके चारों ओर बहुत तेज हवा घूमती है. 'साइक्लोन' यूनानी शब्द 'साइक्लोस' से बना है, जिसका अर्थ है सर्पकुंडली. एक अंग्रेज मौसम विशेषज्ञ को बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर में उष्णकटिबंधीय तूफान कुंडली मारकर बैठा सांप जैसा लगते थे और उन्होंने इन तूफानों को 'साइक्लोन' नाम दिया. गम्भीर चक्रवातों में केंद्र से 600 किलोमीटर तक 50 से 60 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से हवाएं चलती हैं. तेज हवाओं से समुद्र में 20 मीटर की ऊंचाई तक लहरें उठती हैं. सारा वातावरण काला हो जाता है. तेज वर्षा होती है तथा बिजली चमकती हैं.

वेधशालाओं के पूर्व महानिदेशक डॉ० पी०

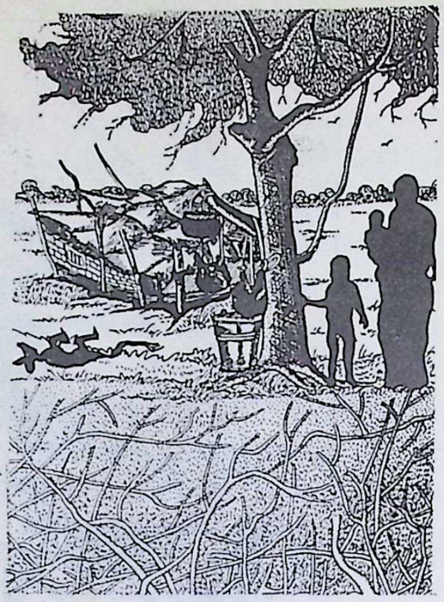

कोटेश्वरम ने बताया कि गत 29-30 अप्रैल को बंगलादेश तट पर आया चक्रवात नवम्बर 1970 के चक्रवात के समान था, जिसमें उतना ही नुकसान हुआ जो अब हुआ है. उनका कहना है कि बंगाल की खाड़ी में चक्रवात साल में दो बार आते हैं, पूर्व मानसून महीने अप्रैल-मई में और मानसून के बाद अक्तूबर-नवम्बर में. भारतीय मौसम विभाग ने सौ साल से चक्रवात के मार्गों का प्रकाशन किया है. भीषण चक्रवातों में अधिसंख्यक मौतें उफनते सागर की ऊंची लहरों के पानी और तूफान से होती हैं. इसलिए इनसे आदमी का बचाव उन्हें सुरक्षित स्थलों तक हटाने से ही हो सकता है. अब उपग्रहों से तूफानों की भविष्यवाणी पहले हो जाती है, इसलिए तटों पर बसे लोगों को सुरक्षित स्थानों से हटाया जा सकता है.

कुछ पर्यावरणविदों ने कहा है कि हाल के चक्रवात में समुद्र स्तर पृथ्वी के गरम होने के कारण ऊंचा हुआ है. लेकिन डा० कोटेश्वरम का कहना है कि समुद्र स्तर बढ़ने में अभी कुछ दशक और लगेंगे. यदि पृथ्वी का तापमान चार या पांच अंश सेल्शियस बढ़ गया तब संसार के निचले इलाके डूब जाएंगे जिनमें बंगलादेश के कुछ इलाके भी शामिल होंगे.

अब तो उपग्रहों के जरिए ही चक्रवात की भविष्यवाणी होती है. उनके मार्गों का पता पृथ्वी पर स्थापित रेडारों से चलता है. लेकिन अभी वायुमंडलीय विज्ञान इतना आगे नहीं बढ़ा है कि 24 घंटे से ज्यादा की भविष्यवाणी की जा सके. ऐसी स्थिति में बंगलादेश में ज्यादा कुछ हो नहीं सकता था, फिर भी जब यह मालूम है कि अप्रैल में चक्रवात आ सकता है, लोगों और मवेशियों की निकासी का इंतजाम पहले से रखना चाहिए था. मौसम विशेषज्ञों ने बताया है कि बंगाल की खाड़ी में चक्रवात बनने के संकेत 25 अप्रैल को ही मालूम हो गए थे. जब उपग्रह द्वारा भेजे गए चित्रों में समुद्र में कम दबाव बनना देखा गया था, जो बाद में चक्रवात में बदल गया. विशेषज्ञों के सामने समस्या इस आशय की भविष्यवाणी करने की होती है कि तूफान की दिशा किस ओर होगी. अब इनसेट उपग्रह से हर आधे घंटे में वायुमंडलीय गतिविधि मालूम हो सकती है और वह भी बिल्कुल सही. नई दिल्ली में भारतीय मौसम विभाग तथा ढाका का मौसम केंद्र विश्व मौसम विज्ञान संगठन के डाटा संजाल से जुड़े हुए हैं, जिसके द्वारा दिन में दो बार इनसेट से मौसम सूचनाएं प्रेषित की जाती हैं.

अब तो जो तबाही हुई है, उससे कुछ पाठ आगे के लिए सीखे जा सकते हैं. सबसे जरूरी बात यह है कि ज्यादा से ज्यादा शरणस्थल सुरक्षित स्थानों में बनाए जाएं, जहां लोग अपने घरों से जाकर रह सकें. इस काम में बंगलादेश सरकार अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों की मदद से कुछ कर सकती हैं.

लोगों को यह भी बताने की जरूरत है कि वर्तमान वैज्ञानिक स्थिति में चक्रवातों को रोका नहीं जा सकता. उनकी भयावहता को समझना होगा और एक संपूर्ण प्रथम श्रेणी की आपदा प्रबंध प्रणाली से उनका सामना करना होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तड़ित और संबंधित अनुसंधान के क्षेत्र

❑ डा० जगदीश राय

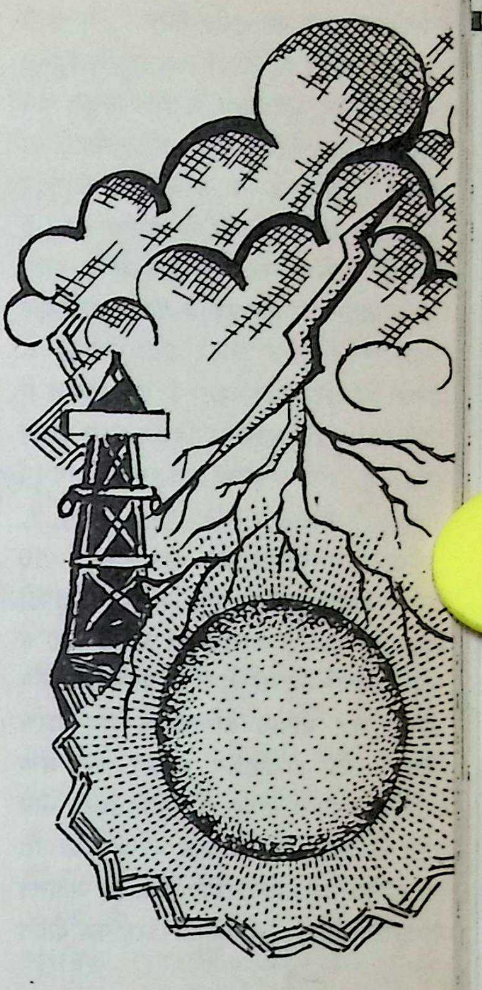

❑ सृष्टि के प्रारंभ से ही तड़ित ने मानव जाति को प्रभावित किया है. कुछ विद्वानों का मत है कि पृथ्वी के उत्पन्न होने के पश्चात जब भारी वर्षा से समुद्र और नदियों का निर्माण हो गया था तो प्रथम जीव का प्रादुर्भाव सम्भवतः समुद्र में तड़ित के गिरने से हुआ. अवश्य ही वह प्रथम जीव एक कोशिका वाला रहा होगा. डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार उसी प्रथम जीवाश्म से विकास करते करते हमारी मानव जाति का प्रादुर्भाव हुआ.

सभ्यता के प्रारंभ से ही अनेक संस्कृतियों में तड़ित के विषय में विभिन्न धारणाएं रही हैं. भारतीय मान्यता के अनुसार तड़ित भगवान इन्द्र का अस्त्र है. जिस व्यक्ति पर वे कुपित होते हैं उस पर इससे प्रहार करते हैं. योरोपीय मान्यता के अनुसार भी भगवान अपने अस्त्र तड़ित का उपयोग पापियों के संहार के लिए करते हैं. दक्षिण अफ्रीका के बंटू जनजाति का मत है कि एक दैवीय शक्ति प्राप्त बाज पक्षी आसमान में उड़ता रहता है और जिन व्यक्तियों पर कुपित होता है, अपनी चोंच से प्रहार करता है. उसी पक्षी की चोंच ही तड़ित है. मिस्र एवं चीन के भित्ति चित्रों में भी तड़ित के दृश्य दिखाए गए हैं. दक्षिण पूर्व एशिया की कुछ जातियां गर्जनोत्पादक बादलों के आगमन पर मृदंग बजाती बाहर निकल आती हैं एवं बादलों में स्थित प्रेतात्मा को डराने के लिए भाले आदि अस्त्रों का उपयोग करती हैं. कई लोग प्रेतात्मा की रक्त पिपासा को शांत करने के लिए जानवरों के खून खप्पड़ों में भर कर ऊपर गर्जनोत्पादक बादलों की तरफ उछालते हैं.

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में औद्योगिक क्रांति के प्रादुर्भाव के साथ-साथ योरोपीय जनमानस में यह प्रश्न उभरने लगा कि यदि तड़ित भगवान का अस्त्र है तो वे अपने ही घरों (मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि) पर स्वयं अपने ही भक्तों (पुजारियों) पर इसका प्रहार क्यों करते हैं. इस प्रश्न के साथ ही तड़ित का वैज्ञानिक अध्ययन प्रारंभ हुआ.

तड़ित के रूप

सन् 1756 में फिलाडेल्फिया, अमेरिका में बेंजामिन फ्रैंकलिन ने अपने विश्वप्रसिद्ध प्रयोग, जिसमें रेशम की डोर से बंधी एक पतंग का उपयोग किया गया था, से यह सिद्ध कर दिया कि बादलों में विद्युत आवेश होता है और उस आवेश का विसर्जन ही तड़ित है. उसी समय स्वतंत्र रूप से फ्रांस में डी अलीबार्ड ने भी अपने प्रयोगों से यह बात सिद्ध की थी.

तड़ित के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक प्रयोगों का घनीभूत उपयोग सन् पचास के दशक में दक्षिण अफ्रीका में शानलैण्ड, मालान व कॉलिन्स द्वारा किया गया. इन वैज्ञानिकों ने इंग्लैण्ड में सन् 1926 में इजाद ब्वायज कैमरा का उपयोग किया एवं कई नए उपकरण बनाए. इन उपकरणों के माध्यम से तड़ित के विभिन्न आयामों का अध्ययन किया गया.

ब्वायज कैमरा में एक ड्रम पर बंधी फिल्म तीव्र गति से एक विद्युत मोटर द्वारा घूमती है तथा लेंस स्थिर रहता है. मौलिक ब्वायज कैमरा में ड्रम पर लगी फिल्म तो स्थिर रहती थी लेकिन 180 अंश पर लगे दो लेंस विद्युत मोटर द्वारा तीव्र गति से घुमाए जाते थे (चित्र-1). लेंस से आवर्धित किरणें फिल्म पर फोटो बनाती हैं. विभिन्न समय पर उत्सर्जित प्रकाश की किरणें फिल्म के भिन्न भागों पर प्रतिबिंब बनाती हैं. इस प्रकार ब्वायज कैमरा द्वारा तड़ित के विभिन्न आयामों का अध्ययन किया जा सकता है.

चित्र-2 में तड़ित के ब्वायज कैमरा फोटो का एक रेखांकन है. इससे पता चलता है कि एक रेखा सा दिखाई पड़ने वाला क्षण मात्र का तड़ित वास्तव मे अनेक आघातों से बना होता है. तड़ित विसर्जन बादल के निचले हिस्से से प्रारंभ होकर क्रमशः विभिन्न सोपानों में पृथ्वी की तरफ बढ़ता है. प्रत्येक सोपान अपने पहले सोपान से 50 मीटर बड़ा व 50 माइक्रोसेकंड के अन्तराल पर होता है. विभिन्न सोपानो में पृथ्वी की तरफ बढ़ने की वजह से इसे सोपान आघात कहते हैं. बादल के निचले भाग में उपस्थित ऋण आवेश यह सोपान आघात क्रमशः धीमी गति (10^5 से 10^7 मीटर प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेकंड) से पृथ्वी की तरफ लाता है. सतह से 20 से 70 मीटर की ऊंचाई तक पहुंचते पहुंचते सोपान आघात एवं पृथ्वी के बीच विद्युत क्षेत्र इतना अधिक (10^6 वोल्ट प्रति मीटर या अधिक हो जाता है कि उनके बीच की वायु क्षतिज हो जाती है. यहीं से निर्माण होता है परावर्तन आघात का. सर्वाधिक दीप्ति वाला यह परावर्तन आघात प्रकाश की लगभग एक तिहाई गति (10^8 मीटर प्रति सेकंड) से बादलों की तरफ दौड़ पड़ता है. इस आघात में करीब 3×10^4 एम्पीयर विद्युत धारा प्रवाह होता है तथा इसका तापक्रम लगभग 4×10^4 सेल्सियस तक पहुंच जाता है. प्रत्येक परावर्तन आघात से औसतन 10 कूलम्ब विद्युत आवेश भूमि को विसर्जित हो जाता है. परावर्तन आघात की अवधि 100 से 150 माइक्रोसेकंड की होती है. प्रथम परावर्तन आघात जैसे सोपान आघात के बाद प्रारंभ होता है. वैसे ही द्वितीय, तृतीय तथा अन्य परावर्तन आघात बादल से प्रारंभ होकर सीधे भूमि को आपतित होने वाले आपतन आघात भी सोपान के बाद प्रारंभ होते हैं. आपतन आघात भी सोपान आघात की तरह कम दीप्ति

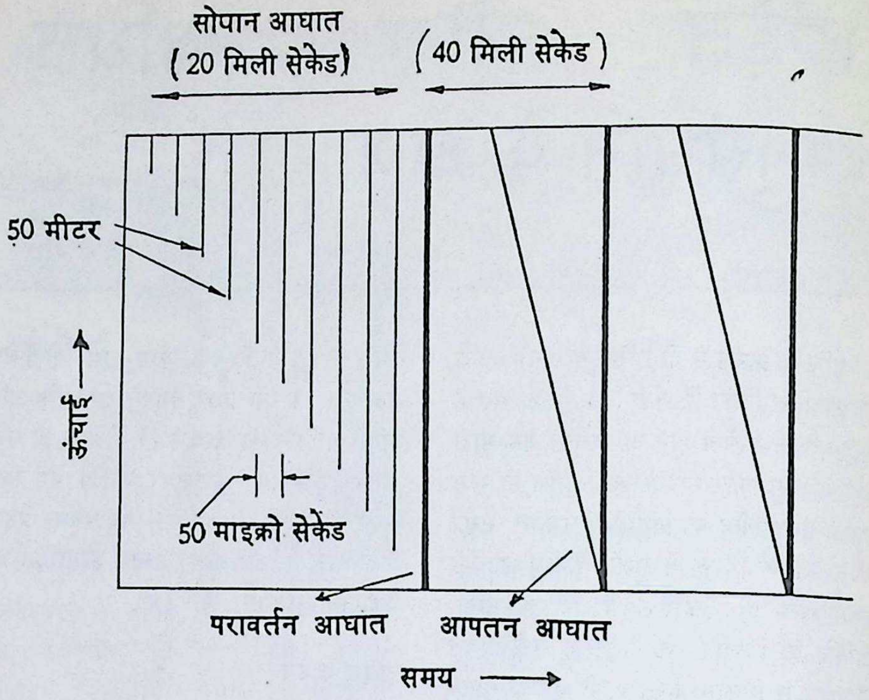

चित्र- 2

एवं वेग वाले होते हैं, लेकिन फर्क इतना है कि आपतन आघात बादल से सीधे आपतित होता है बिना सोपानों के. एक तड़ित में अधिकतम 32 परावर्तन आघात पाए गए हैं.

तड़ित विसर्जन सिर्फ बादल और भूमि के बीच ही नहीं होता बल्कि एक ही बादल के घन आवेशित ऊपरी भाग व ऋणा आवेशित निम्न भाग के बीच में भी होता है. प्रयोगों के आधार पर यह पाया गया है कि इस अवस्था में भी तड़ित का आरंभ सोपान आघात द्वारा ऋण आवेश से ऊपर धन आवेश की तरफ होता है. धूल भरी आंधी व ज्वालामुखी उद्गार में भी तड़ित विसर्जन होता है. इन तड़ितों के विषय में हमें अभी तक पूरी जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है.

विद्युत चुंबकीय तरंगें

परावर्तन आघात सर्वाधिक तीव्र होने की वजह से विद्युत चुंबकीय तरंगों का एक बहुत बड़ा स्रोत है. सर्वाधिक ऊर्जा विद्युत चुंबकीय तरंगों के अतिनिम्न आवृत्ति (3 से 30 किलोहर्ट्ज) भाग में उत्सर्जित होती है. यह ऊर्जा प्रकाश की गति से उद्गम स्रोत से विसरित होती है. अतिनिम्न आवृत्ति तरंगों का एक भाग आयन मंडल को पार कर भूचुंबकीय रेखाओं के साथ गुजर एक गोलार्ध से दूसरे गोलार्ध में आपतित होता है. यदि तड़ित दक्षिण गोलार्ध में होता है तो ये तरंगें उत्तरी गोलार्ध में उसी अक्षांश पर आपतित होकर अंतरिक्ष के विषय में विस्तृत जानकारी प्रदान करती हैं. इन तरंगों का दूसरा भाग पृथ्वी एवं आयन मंडल द्वारा निर्मित तरंग पथक (वेव गाइड) से होकर बिना ऊर्जा कमी के हजारों किलोमीटर तक जाता है. ऊर्जा का तीसरा भाग पृथ्वी की सतह में प्रवेश कर विभिन्न सतहों से परावर्तित होकर पुनः वायुमंडल में आ जाता है अथवा धरातल के ऊपरी सतह के साथ साथ संचरण लाइन विधा (ट्रांसमिशन लाइन मोड) में संचरित होता है.

तड़ित के उपयोग

अंतरिक्ष अनुसंधान : तड़ित ऊर्जा के प्रथम भाग को सीत्कारक (व्हिस्लर) कहते हैं. जब अतिनिम्न आवृत्ति तरंगें आयन मंडल को भेद

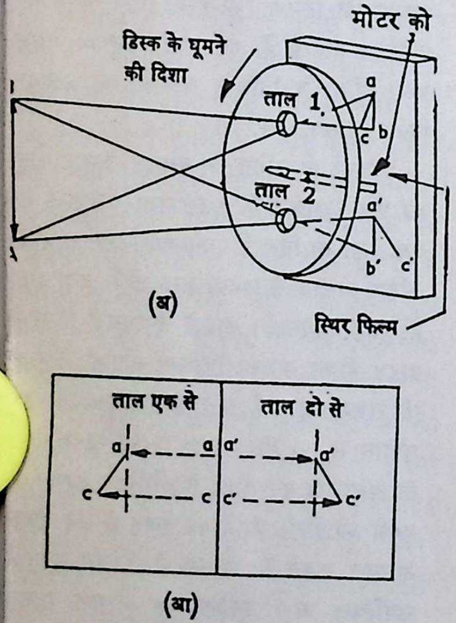

चित्र–1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर आगे बढ़ती है और यदि भू-चुंबकीय रेखा के साथ प्लाज्मा का घनत्व किसी वजह से बढ़ा मिलता है, तो ये तरंगें चुंबकीय रेखाओं के साथ चलने लगती है (चित्र-3). चुंबकीय रेखा के साथ घनत्व का बढ़ना या घटना एक तरंग पथक का निर्माण करता है. उस भाग में किसी वजह से चुंबकीय क्षेत्र के बढ़ या घट जाने से ऐसा होता है. इस लगभग धनुषाकार तरंग पथक से होकर जब तरंगें आगे बढ़ती हैं तो उनमें विक्षेपण हो जाता है. प्लाज्मा माध्यम की वजह से उच्च आवृत्ति की तरंगे निम्न आवृत्ति तरंगों की अपेक्षा अधिक गति से अग्रेषित होती हैं. यदि सभी आवृत्तियां (चित्र-4) एक साथ उत्सर्जित हुई हों तो अंतरिक्ष में प्रवाहित होने की वजह से उनमें विक्षेपण होता है और वे सीत्कारक का निर्माण करती हैं. सीत्कारक तरंगों के विक्षेपण की माप से अंतरिक्ष में अवस्थित इलेक्ट्रानों का घनत्व एवं तापक्रम तथा विद्युत क्षेत्र आदि का अध्ययन किया जा सकता है. अंतरिक्ष के अध्ययन में इन तरंगों का अत्यधिक महत्व रहा है.

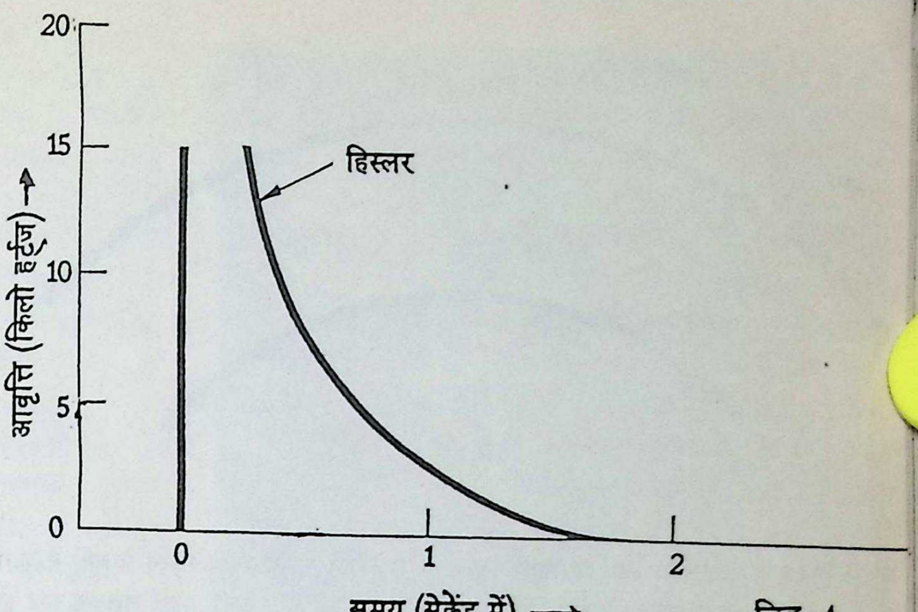

चित्र–4

गर्जनोत्पादक बादल व चक्रवात पर निगाह : तड़ित से उत्सर्जित विद्युत चुंबकीय तरंगें जब आयन मंडल एवं पृथ्वी तल से निर्मित तरंग पथक (चित्र-5) से गुजरती हैं तो विभिन्न आवृत्तियों पर ऊर्जा की कमी अलग अलग होती है. सर्वाधिक ऊर्जा कमी 2 से 3 किलोहर्ट्ज के बीच एवं न्यूनतम कमी 10 किलोहर्ट्ज के आस पास होती है. स्रोत पर अधिकतम ऊर्जा 5 से 7 किलोहर्ट्ज पर होती है. जैसे जैसे तरंग तरंग-पथक से गुजरती है ऊर्जा की कमी की वजह से अधिकतम आयाम (एम्प्लिट्यूड) की आवृत्ति बढ़ती जाती है. अतः अधिकतम आयाम की आवृत्ति का मापन उद्गम स्रोत की दूरी बता सकता है. आयन मंडल की निचली सतह आयनित होने से इन तरंगों में भी विक्षेपण होता है. विक्षेपण की माप तरंग की दूरी पर निर्भर करती है. इन्ही सिद्धांतों पर आधारित ऐसे उपकरण बनाए गए हैं जो तड़ित स्रोतों का पता लगा कर कम्प्यूटर के जरिए पृथ्वी के मानचित्र पर अंकित कर देते हैं. इससे गर्जनोत्पादक बादलों एवं चक्रवात के निर्माण एवं भ्रमण का पता सतत लगा करता है. इन उपकरणों के उपयोग से चक्रवात एवं तड़ित से होने वाली जन धन की हानि रोकी या कम की जा सकती है.

ऐसे ही एक उपकरण, जिसका नाम मांडलिक (एटमास्फियरिक) विश्लेपक है, रुड़की में लगाया गया है. रुड़की के अलावा यह बान, तेल अबीव, प्रिटोरिया एवं ब्यूनोस आयर्स में है. इसमें एक लूप ऐन्टेना एवं एक छड़ ऐन्टेना होता है. दोनों ही 5,7 व 9 किलोहर्ट्ज की आवृत्तियों पर ट्यूब किए गए हैं. इन संकेतों को प्रवर्धकों द्वारा अधिक आयाम पर सूक्ष्मगणक में भेजा जाता है. ये सूक्ष्मगणक तड़ित के अक्षांश व देशांतर ज्ञात कर एक नक्शे पर तड़ित को चिन्हांकित कर देते हैं.

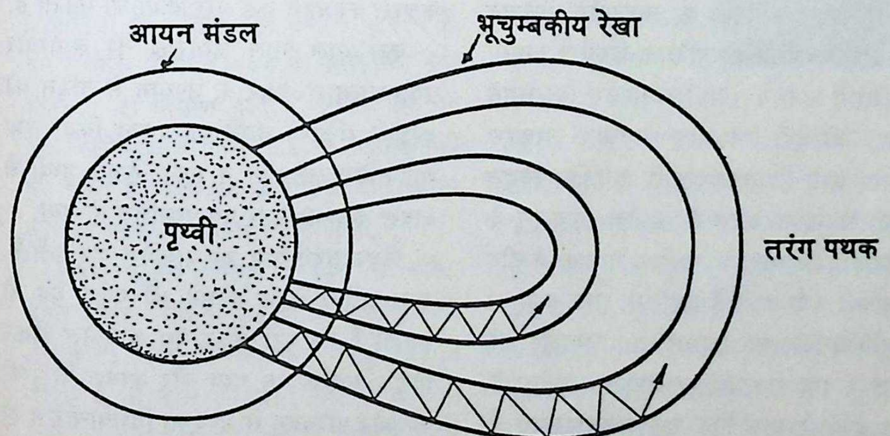

चित्र- 3

भूभौतिकीय अनुसंधान : तड़ित उत्सर्जित विद्युत चुंबकीय तरंगों का भूतल में प्रवेश तथा भिन्न सतहों से परावर्तन व भूतल के समानान्तर वहन भूभौतिकी अनुसंधान (जियोफिजिकल एक्सप्लोरेशन) में महत्वपूर्ण है. आजकल रुड़की विश्वविद्यालय एवं अन्य स्थानों पर यह शोध कार्य चल रहा है कि किस प्रकार इन तरंगों का उपयोग भूगर्भ में स्थित प्राकृतिक तेल व गैस तथा जल की जानकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

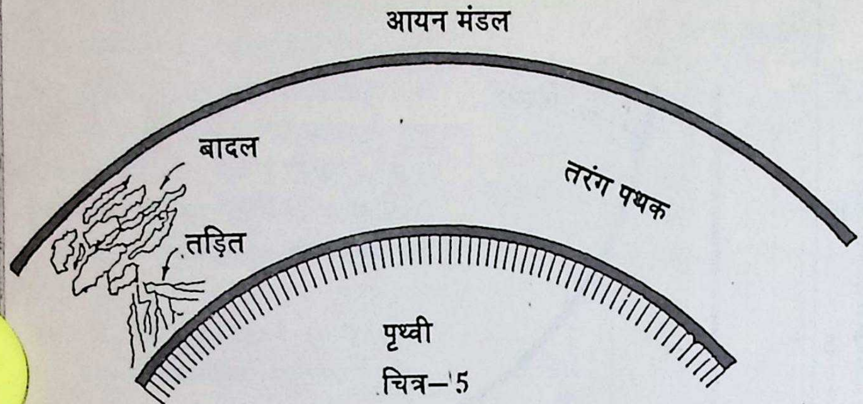

चित्र—5

के लिए किया जा सकता है. यह पाया गया है कि पृथ्वी के लंबवत एवं समानान्तर विद्युत क्षेत्रों का अनुपात सर्वथा स्रोत पर प्रवाहित विद्युत धारा एवं तरंगों के प्रवाहन की दूरी पर निर्भर न करके केवल पृथ्वी की सुचालकता एवं आवृत्ति पर निर्भर करता है. कम आवृत्ति की तरंग पृथ्वी के अन्दर अधिक गहराई तक जा सकती है. अतः विभिन्न आवृत्तियों पर उपर्युक्त अनुपात का मापन पृथ्वी के अंदर विभिन्न गहराइयों की सुचालकता बता सकता है. विभिन्न गहराइयों पर सुचालकता के ज्ञान से हमें भूतल स्थित संपदा का पता लग सकता है.

नाइट्रोजन चक्र : सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य तड़ित का है हमारे वायुमंडल में नाइट्रोजन की मात्रा स्थिर रखना. पौधों एवं जानवरों की सड़न से नाइट्रोजन वायुमंडल में पहुंचती है. तड़ित इस नाइट्रोजन को आक्सीजन से क्रिया करा कर नाइट्रोजन आक्साइड बनाता है. ये नाइट्रोजन आक्साइड वर्षाजल में घुल कर नाइट्रिक अम्ल बनाते हैं. जब यह अम्ल जमीन पर आता है तो विभिन्न पदार्थों से रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप नाइट्रेट बनते हैं. पौधे नाइट्रेटों को शोषित कर अपनी वृद्धि में उपयोग करते हैं. इन पौधों को जानवर खाकर अपने अंदर नाइट्रोजन संचित करते हैं. पौधों एवं जानवरों के विनष्ट होने व सड़ने पर नाइट्रोजन विमुक्त होकर पुनः वायुमंडल में पहुंच जाती है, और यह चक्रीय क्रिया फिर से आरंभ हो जाती है.

कृषि वानिकी तथा अति उच्च एवं पराउच्च विभव संचरण तड़ित के गिरने से वनों में आग लग जाती है तथा खड़ी फसलें जलकर राख हो जाती हैं. अति उच्च एवं पराउच्च विभव पर संचरण लाइन द्वारा विद्युत संचरण पर भी तड़ित का प्रभाव पड़ता है. तड़ित द्वारा प्रेरित विभव विद्युत उत्पादन एवं संचरण में बाधा डालता है. संचरण लाइन के खम्भों पर तड़ित के गिरने से लाइन खराब हो जाती है तथा ऊर्जा की कमी होती है. इससे बचाव के लिए ऐसे अवरोधकों का उपयोग किया जाता है जो तड़ित से प्रवाहित अधिकतम विद्युत धारा को बर्दाश्त कर सके और नष्ट न हो. अतः कृषि, वानिकी एवं ऊर्जा संचरण के क्षेत्र में एक निश्चित भूभाग पर तड़ित का घनत्व अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है.

इस कार्य के लिए कुछ कंपनियों ने एक तड़ित गणक का निर्माण किया है. आधुनिकतम तड़ित गणक अमेरिका की लाइटनिंग लोकेशन एण्ड प्रोटेक्शन इनकारपोरेशन कंपनी ने बनाया है जिसमें लगभग 100 किलोमीटर (या उससे कम) की दूरी पर तीन या चार उपकरण लगाए जाते हैं जो तड़ित से उत्पादित विद्युत क्षेत्र का मापन करते हैं. प्रत्येक उपकरण के आंकड़े दूर-संचार के माध्यम से एक केन्द्रीय कक्ष को भेजे जाते हैं जहां पर लगा कम्प्यूटर प्रत्येक तड़ित का उद्गम पता लगाकर उसे क्षेत्र के एक मानचित्र पर अंकित कर देता है. यह यंत्र पूरे साल दिन रात चलता रहता है. अमेरिका, कनाडा, मेक्सिको, स्वीडन आदि देशों में इसका उपयोग विद्युत कंपनियों, वन एवं कृषि विभागों एवं शोध संस्थानों द्वारा किया जा रहा है. चीन ने भी हाल में इसका उपयोग करना प्रारंभ किया है.

लेकिन इसके लिए तड़ित के गिरने का स्थान और उसकी संख्या ही काफी नहीं है. हमें चाहिए प्रत्येक तड़ित में प्रवाहित होने वाली विद्युत धारा का मान व समय सापेक्ष में उसकी वृद्धिदर. यह मापने के लिए अभी उपयुक्त तकनीक ज्ञात नहीं है. इस दिशा में शोध कार्य रुड़की विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में लेखक एवं उसके सहयोगियों द्वारा किया जा रहा है.

तड़ित ऊर्जा एवं उसका संचयन : तड़ित से बहुत अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है. तड़ित के समय बादल की निचली सतह एवं भूतल के बीच लगभग 10^{10} वोल्ट का विभवान्तर होता है. एक परावर्तन आघात में औसतन 30 किलो एम्पीयर विद्युत धारा प्रवाहित होती है. परावर्तन आघात की अवधि 100 से 150 माइक्रोसेकण्ड होती है. न्यूनतम अवधि 100 माइक्रोसेकण्ड के लिए 3×10^{10} वाट प्रति सेकण्ड की दर से ऊर्जा उत्पन्न होती है. पूरे विश्व में प्रति सेकण्ड लगभग 100 से 200 तक तड़ित होती है. यदि हम 150 तड़ित प्रति सेकण्ड लें तो पूरे विश्व में 4.5×10^{12} वाट प्रति सेकण्ड की गति से तड़ित द्वारा ऊर्जा का उत्पादन हुआ. उपर्युक्त गणना सिर्फ एक अनुमान है और वास्तविक ऊर्जा उत्पादन इससे कम या ज्यादा हो सकता है. यदि इस ऊर्जा का संचय किया जा सके तो विश्व की ऊर्जा की जरूरत को बहुत कुछ पूरा किया जा सकता है.

कुछ साल पहले अमेरिका की लांगम्योर प्रयोगशाला में लेजर के उपयोग से तड़ित को कौंधाने (ट्रिगर) करने का प्रयत्न किया गया था. तड़ित तो कौंध न सकी, केवल पृथ्वी से बादल तक का लेजर पथ प्रकाशित हो गया.

लेजर तरंगें वायु को आयनित कर देती हैं. अतः तड़ित के न कौंधने की वजह यह हो सकती है कि पूरा लेजर पथ आयनित होकर विद्युत चालक बन गया और आवेश के पृथ्वी की ओर परिवहन से उपयुक्त विभवान्तर न हो सका जिससे कि तड़ित कौंध सके. यहीं से सूत्रपात होता है तड़ित ऊर्जा के संचय का.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोगों का विचार है कि लेजर द्वारा भूतल से बादल के पथ को आयनित कर दिया जाए और आवेश के परिवहन से जो विद्युत धारा उत्पन्न हो उसे पानी में प्रवाहित किया जाए. इससे पानी अपने अवयवों हाइड्रोजन व आक्सीजन में विभक्त हो जाएगा. आक्सीजन को अस्पतालों एवं प्रयोगशालाओं में व हाइड्रोजन को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है, पर अभी तक इस पर कोई कारगर प्रयोग नहीं हुआ है. शायद भविष्य में तड़ित ऊर्जा का संचय हो सके.

अति निम्न आवृत्ति तरंगों का अध्ययन : जैसा कि दर्शाया गया है, अति निम्न आवृत्ति की तरंगें पृथ्वी एवं आयन मंडल से निर्मित तरंग पथक से गुजरती हैं और उसकी कमी न्यूनतम होती है. अतः ये तरंगें कई हजार किलोमीटर तक बिना ऊर्जा कम किए जा सकती हैं. इससे भी नीचे परानिम्न आवृत्ति पर तरंगे पृथ्वी का एक चक्कर लगा सकती हैं. पृथ्वी और आयन मंडल एक कोटर (कैविटी) का निर्माण करते हैं जिसकी अनुनादक आवृत्ति लगभग 8 हर्ट्ज है. अतः अनुनादन की वजह से 8 हर्ट्ज की तड़ित तरंगों का आयाम अधिकतम होता है. इसे शुमान अनुनादन कहते हैं.

अति निम्न आवृत्ति पर संचरक (ट्रांसमिटर) का निर्माण बहुत ही मुश्किल है. लेकिन इन आवृत्तियों पर दूरसंचार अति सुविधाजनक होता है. अतः तड़ित अतिनिम्न एवं परानिम्न आवृत्तियों के अध्ययन का एक मात्र स्रोत है. इन आवृत्तियों के अध्ययन के फलस्वरूप कुछ संचरकों का निर्माण हुआ है. लेकिन अब भी 10 किलोहर्ट्ज के नीचे कोई भी संचरक नहीं बन पाया है. अतः इन आवृत्तियों के अध्ययन का एक मात्र स्रोत जनित तरंगें ही हैं.

ट्रिगर तड़ित : वायु परिवहन में तड़ित बहुत बाधक होता है. कई दुर्घटनाएं हो चुकी हैं तड़ित की वजह से. अपोलो-12 अंतरिक्ष यान तड़ित के गिरने से पूर्णतया विनष्ट हो गया था और उसमें सवार सभी अंतरिक्ष यात्री मर गए थे. तड़ित का प्रभाव वायुयान एवं अंतरिक्ष यान पर देखने के लिए उसे (तड़ित को) ट्रिगर करते हैं. वायुयान के स्थान पर एक बड़ा सिलिण्डर उपयोग किया जाता है जिसके अंदर से एक तार निकल कर एक छोटे राकेट से जुड़ा होता है. तार की लम्बाई एक किलोमीटर के लगभग होती है. आवेशित गर्जनोत्पादक बादलों के आने पर राकेट को दागा जाता है और राकेट तीव्र गति से पृथ्वी के विभव को लेकर बादल की तरफ दौड़ पड़ता है. समय के साथ राकेट व बादल के बीच विभवांतर बढ़ता है और कुछ ही क्षणों में 10^6 वोल्ट प्रतिमीटर या उससे ज्यादा हो जाता है. अतः राकेट व बादल के बीच की हवा क्षतिज होकर

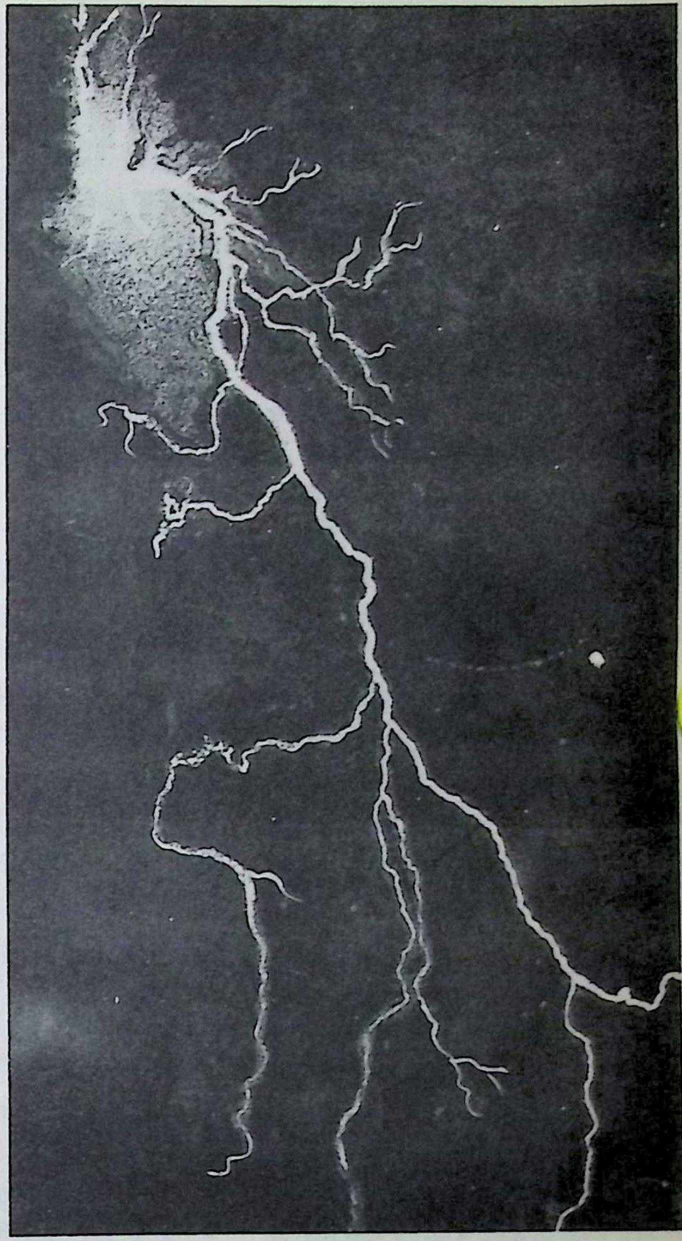

तड़ित का निर्माण करती है. तड़ित की संपूर्ण धारा तार द्वारा सिलिण्डर में पहुंचती है जहां रखे उपकरण इसके प्रभावों का अध्ययन करते हैं. अपनी इच्छानुसार तड़ित को ट्रिगर कर उसके अन्य गुणों का भी अध्ययन किया जा सकता है. अमेरिका की लांगम्योर प्रयोगशाला इस क्षेत्र में अग्रणी रही है.

सूर्य का प्रभाव : तड़ित पर सूर्य के प्रभाव के अध्ययन का प्रारंभ हुए करीब एक दशक से कुछ ज्यादा हुआ है. यदि किसी मोटे रंगीन शीशे से देखा जाए तो सूर्य की सतह पर अने[क] काले धब्बे दिखाई पड़ते हैं. ये सौर धब्बे घट[ते] बढ़ते रहते हैं. परिवर्तन अधिकतम से न्यूनत[म] तथा पुनः अधिकतम की चक्रीय गति से हो[ता] है. इस परिवर्तन की काल अवधि 11 वर्ष हो[ती] है. तड़ित की संख्या में भी सौर धब्बों की त[रह] परिवर्तन होते हैं. इसकी भी काल अवधि [..] वर्ष होती है. पृथ्वी के उच्च अक्षांशों [में] परिवर्तन सूर्य धब्बों के सापेक्ष में धनात्मक [व] निम्न अक्षांशों पर ऋणात्मक होता है. म[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षांशों पर यह परिवर्तन अनियमित होता है. ऐसी मान्यता है कि बादलों में आवेश वायुमंडल स्थित आयनों से होता है जो कि ब्रह्मांड किरणों के आगमन से पैदा होते हैं. भू-चुंबकीय रेखा की वजह से सूर्य से आने वाली किरणें उच्च अक्षांश पर आती हैं तथा अधिक ऊर्जा वाली गैलेक्सीय ब्रह्मांड किरणें जो हर अक्षांश पर समान तौर पर आती हैं सिर्फ निम्न अक्षांश पर ही कारगर हो पाती हैं क्योंकि सूर्य ब्रह्मांड किरणों की पहुंच वहां नहीं होती जब कि उच्च अक्षांश पर उनकी बहुलता होती हैं. गैलेक्सीय ब्रह्मांड किरणें पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश के पहले ही सूर्य से आने वाले सूर्यवात (सूर्य की सतह से चलने वाले आवेशित कण जिनकी गति 400 से 500 किलोमीटर प्रति सेकंड होती है) से परिष्कृत होकर पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करती है. बढ़े हुए सूर्यवात का घनत्व अपने स्थिरविद्युत प्रभाव से गैलेक्सीय ब्रह्मांड किरणों का घनत्व कम कर देता है. इस क्रिया को फोरबुश क्षय कहते हैं. सूर्यवात की बहुलता की वजह से सूर्य ब्रह्मांड किरणों में वृद्धि हो जाती है. यही कारण है कि सूर्य का प्रभाव उच्च व निम्न अक्षांशों पर विपरीत प्रकार से होता है.

तड़ित से बचाव : तड़ित से धन व जन की बहुत क्षति होती है. इससे बचने के लिए अनेक उपाय किये गए हैं. प्राचीन लेकिन सर्वाधिक प्रभावशाली तरीका है तड़ित दंडिका का. एक मोटी धातु (तांबा) दंडिका या छड़ मकान की अधिकतम ऊंचाई से ऊंचा रखा जाता है तथा उसे सीधे पृथ्वी के अंदर ले जाकर एक तांबे की पट्टिका से जोड़ दिया जाता है. पट्टिका इतनी गहराई पर हो कि वह आर्द मृदा के सम्पर्क में रहे. दंडिका का ऊपरी सिरा नुकीला होता है. आवेशित बादलों के आगमन पर स्थिर विद्युत क्षेत्र बहुत अधिक हो जाता है और वहां बिन्दु विसर्जन होने लगता है. यह बिन्दु विसर्जन उपयुक्त विभव होने पर तड़ित को अपनी तरफ आकर्षित करता है और दंडिका के जरिए समस्त विद्युत धारा पृथ्वी में प्रवेश कर जाती है. इससे मकान क्षति से बच जाते हैं. बड़े व लंबे मकानों पर एक से ज्यादा दंडिका लगानी पड़ सकती है.

आधुनिकतम उपाय है लेसर किरणों का उपयोग. मकान की छत या किसी भी स्थल से जिसकी रक्षा करनी हो, गर्जनोत्पादक बादलों के आगमन पर लेसर किरणें बादलों की तरफ डालते हैं. इन लेसर किरणों की वजह से बादल तक का पथ आयनित हो कर सुचालक बन जाता है जिसके जरिए बादलों में उत्पन्न आवेश शनैः शनैः पृथ्वी को चला जाता है. आवेश इकट्ठा ही नही हो पाता कि तड़ित का निर्माण हो. लेकिन यह विधि बहुत महंगी है.

व्यक्तिगत तौर पर गर्जनोत्पादक बादलों की उपस्थिति में कोई भी धातु की चीज अपने पास न रखें. सम्भव हो तो रबड़ के जूते पहने. किसी भी ऊंचे स्थल पर खड़े न हों और न ही वृक्षों के नीचे. तड़ित की आशंका होने पर यदि जमीन पर लेट जाएं तो अच्छा रहेगा.

अन्य ग्रहों पर तड़ित : किसी भी ग्रह पर तड़ित के लिए यह जरूरी है कि उसके वायुमंडल में पानी, अमोनिया या सल्फ्यूरिक अम्ल मौजूद हो और वातावरण अस्थिर हो ताकि बादलों का निर्माण हो सके और विद्युत आवेश उत्पन्न हो सके या फिर धूल भरी आंधी चले या ज्वालीमुखी का उद्गार हो. तड़ित से उत्सर्जित रेडियो तरंगें ग्रह के आयन मंडल को भेद कर पृथ्वी तक नहीं आ सकतीं. घने बादल या धूल से भरा वातावरण तड़ित से प्रकाश को भी पृथ्वी तक नहीं आने देता. अतः एकमात्र अध्ययन का स्रोत है अंतरिक्ष यान. अंतरिक्ष यान में लगे यंत्र सीत्कारक की उपस्थिति बताते हैं और उसमें निहित कैमरा ग्रह की सतह का फोटो लेता है. सीत्कारक की उपस्थिति से तड़ित के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है.

बुध ग्रह का वायुमंडल अत्यन्त विरल है. वहां पर पवन, कन्वेक्शन एवं टर्बुलेन्स तथा रासायनिक क्रियाओं का अत्यन्त अभाव है. अतः तड़ित होने की कोई सम्भावना नहीं है. शुक्र का वायुमंडल (कार्बन डाइआक्साइड) का बना है और कार्बन डाइआक्साइड के ही बादलों से इसकी सतह आच्छादित होती है. इन बादलों में सल्फ्यूरिक एसिड की उपस्थिति आवेश पैदा करने में सहायक होती है. सर्वप्रथम (1978 में) सोवियत अंतरिक्ष यान वेनरा 11 व 12 शुक्र की सतह पर उतरे और उन्होंने तड़ित का अध्ययन किया. यह पाया गया कि शुक्र पर तड़ित के गुण वही हैं जो पृथ्वी पर, लेकिन उसमें तड़ित की संख्या पृथ्वी की संख्या से ज्यादा है. सन् 1997 में 'पायोनियर वीनस आर्बिटर' अंतरिक्ष यान द्वारा भी शुक्र पर तड़ित होने की पुष्टि की गई. मंगल ग्रह पृथ्वी के बहुत समान है लेकिन पुरानी धारणा कि वहां पर आबादी है और नहरें तथा खेती है, आधुनिक प्रयोगों से निर्मूल सिद्ध हो चुकी है. CO_2 के बने वायुमंडल में गर्जनोत्पादक बादलों का निर्माण होता है व धूलभरी आंधियां चलती हैं. धूल भरी आंधियां जिनमें SiO_2 और Fe_2O_3 कणों की बहुलता होती है (जिनकी वजह से लाल, भूरा व गुलाबी रंग का वातावरण बन जाता है) हफ्ते तक चलती रहती हैं. 'मेरिनर 9' अंतरिक्ष यान ने पाया कि आंधी लगातार कई महीने तक चलती रही. इन आंधियों में पवन वेग 500 किलोमीटर प्रति घंटा तक पहुंच जाता है और तड़ित के लिए उपयुक्त वातावरण मिलता है. लेकिन कभी तड़ित देखी नहीं गई. मंगल पर चुंबक मंडल नहीं है अतः तड़ित जनित सीत्कारक भी रिकार्ड नहीं किए जा सकते.

बृहस्पति सौर मंडल का सबसे बड़ा व अधिकतम वेग से घूमने वाला ग्रह है. वहां तड़ित के लिए समस्त उपयुक्त परिस्थितियां मौजूद हैं. अंतरिक्ष यानों के जरिए यह पाया गया है कि वहां पृथ्वी की भांति ही सीत्कारक होते हैं और तड़ित होती हैं. पृथ्वी के साधारण तड़ित की अपेक्षा बृहस्पति के तड़ित 100 गुना प्रकाशमान होते हैं.

शनि का आकार व वेग बृहस्पति के बाद दूसरे स्थान पर है. प्राचीन काल से ही इसने खगोलविदों का ध्यान आकर्षित किया है. इसका वायुमंडल बृहस्पति के समान और आयन मंडल व चुंबक मंडल भी है. तड़ित होने की सारी परिस्थितियां मौजूद हैं. पर अभी तक किसी यान ने तड़ित को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से नहीं देखा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरुण, वरुण एवं कुबेर या यम ग्रहों पर न तो तड़ित के उपयुक्त वातावरण हैं और न कभी तड़ित देखी ही गई है. ये पृथ्वी के सुदूरतम ग्रह हैं.

भारत में तड़ित अनुसंधान

भारत में तड़ित अनुसंधान का कार्य सन् 1947 में प्रारंभ हुआ जब स्वर्गीय प्रो० एस०आर० खस्तगीर ढाका विश्वविद्यालय छोड़कर भारत आए. बनारस में उनके बोस इंस्टीट्यूट एवं तत्पश्चात विश्वभारती चले जाने के बाद स्वर्गीय प्रो० तांभी ने यह कार्य संभाला एवं एक सघन प्रयोगशाला का निर्माण किया. प्रो० तांभी की मृत्यु के बाद यह कार्य काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में तो बंद हो गया पर इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालॉजी में किसी न किसी प्रकार चलता रहा. साथ ही कार्य प्रारंभ हुआ रुड़की विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में. वहां एक सशक्त प्रयोगशाला की स्थापना की गई एवं तड़ित, इससे विद्युत चुंबकीय तरंगों का उत्सर्जन तथा सीत्कारक पर सघन कार्य हुआ. इस समय देश में तड़ित अनुसंधान में यह विभाग अग्रणी है और विश्व की कुछ गिनी चुनी प्रयोगशालाओं में इसका स्थान है. पूना विश्वविद्यालय में भी इस क्षेत्र में सफल कार्य हो रहा है. कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी इस विषय पर कार्य जारी है.

तड़ित जनित सीत्कारक का अध्ययन रुड़की के अलावा क्षेत्रीय इंजीनियरी कालेज, श्रीनगर, भोपाल विश्वविद्यालय, भारतीय भूचुम्बकत्व संस्थान, बम्बई, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, राजा बलवंत सिंह कालेज, आगरा, पूना विश्व विद्यालय आदि स्थानों पर हो रहा है.

तड़ित रेडियो तरंगों (मांडलिक) का पृथ्वी आयनमंडल तरंग पथक में संवहन पर कार्य रुड़की विश्वविद्यालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी, मद्रास, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पूना विश्वविद्यालय, आंध्र विश्वविद्यालय आदि स्थानों पर हो रहा है.

तड़ित अनुसंधान के कुछ क्षेत्र

प्राचीनतम काल से मानव जाति की रुचि होने एवं विश्वभर में शोध होने के पश्चात भी तड़ित के विषय में कई प्रश्न अभी तक अनुत्तरित हैं. कई ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें अनुसंधान समाज के लिए उपयोगी हो सकते हैं. इसका संक्षिप्त विवरण निम्न हैं.

1. वह कौन सी सूक्ष्मभौतिकीय क्रियाएं हैं जिनसे इतने अधिक आवेश का निर्माण होता है कि एक बार प्रारंभ होने पर औसतन 10 ये 20 सेंकड के अंतराल से तड़ित होती रहती है. कभी-कभी इतनी तड़ित होती है (0.1 सेकण्ड के कम अंतराल से) कि पूरा बादल ही लगातार प्रकाशमान रहता है. यद्यपि विश्वभर में इस पर शोधकार्य चल रहा है, पर अभी तक कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिल पाया है.

2. तड़ित प्लाज्मा है. प्लाज्मा भौतिकी के सिद्धान्त के अनुसार समान ताप पर समान आयन संख्या तड़ित के किसी भी अवयव में होनी चाहिए. सोपान आघात व परावर्तन आघात दोनों का ही तापक्रम लगभग 4×10^4 केलविन है. लेकिन सोपान आघात से लगभग 10^{18} आयन प्रति घनमीटर होते हैं, जबकि परावर्तन आघात में 10^{25} प्रति घनमीटर. इस विसंगति का कारण अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है.

3. कुछ वैज्ञानिक प्रयोगों से यह देखा गया है कि गर्जनोत्पादक बादलों के खत्म होने के बाद वायुमंडल में नाइट्रोजन आक्साइड व ओजोन (O_3) की मात्रा बढ़ जाती है. लेकिन लेखक व उसके कुछ विदेशी सहयोगियों ने तड़ित के अनेक वर्णपटों का अध्ययन किया और पाया कि नाइट्रोजन के किसी भी आक्साइड से प्रकाश की किसी भी तरंग के उत्सर्जन का कोई अभिलेख नहीं है. अतः किस तापक्रम पर व किस प्रकार नाइट्रोजन आक्साइड बनते हैं हमें मालूम नहीं. लेखक व उसके सहयोगी इस विषय पर कार्यरत हैं.

4. तड़ित से उत्सर्जित रेडियो तरंगे भूतल में प्रवेश कर विभिन्न सतहों से परावर्तित हो पुनः सतह पर आं जाती हैं. किसी भी एन्टेना पर इन तरंगों के साथ साथ सीधे वायु के माध्यम से आने वाली व जमीन की ऊपरी सतह से परावर्तित तरंगें भी संयुक्त रूप से प्रभाव डालती हैं. अतः विभिन्न आवृत्तियों पर इन तरंगों का अध्ययन भूतल की विभिन्न सतहों की गहराई व विद्युत सुचालकता पर प्रकाश डाल सकता है जिसका उपयोग धातु, जल व पैट्रोल जैसी भूसंपदा का पता लगाने में किया जा सकता है. इस विषय पर भी रुड़की विश्वविद्यालय में कार्य हो रहा है. यह विधि पूर्णतया विकसित होने पर अन्य विधियों की अपेक्षा बहुत कम खर्चीली व सुविधाजनक होगी.

5. कृषि, वानिकी एवं विद्युत ऊर्जा संचरण में तड़ित की जानकारी बहुत लाभदायक होती है. इसके लिए कई उपकरण बने हैं. मुख्य दो हैं: (1) एड इलेक्ट्रानिक्स, बर्लिन द्वारा बनाया गया अतिनिम्न आवृत्ति मांडलिक विश्लेषक व (2) एल एल पी कारपोरेशन, अमेरिका का बना एल एल पी गणक. ये सभी उपकरण दिए गए क्षेत्र में सिर्फ तड़ित की संख्या व समय बताते हैं. लेकिन तड़ित में प्रवाहित अधिकतम विद्युत धारा के अधिकतम समय परिवर्तन की गति का ज्ञान बहुत जरूरी है. इस समय ऐसा कोई भी उपकरण नहीं है जो इसे माप सके.

इस कार्य के लिए विद्युत क्षेत्र के उपयुक्त माडल की जरूरत है जिसमें सभी प्रकार की रेडियो तरंगों का उपयुक्त समावेश हो. इसमें सीधी चलने वाली भूतल से परावर्तित, विभिन्न सतहों से परावर्तित, भूतल के समानान्तर संचरण लाइन विधा में प्रवाहित, आयन मंडल से परावर्तित एवं पृथ्वी-आयन मंडल-तरंग पथक से प्रवाहित सभी प्रकार की रेडियो तरंगों का उचित मात्रा में प्रतिनिधित्व होना अति आवश्यक है. एक बार माडल तैयार हो जाने के बाद उपयुक्त उपकरण बनाया जा सकता है. इस प्रकार का कार्य रुड़की व टोरोन्टो (कनाडा) विश्वविद्यालयों के आपसी सहयोग से हो रहा है.

इनके अलावा अनेक विषय हैं जिन पर कार्य अति आवश्यक है क्योंकि इनसे संबंधित सूक्ष्मभौतिकीय क्रियाएं हमें ज्ञात नहीं हैं. इन सबका उल्लेख बाद के किसी लेख में करेंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक सुझाव

विशाल अफ्रीकी घोंघा— नाशीजीव या विदेशी मुद्रा का स्रोत

❑ डा० जगदीप सक्सेना

❑ घोंघे अपनी सुस्त चाल के लिए मशहूर हैं. पर पेड़-पौधों को नुकसान पहुंचाने के लिए फर्राटा भरना तो जरूरी नहीं. सुस्त घोंघे फसलों को काफी नुकसान पहुंचाते हैं. इनमें सबसे खतरनाक है विशाल अफ्रीकी घोंघा **अकेटिना फुलिका.** यह जमीन पर रहने वाला सबसे बड़ा घोंघा है. कोई दस साल पहले पश्चिमी अफ्रीका में इस जाति की साढ़े पंद्रह इंच (39.3 सेंटीमीटर) लंबा घोंघा मिला था. इसके खोल की लंबाई पौने ग्यारह इंच (27.3 सेंटीमीटर) थी और भार था पूरे दो पौंड (900 ग्राम). यह एक रिकार्ड है. विशाल अफ्रीकी घोंघा मूलरूप से पूर्वी अफ्रीका का निवासी है. पर आज यह दुनिया के ज्यादातर देशों में मौजूद है, भारत में भी. यहां यह सब्जियों, फलों, फूलों और कई महत्वपूर्ण बागानी फसलों को नुकसान पहुंचा रहा है.

हिन्दुस्तान में कैसे आया ?

विशाल अफ्रीकी घोंघे को हिन्दुस्तान में लाने का काम जानबूझ कर अंग्रेजों ने किया. डब्ल्यू०एच० बेन्सन नाम के एक अंग्रेज घोंघा विज्ञानी ने फरवरी 1847 में मॉरिशस से कुछ घोंघे इकट्ठे किए और संगरोध पानी 'क्वैरेन्टाइन' के तमाम नियमों को ताक में रख कर कलकत्ता ले आए. इन्हें चौरंगी गार्डन में छोड़ दिया. खुद वापस इंग्लैंड चले गए. वहां उन्हे खबर मिली कि यह अपनी तादाद तेजी से बढ़ाकर पड़ोसी राज्यों में घुस चुका है. इस खबर से बेन्सन महोदय को तो खुशी ही हुई होगी.

कैप्टन हटन नाम के एक साहब बहादुर ने रही-सही कसर पूरी करने की कोशिश की. उन्हानें कलकत्ता से कुछ घोंघे लिए और पहाड़ों की रानी मसूरी (उत्तर प्रदेश) में छोड़ दिए. वहां भी ये अपनी तादाद बढ़ाने लगे. पर एक बार कड़ाके की सर्दी पड़ी और सारे के सारे चल बसे. इस तरह कुदरत ने हटन साहब के मंसूबों पर पानी फेर दिया.

कलकत्ता के बाहर इनकी मौजूदगी की खबर पहले-पहल बैरकपुर (कलकत्ता से 25 किलोमीटर दूर) से मिली. फिर राजमहल से, जो कलकत्ता से कोई डेढ़ सौ किलोमीटर दूर बिहार में है. तब से लगातार इसके प्रसार की खबरें आ रही हैं. कलकत्ता विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों एस०के० राउत और के०सी० घोष ने देश में घोंघे की स्थिति जानने के लिए पूरे देश का सर्वेक्षण किया और सन् 1984 में इसकी रिपोर्ट प्रकाशित की. इस रिपोर्ट और वैज्ञानिकों की अन्य खबरों के अनुसार भारत में विशाल अफ्रीकी घोंघे की स्थिति कुछ इस प्रकार है.

विशाल अफ्रीकी घोंघा पश्चिमी बंगाल के उत्तरी और पूर्वी हिस्सों में व्यापक रूप से मौजूद है, पर पश्चिमी जिलों में दुर्लभ है. असम के पश्चिमी भागों में यह सब्जी की फसलों का प्रमुख नाशीजीव है. खासतौर से कामरूप और गोलपाड़ा जिलों की हालत काफी खराब है. नई दिल्ली के भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक (अब अवकाश प्राप्त) डा० पी०डी० श्रीवास्तव ने इन्हें भारी तादाद में गुंवाहाटी में भी देखा है. उड़ीसा का बालासोर जिला भी इनसे त्रस्त है. बिहार के कई जिलों में इनकी मौजूदगी देखी

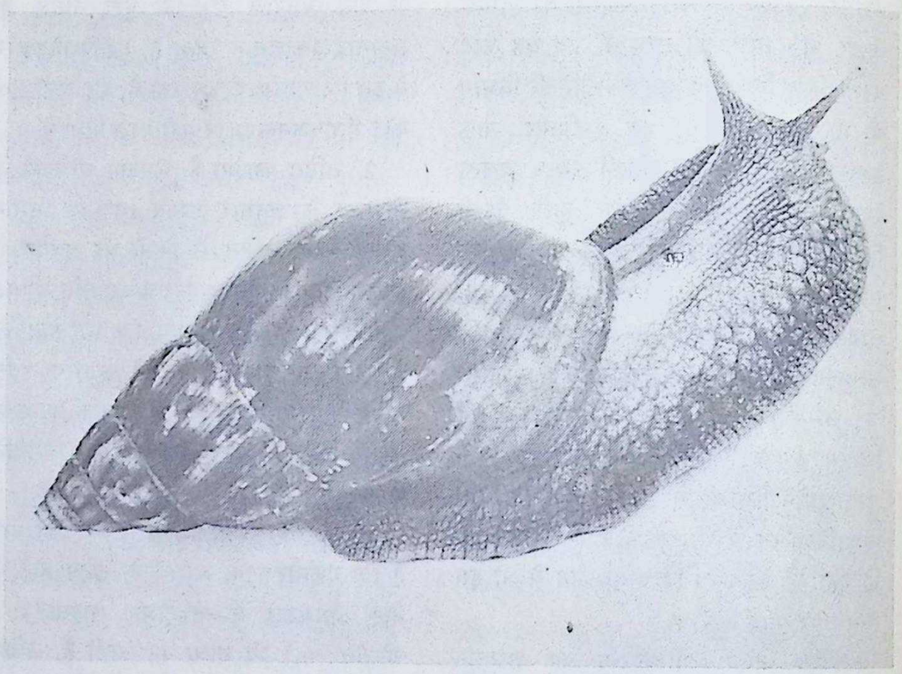

विश्व का सबसे बड़ा थल घोंघा : अकेटिना फुलिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई है, जैसे दरभंगा, मुजफ्फरपुर, मोतिहारी, पूर्णिया, सहसरा और संथाल परगना. नागालैंड के दीयांपुर सब-डिवीजन में इसे महत्वपूर्ण नाशीजीव बताया गया है. मेघालय, त्रिपुरा और मणिपुर में भी घोंघे से त्रस्त इलाके देखे गए हैं.

देश के दक्षिणी भागों में कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में विशाल अफ्रीकी घोंघा मौजूद है. केरल में पालघाट, कोजीकोड, कालीकट, मल्लापुरम् और त्रिचूर में इनकी भारी तादाद है. तमिलनाडु में मद्रास, अन्नामलाई और तम्बारन इससे त्रस्त हैं. कर्नाटक में इसे केवल बंगलौर शहर के आस-पास देखा गया है. अभी तक आन्ध्र प्रदेश में इसके कदम नहीं पड़े हैं.

महाराष्ट्र में विशाल अफ्रीकी घोंघे की मौजूदगी के बारे में पहले काफी संदेह था. पर हाल ही में कोंकण कृषि विद्यापीठ, डपोली के वैज्ञानिक प्रोफेसर आर०बी० डुम्बरे ने जीवित घोंघों को नई दिल्ली भेजकर इस संदेह को खत्म कर दिया है. लगता है मराठवाड़ा क्षेत्र (औरंगाबाद) में इनकी मौजूदगी की पहली

विशाल अफ्रीकी घोंघा महत्वपूर्ण नाशीजीव है. यह कई फसलों को नुकसान पहुंचाता है. इसे कोई 144 साल पहले हिन्दुस्तान लाया गया. अब देश के अनेक हिस्सों में इसका प्रकोप है. घोंघे का प्रसार लगातार बढ़ता ही जा रहा है, फिर भी इस पर काबू पाने के लिए गंभीर प्रयास नहीं किए जा रहे हैं. इस घोंघे का एक दूसरा रूप भी है, यह प्रोटीन का अच्छा स्रोत है, इसे खाया जा सकता है, विदेशों में इसकी भारी मांग है. घोंघे को इकट्ठा करके निर्यात किया जा सकता है. बहुमूल्य विदेशी मुद्रा कमाई जा सकती है. एक अनुसंधान संस्थान ने घोंघों को इकट्ठा करने और पालने की तकनीक भी विकसित की है. प्रस्तुत है इस घोंघे से जुड़े आर्थिक पहलुओं पर जानकारी.

खबर भी सही है. हाल ही में मुंबई में घोंघे की बड़ तादाद में मौजूदगी की खबर अखबारों में छपी है. कहते हैं ये वहां के हजारों 'किचन गार्डन' में काफी नुकसान कर रहे हैं.

उत्तर प्रदेश के बिजनौर, धामपुर और मुरादाबाद जिलों से घोंघे की मौजूदगी की रिपार्ट है. पर वहां के पहाड़ी इलाके अभी तक इससे बचे हैं.

देश के घोंघा त्रस्त इलाकों में सबसे कम घोंघे नागालैंड के चुमुकेदीमा नामक जगह प पाए गए—केवल 4.12 प्रति वर्ग मीटर, जबकि सबसे ज्यादा घोंघे बिहार की चैबासा स्थित टेल्को कॉलोनी में थे—38 प्रति वर्ग मीटर देखा गया है कि जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ती जाती है, घोंघों की तादाद भी घटती है. बारह सं मीटर से ज्यादा ऊंचाई पर ये जिंदा नहीं र पाते. इसका कारण हवा का कम दबाव आक्सीजन की कमी या कम तापमान हो सकता है. वैसे इस पर भली प्रकार अध्ययन नहीं हुआ है.

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह विशाल अफ्रीकी घोंघे से बुरी तरह त्रस्त हैं. यहां ये अंग्रेजों की नहीं बल्कि जापानियों की देन हैं वहां के बुजुर्ग बताते हैं कि दूसरे विश्व युद्ध से पहले यहां घोंघे का नामोनिशान नहीं था जापानी सिपाही घोंघों को खाने के लिए यह लाए और छोड़ कर चल दिए. अब यह पोर्ट ब्लेयर और दक्षिणी अंडमान के मुख्य द्वीप के गांवों के अलावा और भी कई द्वीपों तक पहुंच गया है, जैसे—लांग आइलैंड, रंगत मायाबंदर, डिगलीपुर, कार निकोबार, कछाल कारमोटा, नानकौरी और ग्रेट निकोबार. य अलग-अलग द्वीपों को भेजी जाने वाली पौधों से चिपक कर नए-नए द्वीपों तक पहुंचता रहता है.

विशाल अफ्रीकी घोंघे के इतने प्रसार के बावजूद अभी भी इसके फैलाव पर रोक लगा

घोंघे के अंडे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए कोई कारगर कदम नहीं उठाया गया है और न ही देश में नियमित रूप से इन पर खोज कार्य हो रहा है. वैज्ञानिकों द्वारा पहले ही सुझाए गए प्रबंध उपायों को भी नहीं अपनाया जा रहा है.

हमारे पड़ोसी देश भी विशाल अफ्रीकी घोंघे के प्रकोप से बच नहीं पाए हैं. बंगलादेश, बर्मा, श्रीलंका, मालदीव द्वीपसमूह, चीन आदि देशों में यह घोंघा एक समस्या बना हुआ है. हिन्द महासागर के कुछ अन्य द्वीप भी इससे त्रस्त हैं, जैसे सेशेल्स, रियूनियन और मॉरिशस. हांगकांग, ताइवान, थाइलैंड, कंबोदिया, वियतनाम, मलाया, सिंगापुर, इन्डोनेशिया, फिलीपीन्स, और जापान जैसे एशियाई देशों के अलावा आस्ट्रेलिया और अमेरिका के कई देशों व द्वीपों में घोंघे की मौजूदगी की खबर है.

खतरनाक नाशीजीव

अकेटिना फुलिका को खेती का महत्वपूर्ण नाशीजीव माना जाता है. यह रोज अपने भार के दस फीसदी के बराबर आहार ग्रहण करता है. गनीमत यह है कि इसमें पेड़-पौधों का हिस्सा केवल एक-चौथाई है. बाकी तीन-चौथाई आहार के लिए यह गंदगी और कूड़े-कर्कट पर निर्भर है. यह पेड़-पौधों के सड़े-गले हिस्से, गोबर, मिट्टी, दीवारों की सफेदी, गीले कागज, गत्ते वगैरह बड़े मजे से उदरस्थ करता है. अपनी ही जाति के मरे घोंघों और अन्य प्राणियों को खाने में भी इसे कोई हिचक नहीं.

पेड़-पौधों में भी इसकी पसंद बड़ी व्यापक है. एक विदेशी वैज्ञानिक एफ०जे० ओल्सन ने अपने शोध प्रबंध में 227 ऐसे पौधे गिनाए हैं जिन्हें घोंघा खाता है. इनमें से 177 फूल वाले पौधे यानी 'एंजियोस्पर्म' हैं. ओल्सन ने इनमें से 88 को घोंघे द्वारा खास पसंद किया जाने वाला बताया है. एक अन्य प्रसिद्ध घोंघा विज्ञानी ए०आर० मीड ने घोंघों के 'मीनू' में 86 पौधे दर्ज किए हैं. अपने देश में राउत और फोब ने घोंघों द्वारा नुकसान होने वाले 66 पौधों की सूची तैयार की है. इसमें सब्जी, फल, सजावटी पौधे और आर्थिक महत्व के कुछ अन्य पौधे शामिल हैं. इनमें से कुछ ऐसे हैं जिन्हें बहुत नुकसान होता है और कुछ की क्षति नगण्य होती है. इन वैज्ञानिकों की सूचनाओं और खुद अपने अनुभवों के आधार पर डा० पी०डी० श्रीवास्तव ने जो स्थिति बताई है, वह इस प्रकार है—

क्रूसीफेरी कुल की पातगोभी पूरे देश में उगाई जाती है. यह घोंघा इसे पौध अवस्था से बड़े होने तक हर अवस्था में खाता है. इसी कुल की फूल गोभी और मूली को भी यह काफी नुकसान पहुंचाता है.

कद्दूवर्गीय यानी 'कुकरबिटेसी' कुल के पौधों को ये घोंघे आमतौर पर बहुत पसंद करते हैं. सीताफल, खीरा और तरोई इसके विशेष पसंद वाले पौधे हैं. ये इनकी पत्तियों और बेल को काफी नुकसान पहुंचाते हैं. कम आयु के पौधे तो इनके खाने से अक्सर मर जाते हैं. इस कुल में करेला अपवाद मालूम पड़ता है. सोलेनेसी कुल के बैंगन की पौध और बड़े पौधों की पत्तियों को घोंघे द्वारा खाते देखा गया है.

फलीदार फसलें यानी लेग्युमिनोसी कुल की फसलें हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनसे सब्जी, दाल के अलावा खाद्य तेल भी मिलता है. सेम की पत्तियों और शाखाओं को ये घोंघे खूब खाते हैं. फलियां लग जाने पर ये बेल पर चढ़कर फलियां भी खा जाते हैं. ये मूंगफली के पौधे की पत्तियों, फूल, शाखाओं आदि सभी को खा जाते हैं. कभी-कभी इनके प्रकोप से पूरी फसल चौपट हो जाती है.

कम्पोजिटी कुल के पौधों को भी विशाल अफ्रीकी घोंघा खूब पसंद करता है. ये सलाद

विशाल अफ्रीकी घोंघे का जीवन

विशाल अफ्रीकी घोंघा **अकेटिना फुलिका** गैस्ट्रोपोडा वर्ग और अकेटिनी कुल का सदस्य है. इसका खोल शंकुभ यानी 'कोनाएड' होता है. पीले रंग के खोल पर भूरी बेड़ी धारियां होती हैं. खोल के टूट-फूट की ये अपने स्राव से मरम्मत करते हैं. यह रात्रिचर और द्विलिंगी है. यानी प्रत्येक घोंघा अंडा देने में सक्षम होता है. यह विविधभक्षी है. कूड़ा-कर्कट वगैरह खाकर प्रकृति में 'स्केवेंजर' का काम करता है. इन्हें सूर्यास्त और सूर्योदय की जानकारी कैसे होती है, इसका सही पता नहीं है. बरसात का मौसम इनकी सक्रियता का मौसम है, तभी इनमें लैंगिक मिलन भी होता है.

वैज्ञानिकों में घोंघे की लैंगिक परिपक्वता की आयु पर मतभेद हैं. पर यह छह महीने से एक साल के बीच बताया गया है. कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार ये घोंघे बिना लैंगिक मिलन के भी अंडे दे सकते हैं. अंडे देने की क्रिया दो घंटे तक जारी रह सकती है. अनुकूल दशाओं में अंडों से बच्चे निकलने में 8-10 दिन का समय लगता है. अंडों से बच्चे निकलते ही मिट्टी, पौधों की पत्तियां, अंडों की टूटी खोल कैल्शियम की जरूरत पूरी करने के लिए खाने लगते हैं. ये एक बार में 100-300 तक अंडे देते हैं.

विशाल अफ्रीकी घोंघे का जीवनकाल औसत रूप से 5 साल बताया गया है. अगर ये हर साल चार अंडे दें और हर बार अंडों की संख्या 150 मानी जाए और पैदा होने वाले सारे घोंघे जीवित रहें तो पांच साल में एक घोंघे से 121,432,399,695,050 घोंघे हो जाएंगे.

ये घोंघे अपने जीवन का काफी समय निष्क्रियता की अवस्था में बिताते हैं. निष्क्रियता की अवधि जितनी लंबी होती है, उतने ही ज्यादा घोंघे निष्क्रियता की अवस्था में मरते हैं. उत्तर भारत में निष्क्रियता की अवस्था नवम्बर-दिसम्बर से मानसून शुरू होने तक बनी रहती है. दक्षिणी भारत में यह अवधि 4-6 महीने की होती है और अंडमान-निकोबार में 4-5 महीने की.

—डा० जगदीप सक्सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पत्तियों को खूब खाते हैं. कभी-कभी तो पूरा पौधा ही खा जाते हैं. गेंदा के पौधों के ये घोंघे बहुत बड़े शत्रु हैं. इनसे गेंदे की पौध, बड़े पौधे, शाखाएं, फूल, कलियां कुछ भी नहीं बचता है. इस घोंघे के प्रकोप के कारण ही पश्चिम बंगाल के 24-परगना, हावड़ा, मिदनापुर और कलकत्ता जिलों तथा उड़ीसा के बालासोर जिले में कई जगहों पर गेंदे की खेती बंद की जा रही है.

पार्टुलेकेसी कुल के सजावटी पौधे पार्टुलेका को भी घोंघा खूब पसंद करता है. यह इसकी पत्तियां, शाखा और कभी-कभी पूरा पौधा खा जाता है. एक अन्य लोकप्रिय सजावटी पौधा 'मनीप्लांट' भी इस घोंघे का प्रिय भोजन है.

फलों में पपीता और केला को विशाल अफ्रीकी घोंघे से काफी नुकसान होता है. पपीते के पौधे को ये पूरा ही खा जाते हैं. पपीते के पेड़ पर चढ़कर फलों और फूलों को भी खा जाते हैं. कभी-कभी ये पपीते के पेड़ की छाल भी खुरच कर खाते हैं. पश्चिम बंगाल के 24-परगना, जलपाईगुडी और कलकत्ता में इसके कारण पपीते की बागवानी करना मुश्किल हो रहा है.

ये घोंघे अक्सर केले की पत्तियों पर चिपके

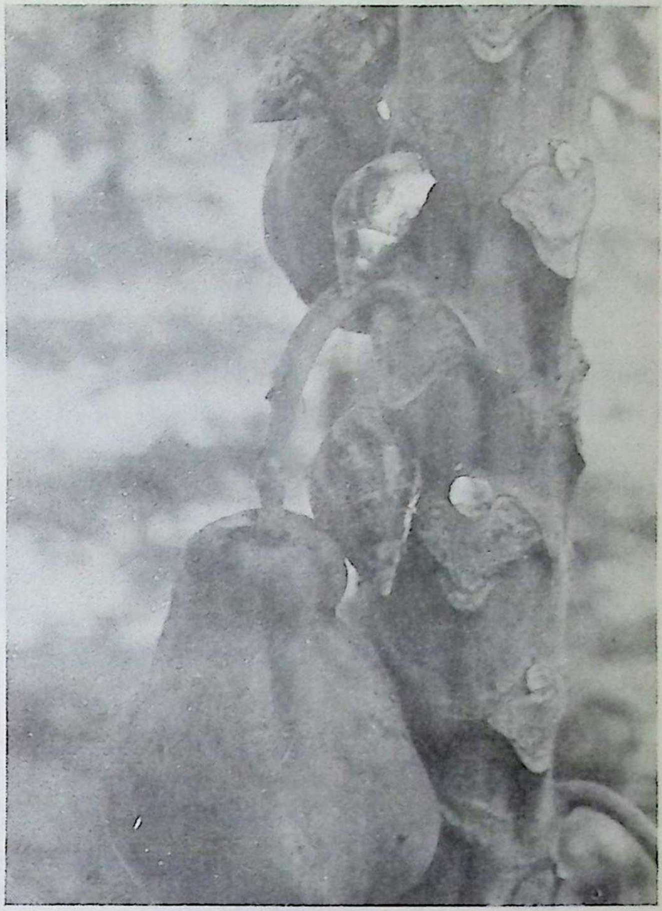

घोंघे पपीते के फल तथा फूलों के अलावा पेड़ की छाल को भी खा जाते हैं

देखे गए हैं. जब केले के फल छोटी अवस्था में होते हैं तो ये घोंघे उनके छिलकों को कुतर-कुतर कर खाते हैं, जिससे फलों पर निशान बन जाते हैं. बाजार में ऐसे फलों का कम दाम मिलता है क्योंकि ये देखने में खराब लगते हैं. हालांकि इनका गूदा ठीक होता है.

कई महत्वपूर्ण बागानी फसलें भी इस घोंघे से प्रभावित होती हैं. कॉफी की पौध को नर्सरी में इससे नुकसान होता है. इससे बड़े पौधों के नुकसान की कोई खबर नहीं है. सुपारी की पत्तियों को ये घोंघे नर्सरी में थोड़ा-बहुत खाते हैं. ये पेड़ पर चढ़ कर सुपारी के फूल और नए बने फलों को खाते हैं. इन्हें सुपारी के पेड़ की छाल को भी खुरच-खुरच कर खाते देखा गया है. ये घोंघे रबड़ के पौधे और कलिकाओं को भी खाते हैं. कभी-कभी घोंघे के प्रकोप से पौध नर्सरी में ही मर जाती हैं. ये रबड़ का क्षीर

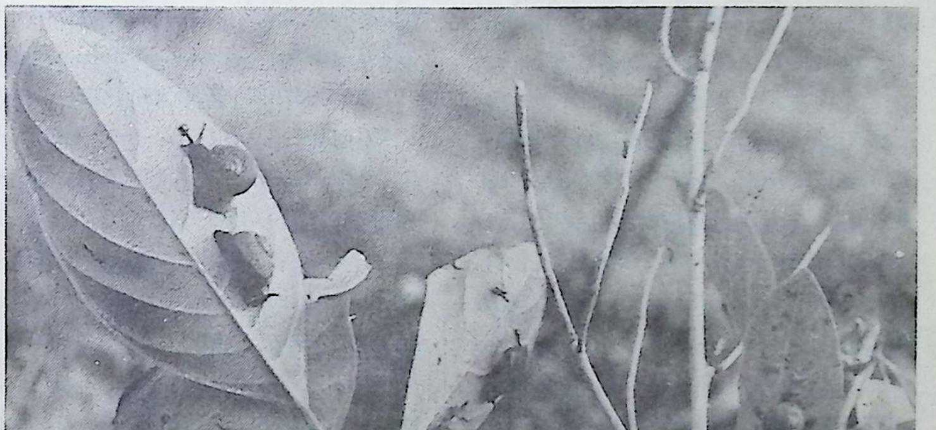

पत्तियों को खाते हुए घोंघे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीते देखे गए हैं. इसे आर्थिक रूप से बेहद महत्वपूर्ण जूट के छोटे पौधों को भी हानि पहुंचाते देखा गया है. शायद सागौन भी इससे प्रभावित होता है.

उपयुक्त महत्व क्यों नहीं ?

इतनी महत्वपूर्ण फसलों को नुकसान पहुंचाने के बावजूद अभी भी हमारे पास इस नाशीजीव द्वारा होने वाले नुकसान के मात्रात्मक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं. इसका कारण विशाल अफ्रीकी घोंघे पर नियमित रूप से खोज का कार्य न होना है. खासतौर से इसके व्यावहारिक पहलुओं पर न के बराबर काम हो रहा है. पर इसका भी ठोस कारण है. ये घोंघे रात में निकलते हैं और सूर्योदय होने से पहले ही छिप जाते हैं. इसलिए शुरू में इन्हें नाशीजीव के रूप में पहचाना ही नहीं जा सका. जब पहचाना गया तो लोगों ने सोचा की ये केवल सड़ी-गली पत्तियां और कूड़ा-कर्कट ही खाते हैं, पौधो को नहीं खाते. कोई 20-25 साल पहले इन घोंघों द्वारा फसलों के नुकसान की रिपोर्टें मिलीं. तभी इनके प्रबंध पर कुछ काम शुरू हुआ.

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा डा० पी०डी० श्रीवास्तव की देख-रेख में दिल्ली और अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में **अकेटिना** समेत कुछ अन्य नाशी घोंघों की जैविकी और प्रबंध पर सन् 1964 में अनुसंधान शुरू किया गया. इससे कई उपयोगी नतीजे मिले, पर कुछ कारणों से सन् 1980 में यह काम बंद हो गया. इसके अलावा कलकत्ता विश्वविद्यालय में घोंघों की जैविकी, शारीरिकी, कार्यिकी आदि पर खोज कार्य किया गया. अभी भी यह काम जारी है. वर्तमान में इसके अलावा महात्मा फुले कृषि विश्वविद्यालय के कोल्हापुर (महाराष्ट्र) स्थित 'कॉलेज आफ एग्रीकल्चर' तथा कुछ अन्य स्थानों पर थल घोंघों की जैविकी और नियंत्रण पर काम हो रहा है. विशाल अफ्रीकी घोंघे के तीन गुण इसके व्यावहारिक पहलुओं के अध्ययन में खासतौर से बाधक हैं—इसका मजबूत खोल, द्विलिंगी होने के कारण सभी घोंघों के अंडे दे सकने की क्षमता और प्रतिकूल जलवायु के सामना करने की सामर्थ्य. पर कठिनाई का मतलब यह नहीं कि इन पर काम ही न किया जाए. आखिर भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने भी तो 15-16 साल तक काम किया. इनके प्रबंध के बारे में आज हमारे पास जो कुछ जानकारी है, वह मुख्य रूप से यहीं के वैज्ञानिकों की देन है.

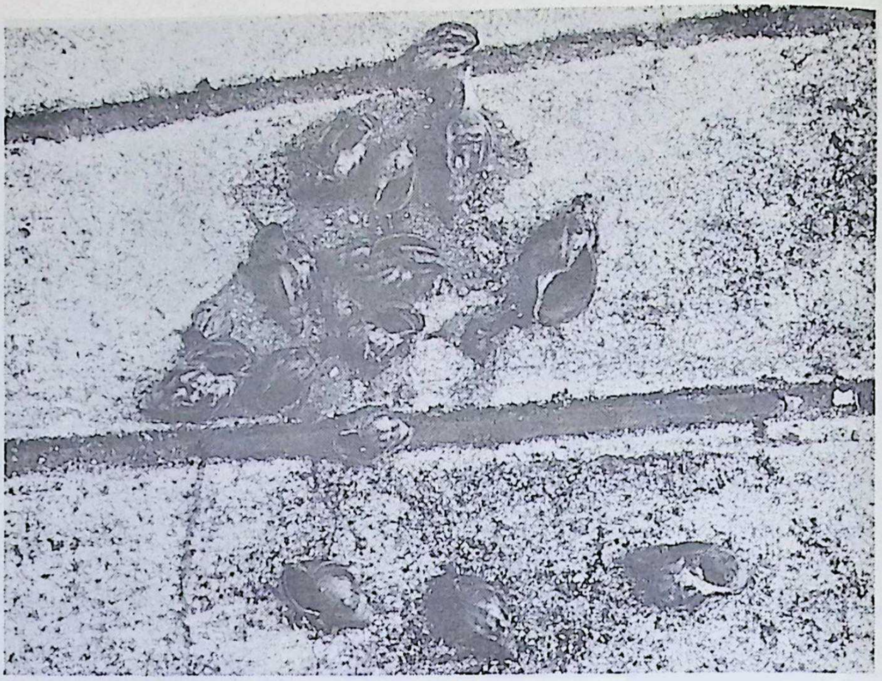

घोंघों का समूह

प्रबंध के उपाय

वैज्ञानिकों की राय में किसी भी नाशीजीव का सफाया करना संभव नहीं है और न ही ऐसा करना प्रकृति के नियमों के अनुकूल होगा. इसलिए इनका प्रबंध करना चाहिए. इस तरह कि इनकी तादाद हमेशा आर्थिक क्षति-स्तर के नीचे रहे. विशाल अफ्रीकी घोंघे के प्रबंध के लिए कई उपाए सुझाए गए हैं. जैसे—घोंघे और उनके अंडों को इकट्ठा करके नष्ट करना, घोंघे पकड़ने को प्रोत्साहित करना और इन्हें पकड़ने का अभियान आयोजित करना. घोंघों के छिपने के ठिकानों को ढूंढ-ढूंढ कर नष्ट करना, ऐसे पौधे उगाना जिन्हें घोंघा न खाता हो, घोंघे के प्राकृतिक शत्रुओं जैसे हरमिट क्रैब, जुगनू, नारियल का केकड़ा, अन्य परभक्षी घोंघे, आदि को खेत मे छोड़ना तथा रसायनों से नियंत्रण करना. कैल्शियम आर्सिनेट, कॉपर सल्फेट, कार्बामेट यौगिक (टेमिक, सेविन, मेजोराल) और मैटाल्डिहाइड विशाल अफ्रीकी घोंघे के नियंत्रण में कारगर पाए गए हैं.

प्रबंध के उपर्युक्त तरीकों में से कोई भी तरीका ऐसा नहीं है जो अकेले इनकी तादाद आर्थिक क्षति स्तर से नीचे ला सके. इसलिए वैज्ञानिकों ने समेकित प्रबंध का तरीका सुझाया है. इस तरीके को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने 16 साल तक लगातार अनुसंधान करके विकसित किया है. साथ ही इसे अंडमान के खेतों में परखा भी है. इस तरीके में घोंघों और उनके अंडों को इकट्ठा करके नष्ट करना, सक्रियता के मौसम में घोंघों के दिन भर छिपे रहने के ठिकानों को नष्ट करना, निष्क्रियता के मौसम में घोंघों के ठिकानों और वहां पड़े घोंघों को नष्ट करना, घोंघे के रास्ते में मेटाल्टिहाइड की 5 प्रतिशत की प्लेटों को बिछा देना और हरमिट क्रैब को खेतों में छोड़ना शामिल हैं. जहां हरमिट क्रैब न मिलते हों, वहां जुगनू के लार्वों को खेत में छोड़ा जा सकता है. इसके अलावा जहां भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभव हो ऐसी फसलें उगानी चाहिएं, जिन्हें ये घोंघे न खाते हों.

महत्वपूर्ण फसलों को विशाल अफ्रीकी घोंघे के प्रकोप से बचाने का एक रास्ता और है. महत्वपूर्ण फसलों के चारों ओर कोई ऐसी फसल लगाई जा सकती है, जिसे घोंघे पसंद भी करते हों और जो आर्थिक दृष्टि से ज्यादा महत्व की भी न हों. घोंघा बाहर की ओर उगी फसल को खाने में व्यस्त हो जाता है और भीतर की फसल बची रह जाती है जैसे पपीते के बाग के चारों ओर गेंदा लगाया जा सकता है.

विशाल अफ्रीकी घोंघे पर काबू पाने का एक तरीका और है जो आम के आम और गुठलियों के दाम जैसा है.

बढ़िया आहार

अकेटिना फुलिका का मांस मुर्गियों और सुअरों के लिए बढ़िया आहार है. इसे हम भी खा सकते हैं. दुनिया के कुछ हिस्सों में तो इसे स्वादिष्ट और पौष्टिक 'डिश' के रूप में भी खाया जा रहा है. अगर विशाल अफ्रीकी घोंघे के इन उपयोगों को बढ़ावा दिया जाए तो इन पर काबू पाना बेहद आसान हो जाएगा.

सुखाए गए घोंघे का मांस मुर्गी के अंडे से ज्यादा पौष्टिक पाया गया है. इसमें लाइसीन और अर्जीनीन जैसे उपयोगी अमीनो अम्ल मुर्गी के अंडे की तुलना में क्रमशः 1.33 और 2.33 गुना ज्यादा पाए गए हैं. घोंघे के अधोभाग (फुट) और आन्तरांगों (विसम्ल मांस) में लगभग 61 प्रतिशत प्रोटीन पाई गई है. घोंघे के सूखे मांस का रासायनिक विश्लेषण सारणी-1 में दिखाया गया है. वैज्ञानिकों ने इसे एक ऐसी 'जीवित मशीन' बताया है, जो कूड़े-कर्कट और गंदगी को प्रोटीन में बदलती है. इसे विडम्बना कहना चाहिए कि प्रोटीन का इतना सस्ता स्रोत मौजूद होने के बावजूद दुनिया के करोड़ों लोग प्रोटीन कुपोषण से ग्रस्त हैं.

चीन और हिंद प्रशांत क्षेत्र के कई देशों में ताजा मारे गए घोंघों को मुर्गियों और सुअरों को खिलाया जाता है. दक्षिणी अंडमान में भी इन्हें सुअरों को खिलाया जाता है. इंडोनेशिया में इसी वास्ते घोंघों की भारी मांग है. यहां 25 किलोग्राम घोंघे बरसात के मौसम में एक अमरीकी डालर में और सूखे के मौसम में तीन डालर में बिकते हैं. इंडोनेशिया के पशु अनुसंधान विकास केंद्र में विशाल अफ्रीकी घोंघे का संसाधित मांस और साइलेज बनाने का कार्यक्रम तेजी से चल रहा है. साइलेज बनाने के लिए घोंघे के मांस के चूर्ण में मक्का (1:1) या कसावा (2:1) का आटा मिलाया जाता है.

घोंघे का मांस मनुष्य के आहार के लिए भी उपयुक्त है. ताइवान के आदिवासी विशाल अफ्रीकी घोंघे को पकाकर मजे से खाते हैं. डा० पी०डी० श्रीवास्तव ने पोर्ट ब्लेयर की जेल में बंद ताइवानी मछुआरों को घोंघे की स्वादिष्ट 'सब्जी' बनाकर खाते देखा है. डा० श्रीवास्तव की सलाह है कि घोंघे को पकाने से पहले एक रात भूखा रखना बेहतर होगा. डा० श्रीवास्तव ने अंडमान में इस घोंघे के मांस को लोकप्रिय बनाने के लिए व्यक्तिगत प्रयास किए हैं. एक दिन उन्होंने पोर्ट ब्लेयर में भरी भीड़ में खुद घोंघे का मांस खाकर दिखाया लेकिन लोगों पर इसका कोई खास असर नहीं हुआ. वहां के लोग कहते हैं, 'जब हमने जापानियों के जमाने में अकाल जैसी दशा में घोंघा नहीं खाया तो अब क्यों खाएं !' गंदगी पर पलने के कारण वे इसे एक गंदा प्राणी मानते हैं.

दुनिया के अनेक हिस्सों में विशाल अफ्रीकी घोंघे के मांस को लोकप्रिय बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं. सेशेल्स में इसे 'सेशेल्स की विशेष डिश' के रूप में पर्यटकों को परोसा जा रहा है. हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में इस घोंघे का मानव उपभोग सीमित है, पर अफ्रीका, योरोप और मध्य-पूर्वी देशों में इसे सदियों से खाया जा रहा है. खासतौर से फ्रांस में तो यह बेहद लोकप्रिय है.

घोंघे का व्यापार

पिछले दो दशकों से विशाल अफ्रीकी घोंघे का व्यापार लगातार बढ़ता जा रहा है. आठवें दशक के अंत में तुर्की, युगोस्लाविया और रूमानिया ने फ्रांस को चालीस हजार टन थल घोंघों का निर्यात किया था. हाल में अमरीका और कनाडा में इनकी मांग तेजी से बढ़ी है. ये देश हर साल सेकड़ों टन घोंघे आयात करते हैं. ताइवान द्वारा छोटे-छोटे घोंघे जमाकर, डिब्बों में बंद करके निर्यात किए जाते हैं. चीन का हवाई द्वीप भी ऐसा ही कर रहा है. थाइलैंड और जावा से बड़े पैमाने पर घोंघों का निर्यात हो रहा है.

सारणी-1 विशाल अफ्रीकी घोंघे के सूखे मांस का रासायनिक विश्लेषण

रासायनिक संघटक (प्रतिशत में)	अधोभाग (फुट)	आन्तरांग (विसरल मांस)
प्रोटीन	60.95	60.90
कैल्शियम	00.257	00.265
पोटैशियम	2.75	3.35
फास्फेट (P_2O_5)	11.78	35.34
फास्फोरस	3.67	10.7

(स्रोत : एन्बार० मीड०, 1961)

विदेशी मुद्रा का स्रोत

भारत से भी विशाल अफ्रीकी घोंघे के निर्यात की अपार संभावनाएं हैं. इस तरह इनसे बहुमूल्य विदेशी मुद्रा कमाई जा सकती है. कोई बीस साल पहले अंडमान से घोंघों को फ्रांस निर्यात करने की कोशिश की गई थी, पर कुछ कारणों से तब बात बनी नहीं.

अब फिर से इस ओर प्रयास शुरू किए गए हैं. समुद्री उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण ('एम पीडा' के नाम से मशहूर) को विदेशों से घोंघे के संसाधित मांस के आर्डर मिल रहे हैं. इस काम में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का बैरकपुर स्थित केन्द्रीय अंतःस्थलीय प्रग्रहण मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान (सी आई सी एफ आर आई) भी मदद कर रहा है.

संस्थान ने घोंघों को पालने की सस्ती तकनीक विकसित की है. घोंघे पालने की जगह को 'टेरेरियम' कहा जाता है. संस्थान ने पांच

(शेष पृष्ठ 428 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भू-वैज्ञानिक घड़ियां–9

आयोनियम-थोरियम विधि से काल-निर्धारण

❑ डा॰ विजय कुमार उपाध्याय

❑ सन् 1954 ई॰ में पहली बार पिक्सियोटो तथा विलगेन नामक वैज्ञनिकों ने आयोनियम तथा थोरियम के अनुपात का उपयोग कर गहरे समुद्र में पाए जाने वाले अवसादों का काल-निर्धारण किया. कुछ समय बाद सन् 1962 में गोल्डबर्ग तथा क्वायडे नामक वैज्ञानिकों ने इस विधि का विस्तृत अध्ययन किया.

आयोनियम वस्तुतः थोरियम का ही एक समस्थानिक है जिसका परमाणु भार 230 है, जबकि साधारण थोरियम का परमाणु भार 232 है. समुद्र में पाए जाने वाले आयोनियम का मुख्य स्रोत समुद्री जल में घुले हुए यूरेनियम –238 का विखण्डन है. यूरेनियम –238 का विखण्डन तथा विभिन्न चरणों में विभिन्न तत्वों के निर्माण की प्रक्रिया (चित्र–1) में दिखाई गई है. इस चित्र में हम देखते हैं कि आयोनियम रेडियम का जनक पदार्थ है. आयोनियम या थोरियम–230 निर्माण के बाद शीघ्र ही अवसाद में उपस्थित लौह हाइड्रौक्साइड (फेरिक हाइड्राक्साइड) तथा मैंगनिक हाइड्रौक्साइड के कणों की सतह पर सट कर समुद्री जल से अवक्षेपित होकर अलग हट जाता है. स्थल पर उपस्थित चट्टानों के अपक्षय से भी कुछ आयोनियम मुक्त होता है. थोरियम–232 तो पूर्णरूपेण चट्टानों के अपक्षय से प्राप्त होता है. (चित्र–2).

आयोनियम का अर्द्धजीवन काल 7.52×10^4 वर्ष है जिसके बाद यह रेडियम में परिवर्तित हो जाता है, जबकि थोरियम–232 विखण्डन द्वारा हीलियम मुक्त करता है तथा लेड 208 में परिवर्तित होता है. थोरियम–232 का अर्द्धजीवन काल 1.39×10^9 वर्ष है. चूंकि समुद्री जल में आयोनियम एवं थोरियम –232 के रासायनिक गुण एक समान हैं, अतः ये दोनों जल से अलग होकर अवसाद में एक साथ शामिल होते हैं. एक बार जब ये समस्थानिक अवसाद में प्रवेश कर जाते हैं तो तीव्र विखण्डन के कारण आयोनियम की मात्रा में तेजी से कमी होने लगती है. परन्तु थोरियम–232 की कमी उतनी तेजी से नहीं होती क्योंकि इसका अर्द्धजीवन काल आयोनियम की तुलना में बहुत अधिक है. इस प्रकार विभिन्न गहराइयों पर उपस्थित अवसादों में आयोनियम तथा थोरियम–232 के अनुपात को माप कर उन अवसादों के निर्माण-काल की गणना आसानी से की जा सकती है.

चूंकि समुद्री अवसादों में आयोनियम तथा थोरियम–232 के अतिरिक्त यूरेनियम भी अवक्षेपित होता है, अतः यह आवश्यक है कि गणना में आयोनियम की उस मात्रा को भी शामिल किया जाए जो यूरेनियम–238 के विखण्डन द्वारा उत्पन्न होता है. साधारणतः इसे गणना में शामिल नहीं किया जाता क्योंकि यूरेनियम के विखण्डन द्वारा उत्पन्न आयोनियम

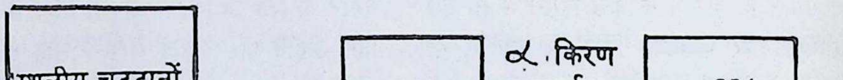

चित्र–1 यूरेनियम –238 के विखंडन से आयोनियम का उत्पादन तथा पुनः आयोनियम के विखंडन से रेडियम का उत्पादन

U^{238}–यूरेनियम – 238, Th^{234} – थोरियम – 234, Pa^{234} – प्रोटाक्टिनियम,
U^{234} – यूरेनियम – 234, Th^{230} – आयोनियम Ra^{206} – रेडियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई अर्द्धजीवन कालों तक नगण्य रहता है. साधारणतः तीन-चार लाख वर्षों तक यह मात्रा नगण्य रहती है.

समुद्री जल में आयोनियम तथा थोरियम–232 की मात्रा की गणना तथा समुद्रों में इन समस्थानिकों की प्रवेश-दर यह सूचित करती है कि रासायनिक सक्रियता के कारण इन समस्थानिकों का समुद्री जल में आवास-काल काफी कम है. कई अध्ययनों से यह पता चला है कि इन समस्थानिकों का आवास-काल लगभग 100 वर्ष है जो महासागरों के मिश्रण काल की तुलना में काफी कम है.

वास्तव में स्थिर समुद्र में किसी घटक का आवास-काल वह काल खंड है जिसके दौरान समुद्र में उस घटक की मात्रा की आपूर्ति तथा विलगाव-दर समान तथा स्थिर हो जाती है. इसे निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, $t = \frac{A}{da/dt}$, जहां t उस घटक का आवास-काल है, A समुद्र में उपस्थित उस घटक की मात्रा है तथा da/dt आपूर्ति या विलगाव-दर है. समुद्रों का मिश्रण काल वह काल है जिसके दौरान नदियों द्वारा घुलाकर लाया गया कोई घटक समुद्र में पहुंचने के बाद समसर्वत्र (होमोजिनियस) रूप से फैल जाता है.

गहरे समुद्रों का मिश्रण-काल 800 से 1000 वर्षों के बीच पाया गया है. मिश्रण काल संबंधी ये आंकड़े रेडियो कार्बन डेटिंग से प्राप्त किए गए हैं. अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि सागर के अलग-अलग क्षेत्रों में आयोनियम थोरियम–232 का अनुपात अलग-अलग होगा. यह अनुपात निर्भर करेगा थोरियम–232 की उस मात्रा पर जो उस क्षेत्र में प्रवेश कर रही है. जहां तक यूरेनियम–238 के विखंडन द्वारा आयोनियम के उत्पादन का प्रश्न है, इसकी दर लगभग नियत है, क्योंकि इसका मातृ-तत्व यूरेनियम–238 का आवास काल लगभग 5 लाख वर्ष है, जिस कारणवश समुद्र में उसका वितरण समसर्वत्र रूप से है.

थोरियम–232 नदियों के जल में घुलकर समुद्र में प्रवेश करता है तथा अधिक सक्रियता

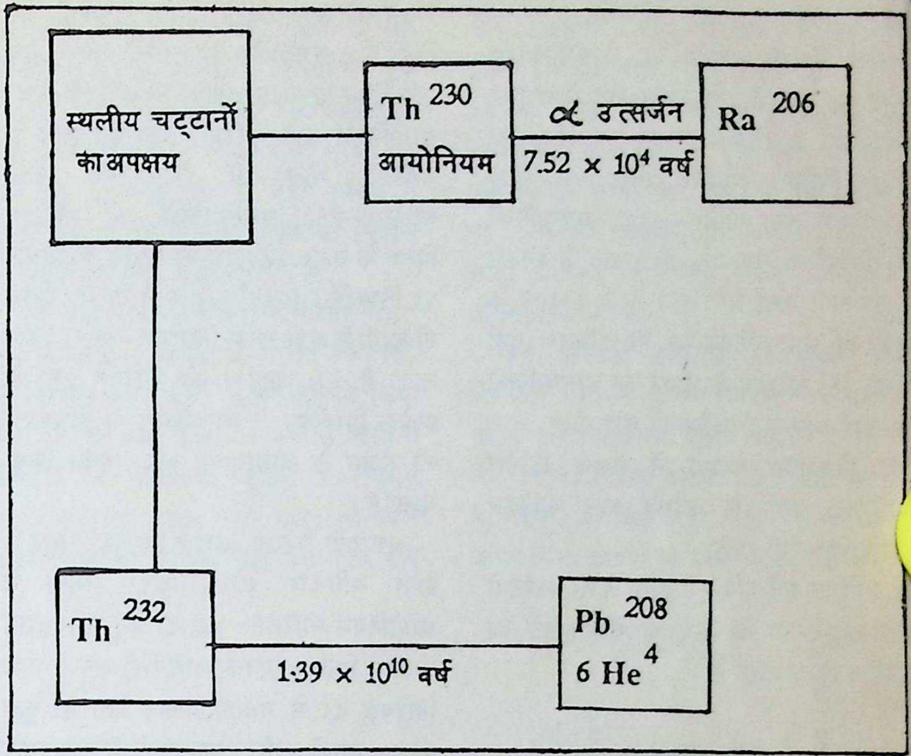

चित्र–2. स्थलीय चट्टानों के अपक्षय से आयोनियम तथा थोरियम – 232 का उत्पादन तथा पुनः उनका विखंडन

के कारण समुद्र में समसर्वत्र रूप से वितरित नहीं रहता है. इस प्रकार समुद्र तट के पास के पानी में, जिसमें नदियों का पानी काफी परिमाण में मिलता है, आयोनियम/थोरियम–232 का अनुपात बीच समुद्री पानी की तुलना में कम रहता है. समुद्री जल में आयोनियम तथा थोरियम–232 के अनुपात में उदग्र वितरण में भी परिवर्तन पाया गया है. गोल्डबर्ग तथा क्वायडे जैसे वैज्ञानिकों ने अध्ययन के आधार पर पता लगाया कि जैवरासायनिक तथा अकार्बनिक विधियों के द्वारा थोरियम–232 का समुद्री पानी के सतही भाग से गहरे भाग की ओर स्थानान्तरण होता है. इस कारण सतही पानी के भाग में आयोनियम/थोरियम अनुपात गहरे भाग की तुलना में अधिक रहता है. इस मत की पुष्टि सतही अवसादों में उपस्थित कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा तथा आयोनियम थोरियम–232 अनुपात के अध्ययन से भी होती है. जिन अवसादों में कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा अधिक होती है उनमें आयोनियम तथा थोरियम–232 का अनुपात भी अधिक पाया जाता है. कैल्शियम कार्बोनेट की अधिक मात्रा का कारण उसमें उपस्थित उन परिप्लावी (प्लैंक्टौनिक) फौरामिनिफेरा की अधिक मात्रा है जो समुद्र के ऊपरी चन्द सैकड़ों मीटर जल में उपस्थित रहते हैं. मृत्यु के बाद ये फौरामिनिफेरा नीचे समुद्र की तलहटी की ओर बैठ जाते हैं, तथा साथ-साथ आयोनियम/थोरियम 232 के उच्च अनुपात को उत्पन्न करते हैं. इस प्रकार सतही अवसादों में आयोनियम/थोरियम–232 का अनुपात मुख्य रूप से स्रोत तथा थोरियम–232 के प्रवेश, जैवरासायनिक तथा अकार्बनिक विधियों द्वारा तथा साथ ही साथ समुद्री धाराओं द्वारा नियंत्रित होता है.

आयोनियम/थोरियम–232 विधि के सफलतापूर्वक उपयोग के लिए निम्नलिखित चार बातें पहले से मानकर चलनी पड़ेगी (1) समुद्र में अवसादों के ऊपर स्थित समुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ल में आयोनियम तथा थोरियम–232 का नुपात जिनके आधार पर काल-निर्धारण किया जा चुका है, उस कालावधि में लगभग स्थिर रहा है जिसके दौरान काल-निर्धारण संबंधी विभिन्न अध्ययन किए गए, (2) आयोनियम तथा थोरियम–232 समस्थानिकों के रासायनिक गुण एक ही समान हैं जिससे समुद्री पानी तथा जमा होने वाले अवसाद के बीच इन समस्थानिकों का विलगीकरण नहीं होता, (3) अवसाद के भीतर इन समस्थानिकों का कोई प्रव्रजन (माइग्रेशन) नहीं होता, तथा (4) विश्लेषित पदार्थों में मलवा निर्मित (डेट्रिटल) कणों के उद्भव वाले थोरियम समस्थानिक नहीं रहते.

उपर्युक्त शर्तें यदि पूरी होती हैं तो अवसादों की आयु-गणना के लिए दो समीकरणों का उपयोग किया जाता है

$$\frac{R}{R_o} = e^{-\lambda t}, \text{ तथा } R = \frac{lo - lo_n}{Th}$$

जहां Lo = समुद्री जल से अवक्षेपित आयोनियम की मात्रा, Lo_n = अवसादों में यूरेनियम के विखण्डन द्वारा उत्पन्न आयोनियम की मात्रा, Th = समुद्री जल से अवक्षेपित थोरियम–232 की मात्रा, R_o = सतही अवसादों में आयोनियम/थोरियम–232 की सक्रियता का अनुपात, λ = आयोनियम का विखण्डन स्थिरांक, तथा t = समय है.

आयोनियम का अर्द्धजीवन काल आधुनिकतम जानकारी के अनुसार लगभग 75,200 वर्ष है, जबकि 1962 तक किए गए अध्ययनों में आयोनियम के अर्द्धजीवन काल का मान 80,000 वर्ष लिया जाता था. अर्द्धजीवन काल $t_{1/2}$ तथा विखण्डन स्थिरांक λ के बीच संबंध निम्नलिखित सूत्र के अनुसार स्थापित किया गया है.

$$t_{1/2} = 0.693/\lambda$$

पुनर्निर्मित (औथिजेनिक) थोरियम समस्थानिक को पृथक करने के लिए जो रासायनिक विधि अपनाई जाती है उसमें अवसादों को सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा प्रतिक्रिया कराकर उसमें उपस्थित घुलनशील पदार्थ को घुला (लीच) लिया जाता है. इस क्रिया द्वारा अवशोषित (ऐबजौर्ब्ड) समस्थानिक हटा लिया जाता है जबकि अपरदी (डेट्रिटल) आयोनियम तथा थोरियम पीछे छूट जाते हैं. अम्लीय घोल से आयोनियम तथा थोरियम–232 समस्थानिकों को प्लैटिनम डिस्क के ऊपर इलेक्ट्रोड की स्थिति के आधार पर निष्कर्षित (एक्सट्रैक्ट) करने के बाद ऐल्फा सेक्ट्रोमीट्री द्वारा मात्रा-निर्धारण (अस्से) किया जाता है. इस अनुपात को थोरियम 232 के प्रत्येक विखण्डन में आयोनियम के विखण्डनों की संख्या के आधार पर प्रायः व्यक्त किया जाता है.

अध्ययनों से पता चला है कि गहरे समुद्र से प्राप्त अधिकांश क्रोड (कोर) नमूनों में आयोनियम थोरियम–232 का अनुपात गहराई के साथ घातीय (एक्सपोनेंशियल) रूप से तथा निश्चित दर से घटता दिखाई देता है. कुछ क्रोड नमूनों में गहराई के अनुसार आयोनियम/थोरियम–232 अनुपात की कमी की दर अनियमित है. भू-वैज्ञानिकों का मत है कि गहराई के अनुसार आयोनियम/थोरियम–232 अनुपात में कमी की दर में परिवर्तन अवसादन की दर से संबंधित है. कुछ ऐसे भी क्रोड मिले हैं जिनमें गहराई के साथ आयोनियम तथा थोरियम–232 के अनुपात में कमी नहीं आती बल्कि या तो वे बढ़ते हैं या स्थिर रहते हैं. इस बात की व्याख्या यह मान कर की जा सकती है कि इन क्षेत्रों में अवसादन की दर बिल निर्माण करने वाले जीवों (बरौइंग ऑर्गेनिज्म) तथा समुद्री धाराओं द्वरा बाधित की गई अथवा इन अवसादों में यूरेनियम के विखण्डन से उत्पन्न आयोनियम की मात्रा बहुत अधिक है.

इस विधि द्वारा काल-निर्धारण के लिए जिन चार मान्यताओं (एजम्पशन्स) को अपनाया गया है उनमें सबसे अधिक असम्भाव्य इस बात को मान लेना है कि विश्लेषित पदार्थ में अपरदी (डेट्रीटल) उद्भव की किंचित मात्रा भी थोरियम की नहीं है अर्थात विश्लेषित पदार्थ की संपूर्ण मात्रा तत्रजात (औथिजेनिक) आयोनियम तथा थोरियम–232 की है. इसका कारण यह है कि अनेक क्रोड नमूने जिनमें शायद ही कोई तत्रजात खनिज उपस्थित रहते हैं वे भी थोरियम 232 की काफी मात्रा रखते पाए गए हैं. यह थोरियम–232 अवश्य ही अपरदी (डेट्रिटल) उद्भव का है या आयन-विनिमय द्वारा अवसाद कणों की सतह पर शोषित हुआ है. यदि आयोनियम तथा थोरियम–232 के अनुपात में कमी की दर को उपयोग में लाने के स्थान पर सिर्फ आयोनियम की सक्रियता में कमी की दर का उपयोग किया जाए तो लगभग एक ही प्रकार के नतीजे प्राप्त होते हैं. इस विधि की उपयुक्तता की जांच उन क्रोड नमूनों द्वारा की जा सकती है जिनका आयु-निर्धारण आयोनियम/थोरियम–232 के अनुपात के आधार पर पहले ही किया चुका हो. एक क्रोड नमूने का आयु-निर्धारण आयोनियम/थोरियम–232 विधि तथा प्रोटाक्टिनियम/आयोनियम विधि द्वारा किया गया तथा एक ही नतीजे प्राप्त हुए.

प्रशान्त महासागर से प्राप्त दो क्रोड नमूनों का आयु-निर्धारण आयोनियम तथा थोरियम–232 के अनुपात के आधार पर किया गया तथा इसकी तुलना एटलांटिक महासागर से प्राप्त तीन नमूनों से की गई जिनका आयु-निर्धारण दो विधियों–प्रोटाक्टिनियम विधि तथा प्रोटाक्टिनियम/आयोनियम विधि द्वारा किया गया था. प्रशान्त महासागर से प्राप्त क्रोड नमूनों में फौरामिनिफेरा के परिवर्तन के आधार पर आज से लगभग दस लाख वर्ष पूर्व परिवर्तनों की एक श्रृंखला स्पष्ट दिखाई पड़ी. प्लिस्टोसीन काल (लगभग एक लाख वर्ष से दस लाख वर्ष पूर्व के बीच) की ये घटनाएं एटलांटिक से प्राप्त तीन नमूनों में घटी घटनाओं से संबंधित मानी गई हैं. दो भिन्न दिधियों से निर्धारित इन प्लिस्टोसीन घटनाओं की आयु की तुलना की जा सकती है. इस प्रकार जीवाश्म वैज्ञानिक (पैलिओंटो लौजिक) तादात्म्य (कोरिलेशन) के द्वारा आयोनियम/थोरियम विधि तथा प्रोटाक्टिनियम एवं प्रोटाक्टिनियम/थोरियम विधियों के बीच

(शेष पृष्ठ 428 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैथिल्यहीन ट्रायक परिपथ

❑ पीयूष पांडेय

❑ इस स्तम्भ के इलेक्ट्रानिकी अभिरुचि वाले बहुत से पाठक यहां रेखाचित्र-1 में दिखाई ट्रायक युक्ति से सुपरिचित होंगे. केवल पांच घटकों का उपयोग कर इस युक्ति द्वारा प्रत्यावर्ती धारा परिपथ में लगे किसी विद्युत बल्ब की प्रकाश तीव्रता का नियंत्रण किया जा सकता है अथवा किसी मोटर (जैसे पंखे) की गति को घटाया बढ़ाया जा सकता है. यों बाजार में उपलब्ध इस प्रकार के ऊर्जा-नियंत्रकों में रडियो-तरंग व्यतिकरण निरोधक के रूप में प्रेरक कुंडली (इन्डक्टेंस) तथा संधारित्र (कैपेसिटर) भी लगे होते हैं, परन्तु यहां केवल मूल परिपथ ही दिखाया गया है, जिसमें ट्रायक, डायक के अतिरिक्त एक संधारित्र, एक परिवर्ती प्रतिरोध (पोटेन्शियोमीटर) तथा परिवर्ती प्रतिरोध व ट्रायक की सुरक्षा हेतु एक अन्य प्रतिरोध लगे हैं. बहुत सम्भव है हमारे कुछ पाठकों ने ऐसी युक्ति का निर्माण इन घटकों की मदद से स्वयं किया हो.

इस प्रकार के नियंत्रकों द्वारा किसी विद्युत बल्ब की तीव्रता (अथवा किसी पंखे की गति) का नियंत्रण करते समय आपने अनुभव किया होगा कि जब हम 'ऑफ' अवस्था से परिवर्ती प्रतिरोध की घुण्डी को घुमाते हैं (जिससे उसका प्रतिरोध घटता चला जाए) तो पहले थोड़ा घुमाव देने पर कुछ नहीं होता फिर इसी प्रकार धीरे-धीरे और घुमाने पर एक विशेष स्थिति आने पर बल्ब यकायक प्रकाशित हो उठता है अथवा पंखा यकायक घूमने लगता है. इस स्थिति को नोट करने के लिए घुण्डी के सामने कोई चिन्ह लगा लें. इसके बाद परिवर्ती प्रतिरोध की घुण्डी उसी दिशा में घुमाते रहने पर बल्ब की प्रकाश तीव्रता क्रमशः बढ़ती जाती है तथा फिर एक स्थिति पर आकर तीव्रता स्थिर हो जाती है.

अब परिवर्ती प्रतिरोध की घुण्डी को विपरीत दिशा में घुमाना आरम्भ करें ताकि उसका प्रतिरोध क्रमशः बढ़ता जाए. आप देखेंगे कि बल्ब की तीव्रता क्रमशः घटती चली जाती है, परन्तु उस स्थिति पर आने पर भी जहां आपने चिन्ह लगाया था बल्ब 'ऑफ' नहीं होता

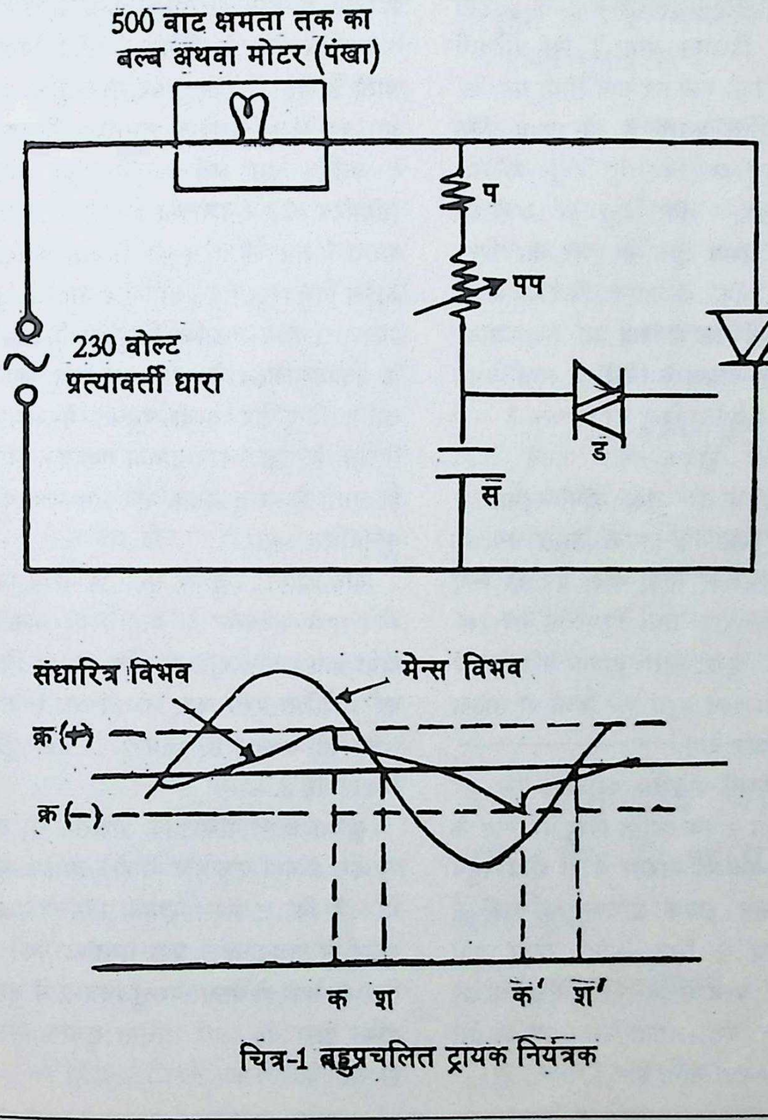

चित्र-1 बहुप्रचलित ट्रायक नियंत्रक

घटक सूची

प प्रतिरोध 1 कि० ओह्म ½ वॉट

पप परिवर्ती प्रतिरोध 1 मैग ओह्म

स संधारित्र 0.2 माइक्रोफैरेड 100 वोल्ट

ड डायक

ट ट्रायक 4 एम्पियर, 400 वोल्ट, (एस सी 146 डी अथवा समतुल्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

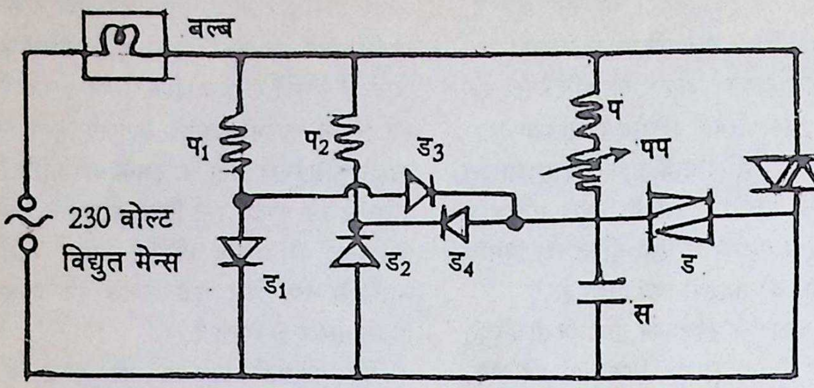

चित्र-2 ट्रायक शैथिल्य निवारण

घटक सूची

प₁,प₂ प्रतिरोध
33 किलो ओह्म
1 वॉट

ड₁, ड₂, ड₃, ड₄ डायोड बी० वाई 126

अन्य घटक चित्र-1 के अनुसार

बल्कि उसे पार करने पर भी अब बल्ब की तीव्रता धीरे-धीरे घटकर फिर शून्य होती है. दुबारा बुझे हुए बल्ब को आप घुण्डी घुमाकर 'जलाने' का प्रयास करेंगे तो फिर उस स्थिति विशेष पर आने पर बल्ब यकायक प्रकाशित हो उठेगा.

इस दोनों दिशाओं में असमान व्यवहार को ट्रायक परिपथ का शैथिल्य (हिस्टरैसिस) कहते हैं. इसका निवारण करने के लिए एक युक्ति का उपयोग करते हैं जिसमें दो प्रतिरोध तथा चार डायोड लगते हैं. ऐसे शैथिल्यहीन ट्रायक परिपथ को हमने चित्र-2 में दिखाया है. परन्तु इसकी कार्यविधि को समझने के लिए हमें पहले चित्र-1 के निचले भाग में दर्शाए विभव-वक्रों को समझना होगा जिनका सम्बन्ध शैथिल्य वाले परिपथ से है.

प्रत्यावर्ती विभव (मेन्स विभव) के वक्र के नीचे (अन्दर) एक अन्य वक्र यह दर्शाता है कि किस प्रकार संधारित्र के विभव में परिवर्तन आता है. डायक 'ड' का यह गुण है कि एक विशेष विभव के पहुंचने पर ही (जो प्रायः 35 वोल्ट के आसपास होता है) यह अवयव विद्युत का चालक बनता है. उस विभव से यदि कम विभव इसके दोनों सिरों के बीच लगा हो तो यह अचालक बना रहता है. दूसरी बात यह उभयदिश घटक है यानि इसका यही गुणधर्म विपरीत विभवान्तर की अवस्था में भी बना रहता है. इस तरह यह सामान्य डायोड से पर्याप्त भिन्न होता है.

चित्र-1 में दो पड़ी बिन्दुवत रेखाएं क्र(+) तथा क्र(−) उन दो क्रान्ति विभवों को दर्शाती हैं जिनके पहुंचने पर धनात्मक तथा ऋणात्मक चक्र में डायक क्रमशः अपने क्रान्ति बिन्दु पर पहुंचता है, अर्थात विद्युतचालक बनता है. इसी रेखाचित्र में दिखाया गया है कि परिवर्ती प्रतिरोध के किसी मान पर मान लिया यह 'क' बिन्दु पर क्रान्ति करता है तो ट्रायक मेन्स विभव के इस अर्ध चक्र में बिन्दु 'क' पर 'ऑन' हो जाएगा तथा बिन्दु 'श' आने पर (जहां मेन्स विभव शून्य से गुजर कर दिशा बदलता है) 'ऑफ' हो जाएगा, फिर यह अगले ऋणात्मक अर्ध-चक्र में बिन्दु 'क' तक 'ऑफ' ही रहेगा जहां डायक के सिरों पर लगा विभव फिर एक बार क्रान्ति बिन्दु पर पहुंचता है. यहां 'ऑन' होकर ट्रायक फिर अगले दिशा परिवर्तन 'श' के आने तक 'ऑन' रहेगा. इस प्रकार हमने देखा कि ट्रायक विद्युत मेन्स के दोनों अर्ध-चक्रों में थोड़ी-थोड़ी देर के लिए ('क' से 'श' तक तथा फिर 'क' से 'श' तक) 'ऑन' हुआ. अतः ट्रायक परिपथ की श्रेणी में लगा बल्ब बहुत कम ऊर्जा पा सकेगा तथा कम प्रकाश देगा.

यदि परिवर्ती प्रतिरोध का मान कम कर दिया जाए तो डायक क्रान्ति बिन्दु पर मेन्स के प्रत्येक अर्ध-चक्र के आरम्भ में ही शीघ्र पहुंच जाएगा जिससे ट्रायक प्रत्येक अर्ध-चक्र में अधिक समय के लिए 'ऑन' रहेगा तथा अधिक ऊर्जा बल्ब से मिलेगी. इसे ट्रायक का कलाकोण-नियंत्रण (अथवा फेस एंगल कण्ट्रोल ऑव ट्रायक) कहा जाता है.

अब ट्रायक परिपथ के शैथिल्य को समझना सरल हो गया है. संधारित्र के विभव वक्र को ध्यान से देखें, क्रान्ति के तुरन्त बाद डायक का प्रतिरोध यकायक (लगभग) शून्य हो जाने के कारण संधारित्र के विभव में तीव्र गिरावट आती है जैसे 'क' बिन्दु पर और चूंकि अगले अर्ध-चक्र में क्रान्ति बिन्दु ऋणात्मक विभव पर है अतएव उस अर्ध-चक्र के पूर्व वोल्टता (संधारित्र की) में कमी का होना इसमें सहायता करता है तथा संधारित्र की वोल्टता डायक के क्रान्ति विभव पर पहले ही पहुंच जाती है; इसी प्रकार ऋणात्मक क्रान्ति बिन्दु पर विभवान्तर के यकायक बढ़ने से अगले धनात्मक चक्र के कान्ति बिन्दु पर जल्दी पहुंचने में सहायता मिलती है. इस प्रकार ट्रायक यकायक 'ऑन' हो जाता है परन्तु उसके बाद उसका व्यवहार सुनियंत्रित रहता है.

यदि क्रान्ति बिन्दु पर संधारित्र के विभव में आने वाले परिवर्तन के आयाम को कम कर दिया जाए अर्थात यदि संधारित्र को एक विभव पर आवेशित रखा जाए तो शैथिल्य निवारण संभव हो सकता है. चित्र-2 में यही युक्ति दिखाई गई है.

कृपया ध्यान रखिए कि प्रतिरोध $प_1$ तथा $प_2$ कम से कम एक वॉट के होने चाहिएं. देखा गया है कि साधारण ट्रायक नियंत्रकों द्वारा कूलर में लगने वाले कुछ एग्जॉस्ट पंखों का नियंत्रण नहीं हो पाता. परन्तु चित्र-2 में सुझाई युक्ति द्वारा यह कार्य अत्यन्त सुचारू रूप से हो पाता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि स्रोत पराध्वनिक वेग से गति करे तो क्या ध्वनि सुनाई देगी ?

□ श्याम लाल धीमान

□ यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जब कोई ध्वनि स्रोत ध्वनि वेग से स्थिर श्रोता की ओर गति कर रहा हो तो ध्वनि नही सुनाई पड़ती, परन्तु जब वह पराध्वनिक (सुपरसोनिक) यानी कि ध्वनि वेग से अधिक वेग से गति कर रहा है तो ध्वनि सुनाई पड़ती है.

इस तथ्य को समझने के लिए मान लीजिए स्रोत एवं श्रोता स्थिर हैं (चित्र अ). श्रोता स्रोत की स्वाभाविक आवृत्ति सुन रहा है. इतना ही नही श्रोता प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि तरंगों की संगत ध्वनियां क्रमानुसार ही सुनेगा. अर्थात सर्वप्रथम वह प्रथम तरंग की ध्वनि सुनेगा. उसके पश्चात द्वितीय फिर तृतीय, चतुर्थ आदि तरंगों के संगत ध्वनियां. इन सबके पश्चात अन्तिम तरंग के संगत ध्वनि सुनाई पड़ेगी इस प्रकार हमें स्रोत से उत्पन्न ध्वनि के स्वर पुनः उसी क्रम में वैसे ही सुनाई पड़ेंगे जिस प्रकार और क्रम से वे उत्पन्न हुए थे. यानी कि वक्ता की दशा में हमें उसके शब्द ज्यों के त्यों सुनाई पड़ेंगे.

अब मान लीजिए स्रोत पराध्वनिक गति से श्रोता की ओर बढ़ रहा है. स्रोत का वेग ध्वनि के वेग से अधिक होने पर वह ध्वनि तरंगों को क्रमानुसार छोड़ता जाता है. इस प्रकार, सर्वप्रथम पहली तरंग उसके बाद दूसरी, तीसरी आदि तरंगें क्रमानुसार छटती जाएंगी. ये तरंगे ध्वनि स्रोत का पीछा करेंगी. पीछा करने वाली इन तरंगों में सबसे बाद में प्रथम तरंग होगी (चित्र-आ). इसका सीधा सा अर्थ हुआ कि जो तरंग स्रोत से आखिर में निकलती है वह श्रोता के कर्णपटल पर सर्वप्रथम टकराएगी और जो तरंग सर्वप्रथम निकलती है वह कर्णपटल पर सबसे बाद में टकराएगी. इस प्रकार, श्रोता को ध्वनि तरंगें सुनाई देने का क्रम .... 6, 5, 4, 3, 2, 1 होगा. उन कुछेक शब्दों को छोड़कर जिनमें अक्षरों का उल्टा एवं

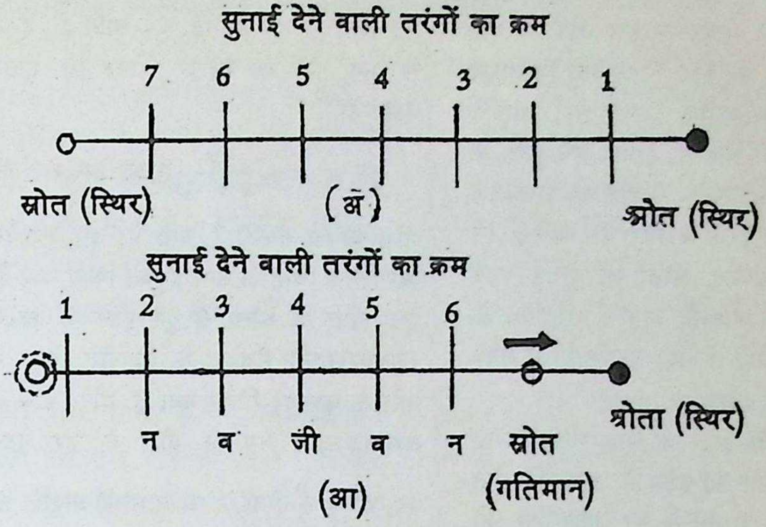

चित्र—(अ) श्रोता को ध्वनि तरंगों का क्रम ठीक (सीधा) सुनाई पड़ना

(आ) स्रोत के पराध्वनिक वेग से गतिमान होने पर नवजीवन जैसे शब्दों का ही सार्थक सुनाई पड़ना

सीधा क्रम एक समान होता है, श्रोता को निरर्थक शब्द सुनाई पड़ेंगे. इस प्रकार, 'नव जीवन', 'मामा', 'काका' जैसे शब्द (इनमें अक्षरों का क्रम सीधे एवं उल्टे में एक समान है) ही सार्थक प्रतीत होंगे.

अब हम यह देखना चाहेंगे कि इस स्थिति के लिए संबंधित सूत्र क्या कहता है.

$n^1 = n\frac{v}{v - v_s}$ में हम यदि $v_s > v$ रखें तो n^1 अर्थात स्रोत की आभासी आवृत्ति ऋणात्मक होगी. चूंकि आवृत्ति ऋणात्मकं नहीं होती है, अतः ऋण चिन्ह का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता है. फिर भी हम यहां इसका तात्पर्य ध्वनि के उल्टे क्रम से ले सकते हैं. यदि $v_s = 2v$ है तो तब, $n^1 = -n$ होगा. अर्थात स्रोत की आभासी आवृत्ति (निरर्थक ध्वनि) स्रोत की स्वाभाविक आवृत्ति के बराबर होगी.

परन्तु यदि $v_s = 3v$ है तो $n^1 = -\frac{n}{2}$ होगा. इस स्थिति में स्रोत की आभासी आवृत्ति आधी रह जाएगी. यानी कि पराध्वनिक वेग 3-मैक पर स्रोत की आभासी आवृत्ति आधी रह जाती है. 3-मैक गति ध्वनि गति के 3 गुने के बराबर होती है.

जब ध्वनि स्रोत पराध्वनिक गति से श्रोता से दूर भाग रहा है तो सूत्र $n^1 = \frac{nv}{v + v_s}$ के अनुसार स्रोत की आभासी आवृत्ति कम होती जाएगी. परन्तु ध्वनि तरंगे ठीक क्रम में सुनाई पड़ेंगी. □

क्या होगा यदि ध्वनि स्रोत ध्वनि वेग से श्रोता से दूर गति करे

□ श्याम लाल धीमान

□ मान लीजिए श्रोता स्थिर अवस्था में है और स्रोत ध्वनि वेग श्रोता से दूर भाग रहा है. इसका अर्थ हुआ कि वायु में जहां पहले स्थिर अवस्था मे 330 मीटर लंबाई में स्रोत की स्वाभाविक आवृत्ति के बराबर तरंगे आती थीं, अब वहां 660 मीटर वायु की लंबाई में उतनी तरंगे आएंगी. ऐसा इसलिए है क्योंकि जब ध्वनि तरंगे श्रोता की ओर एक सेकेंड में 330 मीटर बढ़ती हैं, ध्वनि स्रोत उससे 330 मीटर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर बढ़ जाता है. सस्ष्टतया, इस स्थिति मे 330 मीटर के स्थान पर 660 मीटर वायु विस्तारण में स्रोत की स्वाभाविक (वास्तविक) आवृत्ति के बराबर तरंगे मिलेंगी. इसका अर्थ हुआ कि 330 मीटर वायु विस्तार में स्रोत की वास्तविक आवृत्ति के आधे के बराबर ही ध्वनि तरंगे मिलेंगी. इस प्रकार, श्रोता को सुनाई पड़ने वाली ध्वनि की आभासी आवृत्ति वास्तविक के सापेक्ष आधी होगी तो क्या इस स्थिति मे सदैव ही ध्वनि सुनाई पड़ेगी ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए मान लीजिए स्रोत की आवृत्ति 30 हर्ट्ज है. अब यदि स्रोत ध्वनि वेग से श्रोता से दूर गति करे तो उसकी आभासी आवृत्ति 30/2 यानी 15 हर्ट्ज ही रह जाएगी. यह ध्वनि 20 हर्ट्ज से कम होने के कारण श्रोता को सुनाई नहीं पड़ेगी.

सूत्र $n^1 = n \frac{v}{v + v_s}$ से भी इस बात की जांच की जा सकती है. यहां V_s स्रोत का वेग ऋणात्मक चिन्ह के साथ प्रयुक्त किया गया है. ऐसा स्रोत के श्रोता से दूर हटने के कारण (अथवा ध्वनि संचरण के विपरीत दिशा में गति के कारण) किया गया है. यदि, $v = v_s$ अर्थात ध्वनि वेग से स्रोत के दूर हटने पर, $n^1 = \frac{n}{2}$ होगा. इससे आभासी आवृत्ति n^1 वास्तविक आवृत्ति के आधे यानी 15 हर्ट्ज के बराबर प्राप्त होगी जो श्रव्य सीमा से निम्न होने के कारण सुनाई नहीं देगी.

यहां यह बात बताना आवश्यक है कि यद्यपि श्रोता से दूर ध्वनि वेग से गति करते स्रोत की ध्वनि सुनाई नहीं दे सकती परन्तु तब स्रोत की ध्वनि काफी मोटी (निम्न आवृत्ति) होगी. लेकिन साधारणतया ऐसा नहीं होता है. इस प्रकार, यदि स्रोत की आवृत्ति काफी है तो ध्वनि श्रोता को बराबर सुनाई देती रहेगी. हां, आभासी आवृत्ति अवश्य स्वाभाविक के सापेक्ष आधी हो जाएगी.

ध्वनि वेग से दूर गति करते विमान की ध्वनि भी श्रोता को इसी कारण सुनाई पड़ेगी. ❑

(पृष्ठ 421 का शेषांश . . . विशाल अफ्रीकी)

मीटर लंबा, दो मीटर चौड़ा और 60 सेंटीमीटर ऊंचा 'टेरेरियम' बनाया है. इसमें सबसे नीचे कंकड़-पत्थरों की तह जमाई गई है. उसके ऊपर मिट्टी और फिर सूखी पत्तियों, शाखाओं आदि की ढेर सारी तहें. इन पर पानी छिड़का जाता है. घोंघों की बढ़वार के लिए पर्याप्त नमी होना बहुत जरूरी है. ऐसे एक 'टेरेरियम' में एक मौसम में एक लाख से ज्यादा बच्चे पनप सकते हैं. रसोई के कूड़े-कर्कट और सब्जियों के टुकड़ों को खाकर केवल 150 दिनों में इनका भार 60 ग्राम से ज्यादा हो जाता है. इस भार को कम मत समझिए. फ्रांस में घोंघे का 50 ग्राम का भार पचास डालर में बिकता है. इन्हें खुली जगहों में भी पाला जा सकता है. बस यह ध्यान रखना होगा कि ये भाग न जाएं.

घोंघों को संसाधित करने के लिए भी तकनीक विकसित की गई है. सबसे पहले घोंघों को मारने के लिए संकुचित अवस्था में उबलते पानी में डाला जाता है. दस-पन्द्रह मिनट उबालने के बाद 25 डिग्री सेल्सियस तक ठंडा करते हैं. फिर खोल को तोड़कर अलग कर दिया जाता है और खाद्य भाग को क्लोरीन-युक्त पानी से बार-बार धोया जाता है फिर इन्हें पौलीथीन की थैली में बंद करके प्रशीतन के लिए रख दिया जाता है. इन्हें प्रशीतित अवस्था में ही निर्यात करना पड़ता है.

डा० पी०डी० श्रीवास्तव के अनुसार घोंघों को इकट्ठा करने या पालने में ऐसा कुछ नहीं है, जिसे 'तकनीक' कहा जा सके. बस इनके लिए चाहिए पर्याप्त नमी और कूड़ा-कर्कट. संसाधन की तकनीक भी सालों पहले विकसित हो चुकी है. हमें तो इसके निर्यात पर जोर देना चाहिए, जिससे बहुमूल्य विदेशी मुद्रा मिल सके. तभी नाशीजीव के रूप में इसकी समस्या भी अपने-आप सुलझेगी.

(लेख में प्रस्तुत सामग्री के लिए लेखक डा० पी०डी० श्रीवास्तव का आभारी है जिन्होंने विशाल अफ्रीकी घोंघे पर प्रकाशित शोध साहित्य, चित्र आदि उपलब्ध कराए और अपने 17 वर्षों के शोध अनुभव से अवगत कराया) ❑

(पृष्ठ 424 का शेषांश . . . आयोनियम)

तुलना की जा सकती है. प्लिस्टोसीन काल में निर्मित विभिन्न चट्टानों की सीमाओं के काल-निर्धारण में दोनों विधियों द्वारा लगभग एक ही नतीजे प्राप्त होते हैं. अवसादन की दर जो आयोनियम-थोरियम विधि द्वारा मालूम की गई वह पुरा-चुम्बकीय ध्रुवीयता विधि से मालूम की गई दर के बराबर है. अध्ययनों से पता चला है कि आयोनियम/थोरियम विधि द्वारा तीन लाख से चार लाख वर्ष पूर्व निर्मित अवसादों का काल-निर्धारण संतोषजनक रूप से किया जा सकता है. इस विधि द्वारा जिन क्रोड नमूनों का काल निर्धारण किया गया उनमें गहराई के साथ आयोनियम/थोरियम के अनुपात में घातीय ट्रास दिखाई पड़ा हालांकि कभी-कभी इसमें अपवाद भी देखा जाता है.

इस विधि का उपयोग पुरातात्विक, सामुद्रिक (ओशनोग्राफिक) तथा भू-वैज्ञानिक पर्यावरण से प्राप्त नमूनों के काल-निर्धारण में संतोषजनक रूप से किया जा सकता है. इस प्रकार के नमूनों का प्रतिनिधित्व करते हैं पुरातात्विक खुदाइयों से प्राप्त हड्डी, लकड़ी, काष्ठ कोयला, स्थलीय एवं समुद्री कार्बोनेट शैल तथा समुद्री अवसाद. (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायोजित प्रतियोगिता

इस अंक से आविष्कार के इस स्तंभ को प्रायोजित प्रतियोगिता के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है. इस प्रतियोगिता के प्रायोजक हैं प्रसिद्ध जूता-निर्माता 'एक्शन शूज' कंपनी. प्रतियोगिता के उस विजेता को जो सर्वाधिक सही उत्तर भेजेगा एक्शन शूज की ओर से सीधे एक जोड़ा एक्शन जूता पुरस्कार स्वरूप पार्सल से भेजा जाएगा. इस कार्यालय में पहुंचने वाले पहले ढाई हजार पत्रों को ही प्रतियोगिता में शामिल किया जाएगा.

एक से अधिक सही उत्तर प्राप्त होने पर 'ड्रा' निकाल कर निर्णय लिया जाएगा. इस संबंध में संपादक का निर्णय अंतिम व मान्य होगा और कोई पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा. पुरस्कार विजेता का नाम और सही हल एक अंक छोड़ कर प्रकाशित किया जाएगा. उत्तर साफ-साफ कागज के एक ओर हाशिया छोड़ कर साफ-साफ लिखा/टाइप किया होना चाहिए. उत्तर के साथ प्रकाशित कूपन अवश्य लगा होना चाहिए जिसमें प्रतियोगिता में भाग लेने वाले का नाम, पूरा पता तथा जूते की माप स्पष्ट लिखी होनी चाहिए. लिफाफे में ऊपर 'प्रायोजित प्रतियोगिता-9/91' अवश्य लिखें.

हमारा पता : **संपादक, 'आविष्कार'**
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

❑ डा० उमेश चन्द्र पाण्डेय

1. पादप जगत में कुछ ऐसे भी पौधे हैं जिनकी कोशिका में स्पष्ट नाभिक (केंद्रक) नहीं होता है. पादप वर्गीकरण में इन्हें प्रोकैरियोटा के अंतर्गत रखा जाता है. यह पौधे हैं:
   (क) आवृत्तबीजी
   (ख) अनावृत्तबीजी
   (ग) नील हरित शैवाल तथा बैक्टीरिया
   (घ) हरित शैवाल तथा कवक.

2. राइबोसोम कोशिका में पाए जाने वाले विशिष्ट कोशिका अवयव हैं जो संबंधित होते हैं:
   (क) प्रकाश संश्लेषण से
   (ख) वसा संश्लेषण से
   (ग) प्रोटीन जैव संश्लेषण से
   (घ) विटामिन संश्लेषण से.

3. हरित शैवालों में युग्मनज (जाइगोट) का रंग लाल होता है. यह होता है:
   (क) क्लोरोफिल के कारण
   (ख) हीमोग्लोबिन के कारण
   (ग) हिमैटोक्रोम के कारण
   (घ) सैफ्रानिन के कारण.

4. जीवद्रव्य जीवन का भौतिक आधार है. जीवद्रव्य में पानी की मात्रा पाई जाती है:
   (क) 25 प्रतिशत
   (ख) 30 प्रतिशत
   (ग) 50 प्रतिशत
   (घ) 75 प्रतिशत.

5. आलू में 'लेट ब्लाइट' रोग होने से पत्तियों के किनारे सूख जाते हैं यह पादप रोग होता है:
   (क) अल्टरनेरिया सोलेनाई से
   (ख) ट्रिपैनोसोमा गैम्बियन्सी से
   (ग) फाइटोफ्थोरा इन्फेस्टेन्स से
   (घ) माइकोप्लाज्मा से.

6. यदि फ्यूनेरिया की पत्ती में क्रोमोसोम संख्या 16 हो तो इसके बिजाणु में यह संख्या होगी:
   (क) 8 (ख) 16
   (ग) 32 (घ) 24.

7. ऐसे वायरस जो नीलहरित शैवालों पर संक्रमण करते हैं, नीलहरित शैवाल वायरस या साइनोफेज कहलाते हैं. इन वायरसों के विषय में जानकारी सबसे पहले दी थी:
   (क) इवानोस्की ने
   (ख) स्टैनले ने
   (ग) बेजरिन्क ने
   (घ) सेफरमैन व मारिस ने.

8. चरस या हशीश भांग के पौधे का कौन-सा अंश है:
   (क) पत्तियों का चूर्ण
   (ख) जड़ों द्वारा निकाला गया रेसिन
   (ग) स्त्रीपौधे के अल्पविकसित पुष्पक्रम द्वारा प्राप्त पदार्थ (रेसिनयुक्त)
   (घ) तने की छाल का चूर्ण.

9. हाइड्रोग्राफ एक उपकरण है, जिससे ज्ञात किया जाता है:
   (क) हवा की दिशा
   (ख) नदी का जल बहाव
   (ग) आपेक्षिक आर्द्रता
   (घ) आपेक्षिक सांद्रता.

10. पर्यावरण निदेशालय, नई दिल्ली द्वारा इस वर्ष धरती माता के संरक्षण के लिए 'विश्व धरती दिवस' के अवसर पर गोष्ठियों, भाषण प्रतियोगिता, भूमि संरक्षण, वृक्षारोपण आदि के आयोजन किए जाने के निर्देश प्राप्त हुए हैं. यह दिवस मनाया जाता है:
   (क) 22 जून को
   (ख) 22 फरवरी को
   (ग) 22 अप्रैल को
   (घ) 22 मई को.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11. कवकों के सूक्ष्म अध्ययन में इस्तेमाल किया जाता है:
(क) फॉस्टग्रीन (ख) सैफ्रानिन
(ग) काटनब्लू (घ) एनीलीन ब्लू.

12. यदि किसी पुष्प में वर्तिका का विकास सीधे पुष्पासन या अंडाशय के केंद्र से होता है तो इसे कहते हैं:
(क) सोलिटरी स्टाइल
(ख) लीनियर स्टाइल
(ग) टरमिनल स्टाइल
(घ) गाइनोबेसिक स्टाइल.

13. बायोगैस का उत्पादन मवेशियों के गोबर के अनाक्सीपाचन से होता है, इस क्रिया में उत्पन्न होती है:
(क) कार्बन मोनोक्साइड
(ख) एसीटिलीन
(ग) मीथेन
(घ) कार्बन डाइआक्साइड.

14. पेट्रोपादपों में हाइड्रोकार्बन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, इनका उपयोग भविष्य में डीजल या पेट्रोल उत्पादन में किया जा सकेगा. ये पादप उगाए जा सकते हैं:
(क) कृषि योग्य भूमि में
(ख) ऊसर भूमि में
(ग) दोनो में
(घ) दोनो में नहीं.

15. चंदन के वृक्ष प्राकृतिक रूप से उगते हैं:
(क) असम (ख) कश्मीर
(ग) कर्नाटक (घ) बिहार.

16. ल्यूकोप्लास्ट होते हैं:
(क) हरे रंग के (ख) पीले रंग के
(ग) लाल रंग के (घ) रंगहीन.

17. 'इको रेस्टोरेशन' पर्यावरण निदेशालय की एक प्रायोजना है, जिसके अंतर्गत:
(क) पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान दिया जाता है
(ख) भूक्षरण को रोका जाता है
(ग) वायु प्रदूषण अध्ययन किया जाता है
(घ) यह एक मनोरंजन कार्यक्रम है.

18. शैवालों में वर्णक (पिग्मेंटस) पाए जाते हैं. यह किस वर्ग के अंतर्गत आते हैं:
(क) फाइकोफाइटा
(ख) ट्रेकिओफाइटा
(ग) टेरिडोफाइटा
(घ) थैलोफाइटा.

19. आजकल 'ग्रीनहाउस प्रभाव' की बड़ी चर्चा है. यह किससे संबंधित है:
(क) पर्यावरण में O_2 की मात्रा बढ़ने से
(ख) वायुमंडल में CO_2 की मात्रा घटने से
(ग) वायुमंडल में CO_2 की मात्रा बढ़ने से
(घ) पर्यावरण में पेड़ पौधों के बढ़ने से.

20. बागैनविलिया में कई पुष्परंग पाए जाते हैं, इसका कारण है:
(क) रंगीन बाहदलपुंज
(ख) रंगीन दलपुंज
(ग) रंगीन ब्रैक्ट
(घ) उपरोक्त कोई नहीं.

21. 'जीव उत्पत्ति का सिद्धान्त' किसने दिया:
(क) मेंडल ने (ख) लेमार्क ने
(ग) डार्विन ने (घ) आंइस्टीन ने.

22. गन्ना शक्कर का प्रमुख स्रोत है. अधिक मात्रा में शक्कर उत्पन्न करने के लिए नई नई जातियों का विकास किया जा रहा है. गन्ना प्रजनन संस्थान है:
(क) कानपुर में
(ख) लखनऊ में
(ग) शाहजहांपुर में
(घ) कोयम्बटूर में.

23. निम्न में से कौन से रोग के लिए वायरस जिम्मेदार हैं:
(क) डिफ्थीरिया
(ख) टायफाइड
(ग) चेचक
(घ) स्लीपिंग सिक्नेस.

24. विटामिन 'सी' का प्रमुख स्रोत है:
(क) अंडे तथा दुग्ध पदार्थ
(ख) सूर्य की किरणें
(ग) हरी शाक-सब्जियां
(घ) नींबू, संतरे, मुसम्मी आदि.

25. एल०एस०डी० प्राप्त होता है:
(क) एस्परजिलस प्रजाति से
(ख) एगेरिक्स प्रजाति से
(ग) क्लेवीसेप्स प्रजाति से
(घ) सैप्रोलेग्निया प्रजाति से.

26. वैनिला सुगंध किस कुल के पौधे से प्राप्त होती है:
(क) पोएसी
(ख) एपोसायनेसी
(ग) आर्किडियेसी
(घ) लैबिएटी.

27. बिना बीज का फल किस क्रिया द्वारा बनता है:
(क) पालीगेमी
(ख) आइसोगेमी
(ग) पार्थीनोजिनेसिस
(घ) पार्थीनोकार्पी.

28. पोषक पौधों पर परजीवी के संक्रमण की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अनियमित कोशिका-विभाजन प्रेरित होता है. इसे कहते हैं:
(क) हाइपरग्रोथ
(ख) हाइपरट्राफी
(ग) हाइपरप्लेसिया
(घ) होमोजाइगोसिटी.

नाम ....

पता ....

....

....

जूता माप ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Punjab Tractors : Scaling new heights in the business world

Punjab Tractors Limited (PTL) is our country's first large-scale venture based on totally Indian engineering and know-how. Commencing production in 1974, PTL and its Swaraj brand have rapidly grown into nationally and internationally known names. PTL is today recognised as a premier, forward-looking, innovative and fast-track engineering enterprise of the country. With gross assets of Rs. 230 million, turnover of the Swaraj enterprise in 1988 was Rs. 2,000 million.

PTL is a multi-company, multi-division enterprise manufacturing a wide range of engineering products to serve agriculture, transport, industry and the consumer

079404

SWARAJ

TOWARDS LEADERSHIP

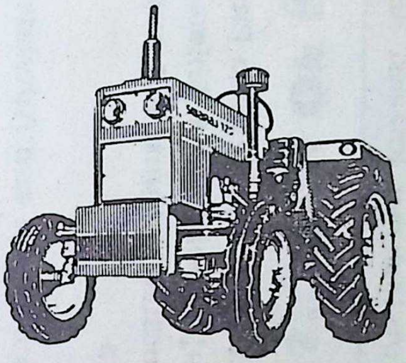

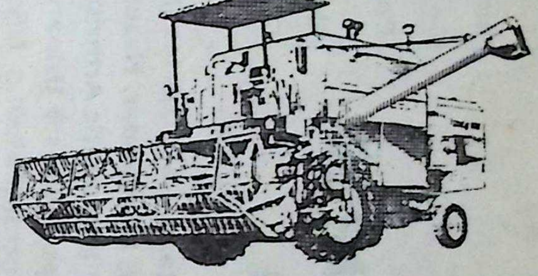

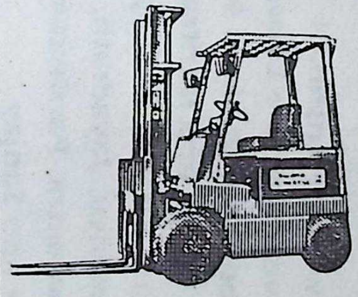

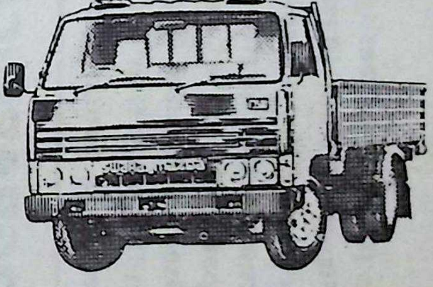

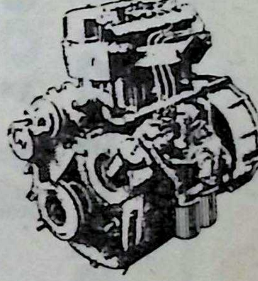

Ideas Inc/PTL/Corp/89/001

Regd. Office **Punjab Tractors Limited,** S.A.S. Nagar - 160 055 (Near Chandigarh).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

USEFULL BOOKS

UPDATE YOURSELF

Demographic Diversity of India: 1991 Census State and District Level Data – A Reference Book/ Ashish Bose (P.B.) **Rs. 175**

India's Population: Heading Towards a Billion (An Analysis of 1991 Census Provisional Results)/ Mahendra K. Premi (P.B.) **Rs. 60**

Population of India: 1991 Census Results & Methodology/ Ashish Bose (P.B.) **Rs. 50**

Elections 1991—An Analysis/ C.P. Bhambhri (P.B.) **Rs. 120**

DISEASES: CURED BY YOGA

Rs. 8/- each & Set Rs.175

- Asthma (Damaa) ◆ Obesity (Motaapa) ◆ Diabetes (Madhumeh) ◆ Tuberculosis (T.B.) (Tapedik)
- Piles, Fissure, Fistula (Bawaseer, Bhagandar, Nasur) ◆ Improving Height
- Blood Pressure Heart Diseases ◆ Rheumatic Arthritis (Jodon ka Dard) ◆ Indigestion (Badhasmi)
- Backache (Peeth ka Dard) and Spondylitis ◆ Urinary & Seminal Diseases (Mootra Aur Virya Vikaar) and Hernia
- Constipation (Kabz) ◆ Sweat Control (Paseena Niyantran) ◆ Flatulence (Pet Ki Gais)
- Skin Diseases (Charam Rog) ◆ Worms (Pet Ke Keede) ◆ Navel and Jaundice (Naabhi Aur Peeliya)
- Women Disease ◆ Hair ◆ Throat Diseases ◆ Eyes ◆ Concentration (Ekaagrata)
- Common Cold, Cough and Catarrh (Zukaam, Khaansi Aur Nazla)

078404

BIOGRAPHICAL SKETCH OF MAHABHARAT CHARACTERS

- Bhagwan Sri Krishna ◆ Veda Vyas ◆ Bheeshma Pitamaha ◆ Dronacharya
- Daanveer Karna ◆ Dharamraj Yudhishthir ◆ Bhimasen ◆ Veer Arjun ◆ Nakul ◆ Sahadev
- Duryodhan ◆ Shakuni ◆ Gandhari ◆ Kunti ◆ Draupadi ◆ Shantanu
- King Pandu and Dhritrashtra
- Drupad, Virat and Shalya
- Abhimanyu, Jayadrath, Ghatotakach and Ashwatthama
- Vishwamitra, Parshuram and Vasishtha
- Vidur and Sanjay
- Who's Who of The Mahabharat

Rs. 20 each & Set Rs. 400

Post free (in India) if full money sent in advance

D K P D (P) Ltd

1, Ansari Road, Darya Ganj,
N. Delhi-110002. Ph: 3261465, 3278368

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
[illegible]-2005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar